लोक प्रशासन

(सिद्धान्त तथा व्यवहार)

PUBLIC ADMINISTRATION

(Theory and Practice)

लेखक
चन्द्र प्रकाश भांभरी,
एम० ए०, पी-एच० डी०
रीडर, राजनीतिशास्त्र विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर।

तृतीय संशोधित तथा परिवर्द्धित संस्करण १९६४

जय प्रकाश नाथ एण्ड कम्पनी,
पुस्तक प्रकाशक .... मेरठ।

AUTHOR

Other Books by the Same Author

1. Parliamentary Control over Finance in India (A Study in Financial Administration)
2. Parliamentary Control over State Enterprise in India (A Study in Public Administration)
3. Substance of Hindu Polity

Thoroughly Revised and Enlarged
Third Edition July, 1964
Price Rs 12-50 Paise only

Published by
K N. GUPTA
For
Jai Prakash Nath & Co.,
MEERUT

Printed by
Gupta Printing Press
MFERUT

तृतीय हिन्दी संस्करण की भूमिका

प्रस्तुत पुस्तक 'लोक-प्रशासन' (Public Administration) नामक मेरी अग्रेजी पुस्तक का हिन्दी अनुवाद है। पुस्तक के अग्रेजी सस्करण का सभी क्षेत्रो मे काफी स्वागत किया गया तथा इस सम्बन्ध मे हैदराबाद, पूना व बम्बई आदि से छात्रो एव अन्य पाठको के प्रशसा-पत्र भी आये। मैं उन सभी छात्रो, अध्यापको, विभिन्न समाचार-पत्रो तथा पत्रिकाओ का आभारी हूँ जिन्होने मेरी अग्रेजी पुस्तक का स्वागत किया है।

भारतीय विश्वविद्यालयो मे अब हिन्दी भाषा ही अधिकाधिक रूप मे शिक्षा का माध्यम होती जा रही है, अत छात्रो एव अन्य पाठको के सम्मुख उक्त पुस्तक का तीसरा हिन्दी सस्करण उपस्थित करते हुए मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है। इस पुस्तक मे सन् १९६४ तक के अद्यावधिक तथ्यो (up-to-date-facts) का समावेश किया गया है।

अग्रेजी पुस्तक का हिन्दी रूपान्तर करते समय, अग्रेजी के पारिभाषिक शब्दो का अनुवाद करने मे हिन्दी के उपयुक्त एव प्रामाणिक शब्दो की समस्या प्राय सामने आती है। इस पुस्तक मे अधिकाशत हिन्दी के उन विशिष्ट एव पारिभाषिक शब्दो का प्रयोग किया गया है जोकि भारत सरकार की पारिभाषिक शब्दावली (Technical Terminology) की विशेषज्ञ समिति द्वारा स्वीकार किये गये है। हिन्दी अनुवाद विद्यार्थियो को ग्राह्य हो सके, इसलिये शीर्षको एव हिन्दी के पारिभाषिक शब्दो के आगे कोष्ठको मे अग्रेजी शब्द भी दे दिये गये है। इस प्रकार प्रस्तुत पुस्तक की भाषा को, स्नातकोत्तर कक्षाओ के उच्चतर का ध्यान रखते हुए, तथा सभव सरल, सुबोध एव रुचिकर बनाने का पूर्ण प्रयास किया गया है। मुझे पूर्ण आशा है कि **'लोक प्रशासन'** का यह हिन्दी सस्करण भी अग्रेजी सस्करण की भाँति ही उपयोगी, मूल्यवान तथा लोकप्रिय सिद्ध होगा।

इस पुस्तक के हिन्दी अनुवाद के लिए मैं **श्री बसन्त लाल जैन**, एम० ए० सरधना तथा **विपिन चन्द्र**, एम० ए० लेक्चरार, मेरठ कॉलिज, मेरठ का अत्यन्त आभारी हूँ जिन्होने कि इस पुस्तक के हिन्दी अनुवाद के कठिन कार्य का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिया और इस कार्य को सतत परिश्रम तथा पूर्ण उत्साह व लगन के साथ किया। इस हिन्दी सस्करण के शीघ्र प्रशासन का पूर्ण श्रेय परम सहयोगी मित्र **श्री कान्तीनाथ गुप्ता** को है जिनका मैं हृदय से आभारी हूँ।

मुझे आशा है कि हिन्दी मे प्रशासन के साहित्य-क्षेत्र मे इस पुस्तक को प्रमुख स्थान प्राप्त होगा। पुस्तक के सम्बन्ध मे आने वाले सुझावो का मैं हार्दिक स्वागत करूँगा।

जयपुर
१ जुलाई, १९६४

चन्द्र प्रकाश भांभरी

अंग्रेजी के प्रथम संस्करण की भूमिका

'लोक प्रशासन' के सिद्धान्त तथा व्यवहार पर लिखी गई यह पुस्तक पाठको के सन्मुख रखते हुए मुझे बडी प्रसन्नता हो रही है। यह पुस्तक मुख्य रूप से भारतीय विश्व-विद्यालयो के छात्रो के लिए लिखी गई है। इस पुस्तक मे, यद्यपि ब्रिटेन तथा सयुक्त राज्य अमेरिका की प्रशासकीय समस्याओ का विशद विवेचन किया गया है, तथापि, भारतीय प्रशासन की समस्याओ पर इसमे विशेष रूप से ध्यान दिया गया है। भारतीय प्रशासन पद्धति के अनेक उदाहरण देकर पुस्तक के विषय को छात्रो के लिए सरल, सुबोध एवं सुग्राह्य बनाने का पूर्ण प्रयास किया गया है।

यह पुस्तक चार भागो मे विभाजित है। प्रथम भाग मे प्रशासन के ढाँचे तथा सगठन की सैद्धान्तिक समस्याओ पर विचार किया गया है, दूसरे मे लोक सेवी वर्ग प्रशासन की समस्याओ का, तीसरे मे वित्तीय प्रशासन की समस्याओ का और चौथे भाग मे नागरिक तथा प्रशासन के बीच के सम्बन्धो का विवेचन किया गया है।

पुस्तक के अन्त मे चुने हुए ग्रथो की एक सूची भी दी गई है जिससे कि छात्रो को प्रस्तुत पुस्तक मे विवेचन की गई विभिन्न समस्याओ के बारे मे विस्तृत ज्ञान प्राप्त करने के लिए अधिकृत ग्रथो एव कृतियो का अध्ययन करने को प्रोत्साहन मिले। अन्त मे, मैं मेरठ कालिज के पुस्तकालय के पुस्तकालयाध्यक्ष एव कर्मचारीवर्ग को तथा नई दिल्ली स्थित लोक-प्रशासन की भारतीय सस्था के अधिकारी वर्ग को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ जिनके द्वारा कि मुझे अनेक ऐसी पत्रिकाओ तथा सरकारी रिपोर्टों आदि से जानकारी प्राप्त करने की सुविधाए प्रदान गईं, जोकि इस पुस्तक के लिखने के लिये अत्यन्त आवश्यक थी।

इस पुस्तक की उन्नति के सम्बन्ध मे आने वाले सुझावो के लिए मैं पाठको का अत्यन्त आभारी रहूँगा।

लक्ष्मी भवन,
छीपी तालाब, मेरठ

चन्द्र प्रकाश भाम्भरी

Pt JAWAHAR LAL NEHRU

I hope those who dammed him (Mr Nehru) while he lived will not try to embrace him in the name of things he loathed

—*Bertrand Russell*

विषय-सूची

भाग १

लोक प्रशासन

पृष्ठ

अध्याय १ : लोक प्रशासन का अर्थ, प्रकृति तथा क्षेत्र : १

प्रारम्भिक भूमिका, प्रशासन, लोक प्रशासन की परिभाषा, प्रशासन के अर्थ के विषय मे लेखको के विचार, लोक प्रशासन का क्षेत्र, लोक प्रशासन के क्षेत्र के सम्वन्ध मे 'POSDCORB' विचार, 'POSDCORB' विचार की आलोचना, लोक प्रशासन तथा व्यक्तिगत प्रशासन, लोक प्रशासन तथा व्यक्तिगत प्रशासन मे भेद, क्या लोक प्रशासन एक विज्ञान है ? लोक प्रशासन के अध्ययन के प्रति विभिन्न दृष्टिकोण, राजनीति तथा प्रशासन का विभाजन, और निष्कर्ष ।

अध्याय २ : मुख्य निष्पादक अथवा मुख्य कार्यपालिका महाप्रबन्धक के रूप मे . २७

भूमिका, मुख्य कार्यपालिका के प्रशासकीय कर्त्तव्य, मुख्य निष्पादक अथवा मुख्य कार्यपालिका का कार्यालय, सयुक्त राज्य अमेरिका के मुख्य निष्पादक का कार्यालय, इगलैंड मे मन्त्रि-परिषद् सचिवालय, भारत मे मन्त्रि-परिषद् सचिवालय, सगठन तथा प्रणाली सभाग, सैनिक प्रशाखा, आर्थिक प्रशाखा ।

अध्याय ३ सगठन की कुछ सामान्य समस्यायें : ४४

भूमिका, सगठन की समस्या के प्रति विभिन्न दृष्टिकोण—उरविक का दृष्टिकोण, इस दृष्टिकोण की आलोचना, सगठन के आन्तरिक सचालन की कुछ मुख्य समस्यायें, प्राधिकार, प्राधिकार मे पूर्ण सन्तुलन होना चाहिए, नेतृत्व, पद-सोपान अथवा क्रमिक प्रक्रिया का सिद्धान्त, समन्वय या समायोजन, समायोजन स्थापना की विधियाँ, हस्तान्तरण, निर्णय लेना, सचार, देख-रेख व नियन्त्रण, सगठन के आधार, निष्कर्ष, आदेश की एकता, नियन्त्रण का क्षेत्र, एकीकृत व्यवस्था बनाम स्वतन्त्र व्यवस्था, पुनर्गठन, सगठन के रूप ।

अध्याय ४ : सूत्र तथा स्टाफ : ८२

सूत्र तथा स्टाफ का अर्थ, सूत्र तथा स्टाफ के बीच भेद के विषय मे कुछ सावधानी, सामान्य स्टाफ, सहायक स्टाफ, विशिष्ट अथवा तकनीकी स्टाफ, निष्कर्ष स्टाफ अभिकरणो के विषय मे कुछ भ्रम।

अध्याय ५ : विभाग : ९५

विभागीय सगठन के वैकल्पिक आधार (१) कार्य अथवा उद्देश्य—विभागीय सगठन के आधार के रूप मे, (२) प्रक्रिया—विभागीय सगठन के आधार के रूप मे, (३) सेवा किये जाने वाले व्यक्ति—विभागीय सगठन के आधार के रूप मे, (४) क्षेत्र अथवा प्रदेश—विभागीय सगठन के रूप मे, भारत सरकार मे विभाग का सगठन, भारत सरकार के मन्त्रालय तथा विभाग, विदेश मन्त्रालय, गृह अथवा स्वराष्ट्र मन्त्रालय, प्रतिरक्षा मन्त्रालय, वित्त-मन्त्रालय, सामुदायिक विकास, पचायती राज तथा सहकारिता मन्त्रालय, मन्त्रालय का सगठन।

अध्याय ६ : व्यूरो तथा मण्डल अथवा आयोग प्रणाली का सगठन . ११८

एक वनाम अनेक अध्यक्ष, व्यूरो प्रणाली के सगठन के लाभ, मण्डल अथवा आयोग या वहुल प्रणाली की अध्यक्षता के लाभ, मण्डलीय पद्धति की हानियाँ, मण्डलो की सदस्यता, मण्डलो अथवा आयोगो की किस्मे।

अध्याय ७ . स्वतन्त्र नियामकीय आयोग : १२६

भूमिका, राष्ट्रपति, काग्रेस अथवा न्यायपालिका से आयोगो का सम्बन्ध, काग्रेस और आयोग, राष्ट्रपति और आयोग, न्यायपालिका और आयोग, नियामकीय कार्य की प्रकृति तथा सचालन, स्वतन्त्र नियामकीय आयोगो की स्थापना के कारण, स्वतन्त्र नियामकीय आयोगो की आलोचना, निष्कर्ष।

अध्याय ८ सरकारी उद्यमो का प्रशासन : १३५

सरकारी उद्यमो मे प्रवन्ध के स्वरूप, विभागीय प्रवन्ध, सरकारी निगम, सयुक्त पूंजी कम्पनी, मिश्रित सयुक्त पूंजी कम्पनी, सचालन ठेका, सरकारी उद्यम पर मन्त्रीय नियन्त्रण, ससदीय नियन्त्रण, सरकारी निगमो पर ससदीय नियन्त्रण, प्रवर समिति की स्थापना के पक्ष मे दी जाने वाली दलील की जाँच, समिति के पक्ष मे तर्क, समिति के विपक्ष मे तर्क,

सरकारी निगमो के साथ सरकार का वास्तविक सम्वन्ध, कुछ नवीन प्रवृत्तियाँ ।

अध्याय ६ : प्रशासन के स्तर : १८२

भारत मे केन्द्र तथा राज्यो के वीच सम्बन्ध, सघ तथा राज्यो के बीच शक्तियो का विवरण, शक्तिशाली केन्द्र, राज्य के विषयो पर विधि निर्माण करने की सघीय ससद की शक्ति, केन्द्र और राज्यो के वीच प्रशासकीय सम्वन्ध, केन्द्र तथा राज्यो के बीच वित्तीय सम्बन्ध, सयुक्त राज्य मे साधनो का विभाजन, भारत मे सघ तथा राज्यो के वीच साधनो का विभाजन, सघीय स्रोत, राजकीय स्रोत, समवर्ती स्रोत, कर-प्राप्तियो का वास्तविक वटवारा, वित्त आयोग, राज्य-स्थानीय सम्वन्ध, स्थानीय सस्थाओ पर राज्य का नियन्त्रण, भारत मे स्थानीय सस्थाओ पर राज्य के नियन्त्रण का आलोचनात्मक अध्ययन, भारत मे सघ तथा राज्यो के वीच सम्वन्ध ।

अध्याय १० पचायती राज : २२०

पृष्ठ भूमि, स्वतन्त्रता और उसके वाद, मेहता कमेटी, तीन स्तरीय योजना, राजस्थान मे लोकतात्रिक विकेन्द्रीकरण, पचायती राज की सस्थायें, पचायत, निर्वाचन, कार्य की अवधि, पचायत के अधिकारी-वर्ग, सरपच के कार्य, पंचायत के कार्य, आय के साधन, पचायत समिति, समिति की रचना, पचायत समिति के सदस्य, कार्य-काल, समिति के अधिकारी, समिति के कार्य, समिति की आय के साधन, जिला-परिषद्, जिला-परिषद् के कार्य, आय के साधन, ग्राम सभा, न्याय-पचायत, तुलना, समस्यायें तथा संम्भावनाये ।

अध्याय ११ : क्षेत्रीय सस्थायें २३९

प्रधान कार्यालय और स्थानीय कार्यालयो के वीच सम्वन्ध, क्षेत्र-स्थलो की स्थापना के कारण, क्षेत्रीय सस्थाओ से उत्पन्न होने वाली प्रशासकीय समस्यायें, केन्द्रीकरण वनाम विकेन्द्रीकरण, अर्थ, विकेन्द्रित व्यवस्था की आवश्यक वातें, केन्द्रीकरण और विकेन्द्रीकरण के लिए उत्तरदायी तत्व, केन्द्रीकरण के दोष, केन्द्रीकरण के लाभ, विकेन्द्रीकरण के लाभ, विकेन्द्रीकरण के दोष, क्षेत्रीय सेवाओ का सगठन, विलोवी के विचार, एकल पद्धति, वहुल पद्धति, क्षेत्रीय सेवाओ के सगठन के विषय मे लूथर गुलिक के विचार, क्षेत्रीय व प्रधान कार्यालयो के सम्वन्ध, क्षेत्र-स्थलो पर प्रधान कार्यालय के

नियन्त्रण की रीतियाँ, प्रधान कार्यालयो तथा क्षेत्र-स्थलो के बीच ऐक्य अथवा तालमेल उत्पन्न करने की रीतिया, क्षेत्र मे समन्वय, निष्कर्ष ।

अध्याय १२ : प्रशासनिक सुधार : २५६

भूमिका, वैज्ञानिक प्रबन्ध, सरकार मे समय तथा क्रिया का अध्ययन, प्रशासनिक कार्य-प्रणालियो मे सुधार, सगठन तथा प्रणालिया, भारत सरकार मे सगठन तथा प्रणाली (ओ० तथा एम०), कार्यक्रम की रूपरेखा, भारत मे 'सगठन तथा प्रणाली' सगठन, विशिष्ट पुनर्गठन इकाई, निष्कर्ष ।

अध्याय १३ : भारत मे नियोजन तथा योजना आयोग : २७२

भूमिका, नियोजन के प्रकार, भारत मे आर्थिक नियोजन, योजना का निर्माण, भारत मे योजना आयोग, योजना आयोग का स्वरूप तथा मन्त्रिपरिषद् से इसका सम्बन्ध, योजना निर्धारण, राष्ट्रीय विकास परिषद्, योजना का क्रियान्वन तथा आर्थिक नियोजन के अन्तर्निहित परिणाम, योजना का मूल्याकन, निष्कर्ष ।

भाग २

कार्मिक-वर्ग प्रशासन

(Personnel Administration)

अध्याय १४ : सिविल सेवा का योग तथा महत्व : २९३

महत्व, सिविल सेवा अथवा नौकरशाही, नौकरशाही के विशिष्ट लक्षण, नौकरशाही अथवा सेवकतन्त्र की बुराइया, नौकरशाही के दोष, निरकुशता का आरोप, इन दोषो को दूर करने के लिए सुझाव ।

अध्याय १५ सिविल अथवा असैनिक सेवा—इसके कार्य और विभिन्न पद्धतियां ३०३

कार्य, लूट-खसोट बनाम योग्यता प्रणाली, योग्यता प्रणाली, कुलीनतन्त्रीय तथा प्रजातन्त्रीय प्रणाली ।

अध्याय १६ : जीवनवृत्ति के रूप में सरकारी सेवा : ३११

भूमिका, जीवन वृत्ति के सिद्धात के मार्ग मे आने वाली बाधाएं, पदोन्नति के लिए उपलब्ध अवसर, विशेषज्ञो के लिए जीवन-वृत्ति, लिपिक-वर्ग के कर्मचारियो के लिए जीवन-वृत्ति, सामान्य प्रशासन में जीवन-वृत्ति ।

अध्याय १७ : वर्गीकरण और प्रतिफल : ३१६

अर्थ, वर्गीकरण की रीति, पद-वर्गीकरण के लाभ, विश्लेषण प्रपत्र, पद-वर्गीकरण के लाभ व हानिया, सयुक्त राज्य अमेरिका मे पद-वर्गीकरण, ब्रिटिश सिविल सेवा के विभिन्न वर्ग, भारत मे सेवाओ का वर्गीकरण, प्रतिफल—आवश्यक तत्व व सिद्धात।

अध्याय १८ : लोक कर्मचारियों की भर्ती : ३३५

निषेधात्मक और निश्चयात्मक भर्ती की विचारधारा, भर्ती की समस्यायें, सेवा के भीतर से अथवा पदोन्नति द्वारा भर्ती करने की अच्छाइया तथा दोष, लोक कर्मचारियो के लिए अपेक्षित योग्यतायें अथवा अर्हतायें, कर्मचारियो की योग्यताओं की जाँच करने का ढग, लिखित परीक्षा, लिखित परीक्षा की किस्में, निबन्ध परीक्षा, लघु-उत्तर परीक्षायें, मौखिक परीक्षा, कार्य-सम्पन्नता की परीक्षा, शिक्षा, अनुभव तथा शारीरिक जाँच का मूल्य, बुद्धि परीक्षा, योग्यताओ के निर्धारण के लिए प्रशासकीय यन्त्र, भारत मे लोक सेवा आयोग, आयोग का गठन तथा कार्य, लोक-सेवा आयोग के किसी सदस्य का हटाया जाना या निलम्बित किया जाना, आयोग के कार्य, लोक सेवा आयोगो के प्रतिवेदन, सरकार और लोक सेवा आयोग के बीच मतभेद, विवाद-पूर्ण विचारो का आदान-प्रदान, कम सम्मान, प्रमाणन, नियुक्ति और परिवीक्षा।

अध्यय १९ प्रशिक्षण . ३६२

प्रशिक्षण का उद्देश्य, प्रशिक्षण के प्रकार (प्रशिक्षण की मुख्य श्रेणियाँ) (१) औपचारिक तथा अनौपचारिक प्रशिक्षण, (२) पूर्व-प्रवेश प्रशिक्षण, (३) सेवाकालीन प्रशिक्षण (४) प्रवेशोत्तर प्रशिक्षण, प्रशिक्षण के प्रकार . (१) व्यावसायिक प्रशिक्षण, (२) पृष्ठ प्रदेशीय प्रशिक्षण, (३) अतिरिक्त प्रशिक्षण, (४) केन्द्रीकृत प्रशिक्षण, (५) प्राथमिक अथवा प्रारम्भिक प्रशिक्षण, (६) गतिशीलता के लिए प्रशिक्षण, (७) पर्यवेक्षण के लिए प्रशिक्षण, (८) उच्चतर प्रशासन के लिए प्रशिक्षण प्रशिक्षण देने की रीतियाँ, सयुक्त राज्य अमेरिका मे लोक कर्मचारियो का प्रशिक्षण, यूनाइटेड किंगडम , भारत मे लोक कर्मचारी-वर्ग का प्रशिक्षण, (१) भारतीय प्रशासन सेवाओ के लिए प्रशिक्षण, (२) भारतीय विदेश सेवा के लिए प्रशिक्षण, (३) भारतीय पुलिस सेवा के

लिए प्रशिक्षण, (४) भारतीय लेखा-परीक्षण तथा लेखा सेवा के लिए प्रशिक्षण, (५) आय कर सेवा (६) केन्द्रीय सचिवालय सेवा, भारत मे प्रशिक्षण कार्यक्रम मे किये गए नवीन परिवर्तन, प्रशासन की राष्ट्रीय अकादमी मे तथा तदोपरान्त।

अध्याय २० **पदोन्नति :** ३८२

पदोन्नति का अर्थ व महत्व, पदोन्नति के लिए पात्रता का क्षेत्र, पदोन्नति की समस्यायें, पदोन्नति के सिद्धान्त ज्येष्ठता बनाम योग्यता, ज्येष्ठता का सिद्धान्त, ज्येष्ठता के सिद्धान्त के दोष, योग्यता का सिद्धान्त (पदोन्नति के लिए योग्यता को जाचने की रीतियाँ), (१) पदोन्नति के लिए परीक्षायें (क) खुली प्रतियोगिता परीक्षा, (ख) सीमित प्रतियोगिता परीक्षा, (ग) उत्तीर्णता परीक्षा, परीक्षा पद्धति की आलोचना, (२) सेवा अभिलेख अथवा कार्यकुशलता माप, (१) उत्पादन अभिलेख, (२) विन्दुरेखीय दर मापमान पद्धति, (३) व्यक्तिगत तालिका पद्धति, (४) विभागाध्यक्ष का व्यक्तिगत निर्णय, सयुक्त राज्य अमेरिका मे पदोन्नतियाँ, इगलैंड मे पदोन्नति की प्रणाली, भारत मे पदोन्नति प्रणाली, (१) भारत मे पदोन्नति के अवसर, (२) पदोन्नति की रीतिया तथा सिद्धात, पदोन्नतियो के सम्वन्ध मे वेतन आयोग की सिफारिशें, कार्यकुशलता मापक प्रपत्र (यू० एस० ए०)।

अध्याय २१ **अनुशासन, पदावनति, पदच्युति और सेवा निवृत्ति** ४१०

भूमिका, पार्थक्य तथा सेवा निवृत्ति, सेवा निवृत्ति योजनाओ के उद्देश्य, भारत मे लोक-सेवको के लिए आचार-सहिता और अनुशासन के नियम, (१) सरकारी कार्मिक-वर्ग की निष्ठा, (२) राजनीति के सम्वन्ध मे तटस्थ रहने के नियम, (३) भारत मे अनुशासन तथा अपील के नियम-दण्ड, दण्ड देने की विधि अथवा प्रक्रिया, वे परिस्थितियाँ जिनमे अपील करने का अधिकार नही होता, अपील सुनने वाली सत्ता द्वारा अपीलो पर विचार, अपील दायर करने की प्रक्रिया व रूप, इन नियमो के निर्माण मे पूर्व दायर की गई अपीलें, पुनर्विचार अथवा सशोधन, विनति-पत्र, (४) भारत मे लोक सेवको के लिए निवृत्ति-लाभ, सामान्य शर्तें, सीमा, पेन्शन मे प्रतिलब्धि अथवा वसूली, सेवा निवृत्ति पेन्शन, निवृत्ति लाभो की स्वीकृति की शर्तें, परिवार

पेन्शन , निष्कर्ष कर्मचारियो के उत्साह तथा अनुशासन का महत्व ।

अध्याय २२ कर्मचारियो के सगठन अथवा सघ ४३२

भूमिका, कर्मचारियो की मागें पूरी करने के उपाय , भारत मे कर्मचारियो के सघ , सुलह की बातचीत तथा विवादो के निपटारे का साधन , ह्विटले परिषदें , आरम्भ, ह्विटले परिषदो के उद्देश्य तथा कार्य, ह्विटले परिषदो का सगठन , (१) राष्ट्रीय परिषद, (२) विभागीय परिषदे, (३) जिला अथवा क्षेत्रीय समितिया , ह्विटले परिषदो की सत्ता की सीमायें, ह्विटले परिषदो के योग का मूल्याकन, सिविल सेवा पचनिर्णय अथवा विवेचन न्यायाधिकरण , भारत मे सुलह की बातचीत तथा विवादो के निपटारे का यन्त्र, ह्विटले परिषदो की आवश्यकता , कर्मचारी-वर्ग परिषदो के उद्देश्य , भारत मे विवादो के निपटारे तथा सुलह की बातचीत के यत्र की आलोचना ।

अध्याय २३ अमेरिकन सिविल सेवा : ४५५

भूमिका सन् १८८३ का पेन्डलटन अधिनियम , सिविल अथवा असैनिक सेवा आयोग , अमेरिकन सिविल सेवा प्रणाली के दोष ।

अध्याय २४ · ब्रिटिश सिविल-सेवा ४६३

भूमिका , प्रशासनिक वर्ग , कर्तव्य , सख्या तथा वेतन , कार्य के घटे तथा अवकाश , कार्यपालक अथवा निष्पादक वर्ग के कर्तव्य, सख्या तथा वेतन , काम के घण्टे तथा अवकाश , लिपिक वर्ग , विवरण तथा कर्तव्य, सख्या तथा वेतन , काम के घण्टे तथा अवकाश , लिपिक सहायक वर्ग , कर्तव्य , सख्या तथा वेतन, अवकाश , सिविल सेवा आयोग , सिविल सेवा और आर्थिक आयोजन ।

अध्याय २५ भारतीय सिविल अथवा असैनिक सेवा ४७५

सिविल सेवा का ढाचा , परिवर्तनशील समाज मे सिविल सेवा , भारत के लिए आर्थिक सिविल सेवा , औद्योगिक प्रबन्ध केन्द्र योजना , नियन्त्रणकारी सत्ता , पदक्रम तथा वेतन , भर्ती, प्रशिक्षण तथा परिवीक्षा , अवकाश, पेन्शन तथा सेवा की अन्य शर्ते , निष्कर्ष ।

भाग ३

वित्तीय प्रशासन

(Financial Administration)

अध्याय २६ वित्तीय प्रशासन की समस्या ४६५

वित्त का महत्व , वित्तीय प्रशासन , वित्तीय प्रशासन के अभिकरण (१) व्यवस्थापिका सभा, (२) कार्यपालिका, (३) राजकोष अथवा वित्त विभाग, (४) लेखा-परीक्षण, (५) ससदीय समितिया , समस्या का साराश ।

अध्याय २७ आय-व्ययक अथवा बजट ५०३

बजट की परिभाषा , प्रस्तावित बजट का स्वरूप , बजट के आर्थिक तथा सामाजिक परिणाम , बजट के महत्वपूर्ण सिद्धान्त , बजट के विभिन्न प्रकार (१) व्यवस्थापिका प्रणाली का बजट, (२) कार्यपालिका प्रणाली का बजट, (३) मण्डल अथवा आयोग प्रणाली का बजट , बजट तथा पद्धति , बजट पद्धति के आवश्यक तत्व , बजट सम्बन्धी कार्यविधियाँ और समस्याये (१) अनुमान तैयार करना, (२) बजट पर व्यवस्थापिका की स्वीकृति ।

अध्याय २८ ब्रिटेन तथा सयुक्त राज्य अमेरिका मे वित्तीय प्रशासन ५१२

ब्रिटेन मे वित्तीय प्रशासन , अनुमानो की तैयारी , सदन मे अनुमान अथवा प्राक्कलन , सदन तथा सम्पूर्ण सदन की समिति मे अन्तर , पूर्ति समिति , पूर्ति प्रस्तावो का स्वरूप , पूर्ति समिति की कार्यविधि , उपाय और साधन समिति , ब्रिटिश राजकोष , राजकोष के कार्य , राजकोष का सगठन , अर्थ महामात्य , राजकोष द्वारा प्रदान किये जाने वाले योग की आलोचना , प्लौडेन रिपोर्ट , लेखा-परीक्षण , निष्कर्ष , सयुक्त राज्य अमेरिका मे वित्तीय प्रशासन , अनुमानो अथवा प्राक्कलनो की तैयारी , बजट विभाग या ब्यूरो , बजट अनुमानो की तैयारी , कांग्रेस मे बजट , "Pork Barrel" and "Logrolling" , राजस्व के उपाय , बजट का प्रबन्ध , ब्रिटिश तथा अमेरिकन पद्धतियो की तुलना, समानताये, विभिन्नताये ।

अध्याय २९ भारतीय बजट अथवा आय-व्ययक ५३५

भारतीय बजट की तैयारी , वित्त मन्त्रालय द्वारा अनुमानो का सूक्ष्म परीक्षण (१) स्थायी प्रभार अथवा स्थायी व्यय ,

(२) प्रचलित योजनायें या कार्यक्रम , (३) नवीन योजनायें अथवा कार्यक्रम ; अनुमानो का पुनर्वर्गीकरण ; स्थायी प्रभार अथवा स्थायी व्यय , प्रचलित योजनायें , नवीन योजनायें , सरकारी आय के अनुमान , व्यवस्थापिका के लिए वजट ।

अध्याय ३० व्यवस्थापिका मे भारतीय वजट ५४३

वित्त पर ससद की शक्ति के सम्वन्ध मे सवैधानिक उपवन्ध , अनुपुरक , अतिरिक्त अथवा अधिक अनुदान , लेखानुदान, प्रत्ययानुदान और अपवादानुदान , राज्य सभा की वित्तीय शक्तिया , सदन मे वजट , वजट का प्रस्तुतीकरण , वजट पर सामान्य वाद-विवाद , मागो पर मतदान , कटौती प्रस्ताव , (१) नीति सम्वन्धी कटौती प्रस्ताव, (२) मितव्ययता कटौती, (३) प्रतीक कटौती, विनियोजन विधेयक , करो पर मतदान , वित्त विधेयक , भारत तथा व्रिटेन की वित्तीय कार्यविधि की तुलना , परिशिष्ट , भारत की सचित निधि, लोक लेखे तथा आकस्मिकता निधि , आकस्मिकता निधि ।

अध्याय ३१ भारत मे वजट की क्रियान्विति (१) ५५५

वित्त मन्त्रालय , विभाग का सगठन , वित्त मन्त्रालय के योग का आलोचनात्मक मूल्याकन ।

अध्याय ३२ भारत मे वजट की क्रियान्विति (२) ५६३

राजकोषीय नियन्त्रण , धन का सग्रह , धन का अभिरक्षा तथा सवितरण , राजकोप , पुनर्विनियोजन , व्रिटेन मे व्यय पर राजकोपीय नियन्त्रण ।

अध्याय ३३ लेखाकन तथा लेखा-परीक्षण ५७०

लेखे , लोक लेखाकन के आवश्यक तत्व , (१) लेखो का केन्द्रीकरण, (२) लेखाकन-पद्धति की प्रकृति, (३) निधियो का वर्गीकरण, (४) वजट सम्वन्धी नियन्त्रण के लेखे , (५) राजस्व लेखाकन, (६) व्यय लेखाकन , लोक-लेखे—इसकी विभिन्न किस्मे (१) लेखो की रोकड प्रणाली तथा नभूत प्रणाली, (२) लागत-मूल्य लेखाकन प्रणाली , भारत मे लेखाकन , भारत मे लेखाकन की कार्यविधि , लेखो तथा लेखा-परीक्षण की पृथकता , निष्कर्ष , लेखा-परीक्षण , लेखा-परीक्षण के प्रकार , पूर्व लेखा-परीक्षण तथा उत्तर-लेखा परीक्षण , लेखा-परीक्षक के कार्य , इगलैंट मे व्यय-नियन्त्रण

भाग ३
वित्तीय प्रशासन
(Financial Administration)

अध्याय २६ वित्तीय प्रशासन की समस्या ४६५

वित्त का महत्व, वित्तीय प्रशासन, वित्तीय प्रशासन के अभिकरण (१) व्यवस्थापिका सभा, (२) कार्यपालिका, (३) राजकोष अथवा वित्त विभाग, (४) लेखा-परीक्षण, (५) संसदीय समितियां, समस्या का सारांश।

अध्याय २७ आय-व्ययक अथवा बजट ५०३

बजट की परिभाषा, प्रस्तावित बजट का स्वरूप, बजट के आर्थिक तथा सामाजिक परिणाम, बजट के महत्वपूर्ण सिद्धान्त, बजट के विभिन्न प्रकार (१) व्यवस्थापिका प्रणाली का बजट, (२) कार्यपालिका प्रणाली का बजट, (३) मण्डल अथवा आयोग प्रणाली का बजट, बजट तथा पद्धति, बजट पद्धति के आवश्यक तत्व, बजट सम्बन्धी कार्यविधियाँ और समस्याये (१) अनुमान तैयार करना, (२) बजट पर व्यवस्थापिका की स्वीकृति।

अध्याय २८ ब्रिटेन तथा संयुक्त राज्य अमेरिका मे वित्तीय प्रशासन ५१२

ब्रिटेन मे वित्तीय प्रशासन, अनुमानो की तैयारी, सदन मे अनुमान अथवा प्राक्कलन, सदन तथा सम्पूर्ण सदन की समिति मे अन्तर, पूर्ति समिति, पूर्ति प्रस्तावो का स्वरूप, पूर्ति समिति की कार्यविधि, उपाय और साधन समिति, ब्रिटिश राजकोष, राजकोष के कार्य, राजकोष का संगठन, अर्थ महामात्य, राजकोष द्वारा प्रदान किये जाने वाले योग की आलोचना, प्लोडेन रिपोर्ट, लेखा-परीक्षण, निष्कर्ष, संयुक्त राज्य अमेरिका मे वित्तीय प्रशासन, अनुमानो अथवा प्राक्कलनो की तैयारी, बजट विभाग या ब्यूरो, बजट अनुमानो की तैयारी, कांग्रेस मे बजट, "Pork Barrel" and "Logrolling", राजस्व के उपाय, बजट का प्रबन्ध, ब्रिटिश तथा अमेरिकन पद्धतियो की तुलना, समानतायें, विभिन्नतायें।

अध्याय २९ भारतीय बजट अथवा आय-व्ययक ५३५

भारतीय बजट की तैयारी, वित्त मन्त्रालय द्वारा अनुमानो का सूक्ष्म परीक्षण (१) स्थायी प्रभार अथवा स्थायी व्यय,

(२) प्रचलित योजनायें या कार्यक्रम , (३) नवीन योजनायें अथवा कार्यक्रम , अनुमानो का पुनर्वर्गीकरण , स्थायी प्रभार अथवा स्थायी व्यय ; प्रचलित योजनायें , नवीन योजनायें , सरकारी आय के अनुमान ; व्यवस्थापिका के लिए वजट ।

अध्याय ३० व्यवस्थापिका मे भारतीय वजट ५४३

वित्त पर ससद की शक्ति के सम्वन्ध मे सवैधानिक उपवन्ध , अनुपुरक , अतिरिक्त अथवा अधिक अनुदान , लेखानुदान, प्रत्ययानुदान और अपवादानुदान , राज्य सभा की वित्तीय शक्तिया , सदन मे वजट , वजट का प्रस्तुतीकरण , वजट पर सामान्य वाद-विवाद , मागो पर मतदान , कटौती प्रस्ताव , (१) नीति सम्वन्धी कटौती प्रस्ताव, (२) मितव्ययता कटौती, (३) प्रतीक कटौती, विनियोजन विधेयक , करो पर मतदान , वित्त विधेयक , भारत तथा ब्रिटेन की वित्तीय कार्यविधि की तुलना , परिशिष्ट , भारत की सचित निधि, लोक लेखे तथा आकस्मिकता निधि , आकस्मिकता निधि ।

अध्याय ३१ भारत मे वजट की क्रियान्विति (१) ५५५

वित्त मन्त्रालय , विभाग का सगठन , वित्त मन्त्रालय के योग का आलोचनात्मक मूल्याकन ।

अध्याय ३२ भारत मे वजट की क्रियान्विति (२) ५६३

राजकोषीय नियन्त्रण , धन का सग्रह , धन का अभिरक्षा तथा सवितरण , राजकोष , पुनर्विनियोजन , ब्रिटेन मे व्यय पर राजकोषीय नियन्त्रण ।

अध्याय ३३ लेखाकन तथा लेखा-परीक्षण ५७०

लेखे , लोक लेखाकन के आवश्यक तत्व ; (१) लेखो का केन्द्रीकरण, (२) लेखाकन-पद्धति की प्रकृति, (३) निधियो का वर्गीकरण, (४) वजट सम्वन्धी नियन्त्रण के लेखे , (५) राजस्व लेखाकन, (६) व्यय लेखाकन , लोक-लेखे—इसकी विभिन्न किस्मे (१) लेखो की रोकड प्रणाली तथा सभूत प्रणाली, (२) लागत-मूल्य लेखाकन प्रणाली , भारत मे लेखाकन , भारत मे लेखाकन की कार्यविधि , लेखो तथा लेखा-परीक्षण की पृथकता , निष्कर्ष , लेखा-परीक्षण , लेखा-परीक्षण के प्रकार , पूर्व लेखा-परीक्षण तथा उत्तर-लेखा परीक्षण , लेखा-परीक्षक के कार्य , इगलैंड मे व्यय-नियन्त्रण

लेखा-परीक्षण , सयुक्त राज्य मे व्यय-नियन्त्रण , लेखा-परीक्षण , भारत का नियन्त्रक व महालेखा परीक्षक , नियुक्ति तथा सेवा की शर्तें , कर्त्तव्य , भारत मे लेखा-परीक्षण विभाग का सगठन , लेखा-परीक्षण के सम्बन्ध मे विवाद ।

अध्याय ३४ संसदीय वित्त समितियां ५८७

सार्वजनिक लेखा समिति , समिति की महत्वपूर्ण सिफारिशें , अनुमान समिति ।

भाग ४

नागरिक तथा प्रशासन

(Citizen and Administration)

अध्याय ३५ प्रशासन पर विधायी नियन्त्रण ५९९

भूमिका , भारत मे प्रशासन पर ससदीय नियन्त्रण , (१) ससदीय प्रश्न, (२) वाद-विवाद तथा पर्यालोचन (३) समितियो के द्वारा ससदीय नियन्त्रण, (४) लेखा-परीक्षण के द्वारा नियन्त्रण की सीमायें , हस्तातरित अथवा अधीनस्थ विधान , (१) अर्थ, (२) हस्तान्तरित विधान की आवश्यकता, (३) हस्तान्तरित विधान मे बचाव अथवा सुरक्षायें , सूक्ष्म परीक्षण समिति की व्यवस्था , भारत मे अधीनस्थ विधान पर समिति ।

अध्याय ३६ प्रशासन पर न्यायिक नियन्त्रण ६१५

भूमिका , क्या कोई नागरिक सरकार पर मुकदमा चला सकता है ? अधिकारियो का वैयक्तिक उत्तरदायित्व, न्यायिक समीक्षा की रीतियां (१) बन्दी प्रत्यक्षीकरण आदेश, (२) उत्प्रेषण आदेश, (३) प्रतिषेध आदेश, (४) अधिकार पृच्छा आदेश, (४) परमादेश , फ्रांसीसी प्रशासकीय अधिकार , निष्कर्ष ।

अध्याय ३७ प्रशासकीय कानून तथा न्यायिक निर्णय ६२४

प्रशासकीय कानून ; प्रशासकीय न्यायिक निर्णय , इस पद्धति के गुण व दोष ।

अध्याय ३८ लोक सम्पर्क ६३१

भूमिका , लोक सम्पर्क स्थापित करने के माध्यम , भारत मे लोक सम्पर्क के यन्त्र : (१) अखिल भारतीय आकाशवाणी,

(२) प्रेस सूचना व्यूरो, (३) विज्ञापन तथा दृाफ्टिक प्रचार का निर्देशालय, (४) प्रशासन सभाग, (५) फिल्म सभाग, बम्बई, (६) फिल्मो के गुण दोष विवेचको का केन्द्रीय मण्डल, (७) अनुसधान तथा अभ्युद्देशय सभाग, (८) भारतीय समाचार पत्रो के रजिस्ट्रार का कार्यालय, (९) पचवर्षीय योजना प्रचार, निष्कर्ष, सरकारी लोक सम्पर्क मे सामान्य विचारणीय बातें, मूलभूत मान्यताये, बाधायें।

परिशिष्ट १ — ६४०

प्रशासनिक क्रिया-प्रणाली पर प्रधान मन्त्री द्वारा १० अगस्त १९६१ को ससद के सम्मुख प्रस्तुत किया गया वक्तव्य।

परिशिष्ट २ — ६४७

(अ) आर्थिक मामलो का विभाग, (१) विनिमय नियन्त्रण, (२) आर्थिक विकास के लिए विदेशी सहायता, (३) आन्तरिक वित्त, (४) आर्थिक परामर्श, (५) बजट, (६) नियोजन, (७) विक्री कर, (८) बीमा, (९) निगम, (१०) स्टाक एक्सचेज, (११) कैपिटल ईश्यूज, (१२) विभिन्न, (ब) व्यय विभाग, (स) राजस्व विभाग।

परिशिष्ट ३ — ६५३

केन्द्रीय अनुमान समिति की वित्तीय वर्ष मे परिवर्तन पर प्रस्तुत की गई २०वी रिपोर्ट के कुछ अश, (अ) वित्तीय वर्ष।

परिशिष्ट ४ — ६५६

कार्य स्तर विषयक बजट निर्माण।

Bibliography — 657

भाग 1

लोक प्रशासन

(PUBLIC ADMINISTRATION)

लोक प्रशासन का अर्थ, प्रकृति तथा क्षेत्र
(Meaning, Nature and Scope of Public Administration)

राज्य की क्रियाओ मे आजकल तेजी के साथ वृद्धि हो रही है। आधुनिक राज्य उन कार्यो को सम्पन्न कर रहे हैं जो कि पहिले निजी सगठनो अथवा व्यक्तियो द्वारा किये जाते थे। अब वे दिन वीत चुके जबकि राज्य का उत्तरदायित्व समाज मे केवल शान्ति व सुरक्षा की स्थापना करना ही था। विज्ञान तथा शिल्पकला की उन्नति के इस युग मे राज्य से सम्बन्धित निषेधात्मक (Negative) विचारधारा का स्थान निश्चयात्मक लोक-कल्याणकारी (Positive welfare) विचारधारा ने ले लिया है। २०वी शताब्दी के प्रारम्भ से ही राज्य द्वारा अनेक महत्वपूर्ण जनोपयोगी कार्य सम्पन्न किये जाते रहे है। वर्तमान समय मे राज्य व्यक्तिगत जीवन के लगभग सभी क्षेत्रो का नियन्त्रण करता है, नियमन करता है अथवा उनमे हस्तक्षेप करता है। राज्य जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त लोगो के जीवन को व्यवस्थित एव नियमित करता है। जीवन का ऐसा कोई—सामाजिक, भौतिक, सास्कृतिक तथा नैतिक—पहलू नही है जो कि राज्य के नियन्त्रण अथवा देख-भाल के अन्तर्गत न आता हो। सरकार के सभी अग हमारे दैनिक जीवन मे व्याप्त हो गये है और इसके नियम तथा कानून जीवन के लगभग सभी क्षेत्रो मे मानवीय कार्यो को प्रभावित करते है।

आजकल राज्य का कर्तव्य केवल यह ही नही है कि वह अपराधियो से लोगो के जीवन को सुरक्षा प्रदान करे, वल्कि यह भी है कि वह उन्हे भूखो मरने से तथा वीमारी से वचाये। राज्य समाज के भौतिक तथा नैतिक विकास के लिये उत्तरदायी होता है।

राज्य की निरन्तर वढती हुई क्रियाओ के साथ ही साथ, लोक-प्रशासन का योग तथा महत्व स्वभावत वढता ही जा रहा है। राज्य की क्रियाओ की सफलता या असफलता उन पदाधिकारियो पर निर्भर होती है जो कि राज्य की नीति को क्रियान्वित करते हैं। एक अच्छी नीति को भी यदि अयोग्यता तथा अकुशलता के साथ क्रियान्वित किया जाये तो उसके अच्छे परिणाम नही निकलते। चूंकि सरकार के कार्यो के क्षेत्र मे अत्यधिक वृद्धि हो गई है अत प्रशासन तथा कुशल प्रवन्धक आदि सभी महत्वपूर्ण हो गये है। यदि राज्य का प्रशासकीय ढाँचा तीव्रता, कुशलता तथा सत्यनिष्ठा के साथ कार्य नही करता है, तो यहाँ तक कि अच्छी से अच्छी योजनाएँ तथा नीतियां भी असफल हो जाती हैं। यह तथ्य सारन ने भी स्वीकार

किया गया है। कांग्रेस के ६५वें अधिवेशन में 'नियोजित विकास के कार्य-क्रमों को लागू करने' के सम्बन्ध में एक प्रस्ताव पास हुआ था। इसमें अन्य बातों के साथ यह भी उल्लेख किया गया था कि—

"हमें यह समझ लेना चाहिये कि ठीक-ठीक नीतियों तथा कार्य-क्रमों को केवल निर्धारित कर देना ही काफी नहीं है, उनकी कसौटी है उन नीतियों व कार्य-क्रमों को क्रियान्वित करना तथा पूर्ण करना। इस कसौटी के द्वारा ही सभी श्रेणियों के पदाधिकारियों के कार्य की पृथक्-पृथक् जांच की जानी चाहिये और इसी के आधार पर उनकी प्रशंसा अथवा आलोचना की जानी चाहिये।"

इस प्रकार आधुनिक समाज में लोक-प्रशासन को अत्यधिक महत्व प्राप्त हो गया है। इसे 'आधुनिक सभ्यता का हृदय' भी कहा जाता है। प्रशासन अनेक सामाजिक विवादों को सुलझाता है तथा समाज में संगठन तथा एकता स्थापित करता है। समाज में शान्ति, एकता तथा स्थिरता बनाये रखने के लिये प्रशासन का होना अत्यन्त आवश्यक है। यदि लोक-प्रशासन की मशीनरी ही छिन्न-भिन्न हो गई, तो व्यवस्था स्वयं आप ही नष्ट हो जायेगी। लोक-प्रशासन सामाजिक ढांचे, सामाजिक संगठन तथा सामाजिक सम्बन्धों को स्थायित्व प्रदान करता है। हमारे दैनिक जीवन में लोक-प्रशासन का इतना महत्व है, तो उसका अध्ययन स्वभावतः ही महत्वपूर्ण हो जाता है।

प्रशासन

(Administration)

प्रोफेसर जॉन ए० वीग *(Prof John A Vieg)* के अनुसार, " कार्यों को व्यवस्थित ढग से क्रमबद्ध करना तथा साधनो का पूर्व निर्धारित रीति से उपयोग करना ही प्रशासन है जिसका उद्देश्य है कि उन्ही कार्यों को होने दिया जाए जिन्हे कि हम सम्पन्न करना चाहते हैं और साथ ही साथ, ऐसी वृद्धियो को रोका जाए जिनका हमारी इच्छाओ के साथ सामजस्य न बैठता हो ।"[1]

नीग्रो *(Nigro)* के शब्दो मे, "किसी उद्देश्य को प्राप्त करने के लिये मनुष्यो तथा सामग्रियो (Materials) का जो सगठन तथा उपयोग किया जाता है उसे प्रशासन कहा जाता है ।"[2]

ह्वाइट *(White)* के मतानुसार, "किसी उद्देश्य तथा लक्ष्य की पूर्ति के लिये बहुत से व्यक्तियो ने निर्देशन (Direction), समन्वय (Coordination) तथा नियन्त्रण (Control) को ही प्रशासन की कला कहा जाता है ।"[3]

फिफनर *(Pfiffner)* ने इसकी परिभाषा इस प्रकार की है, "वाञ्छित उद्देश्यो की पूर्ति के लिये मानवीय तथा भौतिक साधनो का सगठन तथा निर्देशन ही प्रशासन है ।"[4]

हरबर्ट ए० साइमन *(Herbert A Simon)* के अनुसार, "सबसे अधिक व्यापक अर्थ मे, समान लक्ष्यो को प्राप्त करने के लिये वर्गों (Groups) द्वारा साथ मिलकर की जाने वाली क्रियाओ को प्रशासन कहा जा सकता है ।"[5]

लूथर गुलिक *(Luther Gullick)* के शब्दो मे, "प्रशासन का सम्बन्ध कार्यों को सम्पन्न कराने से है, जिसके साथ ही साथ निर्धारित लक्ष्य पूरे हो सके ।"

जब लोग कुछ उद्देश्यो की पूर्ति के लिये एक साथ मिलते है या परस्पर सहयोग करते हैं तो उन क्रियाओ को प्रशासन कहा जाता है जिन्हे कि वे अपने निश्चित लक्ष्य की पूर्ति के लिये सम्पन्न करते है । परन्तु जब किसी सरकारी कार्य को करने के लिये लोग परस्पर मिलते है तो उनकी क्रियाओ का प्रबन्ध तथा निर्देशन किया जाता है, इसीलिये कुछ वाछित लक्ष्यो की प्राप्ति के लिये मनुष्यो तथा सामग्री के उचित सगठन तथा निर्देशन को भी प्रशासन कहा जाता है ।

लोक प्रशासन की परिभाषा
(Definition of Public Administration)

'लोक-प्रशासन क्या है' ? इस प्रश्न का उत्तर देना बड़ा कठिन है । इस विषय के लेखको ने लोक-प्रशासन के अर्थ के बारे मे भिन्न-भिन्न मत व्यक्त किये हैं । एक बात का स्पष्टीकरण प्रारम्भ मे ही कर देना उचित है । प्रशासन की परिभाषा करते समय यह कहा गया था कि जब भी लोग कुछ उद्देश्यो की पूर्ति के

1 *F M Marx*, (Ed) Elememts of Public Administration, p 3
2 *Nigro F A* Public Administration
3 Introduction to the Study of Public Administration, p 4
4 *J M Pfiffner* and *Presthus* Public Administration
5 *Simon, Smithburg* and *Thompson*, Public Administration, p 3

सरकार के बदलते हुए कार्यों को दृष्टिगत रखते हुए भी समझा जा सकता है। इस बात का पता लगाने के लिये कि इसमे कोई मौलिक तत्व पाया भी जाता है या नही यह आवश्यक है कि इसका अध्ययन गहराई के साथ, समय की गतिशीलता के साथ और वास्तविक रूप मे किया जाए।"[1]

लोक प्रशासन के अर्थ के विषय मे लेखको के विचार
(Views of Writers on the Meaning of Public Administration)

अब हम यह देखेंगे कि लोक-प्रशासन के अर्थ के बारे मे विभिन्न लेखको ने क्या-क्या विचार व्यक्त किये है।

विलोबी (*Willoughby*) के कथनानुसार, "अपने व्यापक अर्थ मे, लोक-प्रशासन उस कार्य का प्रतीक है जो कि सरकारी कार्यों के वास्तविक सम्पादन मे सम्बद्ध होता है, चाहे वे कार्य सरकार की किसी भी शाखा मे सम्बन्धित क्यो न हो . . । अपने सकुचित अर्थ मे, यह केवल प्रशासकीय शाखा की कार्यवाहियो की ओर सकेत करता है।"[2]

इस प्रकार, इन लेखक महोदय ने लोक-प्रशासन की दो परिभाषाये दी हैं—एक व्यापक और दूसरी सकुचित। यदि लोक-प्रशासन के व्यापक अर्थ को लिया जाये तो इसमे वह कार्य सम्मिलित किया जाता है जो कि सरकार की तीनो ही शाखाओ—अर्थात् सरकार की व्यवस्थापिका शाखा के प्रशासन, न्याय के प्रशासन और कार्यपालिका के प्रशासन—के कार्यो के वास्तविक सम्पादन मे सम्बद्ध हो। सकुचित अर्थ मे, लोक-प्रशासन सरकार की केवल कार्यपालिका शाखा की क्रियाओ से ही सम्बन्धित होता है। 'लोक-प्रशासन के सिद्धान्त' (Principles of Public Administration) नामक अपनी पुस्तक मे उन्होंने शब्द के केवल सकुचित अर्थ का ही उल्लेख किया है और अपने आपको केवल कार्यपालिका शाखा की प्रशासकीय क्रियाओ अथवा कार्यवाहियो मे ही सम्बन्धित रखा है।

एल० डी० ह्वाइट (*L D White*) का कहना है कि "लोक-प्रशासन मे वे सभी कार्य आ जाते हैं जिनका उद्देश्य सार्वजनिक नीतियो को पूरा करना अथवा क्रियान्वित करना होता है।"[3]

ह्वाइट ने लोक-प्रशासन की परिभाषा व्यापक अर्थ मे की है। उनकी परिभाषा के अनुसार, लोक-प्रशासन की परिधि मे वे सभी कार्य आ जाते हैं जिनका उद्देश्य सार्वजनिक नीतियो को पूरा करना या क्रियान्वित करना अथवा लागू करना होता है। लोक-प्रशासन के अन्तर्गत सरकार के विभिन्न अगो की वे सभी क्रियायें

1 The Essentials of Public Administration, *E N Gladden*, pp 28-29

2 *W F Willoughby* Principles of Public Administration, Indian Edition, p 1

3 Public Administratoin consists of all those operations having for their purpose the fulfilment or enforcement of public policy (Introduction to the Study of Public Administration) —*L D White*

प्रबन्ध, निर्देशन तथा निरीक्षण भी करता है जिससे कि उनके प्रयत्नों में कुछ व्यवस्था तथा कुशलता उत्पन्न की जा सके . . ।"[1]

डिमोक (*Dimock*) के शब्दों में, "प्रशासन का सम्बन्ध सरकार के 'क्या' और 'कैसे' से है। क्या से अभिप्राय विषय में निहित ज्ञान से है, अर्थात् किसी भी प्रशासकीय क्षेत्र में सम्बन्धित वह विशिष्ट ज्ञान जो प्रशासक को अपना कार्य करने की क्षमता प्रदान करता है। 'कैसे' से अभिप्राय प्रबन्ध करने की उस कला एवं सिद्धान्तों से है जिनके अनुसार सामूहिक योजनाओं को सफलता की ओर ले जाया जाता है। इनमें से दोनों अनिवार्य हैं, और वे दोनों ही मिलकर उस समन्वय की रचना करते हैं जिसे प्रशासन की संज्ञा दी गई है . ।"[2]

वाल्डो (*Waldo*) का कहना है कि लोक प्रशासन 'मानवीय सहयोग का एक पहलू' तथा 'विभिन्न वर्गों वाले प्रशासन से सम्बन्धित एक वर्ग' है जो कि 'उच्च कोटि की विचारशक्ति से युक्त एक प्रकार का सामूहिक मानवीय प्रयत्न है।'[3]

मार्क्स (*Marx*) तथा साइमन (*Simon*) का यह मत है कि लोक-प्रशासन का सम्बन्ध सरकार की केवल प्रशासकीय शाखा से ही है।

तथापि, आज जब हम "लोक-प्रशासन शब्द का प्रयोग करते हैं तो हमारा अभिप्राय मुख्यतः संगठन, कर्मचारी-वर्ग के कार्यों तथा कार्य करने की उन रीतियों से होता है जो कि सरकार की कार्यपालिका शाखा को सौंपे गये सिविल अथवा असैनिक कार्यों को प्रभावशाली ढंग से पूरा करने के लिये यह आवश्यक होते हैं। हम इस शब्द का प्रयोग परम्परागत अथवा रिवाजी अर्थ में करेंगे।"[4]

पुनः साइमन (*Simon*) के शब्दों में, "सामान्य प्रयोग में लोक-प्रशासन से अभिप्राय उन क्रियाओं से है जो कि केन्द्र, राज्य अथवा स्थानीय सरकारों द्वारा सम्पादित की जाती है।"[5]

'लोक-प्रशासन क्या है ?' इस प्रश्न से सम्बन्धित सम्पूर्ण वाद-विवाद को संक्षेप में फिर से दोहराते हुए यह कहा जा सकता है कि लोक-प्रशासन का सम्बन्ध सम्पूर्ण रूप से सरकार के सभी कार्यों से होना चाहिये चाहे वे उसकी किसी भी शाखा द्वारा सम्पादित किये गये हों। किन्तु यदि सरकार की सभी शाखाओं की उन

---

1 Public Administration *John, M Pfiffner*, theR onald Press Company, New York, 1946, pp 4-6

2 *Marshall E Dimock*, "The Study of Administration" American Polititical Science Review, XXX, No 1 (February 1937), 31-32.

3 The Administrative State, *Waldo*, Ronald Press, New York 1948 pp 5-6 The Study of Public Administration (Double day short studies in Political Science, Garden City, New York, 1955), Ideas and Issues in Public Administration, McGraw-Hill, New York 1953

4 Elements of Public Administration Ed *F M Marx*, New York, 1946 Prentice Hall, Inc p 6

5 *Simon and Others* Public Administration, p 7

(४) अपना कर्त्तव्य पालन करने के लिए कर्मचारी-वर्ग को प्रदान की जाने वाली सामग्री, पूर्ति, यन्त्र तथा साज-सज्जा।

(५) 'वित्त' (Finance)—यह ऊपर उल्लेख की गई सभी समस्याओ से कठिन विषय है। इस प्रकार लोक प्रशासन का कार्य-क्षेत्र प्रशासन के अन्तर्गत 'मनुष्यो, सामग्रियो तथा उपायो' की समस्याओ का अध्ययन करना है।

लोक-प्रशासन के क्षेत्र के सम्बन्ध मे 'POSDCORB' विचार
('POSDCORB' View of the Scope of Public Administration)

लूथर गुलिक (*Luther Gullick*) ने लोक-प्रशासन की इन उपर्युक्त समस्याओ का वर्णन और भी अधिक आधुनिक रूप मे किया। उन्होने इनका उल्लेख 'पोस्ड कोर्ब' (POSDCORB) शब्द के रूप मे किया। इस शब्द की रचना कुछ अंग्रेजी शब्दो के पहिले अक्षरो को मिलाकर हुई है।
वे शब्द इस प्रकार हैं —

P = Planning (योजनाये बनाना)
O = Organising (सगठन करना)
S = Staffing (कर्मचारियो की व्यवस्था करना)
D = Directing (निर्देशन करना)
Co = Coordinating (समन्वय करना)
R = Reporting (रिपोर्ट देना)
B = Budgeting (बजट तैयार करना)

योजनायें बनाना (Planning)—इससे अभिप्राय यह है कि उन कार्यों की मोटी रूप-रेखा तैयार करना जिनका किया जाना आवश्यक है और साथ ही उन तरीको को भी निश्चित करना जिनके द्वारा उन कार्यों को पूरा किया जाता है।

सगठन करना (Organizing)—अधिकारी-वर्ग के ऐसे स्थायी ढाँचे को तैयार करना जिसके द्वारा निश्चित उद्देश्य के लिए काम के उप-विभागो की व्यवस्था की जाती है, उनको क्रमबद्ध किया जाता है, उनकी परिभाषा की जाती है और उनमे समन्वय स्थापित किया जाता है।

कर्मचारियो की व्यवस्था करना (Staffing)—स्टाफ अर्थात् सम्पूर्ण कर्मचारी-वर्ग की नियुक्ति, प्रशिक्षण (training) और उनके लिये कार्य करने की अनुकूल दशाओ का निर्माण करना।

निर्देशन करना (Directing)—इससे अभिप्राय है कि प्रशासन सम्बन्धी निर्णय करना तथा उन्हीं के अनुरूप कर्मचारियो को विशिष्ट व सामान्य आदेश तथा सूचनाये देना और इस प्रकार कार्य का नेतृत्व करना।

समन्वय करना (Coordinating)—कार्य के विभिन्न भागो को परस्पर सम्बन्धित करना अथवा उनमे समन्वय स्थापित करना।

सभी जटिल एव मिश्रित क्रियाओ का अध्ययन किया जाय जो कि सार्वजनिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए सम्पन्न की जाती है, तो विषय अत्यधिक विस्तृत हो जायेगा, उससे भ्रम उत्पन्न होगा और उसकी एकरूपता समाप्त हो जायेगी। अत इस पुस्तक मे अध्ययन की दृष्टि से लोक-प्रशासन का अर्थ सरकार की केवल कार्यपालिका शाखा के सगठन एव कार्यों से ही लिया जायेगा।

लोक-प्रशासन का क्षेत्र
(The Scope of Public Administration)

लोक-प्रशासन की व्याख्या करते समय दो प्रकार की विचारधारायें हमारे सामने आईं। एक विचारधारा के अनुसार लोक-प्रशासन की परिभाषा व्यापक अर्थ मे की गई और दूसरी के अनुसार सकुचित अर्थ मे। यदि इसके व्यापक अर्थ को लिया जाये तो लोक-प्रशासन के अध्ययन मे सरकार की तीनो ही शाखाओ—व्यवस्थापिका, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका—के क्षेत्र तथा क्रियाये सम्मिलित की जाती हैं। यदि लोक-प्रशासन के इस अर्थ को स्वीकार किया जाये तो इसके अध्ययन की परिधि मे वे सभी मिश्रित क्रियायें सम्मिलित की जायेगी जो कि सार्वजनिक उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए सरकार की सभी शाखाओ द्वारा सम्पादित की जाती हैं। इसमे जहाँ सशस्त्र सेनाओ की प्रशासकीय समस्यायें सम्मिलित होगी वहाँ असैनिक विभागो की प्रशासकीय समस्याओ का अध्ययन भी किया जायेगा। यह स्वाभाविक है कि ऐसा अध्ययन बडा कठिन हो जायेगा और यह हो सकता है कि उससे भ्रम उत्पन्न हो। इसी कारण लोक-प्रशासन की सकुचित परिभाषा स्वीकार की गई और यह कहा गया कि इसके अध्ययन मे मुख्यत सगठन, कर्मचारी वर्ग के कार्यों तथा कार्य करने की उन रीतियो को सम्मिलित किया जाना चाहिये जो सरकार की कार्यपालिका शाखा को सौंपे गये सिविल अथवा असैनिक कार्यों को प्रभावशाली ढग से पूरा करने के लिये आवश्यक हो। लोक-प्रशासन का सम्बन्ध सरकार की केवल कार्यपालिका शाखा से ही होता है और इसमे सगठन, कार्यप्रणाली तथा कार्य-विधि के उन मामलो का अध्ययन किया जाता है जो कि सामान्यत सभी अथवा अधिकाश प्रशासकीय अभिकरणो (agencies) से सम्बन्धित होते हैं। लोक-प्रशासन की समस्याओ को निम्नलिखित पाँच पृथक, किन्तु घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित, वर्गो मे बाटा जा सकता है—

(१) 'सामान्य प्रशासन' (General Administration)—अर्थात् प्रशासन के ऊपर 'निर्देशन, निरीक्षण तथा नियन्त्रण' करने का कार्य किसे सम्पन्न करना है ?

(२) 'सगठन' (Organisation)—प्रशासकीय कार्य को सम्पन्न करने के लिये सेवाओ का सगठन किस प्रकार किया जाना है ?

(३) 'कर्मचारी वर्ग' (Personnel)—विभिन्न सेवाओ तथा क्रियाओ का प्रबन्ध किसके द्वारा होना है ?

(४) अपना कर्त्तव्य पालन करने के लिए कर्मचारी-वर्ग को प्रदान की जाने वाली सामग्री, पूर्ति, यन्त्र तथा साज-सज्जा।

(५) 'वित्त' (Finance)—यह ऊपर उल्लेख की गई सभी समस्याओं मे कठिन विषय है। इस प्रकार लोक प्रशासन का कार्य-क्षेत्र प्रशासन के अन्तर्गत 'मनुष्यों, सामग्रियो तथा उपायों' की समस्याओं का अध्ययन करना है।

लोक-प्रशासन के क्षेत्र के सम्बन्ध मे 'POSDCORB' विचार
('POSDCORB' View of the Scope of Public Administration)

लूथर गुलिक (*Luther Gullick*) ने लोक-प्रशासन की इन उपर्युक्त समस्याओं का वर्णन और भी अधिक आधुनिक रूप मे किया। उन्होंने इनका उल्लेख 'पोस्ट कोर्ब' (POSDCORB) शब्द के रूप मे किया। इस शब्द की रचना कुछ अंग्रेजी शब्दो के पहिले अक्षरो को मिलाकर हुई है।

वे शब्द इस प्रकार है —

P = Planning (योजनायें बनाना)
O = Organising (संगठन करना)
S = Staffing (कर्मचारियों की व्यवस्था करना)
D = Directing (निर्देशन करना)
Co = Coordinating (समन्वय करना)
R = Reporting (रिपोर्ट देना)
B = Budgeting (बजट तैयार करना)

योजनायें बनाना (Planning)—इससे अभिप्राय यह है कि उन कार्यों की मोटी रूप-रेखा तैयार करना जिनका किया जाना आवश्यक है और साथ ही उन तरीकों को भी निश्चित करना जिनके द्वारा उन कार्यों को पूरा किया जाता है।

संगठन करना (Organizing)—अधिकारी-वर्ग के ऐसे स्थायी ढाँचे को तैयार करना जिसके द्वारा निश्चित उद्देश्य के लिए काम के उप-विभागों की व्यवस्था की जाती है, उनको क्रमबद्ध किया जाता है, उनकी परिभाषा की जाती है और उनमे समन्वय स्थापित किया जाता है।

कर्मचारियों की व्यवस्था करना (Staffing)—स्टाफ अर्थात् सम्पूर्ण कर्मचारी-वर्ग की नियुक्ति, प्रशिक्षण (training) और उनके लिये कार्य करने की अनुकूल दशाओं का निर्माण करना।

निर्देशन करना (Directing)—इससे अभिप्राय है कि प्रशासन सम्बन्धी निर्णय करना तथा उन्ही के अनुरूप कर्मचारियों को विशिष्ट व सामान्य आदेश तथा सूचनायें देना और इस प्रकार कार्य का नेतृत्व करना।

समन्वय करना (Coordinating)—कार्य के विभिन्न भागों को परस्पर सम्बन्धित करना अथवा उनमे समन्वय स्थापित करना।

रिपोर्ट करना (Reporting)—इसका अर्थ यह है कि प्रशासकीय कार्यों की प्रगति के सम्बन्ध मे उन लोगो को सूचनाये प्रदान करना जिनके प्रति कार्यपालिका (Executive) उत्तरदायी है। इस प्रकार स्वयं अभिकरण (Agency) तथा उसके अधीनस्थ कर्मचारियो को अभिलेखो (Records), अन्वेषण तथा निरीक्षण मे परिचित रखना।

बजट तैयार करना (Budgeting)—राज्य की आय तथा व्यय का पूरा लेखा तैयार करना। इसके अन्तर्गत वित्तीय योजनाये तैयार करना, हिसाब-किताब रखना तथा प्रशासकीय विभागो को वित्तीय साधनो के द्वारा अपने नियन्त्रण मे रखना आदि बातें सम्मिलित है।[1]

लोक प्रशासन के क्षेत्र से सम्बन्धित 'POSDCORB' विचार की आलोचना (A Criticism of 'POSDCORB' View of the Scope of Public Administration)

लोक-प्रशासन के क्षेत्र के सम्बन्ध मे ल्यूइस मेरियम *(Lewis Meriam)* के विचार—

'लोक सेवा तथा विशिष्ट प्रशिक्षण (Public Service and Special Training) नामक अपने व्याख्यानो मे ल्यूइस मेरियम ने यह तो स्वीकार किया कि पोस्डकोर्ब (POSDCORB) क्रियायें व्यवहारत सभी प्रशासकीय स्थितियो मे पाई जाती है परन्तु उन्होने यह तर्क दिया कि लोक-प्रशासन के POSDCORB विचार मे एक आवश्यक तत्व की उपेक्षा कर दी गई है, और वह तत्व है 'पाठ्य-विषय का ज्ञान' (Knowledge of subject matter)। उन्होने कहा कि "हमे कुछ कार्यों की योजना बनानी होती है, हमे कुछ कार्यों का सगठन करना होता है, हमे कुछ कार्यों का निर्देशन करना होता है।" उन्होने आगे कहा कि "किसी भी अभिकरण (Agency) के प्रभावपूर्ण एव बुद्धिमत्तापूर्ण प्रशासन के लिए उस पाठ्य-विषय (Subject matter) का गहरा ज्ञान प्राप्त करना अनिवार्य होता है जिससे कि वह प्रशासकीय अभिकरण मुख्यत सम्बन्धित होता है।"[2]

"कैंची के दो फलको के समान लोक-प्रशासन दो फलको (Blades) वाला औजार है। उस औजार का एक फलका है POSDCORB के अन्तर्गत आने वाले क्षेत्रो का ज्ञान, और दूसरा फलका है उस पाठ्य-विषय (Subject matter) का ज्ञान जिसमे कि ये तकनीकें लागू की जाती हैं। उस औजार को प्रभावशाली बनाने के लिए यह आवश्यक है कि उसके दोनो ही फलके (Blades) ठीक हो।"[3] इस प्रकार मेरियम (Meriam) ने "सामान्य प्रशासक" जैसी किसी भी चीज के अस्तित्व को अस्वीकार किया क्योकि उनका विश्वास है कि सामान्य प्रशासन का

---

1 *Luther Gullick* "Notes on the theory of Organization in Luther Gullick and L Urwick (Eds) Papers on the Science of Administration" p 13

2 *Lewis Meriam*, Public Service and Special Training (1916), p. 2

3 Ibid, p 267

प्रत्येक मामला अपने निजी पाठ्य-विषय से विशिष्ट रूप से बधा होता है। इस प्रकार POSDCORB पाठ्य-विषय (Subject matter) के महत्व पर जोर नही देता। वस्तुस्थिति यह है कि लोक-प्रशासन के उपयुक्त क्षेत्र मे दोनो ही विचार, अर्थात् 'पोस्ड कोर्ब (POSDCORB) तथा पाठय-विषय, सम्मिलित किये जाने चाहियें। POSDCORB हमे प्रशासन की ऐसी तकनीके (Techniques) प्रदान करता है जो कि सभी प्रकार के प्रशासन मे आमतौर पर पाई जाती है। जब ये तकनीके या विधियाँ प्रशासन के विभिन्न क्षेत्रो मे प्रचलित समस्याओ पर लागू की जाती है तो वह व्यावहारिक प्रशासन (Applied Administration) हो जाता है। अत लोक-प्रशासन के क्षेत्र मे इन दोनो ही विचारो के बीच कोई विरोध नही पाया जाता। 'POSDCORB' विचार तो प्रशासन के सैद्धान्तिक पहलू पर जोर देता है और 'पाठ्य-विषय सम्बन्धी विचार' (Subject Matter View) प्रशासन के व्यावहारिक पहलू पर जोर देता है। अत लोक-प्रशासन मे दोनो का ही अध्ययन किया जाना चाहिये।

लोक-प्रशासन के अन्तर्गत केन्द्र, राज्य तथा स्थानीय—सभी स्तर की सरकारो की एक सामान्य प्रक्रिया के रूप मे प्रशासन का अध्ययन किया जाता है। इसमे सगठन की समस्याओ, सरकार की क्रियाओ तथा सचालन अधिकारियो द्वारा अपनाये जाने वाले तरीको का अध्ययन किया जाता है। इसमे कर्मचारी-वर्ग तथा वित्तीय प्रबन्ध की समस्याओ का भी अध्ययन किया जाता है। प्रजातन्त्रीय देशो मे सार्वजनिक सम्बन्ध तथा लोक-प्रशासन की सार्वजनिक उत्तरदायिता अध्ययन का एक आवश्यक पहलू होता है।

वास्तव मे लोक-प्रशासन की क्रियाओं का क्षेत्र इस बात पर निर्भर करता है कि लोग सरकार से क्या आशा करते हैं। यदि लोग यह आशा करते हैं कि सरकार का सम्बन्ध केवल कानून व व्यवस्था की स्थापना, न्याय के प्रशासन तथा ठेको अथवा समझौतो को लागू करने मे है, तो लोक-प्रशासन की क्रियाओ का क्षेत्र सीमित कहा जायेगा। और दूसरी ओर, यदि लोग सरकार से यह आशा करते है कि वह उनके स्थायी कल्याण मे वृद्धि करेगी, जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त सामाजिक सुरक्षा की गारन्टी देगी और एक अच्छे रहन-सहन के स्तर का आश्वासन देगी, आदि-आदि, तो लोक-प्रशासन की क्रियाओ का क्षेत्र अपेक्षाकृत विस्तृत होगा।

प्रोफेसर ह्वाइट ने इस विचार का इन शब्दो मे समर्थन किया है—

"अपने व्यापक अर्थ मे, प्रशासन के लक्ष्य स्वय राज्य के साध्य है। उदाहरण के लिये, शान्ति और व्यवस्था की स्थापना, न्याय की प्राप्ति, नवयुवको की शिक्षा, बीमारी एव सकट के विरुद्ध सुरक्षा तथा समाज के विभिन्न लडने वाले वर्गों तथा हितो के बीच एकता एव समझौता कायम करना और सक्षेप मे, अच्छे जीवन की प्राप्ति—इन सभी का प्रशासन एव राज्यो के लक्ष्यो से सम्बन्ध है।"[1]

1 Ibid, p 5

लोक-प्रशासन तथा व्यक्तिगत प्रशासन
(Public and Private Administration)

लोक-प्रशासन के अर्थ तथा क्षेत्र के अतिरिक्त, एक अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि क्या लोक-प्रशासन एव व्यक्तिगत प्रशासन मे कोई भेद हैं। कभी-कभी लोक-प्रशासन तथा व्यक्तिगत प्रशासन अथवा सरकारी और गैर-सरकारी प्रशासन के बीच भेद किया जाता है।

जैसा कि साइमन *(Simon)* ने बताया है कि "सामान्य कल्पना यह है कि सरकारी प्रशासन का सगठन 'नौकरशाही' (Bureaucratic) आधार पर होता है किन्तु व्यक्तिगत प्रशासन की रचना का आधार व्यापारिक है, सरकारी प्रशासन का सम्बन्ध राजनीति से होता है जबकि व्यक्तिगत प्रशासन राजनीति से परे होता है, सरकारी प्रशासन की मुख्य विशेषता 'लालफीताशाही' (Rad Tapism) होती हैं किन्तु व्यक्तिगत प्रशासन मे ऐसी बात नही पाई जाती।"[1]

लोक-प्रशासन तथा व्यक्तिगत प्रशासन के बीच समानता के कुछ तत्वो का उल्लेख किया जाता है। लोक-प्रशासन तथा व्यक्तिगत प्रशासन के बीच जो भेद किया जा सकता है वह पूर्ण नही है। बडे पैमाने की प्राइवेट व्यावसायिक सस्थाओ तथा विभिन्न सरकारी क्रियाओ एव सेवाओ की कार्य-पद्धति तथा उनके सगठन के बीच अनेक समानतायें पाई जाती हैं। प्रबन्ध तथा सगठन सम्बन्धी अनेक तकनीकें तथा पद्धतियाँ लोक तथा व्यक्तिगत, दोनो ही प्रकार के प्रशासन मे सामान्य रूप से पाई जाती है। फाइलें रखने, नोट करने तथा आँकडे उपलब्ध करने आदि से सम्बन्धित अनेक निपुणतायें दोनो ही प्रकार के प्रशासन मे पाई जाती है। यही कारण है कि बहुधा अवकाश प्राप्त सरकारी कर्मचारी बडी-बडी व्यवसायिक सस्थाओ मे पुन नियुक्त कर लिये जाते है और कभी-कभी सरकार भी अपनी औद्योगिक सस्थाओ के सचालन के लिए प्राइवेट व्यावसायियो की सेवाये प्राप्त करती है।

लोक-प्रशासन तथा व्यक्तिगत प्रशासन मे भेद
(Difference between Public and Private Administration)

दोनो ही प्रकार के प्रशासन मे ऊपर उल्लेख की गई समानताओ के बावजूद इनमे कई विभिन्नताये भी पाई जाती है। पाल० एच० एपिलबी *(Paul H Appleby)* इस विचार के सबसे ओजस्वी प्रणेता थे कि लोक-प्रशासन तथा व्यक्तिगत प्रशासन मे कई महत्वपूर्ण विशेषताये पाई जाती है।

उनके कथनुसार, "व्यापक अर्थ मे सरकारी कार्य तथा स्थिति के कम से कम तीन ऐसे पूरक पहलू हैं जो कि सरकार तथा अन्य सभी सस्थाओ व क्रियाओ (व व्यक्तिगत प्रशासन) के बीच विभिन्नता प्रकट करते हैं। वे पहलू है क्षेत्र प्रभाव व विचार का विस्तार, जनता के प्रति उत्तरदायित्व, राजनैतिक प्रकृति।"[2]

---

1 Ibid, p 8
2 Big Democracy p 1-10

कोई भी व्यक्तिगत व्यवसाय सरकार के सदृश विस्तृत नही होता। सरकार की क्रियायें जितने विस्तृत क्षेत्र मे फैली होती है, बडे से बडे व्यक्तिगत व्यवसायिक उद्यम की क्रियायें भी उतने क्षेत्र तक नही फैली होती है। कोई भी व्यक्तिगत या गैर-सरकारी व्यवसाय जनता के प्रति उस रूप मे जवाबदेह नही होता जिस प्रकार कि सरकारी विभाग होते हैं। दोनो ही प्रकार के प्रशासन मे पाया जाने वाला यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण भेद है। लोक-प्रशासन को जनता प्रेस (समाचार पत्रो) तथा सार्वजनिक मचो की आलोचनाओ का सामना करना पडता है। जन-आलोचना की सूक्ष्म अन्वेषण करने वाली दृष्टि प्रशासन की ओर घूम जाती है। कोई भी विशिष्ट पग उठाने से पूर्व प्रशासको (Administrators) को इस बात पर सावधानी के साथ विचार करना पडता है कि उस पर जनता की सम्भावित प्रतिक्रिया क्या होगी।

प्रत्येक सरकारी कर्मचारी को 'जनता की आलोचना रूपी बारूद' के बीच रहना तथा कार्य करना पडता है। इसके अतिरिक्त, सरकार को, किसी भी निर्णय पर पहुँचने से पूर्व जनता के परामर्शो, उसकी अभिलाषाओ, इच्छाओ तथा भावनाओ को दृष्टिगत रखना पडता है। सरकार को इस बात का विचार करना पडता है कि किसी भी नीति को अपनाने के क्या राजनैतिक परिणाम होगे।

नीचे लोक-प्रशासन तथा व्यक्तिगत प्रशासन के बीच विभिन्नता की महत्व-पूर्ण बातो का उल्लेख सक्षेप मे किया गया है।

(१) लोक-प्रशासन के अन्तर्गत आने वाली क्रियाओ का क्षेत्र बडे से बडे प्राइवेट व्यवसाय की क्रियाओ के क्षेत्र से काफी बडा होता है।

(२) लोक-प्रशासन अपने आपको समुदाय की अनिवार्य आवश्यकताओ से सम्बन्धित रखता है। समुदाय की मूलभूत तथा महत्वपूर्ण आवश्यकताये लोक-प्रशासन द्वारा सन्तुष्ट की जाती हैं। लोक-प्रशासन का सम्बन्ध लोगो के जीवन तथा सम्पत्ति की सुरक्षा मे होता है जो कि किसी भी सामाजिक व्यवस्था के अस्तित्व के लिये अत्यन्त आवश्यक होते हैं।

(३) लोक-प्रशासन की क्रियाओ का आधार लाभोपार्जन करना नही होता जबकि व्यक्तिगत प्रशासन मे व्यक्तिगत लाभ प्राप्त करना ही प्रेरक शक्ति होता है। लोक-प्रशासन का उद्देश्य समाज की सेवा करना होता है। लोक-प्रशासन की समस्त शक्तियाँ लोगो के जीवन को सुखी और समृद्धिशाली बनाने मे लगाई जाती है। और व्यक्तिगत व्यवसाय अपने लाभो को अधिकतम करने मे ही व्यस्त रहता है। लोक-प्रशासन अनेक ऐसे कार्य तथा सेवाये अपने हाथ मे लेता है जिनसे हो सकता है कि राजकोष को आर्थिक हानि उठानी पडे परन्तु वे सेवाये समाज के जीवन के लिये आवश्यक होती हैं। व्यक्तिगत प्रशासन मे प्रशासक को यदि यह अनुभव हो जाए कि इस योजना अथवा कार्य मे लाभ नही होगा तो वह उसको छोड देगा, यद्यपि कभी-कभी उद्योगपति इस बात को स्वीकार नही करते कि व्यक्तिगत व्यवसाय का पूर्ण

ध्येय व्यक्तिगत लाभ प्राप्त करना है। वे कहते हैं कि वे भी समाज की सेवा की भावना से प्रेरित होते हैं।

(४) लोक-प्रशासन के अन्तर्गत व्यवहार मे कुछ एकरूपता अथवा समानता पाई जाती है। लोक-प्रशासन द्वारा बिना किसी प्रकार का पक्षपातपूर्ण अथवा विशिष्ट व्यवहार किये समाज मे सभी सदस्यो को वस्तुएँ तथा सेवाएँ प्रदान की जाती हैं। व्यक्तिगत प्रशासन मे पक्षपातपूर्ण अथवा विशिष्ट व्यवहार किया जा सकता है।

(५) लोक-प्रशासन का नियन्त्रण तथा नियमन देश के कानूनो के द्वारा किया जाता है। इसके कर्त्तव्य, उत्तरदायित्व, कार्य करने का ढग व इसकी क्रियाओ का क्षेत्र—सभी का निर्धारण देश के कानून से होता है। इसको कानून की सीमाओ के अन्तर्गत रह कर ही कार्य करना पडता है। यही कारण है कि लोक-प्रशासन को अनेक बार लाल फीताशाही (Red Tapism) कार्य की दैनिक परिपाटी तथा देरी आदि का सामना करना पडता है। सरकारी अधिकारी को कोई भी कार्यवाही किये जाने से पूर्व कानून की समस्त औपचारिकताये (Formalities) पूरी करनी पडती हैं। किन्तु एक व्यक्तिगत व्यवसाय अपने कानून तथा नियम स्वय ही बनाता है जो कि व्यक्तिगत सुविधानुसार बदले जा सकते हैं। लोक-प्रशासन मे कोई भी कार्य करने के लिये सरकारी कर्मचारियो को कानूनी अधिकार की आवश्यकता होती है।

(६) दोनो ही प्रकार के प्रशासन मे विभिन्नता की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण बात यह है कि लोक-प्रशासन अपने द्वारा किए जाने वाले प्रत्येक कार्य के लिए जनता के प्रति उत्तरदायी होता है। इसको जनता के सम्मुख अपने सभी कार्यों की न्यायो-चितता सिद्ध करनी पडती है। यह व्यवस्थापिका तथा न्यायपालिका द्वारा नियन्त्रित होता है। जनता के प्रति उत्तरदायी होना—लोक-प्रशासन की अत्यन्त महत्वपूर्ण विशेषताओ मे से एक है। यह एक ऐसा लक्षण है जो कि व्यक्तिगत प्रशासन मे नही पाया जाता। सरकारी अधिकारियो को सदा यह बात ध्यान मे रखनी पडती है कि जनता द्वारा इनके सभी कार्यों के गुण-दोषो की विवेचता की जाती है, उन पर वाद-विवाद किया जाता है, उनकी आलोचना तथा सूक्ष्म जाच की जाती है। जनमत (Public opinion) सबसे बडा प्रतिरोध है जो कि सरकारी अधिकारियो को मनमाने कार्य करने से रोकता है। व्यक्तिगत व्यवसायो मे जनता द्वारा इतनी अधिक सूक्ष्म जाच-पडताल नही की जाती।

(७) लोक-प्रशासन मे सरकारी अधिकारी के अपने नाम का कोई महत्व नहीं होता। वह अपने व्यक्तिगत नाम से कार्य नही करता बल्कि सरकारी सत्ता के एक एजेन्ट के रूप मे तथा उस पद के अधीन कार्य करता है जिस पर कि वह आसीन होता है।

(८) जनता के प्रति सरकारी अधिकारियो का रुख प्राइवेट व्यवसाय के रुख से भिन्न होता है। कोई भी सरकारी अधिकारी तब तक जनता की सेवा नही कर

सकता जब तक कि उसमे 'जन-हित तथा जन-सेवा की भावना' न हो । सरकारी कर्मचारियो को समुदाय की सेवा की भावना से कार्य करना पडता है ।

(९) लोक-प्रशासन मे वित्त (Finance) तथा प्रशासन पृथक-पृथक कार्य करते है । सरकारी अधिकारी जो धन व्यय करते हैं उनका उससे कोई सम्बन्ध नही होता । लोक-प्रशासन मे सरकारी अधिकारियो पर भारी वित्तीय नियन्त्रण रहता है । व्यक्तिगत व्यवसाय मे धन निवेशकर्त्ता (Investor) के पास रहता है और वह उस धन को किस प्रकार व्यय करता है इसके बारे मे वह किसी के भी प्रति उत्तरदायी नही होता । दूसरी ओर, लोक-प्रशासन मे जब सहकारी अधिकारी सार्वजनिक धन को खर्च करते है तो जनता के प्रतिनिधि के रूप मे व्यवस्थापिका (Legislature) उन पर प्रभावशाली नियन्त्रण रखती है ।

(१०) लोक-प्रशासन द्वारा समुदाय को प्रदान की जाने वाली अनेक सेवाये एकाधिकारी (Monopolistic) प्रकृति की होती है।

उपरोक्त वाद-विवाद के निष्कर्ष के रूप मे यह कहा जा सकता है कि लोक-प्रशासन मे एकरूपता, अनामता तथा जनता के प्रति उत्तरदायिता की विशेपताये पाई जाती है । यह कायदे व कानूनो के अन्तर्गत रहकर कार्य करता है और नागरिको को सेवाये प्रदान करते समय उनके बीच भेद-भाव नही कर सकता । लोक-प्रशासन की अपनी कुछ विशिष्ट तकनीकें तथा विशेपताये होती हैं जो कि इसको व्यक्तिगत प्रशासन से पृथक करती है । किन्तु इस सबके बावजूद, लोक-प्रशासन तथा व्यक्तिगत प्रशासन मे अन्तर केवल मात्रा का है, गुण का नही । बडे-बडे व्यवसाय भी सरकार द्वारा बनाये गये कायदे व कानूनो के अन्तर्गत कार्य करते है । व्यक्तिगत व्यवसाय भी देश के कानूनो से इतने स्वतन्त्र नही होते जैसा कि समझा जाता है । लोक-प्रशासन तथा व्यक्ति प्रशासन के अन्तर को अधिक बढा-चढा कर नही बनाना चाहिये । जहाँ तक इस तर्क का सम्बन्ध है कि व्यक्तिगत व्यवसाय के प्रशासन का भेदमूलक लक्षण व्यक्तिगत लाभ प्राप्त करना होता है, यह भी पूर्णत मान्य नही है । व्यक्तिगत व्यवसाय का पूर्ण ध्येय सदा व्यक्तिगत लाभ प्राप्त करना ही नही होता ।

क्या लोक-प्रशासन एक विज्ञान है ?
(Is there a Science of Public Administration ?)

लोक-प्रशासन से सम्बन्धित एक अन्य विवादास्पद समस्या यह है कि क्या इसको विज्ञान का दर्जा दिया जाना चाहिये ? क्या लोक-प्रशासन को विज्ञान कहकर पुकारा जा सकता है ?

'लोक-प्रशासन विज्ञान है या नही' इस प्रकार का उत्तर देने से पहले इस प्रश्न का उत्तर देना आवश्यक है कि विज्ञान से क्या अभिप्राय है ? विज्ञान शब्द का वास्तविक अर्थ है क्रमबद्ध ज्ञान । किन्तु 'विज्ञान' शब्द साधारणत. गणित, रसायन-शास्त्र, भौतिक-शास्त्र जैसे अनेक भौतिक विज्ञानो से जुडा हुआ है । अत जन-साधारण की भाषा मे इसका अर्थ उस ज्ञान से लगाया जाता है जो प्रत्येक दिशा मे सत्य

तथा ठीक प्रमाणित हो। इसके तथ्यो की जाच की जा सकती है। विज्ञान निरीक्षण, प्रयोगो तथा अनुभवो के द्वारा अपने नियम बनाता है और फिर उनके आधार पर भविष्यवाणियाँ की जा सकती हैं। विज्ञान के नियम, जब भी निश्चित दशायें वर्तमान हो, सामान्य रूप से सभी जगह तथा प्रत्येक समय लागू होते हैं। विज्ञान के अध्ययन मे जो रीति अपनाई जाती है वह है—अनुसन्धान (Investigation), परीक्षण (Observation), प्रयोग (Experimentation), सारणीकरण (Tabulation), वर्गीकरण (Classification) तथा सह-सम्बन्ध (Correlation)। इसके बाद इनसे सामान्य निष्कर्ष निकाले जा सकते है। ये सामान्य निष्कर्ष, नियम तथा सिद्धात पूर्णत ठीक होते हैं तथा उनकी जाच की जा सकती है। विज्ञान प्रत्येक दिशा मे सत्य तथा ठीक होता है। इसके तथ्यो को पृथक् किया जा सकता है और फिर भी उनमे सापेक्षिक एकरूपता पाई जाती है। इस प्रकार यथार्थता अथवा पूर्णत ठीक होना, समान रूप से लागू करने के लिये नियमो का वर्तमान होना तथा भविष्यवाणियाँ करना अथवा निष्कर्ष निकालना ही भौतिक विज्ञान के लक्षण हैं।

प्रश्न यह है कि क्या ये लक्षण लोक-प्रशासन मे पाये जाते है? क्या लोक-प्रशासन का ज्ञान ऐसा है जोकि पूर्णत यथार्थ हो अथवा पूर्णत ठीक उतरता हो? क्या इसके कोई ऐसे सिद्धान्त अथवा नियम हैं जो सभी जगह समान रूप से लागू हो सके? क्या इसके तथ्यो की जाच की जा सकती है? क्या इसके द्वारा भविष्यवाणियाँ की जा सकती हैं अथवा निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं?

अब हम इसकी यथार्थता अथवा पूर्णता के प्रश्न पर विचार करते हैं। बात यह है कि किसी भी सामाजिक विज्ञान को यथार्थता अथवा पूर्णता की कसौटी पर नही कसा जा सकता। सामाजिक विज्ञानो को मनुष्यो से व्यवहार करना पडता है। मनुष्यो के व्यवहारो मे भारी विभिन्नतायें पाई जाती हैं और उनके बारे मे भविष्यवाणियां नही की जा सकती। अत किसी भी सामाजिक विज्ञान मे ऐसे यथार्थ अथवा पूर्ण नियम नही होते जिनके आधार पर यह भविष्यवाणियाँ कर सके। यदि यथार्थता अथवा पूर्णता (Exactness) ही विज्ञान का लक्षण होता है तो कोई भी सामाजिक विज्ञान, विज्ञान होने का दावा नही कर सकता। इसी कारण यदि पूर्णता को ही विज्ञान का लक्षण माना जाये तो लोक-प्रशासन भी विज्ञान होने का दावा नही कर सकता।

एक अन्य प्रश्न यह है कि क्या लोक-प्रशासन ने किसी ऐसे नियम का विकास किया है जिसको समान रूप से सभी जगह लागू किया जा सके। क्या लोक-प्रशासन के कोई अपने सिद्धान्त हैं? कुछ ऐसे सिद्धान्तो के निर्माण का एक प्रयत्न किया गया है जिनके आधार पर लोक-प्रशासन के अस्तित्व तथा प्रकृति को प्रतिबन्धित किया जाता है। प्रोफेसर एच० ए० साइमन ने 'Administrative Behaviour' (1947) नामक अपनी पुस्तक मे प्रशासन के अग्रलिखित सिद्धान्तो का उल्लेख किया है —

(१) वर्गो के बीच कार्यों के विशेषीकरण (Specialization) के द्वारा प्रशासकीय कार्य-कुशलता अथवा निपुणता (Administrative Efficiency) बढ जाती है।

(२) किसी एक वर्ग के सदस्यो को सत्ता के निर्धारित पद-सोपान (Hierarchy) मे क्रमबद्ध करके प्रशासकीय निपुणता बढ जाती है।

(३) पद-सोपान मे किसी भी स्तर पर नियन्त्रण के क्षेत्र को कुछ सीमित करके प्रशासकीय निपुणता बढ जाती है।

(४) नियन्त्रण करने की दृष्टि से (क) उद्देश्य, (ख) प्रक्रिया, (ग) सेवा किये जाने वाले व्यक्ति अथवा (घ) स्थान के अनुसार कर्मचारियो के वर्ग बनाकर प्रशासकीय निपुणता बढ जाती है।[1]

परन्तु ये सिद्धान्त प्रत्येक स्थिति मे दृढता के साथ लागू नही किये जा सकते। इसके अतिरिक्त, इनमे अनिश्चितता अथवा सदिग्धता का दोष पाया जाता है। जैसा कि प्रो० एच० ए० साइमन ने तीसरे 'सिद्धान्त' के विषय मे स्वय ही स्वीकार किया है।

"यह माना जाता है कि उन अधीनस्थ कर्मचारियो की सख्या जो किसी भी एक प्रशासक से प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित होते है, यदि सीमित—मान लीजिये छ — करदी जाय तो प्रशासकीय कार्यकुशलता बढ सकती है। यह मत कि 'नियन्त्रण का क्षेत्र' सीमित होना चाहिये, प्रशासन के एक अविवादास्पद तीसरे सिद्धान्त के रूप मे दृढतापूर्वक स्वीकार किया जाता है। नियन्त्रण के क्षेत्र को सीमित करने के बारे मे दिये जाने वाले सामान्य तर्क सर्वविदित है और यहाँ उनको दोहराने की आवश्यकता नही है। एक बात जो सामान्य रूप से स्वीकार नही की जाती वह है प्रशासन से सम्बन्धित एक विपरीत सिद्धान्त, जो कि यद्यपि नियन्त्रण के क्षेत्र के एक सिद्धान्त की तरह प्रचलित नही है किन्तु उसके समर्थन मे भी उतने ही महत्वपूर्ण तर्क दिये जा सकते हैं। यह सिद्धान्त निम्नलिखित है

"कोई भी मामला कार्यरूप मे परिणित होने से पहिले सगठन के जितने स्तरो से गुजरता है उनकी सख्या न्यूनतम रखकर प्रशासकीय निपुणता मे वृद्धि की जाती है।"

"यह सिद्धान्त उन मूलभूत सिद्धान्तो मे से एक है जो कि कार्यविधियो को सरल करने मे प्रशासकीय विश्लेषणो (Administrative analysis) का पथप्रदर्शन करते है। किन्तु अनेक स्थितियो मे इस सिद्धान्त से जो परिणाम निकलते है वह नियन्त्रण के क्षेत्र के सिद्धान्त (Principle of span of control), आदेश की एकता के सिद्धान्त (Principle of unity of command) तथा विशेषीकरण के सिद्धान्त (Principle of specialization) की आवश्यकताओ के प्रत्यक्ष विरुद्ध पडते हैं।[2]

1 H A Simon, p 21
2 H A Simon, p 26

इस प्रकार जहाँ तक कुछ प्रशासकीय स्थितियो के विश्लेषण का सम्बन्ध है, इन सिद्धान्तो का मूल है। किन्तु प्रशासन के ये सिद्धान्त अधिक यथार्थ तथा पूर्णत ठीक नही हैं।

एक विचार यह भी किया जाता है कि लोक-प्रशासन मे कुछ सिद्धान्तो का विकास हुआ है जो कि प्रशासको के व्यावहारिक अनुभव से प्राप्त किये गये हैं और यह है कि लोक-प्रशासन की कुछ समस्याओ पर लोग एक समान रूप मे सोचते हैं जैसे कि आदेश की एकता, नियन्त्रण के क्षेत्र, एक केन्द्रीय क्रय-सत्ता, आन्तरिक निरीक्षणो की व्यवस्था, अर्ध-वैधानिक (quasi-legislative) तथा अर्ध-न्यायिक (quasi-judical) सत्ताओ के लिए बोर्ड सदृश सगठन की समस्याओ आदि के बारे मे। इनको ऐसे प्रामाणिक साधनो तथा नियमो के रूप मे माना जाता है जिनसे प्रबन्ध मे सुविधा होती है।

फिफनर ने ठीक ही कहा है कि "लोक-प्रशासन के विशेषज्ञो ने उन समस्याओ के समाधान के बारे मे पर्याप्त मतैक्य प्राप्त कर लिया है जो कि सम्पन्न की जाने वाली प्रत्येक प्रकार की सेवा अथवा कार्य के विषय मे उत्पन्न होती हैं। यदि समस्याओ के समाधान की रीति के बारे मे विशेषज्ञो मे काफी मात्रा मे मतैक्य का पाया जाना ही विज्ञान का लक्षण है तो लोक-प्रशासन को यह अधिकार है कि वह विज्ञान होने का दावा कर सके।"[1]

किसी भी विषय का अपने आपको विज्ञान कहलाने का दावा इस तथ्य पर निर्भर करता है कि अध्ययन की वैज्ञानिक प्रणाली उस विषय पर लागू होती है या नही? यदि अध्ययन की वैज्ञानिक प्रणाली किसी खास विषय पर लागू होती है तो वह विषय अपने आपको विज्ञान कहलाने का अधिकारी है। अध्ययन की वैज्ञानिक प्रणाली लोक-प्रशासन पर लागू होती है। इससे तथ्यो का अध्ययन किया जा सकता है, विश्लेषण किया जा सकता है, उनमे परस्पर सम्बन्ध तथा समन्वय स्थापित किया जा सकता है और कुछ परिणामो पर पहुँचा जा सकता है। फिर इस अध्ययन के आधार पर कुछ सामान्य निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। चूँकि अध्ययन की वैज्ञानिक प्रणाली प्रशासन पर लागू होती है अत यही सबसे महत्वपूर्ण औचित्य (justification) है जिसके आधार पर लोक-प्रशासन को विज्ञान की सज्ञा दी जा सकती है। लोक-प्रशासन को किसी भी भौतिक विज्ञान के समान नही समझना चाहिए क्योकि इसमे इतनी पूर्णता नहीं पाई जाती जितनी कि भौतिक विज्ञानो—रसायन-शास्त्र, गणित व भौतिकशास्त्र—आदि मे पाई जाती है।

अब यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि लोक-प्रशासन के ऐसे कोई नियम तथा सिद्धान्त नहीं हैं जिन्हे कि दृढता के साथ सभी जगह लागू किया जा सके। प्रशासक को पहले समस्याओ का अध्ययन करना पडता है और फिर अपने अध्ययन तथा व्यावहारिक ज्ञान के आधार पर समस्याओ को सुलझाना होता है। चूंकि प्रशासन

1 Public Administration, John M Pfiffner, p 9.

एक 'समस्याये सुलझाने वाला' (Problem solving) उद्यम है अत इसमे सिद्धान्तो को कठोरता तथा दृढता के साथ लागू नही किया जा सकता। लोक-प्रशासन को तो मुख्यत इस कारण विज्ञान कहा जा सकता है चूंकि अध्ययन की वैज्ञानिक प्रणाली इसमे लागू होती है।

चार्ल्स ए० बीयर्ड (*Charles A Beard*) का यह मत था कि लोक-प्रशासन एक विज्ञान है। उन्होने कहा "यदि विज्ञान से तात्पर्य कार्यों की ऐसी विचार सम्बन्धी योजना से है जिसके कि प्रत्येक कथन का गणितीय मूल्य निकाला जा सकता है और उसके अन्तर्गत आये हुए तथा प्रक्रिया (Process) के बीच मे आने वाले सभी विशिष्ट कथनो को एक भेदकारक समीकरण (Differential equation) के रूप मे ठीक-ठीक व्यक्त किया जा सकता है, तब तो प्रशासन विज्ञान नही है। इस अर्थ मे तो केवल भौतिकशास्त्र को ही विज्ञान कहा जा सकता है ।"

"दूसरी ओर, यदि हम विज्ञान शब्द का प्रयोग उस ठीक अथवा यथार्थ ज्ञान (Exact knowledge) के समूह के लिए, जो कि अनुभव (Experience) तथा निरीक्षण द्वारा प्राप्त किया गया हो, और उन नियमो के समूह के लिये करे जो कि अनुभव से प्रकट हुए हो, जो व्यवहार मे लागू किये जा सकते हो, तथा जिनके बारे मे पूर्व अनुमान किये जा सकते हो, तब हम, यदि चाहे तो, उचित रूप मे तथा सुविधा के लिये, प्रशासन को विज्ञान कह सकते है। प्रशासन इतिहास और राजनीति के समान विज्ञान होने की अपेक्षा अर्थशास्त्र, या मनोविज्ञान अथवा जीवविज्ञान (Biology) के समान अधिक है 'विज्ञान अन्य बातो के साथ-साथ ज्ञान अथवा अध्ययन की एक विशिष्ट शाखा है, विद्या अथवा ज्ञान का एक प्रामाणिक विभाग है।"[1]

अध्ययन की वैज्ञानिक रीतियो (Scientific methods) को लोक-प्रशासन मे लागू करने के बारे मे लिखते हुए *W F Willoughby* ने कहा कि 'कुछ ऐसे मौलिक सिद्धान्त (Fundamental principles) है, जो कि किसी भी विज्ञान पर लागू होने वाले सिद्धान्तो के ही सदृश है, और यदि प्रशासन के उद्देश्य अर्थात् कार्य-कुशलता को प्राप्त करना है तो उन सिद्धान्तो का ध्यान रखा ही जाना चाहिये और केवल वैज्ञानिक रीतियो को दृढता के साथ लागू करके ही उन सिद्धान्तो का निर्धारण किया जा सकता है तथा उनका महत्व समझा जा सकता है।"[2]

कभी-कभी यह प्रश्न पैदा होता है कि क्या लोक-प्रशासन एक कला है? किसी विषय के ज्ञान को विशिष्ट परिस्थिति मे लागू करना ही कला है। इस अर्थ मे लोक-प्रशासन एक कला है। लोक-प्रशासन के ज्ञान को विशिष्ट समस्याओं एव परिस्थितियो मे लागू किया जाता है किन्तु किसी भी परिस्थिति का सामना करने

---

1 Charles A Beard *Philosophy, Science and Art of Public Administration* Address delivered before the Annual Conference of the Governmental Research Association

2 *The Science of Public Administration*, L Urwick, p 15

से पहले प्रशासक (Administrator) को सदा स्वय ही उस पर विचार करना होता है।

लोक-प्रकाशन के अध्ययन के प्रति विभिन्न दृष्टिकोण :

कार्यकुशलता व मितव्ययता की प्राप्ति लोक-प्रशासन का प्रमुख उद्देश्य माना गया है। इस विषय के प्रारम्भिक लेखको ने प्रशामन मे कार्यकुशलता की प्राप्ति के प्रश्न पर ही विशेष बल दिया। वस्तुत लोक-प्रशासन के वे तथाकथित 'सिद्धान्त' जो इसके विकास के प्रारम्भिक अवस्था मे प्रतिपादित किये गये थे, कार्यकुशलता की प्राप्ति के लिए सुझाये गये साधनमात्र थे।[1]

राजनीति व प्रशासन का विभाजन :

उपरोक्त कार्यकुशलता प्रधान दृष्टिकोण तथा अमरीकी सरक्षणता-विरोधी आन्दोलन (Antipatronage movement) को इस विचार से और भी बल मिला कि नीति-निर्माण का कार्य नीति को क्रियान्वित करने के कार्य से भिन्न है प्रथम कार्य जनता द्वारा निर्वाचित व्यवस्थापिका सभाओ का है तथा दूसरा कार्य तकनीकी दक्षता-प्राप्त एव राजनीतिक रूप से 'तटस्थ' (Neutral) प्रशासनिक अधिकारी-वर्ग का है। इस मान्यता पर 'राजनीति' व 'प्रशासन' के बीच एक विभाजन रेखा खीच दी गई कि 'राजनीति' के क्षेत्र मे तो मुख्य प्रश्न यह निर्णय करना है कि "क्या-क्या कार्य करने चाहिएँ ?" जबकि 'प्रशासन' के क्षेत्र मे मुख्य प्रश्न यह है कि "कार्य किस प्रकार किया जाये ?"[2] इस प्रकार 'नीति-निर्धारण' का कार्य 'राजनीति' से सम्बन्धित मान लिया गया और 'नीति-क्रियान्वन' का कार्य 'प्रशासन' से सम्बन्धित।

---

1 For Further details refer to John M Pfiffner and Robert V Presthus, *Public Administration* chapter I, pages 7—21, Paul Meyer, *Administrative Organization,* A Comparative Study of the Organization of Public Administration, Stevens and Sons Ltd, London, 1957, Chapter I, pages 17—25, Dwight Waldo, *The Administrative State,* Chapters 2 and 3, pages 22—61, Morstein Marx (ed) *Elements of Public Administration,* Chapter 2, pages 27—48, Gullick and Urwick (ed) *Papers on the Science of Administration,* Chapters 4 and 5, pages 99—130, Herbert A Simon, *Administrative Behaviour,* A Study of Decision-Making Processes in Administrative Organization, 1957, Chapter 2, pages 20—44

2 For details refer to Woodrow Wilson 'The Study of Administration' *Political Science Quarterly, Vol 2 (June 1887),* pages 197—222 As he observes The field of administration is a field of business It is removed from the hurry and strife of politics, that administration lies outside the proper sphere of politics Administrative questions are not political questions Although politics sets the tasks for administration, it should not be suffered to manipulate its offices,' quoted by Dwight Waldo, *Ideas and Issues In Public Administration,* A Book of Readings, McGraw-Hill Book Co, N Y, 1953, page 65 For further details also refer to, Goodnow Frank, J. *Politics and Administration,* The Macmillan Co, 1900, Paul H Appleby, *Policy and Administration,* Alabama University Press, 1949

प्रशासन व राजनीति के इस भेद की काफी आलोचना हुई है और अब लोक-प्रशासन के विद्यार्थी ने इसको अस्वीकृत कर दिया है। तथ्य इस बात को सिद्ध करते हैं कि प्रशासन का नीति-निर्माण या निर्धारण के कार्य से भी घनिष्ठ सम्बन्ध है और वह इसमे सक्रियभाग लेता है। यह एक पूर्णतया अतार्किक तर्क है कि नीति-निर्धारण का कार्य प्रशासनिक अधिकारी-वर्ग की सहायता या परामर्श के बिना भी सम्पन्न किया जा सकता है। ऐसे किसी भी मत्री की ओर सकेत करना कठिन है जो प्रशासन के लिए नीतियाँ निर्धारित करते समय अपने प्रशासनिक अधिकारियो (Civil servants) के परामर्श या विचारो से प्रभावित न हुआ हो। बहुत से, बल्कि सत्य तो यह है कि अधिकाश, विधेयक मत्रीगण अपने उच्च प्रशासनिक अधिकारियो की प्रेरणा पर ही व्यवस्थापिका सभाओ के सम्मुख प्रस्तुत करते है। इसके अतिरिक्त व्यवस्थापिका सभायें अधिकाश विधेयको को उनकी रूपरेखा मात्र मे ही पारित करती हैं, उनको विस्तृत रूप देने का कार्य प्रशासनिक अधिकारियो के कन्धो पर छोड दिया जाता है। 'हस्तान्तरित विधान' (Delegated Legislation) की सम्पूर्ण धारणा 'राजनीति' व 'प्रशासन' के विभाजन को अर्थहीन व तथ्यहीन सिद्ध कर देती है। तथ्यो व आँकडो के अभाव मे किसी भी सफल नीति का निर्धारण असम्भव है। ये तथ्य तथा आकडे प्रशासनिक अधिकारी ही प्रदान करते है। अनेक कानून केवल इस कारण सशोधित अथवा रद्द कर दिये जाते हैं कि प्रशासनिक अधिकारियो को उन्हे क्रियान्वित करते समय अनेक कठिनाइयो का सामना करना पडता है। कानूनो व नीतियो की व्यावहारिकता अथवा अव्यावहारिकता प्रशासनिक अधिकारियो के परामर्श के आधार पर ही तय की जाती है। प्रत्येक पग पर राजनीति व प्रशासन परस्पर मिश्रित प्रतीत होते हैं, प्रत्येक पग पर प्रशासन राजनीति को प्रभावित करता है। कोई भी ऐसी नीति जो प्रशासनिक अनुभव पर आधारित नही है, भयकर परिणामो को ही जन्म देगी। प्रशासनिक अधिकारीगण अपने व्यापक व दीर्घ अनुभव के कारण प्रत्येक प्रशासनिक समस्या से पूरी तरह परिचित होते हैं और इस ज्ञान के कारण वे नीति-निर्माण के कार्य मे महत्वपूर्ण भाग लेते है। ऐसे प्रशासनिक अधिकारियो के मत व परामर्श की अवहेलना फिर कैसे की जा सकती है? इस प्रकार "तुम अपना रास्ता नापो और मैं अपना" वाले दृष्टिकोण पर आधारित राजनीति व प्रशासन के उप-रोक्त विभाजन को तथ्यो के विपरीत व अव्यावहारिक घोषित कर दिया गया है। इतना ही नही, यह विचार भी कि सरकारी एजेन्सियो के प्रशासन का मूल्याकन कार्य-कुशलता को प्रधानता देकर किया जाना चाहिए, अब विवाद का विषय बन गया है। इस दावे को भी चुनौती दी जा रही है कि प्रशासन के भी अपने कुछ 'सिद्धान्त' है। यह कहा जाने लगा है कि ये तथाकथित सिद्धान्त वास्तव मे कार्य-कुशलता की प्राप्ति के लिए सुझाये गये कुछ मार्ग-प्रदर्शक तत्व (Guides) मात्र हैं और ये केवल कुछ विशिष्ट प्रशासनिक परिस्थितियो का वर्णन व विश्लेषण मात्र करते हैं। इनको सिद्धान्त न कहकर 'प्रशासन की कहावते' (Proverbs of Administration)

कहना अधिक उपयुक्त होगा।[1]

लोक-प्रशासन के अध्ययन के प्रति एक अन्य महत्वपूर्ण दृष्टिकोण 'सरकारी सस्थाओ के प्रशासनिक सगठन के वर्णन' (Description of administrative structure of the government bodies) पर बल देता है। यह दृष्टिकोण प्रशासन की 'पोस्ड कोर्ब' गतिविधियो (POSDCORB techniques) के अध्ययन पर ध्यान केन्द्रित करता है। इसका मुख्य उद्देश्य प्रशासनिक सगठन, कार्मिक-वर्ग प्रशासन (Personnel administration) तथा वित्तीय प्रशासन का अध्ययन करना है।[2] किन्तु इस दृष्टिकोण मे कठिनाई यह है क्या उस वातावरण व सन्दर्भ (Environment) को, जिसमे लोक-प्रशासन कार्य करता है, दृष्टिगत रखे बिना प्रशासनिक सगठन व गतिविधियो का अध्ययन सम्भव व लाभप्रद है ? अध्ययन के इस दृष्टिकोण या रीति मे मानवीय तत्व (Human factor) पर भी ध्यान नही दिया जाता। सगठन प्रधान अध्ययन (Structural study) आवश्यक तो है पर लोक-प्रशासन की जटिल विषय-वस्तु को भली-भाँति समझने के लिए अपूर्ण है।

लोक-प्रशासन के अध्ययन के प्रति एक तीसरा दृष्टिकोण 'वैज्ञानिक प्रबन्ध' (Scientific Management) के आन्दोलन से सम्बन्धित है। इस दृष्टिकोण के समर्थको के अनुसार लोक-प्रशासन की समस्याओ का अध्ययन वैज्ञानिक पद्धतियो और मान्यताओ के अनुकूल होना चाहिए।[3] यह आन्दोलन फ्रेडरिक टेलर (Frederick W Taylor) के शोध-लेखो (Researches) के साथ प्रारम्भ हुआ।[4] टेलर के अनुसार निजी उद्योग के क्षेत्र तथा लोक-प्रशासन के क्षेत्र मे कार्यकुशलता सम्बन्धी समस्याएँ एक-सी ही है। दोनो मे कोई मूलभूत भिन्नता नही है। उसने काम करने के "एक ही सर्वोत्तम तरीके" पर बल दिया। उसने कहा कि हर प्रकार के क्रिया-कलापो के प्रबन्ध के लिए वैज्ञानिक आधार पर सर्वोत्तम मार्ग या सिद्धान्त खोजे

---

1 Refer to Herbert A Simon, 'The Proverbs of Administration', *Public Administration Review* 6 (Winter 1946)

2 For studies of such a kind the most important is L D White's 'Introduction to the Study of Public Administration' wherein he defines Public Administration as "the management of men and materials in the accomplishment of the purposes of the State" To this can also be added 'Luther Gullick' who in *Papers on the Science of Administration* develops Henry Fayol's analysis of the administrative function' Refer to the Papers published by the Institute of Public Administration, N Y, 1937

3 For details refer to Dwight Waldo's *The Administrative State* Chapter 3, 'Scientific Management and Public Administration,' pages 47—61, wherein he says, Scientific management is a system almost as elaborate as Marxism, with its central figures, is schisms, its mutations, its nuances, etc,' page 47

4 Refer to his *The Principles of Scientific Management*, N Y, 1915, and, *Shop Management*, N Y, 1911, both works reprinted in a combined volume *Scientific Management*, N Y, and London, 1947

जा सकते हैं।[1]

लोक-प्रशासन के अध्ययन की नवीनतम रीति 'सामाजिक-मनोवैज्ञानिक' (Socio-psychological) या 'व्यवहारवादी' (Behaviourist) रीति है, तथा इसके प्रमुख समर्थक हरबर्ट ए० साइमन (Herbert A Simon) है। अपनी पुस्तक 'Administrative Behaviour A Study of Decision-Making Procession Administrative Organizaion' में उसने लोक-प्रशासन के अध्ययन की परम्परागत रीति का विरोध किया है। 'सामाजिक मनोवैज्ञानिक' या 'व्यवहारवादी' दृष्टिकोण के समर्थक यह कहते है कि लोक-प्रशासन के अध्ययन मे विशेष बल इस बात पर होना चाहिए कि प्रशासनिक सगठन (Orgainization) मे मानवीय व्यवहार का स्वरूप कैसा होता है तथा विभिन्न प्रकार के सगठन अपनी गतिविधियाँ किस प्रकार सचालित करते है। इस विचारधारा को मानने वालो का तर्क है विभिन्न प्रकार के सगठनो मे मानवीय व्यवहार व आचरण का निष्पक्ष परीक्षण व अध्ययन किया जा सकता है। ऐसे व्यक्तियो का यह भी दावा है कि प्रशासनिक सगठनो की व्यावहारिक गतिविधियो का अध्ययन करके प्रशासन व सगठन के विषय मे कुछ सामान्य निष्कर्ष (Generalized conclusions) निकाले जा सकते हैं। लोक-प्रशासन के 'सिद्धान्तो' की आलोचनात्मक समीक्षा करने के बाद साइमन कहते हैं "प्रत्येक विज्ञान के पास सिद्धान्तो को प्रतिपादित करने से पूर्व कुछ धारणाएँ (Concepts) होनी चाहिएँ।"[2] साइमन के अनुसार 'निर्णय लेना' (Decision-making) लोक-प्रशासन की सर्वाधिक महत्वपूर्ण गतिविधि है। विभिन्न सगठनो मे काम करने वाले व्यक्तियो की भी अन्य व्यक्तियो की तरह अपनी इच्छायें व आकाक्षायें होती है। उनका व्यवहार उनकी मनोवैज्ञानिक दशाओ, प्रेरणाओं तथा सामाजिक परिस्थितियो से प्रभावित होता है। प्रशासनिक विज्ञान का सम्बन्ध मानवीय व्यवहार-विषयक इन्ही तथ्यो के अध्ययन मे होना चाहिए, उसे 'आदर्शों' (Values) के प्रश्न मे नही उलझना चाहिए। सगठन क्या है ? यह पारस्परिक व्यवहार मे सलग्न व्यक्तियो के एक समूह का ही नाम है। इन सब व्यक्तियो का व्यवहार अनेक प्रकार के 'प्रभावो' (Influences) के आधीन होता है। प्रशासन के विद्यार्थियो को इन 'प्रभावो' का अध्ययन करना चाहिए। इसके लिए उसे समाज-शास्त्र व मनोविज्ञान की रीतियो का प्रयोग करना पडेगा। इस प्रकार 'व्यवहारवादी' रीति मे व्यावहारिक घटनाओ के अध्ययन (Empirical case studies), सावधानी से बनाई हुई सीमित धारणाओ, शब्दो की सुस्पष्ट परिभाषा

---

1 As Poul Meyer rightly observes "Taylorism thus becomes the foundation of the whole movement for the improvement of the efficiency of administration which not only deals with problems of an organizational character but also prescribes a certain standard performance for the administrative staff" *Administrative Organization, A Comparative study of the Organization of Public Administration* Stevens & Sons Ltd, London, 1957, page 20

2 *Administrative Behaviour* page 37

तथा सुनिश्चित प्रयोग, मान्यताओ (Assumptions) के पूर्ण विवेचन व उनकी सीमाओ के वर्णन तथा ऐसे निष्कर्ष निकालने पर वल दिया जाता है जिनकी अन्य अनुसन्धानकर्त्ता समीक्षा कर सकें। इस रीति या दृष्टिकोण का स्वरूप सर्वव्यापी है और इसका उद्देश्य कुछ सामान्य निष्कर्षों (Generalizations) की एक ऐसी व्यवस्था का निर्माण करना है जिनकी सहायता से यह समझा व समझाया जा सके कि सगठन व्यावहारिक रूप से किस प्रकार काम करते हैं तथा उनमे काम करने वाले व्यक्ति कैसे आचरण करते हैं।[1]

साराश मे, लोक-प्रशासन जैसे विषय के उचित अध्ययन के लिए उपरोक्त सभी दृष्टिकोण उपयोगी हैं। इस विषय के अध्ययन मे मानवीय तत्व (Human factor) का स्थान सर्वोपरि रहना चाहिए।

लोक-प्रशासन के अध्ययन की 'विधियो' (Methods) के विषय मे कुछ शब्द यहाँ अनुपयुक्त नही होगे इस सम्बन्ध मे बहुत से दृष्टिकोणो व रीतियो का पहले ही वर्णन किया जा चुका है। वैज्ञानिक, सामाजिक-मनोवैज्ञानिक अथवा व्यवहारवादी विधियो का विवेचन किया जा चुका है। लोक-प्रशासन के अध्ययन के लिए विविध प्रकार के साधनो का प्रयोग करते समय 'तथ्यो व आदर्शों' सम्बन्धी विवाद को दृष्टिगत रखना आवश्यक है।

लोक-प्रशासन का 'तुलनात्मक अध्ययन' (Comparative study) इस विषय के अध्ययन तथा शोध-कार्य की एक लोकप्रिय विधि बन गया है। चुने हुए प्रशासनिक निर्णयो के अध्ययन के लिए 'केस विधि' (Case method) की ओर भी काफी ध्यान दिया जा रहा है। प्रशासन मे निर्णय लेने की प्रक्रिया अत्यधिक दुरुह व जटिल वताई जाती है। प्रत्येक निर्णय मे अनेक प्रकार के तत्वो का योगदान रहता है। निर्णय की प्रक्रिया मे अनेक प्रकार के मार्गों मे से किसी एक का चुनाव करना पडता है। सम्वन्धित अधिकारी को निर्णय लेने से पूर्व यह सोचना व निश्चय करना पडता है कि विभिन्न मार्गों मे कौनसा मार्ग चुना जाये और क्यो चुना जाये। ऐसे सभी प्रश्न महत्वपूर्ण होते है और इनसे सम्वन्धित प्रक्रियाओ का अध्ययन करने के लिये 'केस विधि' का प्रयोग किया जाता है। यह आशा की जाती है कि पर्याप्त सख्या मे ऐसे प्रशासनिक मामलो (Cases) का अध्ययन करने के वाद कुछ सामान्य निष्कर्ष निकालना सम्भव हो सकेगा।[2]

---

1 Also refer to R S Parker *New Concepts of Administration*, 'Public Administration', Australia, March 1962, Vol XXI, N I 'Administrative Behaviour' and 'Administrative Science Quarterly' Published by the Graduate School of Business and Public Administration, Cornell University, Ithaca, N Y

2 For details refer to Jitendra Singh "Case Method as a Tool of Building and Testing Hypotheses," *The Indian Journal of Public Administration*, New Delhi, July – September, 1962, Vol VIII No 3, pages 332 -347, For the distinction between case-report, case-history, case-study and case-problem—

किन्तु ऐसे सामान्य निष्कर्ष (Generalizations) बनाने मे एक कठिनाई यह है कि जिस प्रकार के 'केस-अध्ययनो' (Case studies) पर वे आधारित होते है उन पर अध्ययन-कर्त्ता के निजी विचारो व पूर्वाग्रहो (Prejudices), उसकी व्यक्तिगत पसन्दगियो व नापसन्दगियो का प्रभाव रहता है। उसके द्वारा किया गया विश्लेषण एक विशेष प्रकार का झुकाव लिए हुए होता है। ऐसे अध्ययन-कर्त्ता के निष्कर्षो के औचित्य-अनौचित्य की जाच करने वाली कसौटी का अभाव है।[1]

इस प्रकार विभिन्न प्रकार की विधियो व साधनो का प्रयोग लोक-प्रशासन के अध्ययन के लिये किया जाता है। विश्लेषण की जिन विधियो का विकास अन्य सामाजिक विज्ञानो ने किया है, उनका भी लोक-प्रशासन के अध्ययन के लिए लाभप्रद प्रयोग किया जा सकता है।[2]

निष्कर्ष
(Conclusion)

लोक-प्रशासन का अर्थ, क्षेत्र तथा इसकी प्रकृति का अध्ययन करने के पश्चात् इसका महत्व स्वत ही स्पष्ट हो जाता है। लोक-प्रशासन को 'आधुनिक सभ्यता का हृदय' कहा जाता है। राज्य (State) की क्रियाओ एव कार्यों मे वृद्धि होने के साथ ही साथ, लोक-प्रशासन के कार्यो तथा उत्तरदायित्वो मे स्वभावत वृद्धि होती जा रही है। चार्ल्स ए० बीयर्ड *(Charles A Beard)* के शब्दो मे, प्रशासन के विषय से अधिक महत्वपूर्ण कोई दूसरा विषय नही है। सभ्य सरकार का भविष्य, और, मेरी सम्मति मे, सभ्यता का भविष्य हमारी इस योग्यता के ऊपर आधारित है कि हम प्रशासन के सम्बन्ध मे एक ऐसे विज्ञान, दर्शन (Philosophy) एव व्यवहार को विकसित करें जो सभ्य समाज के कर्त्तव्यो को पूरा करने की क्षमता रखता हो।"[3]

विज्ञान तथा शिल्पकला सम्बन्धी विकासो के कारण समाज की समस्यायें अत्यधिक विषम होती जा रही है। ऐसी परिस्थिति मे प्रशासको को महान् शारीरिक व मानसिक गुणो से युक्त होकर अपने पेचीदे कार्यों को पूरा करने की जरूरत है। लोक-प्रशासको पर ऐसे सबसे अधिक कठिन एव नाजुक कार्यों को सम्पन्न करने का उत्तरदायित्व है जिन पर कि मानव का अस्तित्व (Existence) ही निर्भर होगा अत

refer to Harold Stein, (ed) *Public Administration and Policy Development A Case Book*, N Y, Harcourt, Brace and Company, 1952, also Henry Reining, "Case-Method and Public Personnel Administration," *Public Personnel Review*, XII, July 1951, pages 151—158

1 For Case Studies refer to F M G Willson, *Administrators in Action*, George Allen and Unwin Ltd, 1961

2 For this refer to *Political Science, A Philosophical Analysis*, Vernon Van Dyke, Stevens & Sons Ltd London, 1960

3 Charles A Beard, "*The Role of Administration in Government*" in the work unit in Federal Administration (Chicago, 1937), p 3, his other book *Public Policy and General Welfare* (New York, 1941), pp 149, 158—160, also deals with the—subject in an interesting way

उनको तो असाधारण विशिष्टताओ एव गुणो से युक्त होना चाहिए। इसी कारण वुडरो विल्सन *(Woodrow Wilson)* को यह कहना पडा

" प्रशासन को एक ऐसा विज्ञान होना चाहिए जोकि सरकार के मार्ग को दृढ बनाने का प्रयत्न करे, अपने सगठन को मजबूत तथा शुद्ध बनाए और अपने कार्यों को कर्त्तव्य पालन की भावना के साथ सर्वोपरि रखे।" पॉल पीगर्स *(Paul Pigors)* के अनुसार, "लोक-प्रशासन कम से कम प्रयत्न और जोखिम के साथ प्रचलित व्यवस्था को जारी रखने की गारन्टी करता है। इसका मूलभूत उद्देश्य व्यवस्था के अन्तर्गत अपरीक्षित एव नवीन मार्गों की खोज करना नही बल्कि उसका प्रबन्ध करना व उसको कायम रखना है। अत प्रशासक समाज मे स्थिरता लाने वाले यन्त्र तथा परम्पराओ (Traditions) के सरक्षक है।"[1] प्रशासन अनेक सामाजिक विवादो को सुलझाता है तथा समाज मे एकता, मेल व शान्ति स्थापित करता है।

———

1 Paul Pigors *Leadership or Domination*, p.264.

२

मुख्य निष्पादक अथवा मुख्य कार्यपालिका महाप्रबन्धक के रूप मे

(The Chief Executive as General Manager)

प्रत्येक देश मे मुख्य कार्यपालिका ही प्रशासन की प्रधान होती है। लोक-प्रशासन के अमेरिकन लेखको ने मुख्य निष्पादक अथवा मुख्य कार्यपालिका (Chief executive) को महाप्रबन्धक (General manager) की सज्ञा दी है। आमतौर पर सयुक्त प्रकृति (Corporate character) के एक सुसगठित निजी उद्यम के प्रधान (Head) को महाप्रबन्धक (General manager) के नाम से पुकारा जाता है और महाप्रबन्धक के रूप मे वह उस उद्यम अथवा व्यवसाय का पर्यवेक्षण (Supervision) निर्देशन (Direction) तथा नियन्त्रण (Control) करता है। इसी प्रकार मुख्य निष्पादक अथवा मुख्य कार्यपालिका राज्य की प्रशासकीय मशीनरी का प्रधान होता है। किसी निजी उद्यम के महाप्रबन्धक के समान, वह राज्य की प्रशासकीय मशीनरी का निर्देशन, पर्यवेक्षण तथा नियन्त्रण करता है। प्रशासकीय प्रबन्ध मे नीति का विकास करने मे मुख्य कार्यपालिका को सर्वोच्च स्थान प्राप्त होता है। लोक-प्रशासन मे मुख्य निष्पादक अथवा मुख्य कार्यपालिका की स्थिति केन्द्रीय होती है। चूंकि वही प्रशासन का प्रधान होता है अत. उसे ही राज्य की सम्पूर्ण प्रशासकीय मशीनरी का निर्देशन, पर्यवेक्षण तथा नियन्त्रण करना होता है। उसे ही प्रशासकीय प्रबन्ध व्यवस्था मे नेतृत्व करना होता है।

मुख्य निष्पादक अथवा मुख्य कार्यपालिका (Chief executive) के प्रशासकीय कार्यो पर विचार-विमर्श करने से पूर्व यह अत्यन्त आवश्यक है कि दोनो ही प्रकार की मुख्य कार्यपालिकाओ, जोकि विभिन्न देशो मे पाई जाती हैं, के भेद को समझ लिया जाय अर्थात् ससदीय मुख्य कार्यपालिका (Parliamentary type chief executive) और अध्यक्षात्मक मुख्य कार्यपालिका (Presidential type chief executive) इगलैंड और भारत ससदीय किस्म की मुख्य कार्यपालिका के महत्वपूर्ण उदाहरण है और सयुक्त राज्य अमेरिका अध्यक्षात्मक किस्म की मुख्य कार्यपालिका का एक विशिष्ट उदाहरण है। ससदीय किस्म की कार्यपालिक मे औपचारिक अथवा नाम मात्र की मुख्य कार्यपालिका (Titular chief executive) तथा वास्तविक मुख्य

कार्यपालिका (Real Chief Executive) के बीच भी भेद किया जाता है। औपचारिक अथवा नाम मात्र की मुख्य कार्यपालिका वह होती है जिसे वास्तविक प्रशासकीय शक्तियाँ प्राप्त नही होती । इस प्रकार की मुख्य कार्यपालिका अथवा मुख्य' निष्पादक (Chief executive) के उदाहरण हैं—ब्रिटेन का राजा तथा भारत के राष्ट्रपति (Indian president) । ब्रिटेन का राजा अथवा रानी तथा भारतीय राष्ट्रपति यद्यपि राज्य के प्रधान होते हैं किन्तु इन देशो मे वास्तविक कार्यपालिक शक्तियाँ मन्त्री परिषद् (Cabinet) मे निहित होती हैं जिसे कि वास्तविक मुख्य कार्यपालिका (Real chief executive) के नाम से पुकारा जाता है । ससदीय प्रणाली मे सरकार की सभी प्रशासकीय शक्तियाँ मन्त्री परिषद् मे निहित होती है, जोकि अपने सब कार्यो के लिये राज्य की व्यवस्थापिका (Legislature) के प्रति उत्तरदायी होती है। ससदीय पद्धति मे मन्त्री परिषद् (Cabinet) ससद (Parliament) के प्रति उत्तरदायी होती है और वह केवल तभी तक कार्य कर सकती है जब तक कि इसे ससद का विश्वास प्राप्त रहे । मन्त्री परिषद् द्वारा जो कार्य सम्पन्न किये जाते हैं, हैल्डेने कमेटी (Haldane Committee) ने उनका निम्न प्रकार वर्णन किया है—

"(१) ससद के सन्मुख प्रस्तुत की जाने वाली नीति का अन्तिम रूप से निर्धारण ।

(२) ससद द्वारा निर्धारित नीति के अनुसार राष्ट्रीय कार्यपालिका (National executive) का सर्वोच्च नियन्त्रण, और

(३) राज्य के विभिन्न विभागो के कार्यो की सीमाओ का निर्धारण तथा उनमे समन्वय की स्थापना ।"[1]

ससदीय प्रणाली मे मन्त्री परिषद् का बने रहना व्यवस्थापिका के बहुमत के विश्वास पर निर्भर होता है ।

कार्यपालिका की अध्यक्षात्मक पद्धति (Presidential system) सयुक्त राज्य अमेरिका मे पाई जाती है । इस पद्धति मे औपचारिक अथवा नाम मात्र की मुख्य कार्यपालिका (Titular Chief Executive) तथा वास्तविक मुख्य कार्यपालिका (Real chief executive) मे कोई अन्तर नही होता । अध्यक्षात्मक पद्धति मे केवल एक कार्यपालिका (Singular executive) होती है जो कि एक निश्चित अवधि के लिए चुनी जाती है तथा जो व्यवस्थापिका (Legislature) के प्रति उत्तरदायी नही होती । इसमे एक व्यक्ति ही शासन का वास्तविक प्रमुख होता है और उसका कार्य-काल निश्चित होता है । मुख्य कार्यपालिका की ससदीय तथा अध्यक्षात्मक पद्धतियो के भेद पर प्रकाश डालते हुए प्रो० लास्की *(Prof Laski)* ने कहा कि

1 Report of the Machinery of Government Committee, 1918 p. 6

"दोनो पद्धतियो के बीच भेद का सार यह है कि हमारे यहाँ इगलैंड मे तो व्यवस्थापिका का कार्यपालिका से पृथक कोई हित (Interest) नही होता किन्तु सयुक्त राज्य अमेरिका मे उनके पृथक होने के कारण व्यवस्थापिका का हित पृथक ही होता है। अत हमारे यहाँ लोक सदन (House of commons) का अपने निर्देशक मण्डल (Board of pirectors) मे विश्वास होना चाहिये अन्यथा या तो निर्देशक मण्डल ही नया होगा अथवा ससद (Parliament) ही नई बनेगी। किन्तु अमेरिका में • • राष्ट्रपति अर्थात् President किसी भी सदन (House) पर प्रत्यक्ष रूप से नियन्त्रण नही कर सकता। उसे उसको भग करने का अधिकार नही होता। वह व्यवस्थापिका को प्रेरित कर सकता है, धमकी दे सकता है और प्रलोभन दिखा सकता है। पर अमेरिकी व्यवस्थापिका का जीवन राष्ट्रपति की इच्छा के प्रतिकूल भी स्वतन्त्र रूप से जारी रहता है और दूसरी ओर काग्रेस (Congress) भी राष्ट्रपति को किसी कार्य के लिये मजबूर नही कर सकती • ।"[1]

उपरोक्त दोनो प्रकार की कार्यपालिकाओ के अतिरिक्त स्विठ्जरलैण्ड तथा सोवियत रूस मे अन्य प्रकार की कार्य-पालिकायें पाई जाती हैं। स्विटजरलैण्ड की बहुल कार्यपालिका (Collegial or plural type of executive) मे सात सदस्य होते हैं जो कि स्थिति अथवा पद मे पूर्णत बराबर होते है। उनमे कोई भी एक दूसरे से श्रेष्ठ नही होता। सोवियत रूस मे, सिद्धान्त रूप मे तो इगलैण्ड तथा भारतवर्ष के नमूने की एक ससदीय व्यवस्था तथा एक मन्त्री-परिषद (Cabinet) पाई जाती है। परन्तु वस्तुत सोवियत राजनैतिक व्यवस्था मे न तो मन्त्री परिषद् का ही कोई महत्व है और न ससद (Parliament) का ही। असल मे तो कम्युनिस्ट पार्टी की तानाशाही के अन्तर्गत वहाँ एकदलीय तथा सामन्तशाही व्यवस्था वर्तमान है।

मुख्य कार्यपालिका के प्रशासकीय कर्त्तव्य
(Administrative Functions of the Chief Executive)

प्रशासन के प्रमुख के रूप मे, मुख्य कार्यपालिका प्रशासन सम्बन्धी किन-किन कार्यो को सम्पन्न करती है ? अपने प्रशासकीय सगठनो के प्रधानो (Heads) के रूप मे मुख्य कार्यपालिकाओ के प्रबन्ध सम्बन्धी क्या-क्या मुख्य कर्तव्य होते है ? इस प्रश्न का उत्तर लूथर गुलिक (*Luther Gullick*) ने दिया है

"मुख्य कार्यपालिका" का क्या कार्य है ? वह क्या कार्य करती है ? उत्तर है पोस्डकोर्ब (POSDCORB)।

पोस्डकोर्ब (POSDCORB) शब्द अग्रेजी के कुछ अक्षरो को मिलाकर बनाया गया है जिनका उद्देश्य मुख्य कार्यपालिका के कार्य के विभिन्न कर्तव्यमूलक तत्वो की ओर ध्यान आकर्षित करना है और वह इसलिए चूँकि "प्रशासन"

1 Laski *op cit*, pages, 222-23

(Administration) तथा "प्रबन्ध" (Management) शब्दो मे अब कोई विशिष्ट सार नही रहा। पोस्डकोर्ब (POSDCORB) शब्द की रचना कुछ अंग्रेजी शब्दो के प्रथम अक्षरो को मिलाकर की गई है।

"योजनाए बनाना" (Planning)—इससे अभिप्राय है कि उन कार्यों की मोटी रूपरेखा तैयार करना जिनका किया जाना आवश्यक है और साथ ही उन तरीको को भी निश्चित करना जिनके द्वारा उन कार्यों को पूरा किया जाता है।

सगठन करना (Organising)—अर्थात् अधिकारी-वर्ग के ऐसे स्थायी ढाँचे को तैयार करना जिसके द्वारा निश्चित उद्देश्य के लिये काम के उप-विभागो (Subdivisions) की व्यवस्था की जाती है, उनको क्रमबद्ध किया जाता है, उनकी व्याख्या की जाती है और उनमे समन्वय (Coordination) स्थापित किया जाता है।

कर्मचारियो की व्यवस्था करना (Staffing)—स्टाफ अर्थात् सम्पूर्ण कर्मचारी-वर्ग की नियुक्ति, प्रशिक्षण (Training) तथा उनके लिए कार्य करने की अनुकूल दशाओ का निर्माण करना।

निर्देशन करना (Directive)—इससे अभिप्राय है कि प्रशासन सम्बन्धी निर्णयो को करना तथा उन्ही के अनुरूप कर्मचारियो को विशिष्ट व सामान्य आदेश तथा सूचनाये देना और इस प्रकार कार्य का नेतृत्व करना।

समन्वय करना (Coordinating)—अर्थात् कार्य के विभिन्न भागो को परस्पर सम्बन्धित करना और उनमे समन्वय स्थापित करना।

रिपोर्ट देना (Reporting)—इसका अर्थ है कि प्रशासकीय कार्यों की प्रगति के सम्बन्ध मे उन लोगो को सूचनायें प्रदान करना जिनके प्रति कार्यपालिका (Executive) उत्तरदायी है। इस प्रकार स्वय को तथा अपने अधीनस्थ कर्मचारियो को अभिलेखो (Records), अन्वेषण तथा निरीक्षण से परिचित रखना।

बजट तैयार करना (Budgeting)—राज्य की आय तथा व्यय का पूरा लेखा तैयार करना। इसके अन्तर्गत वित्तीय योजनाये तैयार करना, हिसाब-किताब रखना तथा प्रशासकीय विभागो को वित्तीय साधनो के द्वारा अपने नियन्त्रण में रखना आदि बातें सम्मिलित हैं।"[1]

मुख्य कार्यपालिका (Chief executive) के प्रशासन से सम्बन्धित कर्तव्यो के पोस्डकोर्ब (POSDCORB) वर्णन के प्रकाश मे अब हम इस बात पर विस्तार से विचार करेंगे कि उसके (मुख्य कार्यपालिका के) वास्तविक कार्य क्या है?

(१) प्रशासकीय नीति का निर्धारण करना (Formulation of the Administrative Policy)—मुख्य कार्यपालिका के कार्यों की पोस्डकोर्ब (POSDCORB) व्याख्या के अनुसार, उसका सबसे पहला कार्य प्रशासकीय नीति की मुख्य रूप रेखाएं निर्धारित करना है। पदाधिकारी अनेक महत्वपूर्ण मामलो के

1 Luther Gulick, "Notes on the Theory of Organisation," in Luther Gulick and L. Urwick (Eds) *Papers on the Science of Administration*, p 13

सम्बन्ध मे मुख्य कार्यपालिका से विचार-विमर्श करते हैं तथा उसका परामर्श लेते है। मुख्य कार्यपालिका किसी भी सम्बन्धित पदाधिकारी के किसी विशिष्ट कार्य को अनुमोदित अथवा अस्वीकृत कर सकती है। मुख्य कार्यपालिका महत्वपूर्ण प्रशासकीय मामलो पर विभागीय अधिकारियो को परामर्श देकर प्रशासन की नीति का मार्ग-दर्शन तथा नियन्त्रण करती है। अनेक बार ऐसा होता है कि व्यवस्थापिका (Legislature) विस्तृत प्रश्नो के सम्बन्ध मे कोई निर्णय नही करती। वह तो केवल कानून के सामान्य सिद्धान्त निर्धारित कर देती है। जब कभी भी ऐसा कोई कानून लागू किया जाता है तो मुख्य कार्यपालिका ही महत्वपूर्ण नीति-सम्बन्धी मामलो का निर्णय करती है और वही व्यवस्थापिका द्वारा उस कानून मे छोडे गये विस्तृत अभावो की पूर्ति करती है। कानून को लागू करने की अवधि के बीच, कार्यपालिका अनेक बार अधिकारियो को यह सलाह देती है कि उन्हे कौन सा काम करना चाहिये और कौन-सा नही। इस प्रकार मुख्य कार्यपालिका प्रशासकीय नीति की मुख्य रूप-रेखायें निर्धारित करती है तथा उसके क्रियान्वित अथवा निष्पादन (Fxecution) पर प्रभाव डालती है।

(२) सगठन के विस्तृत रूप का निश्चय करना (Laying down the detail of the organization)—अनेक कानूनो को लागू करने के लिये व्यवस्थापिकाओ (Legislatures) को प्राय विभागो (Departments), ब्यूरो (Bureaus) आयोगो (Commissions), कार्यालयो (Offices) तथा निगमो (Corporations) की स्थापना करनी पडती है। इन इकाइयो (Units) की आन्तरिक सगठन से सम्बन्धित विस्तृत बातो की पूर्ति मुख्य कार्यपालिका (Chief executive) द्वारा ही की जाती है। वही सगठनो की विशद रूपरेखायें निर्धारित करती है जिनके द्वारा कि नीति के लक्ष्य पूरे किये जाते हैं। प्राय ऐसा होता है कि मुख्य कार्यपालिका को विभागो अथवा निगमो आदि के आन्तरिक सगठन मे सुधार, परिवर्तन एव हेर-फेर करने पडते हैं। अनेक बार, प्रशासन को सकटो का सामना करना पडता है और ऐसी परिस्थितियो मे यह हो सकता है कि मुख्य कार्यपालिका द्वारा नये अभिकरणो (Agencies) की स्थापना की जाये अथवा पहले से ही स्थापित अभिकरणो का पुनर्सगठन किया जाये। इस प्रकार मुख्य कार्यपालिका के सगठनो के विस्तृत रूपो का निर्धारण करती है जिनके द्वारा कि प्रशासन कार्य करता है

(३) कर्मचारियों की नियुक्ति तथा उन्हें पदच्युत करने का अधिकार (Authority to appoint and remove the personnel)—सभी देशो मे राज्य के उच्च पदाधिकारियो की नियुक्ति करने का अधिकार मुख्य कार्यपालिका को प्राप्त होता है। भारत मे सभी महत्वपूर्ण पदो की नियुक्तियाँ राष्ट्रपति (President) के द्वारा की जाती हैं। उदाहरण के लिए, राज्यो के राज्यपालो (Governors), राजदूतो (Ambassadors), उच्चतम न्यायालय (Supreme Court) तथा राज्यो के उच्च न्यायालयो (State High Courts) के मुख्य न्यायाधीशो एव न्यायाधीश

(Judges), सघीय लोकसेवा आयोग (Union Public Service Commission) के अध्यक्ष एव सदस्यो की नियुक्तियाँ। मुख्य कार्यपालिका जिन पदाधिकारियो की नियुक्ति करती है उनको पदच्युत करने का भी अधिकार प्राप्त होता है। भारत के सविधान (Constitution) मे उल्लिखित शर्तों के अन्तर्गत, उन उच्च पदाधिकारियो को पदच्युत करने का अधिकार मुख्य कार्यपालिका को प्राप्त होता है जिन्हे कि वह नियुक्त करती है।

निम्न श्रेणी के प्रशासको अथवा कर्मचारियो की भर्ती लोक-सेवा आयोग द्वारा की जाती है। मुख्य कार्यपालिका के प्रभाव क्षेत्र से बाहर के कर्मचारियो का चुनाव प्रतियोगिता परीक्षा (Competitive Examination) के द्वारा किया जाता है।

(४) **निर्देश एव आदेश जारी करने का अधिकार** (Authority of issue Directions and Commands)—किसी सगठन मे काम करने की प्रेरणा निर्देशो एव आदेशो से प्राप्त की जाती है। मुख्य कार्यपालिका का यह कर्त्तव्य है कि वह यह देखे कि कानून समुचित रीति मे क्रियान्वित किये जा रहे हैं या नही, और सरकार का प्रत्येक अभिकरण (Agency) एव विभाग (Department) ठीक प्रकार से कार्य कर रहा है या नही। वही विभिन्न विभागीय अध्यक्षो (Departmental heads) को विशिष्ट एव सामान्य निर्देश जारी करती है जिससे कि प्रशासन का कार्य उचित रूप मे चलता रहे। निर्देश एव आदेश जारी करके वह प्रशासन का नेतृत्व करती है। जब हस्तक्षेप करना आवश्यक हो जाता है तो उसे हस्तक्षेप भी करना पडता है। जब उसके पथ-प्रदर्शन की माँग होती है तो उसे पथ-प्रदर्शन करना पडता है। ये निर्देश (Directions) अधिशासी आज्ञाओ (Executive orders), घोषणाओ, पत्रो एव परिपत्रो (Circulars) आदि का रूप ले लेते हैं। इन्ही आज्ञाओ, निर्देशो तथा सूचनाओ के द्वारा मुख्य कार्यपालिका देश की प्रशासकीय मशीनरी पर प्रभावपूर्ण रीति से अपना प्रभुत्व एव नियन्त्रण स्थापित करती है।

(५) **प्रशासकीय सगठन के सम्पूर्ण कार्यों मे समन्वय स्थापित करना** (Coordination of the whole administrative organisation)—प्रशासनिक सगठनो के कार्यों मे समन्वय स्थापित करना—मुख्य कार्यपालिका का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य है। प्रशासन को एक एकीकृत सगठन के रूप मे ही अपना कार्य करना चाहिए। सैकडो अधिकारी, सगठन तथा कार्यालय प्रशासन के कार्य मे व्यस्त रहते है। उनकी क्रियाओ मे उचित रूप मे इसलिये समन्वय किया जाता है कि जिससे उनमे परस्पर किसी भी प्रकार का टकराव एव दोहराव उत्पन्न न हो। मुख्य कार्यपालिका को विभिन्न विभागो (Departments) की भिन्न-भिन्न क्रियाओ मे परस्पर सहयोग एव समन्वय स्थापित करना पडता है। उसे विभिन्न प्रशासकीय विभागो के झगडो को सुलझाकर उनमे परस्पर एकता कायम करनी पडती है। वही विभिन्न विभागो के पारस्परिक विवादो एव मतभेदो को सुलझाने का अन्तिम आश्रय है।

सम्पूर्ण प्रशासकीय मशीनरी के सुचारु एव कुशल सचालन के लिए उसके कार्यों मे समन्वय स्थापित करना अत्यन्त आवश्यक है। मुख्य कार्यपालिका का यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य है।

(६) सम्पूर्ण प्रशासन के कार्यों का निरीक्षण करना और उन पर नियन्त्रण रखना (Supervision and control of the functions of the whole administration)—प्रशासन के प्रधान के रूप मे मुख्य कार्यपालिका का यह अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य है। विभिन्न प्रशासकीय अभिकरणो तथा विभागो की कार्य प्रणाली से सम्बन्धित सभी जानकारी उसको प्राप्त होनी चाहिये। जब कभी भी वह आवश्यक समझे, उसे जाँच पडताल करने की आज्ञा देने का अधिकार होता है। वह प्रशासकीय विभागो से उनके कार्यों से सम्बन्धित किसी भी प्रकार की जानकारी, अभिलेख (Record) कागजात अथवा फाइलें माँग सकती है। निरीक्षण तथा नियन्त्रण का यह कार्य इसलिए अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है क्योकि मुख्य कार्यपालिका अपनी काफी सत्ता अधीनस्थ अधिकारियो को सौंप देती है। अत उसका कर्तव्य है कि वह यह देखे कि उसने जो अधिकार हस्तान्तरित किये है कही उनका दुरुपयोग तो नही किया जा रहा है। मुख्य कार्यपालिका को यह अधिकार प्राप्त होता है कि वह राज्य (State) के किसी भी विभाग, बोर्ड, ब्यूरो अथवा आयोग (Commission) के कार्यों तथा प्रबन्ध की किसी भी समय देखभाल तथा जाँच पडताल कर सके। यह कार्य वह या तो स्वय कर सकती है अथवा इसी कार्य के लिए नियुक्त किये गये एक अथवा अधिक व्यक्तियो द्वारा सम्पन्न करा सकती है। भूतकाल मे सरकारी विभागो, सरकारी निगमो (Public corporations) के कार्यों तथा उच्च अधिकारियो के आचरण (Conduct) की जाँच पडताल करने के लिये भारत सरकार द्वारा अनेक जाँच समितियो (Enquiry Committees) एव आयोगो (Commissions) की नियुक्तियाँ की जा चुकी है। इनमे सबसे महत्वपूर्ण जाँच जीवन बीमा निगम (Life Insurance Corporation) के कार्यों के सम्बन्ध मे जस्टिस एम० सी० छागला द्वारा की गई थी। मुख्य कार्यपालिका सम्बद्ध विभागो (Departments) से किसी भी प्रकार की जानकारी एव रिपोर्ट माँग सकती है। मुख्य कार्यपालिका के इस कर्तव्य का उल्लेख करते हुए विलोबी (*Willoughby*) ने लिखा है

"महा-प्रबन्धक (General manager) का यह प्रमुख कर्तव्य है कि वह नियमित समयान्तरो के पश्चात् अपने निर्देशक मण्डल (Board of directors) के सम्मुख तत्कालीन परिस्थितिया एव आवश्यकताओ के बारे मे तथा इस विषय मे पूर्ण व विस्तृत विवरण प्रस्तुत करे कि भूतकाल मे उसके द्वारा तथा उसके अधीनस्थ कर्मचारियों द्वारा विभिन्न क्षेत्रो मे प्रशासन कार्य किस प्रकार चलाया गया और यदि उसको यह कार्य उचित ढग से करना है तो उसके लिए जरूरी है कि वह स्वय अपने अधीनस्थ कर्मचारियो से वह सब विस्तृत सामग्री प्राप्त करे जिसकी कि उसे आवश्यकता है। ऐसा करने के लिए यह भी आवश्यक है कि उसे पर्याप्त अधिकार प्राप्त हो जिससे कि वह उपलब्ध की जाने वाली सामग्री एव जानकारी की प्रकृति तथा उसको

प्रस्तुत किये जाने की विधि का निर्धारण कर सके। यह भी वाछनीय है कि अधीनस्थ कर्मचारियो द्वारा प्रस्तुत किये जाने वाले अनेक प्रतिवेदनो (Reports) का मुख्य कार्यपालिका (Chief executive) के प्रतिवेदन से प्रत्यक्ष सम्बन्ध हो और मुख्य कार्यपालिका को यह अवसर प्रदान किया जाये कि वह उनके प्रतिवेदनो पर अपनी टीका टिप्पणी कर सके तथा यह प्रकट कर सके कि वह प्रतिवेदनो मे दिये गये उनके विवरण एव सिफारिशो से कहाँ तक सहमत है तथा कहाँ तक उनका समर्थन करती है । किन्तु ऐसा विवरण प्रस्तुत न किये जाने की स्थिति मे, एक ओर तो मुख्य कार्यपालिका तथा व्यवस्थापिका के बीच वैसा स्पष्ट सम्बन्ध कायम न हो पायेगा जैसा कि होना चाहिये और विभिन्न क्षेत्रो के व्यावहारिक प्रशासन के सम्बन्ध मे भ्रम उत्पन्न होगा।"[1]

(७) बजट बनाना अथवा वित्तीय प्रबन्ध पर नियन्त्रण करने का अधिकार (Budgeting or the Authority to Control the management of Finance)– मुख्य कार्यपालिका को वित्तीय स्थितियो के सम्बन्ध मे भारी सत्ता प्राप्त होती है। बजट तैयार करना, व्यवस्थापिका (Legislature) के सन्मुख उसको प्रस्तुत करना और व्यवस्थापिका द्वारा अनुमोदन होने के पश्चात् उसको क्रियान्वित करना—ये मुख्य कार्यपालिका के कर्त्तव्य है। वह वित्तीय योजनाएँ तथा वित्तीय नीतियो का निर्माण करती है और इस प्रकार वह वित्तीय क्षेत्र मे देश का नेतृत्व करती है।

मुख्य कार्यपालिका के प्रशासन से सम्बन्धित कार्यों की उपरोक्त सूची से यह स्पष्ट है कि उसे व्यापक तथा महत्वपूर्ण कार्य सम्पन्न करने होते है तथा राज्य की प्रशासकीय मशीनरी का उचित रीति से कार्य कर सकना मुख्य कार्यपालिका के ठोस निर्णयो, प्रेरणाओ तथा नेतृत्व कर सकने की उसकी क्षमता पर निर्भर होता है। अत केवल एक अत्यन्त योग्य व्यक्ति ही मुख्य कार्यपालिका के इन कार्यों को सम्पन्न कर सकता है।

(Parliament) तथा दल (Party) से भी सम्बन्ध रखना एव व्यवहार करना पडता है। उसे समाचार-पत्रो तथा सार्वजनिक सभाओ के आलोचनात्मक प्रहारो से प्रशासन को वचाये रखना होता है। उसे ससद के सदस्यो तथा विभिन्न राजनैतिक दलो की आलोचनाओ का भी सामना करना पडता है। अपने विचारो व मतो को जनता तक पहुँचाने के लिए उसे सचार के साधनो का भारी उपयोग करना पडता है। जैसा कि जॉन ए० वीग *(John A Vieg)* ने कहा है "योग्यतम सहायको के होने के वावजूद भी, इस वात की ओर व्यक्तिगत ध्यान देना राष्ट्रपति (President) का कर्त्तव्य होगा कि वह कितना सार्वजनिक प्रचार करना चाहते हैं तथा राजनैतिक ज्ञान प्रदान करने वाली कितनी सेवाओ की व्यवस्था की आवश्यकता समझते है। इस वात पर जोर देने की आवश्यकता नही है कि जहाँ तक उसके द्वारा विभिन्न साधनो का प्रत्यक्ष उपयोग किये जाने का सम्वन्ध है, वुद्धिमानी इसी मे है कि वह प्रचार व कथन सम्वन्धी अपने विशिष्ट गुणो का अधिकतम उपयोग कर तथा अपनी कमियो को न्यूनतम कर दे।"[1] इस प्रकार मुख्य निष्पादक अथवा मुख्य कार्यपालिका (Chief executive) को जनता के सन्मुख प्रशासन का प्रतिनिधित्व करना पडता है। **मुख्य निष्पादक अथवा मुख्य कार्यपालिका को राजनैतिक नेता** (Political leader) **तथा प्रशासन के प्रधान** (Head of Administration) **के द्विमुखी कार्य सम्पन्न करने पडते हैं।** इस द्विमुखी प्रकृति (Dual nature) के विषय मे लिखते हुए प्रोफेसर ह्वाइट *(Prof White)* ने कहा है

'एक प्रजातन्त्रीय देश मे राजनीति तथा प्रशासन का समन्वय होना आवश्यक है और अनुकूल परिस्थितियो के अन्तर्गत ऐसा निष्पादक अथवा ऐसी कार्यपालिका इस कार्य को अच्छी प्रकार सम्पन्न कर सकती है। यहाँ इस वात का उल्लेख करना भी उचित है कि प्रजातन्त्रीय व्यवस्था उत्तरदायी नेतृत्व की आवश्यकता होती है और उनकी नीति को प्रशासन के कारण कोई ठेस नही पहुँचेगी। राजनैतिक निष्पादको (Political executives) का यह विशिष्ट कर्त्तव्य है कि वे प्रशासकीय निर्देशन तथा प्रेरणा शक्ति प्रदान करें तथा सरकार की व्यवस्थापिका व कार्यपालिका शाखाओ के वीच समन्वय स्थापित करें और जनता के एक अभिकरण (Agency) के रूप मे उन लोगो के प्रशासन की रक्षा भी करें जो इसको एक दल (Party) का केवल एक उपांग (Adjunct) मात्र समझते हैं।"[2]

मुख्य निष्पादक अथवा मुख्य कार्यपालिका को प्रशासन से सम्वन्धित अनेक वातो का निर्णय करना पडता है और प्रशासकीय कार्यक्षमता एव कुशलता वहुत हद तक उसके निर्णयो पर ही निर्भर रहती है। यह उसकी जिम्मेवारी है कि वह देखे कि अन्य लोग उचित रीति तथा कुशलता के साथ अपना कार्य कर रहे हैं या नही। अत उत्तम व्यक्तियो को परखने व समझने की योग्यता होनी चाहिये। उसके अन्दर

1 F M Marx, (Ed) Elements of Public Administration, p 172-73
2 L D White, *op cit*, p 56

सार्वलौकिक उत्सुकता (Catholic curiosity) होनी चाहिये। उसे अनेक कार्य करने होते हैं और उससे यह आशा नही की जाती कि वह हर एक बात के बारे मे काफी कुछ जानता होगा। उसे विशेषज्ञो (Specialists) के साथ काम करना होता है "परन्तु उसे प्रत्येक चीज के बारे मे पर्याप्त जानकारी होनी ही चाहिये जिससे वह यह जान सके कि ऐसे आदमी कहाँ से प्राप्त किये जायें जो कि किसी विशिष्ट कार्य के बारे मे अत्यधिक ज्ञान रखते हो तथा जिन्होने अपने विशिष्ट क्षेत्रो मे विकास के क्रम को बराबर जारी रखा हो।"[1]

मुख्य निष्पादक मे आत्म-निर्भरता (Self-reliance) का गुण होना चाहिये जिसमे कि वह शीघ्रता के साथ निर्णय करने मे समर्थ हो सके। उसमे इतनी योग्यता भी होनी चाहिये कि वह अन्य लोगो से राजभक्ति या निष्ठा प्राप्त कर सके, अर्थात उसके प्रयत्न मानवीय, सहानुभूति तथा स्नेहपूर्ण होने चाहिएँ। चरित्र (Character), बुद्धिमानी, निर्णय करने मे शीघ्रता, अच्छा स्वभाव, आकर्षक व्यक्तित्व, कार्य के प्रति रुचि, अधीनस्थ कर्मचारियो मे विश्वास उत्पन्न कर देने की क्षमता—ये वे कुछ गुण है जो मुख्य निष्पादक कार्यपालिका (Chief Executive) को एक सफल प्रशासक बना देते हैं।

मुख्य निष्पादक अथवा मुख्य कार्यपालिका का कार्यालय
(The Office of the Chief Executive)

इसके अतिरिक्त, मुख्य कार्यपालिका प्रत्येक मामले पर विस्तार से विचार नही कर सकती। अत कार्यों का सूक्ष्म परिक्षण करने की प्रक्रिया (Sifting process) का आश्रय लिया जाता है जिसके द्वारा कि कम महत्वपूर्ण मामलो के निर्णय मन्त्रि परिषद् से बहार ही कर दिये जाते है। उसके कार्यालय अथवा "सामान्य कर्मचारी वर्ग" को 'फिल्टर्यर' और 'फनल' (filter and funnel) के रूप मे कार्य करना होता है। इसका कार्य है कि यह मुख्य कार्यपालिका को इस योग्य बना दे कि वह छोटी-छोटी तथा आवश्यक बातो मे अपना समय नष्ट किये बिना ही महत्वपूर्ण मामलो को निपटा सके।

प्रोफेसर एल० डी० ह्वाइट (*L D White*) ने ऐसे कार्यालय के निम्न उद्देश्य बताये हैं

"(१) मुख्य कार्यापालिका को पूर्ण तथा नवीनतम बातो एव घटनाओ से परिचित रखना।

(२) समस्याओ के सम्बन्ध मे पूर्व-विचार करने मे तथा भावी कार्यक्रमो की योजनायें बनाने मे उसकी सहायता करना।

(३) इस बात का प्रबन्ध करना कि वे मामले, जिन पर कि कार्यपालिका को निर्णय देना है, उसके पास शीघ्रता के साथ तथा ऐसी दशा मे पहुँच जाये कि जिससे वह उन पर बिना देर किये विवेकपूर्ण निर्णय कर सके तथा साथ ही, कार्य पालिका को अविचारपूर्ण व जल्दबाजी के निर्णयो से बचाये रखना।

(४) ऐसे प्रत्येक मामले को अलग रखना जिस पर कि शासन व्यवस्था के अन्तर्गत बाहर निर्णय हो सकता है।

(५) उसका समय नष्ट होने से बचाना।

(६) स्थिर नीति तथा कार्यपूर्ति के निर्देशन सहित ऐसे उपाय करना कि जिससे अधीनस्थ कर्मचारी उसके निर्णयो को माने तथा उन्हे क्रियान्वित करें।"[1]

बजट तैयार करना—मुख्य कार्यपालिका का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कर्तव्य है। विशेषज्ञो तथा तकनीकी ज्ञान प्राप्त व्यक्तियो की सहायता के बिना वह इस कार्य को पूरा नही कर सकती। इन्ही सब कारणो से प्रत्येक मुख्य निष्पादक अथवा मुख्य कार्यपालिका (Chief executive) को एक 'सामान्य कर्मचारी वर्ग' (General staff) की आवश्यकता होती है जो कि कार्यों को सम्पन्न करने मे उसकी सहायता कर सके।

यह कार्यालय एक ऐसा अग होगा जिसके द्वारा कि मुख्य कार्यपालिका अपने कार्यों को सम्पन्न करेगी तथा अपनी शक्तियो (powers) का प्रयोग करेगी। यह कार्यालय ऐसे प्रलेख (documents) तथा सूचनाएँ एकत्र करेगा जिनके आधार पर मुख्य कार्यपालिका प्रशासकीय निर्णय करेगी। यह कार्यालय मुख्य कार्यपालिका

1 L D White *op cit*, p 52

के निर्णय सम्बद्ध विभागो (Departments) को प्रेषित भी करेगा । यह सम्बद्ध विभागो के सन्मुख मुख्य कार्यपालिका की आज्ञाओ (orders) की व्याख्या करेगा जिससे कि वे समुचित रीति से उनको लागू कर सकें। इस प्रकार यह कार्यालय मुख्य कार्यपालिका की आँखो, कानो तथा हाथो का कार्य करेगा, जिनकी सहायता से वह प्रशासन का निर्देशन, निरीक्षण तथा नियन्त्रण करेगी ।

संयुक्त राज्य अमेरिका मे मुख्य निष्पादक का कार्य
(Office of the Chief Executive in the United States of America).

सयुक्तराज्य अमेरिका के राष्ट्रपति (President) का अपना प्रशासनिक स्टाफ होता है जो कि उसके विविध कार्यों की पूर्ति मे उसकी सहायता करता है। प्रशासकीय प्रबन्ध के लिये स्थापित राष्ट्रपति की समिति (President's committee on Administrative Management) (१९३७) ने दृढता के साथ यह सिफारिश की थी कि ऐसे निष्पादन कार्यालय (Executive office) की स्थापना होनी चाहिए, और सन् १९३९ मे राष्ट्रपति ने उस सिफारिश की मुख्य बातो को लागू किया। जैसा कि अब है, राष्ट्रपति के निष्पादन कार्यालय (स्टाफ) मे ह्वाइट हाउस कार्यालय (White House office), बजट विभाग (Bureau of the Budget), आर्थिक सलाहकार परिषद् (Council of economic advisers) तथा अनेक अन्य

सम्पन्न करता है "बजट विभाग, जब भी राष्ट्रपति का निर्देश होगा तभी, विभागो (Department) तथा संस्थानो (Establishments) का सविस्तृत अध्ययन करेगा जिसमे कि राष्ट्रपति इस बात का निर्णय करने मे समर्थ हो सके कि निम्नलिखित के बारे मे (लोक सेवाओ को सम्पन्न करने के कार्य अधिक मितव्ययता तथा कुशलता लाने के उद्देश्य से) क्या-क्या परिवर्तन किये जाने चाहियें, (१) ऐसे विभागो अथवा संस्थानो के तत्कालीन संगठन क्रियाओ एव कार्य की रीतियो के बारे मे, (२) उसके निमित्त किये जाने वाले विनियोजन (Appropriations) के बारे मे, (३) विशिष्ट क्रियायें विशिष्ट सेवाओ को सौपने के बारे मे, अथवा (४) सेवाओ के पुनर्वर्गीकरण के बारे मे।" इस प्रकार बजट विभाग (Bureau of the Budget) के माध्यम से राष्ट्रपति विभिन्न विभागो के सम्बन्ध मे पूर्ण जानकारी प्राप्त कर सकता है और अपने आपको इस बात से आश्वस्त कर सकता है कि वे विभाग सन्तोषजनक रूप मे कार्य कर रहे है। आर्थिक सलाहकार परिषद्, जिसका निर्माण कांग्रेस (Congress) द्वारा सन् १९४६ मे किया गया था, राष्ट्रपति को आर्थिक समस्याओ के बारे मे जानकारी एव परामर्श प्रदान करती है और राष्ट्रपति द्वारा कांग्रेस मे प्रस्तुत किये जाने वाले वार्षिक आर्थिक प्रतिवेदन (Economic Report) के तैयार करने मे विशेष रूप से उसकी सहायता करती है। 'ये तीनो स्टाफ संगठन, जिनका कि ऊपर उल्लेख किया गया है, राष्ट्रपति को वह सम्पूर्ण सहायता प्रदान नही करते जितनी कि उसे आवश्यकता होती है, परन्तु वे राष्ट्रपति के लिए यह सम्भव बना देते हैं कि वह उन व्यापक उत्तरदायित्वो एव कार्यो को कुछ निश्चिन्तता के साथ पूरा कर सके जो कि अपने पद के कारण उसे करने होते है। स्टाफ के सदस्य सूचना तथा आकडे एकत्र करते है तथा उन पर विचार करते है, योजनायें बनाते है तथा उन्हे राष्ट्रपति के सम्मुख प्रस्तुत करते है, राष्ट्रपति को परामर्श देते है तथा उसके साथ विचार-विनिमय करते हैं, प्रशासकीय नियम तथा कानून बनाते है, और अनेक तरीको से, जैसा कि राष्ट्रपति उन्हे निर्देश करता है, वे सरकार की निष्पादन भुजा (Executive arm) के रूप मे कार्य करते है। ये व्यक्ति राष्ट्रपति को उन उत्तरदायित्वो एव कार्यो से मुक्त नही करते, जो मुख्य प्रशासक (Chief administrator) के रूप मे उसे पूरे करने होते है। पर वे इतना अवश्य करते हैं कि अनेक बातो के विषय मे सावधान रहकर तथा राष्ट्रपति को उच्चकोटि का परामर्श प्रदान करके, उसके लिए यह सम्भव बना देते है कि वह सर्वोच्च प्रशासक (Supreme administrator) के रूप मे अपने वास्तविक कर्तव्यो को पूरा कर सके।"[1]

---

1 American Government National State and Local Johnson Claudius of New York Thomas Y Crowell Company 1953 pp 252-53

देती है, उनके समय-विभाग (Time table) तथा संसदीय विधियो व उपायो का निवारण करती है।

(२) प्रतिरक्षा समिति (Defence Committee)—यह समिति शान्ति तथा युद्धकालीन प्रतिरक्षा से सम्बन्ध रखती है।

(३) लार्ड प्रेसीडैन्ट की समिति (The Lord President's Committee)—यह केवल सामाजिक सेवाओ के बारे मे अपनाई जाने वाली सिविल नीति से सम्बन्धित एक प्रकार की उपमन्त्री-परिषद् (Sub Cabinet) है।

(४) आर्थिक नीति समिति (The Economic Policy Committee)—इसका सम्बन्ध आर्थिक मामलो से होता है।

(५) उत्पादन समिति (Production Committee)—इसका सम्बन्ध घरेलू उपयोग तथा निर्यात के लिए सरकार के विनिर्माण कार्यक्रमो (Manufacture programmes) से होता है।

इस प्रकार, मन्त्रि-परिषद् अपने कार्य मे इन पाँच स्थायी समितियो तथा लगभग २० या ३० तदर्थ समितियो मे सहायता लेती है।

सचिवालय
(The Secretariat)

मन्त्रि-परिषद् सचिवालय का सम्बन्ध मन्त्रि-परिषद् की बैठको (Meetings) के लिए कार्यसूची (Agenda) तैयार करने से होता है। यह मन्त्रि-परिषद् की बैठको के कागजातो तथा निर्णयो को सुरक्षित भी रखता है। सचिवालय मे एक सचिव (Secretary), एक उप-सचिव (Deputy secretary), प्रत्येक निजी सचिवो (Private secretary) सहित, दो अवर-सचिव (Under secretaries), केन्द्रीय साख्यिकीय कार्यालय का निर्देशक (Director of the Central Statistical Office), तीन सहायक सचिव (Assistant Secretaries), एक मुख्य लिपिक (Chief Clerk) और स्थापना अधिकारी (Establishment Officer) तथा एक अधीनस्थ स्टॉफ (Subordinate Staff) होता है। मन्त्रि-परिषद् की बैठको मे केवल सचिव ही उपस्थित रहता है। मन्त्रि-परिषद् को अपने कार्यो को सम्पन्न करने मे सचिवालय से अत्यधिक सहायता मिलती है।

मन्त्रि-परिषद् सचिवालय की उपयोगिता के बारे मे लिखते हुए प्रो० हरमन फिनर ने कहा कि "मन्त्रि-परिषद् को या उसकी समितियो को अथवा पृथक्-पृथक् मन्त्रियो को जब भी आवश्यकता होती है विशेषज्ञो की सहायता मिलती है और अपनी समझ के अनुसार वे इस सहायता का उपयोग करते हैं। यह सहायता सूक्ष्म निरीक्षण द्वारा प्राप्त किये गए तथा छने हुए तथ्यो (Facts) एव विचारो (Ideas) के रूप मे मन्त्रि-परिषद् तक पहुँचती है। फिर वहाँ से, मार्गदर्शन, परामर्श एव तथ्यो के इच्छुक, बाहर के तथा नीचे के विभागीय अधिकारियो को नीतियो तथा इच्छाओ के रूप मे प्रेषित कर दी जाती है।"[1]

1 Herman Finer, Governments of Greater European Powers, U S 1956, pp 167-68

भारत में मन्त्रि-परिषद् सचिवालय
(Cabinet Secretariat in India)

इगलैंड की तरह, हमारे देश में भी मन्त्रि-परिषद् सचिवालय है जो कि मन्त्रि-परिषद् तथा उसकी विभिन्न समितियों के विचार-विनिमयों तथा निर्णयों (Decisions) के अभिलेख (Records) रखता है, विभिन्न समितियाँ जैसे प्रतिरक्षा समिति (Defence Committee), सयुक्त नियोजन समिति (Joint Planning Committee), आर्थिक समिति (Economic Committee), विदेशी मामलों की समिति (Foreign Affairs Committee) तथा मन्त्रि-परिषद् की नियुक्ति उप-समिति (Appointment sub-committee)। सचिवालय की सगठन रचना इस प्रकार है—(१) प्रधान सचिवालय (Main Secretariat), (२) सगठन तथा प्रणाली सभाग (Organisation and Method Division), (३) सैनिक प्रशाखा (Military Wing) और (४) आर्थिक प्रशाखा (Economic Wing)।

(१) मन्त्रि-परिषद् सचिवालय का अध्यक्ष एक सचिव (Secretary) होता है। उसकी सहायता के लिए एक सयुक्त सचिव (Joint secretary), एक उप-सचिव, ४ अवर सचिव (Under secretaries) तथा ६ अनुभाग अधिकारी (Section officers) होते हैं। प्रधान सचिवालय की चार शाखाये होती हैं (क) मन्त्रि-परिषद् शाखा (Cabinet Branch), (ख) समन्वय शाखा (Coordination Branch), (ग) प्रशासन शाखा (Administration Branch), तथा (घ) सामान्य शाखा (General Branch)।

(२) सगठन तथा प्रणाली सभाग (Organisation and method Division)—इस सभाग की स्थापना मार्च १९५४ मे की गई थी। इस सभाग का एक निर्देशक (Director) है जो कि भारत सरकार के स्थापना अधिकारी (Establishment officer) के रूप मे तथा गृह-मन्त्रालय मे सयुक्त सचिव के रूप मे भी कार्य करता है। निर्देशक एक अधिकारी से सहायता लेता है जिसे कि "निर्देशक का सहायक' (Assistant to the Director) कहा जाता है। सन् १९५५ मे एक उप-निर्देशक (Deputy Director) का पद भी बना दिया गया था। विभिन्न मन्त्रालयो (Ministries) तथा विभागो (Departments) मे सगठन तथा प्रणाली इकाइयाँ (कोष्ठ) O and M units (cells) बने होते हैं जिनके द्वारा इस सभाग (Division) का कार्य चलाया जाता है। सगठन तथा प्रणाली सभाग ने सन् १९५४–५५ के अपने प्रतिवेदन (Report) मे अपने कार्यों की योजना की रूपरेखा बनाई। इसके उद्देश्य ये हैं

(क) सभी सम्बन्धित विभागो, कार्यालयो तथा मन्त्रालयो को उनमे पाई जाने वाली अकुशलताओ तथा उनके सुधार की आवश्यकता एव क्षेत्र के बारे में सचेत रखना।

(ख) कार्यों को निबटाने से सम्बन्धित तथ्यो (Facts) का पता लगाना तथा यह देखना कि वास्तव मे गलती कहाँ है और क्या है, काम मे देरी के कारणो की

छानबीन करना और यह देखना कि वे कौन से तत्व हैं जो कि काम में कुशलता व क्षमता लाने मे बाधक बनते है ।

(ग) सुधार के लिए उपयुक्त उपाय बनाना तथा उन्हें क्रियान्वित करना ।

(३) **सैनिक प्रशाखा** (The Military Wing)--इस प्रशाखा का सम्बन्ध मन्त्रि-परिषद् की प्रतिरक्षा समिति (Defence Committee of the Cabinet), प्रतिरक्षा मन्त्री की समिति (Defence Minister's Committee), स्टॉफ समिति के प्रमुखो (Chief of the Staff Committee), प्रधान कार्मिक अधिकारी की समिति (Principal Personnel Officer's Committee), प्रधान सम्भरण अधिकारी की समिति (Principal Supply Officer's Committee), सयुक्त नियोजन समिति (Joint Planning Committee), सयुक्त प्रशासन नियोजन समिति (Joint Administration Planning Committee) व सयुक्त गुप्त वार्ता समिति (Joint Intelligence Committee) आदि की बैठको के सचिवालय सम्बन्धी कार्य (Secretariat work) मे है ।

(४) **आर्थिक प्रशाखा** (The Economic Wing)—यह प्रशाखा मन्त्रि-परिषद् की आर्थिक, उत्पादन व वितरण समिति तथा अर्थसचिवो की समिति (Committee of Economic Secretaries) आदि के सचिवालय सम्बन्धी सम्पूर्ण कार्य के लिए उत्तरदायी होती है ।

मन्त्रि-परिषद् सचिवालय तथा सचिव के विषय मे रथनास्वामी (Ruthnaswamy) ने कहा है कि

"इस स्टॉफ की सहायता से मन्त्रि-परिषद् का सचिव (Secretary) भारत सरकार के सभी विभागो (Departments) द्वारा ऐसे सभी मामलो मे, जिनमे कि मन्त्रि-परिषद् अथवा मन्त्रि-परिषद् का नेता, प्रधान-मन्त्री (Prime Minister) रुचि लेते है समन्वय (Coordination) उत्पन्न करने तथा समय पर कार्यवाही किये जाने के अपने कर्त्तव्य को पूरा करता है । अंग्रेजी नमूने के अनुरूप, उससे यह आशा की जाती है कि वह सिविल सेवा (Civil service) तथा सिविल कर्मचारियो के परामर्शदाता (Adviser) व वृद्ध मार्गदर्शक के रूप मे कार्य करे । वह अपने सचिवालय के सहयोग से विभिन्न विभागो को जोडने वाली कडी सिद्ध होगा तथा विभागो के मध्य एक प्रकार के अन्तर्सचार मार्ग के रूप मे कार्य करेगा । अपनी सर्वप्रमुख स्थिति के कारण चूंकि वह सिविल सेवा का प्रधान (Head) होता है अत इस नाते उसका यह एक बहुत बडा कर्त्तव्य होगा कि वह सगठन तथा सेवाओ के कार्मिक वर्ग मे ऐसा सुधार करे कि जिससे वे उन उच्च तथा उत्तरदायित्वपूर्ण कर्त्तव्यो को पूरा कर सकें जो कि उन्हें सौंपे गये हैं । मन्त्रि-परिषद् का सचिव एक सर्वोच्च श्रेणी का प्रशासक होना चाहिए जिसका चुनाव प्रेरणा (Initiative), शक्ति (Energy), चतुराई तथा बहुविध अनुभव (Experience) सम्बन्धी विशिष्ट गुणो एव योग्यताओ के आधार पर किया जाना चाहिए ।"[1]

---

1 Puthnaswamy M Principles and Practice of *Public Administration*, Allahabad 1956 II Ed, p 222.

३

संगठन की कुछ सामान्य समस्याएं

(Some General Problems of Organization)

व्यक्ति हो अथवा सरकारे (Governments), जब वे कुछ उद्देश्यो की पूर्ति के लिए कोई भी कार्य करते हैं तो उसके लिए नये सगठनो (Organisations) का निर्माण करते हैं। जब कभी भी सरकारे यह अनुभव करती है कि कोई विभाग (Department) कुशलतापूर्वक कार्य नही कर रहा है तो वे उसका पुनर्गठन करती है। जब कोई सगठन अपने उद्देश्यो की प्राप्ति मे असफल रहता है तभी वह पुनर्गठन के आक्रमण का शिकार बनता है। प्राय लोग इस बात का रोना रोते है कि सरकार इस कारण कुशलता एव दक्षतापूर्वक कार्य नही कर रही है क्योकि इसका सगठन वैज्ञानिक व व्यवस्थित नही है। व्यक्तिगत अथवा वर्गीय क्रियाओ के लिए सगठन के व्यापक महत्व पर दृष्टिपात करने से यह प्रश्न पैदा होता है कि सगठन से हमारा अभिप्राय क्या है? सक्षिप्त आक्सफोर्ड शब्दकोष (Concise Oxford Dictionary) मे 'सगठन करने' (To organize) की परिभाषा इस प्रकार दी गई है—'किसी चीज का व्यवस्थित ढाचा बनाना' (To give orderly structure to) अथवा 'किसी चीज का आकार निश्चित करना तथा उसको कार्य करने की स्थित मे लाना' (To frame and put into working order)। इस प्रकार शब्दकोष के अर्थ के अनुसार, "किसी चीज के परस्पराश्रित भागो (parts) को सम्बन्धित करने के कार्य को 'सगठन' की सज्ञा दी गई है जिससे कि प्रत्येक भाग को विशिष्ट कार्य मिल जाये और वह सम्पूर्ण भागो से सम्बन्ध रखता हुआ उस कार्य को सम्पन्न कर सके।" सगठन का अर्थ है कि कर्मचारीवर्ग के कार्य तथा उत्तरदायित्व इस प्रकार व्यवस्थित कर दिये जाये कि वे उस उद्देश्य को पूरा कर सके जिसके लिए वे एक साथ मिलने को सहमत हुये थे। जब कभी भी कुछ व्यक्ति कुछ उद्देश्यो को प्राप्त करने के लिए एक साथ मिलते हैं तो उन्हे एक आयोजनाबद्ध तरीके से कार्य करना होता है और इसी को सगठन कहा जाता है। उनके कर्तव्यो तथा उत्तरदायित्वो का पृथक्-पृथक् निर्धारण कर दिया जाता है और उनकी क्रियाओ मे समुचित रूप से समन्वय (Coordination) स्थापित किया जाता है। किसी भी कार्य अथवा प्रायोजना (Project) के सुचारु सचालन के लिए एक अच्छे सगठन का होना अत्यन्त आवश्यक है। खराब अथवा निकृष्ट सगठन का परिणाम यह होता है कि कार्यो मे परस्पर सघर्ष तथा उद्देश्यो के बारे मे भ्रम उत्पन्न हो जाता है और कार्य की गति मे पक्षाघात (लकवे)

जैसी स्थिति पैदा हो जाती है। ग्लेडन (Gladden) के मतानुसार, "सगठन का सम्बन्ध किसी उद्यम मे लगे हुये व्यक्तियो के परस्पर सम्बन्धो के उस आकार अथवा रूप मे है जिसका निर्माण इस प्रकार किया जाना चाहिये कि जिससे वे उस उद्यम के कार्यों को पूरा कर सके।"[1] इसी प्रकार प्रोफेसर गॉस के कथनानुसार, "किसी सामूहिक कार्य मे लगे हुए व्यक्तियो तथा वर्गों के प्रयत्नो एव उनकी क्षमताओ को ऐसे तरीके से परस्पर सम्बन्धित करने का नाम ही सगठन है जिससे कि कम से कम सघर्ष पैदा हुए ही वाञ्छित उद्देश्य पूरे हो सकें और उन लोगो को, जिनके लिए कि वह कार्य किया जा रहा है तथा उनको जो उस उद्यम अथवा कार्य मे लगे हैं अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त हो सके।'[2]

साइमन (*Simon*) ने 'सगठन' शब्द की व्याख्या अत्यन्त व्यापक अर्थ मे की है। उन्होने 'मनुष्यो के एक वर्ग मे उनके परस्पर व्यवहारो एव अन्य सम्बन्धो के जटिल आकार (Complex Pattern) को ही सगठन का नाम दिया है।[3]

इस प्रकार पृथक्-पृथक् निर्धारित कर्तव्यो एव उत्तरदायित्वो के साथ उन व्यक्तियो का सयुक्त होना सगठन है जो कि कुछ वाञ्छित उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए एक साथ मिलाये जाते हैं। कार्यों तथा कर्मचारियो के ऐक्यपूर्ण परस्पर-सम्बन्ध (Inter-relation) का नाम ही सगठन है।[4]

---

1 E N Gladden, *The Essentials of Public Administration*, 1953, P 185

2 John M Gaus and others, *The Frontiers of Public Administration* 1936 pp 66-7

3 Herbert A Simon, *Administrative Behaviour*, Mac Millan, p XVI Definitions of Organization

4 (i) Organization is the arrangement of personnel for facilitating the accomplishment of some agreed purpose through the allocation of functions and responsibilities It is the relating of efforts and capacities of individuals and groups engaged upon a common task in such a way as to secure the desired objective with the least friction and the most satisfaction to those for whom the task is done and those engaged in the enterprise *The Frontiers of Public Administration*, John M Gaus, 1936 pp 66-7

(ii) J D Mooney, "*Organization* is the form of every human association for the attainment of a common purpose " *The Principles of Organization*, p 1

(iii) 'Organization' consists of the relationship of individuals to individuals and of groups to groups, which are so related as to bring about an orderly division of labour Pfiffner, *Public Administration*, p 45

(iv) " by formula organization we mean a planned system of Co-operative effort in which each participant has a recognized role to play and duties or tasks to perform " Simon and Others, *Public Administration*, p 5

(v) Organization is "the formal structure of authority through which work sub-divisions are arranged, defined and co-ordinated for the defined objective" Luther Gullick, Notes on the *Theory of Organization Papers on Science of Administration*, p 13

संगठन की समस्या के प्रति विभिन्न दृष्टिकोण
(Different Approaches to the Problem of Organization) :

भिन्न-भिन्न व्यक्तियो ने सगठन की समस्या के प्रति भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण मे विचार प्रगट किये हैं।

उरविक का दृष्किटोण—सगठन की समस्या से सम्बन्धित उरविक (*Urwick*) के विचार 'प्रशासन के तत्व' (The Elements of Administration) नामक उनकी पुस्तक मे दिये गये हैं। सगठन के प्रति उनका दृष्टिकोण 'यान्त्रिक अथवा इजीनियरिंग' (Mechanistic or the Engineering) दृष्टिकोण है। एक मोटर-गाडी का उदाहरण देते हुये उन्होने कहा कि मनुष्य एक मोटरगाडी के बनाने तथा उसके चलाने (Driving) के बीच बिल्कुल स्पष्ट रूप से भेद करते है। वे उसके निर्माण की प्रक्रिया को विभिन्न नमूनो तथा रूपो मे विभाजित करते हैं। 'मशीन का रूपाकन करने (Designing the machine) का नाम ही सगठन है।'

इस प्रकार, रूपाकन की प्रक्रिया (Designing process) ही सगठन है। अपनी परिभाषा देते हुये उन्होने कहा कि यदि इस अत्यन्त सीमित अर्थ मे विचार किया जाय तो सगठन का मतलब है "उन क्रियाओ का निर्धारण करना जोकि किसी भी कार्य अथवा योजना के लिए आवश्यक हो और उनको ऐसे वर्गों मे क्रमबद्ध करना जोकि विभिन्न व्यक्तियो को सौपे जा सके।"[1]

इस प्रकार उरविक (*Urwick*) के यान्त्रिक दृष्टिकोण के अनुसार, सगठन एक नमूने अथवा रूपाकन (Design) के सदृश है जोकि विशेषज्ञो (Experts) द्वारा सुस्पष्ट सिद्धान्तो के आधार पर तैयार किया जा सकता है। सगठन का निर्माण मशीन के समान किया-जा सकता है।

इस दृष्टिकोण की आलोचना
(Criticism of this view)

'यान्त्रिक' अथवा 'इजीनियरिंग' दृष्टिकोण इन मानो मे दोषपूर्ण है क्योकि **यह सगठन मे मानवीय तत्व के महत्व की उपेक्षा करता है।** सगठन का सचालन करने वाले लोगो के मानसिक तथा नैतिक ढांचे पर विचार किये बिना इससे (सगठन से) व्यवहार करना पूर्णत अवास्तविक होगा। किसी भी सगठन की असल प्रकृति को समझने के लिए कर्मचारियो के व्यवहार के ढग पर विचार करना चाहिये। सगठन का सचालन करने वाले व्यक्तियो की मनोदशा (Psychology) का अध्ययन किये बिना, सगठन के केवल बाहरी ढांचे का ही ज्ञान प्राप्त करके उसकी असल प्रकृति का ज्ञान नही प्राप्त किया जा सकता। "जब तक कि कर्मचारी-वर्ग के कार्य का स्पष्टीकरण नही होता जिसके आधार पर कि ऐसे व्यक्तियो का चुनाव किया जा सके, जिन्हे कि सगठन की योजना मे वर्णित स्थानो की पूर्ति करनी है, तथा उन्हे अपने-अपने कर्त्तव्यो तथा विभिन्न सम्बन्धो के बारे मे प्रशिक्षित किया जा सके, तब तक

1 L. Urwick, *The Elements of Administration*, p 36

सगठन का ढाँचा (Structure) और कुछ नही वल्कि केवल चार्ट, रेखा चित्र, दैनिक कार्य की परिपाटी, मैनयुअल, अनुदेशो, (Instructions) अथवा शब्दो का समूह मात्र है।'[1] इस प्रकार, हम इस अत्यन्त महत्वपूर्ण तथ्य की उपेक्षा नही कर सकते कि सगठन ऐसे व्यक्तियो का एक वर्ग (Group) है जिनके साथ मशीन के अनेक दातो (Cogs) के सदृश व्यवहार नही किया जा सकता। जीवित प्राणी होने के कारण चूंकि उन व्यक्तियो की अपनी इच्छायें, भावनायें, आशाये तथा आशकायें होती है अत सगठन का कोई भी ऐसा सिद्धान्त, जिसने कि मानवीय तत्व को अपने अध्ययन के क्षेत्र से वाहर निकाल दिया हो, समस्या का विकृत रूप ही प्रस्तुत करता है। सगठन का यह मानव-विहीन (Non-human) अथवा यान्त्रिक दृष्टिकोण इस तथ्य की उपेक्षा करता है कि व्यक्ति, जोकि सगठन की इकाइयाँ (Units) होते हैं, ऐसे पूर्व-निर्धारित उद्देश्य एव स्तर के अनुरूप कार्य करने हैं जिससे कि उनकी भावनात्मक इच्छायें (Subjective desires) तथा आकाक्षायें सगठन के उद्देश्य की प्राप्ति मे हस्तक्षेप न करें। इस प्रकार स्पष्ट है कि सगठन के किसी भी सिद्धान्त मे 'मानवीय तत्व' (Human factor) की उपेक्षा कभी नही की जानी चाहिये। जैसा कि **प्रोफेसर डिमोक** *(Prof Dimock)* ने कहा है कि "किसी चीज को ऐसा एकीकृत रूप देने के लिए उसके परस्पर आश्रित भागो को व्यवस्थित रूप से सयुक्त करने का नाम ही सगठन है जिसके द्वारा कि निश्चित उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सत्ता, समन्वय तथा नियन्त्रण को लागू एव क्रियान्वित किया जा सके। परन्तु ये परस्पर आश्रित भाग ऐसे व्यक्तियो के वने होते है जिन्हे कि उद्यम (Enterprise) के उद्देश्यो को प्राप्त करने के लिए निर्देशन तथा प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए तथा जिनके कार्य मे परस्पर समन्वय (Coordination) किया जाना चाहिए। ढाँचा (Structure) तथा मानवीय सम्बन्ध (Human relations) दोनो के ही मिश्रण का नाम सगठन है।"[2]

सगठन से सम्वन्धित एक अन्य प्रश्न यह पैदा होता है कि सगठनात्मक ढाँचे (Organizational Structure) का समायोजन (Adjustment) उपलब्ध मानवीय सामग्री के अनुसार किया जाना चाहिये अथवा मानवीय सामग्री का समायोजन इस प्रकार किया जाना चाहिए कि वह सगठन मे ठीक बैठ सके? क्या सगठन का ढाँचा इस प्रकार का होना चाहिये कि वह उपलब्ध व्यक्तियो की योग्यताओ के अनुरूप हो या उपलब्ध मानवीय सामग्री तथा उसकी योग्यताओ का ध्यान किये विना ही सगठन के एक आदर्श ढाचे का निर्माण कर लिया जाना चाहिये? कुछ लोगो का तो यह विश्वास है कि सगठन ऐसा होना चाहिये कि वह उपलब्ध व्यक्तियो

1 E H Anderson and G T Schwennirg, *The Science of Production Organization* New York, 1938 p 227

2 Marshall Edward Dimock and Gladys Ogden Dimock Public Administration Rinehart and Company, Inc New York, 1954, p 104, Herbert A Simon in third Chapter, Human Behaviour and Organization of his book Administration and deals with this problem thoroughly

के अनुसार ही स्वय को उपयुक्त तथा अनुकूल बनाले, जबकि अन्य लोगो का मत इसके विपरीत है।

परन्तु उरविक (*Urwick*) इस विचार के पोषक हैं कि सगठन का निर्माण आदर्श सिद्धान्तो के आधार पर कर लिया जाना चाहिए और तब उसमे मनुष्यो का समायोजन (Adjustment) किया जाना चाहिए। उनके मतानुसार, पहिले 'आकृति, (Design) अथवा सगठन का निर्माण होना चाहिए और फिर व्यक्तियो को उसमे ठीक स्थान पर बिठाने की व्यवस्था करनी चाहिये। इसके लाभ के बारे मे लिखते हुए उरविक ने कहा कि सगठन की समस्याओ को उचित रीति से सुलझाना चाहिये। जहाँ तक भी आवश्यक हो मनुष्यो का समायोजन अवश्य करना चाहिये। यदि सगठनकर्त्ता पहिले सगठन की योजना तथा रूपरेखा बना लेता है तो उसमे मनुष्यो की थोडी बहुत ही हेर-फेर करनी होगी और सगठन मे भी थोडे ही परिवर्तन करने होगे। परन्तु यदि उसने पहले आदमी लिये और फिर उन सबको ही सगठन मे लाने की दृष्टि से सगठन मे निर्माण का प्रयत्न किया तो उसका सगठन अनेक थेगडी व जोड लगे हुये एक पाजामे के सदृश हो जायेगा।

उरविक (*Urwick*) के मतानुसार, बात ऐसी नही है कि व्यक्ति की योग्यताओं (Qualifications) के अनुरूप सगठन मे कभी भी परिवर्तन किया जा सके। प्रयत्न यह होना चाहिये कि जब भी आवश्यक हो, एक आदर्श सगठन का निर्माण कर लिया जाए। व्यक्ति उस सगठन के अनुसार ही अपने आप को उपयुक्त बना लेगे। उरविक का मत है कि सगठन का निर्माण आदर्श सिद्धान्तो के आधार पर किया जाना चाहिये। यदि सगठन की आकृति का निर्माण तार्किक आधार (Logical basis) पर नही किया गया है तो वह सगठन "निर्दयी, अपव्ययी तथा अकुशल" है।[1] पर इस मामले मे अधिक कठोरता नही बरती जानी चाहिये। यदि सगठन को व्यक्तियो के अनुरूप ठीक बनाने के लिये कभी उसके ढाचे मे कुछ हेर-फेर अथवा पुनर्समायोजन करने की आवश्यकता हो तो वह कर लिया जाना चाहिए। आखिरकार सगठन भी तो व्यक्तियो का एक कार्यकारी सम्बन्ध ही है। यह कोई ऐसी अव्यक्तिगत प्रक्रिया नही है जैसी कि इमारत के बनाने मे ईंटो और पत्थरो को एक दूसरे से जोडने मे पाई जाती है। यदि चुनाव करने की स्वाधीनता बडी मात्रा मे प्राप्त है और किसी विशिष्ट कार्य के लिये अत्यधिक मानवीय सामग्री उपलब्ध है तब सगठन का आदर्श ढाचा बनाया जाना चाहिये और व्यक्तियो की खोज करनी चाहिये तथा योग्यताओ के आधार पर सगठन के ढाचे मे उनको यथा स्थान नियुक्त कर देना चाहिये। यदि उपलब्ध व्यक्तियो के चुनाव की मात्रा सीमित है तो कुछ हद तक सगठनात्मक ढाचे का पुनर्समायोजन (Readjustment) कर लेना चाहिये। अत: स्पष्ट है कि सगठन मानवीय तत्व की उपेक्षा नही कर सकता अन्यथा उसमे रोग विषयक स्थितिया उत्पन्न हो जायेंगी।

---

1 Urwick *Ibid*, p 38

सगठन औपचारिक (Formal) भी होता है और अनौपचारिक (Informal) भी , औपचारिक सगठन (Formal organization) वह होता है जिसमे कि सम्बन्धो का आकार औपचारिक रूप से चार्ट अथवा रेखाचित्र मे निर्धारित कर दिया जाता है । सगठन के ढाचे की योजना औपचारिक रूप से बनाली जाती है और उच्च तथा अधीनस्थ कर्मचारियो के सम्भावित सम्बन्वो का उल्लेख लिखित आचार-सहिताओ (Codes of conduct) मे कर दिया जाता है ।

परन्तु जब व्यक्ति एक साथ कार्य करते है तो उनमे परस्पर एक भावात्मक तथा व्यक्तिगत सम्बन्ध का विकास होता है जो कि सम्भावित औपचारिक सम्बन्ध (Formal relationship) से विपरीत हो सकता है । इसे सगठन मे अनौपचारिक (Informal) सम्बन्ध का नाम दिया गया है । यह हो सकता है कि उच्च तथा अधीनस्थ कर्मचारियो का असल सम्बन्ध (Actual relationship) व्यवहार मे वैसा न घटित हो जैसी कि लिखित आचार-सहिताओ के द्वारा आशा की जाती है । काम मे लगे हुये कर्मचारी-वर्ग का यह असल सम्बन्ध ही अनौपचारिक सगठन (Informal organization) है । औपचारिक सगठन मे ढाचे का विचारपूर्ण नियोजन किया जाता है, चार्ट विशिष्ट सम्बन्धो को प्रकट करते हैं, किन्तु अनौपचारिक सगठन मे असल सम्बन्ध उससे भिन्न हो सकता है जैसी कि औपचारिक सगठन मे आशा की जाती है । चूंकि किसी सगठन मे काम करने वाले विभिन्न कर्मचारियो के व्यक्तित्व भी भिन्न-भिन्न ही होते हैं अत इस कारण ही अनौपचारिक सगठन की उत्पत्ति होती है । यह हो सकता है कि कुछ अधिकारी अधिक दृढ निश्चयी हो तथा दूसरे कम परिश्रमी हो, और इस सीमा तक ही वे निम्न श्रेणी के कर्मचारियो के प्रभावो से शामिल हो भी सकते है और नही भी । अनेक बार ऐसा होता है कि कार्य की औपचारिक योजना (Formal plan) अपूर्ण होती है । यह कर्मचारियो के मार्ग-दर्शन के लिये थोडे से लिखित अथवा मौखिक अनुदेश (Instructions) प्रस्तुत करती है तथा उन कार्यों का उल्लेख करती है जो कि उन्हे करने होते हैं । इस प्रकार छोडे हुए इस रिक्त स्थान के क्षेत्र मे असल व्यवहार का रूप उससे भिन्न हो सकता है जैसा कि औपचारिक चार्टों एव रेखाचित्रो मे आशा की जाती है ।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि कोई भी सगठन केवल आदर्श एव अव्यावहारिक सिद्धान्तो के आधार पर ठोस रूप मे कार्य नहीं कर सकता । किसी भी सगठन का वास्तविक कार्य-सचालन पूर्णतया इस योजना के अनुरूप नही हो सकता जैसा कि विशेषज्ञो (Experts) ने निर्धारित की हो । सगठन मे काम करने वाले व्यक्तियो का अनौपचारिक सम्बन्व (Informal relationship) औपचारिक सम्भावित सम्बन्ध से भिन्न हो सकता है । मानवीय व्यवहार सर्वदा ही एक निर्धारित ढाचे के अनुसार नही हो सकता क्योकि मानवीय व्यक्तित्व (Human personality) स्वय ऐसे जटिल एव उलझनपूर्ण तत्वो के दबाव मे रहता है जो कि एक निश्चित स्थान पर मनुष्य के आचार (Conduct) को प्रभावित करते हैं ।

सगठन के अर्थ का अध्ययन करने के पश्चात् अब हम उन अन्य समस्याओ पर दृष्टिपात करते है जो कि किसी, भी सगठन के कार्य-सचालन मे उत्पन्न हो जाती हैं और ऐसी सबसे पहली समस्या, जो कि सगठन के सम्बन्ध मे उत्पन्न होती है, 'समन्वय' (Coordination) की है।

सगठन के आन्तरिक संचालन की कुछ मुख्य समस्यायें
(Some Problems Involved in the Internal Working of Organizations)

प्राधिकार (Authority)—प्रशासनिक सगठन की रचना पद-सोपान (Hierarchy) पर आधारित होती है। उच्च और निम्न अधिकारियों के पारस्परिक सम्बन्धो के औपचारिक स्वरूप को ही सगठन कहा जाता है। प्राधिकार की हम कानून, स्थिति तथा मानवीय सम्बन्धो—तीन भिन्न दृष्टियो से परिभाषा कर सकते हैं। सविधान या कानून किसी एक व्यक्ति या कुछ व्यक्तियो को निर्णय लेने का सर्वोच्च प्राधिकार सौंपता है और उन्हे यह शक्ति देता है कि वे उन निर्णयो को क्रियान्वित करने के लिए अधीनस्थ कर्मचारियो को आदेश दे व उनसे काम ले। यह कानूनी या औपचारिक (Legal or formal) प्राधिकार का अर्थ है। उच्च अधिकारी के पास कानूनी रूप से अधीनस्थ कर्मचारियो को आदेश देने की शक्ति है और अधीनस्थ कर्मचारियो का कानूनी तौर पर यह दायित्व है वे ऐसे सब आदेशो का पालन करें। कानून इस प्रकार प्राधिकार का क्षेत्र व उसकी सीमा निर्धारित करता है।

प्राधिकार किसी सगठन मे व्यक्ति की स्थिति (Status) से भी सम्बन्ध रखता है। कभी-कभी अधिकाश प्राधिकार व्यक्ति सगठन के पद-सोपान मे अपनी स्थिति के फलस्वरूप प्राप्त करता है। केवल कानून ही व्यक्ति को प्राधिकार प्रदान नही करता, उसका पद भी उसको महत्वपूर्ण प्राधिकार प्रदान करता है।

किन्तु यह तर्क कि व्यक्ति को प्राधिकार कानून या अपनी प्रशासनिक स्थिति से प्राप्त होता है पूरे चित्र को हमारे सम्मुख प्रस्तुत नही करता। कानून तथा पद से प्राप्त होने वाले प्राधिकार का प्रयोग एक तीसरे तत्व पर निर्भर करता है जिसका महत्व कम व्यक्ति समझ पाते हैं। प्रत्येक सगठन मे विभिन्न प्रकार के व्यक्तियो को सयुक्त रूप से कार्य करना पडता है। मिलकर काम करने के फलस्वरूप उन व्यक्तियो मे कुछ अनौपचारिक सम्बन्ध विकसित हो जाते है। ये अनौपचारिक सम्बन्ध औपचारिक या कानूनी प्राधिकार का स्वरूप सशोधित कर देते हैं। कानूनी या औपचारिक प्राधिकार का प्रयोग वास्तव मे तभी सम्भव है जब सम्बन्धित सगठन के सभी व्यक्ति उसके सामान्य उद्देश्यो के प्रति निष्ठा की भावना से प्रेरित होकर प्राधिकार की आवश्यकता को स्वीकार कर लें।[1] प्राधिकार के सफल प्रयोग के लिए इस प्रकार सर्व-

1 For further details for this concept of authority refer to Mary Parker Follet "The Illusion of Final Authority", reprinted in Albert Lepawsky (Ed) *Administration The Art and Science of Organization and Management* (N Y, 1949), pages 326—327 Also refer to Chester I Barnard, *The Functions*

प्रथम यह आवश्यक है कि उससे शासित होने वाले व्यक्ति उसके अनुसार काम करने के लिए तत्पर हो। यह तत्परता तभी आ सकती है जब सगठन का हर व्यक्ति आदेशो को भली-भाँति समझ सके, उसमे उन आदेशो को क्रियान्वित करने की योग्यता तथा क्षमता हो और वह इस विश्वास से प्रेरित हो कि सब आदेश सगठन के उद्देश्यो की प्राप्ति हेतु ही जारी किये गए है।[1]

व्यावहारिक दृष्टिकोण की भाषा मे (In behaviouristic terms) प्राधिकार का अर्थ यह है कि प्रत्येक अधीनस्थ अधिकारी या कर्मचारी अपने उच्चाधिकारी के आदेशानुसार ही अपना व्यवहार नियमित करता है। वह अपने उच्चाधिकारी के आदेशो को बिना किसी आलोचना के स्वीकार कर लेता है तथा उनका पालन करता है।[2]

साराश मे, किसी सगठन मे प्राधिकार के प्रयोग का अर्थ है निर्णय लेना, उन्हे क्रियान्वित करने के लिए अधीनस्थ कर्मचारियो को आदेश व निर्देश देना तथा उनके आचरण व व्यवहार के तरीको को प्रभावित करना। अधीनस्थ अधिकारी तथा कर्मचारी कहाँ तक प्राधिकार को मानते हैं और उसके अनुसार काम करते है, यह प्राधिकार का प्रयोग करने वाले उच्चाधिकारी की सूझ-बूझ, व्यक्तित्व व योग्यता पर निर्भर करता है। समझदार उच्चाधिकारी को चाहिए कि वह सदा अधीनस्थ कर्मचारियो को साथ लेकर कदम उठाये। अभिप्राय यह है कि उसे अधीनस्थ कर्मचारियो का सदा पूरा सहयोग व समर्थन प्राप्त होता रहना चाहिए। इसके लिए यह आवश्यक है कि वह स्वय को उनके आदर व स्नेह के योग्य सिद्ध करे जिससे उसके सगठन मे काम करने वाले सभी व्यक्ति सगठन के उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए तन-मन से कार्य कर सके। उच्चाधिकारी मे यह समझने की क्षमता होनी चाहिए कि उसके सहयोगी व अधीनस्थ कर्मचारी उससे किस प्रकार के नेतृत्व व व्यवहार की आशा रखते है।

---

of the Executive (Cambridge, Mass 1938) Ordway Tead, *The Art of Administration* (N Y, 1951), and Herbert A Simon, *Administrative Behaviour*, Chapter VII pages 123–153 The Role of Authority, John D Millet *Management in the Public Service The Quest for Effective Performance* N Y, 1954, pages 5—16

1 For further details refer to Chester I Barnard, op cit, page 165 Herbert A Simon observes "Authority" may be defined as the power to make decisions which guide the actions of another It is a relationship between two individuals, one "superior", the other "subordinate" The superior frames and transmits decisions with the expectation that they will be accepted by the subordinate. The subordinate expects such decisions, and his conduct is determined by them (Simon, *Administrative Behaviour*, page 125)

2 For full details of this approach refer to Simon *Administrative Behaviour*, pages 127—129, Simon and others, *Public Administration*, Chapters 8 and 9, pages 180—217

जो उच्चाधिकारी यह क्षमता रखता है वह अपने सगठन के सभी सदस्यो का विश्वास-पात्र बन जाता है और अपने प्राधिकार का प्रयोग सरलता व सफलता के साथ कर सकता है।

प्राधिकार व दायित्व में पूर्ण सन्तुलन होना चाहिए
(Authority should be Commensurate with Responsibility) :

किसी भी सगठन के सफल सचालन के लिए यह आवश्यक है कि प्राधिकार और दायित्व मे पूर्ण सन्तुलित अनुपात हो। सगठन के लक्ष्यो की प्राप्ति के लिए उसके अधिकारियो को पर्याप्त प्राधिकार दिये जाने चाहियें। जिस व्यक्ति को किसी कार्य को सम्पन्न करने की जिम्मेदारी सौंपी गई है उसे वे सब शक्तियां व सुविधायें भी प्राप्त होनी चाहियें जो उसके कार्य को सुचारु रूप मे सम्पन्न करने के लिए अनिवार्य है। वह अपनी जिम्मेदारी या दायित्व को कहाँ तक सफलतापूर्वक व कार्य-कुशलता से निभाता है, यह तो बहुत कुछ उसके विवेक और कठिन परिश्रम पर निर्भर करेगा किन्तु उसके कार्य मे आवश्यक प्राधिकार व सुविधाओ के अभाव के रूप मे कोई रुकावट नही आनी चाहिये। इस प्रकार की रुकावट के रहते हुए विवेक व परिश्रम किसी काम न आ सकेंगे। प्रत्येक स्थिति का सामना करने के लिए व्यक्ति के पास उचित कदम उठाने का प्राधिकार होना चाहिए। जब कोई अधिकारी प्राधिकार का प्रयोग करता है तो वह उसके परिणामो के लिए जिम्मेदार होता है, किन्तु यदि उसकी शक्तियाँ उसके कार्यों की प्रकृति को देखते हुए सीमित हैं तो उसकी जिम्मेदारी भी उतनी ही सीमित होगी। कोई भी अधिकारी उस दुष्परिणाम के लिए जिम्मेदार नही ठहराया जाना चाहिए जिसको रोकने मे वह अपनी सीमित शक्तियो या प्राधिकार के कारण असमर्थ था। अतएव शक्ति तथा पूर्ण जिम्मेदारी मे सन्तुलन होना चाहिये और दोनो सुनिश्चित होनी चाहियें।

नेतृत्व
(Leadership)

प्रशासनिक सगठन मे प्राधिकार की समस्या के साथ ही घनिष्ठ सम्बन्ध रखने वाला एक अन्य प्रश्न है, और वह है नेतृत्व का प्रश्न। एक अर्थ मे प्राधिकार (Authority) के प्रयोग के फलस्वरूप अधीनस्थ कर्मचारी आज्ञा-पालक इस कारण भी बन जाते हैं कि प्राधिकार के पीछे कानून व दण्ड का बल रहता है। सकुचित अर्थ मे इस प्रकार प्राधिकार और दण्डात्मक शक्ति (Coercive power) मे कोई भेद नही है। किन्तु औपचारिक दण्डात्मक शक्ति या प्राधिकार के प्रयोग द्वारा सभी व्यक्तियो से आज्ञाओ या आदेशो का पालन करवाना कठिन है। इसके लिये प्राधिकार के प्रयोग के साथ-साथ समझाने-बुझाने, तर्क-वितर्क तथा विचार-विमर्श की प्रक्रियाओ का भी आश्रय लेना पड़ता है। यहाँ सगठन मे अच्छे व सुयोग्य नेतृत्व का महत्व स्पष्ट हो जाता है। नेतृत्व उस प्रक्रिया का नाम है जो एक सगठन सदस्यो से सूझ-बूझ तथा प्रेरणा द्वारा सहयोग प्राप्त करती है शक्ति या बल के प्रयोग द्वारा नही। यह उस प्रभाव का नाम है जो एक सगठन के

सब सदस्यों को स्वतः ही संयुक्त व सहयोगिक रूप से उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए प्रयास करने की प्रेरणा देता है। प्रशासन में सफल नेता के अधीनस्थ कर्मचारी नहीं, अनुयायी होते हैं। वह उनसे काम लेने के लिये केवल मात्र दण्डात्मक शक्ति का ही प्रयोग नही करता, इससे पूर्व वह उनके दिमागों व दिलों पर अपने व्यक्तिगत गुणों का प्रभाव डालकर उनका सहयोग व समर्थन प्राप्त करने की चेष्टा करता है। वह संगठन के उद्देश्यों के प्रति पूर्ण निष्ठा का प्रदर्शन करके अन्य कर्मचारियों का विश्वास प्राप्त करने की कोशिश करता है। यदि वह मानसिक रूप से जागरूक है, उसमें आवश्यक मानवीय गुण हैं और उसका चरित्र उच्च व दोष रहित है तो वह ऐसा विश्वास सरलता से प्राप्त कर सकता है।[1] अच्छे प्रशासनिक नेता में अच्छा स्वास्थ्य, उत्साह, सेवा-भाव, ईमानदारी तथा निष्ठा जैसे गुणों का होना अनिवार्य है।[2] कुछ व्यक्तियों का कहना है कि एक प्रशासनिक नेता की वास्तविक विशेषतायें तभी स्पष्ट होती हैं जब वह एक विशिष्ट स्थिति में व्यक्तियों के एक विशिष्ट समूह में कार्य करता है। एक ही नेता को विविध प्रकार की स्थितियों में सफलतापूर्वक काम करने के लिये विविध प्रकार के गुणों की आवश्यकता होती है। यह एक सामान्य कथन है कि शान्तिकाल के प्रधान-मन्त्री में तथा संकटकाल के प्रधान-मन्त्री में भिन्न प्रकार के गुण होने चाहियें।

प्रत्येक प्रशासनिक नेता को देश की राजनीतिक आवश्यकताओं के प्रति जागरूक रहना चाहिये तथा उसमें उत्तरदायित्व की भावना होनी चाहिये। प्रशासनिक संगठन की समस्याओं का निराकरण करते समय उसे जनहित को अपने सामने रखना चाहिये। उसमें 'राजनीतिक विवेक' (Political sense) का होना भी आवश्यक है तथा उसमें देश के राजनीतिक वातावरण को परखने की क्षमता होनी चाहिये। उसका यह भी दायित्व है कि वह अपने संगठन के आन्तरिक संचालन को अधिक से अधिक कार्य-कुशलता (Efficient) बनाए। इसके लिए यह आवश्यक है कि वह संगठन के लक्ष्यों व उद्देश्यों को अच्छी प्रकार समझ सके, तदनुसार निर्णय ले सके, आवश्यकता पड़ने पर प्राधिकार को उचित मात्रा में दूसरों को हस्तान्तरित (Delegate) कर सके और संगठन का पालन करवा सके। निर्णय लेते समय उसे उचित व अनुचित [illegible] चुनाव करना पड़ता है। इसके लिए उसे सावधानी से [illegible] आवश्यक तथ्य [illegible] कठे प्राप्त करने चाहियें। उसे अपने निर्णयों के सम्भावित परिणामों [illegible]

जो उच्चाधिकारी यह क्षमता रखता है वह अपने सगठन के सभी सदस्यो का विश्वास-पात्र बन जाता है और अपने प्राधिकार का प्रयोग सरलता व सफलता के साथ कर सकता है।

प्राधिकार व दायित्व मे पूर्ण सन्तुलन होना चाहिए
(Authority should be Commensurate with Responsibility) :

किसी भी सगठन के सफल सचालन के लिए यह आवश्यक है कि प्राधिकार और दायित्व मे पूर्ण सन्तुलित अनुपात हो। सगठन के लक्ष्यो की प्राप्ति के लिए उसके अधिकारियो को पर्याप्त प्राधिकार दिये जाने चाहियें। जिस व्यक्ति को किसी कार्य को सम्पन्न करने की जिम्मेदारी सौंपी गई है उसे वे सब शक्तियां व सुविधायें भी प्राप्त होनी चाहियें जो उसके कार्य को सुचारु रूप से सम्पन्न करने के लिए अनिवार्य हैं। वह अपनी जिम्मेदारी या दायित्व को कहाँ तक सफलतापूर्वक व कार्य-कुशलता से निभाता है, यह तो बहुत कुछ उसके विवेक और कठिन परिश्रम पर निर्भर करेगा किन्तु उसके कार्य मे आवश्यक प्राधिकार व सुविधाओ के अभाव के रूप मे कोई रुकावट नही आनी चाहिये। इस प्रकार की रुकावट के रहते हुए विवेक व परिश्रम किसी काम न आ सकेंगे। प्रत्येक स्थिति का सामना करने के लिए व्यक्ति के पास उचित कदम उठाने का प्राधिकार होना चाहिए। जब कोई अधिकारी प्राधिकार का प्रयोग करता है तो वह उसके परिणामो के लिए जिम्मेदार होता है, किन्तु यदि उसकी शक्तियाँ उसके कार्यों की प्रकृति को देखते हुए सीमित हैं तो उसकी जिम्मेदारी भी उतनी ही सीमित होगी। कोई भी अधिकारी उस दुष्परिणाम के लिए जिम्मेदार नही ठहराया जाना चाहिए जिसको रोकने मे वह अपनी सीमित शक्तियो या प्राधिकार के कारण असमर्थ था। अतएव शक्ति तथा पूर्ण जिम्मेदारी मे सन्तुलन होना चाहिये और दोनो सुनिश्चित होनी चाहियें।

नेतृत्व
(Leadership)

प्रशासनिक सगठन मे प्राधिकार की समस्या के साथ ही घनिष्ठ सम्बन्ध रखने वाला एक अन्य प्रश्न है, और वह है नेतृत्व का प्रश्न। एक अर्थ मे प्राधिकार (Authority) के प्रयोग के फलस्वरूप अधीनस्थ कर्मचारी आज्ञा-पालक इस कारण भी बन जाते हैं कि प्राधिकार के पीछे कानून व दण्ड का बल रहता है। सकुचित अर्थ मे इस प्रकार प्राधिकार और दण्डात्मक शक्ति (Coercive power) मे कोई भेद नही है। किन्तु औपचारिक दण्डात्मक शक्ति या प्राधिकार के प्रयोग द्वारा सभी व्यक्तियो से आज्ञाओ या आदेशो का पालन करवाना कठिन है। इसके लिये प्राधिकार के प्रयोग के साथ-साथ समझाने-बुझाने, तर्क-वितर्क तथा विचार-विमर्श की प्रक्रियाओ का भी आश्रय लेना पडता है। यहाँ सगठन मे अच्छे व सुयोग्य नेतृत्व का महत्व स्पष्ट हो जाता है। नेतृत्व उस प्रक्रिया का नाम है जो एक सगठन सदस्यो से सूझ-बूझ तथा प्रेरणा द्वारा सहयोग प्राप्त करती है शक्ति या बल के प्रयोग द्वारा नही। यह उस प्रभाव का नाम है जो एक सगठन के

सब सदस्यो को स्वत ही सयुक्त व सहयोगिक रूप से उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए प्रयास करने की प्रेरणा देता है। प्रशासन मे सफल नेता के अधीनस्थ कर्मचारी नही, अनुयायी होते हैं। वह उनसे काम लेने के लिये केवल मात्र दण्डात्मक शक्ति का ही प्रयोग नही करता, इससे पूर्व वह उनके दिमागो व दिलो पर अपने व्यक्तिगत गुणो का प्रभाव डालकर उनका सहयोग व समर्थन प्राप्त करने की चेष्टा करता है। वह सगठन के उद्देश्यो के प्रति पूर्ण निष्ठा का प्रदर्शन करके अन्य कर्मचारियों का विश्वास प्राप्त करने की कोशिश करता है। यदि वह मानसिक रूप से जागरूक है, उसमे आवश्यक मानवीय गुण हैं और उसका चरित्र उच्च व दोष रहित है तो वह ऐसा विश्वास सरलता से प्राप्त कर सकता है।[1] अच्छे प्रशासनिक नेता मे अच्छा स्वास्थ्य, उत्साह, सेवा-भाव, ईमानदारी तथा निष्ठा जैसे गुणो का होना अनिवार्य है।[2] कुछ व्यक्तियो का कहना है कि एक प्रशासनिक नेता की वास्तविक विशेषतायें तभी स्पष्ट होती है जब वह एक विशिष्ट स्थिति मे व्यक्तियो के एक विशिष्ट समूह मे कार्य करता है। एक ही नेता को विविध प्रकार की स्थितियो मे सफलतापूर्वक काम करने के लिये विविध प्रकार के गुणों की आवश्यकता होती है। यह एक सामान्य कथन है कि शान्तिकाल के प्रधान-मन्त्री मे तथा सकटकाल के प्रधान-मन्त्री मे भिन्न प्रकार के गुण होने चाहियें।

प्रत्येक प्रशासनिक नेता को देश की राजनीतिक आवश्यकताओ के प्रति जागरूक रहना चाहिये तथा उसमे उत्तरदायित्व की भावना होनी चाहिये। प्रशासनिक सगठन की समस्याओ का निराकरण करते समय उसे जनहित को अपने सामने रखना चाहिये। उसमे 'राजनीतिक विवेक' (Political sense) का होना भी आवश्यक है तथा उसमे देश के राजनीतिक वातावरण को परखने की क्षमता होनी चाहिये। उसका यह भी दायित्व है कि वह अपने सगठन के आन्तरिक सचालन को अधिक से अधिक कार्य-कुशलता (Efficient) बनाये। इसके लिए यह आवश्यक है कि वह सगठन के लक्ष्यो व उद्देश्यो का अच्छी प्रकार समझ सके, तदनुसार निर्णय ले सके, आवश्यकता पड़ने पर प्राधिकार को उचित मात्रा मे दूसरो को हस्तान्तरित (Delegate) कर सके और सगठन का पालन करवा सके। निर्णय लेते समय उसे उचित व अनुचित का चुनाव करना पड़ता है। इसके लिए उसे सावधानी से सभी आवश्यक तथ्य तथा आंकडे प्राप्त करने चाहियें। उसे अपने निर्णयो के सम्भावित परिणामो का भी

1 For details concerning qualities of Leadership refer Ordway Tead *The Art of Leadership* N Y, 1935, pages 82—83, A W Gouldner (ed) *Studies in Leadership* Harper & Brothers N Y, 1950, John D Millett, *Management in The Public Service*, N Y, 1954, Chapter 2, pages 33—54, some "traits" of Leadership have been enumerated (N B Refer to Ordway Tead "The Art of Leadership and Chester I Barnard *The Functions of the Executive*)

2 Refer to Inadequacies of the Trait Approach', Donald C Rowatt [illegible] *Issues in Public Administration* The MacMillan Co, N Y, 1961, pages 155—175

अनुमान होना चाहिये। उसकी निजी सफलता व उसके सगठन की सफलता काफी हद तक उसके निर्णयो की अच्छाई व उनके उचित क्रियान्वन पर निर्भर करेगी। कानूनो व प्रशासनिक प्रक्रियाओ का अन्वानुकरण असफल नेतृत्व का परिचायक है। सफल नेता को इस भाव से कदम उठाने चाहियें कि "व्यक्ति नियमो के लिए नही बने हैं, नियम व्यक्तियो के लिए बने हैं।" (Rules are for men, not men for rules)। व्यक्तियो के सगठित समूह मे उसे अपनी सच्ची हिस्सेदारी का सबूत देना चाहिये। प्रशासनिक क्षेत्र मे ऐसे नेता कैसे प्राप्त किये जायें ? प्रशासनिक दायित्वो को सफलतापूर्वक निभाने के लिए उन्हे कैसे प्रशिक्षित किया जाये ? नेतृत्व से सम्बन्धित ये दो महत्वपूर्ण प्रश्न हैं।[1] व्यक्ति का नेतृत्व तभी प्रभावशाली होता है जब उसके समूह के सब सदस्य आत्मीयता से यह कहे "यह व्यक्ति हमारा व्यक्ति है, क्योकि यह हमारी ही भाषा मे बोलता है (अर्थात् हमसे अपनत्व व निकटता अनुभव करता है)।"

पद सोपान अथवा क्रमिक प्रक्रिया का सिद्धान्त
(Principle of Hierarchy or Scalar Process)

प्रत्येक सगठन मे पारस्परिक सम्बन्धो की एक रूपरेखा का स्पष्ट निर्धारण होना चाहिए जिससे कि कार्य के प्रवाह मे सुविधा रहे। एक मामूली से व्यावसायिक उद्यम मे एक व्यक्ति नौ या दस व्यक्तियो को आदेश देता है, उनके कार्यों का पर्यवेक्षण (Supervision) तथा देख-रेख करता है। परन्तु एक बडे सार्वजनिक उद्यम (Public enterprise) मे, जहाँ कि हजारो व्यक्ति कार्य करते है, पारस्परिक सम्बन्धो की स्पष्ट रूपरेखा का निर्धारण किया जाना इसलिए आवश्यक होता है जिससे कि सगठन सुचारु रूप से तथा दक्षता के साथ कार्य कर सके।

प्रशासकीय ढाँचे का रूप 'कोण-स्तूप' (Pyramid) अथवा 'पद-सोपान' (Hierarchy) के सदृश होता है जहाँ कि प्रत्येक पदासीन व्यक्ति अपने अधीन पर नियन्त्रण रखता है। सगठन मे कार्यों का अनेक हिस्सो मे विभाजन तथा उप-विभाजन किया जाता है और ये हिस्से (Parts) अधिकाधिक होते जाते हैं। सबसे ऊपर शिखर पर एक व्यक्ति होता है और उससे नीचे को सगठन का ढाँचा अनेक अनुभागो (Sections) मे तथा अन्त मे अनेक कर्मचारियो मे बिखरता चला जाता है जो कि सगठन के आधार होते हैं। सगठन पद-सोपान (Hierarchy) के समान अथवा श्रेणी-बद्ध (Graded) हो जाता है जो कि अनेक क्रमिक स्तरो से युक्त होता है तथा जिसमे प्रत्येक अधीन व्यक्ति अपने से एक दम ऊपर के कर्मचारी के प्रति उत्तरदायी होता है और उसके माध्यम से ही वह शिखर तक के अन्य उच्च कर्मचारियो के प्रति

---

1 For further details about the qualities of leadership also refer to T N Whitehead, *Leadership in Democratic Society*, Cambridge, Mass, Harvard University Press, 1936), Marshall E Dimock, *The Executive in Action* (N Y, Harper, 1945)

उत्तरदायी होता है। जब हम यह कहते हैं कि सगठन पद-सोपान के सिद्धान्त पर आधारित है तो इसका मतलब होता है कि सत्ता (Authority) शिखर से नीचे की ओर क्रमश उतरती चली जाती है।

सगठन मे पद-सोपान का सिद्धान्त (Principle of hierarchy) एक अन्य नाम, अर्थात् "क्रमिक प्रक्रिया" (Scalar process) के नाम मे भी विख्यात है अब। हम यह देखेंगे कि क्रमिक प्रक्रिया का ठीक-ठीक अर्थ क्या है ? जेम्स मूनी *(James Mooney)* के अनुसार

"सगठन मे क्रमिक-सिद्धान्त (Scalar principle) का रूप वही होता है जिसे कि कभी-कभी पद-सोपान का सिद्धान्त कहा जाता है। परन्तु परिभाषा सम्बन्धी विभिन्नताओ से बचने के लिए यहाँ क्रमिक (Scalar) ही अधिमान्य (Preferable) है। क्रम (Scale) का मतलब है चरणो की पक्ति (A Series of Steps), अर्थात् श्रेणीबद्ध (Graded)। सगठन मे इसका अर्थ है कर्त्तव्यो को श्रेणी-बद्ध करना (Grading of duties), किन्तु विभिन्न कार्यों के अनुसार नही . . . बल्कि सत्ता तथा उसके तुल्य उत्तरदायित्व की मात्राओ के अनुसार। सुविधा की दृष्टि से सगठन के इस रूप को हम क्रमिक-शृ खला (Scalar chain) कहेगे . . । जब कभी भी हम कोई ऐसा सगठन पाते हैं, चाहे वह दो व्यक्तियो का ही क्यो न हो, जिसमे व्यक्ति उच्च तथा अधीनस्थ अथवा प्रवर तथा अवर (Superior and Subordinate) के रूप मे सम्बन्धित होते हैं तो उसमे क्रमिक सिद्धान्त वर्तमान होता है। यह क्रमिक शृ खला समन्वय की ऐसी व्यापक क्रिया का निर्माण करती है जिसके द्वारा समन्वय करने वाली सर्वोच्च सत्ता सगठन के सम्पूर्ण ढाँचे मे सक्रिय एव प्रभावशाली हो जाती है।"

सगठन के क्रमिक सिद्धान्त (Scalar principle) की उत्पत्ति क्रम (Scale) शब्द से हुई है जिसमे तात्पर्य चरणो की पक्ति (A Series of Steps) अर्थात् श्रेणी-बद्ध (Graded) होने से है। और जब वह सगठन मे लागू होता है तो इसका मतलब होता है कि सत्ता (Authority) प्रबन्ध के शिखर-स्थान से अवरोही क्रम (Desending order) मे बहती है, अर्थात् क्रमिक रूप मे (Step by Step)। सगठन एक सीढी के समान है जिसमे कि किसी भी व्यक्ति को क्रमिक रूप मे चढना या उतरना पडता है। इसी प्रकार, सगठन के पद-सोपान (Hierarchy) मे व्यक्ति को क्रम मे चढना या उतरना होता है। क्रमिक व्यवस्था (Scalar System) की आत्मा आदेश की एकता (Unity of Command) है। क्रम के शिखर पर एक बिन्दु (Point) (अथवा मुख्य निष्पादक) होता है जहा कि सत्ता के सूत्र (Lines of Authority) तथा उत्तरदायित्व (Responsibility) केन्द्रित होते हैं। इसमे सत्ता के सूत्र ऊपर तथा नीचे दोनो ओर जाते है जिससे कि हर एक कर्मचारी अन्तिम रूप मे सगठन के अध्यक्ष (Head) के प्रति जवाबदेह हो जाता है और उसकी आज्ञायें (Orders) प्राप्त करने मे समर्थ हो जाता है। क्रमिक व्यवस्था के अन्तर्गत सगठन एक 'कोणस्तूप'

(Pyramid) के सदृश होता है जिसमे कि सर्वोच्च नेतृत्व शिखर पर होता है सत्ता क्रमिक रूप मे आगे बढती है और जिसके तल पर विस्तृत आधार होता है। सत्ता की क्रमिक-शृ खला (Scalar Chain) से तात्पर्य है कि प्रत्येक कार्यवाही शृ खला की प्रत्येक कडी मे से होकर गुजरनी चाहिये, चाहे उस कार्यवाही की दिशा ऊपर की ओर को हो अथवा नीचे की ओर को। चित्र के रूप मे इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है।

एक पद सोपान
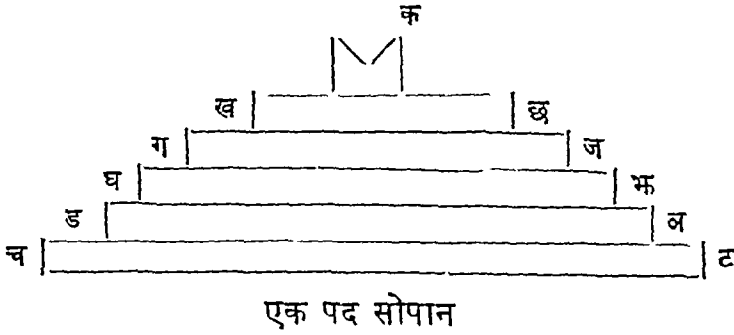
ख क के अधीन है, ग ख के अधीन (Subordinate) है, किन्तु ग भी क तथा ख के अधीन है। यदि क के द्वारा ग को कोई आज्ञा दी जाती है तो वह आज्ञा (Order) ख के द्वारा आनी चाहिये, और यदि ग को कोई बात क से कहनी है तो उसे वह ख के माध्यम से कहनी चाहिए। घ ग के अधीन है परन्तु वह ख और क आदि के भी अधीन है। इस प्रकार एक शृ खला या जजीर के सदृश, इस व्यवस्था मे सत्ता का सूत्र क्रमिक रूप मे ऊपर तथा नीचे दोनो ओर को जाता है। च किसी कार्य के लिए सीधे क के पास नही पहुंच सकता। उसे ङ घ ग तथा ख के माध्यम से क तक पहुँचना होगा। इसी प्रकार यदि क च को किसी भी प्रकार का आदेश ख ग घ और ङ के माध्यम से देगा। प्रत्येक आज्ञा अथवा पत्र-व्यवहार 'उचित मार्ग द्वारा (Through Proper Channel) जाना चाहिये अर्थात् तत्काल उच्च अधिकारी (Immediate Superior) द्वारा शिखर अधिकारी तक क्रम से जाना चाहिए। एक लिपिक (Clerk) प्रधान लिपिक (Head Clerk) के अधीन है, प्रधान लिपिक एक कार्यालय अधीक्षक (Office Superintendent) के अधीन है तथा कार्यालय अधीक्षक अनुभाग-अधिकारी (Section Officer) के अधीन है आदि-आदि। यदि लिपिक को कोई बात अनुभाग अधिकारी से कहनी है तो वह प्रधान लिपिक के माध्यम से कार्यालय अधीक्षक तक जायेगा और तब उसकी मार्फत अनुभाग अधिकारी तक पहुचेगा। इसी प्रकार यदि अनुभाग अधिकारी लिपिक को कोई आदेश देना चाहता है ता वह आदेश कार्यालय अधीक्षक की मार्फत प्रधान लिपिक तक पहुचेगा और तब उसके माध्यम मे लिपिक तक।

क्रमिक प्रक्रिया अपना निजी सिद्धान्त (Principle), प्रक्रिया (Process) तथा प्रभाव (Effect) रखती है। वे इस प्रकार हैं (१) नेतृत्व (Leadership)

(२) सत्ता का प्रत्यायोजन (Delegation of authority), तथा (३) कार्यात्मक परिभाषा (Functional definition)। सिद्धान्त है नेतृत्व, प्रक्रिया है सत्ता का प्रत्यायोजन और प्रभाव है कार्यात्मक परिभाषा।

समन्वय या समायोजन
(Coordination)

'विशेषीकरण' (Specialization) तथा 'कार्य-विभाजन' (Division of work) हर सगठन की विशेषता होती है। सगठन के भिन्न-भिन्न सदस्य भिन्न-भिन्न कार्य सम्पन्न करते है। यह विशेषीकरण तथा कार्य-विभाजन सुविधा की दृष्टि से किया जाता है। किन्तु सगठन के उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए उसके सभी सदस्यो मे 'समूह भाव' (Team spirit) तथा सहयोग का होना अनिवार्य है। हर सगठन मे यह प्रयास करना आवश्यक है कि कार्यों मे अतिव्यापन (Overlapping) तथा दोहरापन (Duplication) न हो तथा सभी कर्मचारी व अधिकारी अधिक से अधिक समूह भाव से कार्य करे। विशेषीकरण तथा कार्य-विभाजन स्वय मे कोई साध्य या ध्येय (End) नही है। उनका महत्व तो अधिकतम लाभप्रद परिणाम की प्राप्ति के लिये प्रयुक्त साधन (Means) के रूप मे ही है। अधिकतम लाभप्रद परिणाम की प्राप्ति तभी सम्भव है जब हर व्यक्ति का कार्य अन्य व्यक्तियो के अनावश्यक हस्तक्षेप से रहित हो, पर साथ ही यह भी जरूरी है कि सगठन का हर सदस्य अपना-अपना काम करते हुए सगठन के सामान्य (Common) उद्देश्य की प्राप्ति मे योगदान दे। ऐसा तब हो सकता है जब भिन्न-भिन्न व्यक्तियो की भिन्न-भिन्न गतिविधियो या कार्यों मे समायोजन या समन्वय स्थापित करने का उचित प्रबन्ध हो। दूसरे शब्दो मे, सब गतिविधियो का स्वरूप भिन्न रहते हुए भी उनका अन्तिम उद्देश्य एक ही होना चाहिये। वे एक दूसरे के विरुद्ध न हो, पृथक् रहते हुए भी एक दूसरे की पूरक हो। इस दृष्टि से समायोजन (Coordination) को सगठन का प्राथमिक सिद्धान्त (First principle) बताया गया है, अन्य सब सिद्धान्त गौण है।[1]

समायोजन का उद्देश्य सगठन के विभिन्न भागो के सम्बन्धो को इस प्रकार निर्धारित करना होता है कि वे पृथक्-पृथक् कार्य करते हुए भी 'पूर्ण सगठन' (Whole) के परिणाम या उत्पादन (Product) मे अधिकतम योगदान कर सके। यही सक्षेप मे समायोजन का अर्थ है। सघर्षों को दूर करके सगठन कार्यों मे समन्वय तथा ऐक्य

1 Mooney and Reiley describing the importance of coordination wrote in Onward Industry that 'This term expresses the principles of organization in to o nothing less This does not mean that there are no subordinated principles it simply means that all the others are contained in this one of coordination The others are simply the principles through which co-ordination operates and thus becomes effective page 19

(Unity of action) लाना ही इसका उद्देश्य है।[1] दूसरे शब्दो मे, सामूहिक प्रयास के सुव्यवस्थित प्रवन्ध का ही नाम समायोजन है।

समायोजन स्थापना की विधियाँ
(Methods of achieving Coordination)

किसी सगठन मे समायोजन स्थापित करने का एक तरीका यह है कि उसके सदस्यो की गतिविधियो को इस प्रकार सम्बद्ध किया जाये कि अन्योन्याश्रिता (Inter-dependence) तथा पारस्परिक सहयोग की भावना का विकास हो सके। इस प्रकार का समायोजन सगठन के अध्यक्ष के आदेशो, निर्देशो व आज्ञा-पत्रो द्वारा लाया जाता है। सगठन के अध्यक्ष का औपचारिक प्राधिकार (Formal authority) कार्यों मे ऐक्य उत्पन्न करता है किन्तु केवल औपचारिक प्राधिकार ही समायोजन की प्राप्ति के लिये काफी नही है। कुछ अन्य विधियो का भी प्रयोग आवश्यक है। अन्तर्विभागीय बैठके (Inter-departmental meetings) तथा सम्मेलन अन्तर्विभागीय समितियाँ और समायोजन हेतु निर्मित विशिष्ट सस्थायें (Specialized bodies) इस प्रकार की कुछ अन्य विधियाँ है। इन सब विधियो द्वारा सगठन के सदस्यो मे उद्देश्य या ध्येय के एकत्व (Singleness of purpose) की भावना पैदा करने का प्रयास किया जाता है। इससे समायोजन की स्थापना सरल हो जाती है। भारत मे केन्द्र तथा राज्यो मे प्रत्येक प्रशासनिक स्तर पर समायोजन हेतु तरह-तरह के सम्मेलन आयोजित किये जाते हैं। राज्यपालो व मुख्य-मन्त्रियो के सम्मेलन तथा राष्ट्रीय विकास-परिषद् (National Development Council) एव क्षेत्रीय परिषदो (Zonal Councils) के सम्मेलन प्रतिवर्ष समायोजन के उद्देश्य से ही आयोजित किये जाते हैं। राज्यो मे विभागाध्यक्षो, विभागीय सचिवो तथा जिलाधीशो के सम्मेलन करने का भी यही उद्देश्य रहता है। विचारो का लिखित तथा अलिखित आदान-प्रदान समायोजन की क्रिया को सरल बनाता है। सगठन मे अनौपचारिक सम्बन्धो का विकास भी इसमे सहायता पहुचाता है। विभिन्न सरकारी विभागो मे बहुत सी 'स्टॉफ सस्थाओ (Staff agencies), ब्यूरो तथा आयोगो का यही उद्देश्य रहता है। यह एक आम शिकायत है कि भारत सरकार के विभिन्न विभागो की गतिविधियो मे समायोजन का अभाव है। लोक-प्रशासन के आकार मे विस्तार तथा प्रशासनिक अधिकारी-वर्ग की सख्या मे वृद्धि भी समायोजन के अभाव के लिए काफी हद तक उत्तरदायी है। अनेक बार आयोगो व अन्य प्रशासनिक सस्थाओ की स्थापना बिना यह सोचे-समझे कर दी जाती है कि उनका सम्पूर्ण प्रशासन पर क्या प्रभाव होगा। किन्तु समायोजन के मार्ग मे

---

1 Some definitions of co ordination Charlesworth, J C observes, co-ordination "is the integration of the several parts into an orderly whole to achieve the purpose of the undertaking" *Governmental Administration*, Harper and Bros, N Y, 1951 W H Newman observes Co-ordination is "the orderly synchronisation of efforts to provide the proper amount, timing and direction of execution resulting in harmonious and unified actions to a stated objective' *Administrative Action* Prentice Hall Inc, N Y, 1953, *page 403*

सबसे बडी बाधा देश के प्रशासनिक सगठन के सदस्यो मे एक सामान्य उद्देश्य की अनुभूति (A sense of common purpose) का न होना है। सगठन के अध्यक्ष का यह कर्तव्य है कि वह सदस्यो मे इस प्रकार की एक सकारात्मक भावना (positive spirit) पैदा करने का प्रयास करे। कभी-कभी भावुकता भरी अपीलो (Emotional appeals) का भी प्रयोग करना पडता है।

हस्तान्तरण
(Delegation)

किसी भी जटिल सगठन के कार्य-कुशल सचालन के लिये यह आवश्यक है कि आदेश की शृ खला (Chain of Command) मे हर स्तर पर शक्ति हस्तान्तरण की व्यवस्था रहे। हस्तान्तरण की प्रक्रिया द्वारा एक उच्चाधिकारी किसी अधीनस्थ अधिकारी को निर्णय लेने तथा कार्य सम्पन्न करने का प्राधिकार सौंप देता है। हस्तान्तरण का अर्थ है व्यक्ति को अपने दायित्वो को निभाने के लिये व्यक्तिगत विवेक के अनुसार निर्णय लेने की छूट (Discretion) देना। सगठन ऊपर से नीचे तक उच्चाधिकारियो तथा अधीनस्थ अधिकारियो के पारस्परिक सम्बन्धो की शृ खला के स्वरूप का नाम है। इस शृ खला मे अनेक स्तरो पर उच्चाधिकारियो के लिए अपने प्राधिकार तथा दायित्वो का कुछ भाग अधीनस्थ अधिकारियो को हस्तान्तरित करना आवश्यक हो जाता है। हस्तान्तरित प्राधिकार के प्रयोग के लिए अधीनस्थ अधिकारी उच्चाधिकारी के प्रति उत्तरदायी होता है। शक्ति या प्राधिकार के हस्तान्तरण का अभिप्राय यह नही कि उच्चाधिकारी ने उसे सदा के लिये पूर्णतया त्याग दिया है। मौलिक रूप से हस्तान्तरण के बाद भी प्राधिकार पूर्णरूपेण उसी का रहता है, क्योकि जिस अधीनस्थ अधिकारी को वह हस्तान्तरित किया गया है वह उसके प्रयोग के लिए उच्चाधिकारी के नियन्त्रण तथा उसकी देख-रेख मे रहता है। प्राधिकार का हस्तान्तरण करने वाले उच्चाधिकारी की यह जिम्मेदारी ज्यो की त्यो बनी रहती है कि वह यह देखे कि जिस अधीनस्थ अधिकारी को प्राधिकार हस्तान्तरित किया गया है वह उसका उचित प्रयोग कर रहा है या नही। वास्तव मे हस्तान्तरण का उद्देश्य प्राधिकार को विभिन्न स्तरो पर सुविधा की दृष्टि से वितरित करना है। हस्तान्तरण करने वाले उच्चाधिकारी तथा हस्तान्तरित शक्ति प्राप्त करने वाले अधीनस्थ अधिकारी मे एक विशेष प्रकार का सम्बन्ध स्थापित हो जाता है, वह यह है कि अधीनस्थ अधिकारी को निर्णय लेने की 'छूट' तो निस्सन्देह प्रदान की गई है परन्तु 'छूट' देने वाले उच्चाधिकारी का यह पूरा अधिकार है कि वह उस 'छूट के प्रयोग पर नियन्त्रण रखे। अधीनस्थ अधिकारी अपने प्रत्येक कार्य के लिए उच्चाधिकारी के प्रति जिम्मेदार होगा। शक्ति या प्राधिकार का यह हस्तान्तरण एक उच्च इकाई (Unit) से निम्न इकाई की ओर या एक उच्चाधिकारी से निम्न अधिकारी की ओर होता है। उच्च इकाई या उच्च अधिकारी को हस्तान्तरण का स्वरूप बदलने

सशोधित करने तथा अपनी इच्छानुसार हस्तान्तरित शक्ति वापिस लेने का पूरा अधिकार होता है।

हस्तान्तरण की आवश्यकता तथा इसके लाभ स्वयसिद्ध हैं। सगठन का अध्यक्ष तथा अधिकाश उच्चाधिकारी इस स्थिति मे नही होते कि वे स्वय उस सम्पूर्ण शक्ति का प्रयोग कर सकें जो कानून द्वारा उनको प्रदान की गई है। अपने काम को सुचारु रूप से सम्पन्न करने के लिये उन्हे अपनी कानूनी शक्ति का कुछ भाग निम्न अधिकारियो को हस्तान्तरित करना ही पडता है। हस्तान्तरण के फलस्वरूप उच्चाधिकारी छोटी-छोटी, नित्य प्रति की मामूली गतिविधियो तथा समस्याओ से छुटकारा पा जाता है और वह इस प्रकार अपना मूल्यवान समय अधिक महत्वपूर्ण बडी समस्याओ पर केन्द्रित कर सकता है। इसके अतिरिक्त अधीनस्थ अधिकारी को भी हस्तान्तरण से लाभ पहुँचता है। हस्तान्तरित प्राधिकार का प्रयोग करने से उसमे उत्तरदायित्व की भावना का विकास होता है।

हस्तान्तरण के परिणामस्वरूप सगठन के हर सदस्य मे साझेदारी (Partnership) तथा जिम्मेदारी की भावनायें पैदा होती हैं। हस्तान्तरण के अभाव मे अध्यक्ष का कार्य-बोझ बढ जाता है और वह अपने सगठन के क्रिया-कलापो पर प्रभावशाली नियन्त्रण करने मे असमर्थ हो जाता है। हस्तान्तरण द्वारा ही वह अपने समय का सदुपयोग कर सकता है और सगठन पर प्रभावशाली नियन्त्रण रख सकता है। हस्तातरण इस प्रकार सगठन की कार्य-कुशलता मे वृद्धि करता है। जब हर अधिकारी व कर्मचारी के पास थोडी बहुत हस्तान्तरित शक्ति होती है तो उसे यह आभास होता है कि सगठन का वह भी एक मूल्यवान सदस्य है और उसके कार्य का भी महत्व है। यह आभास उसमे आत्म-विश्वास तथा सगठन के प्रति निष्ठा पैदा करता है। उसे यह महसूस होता है कि उसकी योग्यता का मान तथा आदर हो रहा है। हस्तान्तरण से उच्चाधिकारी, निम्नधिकारी तथा सम्पूर्ण सगठन सभी लाभान्वित होते हैं।

किन्तु बहुत से सगठनो के अध्यक्ष तथा उच्चाधिकारी हस्तान्तरण के लाभो को नही समझ पाते। बहुत से उच्चाधिकारी अधिक से अधिक शक्तियाँ अपने ही हाथो मे सचित देखना चाहते हैं। वे शक्ति का हस्तान्तरण करते हुए सकोच या अनिच्छा का प्रदर्शन करते हैं। उन्हे यह आशका रहती है कि ऐसा करने से अधीनस्थ अधिकारियो के समक्ष उनकी स्थिति कमजोर पड जायेगी। कुछ उच्चाधिकारी यह भी समझते हैं कि सारी योग्यता उन्ही के पास है, सभी अधीनस्थ अधिकारी अयोग्य है, उन्हे शक्ति हस्तान्तरित करना सगठन को कमजोर बनाना है। ऐसे उच्च अधिकारियो पर यह विचार हावी रहता है कि यदि उन्होने अपनी सम्पूर्ण शक्ति का स्वय प्रयोग नही किया तो सारा सगठन क्षत-विक्षत और अस्त-व्यस्त हो जायेगा। ऐसे उच्चाधिकारियो मे अपनी योग्यता का अतिशयोक्तिपूर्ण चित्र देखने तथा अधीनस्थ अधिकारियो की योग्यता को भी अयोग्यता के रूप मे देखने की प्रवृत्ति पनपने लगती है। ये अविश्वासी जीव ही हस्तान्तरण के कटुतम शत्रु हैं।

हस्तान्तरण के मार्ग मे उपरोक्त बाधाओ के रहते हुये भी अधिकाश व्यक्ति इसकी आवश्यकता को स्वीकार करते हैं। हस्तान्तरण औपचारिक (Formal) भी होते हैं और अनौपचारिक (Informal) भी। उच्चाधिकारी या तो लिखित रूप मे प्राधिकार का हस्तान्तरण करता है या अधीनस्थ अधिकारी को बुलाकर मौखिक रूप से उसे कुछ शक्ति सौप सकता है। शक्ति के हस्तान्तरण का तरीका कुछ भी हो, उच्चाधिकारी को हस्तान्तरित शक्ति के प्रयोग पर नियन्त्रण रखने के लिए कुछ प्रबन्ध अवश्य करना पडता है। हस्तान्तरण का उद्देश्य ही नष्ट हो जायेगा यदि उस पर नियन्त्रण तथा देखभाल का अकुश नही होगा। प्राधिकार के हस्तान्तरण के, सक्षेप मे, ये कुछ पहलू हैं।

निर्णय लेना
(Decision Making)

निर्णय लेने की प्रक्रिया को प्रशासन का हृदय कहा गया है। प्रशासन का उद्देश्य सरकारी नीतियों को क्रियान्वित करना है। किन्तु यह कोई सरल कार्य नही है। इस कार्य को सम्पन्न करने के लिए प्रशासक को विभिन्न मार्गों मे से सर्वोत्तम मार्ग को चुनना पडता है। ऐसा चुनाव करना स्वय एक कठिन कार्य है। जब अनेक प्रकार के मार्ग सामने होते हैं तो प्रशासक के लिए उचित निर्णय लेना एक कठिन समस्या बन जाती है।[1]

एक प्रशासक को बहुत सी दुरुह और पेचीदा समस्याओ का निराकरण करना होता है। इसका अभिप्राय यह है कि उसे समय-समय पर महत्वपूर्ण निर्णय लेने पडते हैं। अपने सगठन के किसी भी कार्यक्रम को क्रिया के रूप मे परिणित करने से पूर्व उसे एक निश्चित निर्णय पर पहुँचना होता है। प्रशासन एक मानवीय गतिविधि (Human activity) है और सगठन अनेक व्यक्तियो की सहयोगिक, सामूहिक गतिविधि का नाम है, इसलिए निर्णय लेने की प्रक्रिया मे मानवीय व्यवहार (Human behaviour) के बहुत से तत्व सम्मिलित होते है।

जैसा पहले कहा गया है, जब एक प्रशासक को कोई निर्णय लेना होता है तो उसे अनेक रास्तो मे किसी एक का चुनाव करना होता है जो कि एक कठिन कार्य है। यदि हर कार्य मे एक ही स्पष्ट तथा सुनिश्चित चुनाव होता तो निर्णय लेना अत्यन्त सरल होता। किन्तु निर्णय लेने की प्रक्रिया मे मानवीय तत्वो के रहते हुए ऐसा असम्भव है। निर्णय लेते समय अनिवार्यत किसी एक मार्ग को चुनना पडता है तथा अन्य मार्गों को अस्वीकृत करना पडता है। यह कार्य कठिन इसलिए है कि निर्णय

लेने वाले व्यक्ति को अपने विवेक का बहुत सावधानी से प्रयोग करना पडता है। एक उचित तथा ठीक निर्णय पर पहुँचने के लिए उसे अनेक प्रकार की सूचनायें तथा तथ्य एकत्रित करने पडते हैं। जिस प्रश्न या स्थिति पर निर्णय लेना है उससे सम्बन्धित हर पहलू की जानकारी उसके पास होनी चाहिये। जब तथ्य तथा सूचनायें एकत्रित हो जाये तो उसे उनका वर्गीकरण व निरीक्षण करना होता है। एक रास्ते की अन्य रास्तो के साथ उसे तुलना करनी पडती है तथा सम्भावित परिणामो पर विचार करना पडता है। उसे अपने चुनाव के सभी सम्भावित परिणामो के बारे मे पहले से ही सोच लेना चाहिये। यह इसलिए आवश्यक है कि परिणामो पर विचार किये बिना निर्णय लेने से अक्सर कदम गलत दिशा मे उठ जाते हैं। अत निर्णय लेने की प्रक्रिया मे भावी परिणामो के पूर्व अध्ययन को काफी बल तथा महत्व दिया जाता है। प्रत्येक ऐसा निर्णय जो सम्भावित परिणामो पर विचार किये बिना लिया गया है, एक गलत तथा हानिकारक निर्णय है।

जब परिणामो का पूर्व निरीक्षण हो चुके तो विभिन्न परिणामो का तुलनात्मक मूल्याकन करना पडता है। यहाँ निर्णय लेने की प्रक्रिया मे आदर्शों (Values) का प्रश्न निहित है। अनेक बार निर्णय लेने की प्रक्रिया मे भाग लेने वाले विभिन्न अधिकारियो मे आदर्शों सम्बन्धी मतभेद उठ खडे होते हैं। जब निर्णय लेने की प्रक्रिया मे यह प्रश्न पैदा हो जाये कि किस परिणाम को प्राथमिकता दी जाये तो 'मूल्याकन' की क्रिया प्रारम्भ होती है। अनेक बार प्रतियोगी आदर्शों मे से किसी एक आदर्श का चुनाव प्रशासक को करना पडता है। ऐसे अवसरो पर 'साध्य' व 'साधन' तथा 'तथ्य' एव 'आदर्शों' के मध्य एक महत्वपूर्ण विवाद उठ खडा होता है। तब विवेक (Rationality) के जरिये ही विवाद का निर्णय किया जाता है। विवेक यह बताता है कि विभिन्न मार्गों के परिणामो का मूल्याकन करके सही मार्ग का चुनाव कैसे करना चाहिये। हर प्रशासक से आशा की जाती है कि निर्णय लेते समय वह अधिकतम विवेक का प्रयोग करेगा। किन्तु विवेकपूर्ण चुनाव के मार्ग मे भी अनेक बाधायें होती हैं। मानवीय व्यवहार मे कई बार भावुकतापूर्ण व अविवेकपूर्ण तत्व अधिक शक्तिशाली बन जाते हैं। सर्वश्रेष्ठ निर्णय लेने के लिए प्रशासक को चाहे कितनी भी आवश्यक सुविधायें, आकर्षक सुचनायें क्यो न प्रदान कर दी जायें, उसका निर्णय उसकी व्यक्तिगत पसन्दगियो व नापसन्दगियो से अवश्य प्रभावित होगा। उसका निर्णय उसके मानसिक झुकावो से अछूता नही रह सकता। ऐसे मानवीय तत्व निर्णय लेने की प्रक्रिया से अलग नही किये जा सकते। कभी-कभी किसी समस्या पर निर्णय लेने के लिए जो आवश्यक जानकारी उपलब्ध होनी चाहिए वह अपूर्ण रह जाती है। कभी-कभी प्रशासक अपने किसी निर्णय के परिणामो का ठीक-ठीक अन्दाज नही लगा पाता। इन सब कठिनाइयो के कारण प्रशासनिक निर्णय कभी-कभी पक्षपातपूर्ण तथा

अधूरे तथ्यो, परिणामो के अपर्याप्त अनुमान तथा प्रशासक के व्यक्तिगत पूर्वाग्रहो (Prejudices) इत्यादि के जाले मे ही उलझ कर रह जाते है और इस प्रकार हानिकारक सिद्ध होते हैं ।[1]

संचार
(Communication)

सचार की उचित व्यवस्था के अभाव मे कोई भी प्रशासनिक सगठन कार्य नही कर सकता । सगठन मे आन्तरिक सहयोग तथा समायोजन (Coordination) की प्राप्ति के लिए सचार व्यवस्था का होना अत्यधिक आवश्यक है । सगठन मे प्राधिकार के प्रयोग के लिए इसका महत्व 'केन्द्रीय' है । उच्चाधिकारियो द्वारा जो निर्णय लिए जाते हैं, वे यदि ठीक-ठीक अधीनस्थ अधिकारियो तक नही पहुचाये जायेंगे तो उनको या तो क्रियान्वित ही नही किया जायेगा या विकृत रूप मे क्रियान्वित किया जायेगा । किन्तु सचार-व्यवस्था से अभिप्राय निर्णयो को अधीनस्थ अधिकारियो तक पहुँचाने मात्र से नही है । इससे पूर्व कि किसी निर्णय को क्रियान्वित करने के लिए कोई कदम उठाया जाये यह आवश्यक है कि सम्बन्धित अधिकारीगण उसे भली प्रकार समझ ले । इन अधिकारियो को विस्तार से यह समझा देना चाहिए कि क्रियान्वित किये जाने वाले निर्णय या निर्णयो का क्या महत्व है, उनके पीछे क्या ध्येय है तथा किन कारणो से वे निर्णय आवश्यक हो गये थे । उनका क्रियान्वन तभी कार्य-कुशलता से हो सकेगा । सचार का उद्देश्य इस प्रकार तरह-तरह के मस्तिष्को को एक सामान्य उद्देश्य की प्राप्ति के लिये एक दूसरे के निकट लाना होना चाहिये । सचार केवल सूचना प्रसारण ही नही है, यह वह प्रक्रिया है जिससे सगठन के सदस्यो मे पारस्परिक सहिष्णुता व आदान-प्रदान की भावनायें विकसित की जाती हैं ।

प्रत्येक सगठन मे सचार-व्यवस्था एक दुतरफे यातायात (Two way traffic) के समान होती है । इतना ही काफी नही है कि उच्चाधिकारी निर्णयो को अधीनस्थ कर्मचारियो तक निर्देशो इत्यादि द्वारा पहुचाये । अधीनस्थ अधिकारी तथा कर्मचारी भी तथ्य, आंकडे तथा सूचनाये उच्चाधिकारियो तक पहुँचाते है । वस्तुत उच्चाधिकारी श्रेष्ठ निर्णय तभी ले सकते है जब उन्हे प्रत्येक परिस्थिति, तथ्य तथा सूचना का ज्ञान हो । इस ज्ञान के अभाव मे उनके निर्णय निरर्थक साबित होंगे । सचार इस प्रकार ऊपर से नीचे तथा नीचे से ऊपर दोनो दिशाओ मे होता है । निर्देश तथा आदेश ऊपर से नीचे आते है और तथ्य एव आंकडे नीचे से ऊपर जाते है । सचार [illegible] इस प्रकार समायोजन स्थापना, पारस्परिक सहिष्णुता तथा उचित निर्णय

---

1 Also refer to G R Terry, *Principles of Management*, Illinois, Richard D Irwin Inc 1956, William J Gore, and Fred S Silander "A Bibliographical Essay in Decision-Making", 4, Administrative Science Quarterly (June 1959), pages 97-121 and Special Issue on Decision Making", 3 Administrative [illegible] Quarterly, December, 1958

लेने और अधिकारियो द्वारा उनके प्रभावशाली क्रियान्वन के लिए अत्यधिक आवश्यक है ।[1]

प्रत्येक सगठन मे सचार, औपचारिक' तथा 'अनौपचारिक', दोनो प्रकार का होता है। प्रत्येक सगठन मे ऊपर से नीचे निर्देश तथा आदेश भेजने की एक औपचारिक व्यवस्था रहती है। उच्चाधिकारियो तथा निम्नाधिकारियो के पारस्परिक सम्बन्धो को निर्धारित करते समय उनमे सचार की रूपरेखा भी स्पष्ट कर दी जाती है। सगठन की 'आचरण सहिता' (Code of Conduct) अथवा 'नियमावली' मे इसका उल्लेख रहता है। यह स्पष्ट कर दिया जाता है कि कौन किसको आदेश देगा तथा कौन किसके प्रति उत्तरदायी होगा। औपचारिक सचार-व्यवस्था मे साधारणतया लिखित रूप से आदेशो, सूचनाओ इत्यादि का आदान-प्रदान किया जाता है।

किन्तु हर सगठन मे सचार का यह औपचारिक तरीका ही पर्याप्त नही समझा जाता। समस्याओ को मानवीय धरातल पर समझने व समझाने के लिए उपरोक्त औपचारिक सचार विधि अत्यधिक शुष्क है। निर्णयो से सम्बन्धित सम्पूर्ण जानकारी को दूसरो तक पहुचाने मे यह विधि अपर्याप्त है। फलस्वरूप प्रत्येक सगठन मे एक अनौपचारिक सचार-व्यवस्था का विकास अवश्यम्भावी हो जाता है। यह औपचारिक सचार-व्यवस्था की पूरक होती है। प्रत्येक सगठन के सदस्य औपचारिक रूप से निर्धारित सम्बन्धो के दायरे से बाहर कुछ अनौपचारिक सम्पर्क तथा सम्बन्ध बना लेते हैं। उनके पारस्परिक व्यक्तिगत सम्बन्ध अनौपचारिक सचार के साधन बन जाते है। अनौपचारिक सम्बन्धो तथा सम्पर्कों से कई बार गप्पो व बाजारू अफवाहो की जानकारी सरलता से हासिल की जा सकती है। उनका उत्तर फिर तथ्य प्रस्तुत करके दिया जा सकता है। सचार-व्यवस्था मे दो पक्ष होते हैं—एक भेजने वाला व एक प्राप्त करने वाला। सचार नियमो, उपनियमो, पत्रो, निर्देशो तथा प्रतिवेदनो (Reports) का रूप ले सकता है। सचार-व्यवस्था का प्रभावशाली होना उसके परिणामो पर निर्भर है। अगर निर्दिष्ट उद्देश्य प्राप्त हो जाते हैं तो सचार-व्यवस्था को सफल समझिये, अन्यथा नही। और निर्दिष्ट उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए सचार स्पष्ट तथा सन्देह रहित होना चाहिए। सन्देश-सचार के लिए प्रयुक्त भाषा मे अस्पष्टता, असगतियाँ तथा शब्दो के अर्थों सम्बन्धी सन्देह नही होने चाहिये। इसके अतिरिक्त सन्देश निर्देश दूर-दूर के स्थलो तथा विभिन्न प्रकार के व्यक्तियो को भेजे जाते हैं। प्राप्त करने वाले व्यक्ति के मानसिक स्तर को दृष्टिगत रख कर सचार की भाषा तथा

---

1 For further details refer to John D Millett *Management in the Public Service The Quest for Effective Performance,* McGraw-Hill Book Co., N Y, 1954, Chapter 4, Communication, pages 81—97, Herbert A Simon and others, *Public Administration,* N Y, 1956, Chapter X, Securing Teamwork The Communication Process, pages 218—243, Pfiffner, Presthus *Public Administration,* 4th Ed, The Ronald Press Co, N Y, 1963, Chapter 7, Communication, pages 133—153, and John T Dorsey, "A Communications Model for Administration", 2, *Administrative Science Quarterly* (December, 1957)

विधि मे परिवर्तन आवश्यक हो जाते है। कई बार समस्याओ के विस्तृत विवेचन के लिए सभी सम्बन्धित व्यक्तियो के सम्मेलन बुलाने आवश्यक हो जाते है। सम्मेलन सचार का एक श्रेष्ठ साधन है। इससे सम्बन्धित अधिकारियो को खुले दिमाग से दूसरो के विचारो को सुनने का अवसर प्राप्त होता है। यही सचार-व्यवस्था का उद्देश्य होता है। सम्मेलन मे भाग लेने वाले व्यक्तियो की आशकाये तथा सन्देह इस प्रकार दूर हो जाते है। अनेक बार उच्चाधिकारियो के लिए दूसरे अधिकारियो तक सम्पूर्ण आवश्यक जानकारी सचारित करना कठिन हो जाता है। कई बार वे ऐसी भाषा का प्रयोग करते है जिसे दूसरे समझ नही पाते। कई बार वे ऐसे शब्दो का प्रयोग कर बैठते है जिनसे भिन्न व परस्पर विरोधी अर्थ निकलते है। ये सब प्रभावशाली सचार के मार्ग मे बाधाये है। उच्च प्रशासको का यह काम है कि वे समय-समय पर अपनी सचार-व्यवस्था की जाँच करते रहे तथा उसमे आवश्यक सुधार करते रहे। अगर निर्णय ठीक से क्रियान्वित नही हो रहे है तो यह देखना चाहिये कि इसके लिए सचार-व्यवस्था ही तो उत्तरदायी नही है और अगर उसमे दोष दिखाई दें तो उन्हे दूर करने के लिए कदम उठाने चाहिये। निर्णयो को सफलतापूर्वक क्रियान्वित करने के लिए उत्तम सचार व्यवस्था अत्यधिक आवश्यक है।

देख-रेख व नियन्त्रण
(Supervision and Control)

जब निर्णय निम्न अधिकारियो तक सचारित कर दिये जाये तो उच्चाधिकारी का अगला कार्य यह देखना है कि उन्हे ठीक-ठीक क्रियान्वित किया जाये। उनका कर्त्तव्य यह आश्वस्त करना है कि सगठन सुचारु रूप से काम करता रहे तथा निर्दिष्ट उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए प्रयास निरन्तर जारी रहे। प्रशासनिक सगठन की इसी आवश्यकता को दृष्टिगत रखते हुए 'देख-रेख' तथा 'नियन्त्रण' को महत्वपूर्ण माना गया है। उच्चाधिकारी अधीनस्थ अधिकारियो का मार्ग प्रदर्शन करते है, उनकी गति-विधियो पर निगरानी रखते है तथा उनके कार्यो के परिणामो का पर्यवेक्षण (Observation) करते है। नकारात्मक दृष्टि से (Negatively) देख-रेख का अभिप्राय सगठन के सदस्यो की गतिविधियो का निर्देशन करना तथा उनकी जाँच करना है, सकारात्मक दृष्टि से (Positively) इसका अभिप्राय सदस्यो को काम करने के सर्वोत्तम तरीके सुझाना है। देख-रेख का उद्देश्य सगठन के विभिन्न अगो मे समायोजन स्थापित करना है तथा यह देखना है कि सब अग अपना-अपना कार्य उचित रूप से सम्पन्न करते रहे।[1] देख-रेख का सम्बन्ध सगठन की गतिविधियो के परिणामो को देखने से है। यह काम तब सम्पन्न हो सकता है जब कार्यकुशलता की जाँच के लिए

1 Some of the following replies were given to a question What is meant by "supervision" The replies were ' Being safeguarded from making mistakes Being helped by a person who , understands satisfaction in having a point of reference Being made to feel inadequate and inferior because of the authority

कुछ निष्पक्ष आधार तथा कसौटी मौजूद हो। कभी-कभी देख-रेख बजट मे निहित धाराओ एव व्यवस्थाओ द्वारा भी होता है। अधीनस्थ अधिकारियो को अपने कार्य की प्रगति पर प्रतिवेदन, कागजात, फाइलें इत्यादि उच्चाधिकारियो को भेजनी पड़ती हैं। देख-रेख करने वाला उच्चाधिकारी उनकी सहायता से सगठन के कार्यों व उनके परिणामो के विषय मे ज्ञान प्राप्त कर सकता है। वह लक्ष्य निर्धारित करता है तथा उसकी यह जिम्मेदारी है कि वह लक्ष्यो की प्राप्ति के लिए सगठन की गतिविधियो की देख-रेख करे।

सबसे महत्वपूर्ण उद्देश्य तो कार्य-समापन है। सगठन मे ऐसा वातावरण बनाना चाहिये सब सम्बन्धित व्यक्ति यथासम्भव, अधिकतम सहयोग कार्य-समापन मे दें। देख-रेख करने वाला अधिकारी त्रुटियो का पता लगाकर भावी कदमो के लिए मार्ग निर्देशन करता है। उसका कार्य निरीक्षण तथा जाँच करना ही नही है, अपितु सामूहिक कार्य (Team work) के लिए सबको प्रेरित व प्रोत्साहित करना भी है।[1]

देख-रेख अधिकारी को न्यायपूर्ण, ईमानदार, निष्पक्ष तथा खुले मस्तिष्क का होना चाहिए। उसे लोक-सम्पर्क (Public relations) तथा समूह-व्यवहार मे प्रशिक्षित होना चाहिए। भारत मे पचायती राज अधिनियमो के अन्तर्गत जिलाधीशो तथा विभिन्न तकनीकी विभागो के अधिकारियो को पचायती राज सस्थाओ पर नियन्त्रण व देख-रेख के अधिकार प्रदान किये गये हैं। इसके पीछे यह धारणा है कि पचायती राज सस्थाओ की सफलता के लिए अधिकारियो का उन पर उचित नियन्त्रण तथा उनकी देख-रेख अनिवार्य है।[2]

---

and power of the person over me Being pushed around " Margaret Williamson defines 'supervision "as a process by which workers are helped by a designated staff member to learn according to their needs, to make the best use of their knowledge and skills and to improve their abilities so that they do their jobs more effectively and with increasing satisfaction to themselves and the agency " (Supervision—Principles and Methods, N Y , Woman's Press, 1950 pages 3, 7) Also refer to John D Millett, *op cit* , Chapter 4 'Supervision', pages 98—122, Dimock, *Public Administration*, 1960, Chapter 24, Dynamics of Supervision, pages 406—424

1 Pfiffner summarizes the important human characteristics of supervision in these words "The supervisor on the lower levels secures cooperation and production by de-emphasizing his own ego, stimulating group participation, and encouraging the maximum satisfaction of individual egos that is consistent with coordination " (John M Pfiffner "The Supervision of Personnel Human Relations in the Management of Men", N Y Prentice-Hall, 1951), page 215

2 For it Refer to Henry Maddick - 'Control Supervision, And Guidance of Panchayati Raj Institutions' Indian Journal of Public Administration, New Delhi Vol VIII, October-December 1962, No 4, pages 500—511 , John D Millett rightly observes "Supervision is more than a process, it is a spirit which animates the relationships between levels of organization and which induces maximum administrative accomplishment, or when unsuccessful, generates administrative paralysis Effective Management is concerned to realize the first and to avoid the second " *op cit* , page 122.

संगठन के आधार
(Bases of Organization)

जैसा कि हम देख चुके हैं कि संगठन में विभिन्न व्यक्तियों के बीच कार्य का विभाजन कर दिया जाता है और तब उनकी क्रियाओं में उचित समन्वय स्थापित किया जाता है जिससे कि संगठन उन उद्देश्यों को प्राप्त करने में समर्थ हो सके जिनके लिये कि उसका निर्माण किया गया था। संगठन 'विभिन्न व्यक्तियों के बीच कार्य को बाटने की एक रीति है।' अब प्रश्न यह पैदा होता है कि उन कार्यों को किस प्रकार बाटा जाना चाहिये तथा किन आधारों पर संगठन का निर्माण किया जाना चाहिये। लूथर गुलिक (Luther Gullick) के अनुसार किसी भी कार्य को बांटने की चार विभिन्न रीतियां अथवा संगठन के चार विभिन्न आधार होते हैं।

"संगठन के निर्माण के क्रम में नीचे तक हमें प्रत्येक कार्य का विश्लेषण करना पड़ता है और इस बात का निर्णय करना पड़ता है कि एकरूपता (Homogeneity) के सिद्धान्त को हानि पहुंचाये बिना संगठन को किन वर्गों में बांटा जाए। व्यावहारिक अथवा सैद्धान्तिक दृष्टि से यह कोई आसान काम नहीं है। हम यह पायेंगे कि हर एक पद पर कार्य करने वाले प्रत्येक कर्मचारी के कार्य की प्रकृति की पहचान निम्न बातों के द्वारा होनी चाहिए

(१) प्रथम उस बड़े उद्देश्य (Major purpose) के द्वारा जिसके लिए कि वह कार्य कर रहा है, जैसे पानी की पूर्ति की व्यवस्था, अपराधों का नियन्त्रण अथवा शिक्षा का संचालन।

(२) उस प्रक्रिया (Process) के द्वारा, जिसका कि वह प्रयोग कर रहा है, जैसे कि इन्जीनियरिंग, डाक्टरी, बढ़ईगीरी, स्टेनोग्राफी, सांख्यिकी (Statistics) व हिसाब-किताब का काम।

(३) उन व्यक्तियों अथवा वस्तुओं (Persons or things) के द्वारा, जिनसे व्यवहार करना पड़ता है या जिनके लिए काम करना पड़ता है जैसे विदेशों से आने वाले व्यक्ति, भारतीय, वन, खानें, पार्क, अनाथ किसान, ...
निर्धन।

(४) उस स्थान (Place) के द्वारा ...
है, जैसे हवाई द्वीप, बोस्टन, वाशिंग...

इस प्रकार कार्य अथवा उद्दे...
वाले व्यक्ति अथवा वस्तुएं, स्थान अथ...
हैं। अब हम इन पर एक-एक करके वि...

(१) कार्य (Function)—किसी ...
or purpose) की पूर्ति के लिए संगठन ...
शिक्षा के लिए स्कूल, स्वास्थ्य सुधार सम्बन्धी, ...

---

1 Gullick Notes on the *Theory of O*...

(२) प्रक्रिया (Process)—सगठन का निर्माण प्रक्रिया अथवा व्यवसाय (Process or profession) के आधार पर भी किया जाता है। प्रक्रिया अथवा व्यवसाय से तात्पर्य उस तकनीकी कुशलता (Technical skill) से है जो किसी विशिष्ट कार्य को सम्पन्न करने के लिए आवश्यक हो, उदाहरण के लिए, इजीनियरिंग डाक्टरी, बढईगीरी, आशुलिपि, साख्यिकी, तथा हिसाब-किताब व लेखा आदि। सगठनो का निर्माण किसी भी कार्य से सम्बद्ध तकनीकी कुशलता के आधार पर किया जा सकता है, उदाहरण के लिए वकीलो का विभाग (Department of lawyers), इजीनियरो का विभाग आदि। भारत मे लोककर्म (Public Works Departments) प्रक्रिया के आधार पर किये जाने वाले सगठन के उदाहरण हैं। यह सम्भव नही हो सकता कि प्रक्रिया अथवा व्यवसाय को बहुत अधिक विभागो (Departments) के सगठन का आधार बना लिया जाए क्योकि उन विशिष्ट अथवा तकनीकी कुशलताओ की न्यूनाधिक रूप मे प्रत्येक विभाग मे ही आवश्यकता होती है। अत विशिष्ट अथवा तकनीकी कुशलता प्राप्त व्यक्तियो को तो किसी भी विभाग मे, जहाँ कि उनकी आवश्यकता हो, काम करना चाहिए। उदाहरणार्थ, भारत सरकार के आशुलिपिको का विभाग (Department of Stenographers) नही बनाया जा सकता क्योकि आशुलिपिको की तो प्रत्येक विभाग मे ही आवश्यकता होती है। अत प्रत्येक विभाग को अपना-अपना आशुलिपिक नियुक्त कर लेना चाहिये।

(३) सेवा किए जाने वाले व्यक्ति (Clientele)—व्यक्तियो के एक समूह अथवा समुदाय के एक भाग के साथ व्यवहार करने के लिये भी सगठन का निर्माण किया जाता है। अत वे सेवा किये जाने वाले व्यक्ति ही सगठन का आधार बन जाते है। भारत सरकार का पुनर्वास विभाग (Rehabilitation Department), जो कि पाकिस्तान से आये हुए विस्थापितो (Displaced persons) की सेवा करता है, इसका एक उदाहरण है। यहाँ सेवा किये जाने वाले व्यक्तियो को ही सगठन का आधार बनाया गया है क्योकि यह विभाग केवल उन व्यक्तियो की समस्याओ से सम्बन्ध रखता है जिन्हे कि देश विभाजन के बाद पाकिस्तान मे अपने घरो को छोडकर भारत आना पडा।

(४) क्षेत्र (Area)—अन्त मे, वह स्थान, जहाँ कि कार्य किया जाता है—भी सगठन की क्रियाओ के लिये आधार बन सकता है। नेफा अर्थात् उत्तरी पूर्वी सीमान्त एजेन्सी (North East Frontier ...) विशेष क्षेत्र अथवा प्रदेश की समस्याओ से सम्बन्धित है। अत यहाँ ...ने वाला क्षेत्र ही सगठन का आधार है।

...प्रश्न का कोई भी निश्चित उत्तर नही दिया जा सकता कि ...रूप मे इनमे से कौनसा तत्व अधिक महत्वपूर्ण है। यह तो ...ति पर निर्भर होता है।

संगठन के आधार
(Bases of Organization)

जैसा कि हम देख चुके हैं कि संगठन में विभिन्न व्यक्तियों के बीच कार्य का विभाजन कर दिया जाता है और तब उनकी क्रियाओं में उचित समन्वय कायम किया जाता है जिससे कि संगठन उन उद्देश्यों को प्राप्त करने में समर्थ हो सके जिनके लिये कि उसका निर्माण किया गया था। संगठन "विभिन्न व्यक्तियों के बीच कार्य को बांटने की एक रीति है।"[1] अब प्रश्न यह पैदा होता है कि इन कार्यों को किस प्रकार बांटा जाना चाहिये तथा किस आधार पर संगठन का निर्माण किया जाना चाहिये। लूथर गुलिक (*Luther Gullick*) के अनुसार, किसी भी कार्य को बांटने की चार विभिन्न रीतियाँ अथवा संगठन के चार विभिन्न आधार होते हैं।

"संगठन के निर्माण में ऊपर से नीचे तक हमें प्रत्येक कार्य का विश्लेषण करना पड़ता है और इस बात का निर्णय करना पड़ता है कि सजातीयता (Homogeneity) के सिद्धान्त को हानि पहुँचाये बिना उसको किन वर्गों में बांटा जाए। व्यावहारिक अथवा सैद्धान्तिक दृष्टि से यह कोई आसान काम नहीं है। हम यह पायेंगे कि हर एक पद पर काम करने वाले प्रत्येक कर्मचारी के कार्य की प्रकृति की पहचान निम्न बातों के द्वारा होनी चाहिए

(१) प्रथम उस बड़े उद्देश्य (Major purpose) के द्वारा जिसके लिए कि वह कार्य कर रहा है, जैसे पानी की पूर्ति की व्यवस्था, अपराधों का नियन्त्रण अथवा शिक्षा का संचालन।

(२) उस प्रक्रिया (Process) के द्वारा, जिसका कि वह प्रयोग कर रहा है, जैसे कि इंजीनियरिंग, डाक्टरी, बढ़ईगीरी, स्टेनोग्राफी, सांख्यिकी (Statistics) व हिसाब-किताब का काम।

(३) उन व्यक्तियों अथवा वस्तुओं (Persons or things) के द्वारा, जिनसे व्यवहार करना पड़ता है या जिनके लिए काम करना पड़ता है जैसे विदेशों से
वाले व्यक्ति, भारतीय, वन, खाने, पाक, अनाथ, किसान
निर्धन।

(४) उस स्थान (Place) के द्वारा
है, जैसे हवाई द्वीप, बोस्टन, वाशिंग

इस प्रकार कार्य अथवा उद्दे
वाले व्यक्ति अथवा वस्तुएँ, स्थान अथ
है। अब हम इन पर एक-एक करके वि

(१) कार्य (Function)—किसी
or purpose) की पूर्ति के लिए संगठन
शिक्षा के लिए स्कूल, स्वास्थ्य सुधार सम्बन्धि

1 Gullick Notes on the *Theory of O*

है और किसके द्वारा उसका पत्र-व्यवहार सगठन के सबसे ऊचे अधिकारी तक पहुँच सकता है।

(३) पद-सोपान सत्ता तथा उत्तरदायित्व के प्रत्यायोजन अथवा सौंपने (Delegation) के सिद्धान्त पर आधारित होता है अत उसी के अनुसार निर्णय करने वाले अनेक केन्द्रो की स्थापना कर ली जाती है। किसी एक व्यक्ति अथवा केन्द्र पर काम का अधिक जमघट अथवा केन्द्रीकरण नही होता। विभाग का अध्यक्ष (Head of the Department) स्वय ही प्रत्येक निर्णय करने की अनिवार्यता से मुक्त हो जाता है।

(४) जब कोई सगठन बहुत बडा होता है और उसका सम्पूर्ण कार्य दूर-दूर के स्थानो तक फैला होता है, तो पद-सोपान के क्रम (Hierarchical gradation) के द्वारा ही केन्द्र तथा सगठन के दूरस्थ भागो मे सम्बन्ध कायम रखा जा सकता है। इस प्रकार सम्पूर्ण विभाग प्रभावपूर्ण रीति से कार्य करने के लिए एक सूत्र मे बध जाता है।

(५) क्रमिक व्यवस्था (Scalar system) 'उचित मार्ग द्वारा' (Through proper channel) के सिद्धन्त की स्थापना करती है। यह सर्वोच्च अधिकारी का समय बचाती है। अनेक बातो का निर्णय उसके पास तक पहुँचने से पूर्व ही कर लिया जाता है। यदि **ब** **अ** के अधीन है और वह सगठन के सर्वोच्च अधिकारी के सम्मुख कोई कठिनाई रखना चाहता है यो वह सीधे उसके पास नही जा सकता। उसे पहिले **अ** के पास जाना होगा और यह हो सकता है कि **अ** उसकी समस्या सुलझा दे।

(६) क्रमिक व्यवस्था मे, आदेश की एकता का सिद्धान्त (Principle of unity of command) अर्थात् यह कि एक आदमी केवल एक व्यक्ति का ही अधीनस्थ (Suborbinate) होगा, पूर्णत लागू होता है। एक व्यक्ति का केवल एक ही तत्काल उच्च अधिकारी (Immediate Superior) होगा जिससे कि वह आज्ञायें प्राप्त करेगा।

(७) क्रमिक सिद्धान्त (Scalar principle) सगठन के अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति के सापेक्षिक उत्तरदायित्वों (Relative responsibilities) का स्पष्टीकरण करता है। यह बात बिल्कुल स्पष्ट होती है कि कौन किसके अधीन है और इस प्रकार किसी प्रकार के भ्रम की सम्भावना नही रहती।

किन्तु इसके बावजूद, यदि इस सिद्धान्त का दृढता एव कठोरता से पालन किया जाये तो कार्य मे देरी होने की सम्भावना रहती है। प्रत्येक कार्य अथवा बात को उचित मार्ग से (Through proper channel) गुजरना होता है। इसके लिए उसे पद-सोपान के प्रत्येक चरण को पार करना होता है। कोई भी व्यक्ति सर्वोच्च सत्ता से मिलने के प्रयत्न में पद-सोपान अथवा क्रम के दो चरणो (Steps) को एक साथ नही लाघ सकता।

इस कठिनाई को दूर करने के लिए सदा 'अल्पमार्गों' (Short cuts) का सुझाव दिया जाता है। व्यवहार में, इस प्रकार सम्बन्ध स्थापित किये जा सकते हैं कि सत्ता का उल्लंघन अथवा हनन भी न हो और कार्य शीघ्र सम्पन्न भी हो जाये। उरविक (*Urwick*) ने इस सम्बन्ध में यह कहा कि "यह बात उचित भी है और उपयुक्त भी कि प्रत्येक संगठन में औपचारिक क्रमिक शृंखला (Formal scalar chain) ठीक उसी प्रकार होनी चाहिये जिस प्रकार कि अच्छी प्रकार से निर्मित प्रत्येक मकान में जल-निकासी की व्यवस्था (Drainage system) होती है। परन्तु औपचारिक शृंखला को पत्र-व्यवहार के एकमात्र साधन के रूप में अनन्य रूप से प्रयोग करना उसी प्रकार अनावश्यक है जिस प्रकार कि व्यक्ति के लिए मकान की नालियों में समय बिताना अनावश्यक है।"[1] क्रमिक व्यवस्था स्वयं कोई अन्तिम उद्देश्य नहीं है। यह तो संगठन के अन्तर्गत कार्यों का सह-सम्बन्ध (Functional correlation) कायम करने का एक साधन है। अतः संगठन के शीघ्र एवं सुचारु-रूप-सञ्चालन के लिए अनेक बार 'अल्पमार्गों' की आवश्यकता पड़ती है जिससे कार्य सुचारु रूप से शीघ्र सम्पन्न होता है।

आदेश की एकता
(Unity of Command)

किसी भी संगठन में, सत्ता के सूत्रों (Lines of authority) का स्पष्ट रूप से पता रहना चाहिये। संगठन के अन्तर्गत प्रत्येक कर्मचारी को अपने उच्च अधिकारियों (Superiors) का पता रहना चाहिए जिनसे कि उसे आदेश प्राप्त करने होते हैं। संगठन में सभी स्तरों पर उच्च अधीनस्थ अथवा प्रवर अवर सम्बन्ध (Superior Subordinate relation) पाया जाता है। परन्तु प्रश्न यह है कि एक आदमी कितने व्यक्तियों का अधीनस्थ (Subordinate) होना चाहिये? एक आदमी अनेक व्यक्तियों का अधीनस्थ होना चाहिये अथवा केवल एक का? आदेश का सिद्धान्त (Principle of command) जिसका कि समर्थन किया जाता है, यह है कि एक व्यक्ति एक ही व्यक्ति का अधीनस्थ होना चाहिए और उसे केवल एक ही व्यक्ति के आदेश प्राप्त होने चाहियें। यही स्थिति, जिसमें कि आदेश की शृंखला में प्रत्येक अधीनस्थ कर्मचारी केवल एक ही व्यक्ति के समक्ष प्रतिवेदन प्रस्तुत करता है, पारिभाषिक रूप में 'आदेश की एकता' के सिद्धान्त के नाम से विख्यात है। एक व्यक्ति एक ही उच्च अधिकारी (Superior) का अधीनस्थ होता है और केवल एक ही उच्च अधिकारी से निर्देश (Directions) प्राप्त करता है। सैनिक आदेश (Military command) में इसका पालन किया जाता है। द्वितीय लेफ्टीनेन्ट (Second lieutenant) लेफ्टीनेन्ट का अधीनस्थ होता है और उससे आदेश प्राप्त करता है। लेफ्टीनेन्ट एक कैप्टेन (Captain) के अधीन होता है तथा उससे आदेश प्राप्त करता है और इस प्रकार आदेश की यह शृंखला आगे भी चलती रहती है।

1 L Urwick, *op cit*, p 47

इसका सबसे बडा लाभ यह है कि जब एक कर्मचारी केवल एक ही उच्च अधिकारी का अधीनस्थ होता है तथा उससे आदेश प्राप्त करता है तो उससे आज्ञाओं (Orders) के सम्बन्ध मे भ्रम उत्पन्न नही होता। वह अनेक उच्च अधिकारियो (Superiors) से मतभेद एव विवाद उत्पन्न करने वाले अनुदेश (Instructions) नही प्राप्त करता। आदेश के अनेक स्रोतो से भ्रम उत्पन्न होता है, कार्य मे अकुशलता आती है तथा कार्य का उत्तरदायित्व निश्चित नही किया जा सकता।' किन्तु यदि एक व्यक्ति केवल एक ही उच्च अधिकारी का अधीनस्थ है तो उस कर्मचारी के कार्यों का निरीक्षण प्रभावपूर्ण रीति से किया जा सकता है।

इस सिद्धान्त मे कठिनाई उस समय उत्पन्न होती है जब कि सगठन मे काम करने वाले तकनीकी कर्मचारीवर्ग (Technical personnel) पर आदेश लागू करना होता है। तकनीकी ज्ञान प्राप्त व्यक्ति अथवा विशेषज्ञ को विशेषज्ञ से ही अनुदेश प्राप्त होने चाहियें, परन्तु आदेश की एकता का सिद्धान्त (Principle of unity of command) आदेश के दृष्टिकोण से तकनीकि कर्मचारी-वर्ग तथा प्रशासकीय कर्मचारीवर्ग मे कोई भेद नही करता। इस सिद्धान्त के अनुसार यह आवश्यक है कि सगठन का प्रधान (Head) विभिन्न कर्मचारियो के कार्य की प्रकृति मे किसी भी प्रकार का भेद किए बिना ही सभी कर्मचारियो को आदेश दे। आदेश की एकता के सिद्धान्त का इस तथ्य (Fact) से कैसे मेल बैठाया जाए कि सगठन मे जो अनेक विशेषज्ञ (Specialists) काम कर रहे हैं उन्हे तो केवल विशेषज्ञो के द्वारा ही आदेश मिलने चाहिएँ। प्रश्न यह है कि जिला बोर्ड का एक डाक्टर जिला बोर्ड के निष्पादन अधिकारी (Executive officer) से आदेश प्राप्त करे अथवा जिला चिकित्सा अधिकारी (District Medical Officer) से ?

एफ० डब्लू टेलर *(F W Taylor)* जैसे लेखको ने 'द्विमुखी पर्यवेक्षण' (Dual supervision) का सुझाव दिया है। हरबर्ट ए० साइमन *(Herbert A Simon)* ने आदेश की एकता के सिद्धान्त को प्रमुखता दी है परन्तु उसमे इस प्रकार सशोधन किया है

"दो प्राधिकारी आदेशो (Authoritative commands) के परस्पर टकराव की स्थिति मे, केवल एक ही निर्धारित व्यक्ति (Determinate person) होना चाहिये, जिसकी कि अधीनस्थ कर्मचारी आज्ञा माने ।"

इस प्रकार अनेक अवसरो पर, यह हो सकता है कि एक कर्मचारी के ऊपर दो उच्च अधिकारी (Superiors) हो। इसी बात को दृष्टिगत रखते हुए जॉन डी० मिलेट *(John D Millet)* ने कहा है कि "आवश्यकता इस बात की है कि आदेश की एकता की धारणा मे इस बात के साथ ताल-मेल बैठाया जाये कि किसी भी कार्य का द्विमुखी निरीक्षण किया जा सकता है अर्थात तकनीकी (Technical) तथा प्रशासकीय (Administrative)। दोनो ही प्रकार का निरीक्षण भिन्न-भिन्न व्यक्तियो द्वारा किया जा सकता है। पहले किस्म के निरीक्षण का सम्बन्ध कार्य को सम्पन्न करने की

(५) एक से परिमाण मे समन्वय (Co-ordination) कायम करने के लिये यह आवश्यक है कि एक ही प्रकार के कार्य वाले तथा एकरूप (Unified) सगठन की अपेक्षा एक बडे, विविध रूप वाले तथा बिखरे हुए सगठन मे अधीनस्थ कर्मचारियो की सख्या कम हो।"

एकीकृत व्यवस्था बनाम स्वतन्त्र व्यवस्था
(Integrated System *vs* Independent System)

प्रशासकीय सगठन स्वतन्त्र अथवा असम्बद्ध (Independent or uncorrelated) तथा एकीकृत अथवा विभागीय (Integrated or Departmental) हो सकता है। अब हम इनके अर्थ पर विचार करते हैं। प्रशासन की **एकीकृत व्यवस्था** (Integrated system) उस व्यवस्था को कहते हैं जिसमे कि समान सेवाये सम्पन्न करने वाले अभिकरणो (Agencies) का विभागो (Departments) मे वर्गीकरण कर लिया जाता है और विभिन्न विभाग आपस मे सम्बद्ध कर दिये जाते हैं तथा सीधे मुख्य निष्पादक (Chief Executive) की सत्ता के अन्तर्गत रखे जाते है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत सत्ता-सूत्र (Line of authority) अनेक सेवाओ से उन विभागो की ओर को चलता है जिनकी वे (सेवाये) अधीनस्थ इकाइयाँ (Subordinates units) है और फिर वहाँ से मुख्य निष्पादक तक जाता है जिसके नियन्त्रण मे कि सभी विभाग रहने चाहियें। हमारे यहाँ भारत सरकार मे ही मन्त्रि-परिषद् मन्त्रियो (Cabinet Ministers) (जिनमे कि सामूहिक रूप से मिलकर भारत की मुख्य कार्यपालिका बनती है) के नियन्त्रण मे लगभग बीस विभाग (Departments) हैं। समान कार्य सम्पन्न करने वाले सभी अभिकरणो का अनेक विभागो मे वर्गीकरण कर लिया गया है; उदाहरण के लिए, रेल-विभाग, विदेश विभाग, गृह-विभाग आदि-आदि, और ये सब विभाग मुख्य कार्यपालिका (Chief executive) की सत्ता के अन्तर्गत रहते हैं। विलोबी (*Willoughby*) के अनुसार, "एकीकृत व्यवस्था मे यह प्रयत्न किया जाता है कि जिन सेवाओ की कार्यवाहियाँ एक सी सामान्य परिधि मे आती है और उनके परिणामस्वरूप जिनके बीच परस्पर घनिष्ठ रूप मे कार्यकारी सम्बन्ध कायम रखना चाहिए, उन सभी सेवाओ का विभागो मे वर्गीकरण कर लिया जाये, जिनके अध्यक्ष ऐसे अधिकारी हो जो कि उन सब पर सामान्य दृष्टि रखे और उनका [illegible] हो कि वह यह देखे कि वे सामान उद्देश्य की प्राप्ति की दिशा मे एक स्वर [illegible] रही है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत सत्ता-सूत्र (Line of authority) अनेक सेवाओं (Services) से उन विभागो की ओर चलता है, जिनकी वे (सेवायें) अधीनस्थ इकाइयाँ है और फिर वहाँ से मुख्य कार्यपालिका अथवा व्यवस्थापिका (Legislature) तक जाता है जिसका कि अधिकार क्षेत्र (Jurisdiction) [illegible] है।"[1] प्रशासन की एकीकृत अथवा गठित व्यवस्था मे [illegible] उद्देश्य की प्राप्ति की दिशा मे साथ-साथ कार्य करते है और इसमे

[1] [illegible] p 75

(२) जब सेवाओ का एकीकरण विभागीय आधार पर किया जाता है तो अधिकार क्षेत्र के विवाद (Conflict of jurisdiction) का कोई प्रश्न नही उठता। यह व्यवस्था कार्यो अथवा क्रियाओ के अतिव्यापन (Overlapping) की सम्भावनाओ को भी दूर करती है।

(३) इस व्यवस्था के अन्तर्गत मुख्य निष्पादक (Chief executive) अपने बजट सम्बन्धी कार्यों को अधिक अच्छी प्रकार से सम्पन्न कर सकता है। सभी विभागो के कार्यों की योजना तथा साधनो की तस्वीर उसके सामने रहती है अत वह सरलता के साथ बजट बना सकता है।

(४) इस व्यवस्था मे हर एक की सत्ता (Authority) तथा उत्तरदायित्व (Responsibility) का पूर्णत स्पष्टीकरण हो जाता है।

(५) यह व्यवस्था सरकार के विभिन्न अभिकरणो के बीच अधिक सहयोग उत्पन्न करती है।

(६) इस व्यवस्था मे मुख्य निष्पादक सभी विभागो का सक्रिय पर्यवेक्षण तथा नियन्त्रण कर सकता है, और प्रशासन के प्रधान (Head) के रूप मे अपने कार्यो को सम्पन्न करने के लिये उसके द्वारा ऐसा पर्यवेक्षण एव नियन्त्रण करना अत्यन्त आवश्यक है।

इसके आलोचक (Critics) तथा स्वतन्त्र व्यवस्था (Independent system) के समर्थक यह कहते हैं कि प्रशासन की एकीकृत व्यवस्था (Integrated system) तानाशाही (Dictatorship) को प्रोत्साहन देती है क्योकि इसके अन्तर्गत सम्पूर्ण सत्ता मुख्य निष्पादक मे केन्द्रित हो जाती है। राष्ट्रपति (President) की सत्ता के प्रति उत्पन्न यह अविश्वास ही अमेरिका-वासियो को स्वतन्त्र व्यवस्था का समर्थक बनाता है। पर एकीकृत प्रणाली के जो लाभ गिनाये जाते हैं वे इतने वजनी हैं कि स्वतन्त्र व्यवस्था को आमतौर मे समर्थन की दृष्टि से नही देखा जाता। विश्वास यह है कि स्वतन्त्र व्यवस्था प्रशासन मे अराजकता तथा भ्रम उत्पन्न करती है क्योकि इसमे प्रत्येक सेवा (Service) एक दूसरे से स्वतन्त्र होती है और इन सेवाओ के बीच ऐसी कोई कड़ी नही होती जो इनको परस्पर सम्बद्ध कर सके। वस्तुतः मे यह व्यवस्था किस प्रकार दक्षता के साथ कार्य कर सकती है? हूवर आयोग (Hoover Commission) ने भी प्रशासन की एकीकृत अथवा विभागीय व्यवस्था की ही सिफारिश की। हूवर आयोग ने विभागीय प्रबन्ध (Departmental Management) के बारे मे दिये गये कार्य-सम्बन्धी प्रतिवेदन (Report) मे विभागीय प्रबन्ध के अनेक सिद्धान्तो का उल्लेख किया। प्रतिवेदन मे इस बात पर जोर दिया गया कि संघ सरकार (Federal Government) के निष्पादन विभागो (Executive Departments) को अध्यक्षपद से नीचे निष्पादन शाखा मे प्रशासकीय [illegible] रूप मे स्थापित किया जाना चाहिये, और यह [illegible] उत्तर [illegible] प्रशासकीय अभिकरणो (जैसे कि स्वतन्त्र

मे पास किये गये प्रस्ताव के अनुसार, प्रशासकीय ढांचे मे सभी स्तरो पर शीघ्रता, दक्षता एव पूर्णता लाने के लिये केन्द्र सरकार के विभिन्न मन्त्रालयो द्वारा व्यक्त किये विचारो की जाच करेगी।" इस प्रकार समय-समय पर प्रशासकीय ढांचे का पुनर्गठन किया जाता है।

सगठन के रूप
(Forms of Organizations)

सगठन के महत्वपूर्ण रूप निम्नलिखित हैं—

(१) सूत्र इकाइयाँ (Line Units)

(२) स्टाफ अभिकरण (Staff Agencies)

(३) विभाग (Departments)

(४) सरकारी निगम (Government Corporation)

(५) स्वतन्त्र नियामकीय आयोग (Independent Regulatory Commissions)।

सगठन के सिद्धान्तो एव समस्याओ के पर्यवेक्षण के निष्कर्ष को हम निम्न प्रकार व्यक्त कर सकते हैं—

(१) सगठन मे सभी पदो का उत्तरदायित्व तथा सत्ता निश्चित तथा बिल्कुल स्पष्ट होनी चाहिए। सत्ता उत्तरदायित्व के अनुरूप ही होनी चाहिये।

(२) सगठन मे किसी एक पद पर नियुक्त कोई भी कर्मचारी एक से अधिक व्यक्तियो की आज्ञाओ के अधीन नही रहना चाहिये। इसे ही **आदेश की एकता** (Unity of Command) का सिद्धान्त कहा जाता है। अधीनस्थ कर्मचारियो की आज्ञाये उनके ऊपर के प्रमुख अधिकारी के द्वारा ही दी जानी चाहिये और यदि ऐसा नही करना है तो उस अधिकारी को ही हटा देना चाहिए।

(३) विभाग के किसी भी प्रशासक (Administrator) के समक्ष प्रतिवेदन (Report) प्रस्तुत करने वाले अधीनस्थ कर्मचारियो की सख्या उससे अधिक नही होनी चाहिये जितनो का वह यथेष्ट रूप से निरीक्षण कर सकता हो। यही नियन्त्रण-क्षेत्र (Span of Control) का सिद्धान्त कहलाता है।

(४) विभाग के सचिवालय का प्रमुख कर्तव्य यह होना चाहिये कि वह विभाग के [illegible] उपभागों (Major Divisions) के कर्मचारी वर्ग तथा कार्यों मे समन्वय स्थापित करे। इसे समन्वय का सिद्धान्त (Principle of Co-ordination) कहा जा

मे पास किये गये प्रस्ताव के अनुसार, प्रशासकीय ढांचे मे सभी स्तरो पर शीघ्रता, दक्षता एव पूर्णता लाने के लिये केन्द्र सरकार के विभिन्न मन्त्रालयो द्वारा व्यक्त किये विचारो की जाच करेगी।" इस प्रकार समय-समय पर प्रशासकीय ढांचे का पुर्नगठन किया जाता है।

सगठन के रूप
(Forms of Organizations)

सगठन के महत्वपूर्ण रूप निम्नलिखित है—

(१) सूत्र इकाइयाँ (Line Units)

(२) स्टाफ अभिकरण (Staff Agencies)

(३) विभाग (Departments)

(४) सरकारी निगम (Government Corporation)

(५) स्वतन्त्र नियामकीय आयोग (Independent Regulatory Commissions)।

सगठन के सिद्धान्तो एव समस्याओ के पर्यवेक्षण के निष्कर्ष को हम निम्न प्रकार व्यक्त कर सकते हैं—

(१) सगठन मे सभी पदो का उत्तरदायित्व तथा सत्ता निश्चित तथा बिल्कुल स्पष्ट होनी चाहिए। सत्ता उत्तरदायित्व के अनुरूप ही होनी चाहिये।

(२) सगठन मे किसी एक पद पर नियुक्त कोई भी कर्मचारी एक से अधिक व्यक्तियों की आज्ञाओ के अधीन नही रहना चाहिये। इसे ही आदेश की एकता (Unity of Command) का सिद्धान्त कहा जाता है। अधीनस्थ कर्मचारियो की आज्ञायें उनके ऊपर के प्रमुख अधिकारी के द्वारा ही दी जानी चाहिये और यदि ऐसा नही करता है तो उस अधिकारी को ही हटा देना चाहिए।

(३) विभाग के किसी भी प्रशासक (Administrator) के समक्ष प्रतिवेदन (Report) प्रस्तुत करने वाले अधीनस्थ कर्मचारियों की सख्या उससे अधिक नही होनी चाहिये जितनो का वह यथेष्ट रूप मे निरीक्षण कर सकता हो। यही नियन्त्रण-क्षेत्र (Span of Control) का सिद्धान्त कहलाता है।

(४) विभाग के सचालक का प्रमुख कर्तव्य यह होना चाहिये कि वह विभाग के प्रत्येक उप-विभागों (Major Divisions) के कर्मचारी वर्ग तथा कार्यो मे समन्वय स्थापित करे। इसे समन्वय का सिद्धान्त (Principle of Co-ordination) कहा

के लिए भोजन, औषधियो, अस्त्र-शस्त्र व गोला-बारूद आदि की भी व्यवस्था करनी होती है और इन चीजो के बिना सेना लड नही सकती। ये कार्य सेना की स्टाफ इकाइयो द्वारा सम्पन्न किये जाते है। स्टाफ इकाइयाँ असल मे युद्ध मे लडती नही है बल्कि वे लडने वाले सैनिको की सहायता करती है। उनकी सहायता के बिना कोई भी सैनिक युद्ध मे लड नही सकता। ये इकाइयाँ उस मुख्य उद्देश्य की प्राप्ति मे सहायक होती है जिनके लिए कि सेना का निर्माण किया जाता है। ये इकाइयाँ योजना बनाती है तथा लडने वाली विभिन्न इकाइयो मे समन्वय कायम करती है जिससे लडाई सफलतापूर्वक लडी जा सके। अब हम यह देखेंगे कि नागरिक अथवा असैनिक प्रशासन (Civilian administration) मे सूत्र तथा स्टाफ से क्या तात्पर्य है।

सूत्र तथा स्टाफ का अर्थ
(Meaning of line and Staff)

किसी भी सरकार की सम्पूर्ण प्रशासनीय व्यवस्था अनेक बडी-बडी इकाइयो मे बटी होती है जिन्हे कि 'विभाग (Departments) अथवा 'अभिकरण' (Agencies) कहा जाता है। ये विभाग अथवा अभिकरण बडे-बडे क्षेत्र कार्यो के आधार पर सगठित किये जाते है। उनका सम्बन्ध अपने क्षेत्र की विषय सामग्री से होता है। भारत सरकार मे ही वाणिज्य तथा उद्योग, स्वास्थ्य शिक्षा, खाद्य व कृषि आदि विभाग है। सरकार की प्रशासकीय व्यवस्था के ये बडे-बडे सम्भाग (Major divisions) 'सूत्र' विभाग (Line departments) के नाम से पुकारे जाते है क्योकि इनका सम्बन्ध उस मुख्य उद्देश्य से होता है जिसके लिये कि सरकार कायम रहती है। ये विभाग व्यक्तियो के लिये सेवाए सम्पन्न करते है तथा उनके आचार व्यवहार का नियमन करते है। सूत्र अधिकारियो (Line officers) को नीति का निर्माण करना होता है और आदेश जारी करने होते है। अत सूत्र अभिकरण (Line agencies) वे अभिकरण है जिनका मुख्य उद्देश्य मूल विषय सम्बन्धी उन कार्यो को सम्पन्न करना है जिनके बारे मे यह माना जाता है कि ये कार्य सगठन को सम्पन्न करते हैं। प्रत्येक बडा सूत्र विभाग अनेक इकाइयो (Units) जैसे कि ब्यूरो (Bureaus) अथवा सम्भागो (Divisions) आदि मे बटा होता है परन्तु प्रभावपूर्ण रीति से कार्य-सचालन के लिये ये सब 'आदेश की एक शृंखला' (A chain of Command) से सम्बद्ध रहते है। सूत्र सदृश सगठन मे निष्पादक अथवा कार्यपालिका ही अपने अधीनस्थ कर्मचारियो पर पूर्ण अधिकार रखती है। सभी अनुदेश (Instructions) उसके ही द्वारा जारी किये जाते है और उसके कर्मचारी सत्ता के एकमात्र स्रोत के रूप मे उसकी ओर ही देखते है।

"सूत्र सगठन (Line organization) निश्चित ही एक सामान्य गणितीय उपसम्भाग (Sub-division) है. । इसमे सत्ता तथा उत्तरदायित्व की रेखायें ऊपर से नीचे तक उसी प्रकार फैली होती है जिस प्रकार कि पेड की एक पत्ती की

नसें (veins) उसके डण्ठल मे इकट्ठी होती है तथा अनेक पत्तियो के डण्ठलो से टहनी तक, टहनियो से शाखा तक, और अनेक शाखाओ से पेड के तने तक फैली होती है, इन नसो, डण्ठलो, टहनियो, शाखाओ तथा तने को पेड के विकास व उसके जीवन मे व्यवहारत वैसे ही कार्य सम्पन्न करने होते हैं।"[1]

परन्तु इन सूत्र विभागो को उनके उद्देश्यो की पूर्ति मे अन्य इकाइयो द्वारा सहायता प्रदान की जाती है जिन्हे कि 'स्टाफ इकाइया' (Staff units) कहा जाता है। स्टाफ से तात्पर्य है कि जिस पर निर्भर रहा जा सके अथवा जिसके सहयोग से कठिनाइयो के बीच मार्ग ढूढा जा सके। जिस प्रकार कि एक छडी (Staff) मनुष्य को चलने मे सहायता देती है, उसी प्रकार स्टाफ इकाइया विशिष्ट जानकारी तथा विवेकपूर्ण परामर्श प्रदान करके निष्पादक सत्ता की सहायता करती हैं। स्टाफ एक परामर्श देने वाला अग है, इस पर किसी भी प्रकार का सचालन करने का उत्तर-दायित्व नही होता। "स्टाफ सूत्र विभाग (Line department) के लिये योजना बनाता है, उसको सलाह देता है तथा उसकी सहायता करता है परन्तु यह आदेश नही दे सकता ··· 'स्टाफ अभिकरणो का मुख्य उद्देश्य प्रबन्ध सम्बन्धी (Managerial) अथवा "गृह प्रबन्ध" (House-keeping) सेवाए सम्पन्न करता है जिससे कि लक्ष्य-फल प्राप्त हो सके।"[2] फेयल (*Fayal*) ने औद्योगिक व्यवस्था मे 'स्टाफ' के स्थान का वर्णन निम्न शब्दो मे किया है—"बडे उद्योगो (Enterprise) के प्रधानो (Heads) मे चाहे कितनी ही योग्यता तथा कार्य-क्षमता क्यो न हो वे अपने समस्त कर्त्तव्यो एव उत्तरदायित्वो को स्वय पूरा नही कर सकते · 'अत वे व्यक्तियो के एक ऐसे वर्ग का सहारा लेते है जिनके पास ऐसी शक्ति, योग्यता तथा समय होता है जिसका कि प्रधान मे अभाव हो सकता है। व्यक्तियो के इस वर्ग से प्रबन्धकीय स्टाफ का निर्माण होता है। यह एक तरह की सहायता है तथा प्रबन्धक (Manager) के व्यक्तित्व का एक प्रकार से विस्तार है जिससे कि अपने कर्त्तव्यो को पूरा करने मे उन्हे मदद मिल सके। केवल बडे व्यवसायो मे ही स्टाफ एक पृथक् सस्था के रूप मे दिखाई देता है और व्यवसाय के महत्व के साथ ही साथ इसका महत्व भी बढता जाता है "[3]

यह कहा जाता है कि स्टाफ की क्रियायें प्रशासक के व्यक्तित्व का केवल विस्तार मात्र है। मूनी (*Mooney*) के शब्दो मे इसका अर्थ है अधिक आँखें, अधिक कान तथा अधिक हाथ जिससे कि प्रशासक अपनी योजनायें बना सके तथा उन्हे लागू कर सके।' प्रशासक (Administrator) अथवा मुख्य निष्पादक (Chief Executive) 'पोस्डकोर्ब' (POSDCORB) क्रियायें सम्पन्न करता है। ये क्रियायें अथवा 'Planning' (योजनायें बनाना), 'Organizing' (सगठन करना), 'Staffing' (कर्मचारियों की व्यवस्था करना), 'Directing' (निर्देशन

करना), 'Co-ordinating' (समन्वय करना), 'Reporting' (रिपोर्ट देना), तथा 'Budgeting' (बजट तैयार करना)—इन अंग्रेजी शब्दो के प्रारम्भिक अक्षर है। इन क्रियाओ को सम्पन्न करने के लिए उसे सहायता, विशिष्ट परामर्श और तथ्यो एव आकडो की आवश्यकता होती है। ये सब कार्य उनके लिए स्टाफ इकाइयो द्वारा सम्पन्न किये जाते हैं। स्टाफ का कार्य-श्रम-विभाजन (Division of labour) के सिद्धान्त का अनिवार्य परिणाम है जिसे कि बडे सगठनो मे एक अत्यन्त महत्वपूर्ण तत्व माना जाता है। परन्तु स्टाफ दो कार्य नही कर सकता। प्रथम तो, यह स्वय अपने आदेश जारी नही कर सकता। आदेश जारी करना प्रशासक अथवा सूत्र विभागो (Line Departments) का कार्य है। दूसरे, इसका कार्य नीतियो को क्रियान्वित करना नही है। यह तो केवल सूत्र-विभाग के लिए योजनायें बनाता है, परामर्श देता है, सुझाव देता है, उसकी सहायता करता है, तथा उनको कार्य करने के लिए तैयार करता है। विदेश कार्यालय (Foreign office) को विदेशी सम्बन्धो का सचालन करने के लिए विदेशो मे राजदूतावास (Embassies), दूतावास (Legations) तथा कोसलावास (Consulates) स्थापित करने ही पडते हैं। वह कार्य उसका सूत्र-कार्य (Line function) है। देश मे इसके अनुसधान (research), राजकोषीय (Fiscal) तथा प्रशिक्षण (Training) सभाग (Divisions) महत्वपूर्ण स्टॉफ कार्यों को सम्पन्न करते हैं।

सूत्र तथा स्टाफ के बीच भेद के विषय मे कुछ सावधानी
(A word of caution about the distinction between Line and Staff)

हमने यह देखा कि सूत्र इकाइयाँ (Line units) कार्य-निष्पादन करने वाली (Executive), तथा स्टाफ इकाइयाँ (Staff units) परामर्श देने वाली इकाइयाँ है। सूत्र (Line) का काम है कार्य करना अथवा कार्यवाही करना और स्टॉफ का कार्य है उसको सुगम बनाना। स्टॉफ सगठन को शुद्ध रूप से सम्मति देने वाला तथा परामर्श देने वाला सगठन कहा गया है। इसके द्वारा सूत्र के ऊपर किसी भी प्रत्यक्ष अधिकार के प्रयोग की आशा नही की जाती। यह कहा गया कि "जिस प्रकार सूत्र सगठन कार्य-निष्पादन के लिए बनाया जाने वाला सगठन है, ठीक उसी प्रकार स्टॉफ सगठन को विचार-विमर्श के लिए बनाया जाने वाला सगठन कहा जा सकता है।"[1] 'स्टॉफ' को पूर्णतया एक औपचारिक सगठन (Formal organization) माना जाता है जिसका आशय परामर्श देने के एकमात्र कार्य तथा आदेश देने के क्रमिक अधिकार मे भेद करना होता है।"[2]

सूत्र तथा स्टॉफ के वास्तविक सम्बन्ध के बारे मे पुनर्विचार भी किया गया है। लेपास्की (*Lepawsky*) ने इस सम्बन्ध मे नई विचारधारा की व्याख्या इन शब्दो मे की है कि "स्टॉफ तथा सूत्र समवर्गीय (Coordinates) है, जो कि सूत्र से स्टॉफ

1 Oliver Sheldon · *The Philosophy of Management*, London, 1923, p 120

2 James D Mooney and Aalm C Reiley, Onward industry, New York, 1931, p 63

तक एक पदसोपान के (Hierarchical) सम्बन्ध के आधार पर नही, वल्कि मुख्य निष्पादक के अन्तर्गत सत्ता तथा उत्तरदायित्व की एक क्षैतिज (Horizontal) रेखा पर कार्य करते है।"[1]

अत सूत्र तथा स्टॉफ के बीच के इस भेद को, कि इनमे से एक का काम कार्यवाही करना है तथा दूसरे का परामर्श देना, अधिक बढा-चढा कर नही कहना चाहिए। फिर, वास्तविक प्रशासन मे क्रियाओ को सदा ही स्टॉफ अथवा सूत्र की श्रेणियो मे स्पष्ट रूप से नही बाटा जाता। प्रत्येक सगठन मे, सूत्र तथा स्टॉफ का कार्य किया जाता है। परन्तु कोई भी व्यक्ति सगठन मे सदा ऐसी पृथक्-पृथक् इकाइयां अथवा अधिकारी नही पा सकता जो कि इन दो प्रकार के कार्यो मे लगे हो। भारतीय प्रशासन मे ही पॉल एच० एपिलबी (*Paul H Appleby*) ने सूत्र स्टॉफ के भेदो के बारे मे भारी कठिनाई का अनुभव किया। उन्होने कहा

"ऐसी कोई शब्दावली (Terminology) तथा ऐसा कोई ढाचा नही है जो कि "सूत्र" (Line) तथा "स्टॉफ" (Staff) के बीच भेद कर सके। इन दोनो शब्दो का जन्म एक शताब्दी अथवा उससे भी अधिक पूर्व जर्मनी मे हुआ था और तभी से ये शब्दावली अन्यत्र जनतन्त्रीय देशो मे फैली तथा प्रयोग करते समय इसमे सुधार किया गया। इस शब्दावली के अनुसार स्टॉफ कार्यालय (Staff offices) वे है जो योजनाये बनाने मे, सेना के आवागमन की क्रिया मे, वित्तीय तथा कार्मिक (Personnel) नियन्त्रणो मे, प्रशासकीय प्रस्तावो के कानूनी पर्यवेक्षण मे, राजनीतिक रूप मे नही बल्कि ठोस रूप मे, सार्वजनिक रिपोर्ट देने मे व्यस्त रहते है। इसके विपरीत सूत्र सगठन वे है जो कि कार्य-क्रम सम्बन्धी क्रियायें सम्पन्न करते हैं, जो वास्तव मे प्रशासन सम्बन्धी कार्यवाहियो का सचालन करते हैं, कानूनो को लागू करते है तथा विस्तृत उद्देश्यो को पूरा करते हैं। यहां (भारत मे) ये शब्द सगठन के ढाचे मे लागू नही हो सके। इसमे तो इनका कोई मतलब ही नहीं है। इनका प्रयोग इस बात का वर्णन करने मे किया जा सकता है जो यहां पाई ही नही जाती। प्रतिरक्षा, विदेशी मामलो

अत एल्विन ब्राउन का कहना है कि "इस विषय मे अधिक से अधिक यही कहा जा सकता है कि अधिकाश सगठनो मे दो क्रम पाये जाते है एक तो सूत्र—जो कि कार्य का निष्पादन करता है, और दूसरा स्टाफ—जो कि योजनाएँ बनाता है तथा अन्य अनेक आकस्मिक सेवाएँ सम्पन्न करता है।"[1]

कुछ लोगो की राय मे, 'स्टॉफ' को केवल परामर्श देने वाली इकाइयाँ बतलाना—देश की प्रशासकीय व्यवस्था मे उन इकाइयो के वास्तविक महत्त्व तथा योग (Role) के विषय मे भ्रम उत्पन्न करता है। फिफनर (*Pfiffner*) के अनुसार, "स्टाफ कार्य की परामर्शदात्री प्रकृति पर अत्यधिक जोर देने के कारण ही "स्टॉफ" शब्द के उपयोग के बारे मे बहुत अधिक भ्रम उत्पन्न हो गया है। एक सामान्य सी गलत धारणा यह बन गई है कि स्टॉफ कर्मचारी पृथक्, शिक्षा प्राप्त, विद्वान तथा रिटायर होने वाले व्यक्ति होते हैं जो कि प्रशासन के कार्य-क्षेत्र से दूर रहते हुए डेस्को पर बैठते है, और वहाँ वे योजनाएँ बनाते हैं जोकि विचार के लिए मुख्य निष्पादक के पास भेज दी जाती हैं। नियम यह है कि मुख्य निष्पादक उन प्रतिवेदनो (Reports) तथा योजनाओ का अच्छी प्रकार अध्ययन करता है, उन पर अपना स्वतन्त्र निर्णय करता है और उसके बाद आदेश की शृखला (Chain of command) मे नीचे तक आज्ञाए (Orders) जारी करता है।"[2] इस प्रकार स्टॉफ केवल परामर्श देने वाला ही नही है। उसका स्थान तो सम्पादित किए जाने वाले कार्य के मध्य (हृदय) मे होता है।

इस कठिनाई को दूर करने के लिए यह सुझाव दिया जाता है कि "स्टॉफ" सेवाएँ, स्टॉफ अभिकरण तथा स्टॉफ कर्मचारी विभिन्न प्रकार के होते है।" इन सब को तीन प्रमुख वर्गो मे बाटा जा सकता है सामान्य स्टाफ (General staff), सहायक स्टॉफ (Auxiliary staff) तथा प्रावैधिक अथवा तकनीकी स्टॉफ (Technical staff)। फिफनर (*Pfiffner*) का कहना है कि "इन तीनो ही वर्गो के अन्तर्गत सम्पन्न की जाने वाली क्रियाओ के बीच के भेद को समझ लेने से यह स्पष्ट हो जायेगा कि स्टॉफ सेवाएँ (Staff services) अध्ययन करने, योजनाएँ बनाने तथा परामर्श देने के कार्य से काफी दूर हैं, ये तो शासन प्रबन्ध के असल कार्य को सुविधाजनक बनाती हैं।[3]

अब हम इन तीनो ही प्रकार की स्टाफ सेवाओ पर एक-एक करके विचार करेंगे।

सामान्य स्टॉफ
(The General Staff)

जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है सामान्य स्टॉफ उस स्टाफ अथवा कर्मचारी-वर्ग को कहते हैं जो कि सामान्यतया मुख्य निष्पादक अथवा मुख्य कार्यपालिका (Chief Executive) के प्रशासकीय कर्तव्यो को पूरा करने मे उसकी सहायता करता

1 Alvin Brown Organization, *A formulation of Policy*, p 278
2 Pfiffner, *op*, *cit* p 85
3 *Ibid*, p 85

है। यह परामर्श देता है, तथ्यो का सग्रह करता है और महत्वपूर्ण मामले मुख्य निष्पादक के सन्मुख निर्णय के लिए रखता है। असम्बद्ध तथा अनावश्यक बातो को समाप्त करके यह सम्बद्ध तथ्यो (Relevent facts) को मुख्य निष्पादक के सन्मुख रखता है और इस प्रकार उसका समय तथा शक्ति बचाता है। सामान्य स्टॉफ महत्त्वपूर्ण मामलो को निपटाने मे मुख्य निष्पादक की सहायता करता है जिससे कि अनावश्यक बातो मे उसका समय नष्ट न हो। सामान्य स्टॉफ को अन्य लोगो के लिए आदेश देने वाली जैसी कोई प्रत्यक्ष सत्ता प्राप्त नही होती।

प्रत्येक देश मे, मुख्य निष्पादक अथवा मुख्य कार्यपालिका के पास एक सामान्य स्टॉफ होता है जो कि उसके कर्तव्यो के पूरा करने मे उसकी सहायता करता है। भारत मे मुख्य कार्यपालिका का सामान्य स्टॉफ इस प्रकार है, (१) मन्त्रि-परिषद् सचिवालय (Cabinet secretariat), (२) वित्त-मन्त्रालय (Ministry of Finance) जो कि बजट सम्बन्धी कार्यों को पूरा करने मे मुख्य कार्यपालिका की सहायता करता है, उदाहरणार्थ, बजट तैयार करने मे तथा बजट को क्रियान्वित करने मे आदि-आदि, (३) योजना आयोग (Planning Commission) जो मुख्य कार्यपालिका को उसके आर्थिक कर्तव्यो के पूरा करने मे परामर्श देता है तथा उसकी सहायता करता है, (४) स्वराष्ट्र अथवा गृह-मन्त्रालय (Ministry of Home Affairs) जो कि कर्मचारियो के चुनाव, भर्ती तथा नियन्त्रण मे मुख्य कार्यपालिका की सहायता करता है। भारतीय स्थिति क सम्बन्ध मे एक कठिनाई यह है कि ये 'सामान्य स्टॉफ' अभिकरण ('General staff' agencies) उस दिशा मे इतने विकसित नही हैं जैसे कि ससार के अन्य मुख्य निष्पादको अथवा मुख्य कार्यपालिकाओ के सामान्य स्टॉफ अभिकरण हैं। ब्रिटेन मे मन्त्रि-परिषद् सचिवालय तथा ब्रिटिश राजकोष (British Treasury) ही सामान्य स्टॉफ अभिकरण हैं जो कि मुख्य कार्यपालिका के कर्तव्यो को पूरा करने मे उसकी सहायता करते हैं। सयुक्त राज्य अमेरिका मे, राष्ट्रपति (President) की सहायता करने के लिए निम्न सामान्य स्टॉफ अभिकरण हैं—(१) ह्वाइट हाउस कार्यालय (White House Office), (२) बजट विभाग (Bureau of the Budget)[1]

सामान्य स्टाफ कर्मचारियों द्वारा अपने कार्यों को दक्षता एव कुशलता के साथ तथा सन्तोषजनक रूप मे सम्पन्न करने के लिए यह आवश्यक है कि उनमे कुछ गुण होने चाहिये। वे गुण ये है—

(१) सामान्य स्टाफ कर्मचारियों को प्रत्येक चीज के बारे मे यथेष्ट जानकारी होनी चाहिये। वे सामान्य-जानकार होने चाहियें।

(२) कुछ जटिल मामलो के विषय मे उन्हे विस्तृत ज्ञान होना चाहिये। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि वे उन मामलो के विशेषज्ञ हो।

---

1 इस सम्बन्ध मे विवेचन हम 'मुख्य निष्पादक अथवा मुख्य कार्यपालिका महा-प्रशासक के रूप में' नामक इसी पाठ के अन्तर्गत कर चुके हैं।

(३) सामान्य स्टाफ कर्मचारियो को चूंकि अन्य सूत्र अधिकारियो (Line officers) के साथ सहयोग (Co-operation) से काम करना होता है अत उनमे सहयोग करने की तथा मामलो पर योग्यता के साथ बातचीत चलाने एव विचार करने की क्षमता होनी चाहिये।

(४) उनमे धर्म तथा अध्यवसाय जैसे गुण होने चाहिये क्योकि उन्हे तथ्यो के सग्रह करने का, उनका सूक्ष्म विवेचन करने का और उसके बाद सम्बद्ध सामग्री को निर्णय के लिए मुख्य निष्पादक के सम्मुख रखने का अत्यन्त दुष्कर कार्य सम्पन्न करना पडता है। यह एक बडा कठिन कार्य है, जैसा कि अनुसधान करने वाले विद्वान का कार्य होता है जो कि बडे धैर्य एव अध्यवसाय के बिना सम्पन्न नही हो सकता।

(५) उनके अन्दर प्रसिद्धि पाने की अथवा प्रकाश मे आने की महत्वाकाक्षा नहा होनी चाहिये। उन्हे तो अपने प्रधान के नीचे गौण बनकर ही रहना तथा कार्य करना चाहिये।

(६) ये सूत्र अधिकारियो के साथ सहयोग से कार्य करते है परन्तु इन्हे उनके ऊपर कोई सत्ता प्राप्त नही होती। इस बात को इन्हे सदा दृष्टिगत रखना पडता है। झगडालू तथा सत्ता-प्रेमी व्यक्ति सामान्य स्टाफ के पद के लिए अनुपयुक्त होते है। इसके लिए तो महत्वकाक्षा न रखने वाले विनयशील, गम्भीर तथा लगनशील व्यक्ति चाहियें।

सहायक स्टाफ
(Auxiliary Staff)

प्रत्येक विभाग (Derpartment) को इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए, जिसके लिए कि उसका अस्तित्व कायम होता है, कुछ क्रियाये सम्पन्न करनी पडती है। रेलवे विभाग को यात्रियो के आवागमन तथा माल के यातायात के लिए रेलगाडिया चलानी पडती हैं। ये क्रियायें रेलवे की मुख्य अथवा प्रधान क्रियाये कही जाती हैं क्योकि ये क्रियाएँ उस उद्देश्य को पूरा करने के लिए सम्पन्न की जाती हैं जिसके लिए कि रेलवे विभाग का निर्माण किया गया है। परन्तु रेलवे विभाग को कुछ अन्य क्रियाएँ भी इस लिए सम्पन्न करनी पडती है जिससे कि एक सेवा (Service) के रूप मे उसका अस्तित्व बना रहे अथवा उसका सचालन हो सके। रेलगाडियाँ चलाने के लिए उसे कर्मचारियो की भर्ती करनी होती है। उसे रेल की पटरियाँ बिछानी पडती है तथा रेलवे स्टेशनो का निर्माण करना पडता है। उसके लिए आवश्यक सामग्री खरीदनी होती है। रेलवे स्टेशनो के लिए सामग्री का खरीदा जाना तथा रेलगाडियो को चलाने के लिए कर्मचारियो को भर्ती करना—ये ऐसी क्रियाएँ है जो कि रेलवे विभाग द्वारा इसलिए सम्पन्न की जाती हैं जिससे कि वह एक सेवा के रूप मे कार्य कर सके तथा अपना अस्तित्व रख सके। डब्लू० एफ० विलौबी (*W F Willoughby*) ने इन क्रियाओ को 'गृह प्रबन्ध' अथवा सस्थागत क्रियाओ (House keeping or institutional activities) की सज्ञा दी

है, परन्तु प्रो० एल० डी० ह्वाइट *(L D White)* ने इनको "सहायक सेवाओं" (Auxiliary services) का नाम दिया है। गृह-प्रबन्ध अथवा सहायक सेवाएँ माध्यमिक (Secondary) सेवाएँ हैं। ये उन उद्देश्यो को प्राप्त करने के लिए कि विभाग कायम किये जाते हैं। ये क्रियाएँ उद्देश्य की प्राप्ति का साधन कही जा सकती हैं।

प्रत्येक विभाग अपना-अपना गृह-प्रबन्ध कार्य (House keeping work) कर सकता है। यह अपना स्वय का सहायक कार्य (Auxiliary work) सम्पन्न कर सकता है। प्रत्येक विभाग भर्ती करने वाले अपने निजी अभिकरण (Agency) के द्वारा अपने कर्मचारियो की भर्ती (Recruitment) कर सकता है तथा अपने क्रय अभिकरण (Purchasing agency) के द्वारा अपने लिए सामग्री खरीद सकता है, आदि-आदि परन्तु गृह-प्रबन्ध अथवा सहायक सेवाएँ सभी विभागो के लिए समान होती है। सभी विभागों (Departments) को कर्मचारियो व सामग्री आदि की आवश्यकता होती है। इस स्थिति मे स्वभावत यह प्रश्न पैदा होता है कि सभी विभागो के इन सर्व-सामान्य कार्यो को क्यो न एक ऐसे केन्द्रीय अभिकरण (Central agency) के सुपुर्द कर दिया जाय जो कि मुख्य निष्पादक से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित हो ? सहायक अभिकरण (Auxiliary agencies) इन सब कार्यों को उन सभी विभागो के लिए सम्पन्न करेंगे जो कि एक सी ही प्रकृति के हो। प्रो० एल० डी० ह्वाइट *(L. D White)* के अनुसार, "सहायक अभिकरण जनता की सेवा नही करते, यद्यपि यह हो सकता है कि उन्हे नागरिको से व्यवहार करना पडे। उनकी सेवा का पात्र तो सूत्र-अभिकरण (Line agency) होता है जिसकी सहायता वे आवश्यक सामान्य कार्यो को सम्पन्न करके करते है—जैसे कि माल तथा सामग्री खरीदकर, सार्वजनिक मुद्रण (Public printing) के ठेके देकर, वास्तविक अचल सम्पत्ति की खरीद करके तथा इसी प्रकार के अन्य कार्य सम्पन्न करके।"[1] सहायक अभिकरण एक सर्वसामान्य क्रिया को सम्पन्न

सामग्री की खरीद आदि से सम्बन्धित अनेक कार्यो मे मुक्त हो जाता है। अत वह अपने आपको विभाग के मुख्य कार्यों की पूर्ति मे लगा सकता है। ऐसा होने मे प्रशासन मे मितव्ययता सभव हो जाती है क्योकि यह व्यवस्था विभिन्न विभागो मे कार्य के दोहराव (duplication) को रोकती है। सभी विभागो के लिये कार्य करने वाले एक सर्वसामान्य सिविल सेवा आयोग तथा एक सर्वसामान्य क्रय अभिकरण की वजाए यदि प्रत्येक विभाग का एक पृथक् सिविल सेवा आयोग और एक पथक् क्रय अभिकरण रखे तो उसमे वहुत अधिक तथा अनावश्यक खर्चा होगा।

कभी कभी "स्टाफ" तथा "सहायक क्रियाओ" (Auxiliary activities) के बीच भेद किया जाता है। यह कहा जाता है कि स्टाफ क्रिया परामर्श देने वाली क्रिया है, जबकि सहायक अभिकरण वजट, कर्मचारी वर्ग (personnel) तथा नियोजन (planning) आदि से सम्बन्धित कुछ सेवाएँ सम्पन्न करते हैं। स्टाफ, सगठन के नीति सम्बन्धी मामलो से भी सम्बद्ध होता है। यह नीतियो के पुन निर्धारण तथा उनमे पुन हेर-फेर करने का सुझाव दे सकता है। सहायक अभिकरणो का सम्बन्ध किसी भी वर्तमान सगठन को केवल कायम रखने से होता है। सहायक सेवाएँ (Auxiliary services) चालित अभिकरण (operating agencies) होती है तथा ये कुछ सर्व-सामान्य कार्यों को सम्पन्न करती है। शुद्ध स्टाफ क्रिया तो परामर्श देने वाली क्रिया होती है, जबकि सहायक अभिकरण विभागो के लिये खरीद (purchasing) व भर्ती (recruiting) करने जैसी कुछ सेवायें सम्पन्न करते है। दोनो की इकाइयाँ (units) केन्द्रीय अभिकरणो तथा सूत्र विभागो के काय को सुविधाजनक बनाती हैं।

विशिष्ट अथवा तकनीकी स्टाफ
(The Special or Technical Staff)

मुख्य निष्पादक अथवा मुख्य कार्यपालिका (Chief executive) को प्रशासन मे अनेक विशिष्ट, प्रावैधिक अथवा तक्नीकी (Technical) मामलो से भी निपटना पडता है। अत मुख्य निष्पादक कुछ तकनीकी स्टाफ अधिकारियो को भी अपने पास रखते हैं, जैसे कि इजीनियर वित्तीय विशेषज्ञ (Financial experts) आदि, जो तकनीकी मामलो पर उन्हे परामर्श देते है। तकनीकी विशेषज्ञ मुख्य निष्पादको की सहायता करते है और उनकी सलाह उस क्षेत्र मे वडी मूल्यवान सिद्ध होती है जिसके कि वे विशेषज्ञ होते हैं। वर्तमान युग मे, जबकि अणु क्षेत्रो मे तथा विज्ञान के जटिल एव गहन आविष्कारो के क्षेत्र मे तीव्र प्रगति हो रही है, मुख्य निष्पादक को इन समस्याओ के विषय मे भी जानकारी होनी चाहिये। और केवल ऐसा होने पर ही वह किसी भी नीति (Policy) को लेकर आगे वढ सकता है। अतः आधुनिक युग मे मुख्य निष्पादक अथवा मुख्य कार्य-पालिका के लिये तकनीकी स्टाफ की अत्यधिक आवश्यकता है।

निष्कर्ष . स्टाफ अभिकरणो के विषय में कुछ भ्रम (Conclusion Some Myths about Staff Agencies) :

जब यह कहा जाता है कि प्रशासन मे दो प्रकार की इकाइया होती है, एक सूत्र इकाई (line unit) और दूसरी स्टाफ इकाई (staff unit), तो इसका मतलब यह नही होता कि इस प्रकार सरकारी विभागो का नामकरण किया जा रहा है। यह हो सकता है कि एक सूत्र-विभाग स्टाफ-कार्य को सम्पन्न करे अथवा स्टाफ इकाई सूत्र-कार्य को करे। इन नामो द्वारा जो भेद किया गया है उसका आशय तो मोटे तौर पर यह है कि विभिन्न सरकारी विभागो को जो क्रियाएँ सम्पन्न करनी पडती है वे दो प्रकार की होती है, एक तो है कार्य का निष्पादन (Execution) जो कि सूत्र इकाइयो द्वारा किया जाता है, दूसरी है परामर्शदात्री क्रिया जो कि स्टाफ इकाइयो द्वारा सम्पन्न की जाती है। इस मोटे से भेद को भी अत्यन्त सावधानी के साथ ही स्वीकार किया जाना चाहिये।

हरबर्ट ए० साइमन ने "सहायक" (Auxiliary) तथा "स्टाफ" की विचार धाराओ के बारे में कुछ भ्रम" शीर्षक के अन्तर्गत इस समस्या की विवेचना की है। "उन्होंने यह प्रश्न पूछा है क्या स्टाफ इकाइया केवल परामर्शदात्री (Advisory) हैं ? क्या वे केवल परामर्श देने और सेवा करने का कार्य ही करती है, आदेश नही देती ? "इस प्रश्न के उत्तर में उन्होंने कहा सत्ता (authority) से तात्पर्य है आज्ञा-पालन कराने की योग्यता। यह तो स्पष्ट है कि ऊपर की इकाइया (स्टाफ) सत्ता का प्रयोग करती है, वे नियन्त्रण करती तथा आदेश देती है। पर जब केन्द्रीय कार्मिक इकाई (Central personnel unit) किसी कार्मिक कार्यवाई का अनुमोदन करने से इन्कार कर देती है तब सूत्र इकाई के सम्मुख इसके अलावा और कोई विकल्प नही रह जाता कि वह इन आदेशो को माने।"[1]

फलस्वरूप यह भावना पैदा हुई कि योजना आयोग एक परामर्श देने वाली संस्था नहीं है बल्कि इसकी गणना एक अतिरिक्त सत्ता (additional authority) के रूप में की जा सकती है, जो कि यद्यपि भारत सरकार की सामान्य मशीनरी का एक अंग नहीं है परन्तु वह कार्य भी प्रत्येक योजना का निर्धारण करता है और इसके निर्णय सभी के द्वारा कार्यान्वित किये जाते है। तथापि, समिति यह सुझाव देती है कि वर्तमान मे अपनाई जाने वाली सम्पूर्ण कार्य विधि का पुनरावलोकन किया जाना चाहिए जिससे कि यदि कोई ऐसी बात या क्रिया सम्पन्न हो गई हो, जिससे उक्त भावना को बल मिला हो, तो उसे ठीक किया जा सके।"[1]

प्रश्न यह है कि ऐसा 'भ्रम' होता क्यो है? साइमन के अनुसार ऐसे भ्रम इसलिये उत्पन्न होते हैं क्योंकि वे संगठन के अनेक परस्पर विरोधी तथ्यों (contradictory facts) को एक साथ मिला देते हैं। आमतौर पर, स्टाफ के भ्रम सामान्य आशाओं के उल्लंघनो (violations) को इस बात मे इन्कार करते हुये छिपाते है कि ऐसे उल्लंघन हुये। ये भ्रम उन दो तरीको के बीच की खाई को भरने मे मदद करते हैं—एक तरीका तो वह, जैसा कि लोग सोचते हैं कि इस तरीके से उनके साथ संगठनो मे व्यवहार किया जाना चाहिए और दूसरा तरीका वह जिसके अनुसार कि वास्तव मे उनके साथ व्यवहार किया जाता है। इस बात को उदाहरणो द्वारा सिद्ध किया जा सकता है। प्रशासन का एक सिद्धान्त है कि सत्ता (authority) कार्य अथवा उत्तरदायित्व के ही अनुरूप होनी चाहिये। पुलिस विभाग अपराधियो को पकडता है, इस कार्य के लिये उसे मोटरकारो की आवश्यकता होती है। परन्तु मोटरकारो को खरीदने का यह अधिकार एक केन्द्रीय क्रय-सत्ता (Central purchasing authority) (An auxiliary service) को दे दिया गया है जिसके द्वारा कि व्यवहार मे पुलिस विभाग की सत्ता मे कटौती ही होने की सम्भावना रहती है।

"अत यदि हम एक केन्द्रीकृत क्रय विभाग (Centralized Purchasing department) की स्थापना करते हैं तो हम निश्चय ही इस बात मे इन्कार करेंगे कि यह विभाग पुलिस विभाग पर किसी भी प्रकार का नियन्त्रण लगाता है। हम इस बात पर ही जोर देंगे कि इसका कार्य तो केवल सेवा करना मात्र है। जबकि तथ्य यह है कि क्रय विभाग पुलिस विभाग के इस सम्बन्ध मे किये गये निर्णय को पलट सकता है कि विभाग को किस प्रकार की गश्ती कारे खरीदनी चाहिएँ। भ्रम का मुख्य कार्य इस तथ्य को छिपाना है कि सहायक क्रियाओ का केन्द्रीयकरण सूत्र विभागो (line departments) की स्वय परिपूर्णता तथा सत्ता को कम ही करना है।"[2]

प्रशासन के अन्य सिद्धान्तो को ले लीजिये अर्थात् आदेश की एकता (unity of command) का सिद्धान्त, जिसका अभिप्राय है कि एक व्यक्ति को केवल एक

1 21st Estimates Committee Report 1957-58 (Second Lok Sabha) Planning Commission Pages, 11-13

2 Simon, *Ibid*, p 287

(ख) प्रक्रिया (Process) विभाग प्रक्रिया अथवा व्यवसाय (Profession) के आधार पर सगठित किए जा सकते हैं। प्रक्रिया अथवा व्यवसाय से तात्पर्य उस तकनीकी प्रवीणता (Technical skill) से होता है जो कि किसी विशिष्ट कार्य को करने के लिए आवश्यक होती है। जैसे कि इन्जीनियरिंग, डाक्टरी, बढईगीरी, आशुलिपि (Stanography), साख्यिकी (Statistics) तथा लेखा व हिसाब-किताब आदि। विभागो की स्थापना उस तकनीकी योग्यता अथवा प्रवीणता के आधार पर की जा सकती है जोकि किसी कार्य के लिए आवश्यक होती है, जैसे वकीलो का विभाग (कानूनी प्रवीणता या योग्यता), इन्जीनियरो का विभाग (इन्जीनियरिंग प्रवीणता), लेखाकारो (Accountants) का विभाग (लेखा पद्धति की प्रवीणता) आदि। हमारे अपने देश में केन्द्र (Centre) मे तथा राज्यो मे लोक कर्म विभाग (Public Works Departments) हैं। उनका आधार वह प्रक्रिया अथवा तकनीकी प्रवीणता ही है जो किसी विशिष्ट कार्य को सम्पन्न करने के लिए आवश्यक होती है।

(ग) सेवा किये जाने वाले व्यक्ति (Persons or clientele) विभागो की स्थापना व्यक्तियो के किसी समूह अथवा समाज के किसी वर्ग की सेवा करने के लिए भी की जा सकती है। इस स्थिति मे सेवा किए जाने वाले व्यक्ति ही सगठन का आधार हो जाते हैं जैसे कि शरणार्थियो के पुनर्वास के लिए विभाग (Department for the Rehabilitation of Refugees)। यहा सेवा किये जाने वाले व्यक्ति ही विभागीय सगठन का आधार है क्योंकि यह विभाग केवल समाज के एक वर्ग, अर्थात् विस्थापित व्यक्तियो (Displaced persons) से ही सम्बन्धित है।

(१) कार्य अथवा उद्देश्य—विभागीय सगठन के आधार के रूप मे
(Function or Purpose—as the basis of Departmental Organization)

यह विभागीय सगठन का सबसे अधिक लोकप्रिय अथवा प्रसिद्ध आधार है और इसके समर्थक भी सबसे अधिक सख्या मे है। कार्य अथवा उद्देश्य के अनुसार विभागीकरण (Departmentalization) से तात्पर्य है कि अधीनस्थ प्रशासकीय इकाइयो को उस उद्देश्य के आधार पर एक विभाग मे सगठित किया जाए जिसकी पूर्ति मे प्रत्येक इकाई लगी हुई है, उदाहरण के लिए, एक रेलवे विभाग होना चाहिये जिसमे रेलो के कार्य तथा उनके सचालन से सम्बन्धित सभी इकाइया (Units) तथा सभाग (Divisions) सम्मिलित हो। इस प्रकार, वे सब प्रशासकीय सेवाये अथवा इकाइयाँ, जिसका उद्देश्य एक से ही कार्य सम्पन्न करना हो अथवा एक जैसी ही समस्याओ को सुलझाने के लिये बनी हो, एक विभाग के रूप मे सगठित कर ली जानी चाहिए। वे सब क्रियाये जो कि एक ही कार्य को सम्पन्न करने के लिए की जाती है एक अध्यक्ष (Head) अर्थात् मुख्य निष्पादक (Chief executive) अथवा मन्त्रिपरिषद के मन्त्री (Cabinet minister) के अन्तर्गत एक विभाग (Department) मे केन्द्रित कर ली जाती है। इसके लाभ निम्न प्रकार है

(१) जब किसी विशेष कार्य से सम्बन्धित सभी प्रशासकीय इकाइयो का एक विभाग मे एकीकरण कर लिया जाता है, तो कार्य का अधिक अच्छा समन्वय हो जाता है तथा कार्यवाही मे सरलता आ जाती है। यदि सभी सैनिक इकाइया एक प्रतिरक्षा विभाग (Defence department) के अन्तर्गत न हो, तो विभिन्न सैनिक इकाइयो मे जो कि सम्पूर्ण प्रशासन मे बिखरी हुई है, उचित सहयोग तथा समन्वय की कमी के कारण युद्ध नही लड़ा जा सकता।

(२) जब किसी बड़े उद्देश्य अथवा कार्य को विभागीय सगठन का आधार बनाया जाता है तो कार्यो के सम्पादन मे दोहराव (Duplication) नही हो सकता।

(३) यदि विभाग का आधार कार्य है तो एक साधारण व्यक्ति भी विभाग के उद्देश्यो को आसानी से समझ सकता है।[1]

हैल्डेन समिति (Haldane committee) ने इस बात का समर्थन किया कि 'कार्य' (Function) अथवा 'उद्देश्य' (Purpose) ही विभागीय सगठन का आधार होना चाहिये। समिति ने कहा

"एक रीति, जिसे अपनाने की हम सिफारिश करते है, यह है कि प्रत्येक विभाग द्वारा सम्पूर्ण समुदाय के लिये सम्पन्न की जाने वाली विशिष्ट सेवा के अनुसार ही उसकी क्रियाओ के क्षेत्र की व्याख्या की जाये । तथापि इस रीति को पूर्ण दृढता के साथ लागू नही किया जा सकता। उदाहरण के लिए, शिक्षा विभाग के

---

1 Professor Schuyler C Wallace in his book titled, *Federal Departmentalization'* and sub-titled 'A critique of theories of organization' has critically examined this problem Refer to his book New York, 1941, pp 98—104

कार्यों में नगरपालिका स्वास्थ्य विभाग के क्षेत्र मे हस्तक्षेप हो सकता है जैसे कि स्कूल-भवन का निर्माण करने मे तथा छात्रो के स्वास्थ्य की परवाह करने मे। अत ऐसा पारस्परिक अतिव्यापन अनिवार्य ही है। ······ परन्तु हमारा विचार है कि यदि विभागीय कार्यों का वितरण एक सामान्य सिद्धान्त के अनुसार किया जाये तो उससे काफी लाभ होगा और हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचे है कि 'सम्पूर्ण समुदाय के लिए सम्पन्न की जाने वाली सेवा की प्रकृति के अनुसार ही विभागीय कार्यो का वितरण करना' यह सामान्य सिद्धान्त है जिसमे कम से कम भ्रम (Contusion) तथा अतिव्यापन (Overlapping) होने की सम्भावना है।

हम यह सुझाव देते है कि ···· पृथक्-पृथक् विभागो के कार्यों को निर्धारित करने वाले सभी नियम इस बात को दृष्टिगत रख कर किये जाने चाहियें कि वे प्रत्येक कार्य उस विभाग के प्रशासन के मुख्य ध्येय को किस सीमा तक पूरा करते हैं।

(२) प्रक्रिया—विभागीय संगठन के आधार के रूप मे
(Process—as the Basis of Departmental Organization)

प्रक्रिया के अनुसार विभागीकरण से तात्पर्य है उन लोगों को एक विभाग के रूप मे सगठित कर लेना जिन्होंने एकसा व्यावसायिक प्रशिक्षण प्राप्त किया हो अथवा जो एकसी या एक ही प्रकार की सामग्री का उपयोग करते हैं। जिन लोगों ने एकसा ही व्यावसायिक प्रशिक्षण (Professional training) प्राप्त किया है, जैसे कि इन्जीनियरिंग, अध्यापन, डाक्टरी, कानून व लेखा-पद्धति आदि का प्रशिक्षण, वे सब एक ही विभाग मे सगठित होगे। सभी इन्जीनियर इन्जीनियरिंग विभाग मे तथा सभी वकील (Lawyers) वकीलो के विभाग मे रहेगे।

इसके पक्ष मे जिस लाभ का दावा किया जाता है वह यह है कि इसमे नवीनतम तकनीकी प्रवीणता (Technical skill) एक विभाग मे ले जाई जाती है, जिसका उपयोग अन्य सभी विभाग कर सकते हैं। सब विभाग अपने-अपने पृथक् इजीनियरिंग अनुभाग (Engineering sections) क्यो रखे ? एक केन्द्रीय इजीनियरिंग विभाग क्यो न बना लिया जाये जो कि सभी विभागो की आवश्यकताओ को पूरा करे ? यह दावा किया जाता है कि पूर्णतया सुसज्जित कोई एक सेवा (Service) तकनीकी कार्य को अधिक कुशलता तथा मितव्ययता के साथ सम्पन्न कर सकती है। इसके अतिरिक्त, किसी भी तकनीकी क्षेत्र मे काम करने वाले सभी व्यक्ति, विभिन्न विभागो मे बिखरे रहने की बजाय, जब एक विभाग के रूप मे सगठित कर लिये जाते है तो उनके द्वारा सम्पन्न किया गया कार्य अपेक्षाकृत उच्च कोटि का होता है। यदि सभी वकीलो को एक विधि विभाग (Department of law) के अन्तर्गत ले जाया जाये तो प्रशासकीय आज्ञाओ, विभागीय नियमो तथा प्रस्तावित विभागो के मसविदो (Drafts) को तैयार करने मे अच्छा समवन्य (Co-ordination) तथा अधिक एकरूपता, (Uniformity) लाई जा सकेगी।

इसकी सबसे बडी कमी यह है कि इसमे समन्वय का अभाव (Lack of co-ordination) रहता है। एक उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए अनेक क्रियायें एक साथ ही सम्पन्न की जानी चाहियें। परन्तु जब प्रक्रिया को विभागीकरण का आधार बनाया जाता है तो अनेक क्रियायें भिन्न-भिन्न विभागो मे फैली रहती हैं। इन क्रियाओ मे समन्वय होना चाहिये। युद्धकाल मे, इजीनियरिंग इकाइयाँ, डाक्टरी दल तथा युद्ध सामग्री के कार्यालय का, पैदल सेना, टैंको तथा तोपखानो के साथ समन्वय होना ही चाहिये, अन्यथा की जाने वाली सम्पूर्ण सैनिक कार्यवाइयाँ ही बेकार हो जायेंगी। किन्तु यदि प्रक्रिया को सगठन का आधार बनाया गया है तो ये सब क्रियाये युद्ध-विभाग (Department of war) से बाहर भिन्न भिन्न विभागो के प्रशासकीय नियन्त्रण मे रहेगी। युद्ध-काल मे, अन्तर्विभागीय समन्वय नही प्राप्त किया जा सकेगा। अत इसका विकल्प केवल यही है कि इन सब इकाइयो को एक विभाग मे वर्गीकृत कर लिया जाये। लूथर गुलिक *(Luther Gullick)* के अनुसार "एक

प्रक्रिया की सफलता का प्रभाव सम्पूर्ण उद्यम पर पडता है और एक प्रक्रिया सम्भाग (Process division) मे समन्वय न कायम किये जा सकने के फलस्वरूप किये जाने वाले सम्पूर्ण कार्य की माधना ही नष्ट हो सकती है।"[1] किसी भी एक कार्य को सम्पन्न करने के लिए आवश्यक क्रियाये यदि अनेक विभागो मे विखरी हुई हैं तो किये जाने वाले कार्य का परिणाम दुर्भाग्यपूर्ण ही होगा।

तकनीकी विशेषज्ञ (Technical specialists) जब पृथक्-पृथक् विभागो मे रख दिये जाते है तो उनमे व्यवसायिक अहकार तथा आत्म-महत्व की भावना उत्पन्न हो जाती है। इन तकनीकी क्रियाओ को जोकि साधन (Means) हैं, उद्देश्य माना जाने लगता है। तकनीकज्ञ (Technicians) लोकप्रिय नियन्त्रण के किसी भी प्रयत्न का विरोध करते हैं और इस तथ्य की दुहाई देते हैं कि उनके विभाग की जटिलताओ को लोग कैसे समझ सकते हैं। इस स्थिति के कारण अनियन्त्रित नौकरशाही' (Uncontrolled bureaucracy) की बुराइयाँ पैदा हो जाती है जो कि न्यूनतम की जानी चाहिएँ।

(३) सेवा किए जाने वाले व्यक्ति—विभागीय संगठन के आधार के रूप मे (Clientele—as the Basis of Departmental Organization):

सेवा किये जाने वाले व्यक्तियो (Persons served or clientele) के आधार पर किये जाने वाले विभागीकरण का मतलब है उन सब अधीनस्थ प्रशासकीय इकाइयो को एक विभाग मे सगठित कर लेना, जिनका उद्देश्य समाज के किसी विशिष्ट वर्ग की सेवा करना है। भारत मे इसका सर्वोत्तम उदाहरण है पुनर्वास तथा अल्प-सख्यको के मामलो का मन्त्रालय (Ministry of Rehabilitation and minority affairs)। इसका निर्माण सितम्बर १९४७ मे शरणार्थियो की उस समस्या को सुलझाने के लिये किया गया था जोकि इस उप-महाद्वीप के विभाजन के फलस्वरूप भारत तथा पाकिस्तान के बीच जनसख्या के बडे पैमाने पर होने वाले आवागमन के कारण उत्पन्न हुई थी। इसके कार्य इस प्रकार हैं

(१) शरणार्थियो (Refugees) की सहायता तथा उनके पुनर्वास की व्यवस्थायें करना।

(२) निष्क्रान्त सम्पत्ति (Evacuee property) की व्यवस्था करना।

(३) विस्थापित व्यक्तियो के दावो (Claims) का निपटारा करना तथा उनके लिए क्षतिपूर्ति (Compensation) की धनराशि की व्यवस्था करना।

इस मन्त्रालय का कार्य विस्थापित व्यक्तियो (Displaced persons) के पुनर्वास, उनकी सहायता, तथा क्षतिपूर्ति (हरजाने) से सम्बन्धित सभी समस्याओ को सुलझाना है। इसका लाभ यह है कि जब एक विभाग का सगठन सेवा किये जाने वाले व्यक्तियो के आधार पर किया जाता है तो समाज के उस वर्ग से सम्बन्ध रखने वाली सभी क्रियाओ का एक विभाग मे समन्वय तथा एकीकरण किया जा सकता है। ऐसा

---

1 *op cit* p, 25

समन्वय तथा एकीकरण अन्य किसी प्रकार सम्भव नही हो सकता। इस रीति से वह विभाग उन सभी व्यक्तियो की सम्पूर्ण समस्याओ को अच्छी प्रकार समझता है जिनकी कि वह सेवा करता है और इस प्रकार समस्याओ का अच्छी प्रकार अध्ययन किया जा सकता है तथा कुशलता के साथ उन्हे सुलझाया जा सकता है।

यदि इस प्रणाली को सार्वलौकिक अथवा सामान्य रूप मे विभागीय सगठन के सम्पूर्ण ढाचे मे लागू किया जाय तो इससे विभागो की भरमार हो जायेगी। इस स्थिति मे तो बच्चो, युवको, वृद्धो, दुर्बलो, असमर्थो, बीमारो व विधवाओ आदि के भी विभाग (Departments) स्थापित हो जायेंगे। अत इस सिद्धान्त को सार्वलौकिक अथवा सामान्य रूप मे लागू नही किया जा सकता। जैसे कि हैल्डेन समिति (Haldane Committee) ने कहा कि "विभाग सरकार की उन क्रियाओ के लिये ससद (Parliament) के प्रति उत्तरदायी होगी जो कि लोगो के एक विशिष्ट वर्ग के हितो को प्रभावित करती हैं और इस स्थिति मे अनेक विभाग स्थापित हो सकते है, उदाहरण के लिये, भिखारियो के लिए मन्त्रालय, बच्चो के लिए मन्त्रालय, बीमाशुदा व्यक्तियो के लिए मन्त्रालय, अथवा बेरोजगार व्यक्तियो के लिये मन्त्रालय। सगठन की इस प्रणाली का अनिवार्य परिणाम यह होता है कि बहुत छोटे-छोटे रूप मे प्रशासन" (Lilliputation administration) की प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है। समिति ने आगे कहा कि "इस सिद्धान्त को दृढता के साथ कार्यान्वित करने से और अनेक विभाग स्थापित हो जायेंगे जैसे कि युवको का विभाग (Department of Youth), वृद्ध व्यक्तियो का विभाग, नगर-निवासियो का विभाग, कृषको का विभाग उत्पादको अथवा निर्माताओ का विभाग, खनिको (Minors) का विभाग, कॉलिज प्रोफेसरो का विभाग, डाक्टरो का विभाग तथा इसी प्रकार और भी।" इसका परिणाम यह होगा कि छोटे-छोटे विभागो की इस बहुलता के कारण अन्तर्विभागीय समन्वय की समस्या को उस समस्या से पृथक् न किया जा सकेगा जो कि अब ब्यूरो स्तर (Bureau level) पर पाई जाती है। इसके परिणामस्वरूप अधिकार क्षेत्र सम्बन्धी विवाद (Jurisdictional conflicts) भी उत्पन्न होगे। वृद्ध व्यक्तियो का विभाग उनके लिये क्या करेगा और क्या नही करेगा ? अधिकार क्षेत्र के निर्धारण का सिद्धान्त क्या होगा ? विभागीकरण की इस प्रणाली से अन्तर्विभागीय समन्वय (Inter-departmental coordination) तथा विभागीय अधिकार क्षेत्र (Departmental jurisdiction) से सम्बन्धित अनेक अजेय एव जटिल प्रशासकीय समस्यायें पैदा होगी। सेवा किये जाने वाले व्यक्तियो के आधार पर किये जाने वाले विभागीय एकीकरण का सिद्धात तो केवल तभी क्रियान्वित किया जाना चाहिये 'जबकि वे समस्यायें, जो जनसख्या के किसी खास वर्ग से सम्बन्धित हो, इतनी स्पष्ट, वास्तविक तथा इतनी घनिष्ठरूप से सम्बन्धित हो कि उनको प्रभावशाली ढग से केवल तभी सुलझाया जा सकता है जबकि उनके हल करने का प्रयत्न अनेक पृथक्-पृथक् तत्वो से

प्रक्रिया की सफलता का प्रभाव सम्पूर्ण उद्यम पर पडता है और एक प्रक्रिया सम्भाग (Process division) मे समन्वय न कायम किये जा सकने के फलस्वरूप किये जाने वाले सम्पूर्ण कार्य की साधना ही नष्ट हो सकती है।"[1] किसी भी एक कार्य को सम्पन्न करने के लिए आवश्यक क्रियाये यदि अनेक विभागो मे बिखरी हुई हैं तो किये जाने वाले कार्य का परिणाम दुर्भाग्यपूर्ण ही होगा।

तकनीकी विशेषज्ञ (Technical specialists) जब पृथक्-पृथक् विभागो मे रख दिये जाते हैं तो उनमे व्यवसायिक अहकार तथा आत्म-महत्व की भावना उत्पन्न हो जाती है। इन तकनीकी क्रियाओ को जोकि साधन (Means) हैं, उद्देश्य माना जाने लगता है। तकनीकज्ञ (Technicians) लोकप्रिय नियन्त्रण के किसी भी प्रयत्न का विरोध करते हैं और इस तथ्य की दुहाई देते हैं कि उनके विभाग की जटिलताओ को लोग कैसे समझ सकते हैं। इस स्थिति के कारण अनियन्त्रित नौकरशाही' (Uncontrolled bureaucracy) की बुराइयाँ पैदा हो जाती हैं जो कि न्यूनतम की जानी चाहिएँ।

(३) सेवा किए जाने वाले व्यक्ति—विभागीय संगठन के आधार के रूप मे (Clientele—as the Basis of Departmental Organization).

सेवा किये जाने वाले व्यक्तियो (Persons served or clientele) के आधार पर किये जाने वाले विभागीकरण का मतलब है उन सब अधीनस्थ प्रशासकीय इकाइयो को एक विभाग मे सगठित कर लेना, जिनका उद्देश्य समाज के किसी विशिष्ट वर्ग की सेवा करना है। भारत मे इसका सर्वोत्तम उदाहरण है पुनर्वास तथा अल्पसख्यको के मामलो का मन्त्रालय (Ministry of Rehabilitation and minority affairs)। इसका निर्माण सितम्बर १९४७ मे शरणार्थियो की उस समस्या को सुलझाने के लिये किया गया था जोकि इस उप-महाद्वीप के विभाजन के फलस्वरूप भारत तथा पाकिस्तान के बीच जनसख्या के बडे पैमाने पर होने वाले आवागमन के कारण उत्पन्न हुई थी। इसके कार्य इस प्रकार हैं

(१) शरणार्थियो (Refugees) की सहायता तथा उनके पुनर्वास की व्यवस्थायें करना।

(२) निष्क्रान्त सम्पत्ति (Evacuee property) की व्यवस्था करना।

(३) विस्थापित व्यक्तियो के दावो (Claims) का निपटारा करना तथा उनके लिए क्षतिपूर्ति (Compensation) की धनराशि की व्यवस्था करना।

इस मन्त्रालय का कार्य विस्थापित व्यक्तियो (Displaced persons) के पुनर्वास, उनकी सहायता, तथा क्षतिपूर्ति (हरजाने) से सम्बन्धित सभी समस्याओ को सुलझाना है। इसका लाभ यह है कि जब एक विभाग का सगठन सेवा किये जाने वाले व्यक्तियो के आधार पर किया जाता है तो समाज के उस वर्ग से सम्बन्ध रखने वाली सभी क्रियाओ का एक विभाग मे समन्वय तथा एकीकरण किया जा सकता है। ऐसा

1 *op cit* p, 25

समन्वय तथा एकीकरण अन्य किसी प्रकार सम्भव नही हो सकता। इस रीति से वह विभाग उन सभी व्यक्तियो की सम्पूर्ण समस्याओ को अच्छी प्रकार समझता है जिनकी कि वह सेवा करता है और इस प्रकार समस्याओ का अच्छी प्रकार अध्ययन किया जा सकता है तथा कुशलता के साथ उन्हे सुलझाया जा सकता है।

यदि इस प्रणाली को सार्वलौकिक अथवा सामान्य रूप मे विभागीय सगठन के सम्पूर्ण ढाचे मे लागू किया जाय तो इससे विभागो की भरमार हो जायेगी। इस स्थिति मे तो बच्चो, युवको, वृद्धो, दुर्बलो, असमर्थो, बीमारो व विधवाओ आदि के भी विभाग (Departments) स्थापित हो जायेंगे। अत इस सिद्धान्त को सार्वलौकिक अथवा सामान्य रूप मे लागू नही किया जा सकता। जैसे कि हैल्डेन समिति (Haldane Committee) ने कहा कि "विभाग सरकार की उन क्रियाओ के लिये ससद (Parliament) के प्रति उत्तरदायी होगी जो कि लोगो के एक विशिष्ट वर्ग के हितो को प्रभावित करती हैं और इस स्थिति मे अनेक विभाग स्थापित हो सकते है, उदाहरण के लिये, भिखारियो के लिए मन्त्रालय, बच्चो के लिए मन्त्रालय, बीमाशुदा व्यक्तियो के लिए मन्त्रालय, अथवा बेरोजगार व्यक्तियो के लिये मन्त्रालय। सगठन की इस प्रणाली का अनिवार्य परिणाम यह होना है कि बहुत छोटे-छोटे रूप मे प्रशासन" (Lilliputation administration) की प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है। समिति ने आगे कहा कि "इस सिद्धान्त को दृढता के साथ कार्यान्वित करने से और अनेक विभाग स्थापित हो जायेंगे जैसे कि युवको का विभाग (Department of Youth), वृद्ध व्यक्तियो का विभाग, नगर-निवासियो का विभाग, कृषको का विभाग उत्पादको अथवा निर्माताओ का विभाग, नाबालिगो (Minors) का विभाग, कॉलिज प्रोफेसरो का विभाग, डाक्टरो का विभाग तथा इसी प्रकार और भी।" इसका परिणाम यह होगा कि छोटे-छोटे विभागो की इस बहुलता के कारण अन्तर्विभागीय समन्वय की समस्या को उस समस्या से पृथक् न किया जा सकेगा जो कि अब ब्यूरो स्तर (Bureau level) पर पाई जाती है। इसके परिणामस्वरूप अधिकार क्षेत्र सम्बन्धी विवाद (Jurisdictional conflicts) भी उत्पन्न होगे। वृद्ध व्यक्तियो का विभाग उनके लिये क्या करेगा और क्या नही करेगा ? अधिकार क्षेत्र के निर्धारण का सिद्धान्त क्या होगा ? विभागीकरण की इस प्रणाली से अन्तर्विभागीय समन्वय (Inter-departmental coordination) तथा विभागीय अधिकार क्षेत्र (Departmental jurisdiction) से सम्बन्धित अनेक अजेय एव जटिल प्रशासकीय समस्याये पैदा होगी। सेवा किये जाने वाले व्यक्तियो के आधार पर किये जाने वाले विभागीय एकीकरण का सिद्धात तो केवल तभी क्रियान्वित किया जाना चाहिये 'जबकि वे समस्यायें, जो जनसख्या के किसी खास वर्ग से सम्बन्धित हो, इतनी स्पष्ट, वास्तविक तथा इतनी घनिष्ठरूप से सम्बन्वित हो कि उनको प्रभावशाली ढग से केवल तभी सुलझाया जा सकता है जबकि उनके हल करने का प्रयत्न अनेक पृथक्-पृथक् तत्वो से

नही बल्कि एक सामूहिक रूप मे किया जाय ..।"[1] विभागीकरण का यह सिद्धान्त केवल तभी अपनाया जाना चाहिये जबकि उसकी तीव्र आवश्यकता हो अथवा कुछ विशेष समस्याओ के उत्पन्न हो जाने के कारण समाज का कोई वर्ग वास्तव मे किसी विशिष्ट व्यवहार के योग्य हो, जैसे कि भारत मे पिछडे वर्गो (Backward classes) की अपनी विशिष्ट समस्यायें है, अत एक पिछडे वर्ग का विभाग स्थापित किया जा सकता है जो कि अपना सम्बन्ध पिछडे वर्गो के कल्याण तथा उनका सामान्य उन्नति से रखे ।

(४) क्षेत्र अथवा प्रदेश—विभागीय संगठन के आधार के रूप मे (Area or Territory—as the Basis of Department Organization) :

विभाग उस क्षेत्र अथवा प्रदेश के आधार पर सगठित किये जा सकते हैं जहाँ कि वे सेवा कार्य करते है। उदाहरणार्थ, श्रीलका (Ceylon) मे रहने वाले भारतीयो का एक विभाग हो सकता है। उस सम्बन्धित विभाग का क्षेत्र होगा श्रीलका। विदेश कार्यालय (Foreign office) सदा उस क्षेत्र अथवा प्रदेश के आधार पर बटा रहता है जहाँ कि उसका कार्य फैला होता है। भारत मे, विदेश मन्त्रालय (Ministry of Foreign Affairs) मे अनेक सभाग (Divisions) हैं जो कि पृथक्-पृथक् भौगोलिक क्षेत्रो से सम्बन्धित हैं।

विभागीकरण के इस सिद्धान्त का लाभ यह है कि किसी स्थान की विशिष्ट आवश्यकताओ के अनुरूप ही बडी सरलता के साथ सरकारी नीतियो का निर्माण किया जा सकता हैं और उस क्षेत्र मे रहने वाले लोगो की इच्छायें सन्तुष्ट की जा सकती हैं। यह हो सकता है कि देश के कुछ प्रदेशो की अपनी कुछ विशिष्ट समस्यायें हो। अत सरकारी नीति का निर्धारण करते समय उन समस्याओ को विचारार्थ लेना चाहिये।

इससे हानि यह होती है कि देश के व्यापक हितो की लागत पर सकुचित प्रदेशवाद (Narrow regionalism) पनपने लगता है। प्रादेशिक विभागो को स्थानीय राजनीतिज्ञो तथा स्थानीय जोर डालने वाले वर्गो के हानिकर दबावो के अन्तर्गत काम करना पड सकता है। *Wallace* ने स्थान अथवा प्रदेश के आधार पर किये जाने वाले विभागीकरण के विचार को स्पष्टरूप से अस्वीकार किया है।

विभागीय सगठन के सिद्धान्तो के इस अध्ययन के निष्कर्ष के रूप मे हम यह कह सकते हैं कि विभिन्न विभागो का निर्माण समय और परिस्थिति के अनुसार भिन्न-भिन्न सिद्धान्तो के आधार पर किया जाता है । अधिकाश मामलो मे, कार्य अथवा उद्देश्य ही विभागीकरण का आधार होता है। अनेक बार ऐसा होता है कि एक से अधिक तत्व विभागीय सगठन का आधार बन जाते है। यह कभी भी नही समझना चाहिए कि विभागो का सगठन पूर्णतया केवल एक ही तत्व के आधार पर किया जाता है।

---

1 Wallace, *Federal Departmentalization*

भारत सरकार मे विभाग का सगठन
(Organization of a Department in the Government of India) :

प्रशासनिक सुविधा की दृष्टि से भारत सरकार का प्रशासकीय ढाँचा अनेक मन्त्रालयो (Ministries) मे बटा होता है। एक मन्त्रालय मे दो या उससे अधिक विभाग होते हैं और उन सबका कार्यभारी (Incharge) एक मन्त्री (Minister) होता है। मन्त्रालय अथवा विभाग एक राजनैतिक प्रमुख अर्थात् एक मन्त्री के अधीन होता है। वही विभाग की मुख्य नीति का निर्धारण करता है और उस विभाग के कार्य के लिए ससद के प्रति उत्तरदायी होता है।

मन्त्री की सहायता एक सचिव (Secretary) द्वारा की जाती है जिसके नियन्त्रण मे केन्द्रीय सचिवालय (Central Secretariat) का एक भाग होता है। सचिव विभाग का प्रशासकीय प्रमुख (Administrative Head) होता है और वह **मत्रालय की परिधि के अन्तर्गत आने वाली नीति तथा प्रशासन सम्बन्धी सभी मामलों मे मत्री का प्रधान सलाहकार (Adviser) होता है। नीति सम्बन्धी मामलो मे सचिव मत्री को परामर्श देता है।** सचिव को किसी भी समस्या से सम्बन्धित तथ्य व आकडे मन्त्री के समक्ष प्रस्तुत करने होते है। उसे मन्त्री को सूचना, सलाह, और यदि आवश्यक हो तो चेतावनी भी दे देनी होती है। मन्त्रियो द्वारा किये जाने वाले नीति सम्बन्धी निर्णयो पर सचिव का अत्यधिक प्रभाव पडता है। "परन्तु लोकतन्त्रीय सरकार की स्थापना के पहले प्रवाह मे अनेक मन्त्रियो ने, जिन्हे कि प्रशासन तथा सार्वजनिक मामलो का कतई अनुभव नही था, विना विचार-विमर्श के ही निर्णय दे डाले और दुर्भाग्य से अनेक सचिव भी मन्त्रियो के पक्षपात व अविचारपूर्ण निर्णयो के प्रचलित प्रवाह मे वह चले तथा वमुकाबले इसके कि वे सम्बन्धित मामलो की परिस्थितियो तथा राज्य के हितो को देखते हुए आवश्यक परामर्श तथा सहायता देते, उन्होने मन्त्रियो को उनकी रुचि तथा स्वीकृति के अनुकूल भी सलाह दी। इस प्रकार सचिवो के रूप मे वे अपने कर्त्तव्यो को पूरा न कर सके।"[1]

काम की अधिकता के कारण, सचिव की सहायता के लिए एक सयुक्त सचिव (Joint Secretary), उपसचिव (Deputy Secretary), अवर सचिव (Under Secretary) तथा कभी-कभी एक अतिरिक्त सचिव (Additional Secretary) होता है।

सचिवालय (Secretariat) के उच्च पद भारतीय सिविल सेवा (Indian Civil service), भारतीय प्रशासन सेवा (Indian Administrative Service) तथा केन्द्रीय सेवा, श्रेणी प्रथम (Central Service, Class I) के अधिकारियो से भरे जाते है। ये पद (Posts) 'अवधि प्रणाली' (Tenure system) के आधार पर भरे जाते हैं जो कि भारत सरकार मे सन् १९०५ से प्रचलित है। उच्च सचिवालय अधिकारी राज्य मे वीस से पच्चीस वर्ष तक का प्रशासकीय अनुभव प्राप्त करने के

1 A D Gorwala, Report on *Public Administration in India*—1951

पश्चात् तीन वर्ष की अवधि के लिये सचिवालय मे आते हैं । सचिवालय अधिकारी (Secretariat officials) काफी प्रशासकीय अनुभव प्राप्त करने के बाद राज्यो मे प्रतिनिधि के रूप मे नियुक्त होकर आते है । सचिवालयिक पुनर्गठन पर प्रस्तुत किये व्हीलर प्रतिवेदन (Wheeler Report) के अनुसार इस प्रणाली के मुख्य लक्षण ये हैं "प्रथम तो यह कि भारत सरकार के सचिवालय मे स्टाफ की पूर्ति, सीधी भर्ती करके नही बल्कि प्रान्तो (अब राज्यो) मे पहले से ही काम कर रहे अधिकारियो को लेकर उसके द्वारा की जानी चाहिये और दूसरे यह कि केन्द्रीय सचिवालय मे काम करने वाले पदाधिकारियो की पदावधि मे और प्रान्तो (अब राज्यो) मे काम करने वाले पदाधिकारियो की पदावधि (Tenure of office) मे नियमित अदला-बदली होनी चाहिये ।"[1]

भारतीय प्रशासन अधिकारी (Indian Administrative officers), भर्ती के पश्चात्, राज्यो मे नियुक्त कर दिये जाते हैं और फिर काफी प्रशासकीय अनुभव प्राप्त करने के बाद वे सचिवालय मे इन महत्वपूर्ण पदो[2] को सम्भालते हैं । परन्तु अल्पावधि (Short tenure) तथा केन्द्रीय सचिवो की राज्यो को वापिसी के कारण केन्द्रीय सचिवालय अनुभव तथा दीर्घावधि (Long tenure) की परम्परा से वचित हो जाता है। अत सचिवो के कार्य काल की अवधि तीन वर्ष से अधिक होनी चाहिये ।"

जैसा कि हम बतला चुके है, सचिव नीति सम्बन्धी मामलो मे मन्त्री को परामर्श देते हैं । इससे नीचे विभाग का निष्पादक सगठन (Executive organization) होता है जिसका अपना विभागाध्यक्ष (Head of Department) होता है । 'सचिव (Secretaries) जहाँ मन्त्रियो (Ministers) की आँखो व कानो के समान है वहाँ विभागाध्यक्ष उनके हाथो के सदृश होते हैं । ये विभागाध्यक्ष ही होते हैं जो कि

---

1 Wheeler Report, Para 9

2 उच्च सचिवालय स्टाफ (Higher Secretariat Staff) हैं
इस श्रेणी मे अधिकारियो के पाच नियमित पद क्रम (Grades) हैं :

(क) **सचिव**—यदि इस पद की भर्ती भारतीय प्रशासन सेवा अधिकारी से की जाए तो वेतन रु० ३,००० मासिक, किन्तु भारतीय सिविल सेवा अधिकारी द्वारा भरा जाने पर रु० ४,००० मासिक ।

(ख) **सयुक्त सचिव**—यदि इस पद को भा० प्र० से० अधिकारी द्वारा भरा जाए तो वेतन रु० २,२५० मासिक किन्तु भा० सि० सेवा अधिकारी द्वारा भरा जाने पर वेतन रु० ३,००० मासिक ।

(ग) **उपसचिव**—वेतनक्रम रु० १,१००–५०, १,३००–३०, १,६००–१००, १८०० प्रतिमास ।

(घ) **अवर सचिव**— वेतन रु० ८००–५०–१, ५०० प्रतिमास ।

(ङ) कभी-कभी एक अतिरिक्त सचिव भी होता है ।

अपने-अपने विभागो मे सरकार की नीति व कार्यक्रम को कार्यान्वित करते है और उस रीति तथा सफलता के लिए उत्तरदायी ठहराये जाते है जिसके द्वारा कि वे अपना कार्य सम्पन्न करते है ।"[1] विभागाध्यक्ष का सम्बन्ध नीति के निष्पादन (Execution) से होता है, उसके निर्माण से नही । परन्तु भारत मे मन्त्रालय तथा विभागाध्यक्ष के बीच ठीक-ठीक सम्बन्धो का विकास नही हुआ है । ए० डी० गोरवाला (*A D Gorwala*) के अनुसार, "सगठन सम्बन्धी दोष का एक सर्वोत्तम उदाहरण, जिसमे कि प्रशासन की एक शाखा अन्य शाखा के कार्यों का अतिक्रमण करती है, उन सम्बन्धो द्वारा प्रस्तुत किया जाता है जो कि सचिवालय (Secretariat) अर्थात् मन्त्रालय (Ministry) और उसके अन्तर्गत काम करने वाले विभागाध्यक्ष के मध्य पाये जाते हैं । यहाँ यद्यपि इन दोनो के ही कार्यो की सीमाएँ बिल्कुल स्पष्ट है, अर्थात् मन्त्रालय तो नीति के निर्माण के लिए उत्तरदायी है और विभाग उस नीति के कार्यान्वय (Implementation) के लिए, किन्तु तो भी विभाग द्वारा किये जाने वाले कार्यो को देखने के लिए मन्त्रालय इतना अधिक व्यग्र रहता है कि यह निरन्तर उसके कामो मे हस्तक्षेप करता है । परिणाम यह होना है कि विभागाध्यक्ष की समस्त प्रेरणा समाप्त हो जाती है और बजाय इसके कि वह अपने ही कार्य मे व्यस्त रहे तथा उसमे उन्नति करे, उसे अपना काफी समय अनावश्यक प्रतिवेदन (Reports) प्रस्तुत करने मे व्यय करना पडता है जिनमे उसे पृथक्-पृथक् मामलो का स्पष्टीकरण मन्त्रालय को भेजना पडता है और ऐसे मुद्दो पर उसे मन्त्रालय की आज्ञाएँ प्राप्त करनी पडती हैं जो कि स्पष्टत उसके अपने ही अधिकार-क्षेत्र मे होते है । विभागाध्यक्ष के कार्य को मन्त्रालय द्वारा स्वय किये जाने के प्रयत्न का परिणाम निश्चित रूप से अकुशलता तथा अस-फलता के रूप मे ही सामने आता है । काम मे देरी होती है, काम अच्छी प्रकार नही हो पाता और जब काम बिगड जाता है तो ऐसा कोई एक व्यक्ति नही होता जिसे उसके लिये जिम्मेदार ठहराया जा सके । विभागीय प्रमुख तथा अन्य अधिकारी निराश हो जाते हैं और जो कुछ होना है वह यह कि समय का, मनुष्यो का तथा सामग्री का अपव्यय होता है, जिसके फलस्वरूप नीति भी पूर्णत सफल नही हो पाती । अच्छा तो यही होगा कि विभागाध्यक्ष को अपना काम करने दिया जाये और मन्त्रालय दूर से ही उस पर निगाह रखे और यह देखने के लिए कि काम किस प्रकार हो रहा है उससे निश्चित अवधियो के पश्चात् प्रतिवेदन (Reports) माँगता रहे । यदि ऐसे व्यवहार द्वारा मन्त्रालय ने विभागाध्यक्ष का विश्वास प्राप्त कर लिया तो विभागाध्यक्ष उचित समय पर स्वय ही ऐसी कठिनाइयाँ मन्त्रालय के सामने लायेगा जिनमे कि वह मन्त्रा-लय की सहायता चाहता है बजाय इसके कि वह मन्त्रालय से ईर्ष्या करे व बुरा माने, जैसा कि जब उसे लगातार तग किया जाता है तो वह करता है ।"[2]

---

1 M Ruthnaswamy Principles and Practice of *Public Administration*, Second Edition p 208

2 A D Gorwala, Report on *Public Administration*, 1951 New Delhi, p 39

कुशल कार्य-सचालन के लिए मन्त्रालय/विभाग (Ministry/Department) अनेक सभागो (Divisions) शाखाओ (Branches) तथा अनुभागो (Sections) मे वटा होता है। अनुभाग (Section) एक अनुभाग अधिकारी (Section officer) के अधिकार मे होता है। शाखा एक अवर सचिव (Under secretary) के अधिकार मे होती है और इसमे दो अनुभाग होते है। दो शाखाओ को मिलाकर एक सभाग बनता है जो कि एक उपसचिव (Deputy Secretary) के अधिकार मे होता है।"[1]

भारत सरकार के मन्त्रालय तथा विभाग
(Ministers and Development of the Govt. of India)

१ विदेश मन्त्रालय (Ministry of External Affairs)

२ प्रतिरक्षा मन्त्रालय (Ministry of Defence)

(अ) प्रतिरक्षा उत्पादन विभाग (Department of Defence Production)

३ वित्त मन्त्रालय (Finance Ministry)

(अ) राजस्व विभाग (Department of Revenue)

(ब) व्यय विभाग (Department of Expenditure)

(स) आर्थिक मामलो का विभाग (Department of Economic Affairs)

४ गृह मन्त्रालय (Ministry of Home Affairs)

५ विधि विभाग (Ministry of Law)

६ वाणिज्य व उद्योग मन्त्रालय (Ministry of Commerce and Industry)

---

1 विभाग मे अधीनस्थ स्टाफ निम्न प्रकार होता है—

(१) अधीक्षक (Superintendent) (जिसे कि अब अनुभाग अधिकारी की सज्ञा दी गई है—वेतनक्रम रु० ३००-३०-८०० प्रतिमास, राजपत्रित श्रेणी प्रथम (Gazetted Class I)

(२) सहायक अधीक्षक (Assistant Superintendent)—वेतनक्रम रु० २७५-२५-५०० प्रतिमास श्रेणी द्वितीय।

(३) सहायक (Assistant)—वेतनक्रम रु० १६०-१०-३०० द० अ० १५-४५० प्रतिमास अराजपत्रित श्रेणी द्वितीय (Non-Gazetted Class II)

(४) उच्च सभाग (Upper Division Clerk)—वेतनक्रम रु० ८०-५-१२० द० अ०-८-२००-१०/२-२०० मासिक।

(५) निम्न सभाग लिपिक (Lower Division Clerk)—वेतनक्रम रु० ६०-३-८१ द० अ० ४-१२५-५-१३० पदक्रम तृतीय।

(अ) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार विभाग (Department of International Trade)

७ इस्पात व भारी उद्योग मन्त्रालय (Ministry of Steel and Heavy Industries)

(अ) भारी उद्योग विभाग (Department of Heavy Industries)

८ रेल मन्त्रालय (Ministry of Railways)

९ परिवहन व सचार मन्त्रालय (Ministry of Transport and Communications)

(अ) परिवहन विभाग (Department of Transport)

(व) नागरिक उड्डयन तथा सचार विभाग (Department of Civil Aviation and Communication)

१० श्रम तथा रोजगार मन्त्रालय (Ministry of Labour and Employment)

११ खाद्य तथा कृषि मन्त्रालय (Ministry of Food and Agriculture)

(अ) खाद्य विभाग (Department of Food)

(व) कृषि विभाग (Department of Agriculture)

१२ सिचाई तथा विद्युत शक्ति मन्त्रालय (Ministry of Irrigation and Power)

१३ शिक्षा मन्त्रालय (Ministry of Education)

१४ स्वास्थ्य मन्त्रालय (Ministry of Health)

१५ वैज्ञानिक अनुसन्धान तथा सास्कृतिक मामलो का मन्त्रालय (Ministry of Scientific Research and Cultural Affairs)

१६ सूचना व प्रसारण मन्त्रालय (Ministry of Information and Broadcasting)

१७ निर्माण-कार्य तथा गृह-निर्माण मन्त्रालय (Ministry of Works and Housing)

(अ) निर्माण-कार्य तथा गृह-निर्माण विभाग (Department of Works and Housing)

(व) पुनर्वास विभाग (Department of Rehabilitation)

१८ सामुदायिक विकास, पचायती राज तथा सहकारिता मन्त्रालय (Ministry of Community Development, Panchayat Raj and Cooperation)

१९ ससदीय मामलो का मन्त्रालय (Ministry of Parliamentry Affairs)

२० अणुशक्ति विभाग (Department of Atomic Energy)

विभागो व मन्त्रालयो की इतनी वडी सख्या मे अन्तर्विभागीय समायोजन (Inter-department coordination) की समस्या का निहित होना स्पष्ट है। यह एक सामान्य शिकायत है कि भारत सरकार के मन्त्रालयो तथा विभागो मे पारस्परिक समायोजन का अभाव है। यदि देश मे कोयले का सकट है तो ईंधन से सम्बन्धित मन्त्रालय रेल तथा परिवहन मन्त्रालयो को यातायात की सुविधाओ के अभाव के लिए दोषी ठहराता है। इस तरह के उदाहरणो की कमी नही है। भारत जैसे एक लोक-कल्याणकारी देश मे, जहाँ मन्त्रालय व विभागो की सख्या तीव्र गति से बढ रही है, यह आवश्यक है कि सरकार के सब अगो व टुकडो मे समायोजन हो तथा उनके कार्यों मे दोहरापन तथा अतिव्यापन न हो।

अब हम कुछ चुने हुए मन्त्रालयो के सगठन तथा कार्यों का विवरण देंगे।

विदेश मन्त्रालय
(Ministry of Foreign Affairs)

यह मन्त्रालय निम्नलिखित विषयो से सम्बन्धित कार्यों के लिए उत्तरदायी होता है —

(१) विदेशी कार्य।

(२) विदेशो के साथ सम्बन्ध।

(३) भारत मे विदेशी (Foreign), राजनयिक (Diplomatic) तथा कौंसली अधिकारियो (Consular officers) को प्रभावित करने वाले सभी मामले।

(४) भारत से निर्गमन (Migration from India), पारपत्र (Passports) और दृष्टाक (Visas) तथा भारत से बाहर के स्थानो की तीर्थयात्रा।

(५) उत्तरी-पूर्वी सीमान्त एजेन्सी तथा नागा पहाडी-तुएनसान क्षेत्र का प्रशासन।

(६) सयुक्त राष्ट्र सघ (U N O), अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन, सघ तथा अन्य सस्थायें।

(७) भारतीय विदेश सेवा।

(८) विदेशी प्रचार (Foreign Publicity)।

(९) पाण्डेचेरी तथा भारत की अन्य भूतपूर्व फ्रासीसी बस्तियो का प्रशासन।

(१०) विदेशो मे स्थित राजदूतावासो (Embassies) तथा कौंसलवासो (Consulates) मे नियुक्तियाँ।

(११) विदेशो के साथ सधियाँ (Treaties) तथा करार (Agreements)।

यह मन्त्रालय निम्नलिखित विधियो अथवा कानूनो (Laws) के प्रशासन के लिए उत्तरदायी है—

(क) भारतीय देशान्तरवास अधिनियम, १९२२ (The Indian Emigration Act, 1922)।

(ख) पारस्परिकता अधिनियम, १९४३ (The Reciprocity Act, 1943) ।

(ग) बन्दरगाह हज समिति अधिनियम, १९३२ (The Port Haj Committee Act 1932) ।

(घ) भारतीय तीर्थयात्रा जलयान नियम (The Indian Pilgrim Ships Rules) ।

(ङ) तीर्थयात्री सरक्षण अधिनियम, १८८७ (बम्बई) (The Protection of Pilgrims Act) ।

(च) मुस्लिम तीर्थयात्री सरक्षण अधिनियम, १८९६ (बगाल) ।

यह मन्त्रालय ससार भर मे राजनयिक (Diplomatic) तथा कौंसली कार्यालयो (Consular offices) को कायम रखता है । इस मन्त्रालय मे ८५ अनुभाग (Sections) है जिनमे ३८ तो प्रशासनिक (Administrative) है और ४७ प्रादेशिक (Territorial) तथा तकनीकी (Technical) । ये अनुभाग निम्नलिखित १२ सभागो (Divisions) मे वर्गीकृत किये हैं ।

१ अमेरिकन सम्भाग (American Division)—उत्तरी तथा दक्षिणी अमेरिका के देश और विदेशी सहायता ।

२ पश्चिमी सम्भाग—सयुक्त राष्ट्र (United Nations) तथा योरोप (यूनाइटेड किंगडम तथा भारत मे विदेशी बस्तियो को छोडकर) ।

३ पूर्वी सम्भाग—चीन, जापान, कोरिया, भूटान, उत्तरपूर्वी सीमान्त एजेन्सी तथा नागा पहाडी—तुयेनसाग क्षेत्र ।

४ दक्षिणी सम्भाग—पश्चिमी एशिया तथा दक्षिणी पूर्वी एशिया, उत्तरी अफ्रीका, सूडान, अफगानिस्तान, ईरान, ब्रह्मा, श्रीलका पारपत्र (Ceylon passports) और दृष्टाक-एशियन-अफ्रीकन तथा कोलम्बो शक्ति सम्मेलन (Visas-Asian-African and Colombo Power Conferences) ।

५ अफ्रीका सम्भाग—अफ्रीका, ब्रिटेन तथा उपनिवेश (Colonies) (उत्तरी अफ्रीका तथा सूडान के अलावा अफ्रीका) ।

६ पाकिस्तान सम्भाग (Pakistan division) ।

७ नयाचार सम्भाग (Protocal division)—नयाचार, कौंसली कार्य (Consular work) तथा देशान्तरवास (Emigration) ।

८ प्रशासन सभाग (Administration Division)—विदेश स्थित भारतीय मिशनो मे तथा प्रधान कार्यालयो (Headquarters) मे प्रशासन (अर्थात् कर्मचारी-वर्ग तथा गृह-सन्बन्ध), स्थापना सम्बन्धी मामले (Establishment matters), बजट तथा लेखे, सामान्य प्रशासकीय मामले, ससद कार्य ।

९ विदेशी प्रचार सभाग ।

१० विदेशी सेवा निरीक्षक-वर्ग (Foreign Service Inspectorate) तथा अपहृत व्यक्ति (Abducted persons) ।

११. ऐतिहासिक सभाग ।

१२. उत्तरी सभाग यह सभाग उत्तरी सीमा तथा चीन के साथ सम्बन्धो के बारे मे व्यवहार करता है ।

विदेश मन्त्रालय के अधीनस्थ कार्यालय निम्न प्रकार हैं—

(क) देशान्तरवास सस्थान (Emigration Establishments)

(ख) उत्तरी पूर्वी सीमान्त एजेन्सी

(ग) नागा पहाडी-तुएनसाग क्षेत्र

(घ) महानिरीक्षक का कार्यालय (Office of the Inspector General), आसाम राइफल्स ।

मन्त्रालय के कर्मचारी वर्ग (स्टाफ) की कुल सख्या इस प्रकार है—

सचिवालय (Secretariat) -१४६२

अधीनस्थ कार्यालय (Subordinate offices)—४४१३

राजदूतावास (Embassies), हाई कमीशन (High Commissions), दूतावास (Legations), विशिष्ट मिशन तथा महा-कौसलावास (Consulates-General) ६६०, अन्य–७८

स्वय प्रधान मन्त्री (Prime Minister) ही इस विभाग के कार्यभारी (Incharge) हैं और इस बात की बहुत कम सम्भावना है कि सिविल सेवक (Civil servants) भारत की विदेश नीति के सिद्धान्तो पर कोई बडा प्रभाव डालने मे समर्थ हो सकेंगे ।

किन्तु विदेश मन्त्रालय की कार्य प्रणाली के बारे मे लिखते हुए श्री ए० डी० गोरवाला ने कहा कि "कोई भी अनुभवी व्यक्ति, जो कि नई दिल्ली मे विदेश-कार्य मन्त्रालय अथवा हमारे कुछ प्रमुख राजदूतावासो (Embassies) तथा कौंसलावासो (Consulates) का भ्रमण करे तो नेहरू की प्रशासकीय योग्यता की कमी को स्पष्ट देख सकता है । वहाँ बहुत व्यक्ति थोडा कार्य करते हैं । बहुत कम ही व्यक्ति ऐसे होते हैं जो उस देश की भाषा को सीखने का कष्ट उठाते हैं जहाँ की उनकी नियुक्ति हुई है । व्यर्थ की दिखावट तथा ऊचे रहन-सहन पर बहुत धन का अपव्यय किया जाता है । एक अच्छे प्रशासक को काफी समय पहले ही इन हानिकारक स्थितियो से छुटकारा पाकर अपनी शासन-व्यवस्था को कुशल बना लेना चाहिये था । नेहरू के अधीन ये सब गडबडे तथा भूलें केवल होती ही नही है, अपितु समय बीतने के साथ इनकी स्थिति और भी बदतर होती जाती है ।"[1]

गृह अथवा स्वराष्ट्र मन्त्रालय
(Ministry of Home Affairs)

गृह विभाग (Home Department) का सम्बन्ध देश मे कानून व व्यवस्था (Law and order) बनाये रखने मे है । यह अग्रलिखित बातो से सम्बन्धित है—

1 A D Gorwala in a study of Nehru edited by Rafib Lakaria, p 260-61

१ लोक सेवायें (Public services)

२ लोक सुरक्षा (Public security)

३ केन्द्र द्वारा शासित क्षेत्रो का प्रशासन, अण्डमान तथा निकोबार द्वीपसमूह राज्यो की प्रशासनिक, वित्तीय तथा आर्थिक समस्यायें।

४ विदेशी (Foreigners), नागरिकता (Citizenship) राष्ट्रीयता (Nationality) समाचार-पत्र सम्बन्धी कानून (Press laws) आदि।

५ मुद्रणालयो, पुस्तको तथा समाचार-पत्रो के विरुद्ध की जाने वाली कार्यवाही से सम्बन्धित कानून का प्रशासन।

६ समुद्र सीमाकर अधिनियम (Sea Customs Act) के अन्तर्गत पुस्तको तथा अन्य प्रकाशनो के भारत मे आयात पर प्रतिबन्ध।

७ इसका सम्बन्ध केन्द्रीय सेवाओ (Central Services) से है। यह उनकी सेवा की शर्तें निर्धारित करता है। यह सघीय लोक सेवा आयोग (Federal Public Service Commission) से व्यवहार करता है।

८ इसका सम्बन्ध राष्ट्रपति (President), उपराष्ट्रपति (Vice-president), मन्त्रियो (Ministers), उपमन्त्रियो तथा राज्यपालो (Governors) के भत्तो (Allowances), विशेषाधिकारो (Privileges) व पेन्शनो से, उच्चतम न्यायालय (Supreme Court) के मुख्य न्यायाधिपति (Chief Justice) व अन्य न्यायाधीशो (Judges) की तथा उच्च न्यायालयो (High Courts) के मुख्य न्यायाधिपति व अन्य न्यायाधीशो की नियुक्तियो एव सेवा की शर्तो से, पूर्वता अधिपत्र (Warrant of precedence), राष्ट्रीय ध्वज (National Flag) तथा राष्ट्रपति व राज्यपालो के झण्डो से भी है।

९ इस मन्त्रालय का सम्बन्ध भारत सरकार तथा भूतपूर्व भारतीय रियासतो के शासको के मध्य के विलय तथा पारस्परिक करारो के प्रपत्र (Instruments of accession and covenants) के विषय मे उत्पन्न मामलो से है जिनके अन्तर्गत प्रिवी पर्स (Privy purses), इन शासको की व्यक्तिगत सम्पत्तियो का निपटारा तथा इनके सम्बन्धियो (Relatives) को दिये जाने वाले भत्ते भी है।

१० यह कुछ अन्य विविध कार्य भी करता है जिनमे जनगणना (Census) नागरिक प्रतिरक्षा (Civil defence) तथा हवाई हमले से बचने के उपाय (Air Raid precautions) हैं।

११ यह माउन्ट आबू (Mount Abu) मे पुलिस प्रशिक्षण स्कूल (Police Training School) चलाता है।

१२ भारत मे देशव्यापी स्तर पर अपराधो की स्थितियो के सम्बन्ध मे सूचनाएं एकत्रित करने तथा उनका सूक्ष्म परीक्षण करने के लिए यह केन्द्रीय गुप्तवार्ता विभाग (Central Intelligence Department) (C I D) रखता है।

मन्त्रालय निम्नलिखित १४ सभागो (Divisions) मे वटा हुआ है और प्रत्येक सभाग एक उपसचिव (Deputy Secretary) के अधिकार मे है—

१ विदेशी (Foreign)
२ प्रशासनिक सतर्कता (Ddministration Vigilance)
३ स्थापना (Establishment)
४ लेखे (Accounts)
५ अखिल भारतीय सेवाएँ
६ सघीय प्रदेश (Union Territories)
७ प्रशासन
८ सेवाएँ (Services)
९ न्यायिक (Judicial)
१०. नियोजन (Plaining)
११ केन्द्रीय सेवायें
१२ सकटकालीन सहायता (Emergency Relief)
१३ पुलिस
१४ पुलिस, तथा विदेशी (Foreigners) ।

इस मन्त्रालय के सलग्न कार्यालय (Attached officers) इस प्रकार हैं—

(१) सघीय लोकसेवा आयोग (Union Public Service Commission)
(२) केन्द्रीय गुप्तवार्ता ब्यूरो (Central Intelligence Bureau)
(३) भारतीय प्रशासन सेवा प्रशिक्षण स्कूल
(४) परिगणित जातियो (Scheduled Castes) तथा अनुसूचित आदिम जातियो के लिए आयुक्त (Commissioner)
(५) महा-रजिस्ट्रार कार्यालय (Office of the Registrar-General)
(६) देहली विशिष्ट पुलिस सस्थान (Delhi Special Police Establishment)

इसके अधीनस्थ कार्यालय (Subordinate officers) इस प्रकार हैं—

१ समन्वय निर्देशालय (Directorate of Co-ordination) (पुलिस वेतार का तार) ।
२ सचिवालय प्रशिक्षणशाला (Secretariat Training School) ।
३ केन्द्रीय पुलिस प्रशिक्षण कालिज, माउन्ट आबू ।
४ राष्ट्रीय अग्नि सेवा कालिज, रामपुर (National Fire Service College, Rampur)
५ केन्द्रीय सरकारी राजकोष, त्रिवेन्द्रम (Central Government Treasury, Trivandrum) ।
३. केन्द्रीय रक्षित पुलिस (Central Reserve Police) ।

यह मन्त्रालय अनेक केन्द्रीय सलाहाकार मण्डल (Central Advisory Boards) भी रखता है, जैसे आदिम जाति कल्याण मण्डल (Tribal Welfare Board), हरिजन कल्याण मण्डल (Harijan Welfare Board) आदि।

प्रतिरक्षा मन्त्रालय
(Ministry of Defence)

वर्तमान युग मे, प्रत्येक देश का प्रतिरक्षा विभाग उसके लिए बडा महत्वपूर्ण होता है। इसके मुख्य कार्य इस प्रकार हैं—

(क) भारत की प्रतिरक्षा तथा उमसे सम्वन्वित प्रत्येक भाग, जिममे कि प्रतिरक्षा की तैयारी तथा ऐसे समस्त कार्य सम्मिलित है जो कि युद्धकाल मे प्रतिरक्षा के लिए, तथा उसकी समाप्ति के पश्चात् मेना भग करने के कार्य मे सहायक सिद्ध हो, तथा समुद्रीय भूमाप (Marine Surveys) और नौपरिवहन (Navigation) के खतरो से सम्वन्धित मामले।

(ख) स्थल सेना, नौसेना और वायुमेना तथा सघ की अन्य सशस्त्र सेनाओ का निर्माण, जिसके अन्तर्गत राष्ट्रीय छात्र सेना (National Cadet Corps), सहायक छात्र सेना (Auxiliary Cadet Corps), प्रादेशिक सेना (Territorial Army) तथा लोक सहायक सेना (Lok Sahayak Sena) हैं।

(ग) छावनियो (Cantonments) का निर्माण, छावनी क्षेत्रो का सीमा निर्धारण, ऐसे क्षेत्रो मे स्थानीय स्वशासन, छावनी बोर्डों का सविधान तथा मकानो की व्यवस्था का नियमन जिसमे ऐसे क्षेत्रो मे कितायो का नियत्रण भी सम्मिलित है।

(घ) स्थल सेना, नौमेना तथा वायुसेना का निर्माण कार्य जिसके अन्तर्गत आर्डिनेन्स फैक्टरियाँ भी हैं।

(ङ) प्रतिरक्षा सेवाओ के लिए सम्पत्ति (Property) का अधिगमन (Aquisition) अथवा अभियाचन (Requisition)। सन् १९५० के सरकारी भूगृहादि (निष्कासन) अधिनियम [Government Premises (Eviction) Act] के अन्तर्गत (प्रतिरक्षा सेवाओ के) सरकारी स्थानो के अनधिकृत प्रयोगकर्ताओ का वहाँ से निष्कासन।

(च) सघीय अभिकरण तथा सस्थाये (Union agencies and institution)

(अ) सशस्त्र सेनाओ के कर्मचारी-वर्ग के व्यवसायिक अथवा तकनीकी प्रशिक्षण के लिए।

(ब) सेनाओ व प्रतिरक्षा विज्ञान सगठन (Defence Science Organisation) के सम्वन्ध मे विशिष्ट अध्ययन अथवा अनुसधान (Research) की उन्नति के लिए।

इस मन्त्रालय के सचिवालय (Secretariat) की तेरह मुख्य शाखायें (Branches) हैं—

१ आर्डिनेन्स शाखा (Ordinance)

२. एडजुटेंट जनरल की शाखा (Adjutant General Branch)

३. वायु शाखा (Air Branch)

४ वेतन तथा पेंशन शाखा

५ सामान्य स्टाफ शाखा (General Staff Branch)

६ समन्वय शाखा (Co-ordnation Branch)

७ सावधानी या सतर्कता शाखा (Vigilance Branch)

८ नौसेना शाखा (Navy Branch)

९ कर्मचारीवर्ग शाखा (Personnel Branch)

१० पजीकरण शाखा (Registration Branch)

११ कर्मचारी सम्पर्क शाखा (Personnel Relations Branch)

१२ क्वार्टर मास्टर जनरल की शाखा (Quartermaster General's Branch)

१३ प्रशासन शाखा (Administration Branch) ।

स्थल सेना, नौसेना तथा वायु सेना के प्रधान कार्यालय अथवा सदर मुकाम (Headquarters) इस मन्त्रालय से सलग्न होते है। देश की प्रतिरक्षा से सम्बन्ध रखने वाली तीन महत्वपूर्ण समितियाँ निम्नलिखित हैं—

१ मन्त्रि परिषद् की प्रतिरक्षा समिति (Defence Committee of the Cabinet) ।

२ प्रतिरक्षा मन्त्री की (अन्तर्सेवा) समिति ।

३ स्टाफ के प्रमुखो की समिति (Chiefs of staff Committee) ।

ये समितियाँ महत्वपूर्ण प्रतिरक्षा सम्बन्धी मामलो का निर्णय करती हैं।

वित्त मन्त्रालय
(Ministry of Finance)

इस मन्त्रालय का सम्बन्ध केन्द्र सरकार (Central Government) के वित्त के प्रशासन से है। वह सम्पूर्ण देश को प्रभावित करने वाले वित्तीय मामलो से व्यवहार करता है। इसका सम्बन्ध देश के लिए आवश्यक आय (Revenue) प्राप्त करने से है। यह भारत सरकार के सम्पूर्ण खर्च का नियन्त्रण करता है।[1]

1 Also refer to Chapter on 'Ministry of Finance—the part on '*Financial Administration*'

इस प्रकार भारत सरकार के महत्वपूर्ण कार्य लगभग बीस मन्त्रालय विभागो द्वारा सम्पन्न किये जाते है ।[1]

सामुदायिक विकास, पचायती राज तथा सहकारिता मन्त्रालय
(Ministry of Community Development, Panchayati Raj and Cooperation)

योजनाग्रो को सफल बनाने, सर्वसाधारण मे सामुदायिक एकता की भावना पैदा करने तथा राष्ट्रनिर्माण के कार्यो मे उन्हे सक्रिय भाग लेने की प्रेरणा देने के लिए भारत मे सामुदायिक विकास कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया था । भारत की केन्द्रीय सरकार ने इस कार्यक्रम की रूपरेखा निर्धारित की, इसकी मुख्य-मुख्य वित्तीय जिम्मेदारियाँ स्वय सम्भाली तथा राज्य सरकारो को इस कार्यक्रम को ग्रपनाने ग्रौर क्रियान्वित करने के लिए प्रेरित किया । निस्सन्देह इस कार्यक्रम के सभी विषय, जैसे, कृषि, पशु सरक्षण, स्वास्थ्य, शिक्षा इत्यादि राज्यो के ही विषय है, किन्तु इस कार्यक्रम की रूप-रेखा का निर्धारण तथा इसके विकास का निर्देशन केन्द्रीय सरकार ने ही किया ।

केन्द्रीय सरकार के कार्य क्षेत्र मे सामुदायिक विकास कार्यक्रम सम्बन्धी सभी नीतिविषयक प्रश्नो (Policy questions) की जिम्मेदारी है । राज्यो के विकास खण्डो की सख्या तय करना, खण्डो के व्यय की मोटी-मोटी रूप-रेखा तय करना तथा कार्यक्रमो के व्यय मे केन्द्र का हिस्सा तय करना, जिसके लिए कुछ पूर्व-निर्धारित सिद्धान्त हैं, केन्द्र का दायित्व है । कार्यक्रम को लागू करने की जिम्मेदारी राज्यो की है ।

३१ मार्च १९५२ को इस कार्यक्रम को क्रियान्वित करने के लिए एक 'सामुदायिक योजना प्रशासन' (Community Projects Administration) की स्थापना की गई थी । यह सगठन एक 'प्रशासक' (Administrator) की ग्रध्यक्षता मे स्वतन्त्र रूप से कार्य करता था तथा ईसका कार्य सम्पूर्ण भारत मे सामुदायिक विकास कार्यक्रमो को नियोजित करना, निर्देशित करना तथा समायोजित करना था । इसके कार्य की देख-रेख के लिए योजना ग्रायोग की एक केन्द्रीय समिति भी थी । १८ सितम्बर १९५६ को इस 'प्रशासन' को सामुदायिक विकास सम्बन्धी मन्त्रालय मे मिला लिया गया ।[2]

---

1 सभी मन्त्रालयो के विस्तृत ग्रध्ययन, उनके कार्यों तथा सगठन के लिये लोक-प्रशासन की भारतीय सस्था (Indian Institute of Public Administration) नई दिल्ली का 'भारत सरकार का सगठन' नामक लेख देखिये (सितम्बर, १९५८) ।

2 The subject of Panchayats was transferred to the Ministry of Community Development with effect from March 10, 1950 The subject of Cooperation was transferred to the Ministry of Community Development with effect from December 30, 1958

मन्त्रालय का सगठन
(Organization of the Ministry)

सामुदायिक विकास, पचायती राज तथा सहकारिता मन्त्रालय के दो विभाग हैं—

(अ) सामुदायिक विकास तथा पचायती राज विभाग (Department of Community Development and Panchayati Raj)

(ब) सहकारिता विभाग (Department of Cooperation)

प्रथम विभाग के निम्नाकित विषय हैं—

१ ग्राम्य सामुदायिक विकास कार्यक्रम

२ पचायती राज

३ सामुदायिक विकास कार्यक्रम तथा पचायती राज आन्दोलन से सम्बन्धित सरकारी अधिकारियो तथा गैर सरकारी व्यक्तियो का प्रशिक्षण (Training) तथा उनकी विचारधारा मे अनुकूलन (Orientation)।

४ सामुदायिक विकास कार्यक्रम तथा पचायती राज सम्बन्धी अध्ययन तथा शोध कार्य।

प्रारम्भ मे, केन्द्रीय सरकार का यह मन्त्रालय एक तरफ केन्द्रीय मत्रियो तथा दूसरी तरफ राज्यो के विकास आयुक्तो एव राज्य सरकारो के मध्य एक 'सम्पर्क सस्था (Liaison agency) के रूप मे था। सरकार की धारणा यह थी कि "ग्रामो के सामाजिक जीवन को परिवर्तित करने के लिए सामुदायिक विकास एक साधन है तथा ग्राम विस्तार सेवा (National Extension) एक यन्त्र है।" इस मत्रालय ने एक विस्तार सेवा सगठन (Extension Organization) निर्मित करने मे सहायता दी तथा योजना को क्रियान्वित करने के लिए मत्रालयो व विभागो के लिए एक समायोजन यन्त्र (Coordinating machinery) का काम किया। वलवन्त राय मेहता समिति, जिसने सामुदायिक विकास योजना पर कुछ वर्ष पूर्व पुनर्विचार किया था, ने भी इस मत्रालय को विभिन्न विकास कार्यों के समायोजन का काम सौंपने की ही सिफारिश की। समिति का विचार था . "कृषि, सामाजिक शिक्षा, स्वास्थ्य, ग्रामीण उद्योग इत्यादि क्षेत्रो मे जो भी कार्य केन्द्रीय सरकार को करना हो, वह सम्बन्धित मत्रालयो द्वारा किया जाना चाहिए तथा सामुदायिक विकास मत्रालय को विकास खण्डो मे केवल उन मत्रालयों के कार्यों का समायोजन करना चाहिए।" इस समिति ने यह भी सिफारिश की कि सामुदायिक विकास मत्रालय को ही पचायती राज तथा सहकारिता के विषय भी सौंप देने चाहियें। उपरोक्त सिफारिश को सरकार ने स्वीकार करके उपरोक्त विषय भी इस मत्रालय को हस्तातरित कर दिये हैं।

क्या वास्तव मे केन्द्रीय स्तर पर सामुदायिक विकास के लिए एक पृथक् मत्रालय होना चाहिये? सामुदायिक विकास राज्यो का विषय है। फिर केन्द्र मे इसके लिए एक पृथक् मत्रालय की क्या आवश्यकता है? श्री वी० मुकर्जी के अनुसार इस मत्रालय का काम "सामुदायिक विकास की विचारधारा (Ideology) का प्रचार व

प्रसारण करना तथा ग्रामीण विकास की समस्याओं पर दूसरों का ध्यान केन्द्रित करना होना चाहिए।"[1]

सामुदायिक विकास कार्यक्रम को राष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्रीय योजनाओं से सम्बद्ध तथा समायोजित करना अनिवार्य है। सामुदायिक विकास मत्रालय का कार्य राष्ट्रीय स्तर पर नीति निर्धारित करके अन्य सभी स्तरों पर कार्यक्रम के नियोजन मे समन्वय लाना है। राष्ट्रीय स्तर पर दिग्दर्शन (Guidance) के लिये इस प्रकार के मत्रालय का होना आवश्यक है।[2]

---

1 B Mukerjee *Community Development in India* Orient Longmans, New Delhi, 1961, page 170

2 Also refer to B Mukerjee, *Community Development in India* Orient Longmans Ltd, 1961, S K Dey, *Community Development A Chronicle* 1954-1961, Publications Divisions, Government of India, New Delhi, Hari Kishore Jain *Community Development Programme in India* The Bangalore Printing and Publishing Co Ltd, Bangalore, Government of India, Estimates Committee 1956-57 Thirty-Eighth Report on Ministry of Community Development (Community Projects Administration), New Delhi Lok Sabha Secretariat, December 1956, Estimates Committee, Fortieth Report on Ministry of Community Development (Community *Projects Administration*), Part II, New Delhi Lok Sabha Secretariat, December, 1956, Estimates Committee, Forty-Second Report on Ministry of Community Development (Community Projects Administration), Part III, Lok Sabha Secretariat, December, 1956

६

ब्यूरो तथा मण्डल अथवा आयोग प्रणाली का संगठन

The Bureau And Board or Commission Types of Organization)

(एक बनाम अनेक अध्यक्ष)

(The Single *vs.* Plural Head)

विभागीय सगठन के आधार की समस्या का विवेचन करने के पश्चात् अब विभाग (Department) की अध्यक्षता (Head-ship) का प्रश्न सामने आता है। विभाग के कुशल सचालन मे विभागाध्यक्ष (Head of the Department) अत्यन्त महत्वपूर्ण भाग अदा करता है। **यदि कोई एक व्यक्ति विभाग का अध्यक्ष होता है तो वह ब्यूरो प्रणाली का सगठन** (Bureau Type of Organization) **कहलाता है।** विभिन्न देशो मे सामान्यतया यही पद्धति अपनाई जाती है। इसमे विभाग के निर्देशन (Direction) तथा निरीक्षण का दायित्व एक ही व्यक्ति के हाथो मे निहित रहता है। केन्द्र सरकार मे, हम देखते हैं कि एक मन्त्री (Minister) ही विभाग का अध्यक्ष होता है। उदाहरणत, प्रतिरक्षा मन्त्री (Minister for Defence) प्रतिरक्षा विभाग का अध्यक्ष होता है तथा रेल मन्त्री रेलवे विभाग का अध्यक्ष होता है, आदि। **यदि विभाग के निर्देशन तथा निरीक्षण का दायित्व कई व्यक्तियों मे बाट दिया जाता है तो उसे मण्डल अथवा आयोग प्रणाली का सगठन** (Board of Commission type of Organization) **कहा जाता है।** यदि विभाग का निर्देशन तथा निरीक्षण करने की सत्ता (Authority) अनेक व्यक्तियो मे निहित होती है तो उसे अनेक अध्यक्ष (Plural Head) या मण्डल अथवा आयोग प्रणाली के सगठन की सज्ञा दी जाती है। भारत मे हमारे यहां केन्द्रीय राजस्व मण्डल (Central Board of Revenue) है जो कि आय-कर (Income-tax), सीमा कर (Customs) तथा आबकारी (Excise) विभागो का नियन्त्रण करता है। केन्द्रीय राजस्व मण्डल मे आजकल पाँच सदस्य हैं तथा वे आय-कर, सीमा-कर तथा आबकारी विभागो की अध्यक्षता करते हैं। इस प्रणाली का एक अन्य उदाहरण रेलवे बोर्ड है। इसका एक सभापति (Chairman) तथा चार अन्य सदस्य हैं। यह भारत सरकार के एक मन्त्रालय के रूप मे कार्य करता है और रेलों के सचालन, स्थापना, निर्माण तथा नियमो के सम्बन्ध मे केन्द्र सरकार की सभी शक्तियो का प्रयोग करता है। **इस प्रकार, जब एक विभाग के**

नियन्त्रण की सत्ता एक ही व्यक्ति मे निहित होती है तो उसे ब्यूरो पद्धति (Bureau System) **कहा जाता है, और जब सत्ता एक से अधिक व्यक्तियों के हाथो मे निहित रहती है, तो उसे मण्डलीय अथवा आयोग पद्धति कहा जाता है।** कभी-कभी मण्डल (Board) तथा आयोग (Commission) के बीच भेद किया जाता है। यह कहा जाता है कि "मण्डल · ·उन सदस्यो का समुदाय है जिन्हे अपने अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाले विषयो पर सामूहिक रूप से कार्य करने को कहा जाता है · । आयोग उन सदस्यो का समुदाय है जिनका कार्य न केवल मण्डल के रूप मे सामूहिक रूप से कार्य करना है, अपितु किये जाने वाले प्रशासनिक कार्य की निष्पति के लिए स्थापित सगठनो के अध्यक्षो के रूप मे पृथक्-पृथक् कार्य करना भी है।"[1]

यथेष्ट आयोग का सर्वोत्तम उदाहरण आयोग के आधार पर सगठित नगर-पालिका शासन (Municipal Government) है। नगरपालिका के सदस्य केवल मण्डल के रूप मे सामूहिक रूप से ही कार्य नही करते अपितु सगठन की इकाइयो के पृथक्-पृथक् अध्यक्षो के रूप मे भी कार्य करते है। एक सदस्य स्वास्थ्य अनुभाग (Health section) का अध्यक्ष होता है, दूसरा शिक्षा अनुभाग का अध्यक्ष होता है, आदि-आदि। परन्तु मण्डल तथा आयोग की शर्तें अदल-बदल करते हुए प्रयोग की जाती हैं। जब एक विभाग की अध्यक्षता एक से अधिक व्यक्तियो मे निहित होती है तो इसे मण्डल अथवा आयोग पद्धति कहा जाता है।

ब्यूरो प्रणाली के संगठन के लाभ
(Advantages of the Bureau Type of Organization)

१ यदि किसी सगठन मे शीघ्र निर्णय तथा शीघ्र कार्रवाही किये जाने की आवश्यकता होती है तो उसके लिए एक अध्यक्ष (Single head) की याजना ही ठीक रहती है। एक व्यक्ति, व्यक्तियो के समुदाय की अपेक्षा, अधिक शीघ्रता से निर्णय कर सकता है।

२ इस प्रणाली के अन्तर्गत सगठन मे उद्देश्य की एकता बनी रहती है।

३ एक व्यक्ति विभाग की नीतियो के निष्पादन मे अपनी पूरी शक्ति लगा देता है।

४ जब विभाग का अध्यक्ष एक व्यक्ति होता है तो उस विभाग मे अधिक अच्छी प्रकार से अनुशासन कायम रखा जा सकता है।

५ सगठन की ब्यूरो प्रणाली के अन्तर्गत, उत्तरदायित्व (Responsibility) बिल्कुल स्पष्ट होता है तथा उसका स्थान-निर्धारण (Location) सरलता के साथ कर दिया जाता है।

६ जब विभाग का कार्य नैत्यक (Routine) प्रकृति का होता है तो एक अध्यक्ष की योजना अच्छी प्रकार कार्य करती है।

---

1 W F Willoughby, *op cit*, p 122

७ यदि विभाग के कार्य की तकनीकें (Techniques) तथा स्तर अच्छी प्रकार विकसित है और यदि उसे जनता का विश्वास प्राप्त है, तो उस विभाग के लिए एक अध्यक्ष पद्धति ही अपनाई जानी चाहिये।

८ ब्यूरो प्रणाली की अध्यक्षता (Hardship) मितव्ययी भी होती है क्योकि इसमे केवल एक ही व्यक्ति के अनुपालन (Maintenance) पर धन व्यय किया जाता है।

९ जब विभाग की नीतियाँ तथा उद्देश्य स्पष्टत निर्धारित होते हैं और केवल कार्य क्रियान्वित करने की ही आवश्यकता रहती है तो उस स्थिति मे एक अध्यक्ष प्रणाली ही अपनाई जानी चाहिये।

१० यदि विभाग के कार्य-सचालन के लिए एक ही व्यक्ति उत्तरदायी है तो यह स्वाभाविक है कि वह बडे उत्साह, शक्ति तथा लगन से कार्य करेगा। वह अपना पूर्ण ध्यान विभाग के कार्य मे ही लगा देगा।

११ एलेक्जेन्डर हैमिल्टन (Alexander Hamilton) ने एक प्रशासक पद्धति के गुणो को इन शब्दो मे व्यक्त किया है, "प्रशासन के प्रत्येक विभाग मे एक अध्यक्ष का होना अत्यधिक अधिमान्य (Preferable) है। उससे हमे अधिक ज्ञान, अधिक क्रियाएँ व अधिक उत्तरदायित्व का अवसर प्राप्त होगा, और साथ ही साथ प्रशासन मे अधिक लगन और सावधानी भी बरती जायेगी।"[1]

मण्डल अथवा आयोग या बहुल प्रणाली की अध्यक्षता के लाभ
(Advantages of Board or Commission or Plural Type of Headship)

१ जहाँ कार्य नैत्यक प्रकृति का नही होता, अपितु उस पर विचार करने व विवेक का उपयोग करने की आवश्यकता होती है तथा जहाँ नीति का निर्माण करने की आवश्यकता होती है, वहाँ के लिए बहुल अथवा अनेक अध्यक्ष (Plural head) पद्धति ही अपनाई जानी चाहिये।

२ जब एक विभाग को ऐसे नियम तथा विनियम (Rules and regulations) बनाने होते हैं जो कि कानून के सदृश शक्ति रखते हैं अथवा लोगो के व्यक्तिगत अधिकारो को प्रभावित करते है तो उसके लिये मण्डल अथवा आयोग प्रणाली का सगठन ही अच्छा रहता है।

३ जब विभागो को कुछ अर्ध-न्यायिक (Quasi-judicial) कार्य सम्पन्न करने पडते है, जिनमे कि उन्हे सरकारी तथा व्यक्तिगत अधिकारो को प्रभावित करने वाले मामलो पर निर्णय देने होते हैं तो मण्डल अथवा आयोग पद्धति का सगठन ही अधिक उपयुक्त रहता है। एसे कार्यों को सम्पन्न करने के लिये शात विचार तथा विवेक की आवश्यकता होती है। ऐसे कर्त्तव्यो को पूरा करने का कार्य केवल एक ही व्यक्ति के सुपुर्द नहीं किया जाना चाहिए जिनसे लोगो के अधिकार प्रभावित होते हो।

---

1 The works of Alexander Hamilton (J C Hamilton Ed) I, 154-5, September, 3 1780

४ यदि किसी सगठन के द्वारा विभिन्न हितो का प्रतिनिधित्व किया जाना हो तो उसके लिये मण्डल अथवा आयोग प्रणाली ही अपनाई जानी चाहिये । उदाहरणत श्रम विवाचन तथा सुलह मण्डलो (Labour Arbitration and Conciliation Boards) मे मालिको, श्रमिको तथा सरकार का प्रतिनिधित्व किया जाता है अत उनके लिए आयोग पद्धति के सगठन का उपयोग किया जाता है ।

५ मण्डल अथवा आयोग प्रणाली के सगठन मे चूंकि सभी बडे दलो (Parties) को प्रतिनिधित्व दे दिया जाता है अत उसमे दलीय राजनीति (Party politics) का तत्व कम हो जाता है । ऐसे सगठनो को निर्दलीय (Non-partisan) बनाने के लिए, उन्हे सर्वदलीय (All partisan) बना दिया जाता है ।

६ यदि किसी प्रशासन को किसी भी प्रकार के बाहरी दबावो से बचाना है तो उसके लिए मण्डलीय प्रणाली ही उपयुक्त रहती है । उदाहरणत लोक सेवा आयोगो (Public Service Commissions) मे अनेक सदस्य होते हैं अत इनको बाहरी दबाव प्रभावित नही कर सकते ।

७ यदि कोई प्रशासनिक क्रिया इतनी विवादास्पद हो जाये कि उसके बारे मे समाज परस्पर विरोधी विचारो मे बट जाय तो विरोधी विचारो वाले वर्गों को मण्डलो मे प्रतिनिधित्व दिया जाना चाहिये जिससे कि वे अपने हितो की रक्षा कर अपनी इच्छा सन्तुष्ट कर सकें ।

८ मण्डलीय प्रणाली अनेक व्यक्तियो को एक साथ एक मेज पर इकट्ठा करती है । अत अनेक मस्तिष्क (Minds) एक मस्तिष्क की अपेक्षा, अधिक अच्छी प्रकार से सोचते है तथा निर्णय करते हैं ।

९ यह प्रणाली समाज के विभिन्न वर्गों के बीच अधिक सहयोग उत्पन्न करती है ।

१० मण्डलीय अथवा आयोग प्रणाली का उपयोग ऐसे किसी भी अभिकरण (Agency) के लिए किया जाना चाहिये जिससे व्यापक विवेकपूर्ण अथवा नियन्त्रित शक्तियो का उपयोग करने के लिए कहा जाय और जो शक्तियां निजी व्यक्तियो अथवा सम्पत्ति के महत्वपूर्ण हितो को प्रभावित करती हो ।

मन्डलीय पद्धति की हानियां
(Disadvantages of Board System)

१ जब अनेक व्यक्ति एक विभाग की अध्यक्षता करते हैं तो उस सगठन मे किसी भी प्रकार के आदेश की एकता (Unity of command) नही स्थापित की जा सकती । इससे सगठन मे एकीकरण तथा उत्तरदायी निर्देशक के अभाव की सम्भावना रहती है ।

२ जब अनेक व्यक्ति सामूहिक रूप से कार्य करते हैं तो व्यक्तिगत उत्तर-दायित्व का निर्धारण नही किया जा सकता ।

३ मण्डलीय पद्धति मे किये जाने वाले अनेक निर्णय विभिन्न हितो (Different interests) के मध्य हुए समझौते (Compromise) पर आधारित होते हैं। समझौतो द्वारा किये गये निर्णय सदा ही विवेकपूर्ण नही होते। यह हो सकता है कि कोई समझौता सभी सदस्यो के स्वार्थपूर्ण हितो के बीच हुआ हो अथवा वह स्वार्थी विचारों का समझौता हो सकता है। और, किसी भी सगठन के कुशल सचालन के लिए यह स्थिति बहुत बुरी है।

४ मण्डलीय प्रणाली से कार्य मे देरी होने की सम्भावना रहती है।

५ मण्डलीय प्रणाली से कर्मचारियो मे दलीय राजनीति को प्रोत्साहन मिल सकता है। सदस्यो के बीच मतभेद होने के कारण, यह हो सकता है कि कर्मचारी दलबन्दी शुरू कर दें।

६ विभागीय कार्यों के शीघ्र तथा सक्रिय प्रबन्ध के लिए आयोग प्रणाली उपयुक्त नही है।

७ मण्डल के सदस्यो मे वर्गीय भावना (Team spirit) का अभाव होने तथा अनेक मतभेद होने के कारण सगठन मे अनुशासनहीनता उत्पन्न होने की सम्भावना रहती है।

८ प्रशासन करना एक व्यक्ति का कार्य है, अनेक व्यक्तियो का नही। अत एकल अध्यक्ष (Single head) की प्रणाली ही अपनाई जानी चाहिए।

"मण्डल बडी सभाओ की असुविधाओ के भागीदार बन जाते हैं। उनके निर्णय धीरे होते है, उनमे शक्ति कम होती है, और उनका उत्तरदायित्व विकेन्द्रित होता है। उनमे वह ज्ञान और योग्यता नही पाई जाती जो कि एक ही व्यक्ति के द्वारा सचालित प्रशासन मे पाई जाती है। प्रथम कोटि के महत्वाकाक्षी व्यक्ति इनमे जल्दी नही आ पायेंगे क्योकि उन्हे मण्डल मे कम विशिष्टता तथा कम महत्ता प्राप्त होगी और स्वय को प्रसिद्ध करने का कम अवसर प्राप्त होगा। मण्डलो के सदस्य स्वय जानकारी प्राप्त करने तथा विशिष्ट स्थान पाने के बारे मे कम प्रयत्न करेंगे क्योकि उनमें ऐसा करने की कम प्रेरणायें (Motives) पाई जाती हैं।"[1]

अनेक अध्यक्ष प्रणाली किसी सेवा के दिन-प्रतिदिन के कार्य-सचालन के लिए अनुपयुक्त है। इन मानो मे प्रशासन एक ही व्यक्ति का कार्य है अत आयोगो (Commissions) को कार्यपालक निर्देशको (Executive directors) का उपयोग करना चाहिए। आयोग के निर्णय एक ही उत्तरदायी कार्यपालक अधिकारी के द्वारा कार्यान्वित किये जाने चाहिएँ।

मण्डलो की सदस्यता
(Membership of the Boards)

मण्डल के सदस्य पूर्णकालिक (Full-time) अशकालिक (Part-time) अथवा पदेन (Ex-officio) हो सकते हैं। पूर्ण समय देने वाला सदस्य (Full-timer) अपने

1 The Works of Alexander Hamilton (J C Hamilton ed) 1, 154-5, September 3, 1780

कार्य का उसी प्रकार वेतन पाता है जिस प्रकार कि कोई अन्य सरकारी कर्मचारी अपनी सेवाओ के बदले मे वेतन प्राप्त करता है। आशिक रूप से समय देने वाले सदस्य (Part time member) को अपने कार्यों के लिए कोई प्रतिफल नही मिलता क्योकि मण्डल के कार्य के लिए वह अपने समय का केवल एक भाग ही देता है। मण्डल के पदेन सदस्य (Ex-officio members) भी हो सकते है। ये वे व्यक्ति होते हैं जो कि अन्य सरकारी पदो पर आसीन होते हैं और उन पदो के कारण ही वे मडल के सदस्य बन जाते है। यदि मण्डल का कार्य ऐसा है जिसमे अनुचित माँग किये जाने तथा अधिक समय लगने की सम्भावना है तो उसमे पूर्ण समय देने वाले वैतनिक सदस्यो की नियुक्ति की जानी चाहिये। पदेन अथवा आशिक समय देने वाले सदस्य चूंकि मण्डल के कार्य की देखभाल अपने गौण कार्य के रूप मे ही करते हैं अत वे इसकी ओर कम ध्यान देते हैं।

मंडलो अथवा आयोगो की किस्मे
(Tpyes of Boards or Commission)

फिफनर (*Pfiffner*) ने मण्डलो अथवा आयोगो की निम्नलिखित किस्मो का उल्लेख किया है।

(१) **प्रशासकीय मण्डल** (Administrattve Board), (२) नियामक आयोग (Regulative Commission), (३) पदसोपान से सम्बद्ध मण्डल (Board Tited into Hierarchy), (४) स्थायी सलाहाकार मण्डल (Permanent Advisory Boards), (५) पदेन मण्डल (Ex-officio Boards), (६) द्विदलीय मण्डल (The Bipartisan Board)।"[1]

अब हम इनका क्रमश विवेचन करते हैं।

(१) **प्रशासकीय मण्डल**—यह मण्डल सगठन की इकाई का विभागीय अध्यक्ष होता है। नगरपालिका प्रशासन मे स्वास्थ्य, मनोरजन व पुस्तकालय आदि से सम्बन्धित विभिन्न क्रियाओ के लिए प्रशासकीय मण्डल बनाये जाते हैं। ये मण्डल उस इकाई (Unit) का प्रबन्ध तथा उस पर नियन्त्रण करते हैं जो कि उनके सुपुर्द की जाती है।

(२) **नियामक आयोग**—सयुक्त राज्य अमेरिका मे सार्वजनिक कल्याण के हित की दृष्टि से गैर-सरकारी व्यक्तियो तथा सम्पत्ति (Property) का नियमन व नियन्त्रण करने के लिए कुछ आयोगो का निर्माण किया गया है। ये आयोग अर्ध-विधायक (Quasi-legislative) तथा अर्ध-न्यायिक (Quasi-judicial) कार्य करते हैं।

---

1 John M Pfiffner Chapter VII, Proper use of Boards and Commissions *Public Administration*, pp 99 III

(३) **पदसोपान से सम्बद्ध मण्डल**—विभाग के कार्य का एक भाग मण्डल के सुपुर्द किया जा सकता है। यह मण्डल अपने आपको सौंपे गये कार्य से सम्बन्धित अर्द्ध-विवायक तथा अर्द्ध-न्यायिक कार्यों को सम्पन्न करता है। प्रशासकीय पदसोपान (Administrative hierarchy) का एक पदाधिकारी मण्डल के कार्यों के शासन-प्रबन्ध के लिए नियुक्त कर दिया जाता है। वह मण्डल के प्रति उत्तरदायी नही होता। ऐसे मण्डलो (Boards) के, जो कि विभागीय पदसोपान से सम्बद्ध रहते हैं, सर्वोत्तम उदाहरण है भारत के विभिन्न राज्यो मे पाये जाने वाले माध्यमिक शिक्षा मण्डल (Secondary Boards of Education)। ये मण्डल राज्य के शिक्षा निर्देशक (Director of Education) के माध्यम से शिक्षा विभाग (Education Department) मे सम्बन्धित रहते हैं। शिक्षा निर्देशक शिक्षा-विभाग का विभागीय अध्यक्ष होता है, तथा मण्डल (Board) का पदेन-चेयरमैन (Ex-officio Chairman) भी होता है।

(४) **स्थायी सलाहकार मण्डल**—महत्वपूर्ण नीति सम्बन्धी अथवा तकनीकी मामलो मे विभागीय अध्यक्ष को परामर्श देने के लिए विभाग के पदसोपान से बाहर सलाहकार मण्डलो का निर्माण किया जाता है। विभाग का अध्यक्ष इनके परामर्श को स्वीकार करने के लिए बाध्य नही होता। ये मण्डल तकनीकी जानकारी (Technical knowledge) तथा सूचनाएँ विभागाध्यक्ष तक पहुँचाते हैं। प्रत्येक सरकारी विभाग इस प्रकार के सलाहकार मण्डलो से काम लेता है। भारत सरकार को आर्थिक तथा वित्तीय मामलो पर परामर्श देने के लिए भारत मे एक योजना आयोग (Planning Commission) है। सरकार उसकी सलाह को माने, यह एक पृथक् बात है। चूँकि आजकल प्रशासन अधिकाधिक तकनीकी होता जा रहा है अत ऐसे सलाहकार मण्डलो की आवश्यकता बढती ही जा रही है। ये मण्डल अपने कार्यों मे कहाँ तक सफल होते है, यह इस बात पर निर्भर है कि उनके द्वारा दिया गया परामर्श किस कोटि (Quality) का है।

(५) **पदेन मण्डल**—विभागीय पदाधिकारी अपने पदो की स्थिति के कारण इन मण्डलों के सदस्य बन जाते हैं।

(६) **द्विदलीय मण्डल**—दलीय राजनीति (Party politics) को समाप्त करने के लिए कभी-कभी ऐसे मण्डल बनाये जाते हैं जिनमे दो बडे दलो के प्रतिनिधि होते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका मे, सिविल सेवा आयोग (Civil Service Commission), अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्य आयोग (Inter State Commerce Commission), जहाजी मण्डल (Shipping Board), संघीय व्यापार आयोग (Federal Trade Commission) तथा संघीय रक्षित मण्डल (Federal Reserve Board) मे दोनो ही दलो को प्रतिनिधित्व देने के इस प्रयोग ने दलगत राजनीति समाप्त होने के बजाय और बढ़ती है। इनके सदस्य अपने-अपने निजी हितो मे वृद्धि करने का प्रयत्न करते है।

निष्कर्ष के रूप मे यह कहा जा सकता है कि मण्डल अथवा आयोग प्रणाली की विभागाध्यक्षता का प्रयोग तभी करना चाहिये जब स्पष्ट रूप मे उसकी आवश्यकता अनुभव की जाती हो। ये मण्डल अथवा आयोग अर्ध-विधायक तथा अर्ध-न्यायिक कार्यों के लिए तथा उस स्थिति के लिए सबसे अधिक उपयुक्त रहते हैं जहाँ कि प्रशासकीय अभिकरण को किसी भी प्रकार के दबाव डालने वाले समुदायो (Pressure groups) से बचाना होता है।

———

७

स्वतन्त्र नियामकीय आयोग
(Independent Regulatory Commissions)

देश का सम्पूर्ण प्रशासकीय ढाचा मुख्य निष्पादक अथवा मुख्य कार्यपालिका (Chief Executive) के नियन्त्रण के अन्तर्गत कार्य करता है। प्रशासन की सब इकाइया (Units) विभागो (Departments) मे बटी रहती हैं और वे सब मुख्य कार्यपालिका के निर्देशन, पर्यवेक्षण तथा नियन्त्रण मे कार्य करते हैं। परन्तु सयुक्त राज्य अमेरिका मे, सन् १८८७ मे अन्तर्राज्य वाणिज्य आयोग (Inter State Commerce Commission) का निर्माण करके एक नवीन प्रशासकीय प्रयोग (Experiment) किया गया। इस आयोग के दो विशिष्ट लक्षण ये थे कि (१) इसका निर्माण किसी भी नियमित निष्पादक विभाग के एक अग के रूप मे नही किया गया था। यह किसी भी नियमित निष्पादक विभाग (Executive Department) से पूर्णत स्वतन्त्र था। (२) इसका अध्यक्ष कोई एक व्यक्ति नही, अपितु मण्डल (Board) था। सयुक्त राज्य अमेरिका मे, अनेक बार नये-नये कार्यों को सम्पन्न करने का दायित्व प्रचलित निष्पादक विभागो को नही, बल्कि ऐसे नये अभिकरणो (Agencies) को सौंपा गया जिन्हे स्वतन्त्र नियामकीय आयोग (Independent Regulatory Commissions) कहा जाता है। ये आयोग अमेरिकी प्रशासकीय व्यवस्था का एक विशिष्ट लक्षण है। ये आयोग इसलिये 'स्वतन्त्र' नही कहे जाते क्योकि ये किसी भी प्रकार के विधायक (Legislative), निष्पादक (Executive) अथवा न्यायिक (Judicial) नियन्त्रण से स्वतन्त्र होते हैं, बल्कि इसलिये क्योकि ये किसी भी नियमित निष्पादक विभाग की परिधि से बाहर होते है। उनको 'नियामकीय' इसलिये कहा जाता है क्योकि वे अनुचित प्रतियोगिता की बुराइयो को रोकने के लिये नागरिको की कुछ क्रियाओ अथवा उनके आचार-व्यवहार का नियमन करते हैं। वर्तमान युग मे, सरकारें अनेक नियामकीय कार्यों को सम्पन्न कर रही हैं। सरकारें उचित प्रतियोगिता की स्थिति उत्पन्न करने के लिये व्यक्तिगत आचार (Conduct) अथवा सम्पत्ति के हितों का नियन्त्रण करती हैं। ये आयोग चूंकि नियामकीय कार्यों को सम्पन्न करते हैं और व्यक्तियो तथा व्यक्तियो के समुदायो के आचार की परिधि को नियमित व नियन्त्रित करते हैं, अत इन्हें 'नियामकीय आयोग' कहा जाता है।

इन आयोगो को 'शासन की चतुर्थ शाखा' (Fourth branch of the government) कहा जाता है क्योकि इनके कार्य मिश्रित प्रकृति Mixed character

के होते है, अर्थात् प्रशासकीय (Administrative), अर्ध-विधायक (Quasi-legislative) और अर्ध-न्यायिक (Quasi-judicial)। अत ये सरकार की तीन शाखाओ अर्थात् कार्यपालिका शाखा, व्यवस्थापिका शाखा और न्यायपालिका शाखा, मे से किसी एक मे भी ठीक नही बैठते। इन्हे 'शासन की शीर्षहीन शाखा' (Head-less branch of the government) कहा जाता है क्योकि ये मुख्य निष्पादक अथवा मुख्य कार्य-पालिका के अधीन नही होते। इन्हे 'कांग्रेस की भुजाओ' (Arms of the Congress) की सज्ञा दी जाती है क्योकि ये सयुक्त राज्य अमेरिका की काग्रेस के प्रति प्रत्यक्ष रूप से उत्तरदायी होते हैं। इन्हे 'स्वायत्तता के द्वीप (Islands of autonomy) भी कहा जाता है।

सयुक्त राज्य अमेरिका मे, सन् १८८७ से अनेक बार स्वतन्त्र नियामकीय आयोग स्थापित किये गये है। वे निम्न प्रकार के हैं—

(१) सन् १९४४ मे, अन्तर्राज्य व्यापार मे "अनुचित प्रवृत्तियो" (Unfair practices) को रोकने के लिये सघीय व्यापार आयोग (Federal Trade Commission) की नियुक्ति की गई थी।

(२) सन् १९२० मे, सघीय पावर आयोग (Federal Power Commission) की नियुक्ति की गई थी। इसका कार्य नौचालन के योग्य नदियो पर जल-विद्युत के विकास के लाइसेंस देना तथा भावी नीति का निर्माण करना था।

(३) सन् १९३४ मे, प्रतिभूति तथा विनिमय आयोग (Securities and exchange commission) की नियुक्ति की गई थी। इसका कार्य विक्री के लिये प्रस्तुत की जाने वाली प्रतिभूतियो (Securities) के बारे मे प्रचार नियमो को लागू करके निवेश-कर्त्ताओ (Investors) को सरक्षण प्रदान करना था।

(४) सन् १९३४ मे, तार तथा टेलीफोन कम्पनियो के बीच अनुचित प्रति-योगिता को रोकने के लिये सघीय सचार आयोग (Federal Communications Commissions) की नियुक्ति की गई थी।

(५) सन् १९३५ मे, राष्ट्रीय श्रम सम्बन्ध बोर्ड की स्थापना की गई थी जोकि श्रम क्षेत्र मे "सबसे पहला वास्तविक नियामकीय सस्थान" था। इसका काम श्रम सम्बन्धी अनुचित प्रवृत्तियो की रोकथाम करना था।

(६) सन् १९३६ मे, सयुक्त राज्य सामुद्रिक आयोग (U S Maritime Commissions) की स्थापना की गई थी। इसको जहाजी दरो पर नियन्त्रण का अधिकार प्राप्त था।-साथ ही, सयुक्त राज्यीय व्यापारिक जहाजो का विकास तथा रक्षा करना भी इसका कार्य था।

(७) सघीय रिजर्व व्यवस्था के गवर्नरो के बोर्ड (Board of Governors of the Federal Reserve System) की स्थापना सन् १९१३ मे की गई थी। यह सामान्य वित्तीय दशाओ, तथा उधार व उसके चालन की नीतियो को निर्धारित करता है, उधार की शर्तों का नियन्त्रण करता है (अर्थात् उसके अनुचित विस्तार

तथा सकुचन को रोकता है।) यह आयोग १२ सघीय रिजर्व बैंको (Federal Reserve Banks) के कार्यों का निरीक्षण भी करता है।

(८) सिविल एयरोनोटिक्स बोर्ड (Civil Aeronautics Board) (सत्ता) (Authority) की स्थापना सन् १९३८ तथा १९४० मे हुई थी। इसका कार्य वायु परिवहन सेवा (Air transport service) का विकास करना है। यह सयुक्त-राज्य वायु सेवा के आर्थिक पहलुओ (Economic aspects) का नियमन करता है, सुरक्षा के नियमो व स्तरो का निर्धारण करता है, हवाई दुर्घटनाओ की जाच पडताल करता है और अन्तर्राष्ट्रीय परिवहन के विकास मे सहयोग तथा सहायता देता है।

राष्ट्रपति, कॉग्रेस तथा न्यायपालिका के आयोगो का सम्बन्ध (Relations of the Commissions with the President, Congress and the Judiciary)

जव यह कहा जाता है कि नियामकीय आयोग स्वतन्त्र है तो इसका मतलव यह नही होता कि वे किसी भी प्रकार के नियन्त्रण से पूर्णत मुक्त होते हैं। अब हम इस वात पर विचार करते है कि शासन की अन्य तीनो शाखाओ के साथ उनका सम्वन्ध क्या है।

कॉग्रेस और आयोग
(The Congress and Commissions)

आयोग का निर्माण काग्रेस द्वारा किया जाता है। काग्रेस द्वारा ही इनको सत्ता प्रदान की जाती है। काग्रेस उनको समाप्त कर सकती है तथा उनकी शक्तियो मे परिवर्तन कर सकती है। काग्रेस ही उनके खर्च के लिए वार्षिक निधिया (Annual funds) स्वीकार करती है। काग्रेस उसके वित्तीय साधनो मे कमी-वेशी कर सकती है। आयोग अपने द्वारा किये जाने वाले सभी कार्यों के लिए सीधे काग्रेस के प्रति उत्तरदायी होते है।

राष्ट्रपति और आयोग
(President and Commissions)

आयोग के सदस्य, जोकि सख्या मे पाच, सात या ग्यारह हो सकते हैं, राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किये जाते हैं किन्तु नियुक्ति के पूर्व सीनेट (काग्रेस का उच्च सदन) की अनुमति लेनी आवश्यक होती है। राष्ट्रपति सदस्यो को केवल अकुशलता, कर्त्तव्य की उपेक्षा अथवा कार्यालय मे दुर्व्यवहार के कारण पदच्युत कर सकता है परन्तु काग्रेस राष्ट्रपति द्वारा पदच्युत किये जाने की शक्ति पर सर्वोच्च न्यायालय (Supreme Court) द्वारा हम्फ्रे मुकदमे (Humphery Case) के दिये गये निर्णय के अनुसार, कुछ प्रतिवन्ध लगा सकती है। यद्यपि आयोग वित्त व वजट, लेखा परीक्षण (Audit) तथा असैनिक कर्मचारियो के सम्वन्ध मे वजट विभाग (Bureau of the Budget), सामान्य लेखांकन कार्यालय (General Accounting Office)

तथा सिविल सेवा आयोग (Civil Service Commission) द्वारा बनाये गये प्रशासकीय नियमो के अन्तर्गत कार्य करते हैं, किन्तु उनकी मुख्य उत्तरदायिता (Accountability) सीधी काग्रेस के प्रति ही होती है। आयोग राष्ट्रपति के नियन्त्रण से मुक्त होते है, विशेषत निम्नलिखित तीन कारणो से —

(१) जबकि राष्ट्रपति चार वर्ष के लिये चुना जाता है, आयोग के सदस्यो का कार्यालय पाच, छ या सात वर्ष होता है। अत राष्ट्रपति जब अपना पद ग्रहण करता है, उस समय वह नये सदस्यो को नियुक्त नही कर सकता क्योकि सदस्यो का कार्य-काल राष्ट्रपति के कार्य-काल से अधिक लम्बा होता है। इस 'असमान कार्यकाल व्यवस्था' के कारण कोई भी राष्ट्रपति आयोग के सभी सदस्यो की नियुक्ति नही कर सकता। अत सदस्यो को नियुक्त करने का राष्ट्रपति का अधिकार सीमित ही होता है।

(२) आयोग के सदस्यो को पदच्युत करने की राष्ट्रपति की शक्ति बहुत सीमित होती है। कांग्रेस ऐसी शर्तों का निर्धारण कर सकती है जिनके अन्तर्गत ही सदस्यो को हटाया जा सकता है। अत राष्ट्रपति की सदस्यो की पदच्युत करने की शक्ति भी प्रतिबन्धित ही रहती है।

(३) राष्ट्रपति को आयोग के निर्णयो को बदलने, वीटो करने (विशेषाधिकार द्वारा रद्द करने) तथा उनका पुनरवलोकन करने का अधिकार नही होता। आयोग के निर्णय राष्ट्रपति के सम्मुख प्रस्तुत भी नही किये जाते। इस प्रकार जहाँ तक राष्ट्रपति के साथ इनके सम्बन्ध का मामला है, परम्परा (Tradition) तथा कानून (Law), दोनो ही इन आयोगो को ठोस स्वतन्त्रता की वास्तविक स्थिति प्रदान करते हैं।

न्यायपालिका और आयोग
(Judiciary and Commissions)

पक्षो (Parties) के अनुरोध-पत्रो (Petitions) पर सर्वोच्च न्यायालय (Supreme Court) को आयोग के निर्णयो का पुनरवलोकन (Review) करने का अधिकार है। सर्वोच्च न्यायालय आयोग के निर्णयो की पुष्टि कर सकता है, उनमे सशोधन कर सकता है अथवा उनको रद्द कर सकता है।

नियामकीय कार्य की प्रकृति तथा सचालन
(Nature and Conduct of Regulatory Business)

आयोग मिश्रित प्रकार (Mixed type) के कार्यों को सम्पन्न करते है। उनके कार्य प्रशासकीय, अर्ध-विधायक तथा अर्ध-न्यायिक प्रकृति के होते हैं। ये आयोग नियम बनाते हैं, यह इनका अर्ध-विधायक (Quasi-legislative) कार्य है। ये इन नियमो को लागू करते हैं तथा कार्यवाइया करते हैं, ये इनके प्रशासकीय कार्य हैं। ये मुकदमो मे निर्णय देते हैं व अपीलें सुनते हैं आदि, ये इनके अर्ध-न्यायिक (Quasi-judicial) कार्य हैं। लोगो के आचार का नियमन करने के लिये व्यवस्थापिका

(Legislature) कानून पास करती है, उदाहरण के लिये, यह कि रेल व सडक परिवहन तथा विजली की दरें "न्यायपूर्ण व उचित" (Just and reasonable) हो, भोजनालय (Restaurants) तथा दुग्धशालाए (Dairies) 'साफ व स्वच्छ' (Sanitary) रहे, मालिक अथवा नियोक्ता (Employers) अपने कर्मचारियो के जीवन, स्वास्थ्य तथा उनकी सुरक्षा की उचित देखभाल करें, और यह कि वाणिज्यिक प्रवृत्तियां "अनुचित अथवा धोखेधडी मे पूर्ण" (Unfair or deceptive) न हो अथवा उनमे 'प्रतियोगिता के अनुचित तरीको" का प्रयोग न किया जाये। अब समस्या यह उत्पन्न होती है कि इस बात की व्याख्या कैसे की जाये कि क्या 'उचित' है, क्या "अनुचित" है आदि। आयोगो से यह कहा जाता है कि वे इस सम्बन्ध मे आवश्यक नियम तथा विनियम (Rules and regulations) जारी करें। यह आयोगो का अर्ध-विधायक कार्य है। आयोगो को नियमो के भग करने वाले व्यक्तियो के मुकदमो से निर्णय भी करने होते है। यह उनका अर्ध-न्यायिक कार्य है। इस प्रकार आयोग 'मिश्रित प्रकार के कार्यों को सम्पन्न करते हैं।' आयोगो को 'तथ्यो का अन्वेषण' करना होता है, खोजवीन करनी होती है तथा नियामकीय कार्य के बारे मे जनता का मत जानना होता है और फिर इन तथ्यो (Facts) के आधार पर ही उन्हे अपने निर्णय देने होते हैं।

स्वतन्त्र नियामकीय आयोगो की स्थापना के कारण
(Reasons for the Establishment of Independent Regulatory Commissions) :

स्वतन्त्र नियामकीय आयोगो की स्थापना के निम्नलिखित कारण थे—

(१) नियामकीय कार्यों मे अर्ध-न्यायिक तत्व पाया जाता है। यह सोचा गया कि अर्ध-न्यायिक कार्य एक निष्पादक विभाग (Executive department) की अपेक्षा एक स्वतन्त्र आयोग द्वारा अधिक अच्छी प्रकार से सम्पन्न किये जा सकते है।

(२) यह विचार किया गया कि नियामकीय कार्य निर्दलीय (Non-partisan) आधार पर सम्पन्न किये जाने चाहियें। स्वतन्त्र आयोगो का निर्माण इसी आशा से किया गया था कि वे निर्दलीय आधार पर कार्य करेंगे।

(३) अनेक नियामकीय कार्य प्राविधिक अथवा तकनीकी (technical) प्रकृति मे होते हैं। अत आवश्यकता इस बात की होती है कि ऐसे कार्यों को विशेषज्ञ अथवा जानकार लोग ही अपने हाथो मे लें। इसी कारण नियमन करने का कार्य स्वतन्त्र विशेषज्ञो को सौंप दिया गया।

(४) कुछ स्वतन्त्र आयोगो का निर्माण इस कारण भी किया गया था क्योंकि कुछ प्रादेशिक मागो की सतुष्टि के लिए ऐसा करना आवश्यक था।

(५) नियामकीय कार्यों के सम्बन्ध मे अपनाई गई सरकारी नीति एक प्रयोगात्मक अवस्था (Experimental stage) मे थी। यह सोचा गया था कि

(५) इन आयोगो से प्रशासकीय खर्चों मे वृद्धि होती है। अनेक स्थितियो मे ऐसा होता है कि अपने कार्यों को सम्पन्न करने के लिए वे विभागो (Depart ments) की सेवाओ का उपयोग नही करते, अपितु अपने निजी विशेष तथा पृथक अभिकरणो (Agencies) का निर्माण करते हैं। इसमे अनावश्यक रूप मे दुगुना स्टाफ रखना पडता है।

(६) आयोग मिश्रित प्रकार के कार्यों को सम्पन्न करते है। वे एक ही साथ विधि-निर्माता (Law-maker), कार्य-सचालन तथा न्यायाधीश होते हैं। वे "अनुचित प्रतियोगिता से पूर्ण व्यापारिक क्रियाओ" के "स्तरो अथवा मानदण्डो" (Standards) का निर्धारण करते है। वे ही इन स्तरो अथवा मानदण्डो को लागू करते हैं तथा कानून भग करने वालो पर अभियोग लगाते हैं। इस रीति से नागरिको के अधिकार खतरे मे पड जाते है। जैसा कि एक लेखक ने कहा है कि "आयोग से यह कहा जाता है कि नीति के निर्धारण के कार्य के साथ ही साथ, जो कि अनेक बार तीव्र दलीय वाद-विवाद अथवा आर्थिकवर्ग के विरोध का विषय वन जाता है, न्यायिक कार्य सम्पन्न करें। वस्तुत यह वह वातावरण नही है जिसमे कि नागरिको के अधिकारो के सम्बन्ध मे निर्णय किये जायें। स्वतन्त्र आयोग व्यवस्था की यह एक अनिवार्य तथा अन्तर्निहित (Inherent) कमजोरी है।"[1]

(७) यह हो सकता है कि अभिकरण के कर्मचारी कानून को लागू करने मे समर्थ तथा योग्य न हो।

(८) एक एकीकृत प्रशासकीय व्यवस्था मे सत्ता की रेखा (Line of authority) मुख्य निष्पादक अथवा मुख्य कार्यपालिका (Chief Executive) से सभी विभागो तथा अभिकरणो तक जानी चाहिए और सभी अभिकरण तथा विभाग प्रत्यक्षरूप से नही बल्कि महाप्रबन्ध के रूप मे मुख्य निष्पादक के माध्यम से व्यवस्थापिका (Legistlature) के प्रति उत्तरदायी होने चाहिये। परन्तु नियामकीय आयोग व्यवस्था प्रशासकीय सगठन के इस मूलभूत सिद्धान्त का उल्लघन करती है तथा प्रशासन मे भ्रम उत्पन्न करती है।

निष्कर्ष (Conclusion)

स्वतन्त्र नियामकीय आयोगो द्वारा उत्पन्न इस भ्रम (Dilemma) को राबर्ट ई० कुशमैन (Robert E Cushman) ने इन शब्दो मे व्यक्त किया है

"स्वतन्त्र नियामकीय आयोग सघीय प्रशासन के पुनर्गठन की किसी भी योजना के लिये एक चुनौतीपूर्ण समस्या ला खडी करते है। वे वास्तविक तथा सम्भावित रूप मे विकेन्द्रीकरण (Decentralization) का प्रतिनिधित्व करते हैं। यद्यपि वे न्यायालयो के निरीक्षण से वचे नही रहते, तथापि राष्ट्रपति के नियन्त्रण से वे पूर्णत मुक्त होते हैं। अनुभव के अनुसार तो ऐसा कोई व्यावहारिक उपाय नहीं

1 Robert E Cushman, The Problem of Independent Regulatory Commissions, in Report with Special Studies, President's Committee on Administrative Management Washington, 1937

दिखाई देता जो उन्हे काग्रेस के प्रति उत्तरदायी बनता हो । वे तो राष्ट्रीय सरकार मे एक प्रकार के चतुर्थ विभाग" (Fourth department) के समान है ।"

" सघीय नियमन (Federal Regulation) के एक उपाय के रूप मे, अनुभव के आधार पर, स्वतन्त्र आयोगो के लिए अत्यधिक आदर की भावना पाई जाती है । इस बात की ओर भारी झुकाव पाया जाता है कि उत्पन्न होने वाले नये-नये नियामकीय कार्यों का निपटारा इस रीति के प्रयोग द्वारा किया जाना चाहिये । किन्तु साथ ही इन स्वतन्त्र सस्थाओ की सख्या मे वृद्धि का आवश्यक रुझान प्रशासकीय व्यवस्था के विकेन्द्रीकरण तथा अव्यवस्थित होने की ओर होने लगता है । ये अनुत्तरदायिता के क्षेत्र हैं । इनके अधिकार मे महत्वपूर्ण प्रशासकीय क्षेत्र है जो राष्ट्रपति के निर्देशन एव उत्तरदायित्व की पहुँच के बाहर है...।" आयोग ऐसा कार्य सम्पन्न करता है जिसके सम्बन्ध मे इसे, एक ही साथ, राजनैतिक दृष्टि से उत्तरदायी तथा न्यायिक दृष्टि मे स्वतन्त्र रहना चाहिए । "यह स्थिति एक भ्रमजाल सी प्रतीत होती है । यदि नियामकीय आयोग, वर्तमान और भावी, पूर्णतया स्वतन्त्र रखे जायें तब तो वे नीति-निर्धारण तथा प्रशासकीय कार्य जैसे अत्यन्त महत्वपूर्ण कृत्य को सम्पन्न करने के लिए पूर्णतया अनुत्तरदायी बन जाते हैं और दूसरी ओर, यदि आयोगो की स्वतन्त्रता की स्थिति का अपहरण कर लिया जाये तो यह उनके न्यायिक तथा अर्ध-न्यायिक कार्यों के निष्पक्ष सम्पादन के लिए एक गम्भीर धमकी बन जाती है ।"[1]

आयोग को राजनैतिक दृष्टि से उत्तरदायी तथा न्यायिक दृष्टि से निष्पक्ष एव स्वतन्त्र कैसे बनाया जाय, यह एक बडी दुविधा मे डालने वाली बात है । सघ सरकार मे प्रशासकीय प्रबन्ध-व्यवस्था का अध्ययन करने के लिए राष्ट्रपति रूजवैल्ट (President Roosevelt) ने जो प्रशासकीय प्रबन्ध समिति (Committee on Administrative Management) नियुक्त की थी उसने सन् १९३७ मे अपना प्रतिवेदन (Report) प्रस्तुत किया । स्वतन्त्र नियामकीय आयोगो के सम्बन्ध मे इस समिति ने निम्नलिखित सिफारिशे की । इसने सिफारिश की कि आयोगो का नियमित निष्पादक विभागो (Regular executive departments) मे एकीकरण कर दिया जाना चाहिये । इसके अतिरिक्त, आयोगो को दो अनुभागो (Sections) मे बाँट दिया जाना चाहिये, अर्थात् न्यायिक अनुभाग (Judicial section) और प्रशासकीय अनुभाग (Administrative section) । प्रशासकीय अनुभागो को नीति निर्धारित करने तथा नियम बनाने के अधिकार दिये जायेंगे और इसको एक विभाग का ब्यूरो (Bureau) अथवा सम्भाग (Division) बना दिया जायेगा, फलत यह सचिव (Secretary) तथा राष्ट्रपति के प्रति उत्तरदायी होगा । न्यायिक अनुभाग, जिसको कि आयोगो के न्यायिक कार्य सम्पन्न करने पडेंगे, उन विभागो

1 Robert E Cushman, The Problem of the Independent Regulatory Commission, *op cit*,

(Departments) मे रहेगा जोकि "प्रशासकीय गृह-प्रवन्ध कार्यों" को करने के उद्देश्य से वसाये गये हो, परन्तु यह् अनुभाग अन्य किसी भी वन्धन से पूर्णत स्वतन्त्र रहेगा। राष्ट्रपति द्वारा इसके निर्णयो का पुनरवलोकन नही किया जा सकेगा, अत यह् स्वतन्त्र रूप मे तथा निष्पक्षता के साथ कार्य कर सकेगा। इस प्रकार आयोग के प्रशासकीय कार्यों का विभागो मे एकीकरण कर दिया जायगा तथा उनको उत्तरदायी वनाया जा सकेगा, और दूसरी ओर न्यायिक क्षेत्र मे उन्हे स्वतन्त्रता प्राप्त हो जायेगी। कांग्रेस ने इस योजना को अस्वीकार कर दिया।

हूवर आयोग (Hoover commission) १९४९ ने कई वडे तर्कपूर्ण व उचित सुझाव दिये। इसने प्रचलित अभिकरणो (Agencies) का एकीकरण करने, चेयरमैन की शक्तियो मे वृद्धि करने, आयुक्तो (Commissioners) को अधिक वेतन देने तथा स्टाफ विशेषज्ञो (Staff experts) को अधिक सत्ता प्रदान किये जाने की सिफारिश की। परन्तु आयोग ने मूलभूत ढाचे के विरुद्ध एक प्रधान या अध्यक्ष, (Head) रखने की वात की सावधानी के साथ उपेक्षा कर दी। इस प्रकार, समस्या जहाँ की तहाँ रही।[1]

---

1 For details refer to the Problem of the Independent Regulatory Commissions, Robert E. Cushman, adopted from the problem of the Independent Regulatory Commissions, in report with Special Studies, President's Committee on Administrative Management, Washington; 1937

8

सरकारी उद्यमो[1] का प्रशासन

(Administration of State Enterprises)

सरकारी उद्यम (State enterprise), जिसका अर्थ है औद्योगिक, कृषि-सम्बन्धी, वित्तीय तथा वाणिज्यिक व्यवसायो का सरकारी स्वामित्व (State ownership) तथा सरकारी सचालन (State operation), आजकल लगभग एक सार्वदेशिक तथ्य बन गया है। अबन्धनीति (*laissez faire*) का प्राचीन सिद्धान्त अब पूर्णतया अव्यावहारिक हो गया है। सरकार के कार्य, उद्योग (Industry) तथा व्यापार (Trade), ये चीजे परस्पर इतनी सम्बद्ध एव सयुक्त हो गई है कि उनके पूर्ण पृथक्करण (Separation) का प्रश्न अधिक समय तक नही उठाया जा सकता। हमारे सामने ऐसे उदाहरण है कि ससार के लगभग सभी देशो मे, चाहे वे उन्नत हो अथवा कम-उन्नत, सरकारी उद्यम चालू हैं। यहाँ तक कि सयुक्त राज्य अमेरिका जैसे देश मे भी, जहाँ कि सरकारी उद्यम को सदेह की दृष्टि से देखा जाता है और इसको व्यक्तिगत स्वाधीनता मे एक कटौती माना जाता है, हम देखते है कि टेनेसी घाटी सत्ता (Tennesse Valley Authority) का सचालन किया जाता है जोकि सरकारी उद्यम का एक विशिष्ट उदाहरण है। सोवियत रूस (Soviet Russia) मे सरकारी क्षेत्र (State sector) पूर्णत व्यापक है और देश के लगभग सम्पूर्ण आर्थिक जीवन मे फैला हुआ है। रूस के सविधान मे स्पष्ट शब्दो मे यह कहा गया है कि "अर्थ-व्यवस्था (Economy) की समाजवादी पद्धति तथा उत्पादन के साधनो का समाजवादी स्वामित्व (Socialist ownership) ही सोवियत सघ (U S S R) की आर्थिक नीव का दृढ आधार है जिसकी स्थापना अर्थ-व्यवस्था की पूँजीवादी पद्धति की समाप्ति, उत्पादन के साधनो के व्यक्तिगत स्वामित्व के उन्मूलन और मनुष्य द्वारा मनुष्य मे शोषण (Exploitation) की समाप्ति के परिणामस्वरूप की गई है।"[2]

इसी प्रकार फास की अर्थ-व्यवस्था (Economy) का एक बडा क्षेत्र सरकारी उद्यमो के अन्तर्गत है। सरकारी निगमो (Public Corporations) तथा राज्य द्वारा

---

1 सरकारी उद्यम की समस्याओ का विस्तृत विवेचन लेखक की 'भारत मे सरकारी उद्यम पर ससदीय नियन्त्रण' (Parliamentary Control over State Enterprise in India) नामक पुस्तक मे किया गया है। यह पुस्तक मेट्रोपोलिटन बुक क० फैज बाजार, देहली द्वारा प्रकाशित की गई है।

2 Russian Constitution 1936, Article IV

अधिकृत एव सचालित कम्पनियो की एक लम्बी और विविध सूची है। इसमे विद्युत, गैस व कोयला निगम, रेलवे, राष्ट्रीय वायुमार्ग, दो बडी जहाजी कम्पनिया, पेरिस परिवहन व्यवस्था, एलसेशन पोटाश खाने (Alsation Potash Mines), टौलकुस निट्रेट्स प्लान्ट (Toulcuse nitrates plant), वायुयान निर्माण उद्योग का एक बडा भाग, रिनाल्ट मोटर वर्क्स (Renault Motor Works), चार बडे जमा बैंक, देश का आधा बीमा व्यवसाय, फ्रास की सीमाओ पर स्थित वाणिज्यिक रेडियो स्टेशन, फिल्म तथा सिनेमा कम्पनिया तथा इसके अतिरिक्त अन्य क्षेत्र सम्मिलित हैं। ब्रिटेन मे, सन् १९४५ व ५० के बीच मे मजदूरदलीय सरकार ने कोयला, गैस, परिवहन (Transport), वायुमार्ग, बिजली तथा लोहा व इस्पात उद्योगो तथा बैंक ऑफ इगलैंड का राष्ट्रीयकरण कर दिया। इसी प्रकार, यदि हम श्रीलका (Ceylon), पाकिस्तान, ब्रह्मा व टर्की आदि कम-विकसित (Under developed) देशो की ओर देखें तो सरकारी उद्यम के अनेक उदाहरण हमारे सामने आते हैं। टर्की मे कृषि बैंक (Agricultural Bank), मिट्टी द्वारा निर्मित पदार्थों का कार्यालय, कृषि सामान अभिकरण (Agricultural Equipment Agency) आदि सब पर राज्य का ही स्वामित्व है और ये अनेक प्रकार से कृषको की सहायता करते हैं। 'उद्योग तथा दोनो ही क्षेत्रो मे टर्की के आर्थिक विकास का इतिहास बहुत कुछ सरकारी उद्यम से ही सम्बन्धित रहा है।'[1] इस प्रकार उद्योग, कृषि तथा वाणिज्य के क्षेत्र मे राज्य का प्रवेश अब लगभग सभी देशो मे काफी महत्वपूर्ण हो गया है। इसकी उत्पत्ति अनेक प्रकार की प्रेरणाओ (Motives), दबावो (Pressures) तथा उद्देश्यो (Purposes) के कारण हुई जोकि देश-देश व सरकार-सरकार की भिन्नता के अनुसार भिन्न-भिन्न हैं। किसी भी राष्ट्र की व्यावहारिक आवश्यकताएँ, प्रतिरक्षा सम्बन्धी बातें, राजनैतिक विचारधारा, सामाजिक शास्त्र, आर्थिक विकास की दशा—ये अनेक तत्व हैं जोकि किसी न किसी प्रकार से इस बात का निर्धारण करते हैं कि किसी देश के औद्योगिक तथा वाणिज्यिक क्षेत्र मे राज्य को कौनसा भाग अदा करना है।

स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व, भारत की अर्थ-व्यवस्था (Economy) आयोजनाबद्ध (Planned) नही थी। उस समय तक भारत एक कृषिप्रधान देश था जोकि ब्रिटिश उद्योगो के लिए कच्चा माल (Raw material) प्रदान करता था। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् राष्ट्रीय सरकार का यह उत्तरदायित्व हो गया कि वह इस देश की बढती हुई जनसख्या की निर्धनता दूर करे और रहन-सहन के स्तर मे सुधार करे। अत अब भारत सरकार निर्धनता, पौष्टिक भोजन की कमी, बीमारी तथा अशिक्षा को दूर करने के लिये आर्थिक विकास की गति तीव्र करने के भगीरथ प्रयत्नो मे लगी हुई है। इस कारण ही सरकार को आर्थिक उद्यमो के अनेक क्षेत्रो मे हस्तक्षेप अथवा प्रवेश करने की प्रेरणा मिली है।

---

1 A H Hanson, *Public Enterprise and Economic Development*, p 124

सरकारी उद्यमो के सम्बन्ध मे जो प्रशासकीय समस्याएँ उत्पन्न होती है वे निम्न प्रकार है :—

(१) सरकारी उद्यमो का प्रबन्ध किस प्रकार किया जाता है ?

(२) ससद (Parliament) के प्रतिनिधि के रूप मे, मन्त्री (Minister) भारत मे सरकारी उद्यमो पर किस प्रकार नियन्त्रण रखते है ? क्या उसकी शक्तिया स्थिति का सामना करने के लिए पर्याप्त होती है ? क्या उसकी शक्तियो पर कोई रोक लगनी चाहिये ?

(३) सरकारी निगमो (Public Corporations) पर नियन्त्रण रखने के लिए ससद द्वारा क्या-क्या उपाय अपनाये जाते हैं ? किसी भी निगम के कार्यभारी (Incharge) मन्त्री से उस निगम के कार्यो तथा सचालन के बारे मे कौन-कौन से प्रश्न पूछे जाने चाहिये ? निगमो के विषय मे जानकारी प्राप्त करने के लिए ससद के सदस्यो को और कौन-कौन से साधन प्रदान किये जाने चाहिये ?

(४) ससद की सार्वजनिक लेखा समिति (Public Accounts Committee) तथा प्राक्कलन समिति (Committee on Estimates) जैसी वित्तीय समितियो द्वारा निगमो पर क्या तथा किस प्रकार नियन्त्रण रखा जाना चाहिये ।

(५) सरकारी निगमो पर जो ससदीय नियन्त्रण लागू किया जाता है, क्या वह पर्याप्त है ? यदि नही, तो क्या सरकारी उद्यमो से व्यवहार करने के लिए ससद की एक प्रवर समिति (Select committee) होनी चाहिए ? यदि नही, तो क्यो ?

(६) सरकारी उद्यमो से सरकार का वास्तविक सम्बन्ध क्या है ?

अब हम सरकारी उद्यमो के प्रबन्ध से सम्बन्धित समस्याओ पर विचार करते है ।

सरकारी उद्यमो मे प्रबन्ध के स्वरूप
(Patterns of Management in State Enterprises)

गत शताब्दी (Decade) मे व्यावसायिक उद्यमो के सरकारी स्वामित्व एव सचालन की सख्या मे अधिक वृद्धि हो जाने से एक मूलभूत समस्या यह उत्पन्न हो गई है कि किसी भी उद्यम की सबसे अच्छी प्रबन्ध-व्यवस्था किस प्रकार हो सकती है ? प्रबन्ध के किस स्वरूप को अपनाकर सर्वोत्तम परिणाम प्राप्त किये जा सकते हैं ? ससार के भिन्न-भिन्न देशो मे प्रबन्ध के विभिन्न रूपो के साथ अनेक प्रयोग किए गये हैं ?

सरकारी उद्यमो के प्रशासन के लिए अधिकतर सगठन के चार रूपो (Forms) का उपयोग किया जाता है जोकि निम्न प्रकार हैं —

(१) वे उद्यम जिनका सचालन अन्य सरकारी क्रियाओ के समान ही किया जाता है, अर्थात् विभागीय प्रबन्ध (Departmental Management) ।

(२) सरकारी निगम (Public Corporations)

(३) मिश्रित पूँजी कम्पनियाँ (Joint stock companies) जोकि या तो पूर्णतया सरकारी स्वामित्व के अन्तर्गत हो अथवा मिश्रित अर्थात् प्राइवेट सस्थाओ के साथ साझेदारी (Partnership) मे हो।

(४) सचालन ठेका (Operating contract) एक ऐसी व्यवस्था है जिसके अन्तर्गत सरकार किसी भी प्राइवेट अथवा निजी सस्था के साथ सरकारी उद्यम के प्रबन्ध तथा सचालन का ठेका करती है।

सरकारी उद्यमो को कार्य-दक्षता एव कुशलता के साथ चलाने के लिये यह आवश्यक है कि भिन्न-भिन्न उद्यमो के लिये ठीक-ठीक प्रकार की प्रवन्ध-व्यवस्था का चुनाव किया जाये। अब हम सरकारी उद्यमो को ऊपर बताई गई इन विभिन्न प्रकार की प्रबन्ध-व्यवस्थाओ के सापेक्षिक गुणो की विवेचना करेगे।

(१) विभागीय प्रबन्ध
(Departmental Management)

विभागीय प्रबन्ध-व्यवस्था का उपयोग अनेक देशो मे रेलो, सचार के साधनो, बन्दरगाहो, राजस्व-अर्जन की प्रकृति वाले वाणिज्यिक (Commercial) तथा औद्योगिक एकाधिकारो (Industrial monopolies), और यहाँ तक कि निर्माण उद्योगो के लिये भी किया जाता है। भारत मे, रेलवे, जोकि सबसे बडा सरकारी उद्यम है, विभागीय प्रबन्ध-व्यवस्था के अन्तर्गत है तथा अब चितरजन लोकोमोटिव वर्क्स (Chittaranjan Locomotive Works), पेराम्बूर मे इन्टीग्रल कोच फैक्टरी (Integral Coach Factory) तथा युद्ध-सामग्री का निर्माण करने वाली व विशिष्ट प्रतिरक्षा की सामग्री की पूर्ति करने वाली कुछ फैक्टरियो का सगठन व उनकी वित्तीय व्यवस्था तथा नियन्त्रण बहुत कुछ उसी प्रकार किया जाता है जिस प्रकार कि केन्द्र सरकार के अन्य किसी विभाग का।

'शुद्ध' रूप मे इसमे निम्नलिखित विशेषतायें पाई जाती है —

(१) उद्यम की वित्तीय व्यवस्था राजकोष (Treasury) से लिये जाने वाले वार्षिक विनियोजनो (Annual appropriations) द्वारा की जाती है तथा इसकी आय का सम्पूर्ण अथवा एक बडा भाग राजकोष मे दे दिया जाता है,

(२) उद्यम का नियन्त्रण बजट, लेखाकन (Accounting) तथा लेखा-परीक्षण (Audit) के उन नियमो के द्वारा होता है जोकि अन्य सरकारी विभागो मे लागू होते है,

(३) उद्यम के स्थायी कर्मचारी-वर्ग मे सिविल सेवक (Civil servants) होते है। उन कर्मचारियो की भर्ती की रीतियाँ तथा सेवा की शर्ते आदि सामान्यत वैसी ही होती हैं जैसी कि अन्य सिविल सेवको के लिये होती है,

(४) उद्यम का सगठन साधारणतया सरकार के केन्द्रीय विभाग (Central department) के एक बडे उपसभाग (sub-division) के रूप मे किया जाता है

और उद्यम विभागाध्यक्ष (Head of the department) के प्रत्यक्ष नियन्त्रण मे रहता है।

(५) जब कभी यह देश की कानूनी व्यवस्था (Legal system) मे लागू होता है तो उद्यम को राज्य (State) के सर्वश्रेष्ठ विशेषाधिकार प्राप्त होते हैं और सरकार की सहमति के बिना उस पर मुकदमा नही चलाया जा सकता।"[1]

इस प्रकार, विभागीय प्रबन्ध-व्यवस्था वाले उद्यम का सगठन वस्तुत पद-सोपान (Hierarchy) के आधार पर होता है जिसका प्रधान एक मन्त्री (Minister) होता है और जो अपने कार्यो के लिये मन्त्रिपरिषद् (Cabinet) तथा ससद के प्रति उत्तरदायी होता है। उद्यम का प्रशासन ज्येष्ठ (Senior) सिविल सेवको के हाथो मे होता है तथा वित्तीय नियन्त्रण राजकोष द्वारा किया जाता है।

इस प्रकार के सगठन मे राजनीतिक दृष्टि से उत्तरदायी मन्त्री के द्वारा अधिकतम मात्रा मे नियन्त्रण रखा जाता है। सरकारी उत्तरदायित्व (Public accountability) निश्चित हो जाती है। सरकारी ढाचे के अन्य भागो के साथ स्पष्ट सम्बन्ध होना, इस प्रकार की प्रबन्ध-व्यवस्था का एक अन्य लाभ है। ये इसके निश्चित व ठोस लाभ है, तथापि यह अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि विभागीय प्रबन्ध इन लाभो को प्राप्त करने की कोई अनिवार्य पूर्वशर्त (Pre-condition) नही है।

सगठन के इस रूप की हानियाँ भी अनेक हैं और विशेषकर उस उद्यम के लिए जोकि स्पष्टत औद्योगिक अथवा वाणिज्यिक प्रकृति का हो। यह 'सरकार की शक्ति' को बढाकर अधिकतम कर देता है और उद्यम की "प्रेरणा तथा लोच-शीलता" को घटाकर न्यूनतम कर देता है। यह कुछ उन भेदकारक विशिष्टताओ को यथेष्ट रूप से दृष्टिगत रखने मे असफल रहता है जोकि अधिकाश उद्यमो को सरकारी कार्यों के सामान्य सचालन से स्पष्टत पृथक् रखती है अर्थात् यह कि -

(१) सरकार जनता से एक सर्वोच्च सत्ता के रूप मे व्यवहार नही करती बल्कि एक व्यवसायी (Businessman) के तरीके से व्यवहार करती है, (२) वस्तुओ एव सेवाओ की लागत की अदायगी सामान्य करदाता (General tax-payer) की बजाए व्यक्तिश उपभोक्ताओ को करनी पडती है, (३) उद्यम के खर्चे अनिवार्यत उपभोक्ता की माग के साथ-साथ घटते-बढते रहते हैं और उनका ठीक-ठीक प्रकार पूर्वानुमान नही लगाया जा सकता अथवा उनको वास्तविक रूप मे वार्षिक बजट की सीमाओ के अन्तर्गत नही रखा जा सकता, और (४) ऐसे क्षेत्रो मे कार्यो का सचालन किया जाता है जिनमे कि सुसस्थापित व्यापारिक क्रियाए प्रचलित है। सगठन के इस रूप के अन्तर्गत, सरकारी उद्यम कभी-कभी लालफीताशाही (Red tapism) कार्य मे देरी, अपर्याप्त सेवा तथा उपभोक्ताओ की आवश्यकताओ के प्रति उपेक्षाभाव के शिकार बन जाते हैं।"[2]

---

1 United Nations Publication, p 6
2 United Nations Publication p 6

सरकारी उद्यमो मे पाये जाने वाले दृढ वित्तीय नियन्त्रण, तथा माल की खरीद व ठेको (Contracts) आदि के लिये नियमो व विनियमो (Rules and regulations) की कठोरता का सामान्यत स्वीकृत वाणिज्यिक व व्यापारिक कार्यवाहियो से विवाद हो सकता है और व्यक्तिगत निर्णय तथा प्रेरणा पर रोक लग सकती है जो कि एक उद्यम के सफल सचालन के लिये आवश्यक होते है।

प्रश्न यह उठता है कि सरकारी उद्यमो के सचालन से सम्बन्धित विभागो के ढाचो तथा कार्य-विधियो मे मूलभूत सशोधन करके क्या हम इन कमियो को दूर नही कर सकते ? जैसा कि प्रो० डिमोक *(Dimock)* ने कहा है कि "यदि अधिक स्वायत्तता (Autonomy) तथा लचीलापन (Flexibility) लाने की दिशा मे विभागो (Departments) के अन्तर्गत काफी सुधार किये जा सकें तो सरकारी निगमो के लिये इसका औचित्य (Justification) या तो विल्कुल नही होगा या बहुत थोटा होगा।"[1] व्यवहार मे, इस सम्बन्ध मे भिन्न-भिन्न देशो मे समय-समय पर आवश्यक सुधार किये जाते रहे है। 'Revolving funds' की स्थापना की गई है, कठोर कानूनो एव नियमो के द्वारा सामान्य अथवा विशिष्ट छूटें प्रदान की गई हैं, वाणिज्यिक किस्म के लेखा-परीक्षणो (Audits) की व्यवस्था की गई है, तथा (स्वीकृतियाँ प्राप्त करने मे होने वाली देरियो को कम करने के लिये) अन्तर्मन्त्रीय (Inter-Ministerial) प्रतिनिधित्व से पूर्ण प्रबन्ध-मण्डलो (Managing Boards) की रचना की गई है। भारतीय रेलें वैसे विभागीय प्रबन्ध-व्यवस्था के अन्तर्गत है किन्तु अनेक अधिकार रेलवे प्रशासन को सौंप दिये गये हैं। भारतीय रेलवेज की अपनी निजी वित्तीय, प्रशासकीय तथा नियुक्ति करने की कार्य-विधियाँ हैं उनके अपने लेखाकन (Accounting) तथा लेखा-परीक्षण (Auditing) विभाग हैं ; यही नही वे विभिन्न क्षेत्रो मे बटी हुई हैं और जहाँ तक कार्य-सचालन का सम्बन्ध है प्रत्येक क्षेत्रीय रेलवे मे काफी मात्रा मे विकेन्द्रीकरण की प्रवृत्ति पाई जाती है।

इसके अतिरिक्त, शीघ्र निर्णयो के लिये बोर्ड योजना अपनाई गई है। रेलवे बोर्ड (Railway Board) भारत सरकार के एक मन्त्रालय (Ministry) के सदृश कार्य करता है और रेलो के नियमन, निर्माण, देखभाल तथा सचालने के सम्बन्ध मे केन्द्र सरकार की सभी शक्तियो का प्रयोग करता है। रेलवे बोर्ड का सविधान, रेलवे नीति का निर्माण करने एव उसको क्रियान्वित करने के सम्बन्ध मे बोर्ड को पूर्ण स्वाधीनता प्रदान करता है। बोर्ड एक निगम निकाय (Corporate body) के रूप मे कार्य करता है और इसके सदस्य कृत्यशील (Functional) प्रकृति के होते हैं। बोर्ड मे चेयरमैन, वित्त आयुक्त (Financial Commissioner) तथा तीन सदस्य (Members) होते है जो कि कर्मचारी-वर्ग (Staff) सिविल इजिनियरिंग तथा परिवहन-व्यवस्था के कार्यभार (Incharge) होते है। रेलवे मन्त्रालय मे भारत

1 M E Dimock Government Corporations A Focus of Policy and Administration, in American Political Science Review Vol XLIII, p 116

सरकार का पदेन सचिव (Ex-officio secretary) इसका चेयरमैन होता है। इसका वित्त आयुक्त भी रेलवे मन्त्रालय मे वित्तीय मामलो से सम्बन्धित भारत सरकार का पदेन सचिव होता है। डाक व तार विभाग के लिए भी एक ऐसा ही बोर्ड बनाने की योजना है।

परन्तु विभागीय ढाचे मे उन क्रियाओ को सम्मिलित करने के लिये हेर-फेर करना सामान्यत एक बडा कठिन कार्य है, जिनको सम्पन्न करने के लिये इसकी रचना नही की गई थी। जब तक एक उद्यम को अन्य प्रकार की सरकारी क्रियाओ से पृथक् नही किया जायेगा तब तक इसको प्रमाणिक सरकारी विनियमो (Regulations) तथा कार्य-विधियो (Procedures) के अनुरूप बनाने के लिए भारी दबाव डाले जाते रहेगे। चूकि एकरूपता (Uniformity) पर जोर देना नौकरशाही प्रशासन (Bureaucratic administration) का एक सामान्य लक्षण है, अत जब तक किसी विशेष उद्यम पर लागू करने के लिये विशिष्ट कानूनी व्यवस्थाओ (Legal provisions) का प्रबन्ध नही किया जाता तब तक उस उद्यम मे भिन्न कार्य-विधि लागू करने का प्रयत्न प्राय असफल ही रहता है। जैसा कि हेनसन *(Hanson)* ने कहा है कि "यहाँ तक कि एक विकसित देश मे भी, जहाँ कि निपुण एव अनुकूल सिविल सेवा वर्तमान हो, एक सरकारी उद्यम का सरकारी विभाग के रूप मे सचालित करने के कार्य को मामूली रूप मे नही लिया जाना चाहिये, और कम विकसित देश मे तो ऐसा करना प्राय असम्भव होता है। आमतौर पर सगठन के विशिष्ट रूपो की आवश्यकता होती है।"[1] ए० डी० गोरवाला *(A D Gorwala)* ने ठीक ही कहा है कि विभागीय प्रबन्ध (Departmental management) का उपयोग तो कभी-कभी ही किया जाना चाहिये, एक सामान्य नियम के रूप मे नही। अनेक प्रकार से, स्वायत्तता (Autonomy) की आवश्यकताओ का यह एक प्रत्यक्ष नकारात्मक रूप है। यह पहलकदमी (Initiative) तथा लचीलेपन (Flexibility) का विरोध करता है । तथापि कुछ किस्म के उद्यमो मे विभागीय प्रबन्ध अनिवार्य होता है। ऐसे उद्यमो की स्पष्ट व्याख्या की जानी चाहिये, उनको पृथक् रखना चाहिये और उनकी सख्या न्यूनतम ही रहनी चाहिये।'[2]

सरकारी निगम
(The Public Corporation)

विभागीय व्यवस्था मे पाये जाने वाले दोषो के कारण, पश्चिम मे लोगो का मत दृढता से सरकारी निगमो के पक्ष मे हो गया है। इसका आधार यह है कि निगम मे वाणिज्यिक स्वाधीनता (Commercil freedom) तथा सरकारी नियन्त्रण का उचित एव न्यायपूर्ण सम्मिश्रण पाया जाता है। राष्ट्रपति रूजवैल्ट (President

1 A H Hanson, *op cit*, p 242

2 A D Gorwala, Report on the Efficient Conduct of state enterprize Delhi 1951, p 13-14

Roosevelt) के शब्दो मे, "निगम सरकार की शक्ति का जामा पहने होता है परन्तु इसमे निजी उद्यम (Private enterprise) की सी प्रेरणा तथा लोचशीलता पाई जाती है।" इस प्रकार सरकारी निगम के आन्दोलन को गति देने की मौलिक प्रेरणा दो प्रकार की इच्छाओ के कारण मिली अर्थात् एक ओर तो उद्यम के प्रवन्ध पर किये जाने वाले ससदीय निरीक्षण से, और दूसरी ओर कर्मचारी-वर्ग तथा वित्त पर राजकोष (Treasury) के नियन्त्रण से मुक्त होने की इच्छा। यह सम्भावना व्यक्त की गई कि ये दोनो ही बातें औद्योगिक अथवा वाणिज्यिक प्रकृति के उद्यमो मे दक्षता एव स्वय प्रेरणा को प्रतिबन्धित करती हैं।

सयुक्त राष्ट्र सघीय अध्ययन के अनुसार, जिसका कि पहले ही उल्लेख किया जा चुका है, सरकारी निगम की मुख्य विशेषतायें निम्न प्रकार हैं —

(१) इस पर सरकार का ही पूर्ण स्वामित्व होता है।

(२) इसका निर्माण सामान्यत एक विशेष कानून (Law) बनाकर किया जाता है जिसमे इसकी शक्तियो, कर्तव्यो व विशेषाधिकारो की व्याख्या की जाती है, इसके प्रबन्ध के रूप का निर्धारण तथा अन्य स्थापित विभागो एव मन्त्रालयो के साथ इसके सम्बन्ध का उल्लेख किया जाता है।

(३) निगम निकाय के रूप मे, कानूनी कार्यों के लिए इसका पृथक् अस्तित्व होता है और यह मुकदमा चल सकता है तथा इस पर मुकदमा चलाया जा सकता है, यह ठेके (Contracts) कर सकता है तथा अपने नाम से सम्पत्ति (Property) प्राप्त कर सकता है। अपने ही नाम से अपना व्यवसाय करने वाले निगमो को, ठेके करने के सम्वन्ध मे तथा सम्पत्ति के क्रय-विक्रय के विषय मे साधारण सरकारी विभागो की अपेक्षा आमतौर पर अधिक स्वाधीनता प्रदान की जाती है।

(४) पूंजी का प्रबन्ध करने के लिए अथवा घाटो की पूर्ति के लिए किये जाने वाले विनियोजनो (Appropriations) के अतिरिक्त, एक सरकारी निगम की वित्तीय व्यवस्था आमतौर पर स्वतत्र रूप से की जाती है। यह राजकोष (Treasury) अथवा जनता से उधार लेकर तथा वस्तुओ व सेवाओ की बिक्री से होने वाली आय के द्वारा धन प्राप्त करता है। अपनी आमदनियो का प्रयोग तथा पुन प्रयोग करने का इसे अधिकार होता है।

(५) यह साधारणतया सरकारी निधियो के खर्च पर लागू होने वाली अधिकाश नियामकीय तथा प्रतिवन्धात्मक सविधियो (Statutes) से मुक्त रहता है।

(६) यह सामान्यत निगमेतर अभिकरणो (Non-corporate agencies) पर लागू होने वाले बजट, लेखाकन (Accounting) तथा लेखा परीक्षण (Audit) सम्वन्धी कानूनो एव कार्यविधियो (Procedures) से नही बधा होता।

(७) "अधिकाश स्थितियो मे, सरकारी निगम के कर्मचारी सिविल सेवक नही होते। उनकी भर्ती करने तथा पारिश्रमिक या वेतन देने का कार्य उन शर्तों व दशाओ

के अनुसार किया जाता है जिनका निर्धारण निगम स्वय करता है।"[1] सरकारी निगमो के विषय मे लिखते हुए सन् १६३३ मे हरबर्ट मोरीसन (*Herbert Morison*) ने कहा कि "हम निगमो के रूप मे सरकारी स्वामित्व, सरकारी उत्तरदायिता (Accountability) और लोकहित के लिए किये जाने वाले व्यावसायिक प्रवन्ध (Business management) का एक सम्मिश्रण प्राप्त करने का प्रयास कर रहे है।"[2]

भारत ने दामोदर घाटी (Damodar Valley) जैसे नदी घाटी प्रायोजनाओ (River valley projects) तथा वायु परिवहन व बीमे आदि के सचालन के लिये सरकारी निगमो का आश्रय लिया है, और इन सभी निगमो मे वे सिद्धान्त स्थूल रूप से पाये जाते हैं जिनका ऊपर उल्लेख किया गया है, यद्यपि इसमे कोई सन्देह नही कि प्रायोजनाओ की कुछ विशिष्ट आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए निगमो का निर्माण करने वाले अधिनियमो (Acts) मे कुछ विशेष रद्दोवदल अथवा समायोजन (Adjustments) अवश्य किये गये थे। अब हम दामोदर घाटी निगम (Damodar Valley Corporation) के ढाचे का अध्ययन करते है। इसकी रचना सन् १६४८ मे व्यवस्थापिका (Legislature) के एक अधिनियम द्वारा की गई थी। इसके चेयरमैन तथा सदस्यो की नियुक्तियाँ (पश्चिमी वगाल व बिहार, दोनो भागीदार सरकारो के परामर्श से) केन्द्र सरकार (Central Government) द्वारा की जाती है तथा व्यक्तिगत कमियो के कारण अथवा यदि वे अन्य किसी प्रकार से अनुपयुक्त (Unsuitable) हो तो केन्द्र सरकार द्वारा ही उन्हे अपने पदो से हटाया भी जा सकता है। इसके सचिव (Secretary) तथा वित्तीय सलाहाकार (Financial Adviser) की नियुक्ति भी केन्द्र सरकार द्वारा की जाती है। निगम स्वय अपनी निधि (Fund) होती है जिसमे निगम की सभी प्राप्तियाँ (Receipts) ले जाई जाती हैं तथा जिसमे से निगम की सभी आमदनियाँ (Payments) की जाती है। प्रत्येक भागीदार सरकार निगम द्वारा निर्धारित तिथियो पर पूंजी का अपना भाग उसको देने की व्यवस्था करती है, और यदि कोई भी सरकार निर्धारित तिथियो पर पूंजी का अपना हिस्सा देने मे असफल रहती है तो निगम को यह अधिकार होता है कि उस घाटे की पूर्ति के लिये वह सम्बन्धित सरकार के दायित्व पर ऋण ले सके। केन्द्र सरकार की स्वीकृति से निगम खुले बाजार (Open market) मे भी धन उधार ले सकता है। यह आवश्यक है कि इसका बजट तथा वार्षिक प्रतिवेदन (Annual Reports) प्रत्येक वर्ष केन्द्र तथा राज्य सरकारो के सन्मुख प्रस्तुत किये जाये। निगम के लेखे (Accounts) रखने तथा लेखा-परीक्षण (Auditing) करने का कार्य उस रीति के अनुसार किया जाता है जोकि महालेखा-परीक्षक (Auditor General) के परामर्श से निर्धारित किया जाता है। अपने कार्यों के निष्पादन के समय नीति

---

1 United Nation's Publication, *op, cit*, p, 9

2 Herbert Morrison, Socialization and Transport 1933, p 149

सम्बन्धी प्रश्नो के सम्बन्ध मे निगम का मार्ग-दर्शन उन अनुदेशो (Instructions) के द्वारा किया जाता है जोकि केन्द्र सरकार द्वारा इसे दिये जाते है और केन्द्र सरकार तथा निगम के बीच यदि इस सम्बन्ध मे कोई विवाद उठ खडा होता है कि अमुक प्रश्न नीति सम्बन्धी प्रश्न है या नही, तो उसमे केन्द्र सरकार का निर्णय अन्तिम माना जाता है। किन्तु निगम तथा किसी भी भागीदार सरकार के बीच उत्पन्न होने वाला कोई भी विवाद अथवा झगडा भारत के मुख्य न्यायाधिपति (Chief Justice) द्वारा नियुक्त एक पच (Arbitrator) को सौप दिया जाना चाहिये। अधिनियम की इन धाराओ (Provisions) मे, नीति पर सरकारी नियन्त्रण रखने का तथा प्रबन्ध सम्बन्धी स्वायत्तता (Autonomy) निगम के ही हाथो मे छोड देने का द्विमुखी उद्देश्य बिल्कुल स्पष्ट है। विधेयक (Bill) पर वाद-विवाद के समय इस सम्बन्ध मे सरकार ने आश्वासन भी दिये। इस सम्बन्ध मे यहाँ विधेयक के तत्कालीन कार्य-भारी (Incharge) मन्त्री द्वारा दिये गये केवल एक ही आश्वासन का उल्लेख करना पर्याप्त होगा और वह यह कि, 'केन्द्र सरकार की यह बिल्कुल इच्छा नही है कि वह निगम के दिन प्रतिदिन के प्रशासन मे हस्तक्षेप करे, यदि सरकार की यही इच्छा होती तो हम दा० घा० नि० (D V C) को तत्काल ही सरकार का एक विभाग (Department) बना सकते थे। हम दा० घा० निगम का एक कार्यभारी मन्त्री नियुक्त कर सकते थे परन्तु ऐसा नही किया गया।"[1]

परन्तु सरकारी निगम, सफलतापूर्वक कार्य करने का एक बडा कठिन रास्ता है क्योकि इसमे नियन्त्रण तथा स्वायत्तता के बीच सन्तुलन कायम रखा जाता है और यह एक बडा कठिन तथा टेढा कार्य है। ब्रिटेन, फ्रास तथा सयुक्त राज्य अमेरिका जैसे पश्चिमी देश भी स्वय अभी किसी भी प्रकार इस बात से निश्चिन्त नही हो सके हैं कि स्वायत्तता तथा नियन्त्रण के बीच उन्होने जो सन्तुलन स्थापित किया है वह सर्वोत्तम सम्भव है। यह अभी भी एक विवादग्रस्त समस्या है। इस बात से प्रत्येक सहमत है कि सरकारी निगमो पर नियन्त्रण होना चाहिये जिससे कि वे राज्य के अन्दर ही एक राज्य (State) न बन जाए अथवा वे सरकार की एक शीर्षहीन चतुर्थ शाखा (A headless fourth branch of government) न बन जाये। निगम को मिलने वाली स्वायत्तता (Autonomy) उन 'विशेषाधिकारो' (Immuuities) पर निर्भर होगी जो उसका निर्माण करने वाले विशेष कानून ने उसको प्रदान किये हैं, तथा उस देशविशेष मे प्रचलित रूढियो व रिवाजो पर निर्भर होगी। एक निगम के लिये उस सरकार से अपनी स्वायत्तता की रक्षा करना तो बडा कठिन होगा जिसने कि 'निगम को कठिनाइयो मे डालने व दबाने का ही निश्चय कर लिया हो—जब तक कि वह सरकार ही इतनी कमजोर, असगठित तथा शक्तिहीन न हो कि वह स्वय अपनी बनाई हुई सस्थाओं पर अपनी सत्ता खो बैठी हो।

1 Constituent Assembly of India, Legislative Debates, pp 757-758

दामोदर घाटी निगम के निर्माण के समय सर्वोत्तम शब्दावली प्रयोग किये जाने के बावजूद, निगम द्वारा वास्तव मे उपभोग की जाने वाली व्यावसायिक स्वतन्त्रता की मात्रा अत्यधिक सीमित रही है। वित्त मन्त्रालय (Ministry of Finance) द्वारा इसका सूक्ष्म निरीक्षण किये जाने के कारण, इसको अपने अधिकाश सौदो अथवा व्यवहारो के लिये सरकार की स्वीकृति लेनी पडती है, तथा सरकार के उस वित्तीय सलाहकार की आलोचनात्मक तथा बहुधा असहमति-पूर्ण दृष्टि के अन्तर्गत कार्य करना पडता है जोकि अपनी असहमति प्रकट किये गये उसके निर्णयो को पुष्टि अथवा अस्वीकृति के लिये राजनैतिक अधिकारियो के पास भेज सकता है। यहाँ तक कि उन प्रायोजनाओ (Projects) को भी, जोकि निगम के अत्यन्त सुयोग्य इजीनियरो द्वारा तैयार की जाती है, कार्यान्वित करने से पूर्व तीनो भागीदार सरकारो के इजीनियरिंग विभागो के लोह-पजो मे से गुजरना होता है। "किसी भी कार्य को करने से पहले ली जाने वाली स्वीकृतियो एव अनुमोदनो की बहुतायत, अनुमानो की अत्यधिकता, विस्तृत छिन्न-भिन्न अनुमानो तथा पृथक् प्रायोजनाओ के लिये वित्तीय औचित्यो (Juctifications) मे ऐसा प्रतीत होता है कि स्वायत्तता ने कार्य को सीमित बना दिया है।"[1] परिणामस्वरूप "निगम का इतिहास अन्तनात्मक प्रसगो की एक शृखला के सदृश प्रतीत होता है जिसमे कि निगम को अपनी अधिकाश शक्ति अपनी स्वायत्तता को कायम रखने मे ही लगानी पडी और उसमे भी उसे कम ही सफलता मिली।"[2] सब बातो को छोड, यदि किसी ऐसे उदाहरण की आवश्यकता हो कि एक स्वायत्तशासन प्राप्त निगम के साथ किस प्रकार व्यवहार नही किया जाना चाहिये तो यह दृष्टान्त ऐसा ही उदाहरण प्रस्तुत करता ह।"[3]

वास्तव मे, केवल उन स्थितियो को छोडकर जहाँ कि स्पष्ट रूप मे उनकी आवश्यकता सिद्ध होती हो, सरकारी निगमो की स्थापना नही की जानी चाहिये। उनके कार्यों की यथासभव ठीक-ठाक व्याख्या की जानी चाहिये और जिन मन्त्रियो (Ministers) के क्षेत्र में वे स्थित हो उनके साथ निगमो के सम्बन्धो का स्पष्टीकरण विशेष रूप से किया जाना चाहिये। नियन्त्रण को न्यूनतम मूल केन्द्रो पर केन्द्रित कर दिया जाना चाहिये परन्तु सफल सरकारी निगमो द्वारा 'आधिपत्य स्थापन' (Empire building) के विरुद्ध सुरक्षा की पर्याप्त व्यवस्थायें भी की जानी चाहिये। सरकार को नियत समयो पर सरकारी निगमो के स्वरूप का विस्तृत सिंहावलोकन करते रहना चाहिये जिससे कि इनको विकासोन्मुख अर्थ-व्यवस्था वाले देश की परिवर्तित आवश्यकताओ के अनुरूप बनाने के विषय मे आश्वस्त हुआ जा सके, अन्यथा तो, ये सस्थाएँ गतिशील समाज की आवश्यकताओ के लिये अनुपयुक्त तथा गतिशून्य व स्थिर बन जायेंगी।

---

1 N C B R Chaudhry, Problems of D V C In B B Majumdar, *Problems of Public Administration in India*, Patna 1953, p 111

2 A D Gorwala *op cit* p 33

3 A D Gorwala, *Ibid*, p 34

(३) सयुक्त पूँजी कम्पनी
(Joint Stock Company)

भारत ने वाणिज्यिक उद्यमो (Commercial enterprises) के प्रबन्ध के लिये भारतीय कम्पनी विधि (Indian Company Law) के अन्तर्गत पूजीकृत (Registered) सयुक्त पूंजी कम्पनियो का विस्तृत उपयोग किया है, जैसे कि सिन्द्री फर्टीलाइजर्स एण्ड केमिकल्स (प्राइवेट) लिमिटेड, हैवी इलैक्ट्रोकल्स (प्राइवेट) लिमिटेड, हिन्दुस्तान मैशीन टूल्स (प्राइवेट) लिमिटेड, भारत इलैक्ट्रोनिक्स (प्राइवेट) लिमिटेड, हिन्दुस्तान केबिल्स (प्राइवेट) लिमिटेड, नेशनल इन्स्ट्रूमैंट्स (प्राइवेट) लिमिटेड, हिन्दुस्तान इन्सैक्टीसाइड्स (प्राइवेट) लिमिटेड, नहान फाउन्ड्री (प्राइवेट) लिमिटेड, हिन्दुस्तान हाउसिंग फैक्ट्री (प्राइवेट) लिमिटेड आदि।

सयुक्त पूजी कम्पनी की सम्पूर्ण पूंजी भारत सरकार द्वारा प्रदान की जाती है और यह एक या दो पदाधिकारियो (Officials) के नाम से रखी जाती है क्योकि एक प्राइवेट लिमिटेड कम्पनी की स्थापना के लिये कम से कम दो हिस्सेदारो (Shareholders) की आवश्यकता होती है। इन कम्पनियो के विस्तृत सघ स्मृति-पत्र (Memoranda of Association) तथा सघ विधान-पत्र (Articles of Association) होते हैं जिनमे सयुक्त पूंजी लिमिटेड कम्पनी के हिस्सो (Shares) के अन्तरण (Transfer) की तथा साधारण सभाओ (General meetings) की व्यवस्थाएँ और अन्य सभी आवश्यक बातें दी होती हैं। इन कम्पनियो के निर्देशक मण्डल (Board of Directors) सरकार द्वारा मनोनीत (Nominate) किये जाते है और ये मण्डल एक सामान्य प्रतिरूप के होते हैं। एक चेयरमैन (Chairman) होता है जोकि आमतौर पर किसी विशिष्ट उद्योग के कार्यभारी (Incharge) मन्त्रालय (Ministry) का सचिव (Secretary) होता है। इसमे स्थायी रूप से एक अधिकारी (Officer) होता है जोकि वित्त मन्त्रालय से लिया जाता है तथा सयुक्त सचिव (Joint secretary) की श्रेणी का होता है। एक या दो ऐसे अन्य मन्त्रालयो के भी पदाधिकारी होते हैं जोकि किसी विशिष्ट उद्यम की कार्य प्रणाली से घनिष्ट रूप से सम्बन्धित होते हैं। ये सभी निर्देशक (Directors) पदेन (Ex-officio) होते हैं, अत इनकी नियुक्तियो मे से किसी के भी स्थानान्तरण (बदली) का स्वत मतलब होता है निर्देशक-मण्डल मे परिवर्तन। इन सभी मण्डलो (Boards) मे कुछ गैर-सरकारी व्यक्तियो (Non-officials) का भी लघुमिश्रण होता है जिनमे एक या दो व्यवसायी (Businessmen) होते हैं और कभी-कभी एक श्रमिक नेता (Labour leader)। परन्तु निर्देशक मण्डल मे सरकारी अधिकारियो का ही आधिपत्य रहता है। हमारे सरकारी उद्यमो का यह एक गम्भीर दोष है। भारत इलैक्ट्रोनिक्स (प्राइवेट) लिमिटेड मे, एक पदाधिकारी चेयरमैन है, आठ निर्देशक है जिनमे से छ सरकारी

जो सरकारी पदाधिकारियो की प्रधानता बनी रहती है वह ही कम्पनियो मे लोचशीलता के अस्तित्व के बारे मे सन्देह उत्पन्न करती है। जैसा कि लोकसभा (Lok sabha) की अनुमान समिति (Estimates Committee) ने कहा है कि "वास्तविकता यह है कि भारतीय कम्पनियाँ न्यूनाधिक रूप मे सरकारी विभागो का ही विस्तारमात्र है ··और इनका सचालन इधर-उधर कुछ छोटे-मोटे परिवर्तनो के साथ लगभग उन्ही के स्वरूप के अनुसार किया जाता है।"[1] सिन्द्री कारखाने के भूतपूर्व मुख्य इन्जीनियर मि० बेन्सन गिल्स *(Benson Gyles)* ने भी इस बात की पुष्टि की। जिन्होने शिकायत की कि "प्रबन्ध निर्देशक (Managing Directors) तथा मन्त्रालय के बीच प्रचलित कार्य का आदान-प्रदान किया जाता है, और यह कि वित्त (Finance), ज्येष्ठता (Seniority) तथा पदोन्नति (Promotion) से सम्बन्धित अनेक सरकारी नियम आपसे-आप कम्पनी मे लागू हो जाते है।"[2]

कम्पनी के आकार की प्रबन्ध-व्यवस्था की स्थापना करने का एक व्यावहारिक कारण यह है कि निगम के मुकाबले एक कम्पनी की स्थापना करना सरल है। एक कम्पनी की स्थापना करने के लिये तो भारतीय कम्पनी विधि (Indian Company Law) के अन्तर्गत उसको पजीकृत (Registered) मात्र कराना होता है परन्तु एक निगम के निर्माण के लिए ससद को एक विशेष विधि का निर्माण करना होता है। इस प्रकार, निगम के निर्माण के लिए ससदीय विधानीकरण (Parliamentary enactment) की सम्पूर्ण कठिन कार्यविधि (Procedure) पूरी करनी होती है। सरकार की क्रियाओ के विस्तार के इस युग मे यह बडा कठिन है कि प्रत्येक प्रकार के उद्योग (Industry) के लिए निगम का निर्माण करने के हेतु अधिनियम (Act) के बनाने की प्रतीक्षा की जाए।

परन्तु इस लाभ का यह अर्थ नही है कि किसी भी कम्पनी को ससदीय नियन्त्रण से मुक्त कर दिया जाय। इटली मे यही हुआ, जहाँ कि, प्रोफेसर रोसी *(Rosi)* के अनुसार, लोकहित के सरक्षण के लिए आवश्यक सभी प्रकार के प्रभावशाली नियन्त्रण को खोकर कार्य की स्वाधीनता कायम की गई।[3]

इस प्रकार, सरकार को यह बात स्पष्ट रूप से समझ लेनी चाहिए कि एक सरकारी कम्पनी ठीक एक 'सामान्य कम्पनी' (Ordinary company) के सदृश नही होनी। सरकार को इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि व्यवस्थापिका सभा (Legislature) तथा जनता को कम्पनी के कार्यों के बारे मे, वार्षिक प्रतिवेदनो (Reports) के द्वारा, जानकारी मिलती रहनी चाहिये, इसके हिसाब-किताब की

1 Estimates Committee Ninth Report 1953-54, Administrative, Financial and other Reforms, Lok Sabha, Secretariat New Delhi, p 16

2 T Benson Gyles Organization and Management of Sindri Fertilizers Ltd., prepared for the Government of India, Technical Assistance Programme U N New York, 1955 (Mimeographed) pp 6-7

3 Einaudi Bye and Rossi Nationalization in France and Italy, p 244

मिन्धिया स्टीम नेवीगेशन कम्पनी लिमिटेड साझीदार (Partners) हैं। कम्पनी की अधिकृत पूजी (Authorised Capital) १० करोड रुपये है। कम्पनी की कुल जारी पूजी (Issued Capital) ४५२.७५ लाख रु० बैठती है जिसमे कि भारत सरकार के ३४८.६४ लाख रुपये के शेयर है। १०४.११ लाख रुपये के मूल्य के शेष शेयर सिन्धिया के है।

मिश्रित उद्यमो मे सरकार उद्यम के नियन्त्रण तथा निरीक्षण के अधिकार सुरक्षित रखती है। ऐसी कम्पनियो पर नियन्त्रण रखने के लिए सरकार बहुधा निम्न उपायो का प्रयोग करती है। सरकार या तो बोर्ड के चेयरमैन की अथवा अधिकाश सदस्यो की नियुक्ति का अधिकार स्वय ले सकती है। हिन्दुस्तान शिपयार्ड (Hindustan shipyard) के मामले मे, राष्ट्रति को चेयरमैन, प्रबन्ध-निर्देशक (Managing Director) तथा छ अन्य निर्देशको की नियुक्ति का अधिकार प्राप्त है। अन्य चार निर्देशक अर्थात् कुल सख्या के एक तिहाई सिन्धिया द्वारा मनोनीत किये जाते है। सरकार शेयरो के हस्तान्तरण पर तथा कम्पनी के लाभो के वितरण पर प्रतिवन्ध लगा सकती है। सरकार लेखा-परीक्षको (Auditors) की नियुक्ति का अधिकार भी स्वय ले सकती है। हिन्दुस्तान शिपयार्ड के मामले मे उधार लेने, डिबेंचर (Debentures) जारी करने व कम्पनी के समापन (Winding up) आदि पर सरकार का ही नियन्त्रण रहता है।

"मिश्रित व्यवस्था के समर्थको का यह कहना है कि यह व्यवस्था राज्य को इस योग्य बनाती है कि वह उन गैर-सरकारी व्यवसायियो के अनुभव का लाभ उठा सके जो कि मिश्रित निगमो के निर्देशक मण्डलो के सदस्य होते है, इसके कार्यों के प्रवन्ध मे लचीलापन पाया जाता है जिससे सचालन मे सफलता की सम्भावना रहती है, और यह कि आवश्यक पूंजीगत निधियो की पूर्ति के लिए यह आशिक रूप से गैर-सरकारी स्रोतो से धन प्राप्त करती है।"[1]

यह सत्य है कि, सम्पूर्ण रूप मे, सिविल सेवको के मुकाबले व्यवसायी (Businessmen) अधिक व्यावसायिक ज्ञान का प्रदर्शन करते है— यद्यपि यह भी ठीक है कि राज्य के साथ किये जाने वाले अपने व्यवहारो मे उन्होने सदा ही सार्वजनिक उत्तरदायित्व की एक गभीर कमी का प्रदर्शन किया है,—और मिश्रित निगम निजी व्यावसायिक हितो तथा उन सरकारी प्रतिनिधियो को, जिनकी नियन्त्रणकारी आवाज होती है, एक साथ मिलाता है जिससे कि उद्योगो का प्रवन्ध व्यावसायिक निपुणता के साथ किया जा सके। इसके अतिरिक्त, एक मिश्रित कम्पनी अपनी पूंजीगत आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के लिए सरकारी तथा गैर-सरकारी दोनो ही प्रकार की निधियो (Funds) पर भरोसा कर सकती है।

इस सम्बन्ध मे एक बात का अवश्य ध्यान रखना चाहिये। निजी व्यवसाय का उद्देश्य होता है अधिकतम लाभ प्राप्त करना, किन्तु यह आवश्यक नही है कि

1 Mario Einaudi Maurice Bye, Erneiso Rossi, Nationalization in France and Italy pp 243-44

सरकारी उद्यम उद्देश्य भी वही हो। यह सम्भव हो सकता है कि एक मिश्रित उद्यम में बजाए सबसे अच्छी के, दोनों ही पक्षों की सबसे खराब बातें आजायें, क्योंकि लोक सेवा (Public service) तथा अधिकतम लाभ कमाने की प्रेरणाओं का परस्पर कोई मेल नहीं बैठता।

(५) सञ्चालन ठेका
(The Operating Contract)

सरकारी उद्यम का चलाने की अन्तिम विधि सचालन-ठेके की है। इस सम्बन्ध में रगून सेमिनार के विषय-पत्र में कहा गया था कि "सरकारी उद्यमों के प्रशासन की एक अपेक्षाकृत नई विधि है सचालन ठेका। सरकारी उद्यम के प्रबन्ध के लिए सरकार किसी स्थापित प्राइवेट कम्पनी के साथ ठेका करती है और ठेकेदार (Contractor) द्वारा व्यय की जाने वाली समस्त लागत की अदायगी का वायदा करती है। ठेकेदार को उसकी सेवाओं के लिए एक "निश्चित शुल्क" (Fixed fee) के रूप में मुआवजा दिया जाता है। इस शुल्क का निर्धारण ठेके की शर्तों के अन्तर्गत बातचीत द्वारा किया जाता है। यह ठेका प्रबन्ध-ठेका (Management contract) कहलाता है और इसके अन्तर्गत प्रबन्ध करने वाली कम्पनी को उसके मुकाबले कम स्वाधीनता प्राप्त होती है जितनी उसे निजी अथवा गैर-सरकारी रूप में उद्यम का सचालन करने की स्थिति में प्राप्त होती। ठेकेदार कम्पनी को इस बात का पूरा अधिकार दिया जाता है कि वह कर्मचारियों की नियुक्ति कर सके या उन्हें हटा सके, क्षतिपूर्ति (Compensation) की दरों का निर्धारण कर सके, सामग्री तथा साज-सामान खरीद सके, कार्य-सचालन की नीतियां निर्धारित कर सके आदि-आदि। सरकारी अभिकरणों पर लागू होने वाली सविधियाँ (Statutes) ठेकेदार कम्पनी पर लागू नहीं होतीं, उसके द्वारा रखे जाने वाले कर्मचारियों को सरकारी कर्मचारी नहीं माना जाता। इस प्रकार से, ठेकेदार उद्यम का सचालन बहुत हद तक उसी प्रकार करने में समर्थ हो जाता है जिस प्रकार कि वह तब करता जबकि यह कम्पनी उसकी निजी कम्पनी की एक सहायक होती।"[1]

यदि अन्य बातों से ऊपर 'लोचशीलता' (Flexibility) ही वाञ्छनीय है तो उसको प्राप्त करने का तरीका यही है। इससे प्रयत्नों में, नियोजन में तथा कर्मचारियों की नियुक्ति में उससे भी अधिक मात्रा में लोचशीलता आ जाती है। जितनी कि आमतौर पर एक सरकारी निगम में पाई जाती है। परन्तु एक अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि सरकार इस बात से कैसे आश्वस्त हो सकती है कि ठेकेदार जिसे कि 'लागत जमा' (Cost plus) के आधार पर अदायगी की जाती है, यथेष्ट कुशलता तथा मितव्ययता से कार्य सम्पन्न कर रहा है? इस बात से निश्चिन्त होने के लिये, कि उद्यम को दिये गये सामान्य निर्देश सरकारी नीति की प्रचलित

1 United Nations Publications, *op cit*, p 15

विचारधाराओं के अनुरूप हैं, सरकार किस प्रकार उद्यम मे हस्तक्षेप कर सकती है ? इन प्रश्नो का कोई भी ऐसा उत्तर नही मिला है जिससे कि किसी निष्कर्ष पर पहुँचा जा सके।

ठेके के इस रूप से कितनी कठिनाइयाँ उत्पन्न हो सकती हैं यह हिन्दुस्तान मशीन टूल्स लिमिटेड तथा हिन्दुस्तान शिपयार्ड लिमिटेड के प्रारम्भिक इतिहास से प्रकट है। इनमे से प्रथम उद्यम की स्थापना के लिये भारत सरकार ने मैसर्स ओरलिकन (Messrs Oerlikon) नामक स्वीडन की फर्म से एक करार (Agreement) किया अनेक कारणोवश काम मे देरिया हुईं और उद्यम मे कुशलता तथा मितव्ययता की कमी के कारण कोलम्बो योजना के मशीन यन्त्र विशेषज्ञ को इसकी गम्भीर आलोचना करनी पडी। हिन्दुस्तान मशीन टूल्स पर प्रकाशित अपने प्रतिवेदन (Report) मे लोकसभा की अनुमान समिति (Estimates Committee) ने यह कहा कि इस बात का निश्चय करने मे ही कई माह की देर कर दी गई कि किस प्रकार के खराद (Lathes) का निर्माण होना चाहिये और 'मैसर्स ओरलिकन द्वारा की जाने वाली यह एक ऐसी गम्भीर भूल थी' जिनको समाप्त किया जा सकता था। समिति ने प्रारम्भिकठेके की ही आलोचना की और कहा कि ठेका स्वीडन की फर्म के अधिक अनुकूल था क्योकि 'फर्म की निर्दिष्ट कमियो के लिये आशिक रूप से सरकार को भी उत्तरदायी बना दिया गया था।'[1]

हिन्दुस्तान शिपयार्ड के मामले मे, जिसने कि अत्यन्त धीमी गति मे कुछ बहुत महगे जहाजो का निर्माण किया, समिति ने यह मत व्यक्त किया कि "French Societe Anonyme des Ateliers et-Chantiers de Ia Loire नामक ठेकेदार फर्म ने इतने गलत रूप मे काम किया कि उससे हानियो की वसूलयाबी करने के लिये सरकार को कार्यवाहियाँ करनी पडी।"[2]

एक कम विकसित देश को अपने विकास कार्यक्रमो के लिये विदेशी फर्मो के साथ ठेकेदार के करार (Agreements) तो करने ही चाहियें। परन्तु हिन्दुस्तान मशीन टूल्स तथा हिन्दुस्तान शिपयार्ड के इतिहास की पुनरावृत्ति को रोकने के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि ठेकेदार फर्म को उद्यम की केवल प्रबन्ध-व्यवस्था ही नहीं करनी चाहिये अपितु उसमे ठोस मात्रा मे पूंजी भी लगानी चाहिये। यदि उद्यम मे आशिक रूप मे ठेकेदार फर्म की पूंजी भी लगी है तो 'सचालन ठेके' की व्यवस्था सफलतापूर्वक कार्य कर सकती है। सेमिनार मे ठीक ही कहा गया कि "सचालन ठेके की इस व्यवस्था के—जिसको कि सामान्यत एक अस्थायी हल के रूप मे निश्चित उद्देश्य के साथ चुना जाता है—लाभो, हानियो तथा उचित उपयोगो के बारे मे और अधिक अध्ययन किये जाने की आवश्यकता है।"[3]

---

1 14th Estimates Committee Report 1954-55, pp 6-7.

2 Ibid, 34

3 United Nations Publication, op cit, p 16

वास्तव मे, सगठन की उन सभी किस्मो के बारे मे 'अधिक अध्ययन' किया जाना चाहिये जिनकी इस अध्ययन मे विवेचना की गई है। जैसा कि द्वितीय पचवर्षीय योजना मे कहा जा चुका है, कि "सगठन के विभिन्न रूपो के सापेक्षिक (Relative) लाभो के सम्बन्ध मे कोई स्पष्ट मत प्रकट किये जाने मे पूर्व अधिक अनुभव की आवश्यकता है।"[1]

यह बात अवश्य दृष्टिगत रखनी चाहिये कि सभी देशो और सभी परिस्थितियो के लिये सरकारी उद्यमो के प्रशासन के लिये सगठन का कोई भी एक स्वरूप सर्वोत्तम नही है। किसी भी विशिष्ट उद्यम के लिये सगठन के स्वरूप का चुनाव करते समय सभी तत्वो पर विचार किये जाने की आवश्यकता है, जैसे कि कार्य की प्रकृति, सचालन तथा वित्तीय आवश्यकतायें, राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था पर पडने वाला दबाव, क्रियाओ की किस्मे, जनता का राजनैतिक दृष्टिकोण, और सुयोग कर्मचारी वर्ग की उपलब्धता। केवल सैद्धान्तिक अथवा अव्यावहारिक रूप मे हम सगठन के किसी भी एक स्वरूप पर ही जमे नही रह सकते। अभी तो हम एक प्रयोगावस्था (Experimental stage) मे है अत हम अधिक कठोर अथवा दृढ नही बन सकते। इसके अतिरिक्त, विदेशो का अनुभव हमारे लिये अधिक सहायक नही हो सकता। सगठन का स्वरूप कोई ऐसी चीज नही है जिसका आयात किया जा सके। सगठन के किसी भी विशेष रूप (Form) की सफलता उस देश मे पाई जाने वाली दशाओ पर निर्भर होगी। हमे इस मामले मे अन्य देशो द्वारा प्राप्त किये गये अनुभव एव ज्ञान की नकल करने का प्रयत्न नही करना चाहिये। हमे ऐसी किसी गलत धारणा को भी अपने मन से निकाल देना चाहिये जोकि विभिन्न व्यक्तियो के मन मे सामान्यत उत्पन्न हो जाया करती है।, किसी भी उद्यम की सफलता अनिवार्य रूप से प्रबन्ध-व्यवस्था की किस्म पर ही निर्भर नही होती। यह हो सकता है कि एक सरकारी निगम अथवा कम्पनी उद्यम मे अकुशलता, रिश्वतखोरी और भाई भतीजावाद (Nepotism) उत्पन्न कर दे। यदि किसी विशिष्ट उद्यम मे कुछ गलत काम हुआ है तो निगम अथवा कम्पनी की किस्म की प्रबन्ध-व्यवस्था के बारे मे निराश न होना चाहिये। उन कारणो की खोज करने का प्रयत्न करना चाहिये जो अकुशलता के लिये उत्तरदायी हो। एक ही तत्व पर आधारित व्याख्या से तो गलत निष्कर्ष निकलेंगे और भ्रामक निर्णय किये जायेंगे।

सरकारी उद्यम पर मन्त्रीय नियन्त्रण
(Ministerial Control over State Enterprise)

अब हम सरकारी निगमो के सम्बन्ध मे मन्त्रियो (Ministers) की शक्तियो (Powers) की विवेचना करेंगे।

मन्त्रियो के हाथ मे सरकरी उद्यमो पर नियन्त्रण की कुछ शक्तियाँ सौंप देने की आवश्यकता सभी जगह स्पष्ट रूप से अनुभव की गई है। केवल मन्त्रीय

1 Second Five Year Plan, p 138

निर्देशो (Ministerial directives) के द्वारा ही उद्यमो को प्रचलित सरकारी नीति की आवश्यकताओ के अनुरूप बनाया जा सकता है और राष्ट्रीय योजना (National plan) के साथ उनका ताल-मेल बैठाया जा सकता है। यदि सरकारी उद्यमो पर मन्त्रियो द्वारा प्रभावशाली नियन्त्रण नही रखा जायेगा तो इनकी स्थापना के सभी सम्भावित लाभ प्राप्त नही हो सकेंगे, परिणामस्वरूप देश की अर्थ-व्यवस्था (Economy) के बारे मे भ्रम उत्पन्न होगा जिसके कारण कम विकसित तथा आर्थिक दृष्टि से पिछडे देश मे सामाजिक अराजकता (Anarchy) उत्पन्न हो सकती है। परन्तु निगमो की स्वायत्तता (Autonomy) की समुचित सुरक्षा के लिये यह आवश्यक है कि मन्त्रीय नियन्त्रण अत्यन्त सीमित मात्रा मे लागू किया जाये। इस सम्बन्ध मे मूलभूत सिद्धान्त यह है कि कुछ उत्तरदायित्व अथवा नीति-निर्देशन का कार्य स्वय सगठन पर ही छोड दिया जाए। "नियम रूप मे, ये उद्यम तभी अधिक सफलता के साथ कार्य करते हैं जबकि मन्त्रीय नियन्त्रण सामान्य नीति (General policy) के मामलो तक ही सीमित रहता है।"[1]

निगमो द्वारा प्रबन्ध किये जाने वाले उद्यमो का मन्त्रियो के साथ जो सम्बन्ध होता है वह विभागीय प्रबन्ध वाले (Departmentally managed) सरकारी उद्यमो के सम्बन्ध से भिन्न होता है। निगमो को अपने आन्तरिक मामलो मे हस्तक्षेप के विरुद्ध एक निश्चित मात्रा मे स्वायत्तता प्राप्त होती है जबकि विभागो को ऐसी स्वायत्तता नही प्राप्त होती। विभाग (Department) एक अग के रूप मे पूर्णतया सरकार से साथ जुडा रहता है और वह कार्यपालिका के नियन्त्रण मे मुक्त होकर किसी भी प्रकार की स्वायत्तता का कानूनी अधिकार के रूप मे दावा नही कर सकता। मन्त्री विभागीय प्रबन्ध वाले सरकारी उद्यम के लिये पूर्णतया उत्तरदायी होता है अत वह उन पर दिन प्रति-दिन का नियन्त्रण भी लगा सकता है। ऐसे उद्यमो के प्रशासन के सम्बन्ध मे मन्त्री से कोई भी प्रश्न पूछा जा सकता है, उदाहरणार्थ, रेलवे मन्त्री से रेलो के देर से चलने अथवा उनमे अत्यधिक भीड-भाड आदि के बारे मे प्रश्न पूछे जा सकते हैं। चूंकि मन्त्री को अपने विभाग पर पूर्ण अधिकार प्राप्त होता है अत अपने विभाग से सम्बन्धित प्रत्येक कार्य तथा किसी भी बात के लिये वह जवाबदेह होता है। परन्तु सरकारी निगमो की स्थिति मे, कार्यभारी मन्त्री (Minister-in-charge) को केवल सीमित अधिकार ही प्राप्त होते हैं और वह केवल उन्ही अधिकारो के सम्बन्ध मे व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी होता है।

अब हम सरकारी निगमो पर मन्त्रीय नियन्त्रण की मात्रा पर विचार करेंगे, चाहे वे निगम विशिष्ट सविधियो (Special Statutes) द्वारा बनाये गये हो अथवा भारतीय कम्पनी विधि (India Company Law) के अन्तर्गत उनका निर्माण किया गया हो। सरकारी निगम पर मन्त्रीय नियन्त्रण की स्थापना निम्नलिखित

1 United Nations Publication, *op cit* p 24

उपायो मे से किसी एक अथवा सम्मिलित रूप से कई उपायो द्वारा की जा सकती है (१) किसी उद्यम के शासन मण्डल (Governing board) और व्यवस्थापको (Managers) की नियुक्ति करके, (२) सामान्य नीति सम्बन्धी निर्देश जारी करके, (३) विशिष्ट निर्देश (Directions) जारी करके, (४) कुछ विशेष श्रेणियो के कार्यों तथा नीतियो का अनुमोदन करके अथवा उनको रद्द करके, (५) अत्यावश्यक परिस्थितियो मे, शासन-मण्डल के एक सदस्य के रूप मे प्रबन्ध व्यवस्था मे भाग लेकर, (६) निगम द्वारा सूचनायें तथा प्रतिवेदन (Reports) प्राप्त करने का अधिकार लेकर। अब हम इन अधिकारो पर एक-एक करके विचार करते हैं।

सर्वप्रथम, यह कि कार्यभारी मन्त्री को निगमो के शासन-मण्डल के सदस्यो की नियुक्ति का अधिकार प्राप्त होता है। सन् १९४८ के दामोदर घाटी निगम अधिनियम (D V C Act) की धारा ४ मे कहा गया है कि "निगम के चेयरमैन तथा दो अन्य सदस्यो की नियुक्ति केन्द्र सरकार द्वारा की जायेगी ... ।" वायु निगम अधिनियम (Air Corporation Act) १९५३ की धारा ४ मे यह व्यवस्था है कि "प्रत्येक निगम मे केन्द्र सरकार (Central Government) द्वारा नियुक्त सदस्य होगे जिनकी सख्या पाच से कम और नौ से अधिक नही होगी तथा इन सदस्यो मे से एक को केन्द्र सरकार निगम का चेयरमैन नियुक्त करेगी।" निगमो का निर्माण करने वाले सभी अधिनियमो (Acts) तथा प्राइवेट लिमिटेड कम्पनियो के सघ विधान-पत्रो (Articles of Association) मे ऐसी धारायें पाई जाती है। राष्ट्रीय कोयला विकास निगम लिमिटेड (National Coal Development Corporation Ltd) के ७१ (१) सघ विधान-पत्र मे यह व्यवस्था दी गई है कि "निर्देशक (Directors) राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किये जायेंगे ... ।" हिन्दुस्तान शिपयार्ड मे यह व्यवस्था है कि "राष्ट्रपति को चेयरमैन, प्रबन्ध-निर्देशक (Managing Director) तथा छ अन्य निर्देशको की नियुक्ति करने का अधिकार है।" अन्य चार निर्देशक अर्थात् कुल सख्या के एक तिहाई सिन्धिया कम्पनी द्वारा मनोनीत (Nominate) किये जाते हैं जो कि इस उद्यम मे सरकार की साझीदार (Partner) हैं।

सरकार को मण्डल (Board) के सदस्यों (Members) की नियुक्ति का अधिकार प्राप्त होता है किन्तु उनकी कोई निश्चित योग्यतायें (Qualifications) नही दी हुई होती, हाँ सामान्यत कुछ अयोग्यताओ (Disqualifications) का उल्लेख अवश्य किया होता है, उदाहरण के लिये, सन् १९४८ के दा० घा० नि० अधिनियम (D V C Act) की धारा ४ मे यह व्यवस्था है कि "निम्न दशाओ मे किसी भी व्यक्ति को निगम का सदस्य नियुक्त करने अथवा सदस्यता जारी रखने के अयोग्य माना जायेगा—(क) यदि वह केन्द्रीय अथवा प्रान्तीय विधान मण्डल का सदस्य हो अथवा (ख) यदि वह निगम के लिए किये जा रहे किसी भी ठेके अथवा कार्य मे, प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से, अपना निजी स्वार्थ रखता हो। वह किसी भी

कम्पनी का हिस्सेदार (Shareholder) रह सकता है, मगर इस स्थिति मे उसे अपने उन शेयरो की प्रकृति तथा मात्रा का पूर्ण विवरण सरकार को देना होगा। वायु निगम अधिनियम की धारा ४ (२) मे यह व्यवस्था है कि ऐसे किसी भी आर्थिक हित अथवा अन्य किसी प्रकार के हित (Interest) को सदस्यता के लिये अयोग्य माना जायेगा जो कि सदस्य के रूप मे किये जाने वाले उसके कायो को पक्षपातपूर्ण रीति से प्रभावित करे।

नियुक्ति का अधिकार (Power of appointment) मन्त्रियो के हाथो मे दिया गया एक वडा महत्वपूर्ण अधिकार होता है परन्तु यह आश्चर्य की बात है कि इन उच्च पदो पर नियुक्तियाँ करने मे उन्हे खुली छूट प्राप्त होती है क्योकि नियुक्त होने वाले प्रार्थियो के लिये कोई निश्चित योग्यताये निर्धारित नही होती। यह हो सकता है कि इस अभाव के पक्ष मे यह तर्क प्रस्तुत किया जाये कि विधान-मण्डल द्वारा वनाये गये अधिनियम मे सदस्यो की योग्यताओ का उल्लेख करके सरकार के हाथ बाध देना अनावश्यक और, यहाँ तक कि, अवाछनीय भी है। यह काम मत्री पर ही छोड देना चाहिये कि वह अच्छे-अच्छे व्यक्तियो की तलाश करके उनकी नियुक्तियाँ कर दे जिससे कि इन पदो की नियुक्तियाँ वह केवल पिछले अनुभव एव ज्ञान के के आधार पर ही नही, अपितु भावी सम्भावनाओ को दृष्टिगत रख कर भी कर सके।

परन्तु मन्त्रियो को दी जाने वाली इस 'खुली छूट' मे निहित खतरो की भी उपेक्षा नही की जानी चाहिये। यह भय प्रकट करना उचित ही है कि निश्चित योग्यताओ के अभाव मे, यह सम्भव है कि नियुक्तियाँ अन्य बातो के आधार पर, जैसे कि राजनैनिक सरक्षण (Political patronage) के आधार पर, की जायें। सरक्षण की बुराई, जिससे अब ससार के लगभग सभी सभ्य देश मुक्त हैं, ऐसा प्रतीत होता है कि इस बडे पैमाने के राष्ट्रीयकरण (Nationalization) से भारत मे प्रवेश कर गई है। अनेक महत्वपूर्ण नियुक्तियो का उपहार मन्त्रियो के अपने अधिकार मे होता है और नियुक्तार्थियो (Appointees) के चुनाव के विषय मे वे किसी के प्रति भी उत्तरदायी नही होते। इस बारे मे ससद (Parliament) मे वे जो कुछ कहते हैं वह यही कि उन्होने ऐसे सर्वोत्तम सम्भव व्यक्ति को नियुक्त किया है जिसे कि वे प्राप्त कर सके। इसके अतिरिक्त, प्रजातन्त्रीय सरकारें, चूँकि उन मतो (Votes) की सख्या पर आधारित होती हैं जिन्हे कि वे निर्वाचनो (Elections) मे प्राप्त कर सकती है अत वे बहुधा अपने तात्कालिक अनुयायियो अथवा मतदाताओ (Voters) को पुरस्कृत करने के कार्य की ओर ध्यान देना अपना दायित्व समझती है, और इसमे खतरा यह है कि उनकी मांगो को अधिक से अधिक सन्तुष्ट करने की इच्छा मे यह सम्भव हो सकता है कि उत्तरदायित्वपूर्ण ऊँचे पदो पर लोगो की नियुक्तियाँ करते समय उनकी योग्यताओ एव अनुभव पर इतना ध्यान न दिया जाये जितना कि उनकी भूतकाल की राजनैनिक सेवाओ पर। इस प्रकार निगमो के कार्यालय "राजनैतिक पक्षपात" के

स्थान बन सकते है। पदाधिकारियो के उचित चुनाव के महत्व को अधिक बडा-चढा कर नही कहा जा सकता और कुछ ऐसी उपयुक्त रोके लगानी ही पडती है कि जिनमे नियुक्त करने वाले प्राधिकारी (Appointing authority) नियुक्ति के इस अधिकार का दुरुपयोग न कर सकें। भारत मे, जहाँ कि जातीयता, प्रान्तीयता, साम्प्रदायिकता तथा धार्मिक उन्माद की बुराइयाँ पहले से ही वर्तमान हैं, यह सम्भव हो सकता है कि नियुक्ति करने वाले प्राधिकारियो मे य सामाजिक बुराइयाँ काफी मात्रा मे पाई जायें। पक्षपात के इस खतरे के विरुद्ध सुरक्षा की व्यवस्था तो करनी ही होती है।

मन्त्रियो को यह भी अधिकार प्राप्त होता है कि वे शासन-मण्डल (Governing board) के निर्देशको अथवा सदस्यो को, विभिन्न अधिनियमो (Acts) मे उल्लिखित कारणो के आधार पर, उनके पदो से हटा सके जैसे कि काम करने से, इन्कार करने के कारण, कार्यवाहन की असमर्थता के कारण, अपने पद का दुरुपयोग करने के कारण, किसी सामान्य अनुपयुक्तता[1] (Unsuitability) के कारण अथवा अन्य किसी ऐसे कारण से जो कि पर्याप्त प्रतीत हो।[2] यह आशा की जाती है कि पदच्युति (Dismissal) के इस अधिकार का प्रयोग पूर्ण सावधानी के साथ किया जायेगा। यदि मनमानी पदच्युतियाँ की गईं तो उससे मण्डलो की कार्यकुशलता कम हो जायेगी। किसी भी कर्मचारी को कार्यकुशलता के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि उसे समुचित मात्रा मे नौकरी की सुरक्षा प्रदान की जाये। इगलैड मे मन्त्रियो को मण्डलो के सदस्यो के सम्बन्ध मे पदच्युति का यह अधिकार प्राप्त है। इस अधिकार का प्रयोग यार्कशायर बिजली बोर्ड के चेयरमैन के मामले मे किया गया था जिसे कि भवनो (Buildings) के लायसेंस लेने के नियमो को भग करने के कारण जेल भेज दिया गया था। यह ठीक है कि जिस प्रकार नियुक्तियाँ राजनैतिक कारणो के आधार पर नही की जानी चाहियें, उसी प्रकार पदच्युतियाँ भी राजनैतिक बातो के आधार पर नही की जानी चाहियें।

दूसरे, मन्त्रियो को यह अधिकार प्राप्त होता है कि वे सामान्य नीति (General policy) के मामलो पर निगमो को निर्देश जारी कर सके। दा घा नि (D V C) के सम्बन्ध मे यह आवश्यक है कि कार्यों के सम्पादन मे नीति के प्रश्नो पर निगम का मार्गदर्शन ऐसे अनुदेशो (Instructions) द्वारा किया जाना चाहिये जो कि उसे केन्द्र सरकार से प्राप्त हो।" यदि किसी प्रश्न के सम्बन्ध मे यह विवाद उत्पन्न हो जाये कि यह प्रश्न नीति का है या नही, तो उसमे केन्द्र सरकार का निर्णय अन्तिम होगा।[3] इसी प्रकार "नीति के प्रश्नो पर औद्योगिक वित्त निगम (Industrial Finance Corporation) का मार्ग-दर्शन ऐसे अनुदेशो द्वारा किया जाना

१ दामोदार घाटी निगम अधिनियम, धारा ५१
२ पुनर्वास वित्त प्रशासन अधिनियम, धारा ८
३ दा घा नि अधिनियम, धारा ४८

चाहिये जो कि उसे केन्द्र सरकार द्वारा प्राप्त हो।"[1] दोनो वायु निगमो (Air Corporations) के सम्बन्ध मे "केन्द्र सरकार दोनो मे से किसी भी निगम को, उसके कार्यों के सम्पादन के विषय मे, निर्देश (Directions) दे सकती है और निगमो को उन निर्देशो का पालन करना ही होगा।"[2] मन्त्रियो को यह अधिकार होता है कि वे निगमो को निर्देश जारी कर सकें और निगम उन अनुदेशो का पालन करने को वाध्य होते हैं। यदि बार्ड नीति के प्रश्नो पर मन्त्रियो द्वारा दिये गये अनुदेशो का पालन करने मे असफल रहते हैं तो मत्री को यह अविकार होता है कि वह वोर्ड को कार्यच्युत अथवा मुअत्तिल (Supersede) कर दे, सदस्यो तथा चेयरमैन को हटा दे और एक नये वोर्ड की नियुक्ति कर दे।

मन्त्रियो को अनेक प्रकार की अनावश्यक विस्तृत वातो के सम्बन्ध मे निर्देश नही जारी करने चाहियें, अन्यथा तो निगमो की स्वायत्तता (Autonomy) ही खतरे मे पड जायेगी। मन्त्रियो को अपने निर्देशो द्वारा निगमो के दिन प्रति-दिन के आन्तरिक कार्यों मे हस्तक्षेप नही करना चाहिए। इस उद्देश्य की पूर्ति के किये स्वस्थ परम्पराओ व प्रथाओ का विकास करना होगा। अच्छा तो यह होगा कि अनुदेश जारी करने से पहिले मत्री वोर्ड के सदस्यो को अपने विश्वास मे ले ले और उनसे परामर्श करने के पश्चात ही निर्देश जारी करें। सन् १९५४ मे अधिनियम की धारा ६ (३) के अन्तर्गत औद्योगिक वित्त निगम को एक निर्देश जारी किया गया था "जिसमें इस वात का पूर्ण विवरण सहित प्रतिवेदन (Report) सरकार के समक्ष प्रस्तुत करने को कहा गया था कि उसके द्वारा पृथक्-पृथक् व्यक्तियो को ५० लाख रु० से अधिक के ऋण कव-कव दिये गए। सरकार इस प्रकार के और भी निर्देश निगम को जारी करने का विचार कर रही थी कि (१) निगम द्वारा किसी भी ऐसे पक्ष (Party) को ऋण की स्वीकृति नही दी जानी चाहिए जहाँ कि सम्बन्धित पक्ष पहले ही तीन अवसरो पर उससे ऋण प्राप्त कर चुका हो अथवा जहाँ किसी पक्ष को दिये गए ऋण की कुल मात्रा १ करोड रु० से अधिक हो चुकी हो किन्तु यदि इसके लिए सरकार की पूर्व अनुमति प्राप्त कर ली गई हो तो वात दूसरी है, (२) निगम सरकार की पूर्व अनुमति प्राप्त किये विना ऐसी किसी भी सस्था को कुल एक करोड रु० से अधिक का ऋण नही देगा जिसका स्वामित्व, प्रवन्ध अथवा नियन्त्रण उद्योगपतियो (Industrialists) के एक घनिष्ठ रूप मे सम्वन्धित वर्ग (Group) के अधीन हो।"[3] औद्योगिक वित्त निगम को जारी किया गया निर्देश शक्ति का दुरुपयोग नही था। यह देखना राष्ट्र के हित मे ही था कि ऋणो का समुचित रूप मे वितरण किया जा रहा है या नही, और कुछ थोडे मे उद्योगपतियो के एक वर्ग द्वारा उन पर कही

1 औ वि नि अधिनियम, धारा ६

2 वायुनिगम अधिनियम, उपधारा ३४—१

3 Parliamentary Debates, House of People Answer to Question on 1—9—56.

एकाधिकार तो नही कर लिया गया है। इसके अतिरिक्त, यह निर्देश नियम के दैनिक कार्यों मे हस्तक्षेप नही था, अपितु एक सामान्य नीति सम्बन्धी अनुदेश था। इस निर्देश को जारी करने की आवश्यकता इसलिए थी क्योकि औ० वि० नि० (I F C) की ऋण-नीति के विरोध मे समद (Parliament) मे तथा अखबारो मे मामान्य आलोचना की जा रही थी। यह कहा गया था कि ऋण वडे-वडे एकाधिकारियो (Monopolists) को पक्षपात के आधार पर दिये गए है। इस वात को रोकने के लिए ही सरकार ने निर्देश जारी किया था। कठिनाई तो तव उत्पन्न होती है जवकि मत्री विशिष्ट निर्देश (Specific directives) जारी नही करते, और वोर्ड के निर्णयो को अन्य उपायो द्वारा प्रभावित करने की चेष्टा करते है। यदि कोई मत्री निगम को कोई विशिष्ट निर्देश जारी करता है तो वह उसके परिणामो के लिए भी उत्तरदायी हो जाता है। अपने आपको जिम्मेवारी से वचाने के लिए वह अनौपचारिक परामर्शो एव सम्मतियो के द्वारा वोर्ड के सदस्यो को प्रभावित करता है। यह वडी अवाछनीय सवैधानिक उत्पत्ति है। इगलैड मे भी, इस तथ्य की तीव्र आलोचना की जाती है। भारत मे, यह तथ्य जीवन वीमा निगम (Life Insurance Corporation) के मामले मे प्रकाश मे आया। श्री एम० सी० छागला (*M C Chhagla*) की जाच की कार्यवाहियो से यह प्रकट हुआ कि मू दडा सस्थाओ (Mundhra Concerns) मे शेयर खरीदने के निगम के निर्णय को मत्री महोदय ने प्रभावित किया था, यद्यपि उन्होने लिखित रूप मे कोई भी निर्देश जारी नही किया था जैसा कि जीवन वीमा अधिनियम (Life Insurance Act) की धारा ११ के अन्तर्गत उनको करना चाहिये था। उन्होने ऐसा तरीका अपनाया जो कि कानून के विरुद्ध था। दामोदर घाटी निगम जाच समिति (D V C Enquiry Committee) ने भी कुछ इसी प्रकार का विचार व्यक्त किया। वात यह है कि जव कभी भी मत्री लोग निगमो को निर्देश जारी करने की आवश्यकता समझें तो उन्हे निर्देश लिखित रूप मे देने चाहियें, और जैसा कि इगलैड मे होता है ऐसे निर्देशो को निगमो की वार्षिक रिपोर्ट मे प्रकाशित किया जाना चाहिये अथवा उनको सदन (House) की मेज पर रखा जाना चाहिए। उद्देश्य यह है कि मत्री जो निर्देश जारी करें उनके लिए उन्हे निश्चित रूप से उत्तरदायी वनाया जा सके। किसी भी पक्ष की ओर से वचने की वात नही होनी चाहिये।

कुछ मामलो मे मन्त्रियो को विस्तृत वातो के सम्वन्ध मे भी निर्देश जारी करने का अधिकार दिया गया है। दोनो वायुनिगमो (Air Corporations) के मामले मे मत्री, उपयुक्तता तथा राष्ट्रीय हित की दृष्टि से तथा निगमो से परामर्श करके, उसमे से किसी को भी ऐसा निर्देश दे सकता है कि जिमसे वह ऐसी किसी भी वायु परिवहन सेवा (Air Transport Service) अथवा अन्य क्रिया को सचालित कर सके जिसे कि उसे सचालित करने का अधिकार हो, ऐसी किसी भी सेवा अथवा क्रिया को छोडने या उसमे परिवर्तन करने अथवा ऐसी किसी भी क्रिया को

न करने का भी निर्देश दे सकता है जिसको कि उसने करने का प्रस्ताव किया हो।[1] सरकार किसी भी वायु सेवा अथवा सम्पत्ति (Property) को एक वायु निगम से दूसरे के पास को स्थानान्तरित करने का भी निर्देश दे सकती है।[2]

तीसरे कुछ निगमो द्वारा अपनी योजनाओ तथा कार्यक्रमो के लिये मन्त्री की स्वीकृति प्राप्त करना आवश्यक होता है। दोनो वायु निगमो के मामले मे निम्नलिखित कार्यों के लिए सरकार की पूर्व स्वीकृति लेनी आवश्यक होती है—'किसी भी अचल सम्पत्ति (Immovable property) या विमान (Aircraft) अथवा १५ लाख रु० से अधिक मूल्य की किसी भी वस्तु को खरीदने के लिए किये जाने वाले किसी भी पूजीगत खर्च (Capital- expenditure) के लिये, किसी भी अचल सम्पत्ति को ५ वर्ष से अधिक की अवधि के लिये पट्टे (Lease) पर देने के लिए, अथवा १० लाख रु० से अधिक किताबी मूल्य (Book value) के किसी भी विशेष अधिकार अथवा सम्पत्ति को समाप्त करने अथवा बेचने के लिये।'[3] अपने वित्तीय वर्ष (Financial year) के प्रारम्भ होने से तीन माह पूर्व, इनमे से प्रत्येक निगम को केन्द्र सरकार के समक्ष "एक ऐसा विवरण-पत्र (Statement) प्रस्तुत करना होता है जिसमे कि उसके द्वारा सचालित किये जाने वाले कार्य-क्रम और वायु सेवाओ के विकास·····तथा उसकी अन्य क्रियाओ व उनसे सम्बन्धित वित्तीय अनुमानो का व्यौरा दिया होता है और इस व्यौरे मे किसी भी प्रकार का पूजी का निवेश (Investment of Capital) तथा इसके कुल स्टाफ की मात्रा मे वृद्धि का प्रस्ताव भी सम्मिलित होता है।"[4] तथापि, लोचशीलता (Flexibility) लाने के लिये, यह व्यवस्था की गई है कि यदि निगमो के लिए किसी ऐसी क्रिया अथवा सेवा को अपने हाथ मे लेना आवश्यक हो, जोकि उनके वार्षिक कार्य-क्रम मे सम्मिलित न हो, तो ऐसी क्रिया अथवा सेवा का सचालन किया जा सकता है और उक्त दशा मे एक अनुपूरक (Supplementary) कार्य-क्रम व तत्सम्बन्धी वित्तीय अनुमान सरकार के समक्ष प्रस्तुत कर दिया जाना चाहिये। विशेष परिस्थितियो का सामना करने के लिए निगमो को वह अधिकार दिया गया है कि वे ऐसी किसी सेवा अथवा क्रिया का सचालन कर सकें जोकि ऊपर के दोनो ही कार्य-क्रमो मे से किसी मे भी सम्मिलित न हो, और तत्पश्चात् निर्धारित रीति के अनुसार सरकार को उसके विषय मे एक प्रतिवेदन (Report) प्रस्तुत कर दें।[5] हिन्दुस्तान स्टील (प्राइवेट) लिमिटेड के मामले मे, निम्नलिखित स्थितियो मे सरकार की स्वीकृति लेना आवश्यक है· (अ) पूजी की वृद्धि करना; (आ) नये शेयर जारी करना, (इ) पूजी मे कमी करना, (ई) कम्पनी की शेयर पूजी का एकीकरण, विभाजन तथा उप-विभाजन, (उ) रुपया

---

1 Air Corporation Act, Sec, 34-2
2 Air Corporation Act, Sec, 39.
3 *Ibid* S 35
4 *Ibid* S 36
5 *Ibid* S 35

उधार लेना, इसकी शर्तें एव दशाये , (ऊ) बाण्ड, डिबेंचर, डिबेंचर स्टाक अथवा अन्य प्रतिभूतियाँ (Securities) जारी करना (ए) ४० लाख रु० से अधिक के पूजीगत खर्च का कोई भी कार्य-क्रम , (ऐ) कम्पनी का समापन (Winding up) , (ओ) किसी भी ऐसे अधिकारी की नियुक्ति करना जिसका न्यूनतम मासिक वेतन २००० रु० अथवा इससे अधिक हो , तथा कम्पनी के लेखा-परीक्षको (Auditors) की नियुक्ति करना ।

चौथे, निगम को पूजीगत निवेश (Capital investment) करने तथा उधार (Borrowing) लेने के लिए मन्त्री की स्वीकृति लेने की आवश्यकता होती है ।[1] निगमो को अपने खाते (Accounts) उस रीति के अनुसार रखने पडते हैं जोकि सरकार अथवा महालेखा-परीक्षक (Auditor General) के परामर्श से निर्धारित की जाती है और उनके खातो का परीक्षण (Audit of accounts) भी आमतौर पर उन लेखा-परीक्षको (Auditors) द्वारा किया जाता है जोकि मन्त्री (Minister) अथवा स्वय महालेखा-परीक्षक द्वारा नियुक्त किये जाते हैं । दामोदर घाटी निगम के मामले मे, 'निगम के खाते उस पद्धति के अनुसार रखे जायेंगे जोकि भारत के महालेखा-परीक्षक के परामर्श से निर्धारित की जाए ।'[2] पुनर्वास वित्त निगम (Rehabilitation Finance Coroparation) के खातो का परीक्षण 'उस एक अथवा एक से अधिक लेखा-परीक्षको द्वारा किया जायेगा जोकि सन् १६१३ के भारतीय कम्पनी अधिनियम (Indian Companies Act) की धारा १४४ के अन्तर्गत कम्पनियो के लेखा-परीक्षको के रूप मे कार्य करने के योग्य होंगे और जिनकी नियुक्ति केन्द्र सरकार द्वारा ऐसे पारिश्रमिक (Remuneration) पर की जायेगी जोकि अधिनियम द्वारा निर्धारित किया जायेगा ।'[3] दोनो वायु निगमो के लिए यह आवश्यक है कि वे अपने समुचित खाते जिनमे कि लाभ हानि खाता (Profit and Loss account) तथा चिट्ठा अथवा तुलन-पत्र (Balance sheet) भी सम्मिलित है, ऐमी पद्धति के अनुसार रखे जोकि भारत के नियन्त्रक महालेखा परीक्षक (Comptroller and Auditor-General of India) के परामर्श से भारत सरकार द्वारा निर्धारित की जाए ।' इन दोनो निगमो के लेखो अथवा खातो का परीक्षण भारत के नियन्त्रक व महालेखा-परीक्षक द्वारा अथवा उनके ही द्वारा नियुक्त अन्य किसी व्यक्ति द्वारा किया जाता है ।'[4] खाते अथवा लेखे (Accounts) तथा लेखा-परीक्षण (Audit) वाणिज्यिक किस्म के होते है और लेखा-परीक्षक के

1 दा घा नि अधिनियम १६४८, धारा ४२ , वायु निगम अधिनियम, धारा १० (३) आदि ।

2 दा घा नि अधिनियम, धारा ४७

3 पुनर्वास वित्त निगम अधिनियम, १६४८, धारा १६

4 वायु निगम अधिनियम, धारा १५

प्रतिवेदन (Auditor's report) मे यह बात स्पष्ट की जाती है कि चिट्ठा अथवा तुलन-पत्र पूर्णतया ठीक तथा उचित है या नही, उसको उपयुक्त पद्धति के अनुसार बनाया गया या नही, जिससे निगम के कार्यों का ठीक-ठीक तथा वास्तविक रूप सामने आ सके।

अन्त मे, मन्त्रियो को यह अधिकार प्राप्त होता है कि वे निगमो से आवश्यक जानकारी प्राप्त कर सके। निगमो से कहा जाता है कि वे नियत-कालिक विवरण-पत्र (Periodic statements), लेखे (Accounts), सूचना-पत्र, वार्षिक वित्तीय अनुमान (Annual financial estimates), कार्य-क्रम और अपने कार्यों एव कार्य-सचालन का वार्षिक प्रतिवेदन मन्त्रियो के समक्ष प्रस्तुत करें।"[1]

मन्त्रियो के नियन्त्रण के अधिकार मे, प्रशासकीय पक्ष मे तो बोर्ड के सदस्यो की नियुक्ति (Appointment) तथा पदच्युति (Dismissal) और सामान्य नीति सम्बन्धी मामलो पर निगमो को निर्देश जारी करना सम्मिलित है और वित्तीय पक्ष मे, निवेश (Investment), उधार (Borrowing) तथा लाभो के बटवारे से सम्बन्धित मामलो मे उनकी आवाज अन्तिम व निर्णायक होती है।

किसी भी विशिष्ट उद्यम पर वास्तव मे कितना मन्त्रीय नियन्त्रण लागू किया जायेगा, यह बात आशिक रूप से उद्यम के उत्तरदायित्वो की मात्रा पर, उसकी कार्यवाइयो की राजनैतिक महत्ता पर, और सरकार के साथ उसके वित्तीय सम्बन्धो पर निर्भर होगी। चूकि भिन्न-भिन्न उद्यमो के अन्तर्गत ये तीनो ही तत्व (Factors) भिन्न-भिन्न रूप मे पाये जाते है अत उन्ही के अनुसार मन्त्रीय दृष्टिकोण का भी निर्धारण होता है। स्वभावत सभावना यही है कि अपेक्षाकृत एक छोटी फैक्टरी के लिये बनाये जाने वाले निगम की अपेक्षा, यदि अन्य बातें समान हो तो, एक ऐसे विकास निगम (Development Corporation) की ओर, जिसका कार्यक्षेत्र इतना विस्तृत हो कि जिसमे सरकार की आर्थिक योजना का एक बडा क्षेत्र आ जाता हो, मन्त्रियो का अधिक ध्यान आकर्षित होगा। इसके अतिरिक्त, यह हो सकता है कि ऐसा निगम राजनैतिक विवाद का एक केन्द्र-बिन्दु बन जाय और इस विवाद को दृष्टिगत रखते हुए मन्त्री उस उद्यम को केवल सीमित मात्रा मे ही स्वाधीनता दें। फिर, विकास निगम अथवा एक नदी घाटी सत्ता (River valley authority) के अन्तर्गत, स्वभावत: ही, ऐसी प्रायोजनाओं (Projects) मे सरकारी धन लगाया जाता है जिनसे बहुत शीघ्र स्वावलम्बी बनने की आशा नही की जाती। यही कारण है कि लाभोपार्जन वाले अथवा सम-विभक्त (Even-breaking) उद्यम की अपेक्षा इनके वित्तीय मामलों मे मन्त्रियों का हस्तक्षेप अधिक दृढता के साथ होता है।

---

1 दा घा नि अधिनियम १९४८, धारा ४५, पुनर्वास वित्त निगम अधिनियम, धारा १८, वायु निगम अधिनियम, धारा ३९, औद्योगिक वित्त निगम अधिनियम, धारा ३५ इत्यादि।

मन्त्रियो पर कुछ ऐसी रोकथाम भी लगायी जानी चाहिये जिससे कि वे अपनी सत्ता का दुरुपयोग न कर सके और ऐसी रोकथाम उन पर ससद (Parliament) द्वारा लगाई जाती है। मन्त्री को, जिसे कि सरकारी निगम को निर्देश जारी करने के निश्चित अधिकार प्रदान किये जाते है, समद के प्रति भी जवावदेह होना चाहिए। इस प्रकार ससदीय नियन्त्रण आप से आप लागू होना चाहिये, परन्तु यह लागू होगा या नही, यह सदस्यो (Members) द्वारा ससद मे प्रश्न करने के अपने अधिकार पर जोर देने पर निर्भर करता है और इस बात पर निर्भर करता है कि सरकार वाद-विवाद (Debate) के लिये समय तथा अवसर देती है या नही। "सरकारी निगम को मन्त्री रूपी पिता के ही हाथो मे नही फेक देना चाहिये जब तक कि पैतृक अनुशासन की अत्यधिक मात्रा को रोकने के लिए स्नेहमही ससदीय मा (Parliamentary mother) उपलब्ध न हो।"[1]

परन्तु मन्त्रियो पर लगाया जाने वाला ससदीय नियन्त्रण इतना अधिक नही होना चाहिये जोकि उन्हे कठोर तथा सीमित नियन्त्रण लगाने को वाध्य करे तथा निगमो को अधिकार सौंपने से उन्हे रोके। भारत मे, "ससद सत्ता के हस्तातरण (Delegation of power) के विरोध का एक मुख्य दुर्ग है, जबकि ऐसे हस्तातरण की आवश्यकता है और भारतीय प्रशासन की यही सबसे गम्भीर बुराई है। अपनी सत्ता का विस्तार मे हस्तातरण करने की ससद की अनिच्छा से, जबकि ससदीय सत्ता को महत्वपूर्ण तथा सकारात्मक बनाने के लिये ऐसा हस्तान्तरण अत्यन्त आवश्यक होता है, मन्त्री (Ministers) अपने अधिकारो को सौंपने के प्रति हतोत्साहित हो जाते हैं, सचिव (Secretaries) अपने अधिकारो को सौंपने के प्रति हतोत्साहित हो जाते है और फिर प्रबन्ध-निर्देशक (Managing Directors) अपने अधिकारो को सौंपने के प्रति हतोत्साहित हो जाते है।"[2] यह एक विकृत चक्र है जिस पर रोकथाम लगाई जानी चाहिये। यह ठीक है कि मन्त्री सरकारी निगमो पर नियन्त्रण लगाये परन्तु उनका नियन्त्रण केवल सामान्य नीति सम्बन्धी मामलो तक ही सीमित रहना चाहिये। उनको निगमो के दिन प्रति-दिन के प्रशासन मे, जिनमे कि उन्हे स्वाधीनता मिलनी चाहिए, हस्तक्षेप नही करना चाहिए। कुछ क्षेत्रो मे उद्यम की ऐसी योजनायें मन्त्रियों की स्वीकृति के लिये प्रस्तुत की जानी चाहिये जिनमे कि 'लोकहित' के प्रश्न मुख्य रूप से उत्पन्न होते हैं। ऐसी योजनाओ मे अनुसधान (Research), शिक्षा (Education), प्रशिक्षण (Training), कल्याण तथा पूजी की वृद्धि व विकास के कार्यक्रम सम्मिलित किये जाते हैं। यद्यपि मन्त्रीय अधिकारो

---

1 Ernest Davies, The Development of the Public Corporations, London, 1946, P 81

2 Paul H Appleby, Re-examination of India's Administrative system with special reference to Administration of Government's Industrial and commercial enterprises, p 55

के प्रयोग करने के बारे मे सामान्य मार्ग-दर्शन सम्बन्धी बातें निगमो का निर्माण करने वाले विधान (Legislation) मे दी हुई होती हैं परन्तु स्वायत्तता (Autonomy) तथा नियन्त्रण के बीच ठीक सन्तुलन कायम रखना केवल तभी सम्भव है जबकि उपयुक्त अभिसमयो (Conventions) तथा समझदारी के विकास की परम्परा डाली जाय। इसके अतिरिक्त, मन्त्रीय अधिकारो (Ministerial powers) के दुरुपयोग को रोकने के लिये, ससद द्वारा मन्त्रियो पर नियन्त्रण लगाया जाना चाहिये परन्तु मन्त्रियो पर लगाया जाने वाला ससदीय नियन्त्रण इतना अधिक नही होना चाहिये जोकि उनको निगमो के छोटे-छोटे प्रशासनिक कार्यों मे हस्तक्षेप करने के लिये बाध्य करे। मन्त्री को अपने अधिकारो की व्याख्या व्यक्ति निरपेक्ष दृष्टि से ही करनी चाहिये तथा मण्डलो अथवा बोर्डों से परामर्श करने के पश्चात् ही उनका प्रयोग करना चाहिये। निगम के प्रति मन्त्री का रुख सहयोग का होना चाहिये, अनावश्यक आदेश होने का नही, और केवल मन्त्रियो के इस रुख पर ही इस देश मे राष्ट्रीयकरण (Nationalization) के महान् प्रयोग (Experiment) की सफलता निर्भर है। अत आवश्यकता इस बात की है कि मन्त्री के महत्वपूर्ण तथा अमहत्वपूर्ण बातो मे भेद करने की सामर्थ्य हो और अमहत्वपूर्ण बातो को स्पष्ट रूप से समझने की मानसिक क्षमता हो।

ससदीय नियन्त्रण
(Parliamentary Control)

भारत मे सरकारी उद्यमो पर मन्त्रीय नियन्त्रण का विवेचन करने के पश्चात् अब हम उन तरीको का अध्ययन करेंगे जिनके द्वारा कि ससद मन्त्रियो पर अपना नियन्त्रण लागू करती है, क्योकि ससदीय पद्धति की सरकार मे मन्त्री ससद के प्रति उत्तरदायी होते है और यह ससद ही है जिसकी ओर कि हम सरकारी उद्यमो पर अन्तिम नियन्त्रण लागू करने के लिये दृष्टिपात करते हैं। सरकारी निगम, ऐसे मामलो पर, जिनके लिये कि मन्त्रियो की जिम्मेदारी होती है, मन्त्रियो के माध्यम से समद के प्रति उत्तरदायी होते हैं।

सरकारी उद्यमो पर नियन्त्रण के लिये ससद द्वारा जो तरीके अपनाये जाते है वे वैसे ही होते हैं जैसे कि सरकार के किसी अन्य विभाग (Department) के लिये होते हैं। ससद के सदस्यो (Members of the Parliament) को सरकारी उद्यमो की समस्याओ पर वाद-विवाद करने के लिये सदन (House) के अन्दर निम्नलिखित अवसर उपलब्ध होते हैं —

(१) मन्त्रियो से प्रश्न पूँछ कर।

(२) किमी भी उद्यम पर आध घण्टे के वाद-विवाद की माग करके।

(३) मार्वजनिक महत्व के मामलो पर स्थगन प्रस्ताव (A motion for adjournment) प्रस्तुत करके।

(४) अत्यन्त आवश्यक सार्वजनिक महत्वो के मामलो पर अल्पकालीन वाद-विवाद की माग करके।

(५) अन्यन्त आवश्यक सार्वजनिक महत्व की घटनाओ पर सदन का ध्यान आकर्षित करके।

(६) किसी भी मामले पर प्रस्ताव पेश करके तथा उस पर वाद-विवाद करके।

(७) राष्ट्रपति के भाषण पर वहस करके।

(८) जाच समिति (Enquiry Committee) के प्रतिवेदन (Report) पर वहस करके, यदि कोई हो तो।

(९) निगम के कार्य-सचालन पर वहस करने का अवसर सदस्यो को उस समय भी मिलता है जबकि किसी ऐसे कानून मे सशोधन किया जाता है जिसके द्वारा कि उस निगम का निर्माण किया गया था।

(१०) वजट पर होने वाली वहस के समय।

(११) निगमो के वार्षिक प्रतिवेदनो पर भी वाद-विवाद किया जा सकता है।[1]

सरकारी निगमो पर ससदीय नियन्त्रण, प्रवर समिति की स्थापना के पक्ष मे दी जाने वाली दलील की जाच

(Parliamentary control over Public Corporation, An examination of the plea for a Select Committee

'ससद के सदस्यो को सरकारी उद्यमो के कार्यों पर वाद-विवाद के इतने अधिक अवसर प्रदान किये जाने के वावजूद अनेक सदस्य अभी तक यही अनुभव करते है कि उन्हे निगमो के मामलो पर वाद-विवाद करने, उनके कार्यों का विश्लेषण (Analysis) तथा विवेचन करने के पर्याप्त अवसर नही मिलते। सदस्यो ने अपने इस असन्तोष को अनेक वार लोकसभा मे व्यक्त किया। सदस्य यह तर्क प्रस्तुत करते हैं कि सार्वजनिक लेखा समिति (Public Accounts Committee) तथा अनुमान समिति (Estimates Committee) जैसी ससदीय समितियो (Parliamentary Committee) को शक्ति से अधिक काम मिला हुआ है और चूंकि सरकारी उद्यमो (Public enterprises) की सख्या बढ गई है तथा तेजी से बढ रही है अत इन समितियो के लिये उद्यमो की ओर समुचित ध्यान देना अव अधिकाधिक कठिन ही होगा। ससद स्वय भी इस स्थिति मे नही होती कि प्रत्येक सस्था के, अपने समक्ष आने वाले, प्रतिवेदनो (Reports) तथा वार्षिक लेखो (Annual accounts) पर

1 'ससदीय नियन्त्रण' के विस्तृत अध्ययन के लिये लेखक की 'भारत मे सरकारी उद्यम पर ससदीय नियन्त्रण' नामक पुस्तक का चौथा अध्याय देखिये।

वाद-विवाद कर सके। अत कुछ सदस्यो द्वारा यह सुझाव दिया गया है कि सरकारी उद्यमो के लिये एक पृथक् प्रवर समिति (Select committee) होनी चाहिये।

१० व ११ दिसम्बर, सन् १९५३ को लोक-सभा मे सरकारी उद्यमो पर लगाये जाने वाले ससदीय नियन्त्रण पर वाद-विवाद हुआ था। उसमे अनेक सदस्यो ने यह माग की थी कि ससद की एक प्रवर समिति की नियुक्ति की जाए जोकि सरकारी निगमो तथा उन कम्पनियो की वित्तीय कार्य-प्रणाली पर दृष्टि रखे जोकि सरकारी स्वामित्व वाले उद्योगो (Industries) तथा उद्यमो का प्रवन्ध कर रही हैं। वाद-विवाद प्रारम्भ करते हुए, स्वतन्त्र सदस्य डा० लकासुन्दरम ने कहा कि "उनका उद्देश्य यह है कि मन्त्रियो (Ministers) के हाथ मजबूत किये जायें और इससे भी अधिक यह कि · ·पिछले कुछ वर्षों मे अस्तित्व मे आने वाली सरकारी निगमो के कार्यो की जाँच पडताल करने की लोक-सभा की सामर्थ्य को सदेह की छाया से मुक्त कर दिया जाए · ·एक वार यदि ये चीजे या तो देश के कानून मे अथवा निष्पादकीय कार्रवाइयो (Executive actions) मे सम्मिलित हो जाती हैं तो अधिकारी (Officers) पूर्णतया सरकारी नियन्त्रण तथा सार्वजनिक आलोचना की पहुँच से वाहर हो जाते हैं।" उन्होने आगे कहा है कि "सार्वजनिक लेखा समिति मौजूद है परन्तु यह धन व्यय हो जाने के शायद एक या दो वर्ष वाद ही प्रकाश मे आती है और जांच पडताल करती है । वास्तव मे, सार्वजनिक लेखा समिति अथवा अनुमान समिति के पास न तो समय ही है और न अवसर ही कि वह यहाँ उत्पन्न होने वाली समस्याओ का हल ढूंढ सकें। मूलभूत स्थिति यह है कि ये समितियाँ पहले से ही अत्यधिक काम के भार से लदी हुई हैं और न तो उनको अवसर ही मिलता है और न उनके पास समय ही होता है कि वे पूर्णतया इन प्रश्नो की गहराई मे जाएँ ·। अत भारत मे आजकल इन निगमो मे से प्रत्येक ने प्रतियोगिता-विहीन एकाधिकार प्राप्त कर लिया है। प्रत्येक निगम राज्यो के अन्तर्गत एक छोटा सा राज्य वन गया है जोकि पूर्णतया अधिकारी की अधिकार सम्पन्नता पर छोड दिया गया है जोकि उनका प्रवन्ध-निर्देशक (Managing Director) या अध्यक्ष (Chairman) वना होता है। परन्तु राष्ट्रीय हित की दृष्टि से इस सम्वन्ध मे शीघ्र ही कुछ न कुछ किया ही जाना चाहिये जिससे कि (क) मन्त्री का नियन्त्रण प्रभावशाली हो जाए, और (ख) सदन (House) की सत्ता कायम रखी जाए।"

इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए, डा० लकासुन्दरम ने यह सुझाव दिया कि "सार्वजनिक लेखा समिति तथा अनुमान समिति के अलावा, आपके (अर्थात् लोक-सभा के अध्यक्ष के) निर्देशन मे एक ससदीय समिति (Parliamentary Committee) का निर्माण किया जाए, जो कि पूरे वर्ष भर कार्य करे और जिसको विशेषकर इन विभिन्न प्रकार के निगमो तथा कम्पनियो के कार्यों की देखभाल का ही काम सौंपा जाए · ·। यह समिति मन्त्रियो के हाथ मजवूत करेगी, ससद की सत्ता

(Authority) को दृढ तथा क्रियान्वित करेगी और प्रत्येक चीज मे बढकर यह कर-दाता (Tax-payer) को इस बात का आश्वासन देगी कि उसके धन का समुचित रूप से मितव्ययता के साथ उपयोग किया जा रहा है।"[1]

वित्त मन्त्री (Finance Minister) श्री डी० सी० देशमुख ने इस प्रस्ताव को स्वीकार करने मे अपनी असमर्थता प्रकट की। उन्होने कहा कि वस्तुत निगमो के ऊपर ससद के नियन्त्रण का अर्थ है मन्त्री का नियन्त्रण, और यही अर्थ होना भी चाहिये तथा इस सम्बन्ध मे जो शक्तियाँ मन्त्रियो को प्राप्त है वे पर्याप्त है। वे निर्देशको को मनोनीत कर सकते हैं जिनमे कि आमतौर पर सचिव (Secretary) अथवा सयुक्त सचिव (Joint secretary) के स्तर का, भारत सरकार का एक वित्तीय प्रतिनिधि सम्मिलित किया जाता है, और वे (मन्त्री) निर्देश (Directives) जारी कर सकते हैं। फिर, एक विभाग (Department) तथा एक निगम के नियन्त्रण के बीच कुछ न कुछ तो अन्तर होना ही चाहिये। सार्वजनिक धन को अच्छी प्रकार से खर्च किया जा सकता है इस बात मे निश्चित होने की वाञ्छनीयता (Desirability) तथा लाल फीताशाही (Red tapism) को समाप्त करने की वाञ्छनीयता के बीच एक सतुलन कायम रखा जाना चाहिये। उन्होने कहा कि जहाँ तक प्रवर समिति का सम्बन्ध है, "क्या ससद के लिये यह आवश्यक है कि दिन-प्रति-दिन अथवा प्रत्येक अधिवेशन (Session) मे उसको इस बात से सूचित रखा जाए कि कोई विशिष्ट निगम किस प्रकार कार्य कर रही है? क्या यह अच्छा नही होगा कि मन्त्रि-मण्डल को इन निगमो का प्रबन्ध करने के योग्य बना दिया जाये और तब उससे (मन्त्रि-मण्डल से) निगमो की स्थिति के सम्बन्ध मे जानकारी प्राप्त की जाए और पूछा जाए कि क्या किया? यह एक विचारणीय बात है और इससे पहले कि इस सम्बन्ध मे कोई भी निर्णय किया जाये, ससद को यह बात दृष्टिगत रखनी होगी।"[2] उन्होने सदन से कहा कि वह प्रतीक्षा करे और देखे कि व्यवहार मे उनके सामने क्या-क्या कठिनाई आती है तथा यह चेतावनी दी कि यदि इस मामले मे बहुत जल्दबाजी की गई तो "उसमे सदा खतरा यही है कि हम कही नहाने के पानी के साथ बच्चे को भी न फेंक दें।"

उन्होने ठीक ही कहा कि इन तथा इसी प्रकार के अन्य मामलो पर ससदीय नियन्त्रण का अर्थ अनिवार्यत कार्यपालिका (Executive) के नियन्त्रण से ही है और यह कार्यपालिका स्वय ससद द्वारा नियन्त्रित की जाती है। परन्तु सदस्यो ने यह विचार व्यक्त किया कि मन्त्री स्वय अपने नियन्त्रण के विषय तथा उसकी सीमाओ से परिचित नही होते और यह बात अनेक अवसरो पर सदन के सामने स्पष्ट हो चुकी है। एक सदस्य ने कहा कि "बहुधा हम मन्त्रियो को मण्डलो (Boards) के पक्ष का इसलिये समर्थन करते हुये देखते है क्योकि वे समझते हैं कि

1 Lok Sabha Debates, dated December 10, 1953 Columns 1905, 1918
2 Lok Sabha Debates, Dec 10, 1953, Column 1928

यह स्वय उन्ही की आलोचना की जा रही है, जबकि वस्तुस्थिति यह होती है कि ससद मण्डल अथवा बोर्ड की आलोचना करती है और वह इसलिये कि मण्डल समुचित रूप से अपने कार्यों को सम्पन्न नही कर रहा होता है। निश्चय ही, बड़े उद्योगो की प्रगति तथा कार्यकुशलता पर वाद-विवाद करने का यह सर्वश्रेष्ठ तरीका नही है।"[1]

अप्रैल १९५८ मे, काग्रेस दल के नेता के रूप मे, प्रधान मन्त्री (Prime Minister) ने श्री कृष्णा मेनन की अध्यक्षता मे काग्रेस दल की एक उप-समिति (Sub-committee) की स्थापना की थी। इस उप-समिति का कार्य था कि यह कानून द्वारा निर्मित निगमो तथा सरकारी स्वामित्व वाले अन्य निकायो (Bodies) पर ससदीय पर्यवेक्षण (Parliamentary supervision) के प्रश्न का अध्ययन करे और अपना प्रतिवेदन दे। इस उप-समिति ने यह प्रस्ताव किया कि सरकारी उद्यमो पर नियन्त्रण स्थापित करने के लिए ससद की एक प्रवर-समिति की स्थापना की जाये। यह प्रवर-समिति सार्वजनिक लेखा समिति तथा अनुमान समिति से उन कार्यों को ले लगी, जिन्हे कि वे सरकारी उद्यमो के सम्बन्ध मे अब सम्पन्न करती हैं।

इस प्रतिवेदन (Report) पर टीका-टिप्पणी करते हुए अग्रेजी के प्रमुख दैनिक समाचार-पत्र 'हिन्दुस्तान टाइम्स' (The Hindustan Times) ने यह मत प्रकट किया कि सरकारी स्वामित्व वाले उद्यमो पर लागू होने वाले ससदीय नियन्त्रण की व्याख्या ही गलत ढग से की गई है अथवा अस्पष्ट रूप से की गई है। सरकारी क्षेत्र (Public sector) के उद्यमो के प्रबन्ध पर होने वाले सभी वाद-विवादो मे इस बात पर तो सभी एकमत रहे हैं कि ससद इन उद्यमो पर कुछ मात्रा मे अन्तिम नियन्त्रण रखे, यद्यपि यह हो सकता है कि उस नियन्त्रण की मात्रा उद्यम की प्रकृति के अनुसार भिन्न हो तथापि समस्या यह है कि उस नियन्त्रण को किस प्रकार प्रभावशाली बनाया जाये जबकि ससद के पास समय का अभाव तो होता ही है, इसके अतिरिक्त एक असुविधा यह होती है कि इसके अधिकाश सदस्य (M P) ग्रामीण निर्वाचन-क्षेत्रो (Rural constituencies) से चुनकर आते हैं अत वे अधिक निपुण तथा विशेषज्ञ नहीं होते, और इस पर भी इनकी इच्छा पर विस्तृत एव जटिल उद्यमो पर आवश्यकता चौकसी रखने की होती है। प्रस्तावित तृतीय समिति (अर्थात् प्रवर-समिति) इस समस्या को हल कर सकती है। इसके सदस्य इन उद्यमो की कार्यविधियो से समय-समय पर परिचित ही नही रहेंगे और ससद मे इनके बारे मे पूर्ण जानकारी तथा अधिकार के साथ बोलने मे ही समर्थ नहीं हो सकेंगे, बल्कि वे इस स्थिति मे भी होंगे कि छोटी-छोटी बातो से परेशान हुए बिना ही उद्यमो की निकटस्थ जाच पडताल कर सकें।[2]

---

1 Dr Krishanaswami's speech, Lok Sabha Debate, Dec 11, 1953 Columns 1959-1964

2 हिन्दुस्तान टाइम्स, जून १०, सन् १९५९।

सरकारी उद्यमो की देखभाल करने के लिए एक प्रवर-समिति (Select Committee) की स्थापना का विचार इगलैंड मे भी लोकप्रिय हो गया है। इगलैंड मे एक समिति की नियुक्ति की गई थी जिसका कार्य ऐसे उपायो पर विचार करना कि जिनके द्वारा लोक-सदन (House of Commons) को राष्ट्रीयकरण किये हुए उद्योगो के कार्यों मे परिचित रखा जा सके, तथा इस बारे मे अपना प्रतिवेदन (Report) प्रस्तुत करना था कि सम्बन्धित कानूनो मे ससद द्वारा की गई व्यवस्थाओ को देखते हुए, इन उपायो मे क्या-क्या परिवर्तन करने वाञ्छनीय हो सकते है। इस समिति का प्रतिवेदन २३ जुलाई सन् १९५३ को प्रकाशित किया गया था। इसने एक प्रवर-समिति की स्थापना की भी सिफारिश की। समिति ने निम्नलिखित सिफारिशे की —

"(अ) राष्ट्रीयकरण किये हुए उद्योगो (Nationalised industries) की जाच पडताल तथा समय-समय पर प्रतिवेदन देने के लिये, स्थायी आदेश (Standing order) द्वारा लोक-सदन की एक समिति की नियुक्ति की जानी चाहिये जिसको कि व्यक्तियो, कागजातो तथा अभिलेखो (Records) को मगाने तथा उप-समितियो (Sub-committee) की स्थापना करने के अधिकार प्राप्त हो।

(आ) समिति को, सविधि (Statute) द्वारा स्थापित राष्ट्रीयकरण किये हुए ऐसे उद्योगो के प्रकाशित प्रतिवेदनो एव लेखो (Accounts) की ओर तथा उनकी सामान्य नीति व क्रियाओ के सम्बन्ध मे और सूचनायें प्राप्त करने की ओर अपना ध्यान आकर्षित करना चाहिये, जिन उद्योगो के नियन्त्रण-मण्डल (Controlling Boards) पूर्णतया सरकार के मन्त्रियो द्वारा मनोनीत (Nominate) किये जाते है और जिनकी वार्षिक आय पूर्णरूप से ससद द्वारा प्रदत्त अथवा राजकोप (Exchequer) द्वारा प्रदान किये गये धन से ही नही प्राप्त की जाती।

(इ) समिति का कार्य निगमो (Corporations) के उद्देश्यो, क्रियाओ एव उनकी समस्याओ से ससद को सूचित रखना ही होना चाहिये, उनके कार्यों का नियन्त्रण करना नही।

(ई) समिति के स्टाफ अथवा कर्मचारी-वर्ग मे नियन्त्रक तथा महालेखा-परीक्षक (Comptroller and Auditor General) के स्तर का एक पदाधिकारी (Officer) होना चाहिये जोकि लोक-सदन का उच्च प्रशासकीय अनुभव वाला एक पदाधिकारी हो , कम से कम एक व्यावसायिक लेखाकार (Accountant) तथा अन्य ऐसे कर्मचारी होने चाहिये जिनकी आवश्यकता हो।

(उ) निगमो के परिनियत लेखा-परीक्षक (Statutory auditors) अपने वार्षिक प्रतिवेदनो मे, उन सूचनाओ के साथ-साथ जोकि वे अब देते है, ऐसी सूचनायें भी देंगे जोकि समिति के काम की हो और ससद के लिये लाभ की हो।

प्रवर समिति (Select committee) की स्थापना के पक्ष तथा विपक्ष मे ससदीय समिति (Parliamentary Committee) के सम्मुख जो प्रमाण प्रस्तुत

किये गये वे बडे काम के हैं। अब हम सबसे पहले उन तर्कों पर विचार करते है जो कि ससदीय समिति के सम्मुख प्रवर समिति की स्थापना के पक्ष मे प्रस्तुत किये गये।

समिति के पक्ष में तर्क :

(१) मि० मोलसन (*Mr Molson*) ने, सरकारी रूप मे नही, व्यक्तिगत रूप मे वोलते हुए, समिति के पक्ष मे यह विचार प्रकट किया कि "भूतकाल मे लोक-सदन को जब भी किसी विशेष समस्या का सामना करना पडा, तभी सदन ने हमेशा एक समिति की नियुक्ति को ही समस्या का सुविधाजनक हल समझा है। मेरे विचार से इसके तीन कारण है। प्रथम, तो इसलिए कि ससद के थोडे से सदस्य समस्या का गहराई से अध्ययन कर सकते हैं, दूसरे, इसलिए कि गवाहो (Witnesses) से पूछताछ तथा कागजो व नक्शो की खोजबीन की जा सकती है, और तीसरे, इसलिए कि समिति के एकान्त कक्ष मे राजनैतिक पक्षपात से अधिक मुक्त रहा जा सकता है" । मेरे विचार से उस समिति को, जिसकी कि मै वकालत कर रहा हूँ, उन समस्याओ पर प्रकाश डालना चाहिये जिन्हे कि नीति की गहन समस्यायें कहा जा सकता है। मेरा विश्वास है कि यह तो महत्वपूर्ण है ही कि छोटी-छोटी विस्तृत बातो के सम्वन्ध मे दिन-प्रतिदिन के हस्तक्षेप की उपेक्षा की जाये परन्तु मेरे विचार से इस वात की भी वडी आवश्यकता है कि ससद को समय-समय पर स्थिति की जानकारी प्राप्त करने का अवसर मिलते रहना चाहिए।

Lord Hurco (२) *mb* ने कहा कि "इन वडे निगमो मे से किसी भी एक के कार्यों के वारे मे अधिक जानकारी प्राप्त करने की ससद की अत्यन्त न्यायोचित माँग वाद-विवाद (Debate) की अपेक्षा इस प्रकार की समिति की स्थापना द्वारा अधिक सन्तुष्ट की जा सकेगी। ऐसी समिति बहुत कुछ एक स्थायी समिति (Standing committee) की प्रकृति की होगी जिससे कि कर्मचारी-वर्ग अर्थात् सदस्यो के उस वर्ग की निरन्तरता बनी रहे जो कि किसी खास क्रिया मे लगातार विशिष्ट रुचि केवल इस कारण ही नही लेता क्योकि उसका राष्ट्रीयकरण कर दिया गया है वल्कि उससे भी अधिक इसलिए क्योकि समिति को अपने कार्य मे वास्तविक रुचि होती है।" उन्होने आगे कहा कि "इस प्रकार की समिति की स्थापना का अर्थ होगा कि एक बडी सख्या मे ससद के सदस्यो को ऐसा अवसर प्राप्त हो सकेगा जिससे कि वे स्वय को सन्तुष्ट कर सकें और आलोचना व सार्वजनिक भाषण के द्वारा नही वल्कि सगठन (उद्यम) को सुझाव देकर ऐसे स्थलो की खोज कर सकें जहां कि उनके मतानुसार स्थिति गलत चल रही है और किसी भी मूल्य पर उसकी देखभाल की ही जानी चाहिये।

समिति के विपक्ष मे तर्क :

ससदीय समिति के प्रतिवेदन मे प्रवर समिति के विरुद्ध अग्रलिखित तर्क प्रस्तुत किये गये—

(१) "यह बात हमारे सामने दृढतापूर्वक कही गई कि राष्ट्रीयकरण किये गये उद्योगो की जाँच के लिए एक स्थायी समिति बनाने का प्रस्ताव केवल उन अधिनियमो (Acts) के उद्देश्य एव भावना के ही विपरीत नही है जिनके द्वारा कि उद्योगो का राष्ट्रीयकरण किया गया था, अपितु ब्रिटिश सविधान (British Constitution) के सामान्य प्रतिरूप (Pattern) के भी विरुद्ध तथा उसके प्रस्थापित तरीको मे किया जाने वाला एक नवीन परिवर्तन है।

(२) श्री हरबर्ट मौरीसन ने भी इसी प्रकार का तर्क दिया। उन्होने एक और अधिक मौलिक आपत्ति (Fundamental objection) उठाई। जब उनसे कहा गया कि वास्तव मे प्रवर समिति (Select committee) के सम्बन्ध मे आपकी आपत्ति इसकी सम्भावित प्रभावहीनता के बारे मे नही है बल्कि इस सम्बन्ध मे भी है कि ससद का यह कार्य ही नही है कि वह कुशलता के नाम पर उद्यम के दिन-प्रति-दिन के मामलो मे हस्तक्षेप करे ? उन्होने उत्तर दिया कि मैं ससद के लिए अपने प्राण दे सकता हूँ—मेरे मन मे इसके प्रति अगाध श्रद्धा व प्रेम है—परन्तु मैं नही समझता कि यह एक ऐसी सस्था है जिसे कि आप एक जटिल औद्योगिक सस्थान के वास्तविक प्रबन्ध मे हेर-फेर करने का कार्य सौंप सकते हैं।

(३) "प्रस्ताव के विरोध मे एक तर्क यह दिया गया था कि समिति की स्थापना से सरकारी निगमो की क्रियाओ के प्रबन्ध एव निर्देशन की जिम्मेदारी का सम्पूर्ण प्रश्न ही उठ खडा होगा। यदि एक प्रवर समिति (Select committee) निरन्तर ही निगम की नीति तथा क्रियाओ की जाँच पडताल करती रही तो निश्चय ही उद्योग मे इस बारे मे अनिश्चितता उत्पन्न हो जायेगी कि अन्तिम निर्णय किसके द्वारा दिये जायें और इससे यह हो सकता है कि उत्तरदायिता (Accountability) अधिक नही, बल्कि और कम सुरक्षित हो जाये। जैसा कि लार्ड रीथ ने उस समय कहा, जबकि प्रस्ताव उनके सामने रखा गया, कि "सरकारी निगम किसके लिये कार्य करेगा ?" उन्होने यह विचार व्यक्त किया कि एक प्रवर समिति, यह हो सकता है कि प्रारम्भ मे एक सेवाकारी सन्देशवाहक सस्था के रूप मे स्थापित की जाये, पर अन्त मे यह एक जाँच पडताल तथा नियन्त्रण करने वाली सस्था बन सकती है।

(४) "तथापि, प्रस्ताव के विरोध मे जो प्रमुख तर्क प्रस्तुत किया गया, वह यह था कि समिति राष्ट्रीयकरण किये गये उद्योगो के कार्य सचालन मे बाधा उत्पन्न करेगी और उनकी प्रेरणा अथवा पहल करने की क्षमता (Initiative) को ही नष्ट कर देगी। मि० हरबर्ट मौरीसन *(Herbert Morrison)* ने कहा कि "समिति की स्थापना से ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जायेगी जिससे वे सामान्य व्यवसायी शक्तिहीन हो जायेगे जो कि मुख्य सरकारी स्वामित्व वाले उद्योगो मे कार्य कर रहे हैं। यह उनको कमजोर तो बनायेगी ही, उनमे लाल फीताशाही तथा साहसहीनता उत्पन्न कर देगी और उनकी विचारधारा तथा कार्यप्रणाली को सिविल सेवा के परम्परागत ढाँचे के अनुरूप बना देगी जोकि सरकारी विभागो के लिए ठीक हो सकता है परन्तु

सरकारी निगमो के मामले मे ऐसा होना ठीक नही है और यही कारण है कि ससद ने सरकारी निगमो पर आशिक रूप से ही निर्णय किया ।" लार्ड रीथ (*Lord Reith*) ने भी एक भयावह दृश्य के रूप मे ही इस पर विचार प्रकट किया कि "जितना अधिक मै यह अनुभव करूगा कि कोई व्यक्ति हर समय मेरे कार्य पर निगाह रख रहा है और बाद मे किसी भी समय इन कार्यो की जाँच-पडताल कर सकता है, तो उतना ही कम निर्णय करने को मैं उत्सुक होऊगा तथा मैं उतना ही कम निर्णय करने वाला हो जाऊगा और निश्चित रूप से उतने ही कम अच्छे परिणाम सामने आयेगे ।"

इस बात का पता लगाना बडा कठिन है कि पूर्णतया सरकारी उद्यमो से ही व्यवहार करने वाली प्रवर समिति (Select committee) अथवा ससद की विभिन्न समितियो की नियुक्ति करना बुद्धिमत्तापूर्ण अथवा उचित होगी या नही । समस्त उपलब्ध प्रमाणो से यही प्रकट होता है कि इससे उद्यम की जोखिम (Risk) उठाने की प्रेरणा समाप्त हो जायेगी क्योकि ससद की प्रवर समिति के सामने जांच-पडताल किये जाने की सम्भावना मण्डल के सदस्यो को ऐसा बना देगी कि वह यही सोचते रहेगे कि "क्या मुझे यह कार्य करने का साहस करना चाहिये ?" और यही भावना सरकारी उद्यमो के कार्य-सचालन मे बाधक होती है क्योकि इसमे समस्त प्रेरणा अथवा पहल करने की क्षमता (Initiative) समाप्त हो जाती है । वास्तविक समस्या ससद के लिए अधिक जानकारी प्राप्त करने की नही है बल्कि इस बात का पता लगाने की है जो जानकारी पहले से ही उपलब्ध है ससद उसका अधिक अच्छा उपयोग किस प्रकार कर सकती है । यदि उन लोगो की, जोकि सरकारी उद्यमो का प्रबन्ध करते है, सापेक्षिक स्वतन्त्रता तथा पहल करने की क्षमता को बनाये रखना है, जैसा कि उनके सफल कार्य-सचालन के लिए होना आवश्यक भी है, तो ससद को नियन्त्रण के ऐसे नये-नये साधनो की योजना नही बनानी चाहिये जिनसे कि उनके मन मे भय तथा अविश्वास उत्पन्न हो जाये । ससदीय नियन्त्रण छिद्रान्वेषण (Nagging) अथवा चेतावनियो के द्वारा स्थापित नही किया जा सकता ।

भारतीय ससद (Indian parliament) को वर्तमान मे जो अवसर प्रदान किये जाते हैं वे सरकारी उद्यमो (State enterprises) पर नियन्त्रण रखने के लिये पर्याप्त हैं । ससद का कार्य है सामान्य नियन्त्रण तथा पर्यवेक्षण (Supervision) करना और वर्तमान मे उसे जो अवसर प्रदान किये गये हैं उनमे इन कार्यो को सम्पन्न करने की पर्याप्त गुजाइश है । ऐसे अनेक तरीके अपनाये जा सकते हैं जिनके द्वारा कि निगमो की प्रेरणा एव स्वतन्त्रता को समाप्त किये बिना ही प्रभावशाली ससदीय नियन्त्रण कायम रखा जा सकता है । मन्त्रियो को चाहिये कि वे ससद के सदस्यो को अधिकाधिक अपने विश्वास मे लें । जहाँ प्रश्न पूछने की आज्ञा न हो वहाँ निगमो के कार्यो के बारे मे मन्त्रियो द्वारा वक्तव्य दिये जाने की व्यवस्था की जानी चाहिए । इस बात की भी व्यवस्था की जानी चाहिए कि सम्बन्धित निगम उन

पृथक-पृथक पूछताछो एव वातो (Enquiries) की ओर उचित ध्यान दे जो कि ससद के सदस्यो द्वारा उनको सम्बोधित करके कही जाये। निगमो के वार्षिक प्रतिवेदन पर्याप्त सूचनाए प्रदान करने वाले तथा इस प्रकार लिखे होने चाहिये कि जो उनके कार्यों का एक सुग्राह्य चित्र प्रस्तुत करें। ये सब बाते ससदीय नियन्त्रण को अधिक प्रभावशाली बना देंगी किन्तु प्रवर समिति की स्थापना से हानिकारक परिणाम सामने आ सकते है। इसके अतिरिक्त, राष्ट्रीयकरण (Nationalization) अभी तक एक दलीय मामला है। अन्य अनेक दल इसका समर्थन नही करते। अत समिति के सदस्य, जोकि मण्डल (Board) के सदस्यो का निरीक्षण करेंगे, अपनी जाँच-पडतालो को राष्ट्रीयकरण की निन्दा अथवा प्रशसा का साधन बना सकते है।

ससद को सरकारी उद्यमो पर विस्तृत नियन्त्रण नही लागू करना है, अत प्रवर समिति की कोई आवश्यकता नही है क्योकि इसकी स्थापना से उद्यमो मे सबसे पहले अपनी सुरक्षा की भावना का विकास होगा और उनकी पहल करने की क्षमता तथा जोखिम उठाने की इच्छा, जोकि निगम प्रकृति के सगठन के प्रमुख लाभ माने जाते है, समाप्त हो जायेगी। हरबर्ट मोरीसन *(Herbert Morrison)* ने ठीक ही कहा कि जो लोग विस्तृत ससदीय उत्तरदायिता (Parliamentary accountability) चाहते है उन्हे सरकारी विभागीय प्रबन्ध (Departmental Management) का ही विस्तार करना चाहिए और जो इस बात का समर्थन करते है कि सरकारी स्वामित्व वाला उद्योग सरकारी निगम के रूप मे कार्य करे, उन्हे उसके परिणामो का सामना करने को प्रस्तुत रहना चाहिए अर्थात् उन्हे विस्तृत ससदीय उत्तरदायिता को कुछ सीमाबद्ध करने के लिए तैयार रहना चाहिए।

भारत मे राष्ट्रीयकरण अभी बाल्यावस्था मे ही है और सरकारी उद्यमो के लिये प्रवर समितियो का निर्माण करके बाल्यावस्था की सी गलती नही की जानी चाहिए। इसके अतिरिक्त, भारतीय ससद अपने कर्त्तव्यो के बारे मे अब तक यथेष्ट रूप मे सावधान तथा सजग रही है। जब दामोदर घाटी निगम (D V C) वर्षो तक मुख्य इजीनियर के बिना कार्य करता रहा तो सदस्यो ने यह प्रश्न उठाया और सन् १९५३ मे इसके कार्यो के सम्बन्ध मे जाँच-पडताले की गई। औद्योगिक वित्त निगम (I F C) के कार्यों के विषय मे जब व्यापक सदेह फैला हुआ था तो सदस्यो ने यह मामला ससद मे उठाया और जाँच समिति की नियुक्ति की गई। जीवन बीमा निगम (L I C) के धन को जब अनुचित रूप से मूंदडा फर्मों मे निवेश (Invest) किया गया तो इस सम्बन्ध मे ससद मे प्रश्न उठाये गये और एक व्यक्ति के जाँच आयोग (Inquiry Commission) की नियुक्ति की गई। ससद ने अभी तक किसी भी ऐसे बडे मामले को, जिसका कि सामना किया जाना चाहिये था, यू ही नही छोडा है और यही ससद का कर्तव्य भी है।

सार्वजनिक लेखा समिति (P A C) तथा अनुमान समिति के अत्यधिक कार्य-भार से लदे रहने की कठिनाई को दूर करने के लिए यह सुझाव दिया जाता है

सरकारी निगमो के सामने से ऐसा होना ठीक नही है और यही कारण है कि ससद ने सरकारी निगमो पर आंशिक रूप से ही निर्णय किया ।" लार्ड रीथ (*Lord Reith*) ने भी एक भयावह दृश्य के रूप मे ही उस पर विचार प्रकट किया कि "जितना अधिक मैं यह अनुभव करूंगा कि कोई व्यक्ति हर समय मेरे कार्य पर निगाह रख रहा है और बाद मे किसी भी समय इन कार्यो की जांच-पड़ताल कर सकता है, तो उतना ही कम निर्णय करने को मैं उत्सुक होऊंगा तथा मैं उतना ही कम निर्णय करने वाला हो जाऊंगा और निश्चित रूप से उतने ही कम अच्छे परिणाम सामने आयेंगे ।"

इस बात का पता लगाना बड़ा कठिन है कि पूर्णतया सरकारी उद्यमो से ही व्यवहार करने वाली प्रवर समिति (Select committee) अथवा ससद की विभिन्न समितियो की नियुक्ति करना बुद्धिमत्तापूर्ण अथवा उचित होगी या नही । समस्त उपलब्ध प्रमाणो से यही प्रकट होता है कि इससे उद्यम की जोखिम (Risk) उठाने की प्रेरणा समाप्त हो जायेगी क्योकि ससद की प्रवर समिति के सामने जांच-पडताल किये जाने की सम्भावना मण्डल के सदस्यो को ऐसा बना देगी कि वह यही सोचते रहेगे कि "क्या मुझे यह कार्य करने का साहस करना चाहिये ?" और यही भावना सरकारी उद्यमो के कार्य-सचालन मे बाधक होती है क्योकि इसमे समस्त प्रेरणा अथवा पहल करने की क्षमता (Initiative) समाप्त हो जाती है । वास्तविक समस्या ससद के लिए अधिक जानकारी प्राप्त करने की नही है बल्कि इस बात का पता लगाने की है जो जानकारी पहले से ही उपलब्ध है ससद उसका अधिक अच्छा उपयोग किस प्रकार कर सकती है । यदि उन लोगो की, जोकि सरकारी उद्यमो का प्रबन्ध करते हैं, सापेक्षिक स्वतन्त्रता तथा पहल करने की क्षमता को बनाये रखना है, जैसा कि उनके सफल कार्य-सचालन के लिए होना आवश्यक भी है, तो ससद को नियन्त्रण के ऐसे नये-नये साधनो की योजना नही बनानी चाहिये जिनसे कि उनके मन मे भय तथा अविश्वास उत्पन्न हो जाये । ससदीय नियन्त्रण छिद्रान्वेषण (Nagging) अथवा चेतावनियो के द्वारा स्थापित नही किया जा सकता ।

भारतीय ससद (Indian parliament) को वर्तमान मे जो अवसर प्रदान किये जाते हैं वे सरकारी उद्यमो (State enterprises) पर नियन्त्रण रखने के लिये पर्याप्त हैं । ससद का कार्य है सामान्य नियन्त्रण तथा पर्यवेक्षण (Supervision) करना और वर्तमान मे उसे जो अवसर प्रदान किये गये हैं उनमे इन कार्यों को सम्पन्न करने की पर्याप्त गुजाइश है । ऐसे अनेक तरीके अपनाये जा सकते हैं जिनके द्वारा कि निगमो की प्रेरणा एव स्वतन्त्रता को समाप्त किये बिना ही प्रभावशाली ससदीय नियन्त्रण कायम रखा जा सकता है । मन्त्रियो को चाहिये कि वे ससद के सदस्यो को अधिकाधिक अपने विश्वास मे लें । जहाँ प्रश्न पूछने की आज्ञा न हो वहाँ निगमो के कार्यों के बारे मे मन्त्रियो द्वारा वक्तव्य दिये जाने की व्यवस्था की जाने चाहिए । इस बात की भी व्यवस्था की जानी चाहिए कि सम्बन्धित निगम उन

पृथक-पृथक पूछताछो एव बातो (Enquiries) की ओर उचित ध्यान दे जो कि ससद के सदस्यो द्वारा उनको सम्बोधित करके कही जाये। निगमो के वार्षिक प्रतिवेदन पर्याप्त सूचनाए् प्रदान करने वाले तथा इस प्रकार लिखे होने चाहिये कि जो उनके कार्यों का एक सुग्राह्य चित्र प्रस्तुत करें। ये सब बाते ससदीय नियन्त्रण को अधिक प्रभावशाली बना देंगी किन्तु प्रवर समिति की स्थापना से हानिकारक परिणाम सामने आ सकते है। इसके अतिरिक्त, राष्ट्रीयकरण (Nationalization) अभी तक एक दलीय मामला है। अन्य अनेक दल इसका समर्थन नही करते। अत समिति के सदस्य, जोकि मण्डल (Board) के सदस्यो का निरीक्षण करेंगे, अपनी जाँच-पडतालो को राष्ट्रीयकरण की निन्दा अथवा प्रशसा का साधन बना सकते है।

ससद को सरकारी उद्यमो पर विस्तृत नियन्त्रण नही लागू करना है, अत प्रवर समिति की कोई आवश्यकता नही है क्योकि इसकी स्थापना से उद्यमो मे सबसे पहले अपनी सुरक्षा की भावना का विकास होगा और उनकी पहल करने की क्षमता तथा जोखिम उठाने की इच्छा, जोकि निगम पद्धति के सगठन के प्रमुख लाभ माने जाते है, समाप्त हो जायेगी। हरबर्ट मोरीसन *(Herbert Morrison)* ने ठीक ही कहा कि जो लोग विस्तृत ससदीय उत्तरदायिता (Parliamentary accountability) चाहते है उन्हे सरकारी विभागीय प्रबन्ध (Departmental Management) का ही विस्तार करना चाहिए और जो इस बात का समर्थन करते है कि सरकारी स्वामित्व वाला उद्योग सरकारी निगम के रूप मे कार्य करे, उन्हे इसके परिणामो का सामना करने को प्रस्तुत रहना चाहिए अर्थात् उन्हे विस्तृत ससदीय उत्तरदायिता को कुछ सीमाबद्ध करने के लिए तैयार रहना चाहिए।

भारत मे राष्ट्रीयकरण अभी बाल्यावस्था मे ही है और सरकारी उद्यमो के लिये प्रवर समितियो का निर्माण करके बाल्यावस्था की सी गलती नही की जानी चाहिए। इसके अतिरिक्त, भारतीय ससद अपने कर्त्तव्यो के बारे मे अब तक यथेष्ट रूप मे सावधान तथा सजग रही है। जब दामोदर घाटी निगम (D V C) वर्षो तक मुख्य इजीनियर के बिना कार्य करता रहा तो सदस्यो ने यह प्रश्न उठाया और सन् १९५३ मे इसके कार्यो के सम्बन्ध मे जाँच-पडताले की गई। औद्योगिक वित्त निगम (I F C) के कार्यों के विषय मे जब व्यापक सदेह फैला हुआ था तो सदस्यो ने यह मामला ससद मे उठाया और जाँच समिति की नियुक्ति की गई। जीवन बीमा निगम (L I C) के धन को जब अनुचित रूप मे मूँदडा फर्मों मे निवेश (Invest) किया गया तो इस सम्बन्ध मे ससद मे प्रश्न उठाये गये और एक व्यक्ति के जाँच आयोग (Inquiry Commission) की नियुक्ति की गई। ससद ने अभी तक किसी भी ऐसे बडे मामले को, जिसका कि सामना किया जाना चाहिये था, यू ही नही छोडा है और यही ससद का कर्तव्य भी है।

सार्वजनिक लेखा समिति (P A C) तथा अनुमान समिति के अत्यधिक कार्य-भार से लदे रहने की कठिनाई को दूर करने के लिए यह सुझाव दिया जाता है

कि उप-समितियो (Sub-committee) की स्थापना के तरीके को कार्यान्वित करना लाभदायक हो सकता है। जहाँ तक ससद के पास समय की कमी का प्रश्न है, सरकारी उद्यमो से सम्बन्धित मामलो पर ससद द्वारा विचार करने के लिए पृथक् दिन निर्धारित किये जा सकते हैं। इस प्रकार, सरकारी उद्यमो मे व्यवहार करने के लिए एक पृथक् प्रवर समिति की स्थापना के पक्ष मे कहने को वहुत कम ही रह जाता है।

सरकारी निगमो के साथ सरकार का वास्तविक सम्बन्ध
(Actual relationship of Government with the Public Corporations) :

इस तथ्य से तो इन्कार नही किया जा सकता कि एक सरकारी निगम की सफलता के लिए स्वायत्तता (Autonomy) अनिवार्य होती है, परन्तु (जैसा कि अन्य स्थान पर किया गया है)[1], भारत मे सरकारी निगमो को केवल नाम मात्र की ही स्वायत्तता प्राप्त है और असलियत यह है कि उनके साथ सरकारी विभागो (Government departments) जैसा कि व्यवहार किया जाता है। प्रबन्ध (Management) के निगम-स्वरूप को अपनाने का उद्देश्य यह था कि इन उद्यमो को कार्य-सचालन मे लोचशीलता प्रदान की जाए और उनको उन नियमो तथा विनियमो (Rules and regulations) के लागू होने से मुक्त रखा जाए, जो कि प्रशासन की सामान्य क्रियाओ के लिए बनाये जाते हैं। यह उद्देश्य तब से तो वहुत कुछ नष्ट सा ही हो गया है जब से कि उद्यमो का नियन्त्रण उन स्थायी सिविल अधिकारियो के हाथो मे दे दिया गया है जो कि निर्देशक-मण्डलो (Boards of Directors) के लिए मनोनीत (Nominate) किये जाते हैं। प्रथम लोकसभा की अनुमान समिति (Estimates Committee) ने अपने सोलहवें प्रतिवेदन मे यह विचार व्यक्त किया "" ....समिति ने यह देखा है कि जहाँ तक इन उद्यमो तथा मन्त्रालय (Ministry) के बीच सम्बन्धो की वात है, उद्यमो के साथ उसी प्रकार का व्यवहार किया जाता है जिस प्रकार कि सरकार के विभागो (Departments) तथा कार्यालयो (Offices) के साथ। उनका नियन्त्रण तथा निरीक्षण सचिवालय (Secretariat) द्वारा किया जाता है। इस प्रकार सरकारी उद्यम मत्रालयो के उपासग (Adjuncts) मात्र हो गये हैं और उनके साथ न्यूनाधिक रूप मे उसी प्रकार का व्यवहार किया जाता है जैसा कि किसी भी अधीनस्थ सगठन अथवा कार्यालय के साथ किया जाता है। समिति इस प्रवृत्ति पर दुख प्रकट करती है जिसके कारण कि उद्यमो की उत्पादन क्रिया पर हानिकारक प्रभाव पडा है क्योंकि उद्यम उस सब सामान्य लालफीताशाही तथा कार्य-प्रणाली सम्बन्धी देरियो के शिकार हो गये जो कि एक सरकारी विभाग मे आमतौर पर पाई जाती हैं और उत्पादन (Production) पर जिनका गम्भीर अनुवर्ती (Consequential) प्रभाव पडा है।"[2] इसी प्रकार की भाषा मे द्वितीय लोकसभा की अनुमान

---

1 देखिये "प्रवन्धक के स्वरूप"।

2 अनुमान समिति, १६ वा प्रतिवेदन, १९५४–५५, पृष्ठ ५

समिति ने जहाजी निगमों (Shipping corporations) के सम्बन्ध में प्रस्तुत किये गये अपने अड़तीसवें प्रतिवेदन में यह मत व्यक्त किया कि "निगमों का प्रबन्ध करने के लिये सरकार के वरिष्ठ अधिकारियों (Senior officers) की नियुक्ति होने के कारण, निगमों के साथ सरकारी विभागों के ही विस्तार एवं अंगों (Parts) के रूप में व्यवहार किया जाता था उन्हें वाणिज्यिक (Commercial) पद्धति के अनुसार कार्य करने की अनुमति नहीं थी समिति को यह भी पता चला कि सरकारी क्षेत्र (Public sector) के निगमों को कुछ ऐसे प्रतिबन्धों के आधीन कार्य करना पड़ता था जो कि गैर-सरकारी क्षेत्र (Private sector) के निगमों पर लागू नहीं होते थे।" एक ऐसा प्रतिबन्ध (Restriction), जिसका कि समिति को पता चला, यह था कि निगमों को इस बात की स्वाधीनता नहीं थी कि वे अपने अभिकर्त्ताओं (Agents) पर निरीक्षण रखने के लिए तथा अपने व्यवसाय के पक्ष में प्रचार करने के लिए भारत से बाहर अपने पदाधिकारियों को प्रतिनिधि के रूप में नियुक्त कर सकें जबकि गैर-सरकारी क्षेत्र की कम्पनियों को यह स्वाधीनता प्राप्त थी। मन्त्रालय के प्रतिनिधियों द्वारा गवाही के मध्य यह कहा गया कि "एक निजी जहाजी कम्पनी (Private Shipping Company) आस्ट्रेलिया में एक अधिकारी को प्रतिनिधि के रूप में नियुक्त करने में समर्थ थी उन्होंने जहाजी भाड़े (Cargo) के पक्ष में प्रचार करने के लिए एक आदमी को भेजा। सरकारी क्षेत्र की कम्पनी को आस्ट्रेलिया में अपना आदमी भेजने की अनुमति नहीं थी जबकि निजी अथवा गैर-सरकारी कम्पनी रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया से विदेशी विनिमय (Foreign exchange) प्राप्त करके अपना आदमी प्रतिनिधि के रूप में नियुक्त कर सकती थी, निगम को प्रशासकीय तथा वित्त मन्त्रालयों से इसकी पूर्व स्वीकृति लेनी पड़ती थी और उसकी यह प्रार्थना अस्वीकार कर दी जाती थी।"[1]

निगम के आन्तरिक प्रबन्ध में मत्रालय द्वारा हस्तक्षेप करने का एक और भी नया उदाहरण हमारे सामने है जो यह सिद्ध करता है कि हमारे देश में निगमों और कम्पनियों का केवल बाह्य ढाचा ही वर्तमान है, वस्तुत तो उनका सचालन सरकार के विभागों (Departments) के समान ही किया जाता था। जीवन-बीमा निगम (Life Insurance Corporations) के निवेश (Investment) की कहानी जनता के मन में अभी ताजी ही बनी हुई है और उसके सम्बन्ध में छागला आयोग (Chhagla Commission's) का प्रतिवेदन (Report) आँखें खोलने वाला है। ७ जनवरी सन् १९५८ को भारत सरकार द्वारा एक व्यक्ति के जाच आयोग (Inquiry Commission) के रूप में बम्बई उच्च न्यायालय (High Court) के मुख्य न्यायाधीश (Chief Justice) श्री एम० सी० छागला की नियुक्ति की गई थी। उस

१ द्वितीय लोकसभा की अनुमान समिति के ३८वें प्रतिवेदन मे, (१९५१-५९) पृष्ठ १२–१३

आयोग का कार्य मूदडा (Mundhra) द्वारा प्रबन्ध की जाने वाली कम्पनियों मे जीवन बीमा निगम की १ करोड ३८ लाख रु० की धनराशि के निवेश की जाच पडताल करना था। जीवन बीमा निगम अधिनियम की धारा २१ का उल्लेख करके, जिसके अन्तर्गत कि केन्द्र सरकार सार्वजनिक हित मे सम्बन्धित नीति के मामलो मे लिखित निर्देश (Written directions) दे सकती थी, श्री छागला ने कहा कि "अधिनियम (Act) की धारा २१ मे स्पष्ट रूप से दिया हुआ है कि एक विधि द्वारा निर्मित निगम की स्वायत्तता (Autonomy) तथा उस पर नियन्त्रण के बीच सामजस्य की आदर्श स्थिति क्या होनी चाहिये और एक कल्याणकारी राज्य (Welfare state) को ऐसे किसी भी निगम के साथ व्यवहार करते समय उस आदर्श सामजस्य का पालन करना चाहिये तथा अपने दिन प्रति-दिन के प्रशासन की व्यवस्था करने के लिए निगम को पूर्ण रूप से स्वतत्र छोड देना चाहिये, और जब निगम को पालिसी-होल्डरो के हितो के अनुसार अपने धन का निवेश करने को स्वतत्र छोडा जाये तो सरकार निगम की निर्णय करने की इच्छा पर केवल तभी नियन्त्रण लगा सकती है जबकि नीति का कोई ऐसा प्रश्न उपस्थित हो जाय जिसका सम्बन्ध सार्वजनिक हित (Public interest) से हो। सरकार निगम से यह नही कह सकती कि वह किसी विशेष शेयर मे अपना धन लगाये अथवा न लगाये, वह निगम से यह नही कह सकती कि उसे किसी विशेष उद्योग की सहायता करनी चाहिये तथा किसी विशेष व्यक्ति की सहायता करने के लिए तो और भी नही कहना चाहिए, परन्तु वह निगम से कह सकती है कि उसे अपना धन कुछ ऐसे विशिष्ट उद्योगो मे लगाना चाहिये जो कि द्वितीय पचवर्षीय योजना के सफल सचालन के लिए आवश्यक हो अथवा जो सरकार द्वारा निर्धारित किसी विशिष्ट आर्थिक अथवा वित्तीय नीति को प्रभावित करते हो।" श्री छागला ने कहा कि "यह बडे दुर्भाग्य की बात है कि जीवन बीमा निगम के मामले मे धारा (Section) २१ मे उल्लिखित इस विवेकपूर्ण एव ठोस सिद्धान्त का पालन नही किया गया। गवाहियो से यह बिल्कुल स्पष्ट है कि वित्त मन्त्रालय (Finance Ministry) मे कुछ ऐसी प्रवृत्ति पाई जाती थी कि वह निगम को अपना ही एक शाखा अथवा प्रशाखा समझता था और यह मान कर उसको आदेश जारी करता था कि निगम उन आदेशो का पालन करने के लिए बाध्य है।" निगम द्वारा किये गये सौदे (Transaction) को प्रभावित करने वाली बातचीत व पत्र-व्यवहार का अध्ययन करने के पश्चात् श्री छागला इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि "वास्तव मे यह निगम द्वारा अपने वैधानिक कर्तव्य तथा ऐच्छिक निर्णय के रूप मे किया जाने वाला सौदा नही था। प्रमाण स्पष्ट है और इसमे सन्देह की कोई गुन्जाइश नही है कि यह सौदा सरकार के हस्तक्षेप के परिणामस्वरूप ही सम्पन्न हुआ था और इस सौदे को सरकार द्वारा आदेशित सौदे का नाम दिया जा सकता है।" इस सौदे से यह तो स्पष्ट है कि सदा इस बात का खतरा बना रहता है कि "सरकार निगम को आदेश दे सकती है यद्यपि वह स्वाग यही रचाती है कि वह केवल परामर्श दे रही है।" निगम के

प्रवन्ध निर्देशक (Managing Director) ने आयोग के सामने जो कुछ कहा उसमे यह स्पष्ट हो जाता है। उन्होने कहा कि "जब भी वित्त सचिव (Finance Secretary) उनसे कुछ काम करने को कहते थे, वह उसको सरकार द्वारा दिया जाने वाला निर्देश ही समझते थे ।" भारत के महान्यायवादी (Attorney General) श्री सीतलवाड ने आयोग के सम्मुख दिये गए अपने वक्तव्य (Statement) के अन्त मे कहा कि "यदि नियुक्त किया गया अधिकारी अपनी पदोन्नति (Promotion) तथा अन्य बातो के लिए स्वय सरकार पर ही निर्भर रहा तो उसके लिए यह सम्भव नही होगा कि वह निगम के मामलो से निबटने मे ठीक वैसे ही स्वतत्र मस्तिष्क से कार्य कर सके जैसा कि समुचित रीति से नियुक्त किये गए एक प्रधान (Chief) को करना चाहिये। इसमे व्यक्तियो का इतना दोष नही है जितना कि परिस्थिति का है।"

चूंकि भारत सरकार की घोषित नीति सरकारी क्षेत्र (Public sector) का विस्तार करने की है, अत स्वायत्तता प्राप्त सरकारी उद्यमो के कुशल सचालन के लिए श्री छागला द्वारा दी गई सिफारिशो पर ध्यानपूर्वक विचार करने की आवश्यकता है। उन्होने निम्न सिफारिशें की—

(१) सरकार को स्वायत्तता प्राप्त परिनियत निगमो (Autonomous statutory corporations) के कार्य-सचालन मे हस्तक्षेप नही करना चाहिये और यदि वे हस्तक्षेप करना चाहे ही, तो उन्हे लिखित मे निर्देश (Directions) देने की जिम्मेवारी से नही बचना चाहिये।

(२) जीवन बीमा निगम जैसे निगमो के अध्यक्ष (Chairman) जिसे कि बडे पैमाने पर निवेशो (Investment) से व्यवहार करना पडता है, कि नियुक्ति ऐसे व्यक्तियो मे से की जानी चाहिये जिन्हे कि व्यावसायिक तथा वित्तीय क्षेत्र का अनुभव हो और जो शेयर बाजार की रीतियो एव विधियो से परिचित हो।

(३) यदि निगम के कार्य-पालक अथवा निष्पादक अधिकारी (Executive officers) सिविल सेवाओ मे से नियुक्त किये जाने हो तो उन पर यह प्रभाव डाला जाना चाहिये कि वे अपने कर्तव्यपालन के लिए निगम के प्रति उत्तरदायी है तथा उसके प्रति ही वे अपनी निष्ठा (Loyalty) कायम रखें और यह कि उन्हे सरकार के वरिष्ठ अधिकारियो से प्रभावित नही होना चाहिए अथवा न उन्हे अपने निर्णय ही उन (अधिकारियो) को देने चाहियें। यदि वे यह अनुभव करे कि वे उन वरिष्ठ अधिकारियो के आदेशो का पालन करने को बाध्य है तो उन्हे इस बात पर जोर देना चाहिये कि उन्हे वे आदेश लिखित रूप मे ही दिये जायें।

(४) जीवन बीमा निगम की निधियो (Funds) का उपयोग केवल पालिसी होल्डरो के लाभ के लिये ही किया जाना चाहिये, अन्य किसी अतिरिक्त उद्देश्य के लिए नही। यदि उनका उपयोग अन्य किसी भी अतिरिक्त अथवा बाहरी उद्देश्य के लिये किया ही जाना हो तो वह उद्देश्य 'राष्ट्र का हित' ही होना चाहिये।

(५) ससदीय पद्धति की सरकार के अन्तर्गत, मन्त्रियो (Ministers) को चाहिये कि वे प्रारम्भ मे ही समद (Parliament) को अपने विश्वास मे ले लें। साथ ही, उन्हे सभी सम्बन्धित तथ्य तथा सामग्री समद के सम्मुख रख देनी चाहिए। इससे वे कठिनाइयाँ तथा व्याकुलताये दूर हो जायेगी जो बाद मे उस समय उत्पन्न होती है जबकि ससद अन्य स्रोतो से आवश्यक सूचनाये प्राप्त करती है।"[1]

इस तथ्य के विषय मे दो मत नही हो सकते कि सरकारी उद्यमो के सचालन मे सरकार का हस्तक्षेप कम से कम होना चाहिये और इसको केवल नीति-सम्बन्धी निर्देश जारी करने तक ही सीमित रखा जाना चाहिये। साथ ही, ये निर्देश लिखित मे होना चाहिये जिससे कि सम्बन्धित मन्त्री पर निश्चित रूप से उसका उत्तरदायित्व डाला जा सके। विविन बोस जाँच मण्डल (Vivin Bose Inquiry Board), जिसकी स्थापना मूदडा-सौदे के सम्बन्ध मे जीवन बीमा निगम के पदाधिकारियो के आचरण (Conduct) की जाच करने के लिए की गई थी, ने भी यही विचार व्यक्त किया कि निगम को कम स्वायत्तता (Autonomy) प्राप्त थी। इसके उत्तर मे सरकार ने यह कहा कि "निगम के स्वायत्तता के साथ कार्य करने" का मतलब है कि वह चार्टर (Charter) की शर्तों के अन्तर्गत तथा सरकार की नीति एव समय-समय पर उसके द्वारा किये जाने वाले मार्ग-दर्शन के अनुरूप स्वतन्त्रता के साथ कार्य करे। निगम के उचित कार्य-सचालन के विषय मे आश्वस्त रहने के लिये उसके पर्यवेक्षण (Supervision), मार्ग-दर्शन एव निर्देशन की जिम्मेवारी सरकार पर आती है जिसे कि इस कार्य का भार इसलिये अपने ऊपर लेना पडता है ताकि वह ससद के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करने मे समर्थ हो सके। यह सरकार की जिम्मेवारी है कि वह उपयुक्त प्रतिकारात्मक (Remedial) कार्यवाही करे यदि, अथवा जब भी, निगम के कार्य-सचालन के लिए ऐसा करना आवश्यक हो। सरकार तथा निगम के बीच के सम्बन्धो की अत्यधिक औपचारिकता (Excessive formalisation) अवाञ्छनीय तो है ही, कार्य को भी असभव बना देगी। अत यही निष्कर्ष निकलता है कि निगम को निर्देश देने के अधिकार से सम्बन्धित कानूनी धाराओ (Legal Provisions) का विश्लेषण इस प्रकार नही किया जाना चाहिये कि जो सरकार को बातचीत अथवा पत्र-व्यवहार के अन्य स्रोतो, "जैसे कि अनौपचारिक विचार-विमर्श अथवा सम्मेलनो" का आश्रय लेने से रोके। ऐसा कोई कारण नही दिखाई देता कि सरकार निगम के साथ अपने सम्बन्ध को केवल वैधानिक निर्देश देने तक ही क्यो सीमित रखे।"[2]

सरकार के इस मत को उचित ठहराना कठिन है कि निगमो के कार्य सम्पादन के लिये निगम अधिकारियो के साथ अनौपचारिक विचार-विमर्श अथवा सम्मेलनो (Informal discussions or conferences) का उपयोग किया जा सकता है।

---

1 एम सी छागला, हिन्दुस्तान टाइम्स, दिनाक १०–२–५८।

2 विविन बोस जाच मण्डल को सरकार का उत्तर, मई ३१, सन् १९५९।

निगम के निर्णयो को प्रभावित करने के इस तरीके से, यह निश्चित है कि भ्रम उत्पन्न होगा और हानिकारक परिणाम सामने आयेंगे। ससद 'पर्दे के पीछे' के मन्त्रीय प्रभावो की प्रकृति तथा उसके परिणामो से अनभिज्ञ रहेगी अत वह मन्त्रीय कार्य-वाहियो के सम्बन्ध मे कोई प्रश्न नही उठा सकती। मन्त्रियो को केवल उन्ही मामलो के लिये ही जवाबदेह ठहराया जा सकेगा जिनके लिये कि वे प्रत्यक्ष रूप से जिम्मेवार हो। मण्डल को निर्देश देने के अपने अधिकारो का उपयोग कम करने से तथा बात-चीत, और वह भी बहुधा मौखिक बातचीत द्वारा उनको प्रभावित करने की विधि को प्रमुखता देने से, वे प्रत्यक्ष उत्तरदायित्व से बच जाते है। इस स्थिति मे जब मन्त्री ससद मे आते है तो इस आधार पर प्रश्न का उत्तर देने से इन्कार कर सकते हैं कि इसमे कतई उनकी जिम्मेवारी नही है। निर्देश (Direction) लिखित रूप मे ही जारी किये जाने चाहियें, अन्यथा मन्त्री अपने गलत कार्यों अथवा आदेश दिये हुये कार्यों के लिये उत्तरदायी नही ठहराये जा सकते। अनुत्तरदायी कार्यपालिका की उत्पत्ति ससदीय जनतन्त्र के लिए एक खतरा है।

निगमो मे गैर-सरकारी व्यक्तियो की नियुक्ति से सम्बन्धित श्री छागला की सिफारिश निश्चय ही प्रशसनीय है। परन्तु देश मे ऐसे योग्य गैरसरकारी व्यक्तियो का अभाव होने के कारण और कोई विकल्प ही नही रहता तथा निगमो का प्रबन्ध करने के लिए सिविल अधिकारी ही नियुक्त करने पडते है। अत इस खराब स्थिति को ही अच्छा बताने के लिए यह किया जाना चाहिये कि सरकारी उद्यमो के प्रबन्ध के लिये नियुक्त किये जाने वाले अधिकारी उन सेवाओ से त्याग-पत्र दे दे जिनसे कि वे सम्बन्धित हो और फिर औद्योगिक प्रबन्ध के क्षेत्र मे ही वे अपने जीवन-क्रम (Career) का निर्माण करें। सरकारी उद्यमो मे अब जो अधिकारी नियुक्त किये जाते हैं वे वहाँ केवल अस्थायी होते हैं अत वे केन्द्रीय मन्त्रालयो के अपने उन वरिष्ठ अधिकारियो के प्रभाव मे रहते हैं जिन पर कि मुख्यत उनकी पदोन्नति निर्भर होती है। उन्हे ऐसे प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष प्रभाव की सीमा से बाहर ही रखा जाना चाहिये। ऐसा केवल तभी किया जा सकता है जबकि वे अपनी पहली सेवाओ से मुक्त हो जायें और उनसे अपना सम्बन्ध विच्छेद करले। यदि इस सुझाव को प्रयोगात्मक रूप न दिया गया, तो निगम सरकारी विभागो के अधीनस्थ ही रहेगे और जीवन बीमा निगम जैसी घटनाये बराबर घटित होती रहेगी।

कुछ नवीनतम प्रवृत्तियाँ
(Some Recent Developments)

ब्रिटिश ससद तथा समाचार पत्रो मे लम्बे वाद-विवाद के बाद २० दिसम्बर १९५६ को "राष्ट्रीयकृत उद्योगो पर एक प्रवर समिति" (Select Committee on Nationalized Industries) की नियुक्ति की गई थी। यह समिति निगमो

(Corporations) के वार्षिक प्रतिवेदनो तथा हिसाव-किताब का अध्ययन करती है।[1] ब्रिटेन मे इस समिति के कार्यों से जनता को काफी सन्तोष प्राप्त हुआ है। कामन्स सभा के लिए भी इस प्रवर समिति के प्रतिवेदन बहुत मूल्यवान सिद्ध हुए हैं। किन्तु समिति के कार्यों की सफलता बहुत कुछ कार्यकुशल स्टाफ-सहायता पर निर्भर है। इस समिति के एक भूतपूर्व अध्यक्ष के अनुसार समिति को प्रतिवर्ष केवल एक उद्योग का आद्योपान्त अध्ययन करना चाहिये। उन्होने यह भी कहा है कि "जहाँ तक समिति के भविष्य के विषय मे मेरे विचारो का प्रश्न है, मेरा सुझाव यह है कि समिति को तथ्यो तथा बडे-बडे प्रश्नो पर ही ध्यान केन्द्रित करना चाहिए तथा छोटी-छोटी बातो पर समय नष्ट करने से बचना चाहिए।"[2]

भारत मे भी कृष्ण मेनन समिति के सुझाव पर ससद के दोनो सदनो की सयुक्त समिति, जो राजकीय उद्यमो के कार्यों की जांच करे, की स्थापना का निश्चय काफी पहले कर लिया गया था। सुझाव यह था कि समिति सरकारी उद्यमो के वार्षिक प्रतिवेदनो व हिसाव-किताव की जाँच करे तथा यह बताये कि वे श्रेष्ठ तथा स्वस्थ व्यावसायिक नियमो के अनुसार कार्य कर रहे हैं या नही। यह भी प्रस्तावित किया गया था कि अनुमान समिति (Estimates Committee) तथा सार्वजनिक लेखा समिति (Public Accounts Committee) के कुछ कार्य १५ सदस्यो की इस सयुक्त समिति को सौंप दिये जायें।

२३ नवम्बर १९६१ को सरकार ने लोक सभा मे यह प्रस्ताव प्रस्तुत किया कि दोनो सदनो की एक सयुक्त समिति बनायी जाये जिसमे १० सदस्य लोक सभा के हो तथा ५ राज्य सभा के। लोक सभा के सदस्यो ने राज्य सभा को समिति पर प्रतिनिधित्व देने पर आपत्ति व्यक्त की। यह तर्क दिया गया कि क्योकि प्रस्तावित समिति राजकीय उद्यमो के वित्तीय पहलुओ का निरीक्षण करेगी तथा अनुमान समिति व सार्वजनिक लेखा समिति के कुछ कार्यों को सम्पन्न करेगी इसलिए राज्य सभा के सदस्यो को, जिसके पास वित्तीय शक्तियाँ नही हैं, इसके साथ सम्बन्धित करना सर्वथा अनुचित होगा।[3]

सरकार ने अपना प्रस्ताव वापिस ले लिया तथा एक सशोधित प्रस्ताव रखा उसमे कहा गया कि राज्य सभा के ५ सदस्यो का दर्जा "सहायक" (Associate सदस्य का होगा। यह भी प्रस्तावित किया गया कि जब समिति वित्तीय प्रश्नो पर विचार कर रही हो तो राज्य सभा के सदस्य उसकी बैठको मे भाग नही ले सकेंगे।

---

1 For details refer to William A Robson, *Nationalized Industry and Public Ownership*, George Allen and Unwin Ltd , London, 1966, A H Hanson, '*Parliament and Public Ownership*', Published for the Hansard Society by London, 1961, pages 149—173

2 Sir Toby Low, "The Select Committee on Nationalized Industries", Public Administration (London) Spring 1962 , Vol 40, page 14

3 For details refer to House of People Debate, November 23, 1961

राज्य सभा के सदस्यो ने इस प्रस्ताव पर दोष व्यक्त किया तथा "सहायक सदस्य" वाले दर्जे को अपमानजनक बनाया। उन्होने कहा कि यह उच्च सदन के सम्मान पर एक आघात है और इसका अर्थ सम्पूर्ण सदन को एक निम्न दर्जा प्रदान करना है। दोनो सदनो मे इस विषय पर वाद-विवाद इतना कटु हो गया कि सरकार को यह प्रस्ताव भी वापिस लेना पडा।[1]

राष्ट्रीय उद्यमो पर एक ससदीय समिति की स्थापना को सभी आवश्यक समझते है। सरकार ने प्रस्तावित समिति को दिये जाने वाले कार्य भी तय कर रखे है। समिति का सरकार के व्यापक नीति विषयक प्रश्नो तथा राष्ट्रीय उद्यमो के दैनिक कार्यों से कोई सरोकर नही होगा। किन्तु समिति की रचना पर अभी तक कोई निश्चय नही हो पाया है। लोक-प्रशासन के विद्यार्थीगण राष्ट्रीय उद्यमो पर एक पृथक ससदीय समिति के प्रस्तावित परीक्षण (Experiment) की तीव्र उत्कण्ठा से प्रतीक्षा कर रहे है।

---

1 Rgfer to House of People Debate and Rajya Sabha Deleate August 28th, 1962

९

प्रशासन के स्तर
(Levels of Administration)

भारत मे केन्द्र तथा राज्यो के बीच सम्बन्ध
(Relations between the Centre and the States in India)

भारत के सविधान द्वारा देश के लिए ससदीय शासन व्यवस्था (Federal system of government) की स्थापना की गई है। सघीय शासन-व्यवस्था की मूलभूत बात है केन्द्र तथा राज्य सरकारो के वीच शक्तियो का विभाजन। दोनो मे से किसी भी एक को दूसरी सरकार की शक्ति एव सत्ता अपने हाथो मे ले लेने का अधिकार नही है। 'सघीय सिद्धान्त से तात्पर्य है कि किसी भी देश की राष्ट्रीय सरकार (National government) तथा सघ मे सम्मिलित होने वाली सरकारें अपने-अपने सम्वन्धित क्षेत्रो मे एक दूसरे से स्वतन्त्र रहेगी, कोई भी एक दूसरे के अधीनस्थ (Subordinate) नही होगी, वल्कि परस्पर समवर्गीय होगी।'

संघ तथा राज्यो के बीच शक्तियो का वितरण
(The Distribution of powers between the Union and the States)

भारतीय सविधान (Indian constitution) के अनुसार तीन सूचियो (Lists) मे सघ तथा राज्यो के वीच विधायी सत्ता (Legislative authority) का विभाजन किया गया है—अर्थात् सघ-सूची (Union list), राज्य सूची (State List) और समवर्ती सूची (Concurrent list)। सघीय ससद को सघ सूची मे उल्लिखित ६७ विषयो पर विधि (Laws) निर्माण की 'पूर्ण सत्ता' प्राप्त है।

इन विषयो मे महत्वपूर्ण ये हैं विदेशी सम्वन्ध, युद्ध, शाति तथा सन्धियाँ, नागरिकता और विदेशियो का देशीयकरण, भारत मे प्रवेश, और उनमे से प्रशासन व देशान्तरवास, प्रत्यर्पण (Extradition), रेलो और राष्ट्रीय महत्व के राज-पथो (Highways) सहित सचार के साधन, नौ-वहन (Shipping), नौ-परिवहन (Navigation) तथा वायु-मार्ग (Airways), डाक और तार, टेलीफोन, वेतार (Wireless) तथा प्रसारण (Broadcasting), सघ का लोक-ऋण, मुद्रा-टकरण (Coinage), विधिमान्य (Legal tendet), विदेशी और अन्तर्राज्यीय व्यापार व वाणिज्य, वैंकिंग, बीमा तथा वित्तीय निगम, एकस्व (Patents) और व्यापारिक

चिन्ह् (Trademarks) राष्ट्रीय महत्व के उद्योग , कुछ सीमाओ के अन्तर्गत खानो तथा खनिजो का विकास , मछली पालन व मीन-क्षेत्र , नमक, अफीम, प्रदर्शन के लिए चल-चित्रो की स्वीकृति, देहली, बनारस हिन्दू तथा अलीगढ मुस्लिम विश्वविद्यालय, राष्ट्रीय महत्व की वैज्ञानिक तथा शिल्पिक सस्थायें, ऐतिहासिक स्मारक (Historical monuments), जनगणना (Census) तथा भूमाप (Survey), सघ सेवाये, सघ तथा राज्यो के निर्वाचन (Elections), सघ तथा राज्यो के लेख (Accounts) तथा लेखा-परीक्षण (Audit), उच्चतम और उच्च न्यायालयो (Supreme and high courts) की रचना और सगठन कृषि आय को छोडकर अन्य आय पर कर, सीमा शुल्क (Customs), मद्यसार सम्बन्ध पेय पदार्थों, अफीम, भाग तथा अन्य नशीले पदार्थों को छोडकर अन्य सब वस्तुओ पर उत्पादन कर (Excise duties), निगम कर, कुछ अपवादो (Exceptions) के साथ परिसम्पत्तियो (Assets) के पूँजीगत मूल्य पर कर (कृषि भूमि को छोडकर), आस्तिकर (Estate duties) तथा उत्तराधिकार कर (Succession duties), यात्रियो अथवा वस्तुओ पर सीमा कर (Terminal taxes), शेयर बाजार और वायदा बाजार के सौदो पर कर, विनिमय-पत्रो (Bills of exchange) व चैको आदि पर मुद्राक शुल्क (Stamp duty), समाचार-पत्रो के क्रय या विक्रय पर तथा उनमे प्रकाशित होने वाले विज्ञापनो पर कर, सघ सूची के विषयो के सम्बन्ध मे फीस, उच्चतम न्यायालय को छोडकर अन्य न्यायालयो के इस सूची मे के विषयो मे से किसी के सम्बन्ध मे क्षेत्राधिकार तथा शक्तियाँ (Jurisdiction and powers) ।

राज्य सूची (State list) मे ऐसे ६६ विषय सम्मिलित किये गये है जिन पर कि सामान्यत राज्य कानून बना सकते है। ये विषय सघ सरकार के विधायी क्षेत्राधिकार (Legislative jurisdiction) से बाहर रखे गये है ।

इन विषयो मे महत्वपूर्ण ये है सार्वजनिक व्यवस्था (Public order), पुलिस व न्याय प्रशासन, उच्चतम न्यायालय व उच्च न्यायालयो को छोडकर अन्य न्यायालयो की रचना तथा सगठन, जेलें, स्थानीय शासन, सार्वजनिक स्वास्थ्य व स्वच्छता, चिकित्सालय व औषधालय, मादक पेय पदार्थ, शिक्षा (उसको छोडकर जो कि सघ सरकार के आधीन है), सडके तथा जल-मार्ग (Waterways), कृषि, सिंचाई, कुछ आरक्षणो के अन्तर्गत भूमि पट्टा (Land tenure), वन, उद्योग तथा वाणिज्य, बाट और माप (Weights and measures), निगमन (Incorporation), नाट्यशालायें (Theatres), तथा चल-चित्र (Cinema), राज्य लोक सेवायें, राज्य का लोक ऋण (Public debts), मालगुजारी, कृषि-आय पर कर, कृषि-भूमि के उत्तराधिकारी के विषय मे कर, कृषि-भूमि पर आस्ति कर (Estate duties), भूमि, भवनो तथा खनिज-अधिकारो (Mineral rights) पर कर, मादक पेय पदार्थों, अफीम, भाग तथा अन्य नशीली वस्तुओ पर उत्पादन कर (Excise duties), किसी स्थानीय क्षेत्र मे उपभोग, प्रयोग या विक्रय के लिए वस्तुओ के प्रवेश पर कर,

बिजली के उपभोग या विक्रय पर कर, समाचार-पत्रो को छोडकर अन्य वस्तुओ के क्रय या विक्रय पर कर, समाचार-पत्रो मे प्रकाशित होने वाले विज्ञापनो को छोडकर अन्य विज्ञापनो पर कर , पशुओ और गाडियो पर कर , व्यवसायो व व्यापारो पर कर , विलासिता की वस्तुओ (Luxuries) तथा मनोरजन पर कर , बाजी लगाने (Betting) तथा जुआ खेलने पर कर , प्रति व्यक्ति कर (Capitation taxes) , मुद्राक शुल्क (Stamp duties) , और किसी न्यायालय मे लिए जाने वाले शुल्को को छोडकर इस सूची के विषयो मे से किसी के बारे मे शुल्क ।

सीमावर्ती सूची मे जिन ४७ विषयो का उल्लेख किया गया है वे 'सघ तथा राज्य सरकारो दोनो ही के समवर्ती क्षेत्राधिकार मे आते हैं ।' आमतौर पर किसी समवर्ती विषय पर बनाये जाने वाले सघीय कानून का राज्य की विधि या कानून (State law) से मतभेद हो तो उस मतभेद की सीमा तक सघीय कानून ही उच्च माना जाता है परन्तु यदि किसी राज्य-विधि को रक्षित करने के पश्चात् उस पर राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त कर ली गई हो तो उसको सघीय विधान की अपेक्षा प्रमुख स्थान प्राप्त होता है ।

इनमे से अधिक महत्वपूर्ण विषय ये हैं दण्ड विधि (Criminal law) तथा दण्ड-प्रक्रिया , निवारक निरोध (Preventive detention) , विवाह और विवाह-विच्छेद (तलाक) , इच्छापत्र हीनत्व (Intestacy) , दत्तकग्रहण (Adoption) तथा उत्तराधिकार (Succession) , कृषि-भूमि को छोडकर अन्य सम्पत्तियो का हस्तान्तरण , पजीकरण (Registration) , सविदा (Contracts) , दिवाला (Bankruptcy) , न्यास (Trusts) , गवाही और शपथें (Evidence and oaths) , उन्माद (Lunacy) , खाद्य-पदार्थों और अन्य वस्तुओ मे हीन-मिलावट (Adulteration) , औषधियाँ तथा अन्य वस्तुयें , औषधियाँ और विष , आर्थिक और सामाजिक नियोजन , मजदूर सघ (Trade unions) और श्रम-विवाद तथा कल्याण , विधि के अनुकुल वैद्यक तथा अन्य वृत्तियाँ (Professions) , जीवनाक (Vital statistics) , अन्तर्देशीय जल-पथो (Inland waterways) पर यन्त्रचालित यानो (Mechanically propelled vessels) द्वारा नौवहन (Shipping) और नौ-परिवहन (Navigation) , उत्पादन पूर्ति (Supply) तथा औद्योगिक उपजो एव खाद्य-पदार्थों के वितरण, पशुओ के चारे, कपास, बिनौले और कच्चे जूट का नियन्त्रण,[1] जहाँ पर भी यह आवश्यक हो , मूल्य-नियन्त्रण , समाचार-पत्र और मुद्रणालय (Press) , निष्क्रान्त सम्पत्ति (Evacuee property) , अधिगृहती (Acquired) सम्पत्ति के लिए क्षतिपूर्ति (Compensation) का निर्धारण , न्यायिक मुद्राको (Judicial stamps) द्वारा सगृहीत शुल्को अथवा फीसो को छोडकर अन्य मुद्राक शुल्क (Stamp duties) और इस सूची मे के विषयो मे से किसी के बारे मे फीसें ।

1 सन् १९५४ के सविधान सशोधन (तृतीय) अधिनियम द्वारा परिवर्धित ।

अन्त मे, सभी अवशिष्ट शक्तियाँ (Residuary powers) अर्थात् वे विषय जिनका उल्लेख विशिष्ट रूप मे (अथवा व्यावहारिक रूप मे) तीनो सूचियो मे नही है, सघ सरकार के क्षेत्राधिकार मे रखी गई है।

शक्तिशाली केन्द्र (Strong centre)

भारतीय सविधान (Indian Constitution) के द्वारा एक अत्यन्त शक्तिशाली केन्द्र का निर्माण किया गया है। सविधान को अनेक बार अर्ध-सघात्मक (Quasi-federal) कहा गया है। के० सी० वियर (*K C Wheare*) के अनुसार "भारत सहायक एकात्मक लक्षणो (Subsidiary unitary features) से युक्त एक सघात्मक राज्य होने की अपेक्षा सहायक सघात्मक लक्षणो (Subsidiary federal features) से युक्त एक एकात्मक राज्य है।" 'भारतीय सविधान का रूप तो सघात्मक है किन्तु वास्तविक अर्थ मे वह एकात्मक ही है।' सघात्मक सरकार को राज्य के मामलो मे हस्तक्षेप करने की भारी शक्तियाँ प्राप्त है।

राज्य के विषयो पर विधि निर्माण करने की सघीय ससद की शक्ति
(The Power of the Union Parliament to legislate on the State subjects).

कुछ परिस्थितियो के अन्तर्गत सघीय ससद शुद्ध रूप से राज्य के विषयो पर भी विधि निर्माण कर सकती है।

सर्वप्रथम, सविधान ससद को यह शक्ति प्रदान करता है कि वह 'राष्ट्रीय हित' मे राज्य सूची मे आये हुए किसी भी विषय के सम्बन्ध मे कानून बना सकती है। यद्यपि राज्य विधान-मण्डल को राज्य सूची के विषयो के सम्बन्ध मे विधि (Laws) बनाने की अनन्य शक्ति प्राप्त है, किन्तु यदि राज्य-परिषद् (Council of States) ने उपस्थित और मत देने वाले सदस्यो की दो-तिहाई से अन्यून (Not less) सख्या द्वारा समर्थित प्रस्ताव द्वारा यह घोषित किया है कि राष्ट्रीय हित मे यह आवश्यक या इष्टकर है कि ससद राज्य-सूची मे प्रगणित और इस प्रस्ताव मे उल्लिखित किसी विषय के बारे मे विधि बनाये तो जब तक वह प्रस्ताव लागू है ससद के लिए उस विषय के बारे मे भारत मे सम्पूर्ण राज्य-क्षेत्र अथवा उसके किसी भाग के लिए कानून बनाना विधि-सगत (Lawful) होगा। राज्य-परिषद् द्वारा पारित (Passed) ऐसा प्रस्ताव एक वर्ष से अनधिक (Non Exceeding) ऐसी कालावधि के लिए लागू रहेगा जैसी कि उसमे उल्लिखित हो।[1]

दूसरे, ससद दो या अधिक राज्यो के लिए उनके विधान-मण्डलो (Legislatures) द्वारा प्रस्ताव के द्वारा प्रार्थना किये जाने पर राज्य-विषयो पर विधि निर्माण कर सकती है। ऐसा सामान्य विधान, तत्पश्चात् अपने विधान-मण्डलो के प्रस्ताव द्वारा अन्य राज्यो द्वारा भी अगीकार किया जा सकता है। सविधान 'राज्यो की सम्मति से' उनके लिए विधि बनाने की शक्ति ससद को प्रदान करता है।[2]

---

1 अनुच्छेद २४९
2 अनुच्छेद २५२

तीसरे, ससद को किसी अन्य देश या देशो के साथ की हुई किसी सधि (Treaty) करार (Agreement) या अभिसमय (Convention) अथवा किसी अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन (Conference), सघ या अन्य सस्था मे किये गये किसी निश्चय के परिपालन के लिए भारत के सम्पूर्ण राज्य-क्षेत्र या उसके किसी भाग के लिये कोई भी विधि (Law) बनाने की शक्ति प्राप्त है। ससद द्वारा पारित ऐसी विधिया शुद्ध रूप से राज्य के विषयो पर लागू हो सकती हैं।[1]

चौथे, जब राष्ट्रपति (President) द्वारा आपत्काल की उद्घोषणा (Proclamation of Emergency) कर दी जाती है तो उस आपत्कालीन अवधि के लिये सविधान (Constitution) वास्तविक रूप से एकात्मक (Unitary) हो जाता है। ऐसी स्थिति मे ससद केवल सघ-सूची तथा समवर्ती सूची मे प्रगणित विषयो के सम्बन्ध मे ही नही, बल्कि राज्य-सूची के विषयो के सम्बन्ध मे भी कानून बना सकती है। ससद को, जब तक आपत्काल की उद्घोषणा प्रवर्तन मे (In-operation) है, भारत के सम्पूर्ण राज्य-क्षेत्र अथवा उसके किसी भाग के लिये राज्य-सूची मे प्रगणित विषयो मे से किसी के बारे मे विधि निर्माण करने की शक्ति प्राप्त है। ससद द्वारा निर्मित ऐसी कोई भी विधि, जिसे ससद आपत्काल की उद्घोषणा के अभाव मे बनाने मे समक्ष न होती, उद्घोषणा के प्रवर्तन की समाप्ति के पश्चात् ६ मास की कालावधि की समाप्ति पर अक्षमता की मात्रा तक उन सब बातो के अतिरिक्त प्रवर्तनहीन होगी जो उस कालावधि की समाप्ति से पूर्व की गई या की जाने से छोड दी गई हैं।[2]

पाँचवे और अन्तत, किसी भी राज्य मे सवैधानिक यन्त्रव्यवस्था के असफल हो जाने की स्थिति मे, राष्ट्रपति उद्घोषणा के द्वारा ससद को उस राज्य के लिए राज्य-सूची से सम्बन्धित विषयो पर विधि बनाने का प्राधिकार प्रदान कर सकता है।[3]

केन्द्र को अन्य भी ऐसी शक्तिया प्राप्त है जो राज्यो की शक्तियो से उच्च होती हैं। राज्यो के क्षेत्रो मे सघीय विधि (Union law) द्वारा परिवर्तन किया जा सकता है। ससद विधि द्वारा वर्तमान राज्यो (States) मे से किसी के भी क्षेत्र का पुनर्वितरण करके अथवा उनके क्षेत्रो का एकीकरण करके नये राज्य का निर्माण कर सकती है और यह किसी भी राज्य के नाम, उनकी सीमाओ (Boundaries) अथवा क्षेत्र मे भी परिवर्तन कर सकती है। इसी प्रकार अनुपूरक (Supplemental), प्रासगिक (Incidental) और आनुषङ्गिक (Consequential) परिवर्तन भी किये जा सकते है। ऐसी विधि (Law) बनाने के लिये राष्ट्रपति की सिफारिश पर ससद मे विधेयक (Bill) प्रस्तुत किया जा सकता है और सिफारिश करने से पहले राष्ट्रपति के

---

1 अनुच्छेद २५३

2 अनु० २५०

3 अनु० ३५६ (१) (ख), अनु० ३५७ (१) और (२)

लिये यह आवश्यक है कि यह विधेयक के प्रस्तुत किये जाने के प्रस्ताव के सम्बन्ध मे उस विधेयक के उपवन्धो के बारे मे सम्बन्धित राज्य के विधान-मण्डल (Legislature) के विचार निश्चित रूप से जान ले ।[1]

इन सब उपवन्धो (Provisions) से यह स्पष्ट है कि सघ सरकार राज्य सरकारो से अधिक शक्तिशाली है। सघ सरकार मे सत्ता का अत्यधिक केन्द्रीय-करण कर दिया गया है। केन्द्र एक ऐसी विशालकाय मूर्ति के सदृश देश पर शासन करता है जिसको कि ९७ अनन्य शक्तिया प्राप्त है जिनमे उसकी समवर्ती (Concurrent) किन्तु सर्वोच्च शक्तिया तथा साथ ही साथ, विधान की वे अवशिष्ट शक्तियाँ (Residual powers) भी जोड दी जानी चाहिये जोकि उसमे निहित है। सघ को विस्तृत आपत्कालीन शक्तिया भी प्रदान की गई हैं। सामान्य काल तथा आपत्काल, दोनो ही समयो मे राज्यो पर सघ की सर्वोच्च स्थिति बनी रहती है।

केन्द्र और राज्यो के बीच प्रशासकीय सम्बन्ध
(Administrative Relations between the Centre and the States)

भारत मे सघ-राज्यो के प्रशासनिक सम्बन्धो का गठन इस प्रकार किया गया है जिससे कि सघ सरकार राज्यो की प्रशासनिक यन्त्र-व्यवस्था पर महत्वपूर्ण एव ठोस निर्देशन तथा नियन्त्रण लागू करने मे समर्थ हो सके। सघ-राज्य प्रशासनिक सम्बन्धो का रूप-निर्धारण द्विमुखी उद्देश्य की प्राप्ति की दृष्टि से किया गया है प्रथम तो सघीय ससद के विधायी क्षेत्राधिकार (Legislative jurisdiction) के अन्तर्गत आने वाले विषयो पर प्रभावशाली सघीय कार्यपालिका नियन्त्रण (Federal executive control) लागू करने के विषय मे निश्चिन्त होने के लिये, और दूसरे सघ तथा राज्यो की प्रशासनिक यन्त्र-रचनाओ के बीच विवाद की सम्भावनाओ को न्यूनतम करने के लिये। इस व्यवस्था से राज्यो के सम्मुख केन्द्र की स्थिति अधिक शक्तिशाली एव नियन्त्रणकारी बन गई है।

सविधान मे यह व्यवस्था की गई है कि प्रत्येक राज्य की कार्यपालिका शक्ति का इस प्रकार प्रयोग होगा कि जिससे ससद द्वारा निर्मित विधियो का पालन सुनिश्चित रहे और सघ की कार्यपालिका शक्ति के प्रयोग मे कोई अडचन या प्रतिकूल प्रभाव न हो। इन उद्देश्यो की पूर्ति के लिए सघ राज्यो को आवश्यक निर्देश (Directions) दे सकता है। सघ ऐसे सचारो के साधनो (Means of communication) का निर्माण करने और उन्हे बनाए रखने के लिए भी राज्यो को निर्देश दे सकता है जिन्हे कि निर्देश मे राष्ट्रीय या सैनिक महत्व का घोपित कर दिया गया हो। सघ राज्यो की सीमाओ मे रेलो की सुरक्षा के लिए भी राज्यो को निर्देश दे सकता है। ऐसे निर्देश के पालन मे राज्यो द्वारा जो अतिरिक्त खर्च किया जायेगा, सघ उसका भुगतान राज्यो को करेगा।[2]

---

1 अनु० ३ और ४

2 अनुच्छेद २५६, २५७ (१), (२), (३) और (४)

यदि कोई राज्य सघ सरकार के निर्देशो का पालन करने मे असफल रहता है तो राष्ट्रपति सविधान (Constitutions) के अनुच्छेद (Article) ३५६ के अन्तर्गत राज्य मे वैधानिक सरकार के भग होने की उद्घोषणा कर सकता है और राज्यपाल (Governor) अथवा अन्य किसी राज्य प्राधिकारी की सब शक्तिया स्वय अपने हाथो मे लेने के लिए कार्यवाही कर सकता है। ऐसी उद्घोषणा (Proclamation) के अन्तर्गत, किसी विशिष्ट राज्य के सम्बन्ध मे भारतीय राजनैतिक व्यवस्था का सघीय आधार निलम्बित (Suspend) किया जा सकता है। आपत्काल की उद्घोषणा (Proclamation of emergency) के प्रवर्तन के काल मे, सघ सरकार सभी राज्यो की विधायी तथा प्रशासकीय शक्तिया अपने हाथो मे ले सकती है और इस प्रकार सम्पूर्ण देश के लिए सघीय राज्यशासन की कार्यप्रणाली को निलम्बित कर सकती है। राज्यो को अपनी कार्यपालिका सत्ता का प्रयोग इस प्रकार करना होता है कि जिससे सघीय विधियो का पालन सुनिश्चित रहे और सघ की कार्यपालिका शक्ति के प्रयोग मे कोई अडचन या प्रतिकूल प्रभाव न हो।

राष्ट्रपति किसी राज्य की सरकार की सम्मति से ऐसे किसी भी विषय से सम्बन्धित कार्य, जिन पर सघ की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार है, उस राज्य सरकार के पदाधिकारियो को सौंप सकता है। ऐसे विषय से, जोकि राज्य के विधायी क्षेत्राधिकार (Legislative jurisdiction) से बाहर का हो, सम्बद्ध होने पर भी ससद द्वारा निर्मित विधि, जो किसी राज्य मे लागू है, उस राज्य के पदाधिकारियो को शक्ति दे सकेगी और कर्तव्य आरोपित कर सकेगी। यह स्पष्ट है कि सघ सरकार के निर्देशो पर ससद द्वारा निर्मित ऐसी विधियो के प्रयोग मे राज्य प्रशासन को जो अतिरिक्त खर्चा करना पडेगा वह सघ द्वारा अदा किया जायेगा।'[1]

सघ सरकार को बाह्य आक्रमण और आन्तरिक अशान्ति से राज्यो को सरक्षण प्रदान करना होता है और इस बात के विषय मे आश्वस्त होना पडता है कि प्रत्येक राज्य की सरकार सविधान के उपबन्धो (Provisions) के अनुसार चलाई जा रही है। अपने इन कर्तव्यो को पूरा करने के लिये सघ सरकार को राज्यो के मामलो मे हस्तक्षेप भी करना पड सकता है।[2]

अनुच्छेद २६० सघ सरकार को इस बात का अधिकार देता है कि वह अन्य सरकारो से करार (Agreement) करके भारत से बाहर के राज्य-क्षेत्रो (Territories) के सम्बन्ध मे अपने क्षेत्राधिकार का विस्तार कर सके। अनुच्छेद २६१ मे इस बात की व्यवस्था है कि भारत के राज्य-क्षेत्र में सर्वत्र, सघ की और प्रत्येक राज्य की सार्वजनिक क्रियाओ, अभिलेखो (Records) और न्यायिक कार्यवाहियो (Judicial proceedings) को पूरा विश्वास तथा पूरी मान्यता प्रदान की जानी चाहिये।

---

1 अनु० २५८ (१), (२) और (३)

2 अनु० ३५५

अनुच्छेद २६२ ससद को यह अधिकार देता है कि वह अन्तर्राज्यीय नदियो अथवा नदी-घाटियो (River valleys) से सम्वन्धित विवादो के न्याय-निर्णयन (Abjudication) के लिये विधियो का निर्माण कर सके। ससद विधि द्वारा यह भी उपलब्ध कर सकेगी कि उच्चतम न्यायालय अथवा कोई न्यायालय ऐसे किसी भी विवाद के सम्वन्ध मे अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग न कर सकेगा।

अनुच्छेद २६३ राष्ट्रपति को यह अधिकार प्रदान करता है कि वह राज्यो के वीच उत्पन्न विवादो के सम्बन्ध मे अथवा ऐसे मामलो के सम्बन्ध मे, जो कुछ या सब राज्यो के अथवा सघ और एक या अधिक राज्यो के पारस्परिक हित से सम्बद्ध हो, जाच करने तथा सिफारिशें करने के लिए एक अन्तर्राज्य परिषद् (Inter-state council) की स्थापना कर सके।

सघ सरकार को, कतिपय ऐसे मामलो का नियमन करने के लिये जोकि राज्यो को भी प्रभावित करते है, कुछ शक्तिया प्राप्त है। इस प्रकार, सघ तथा राज्यो के सभी निर्वाचनो (Elections) का अधीक्षण (Superintendence), निर्देशन (Direction) तथा नियन्त्रण (Control) सघ के राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किये गये एक निर्वाचन आयोग (Election Commission) मे निहित होगा।[1] भारत के नियन्त्रक व महालेखा-परीक्षक (Comptroller and Auditor General) को सघ तथा राज्य सरकारो, दोनो के ही लेखो अथवा खातो (Accounts) तथा लेखा-परीक्षणो (Audit) का पर्यवेक्षण एव नियन्त्रण करना होता है।[2] राष्ट्रपति को कुछ परिस्थितियो मे राज्यो के लोक सेवा आयोगो (Public Service Commissions) के अध्यक्ष तथा सदस्यो को हटाने की शक्ति प्राप्त है।[3] अनुसूचित आदिम जातियो (Scheduled tribes) और पिछडे हुए वर्गों (Backward classes) के कल्याण का कार्य राष्ट्रपति की विशिष्ट देख-रेख के अन्तर्गत रखा गया है जोकि उनकी दशा की जाच पडताल करने के लिये एक आयोग की नियुक्ति कर सकता है और आयोग की सिफारिशो को दृष्टिगत रखते हुए, उनकी दशाओ को सुधारने के लिए राज्यो को निर्देश दे सकता है।[4] राज्यो के उच्च न्यायालयो (High Courts) का विधान तथा सगठन सघीय विषय (Union subject) है और उनके न्यायाधीश (Judges) राष्ट्रपति द्वारा ही नियुक्त किये जाते हैं, हटाये जाते हैं तथा स्थानान्तरित (Transfer) किये जाते हैं।[5] राज्य प्रशासन के उच्च पदाधिकारी अखिल भारतीय सेवाओ—भारतीय प्रशासन सेवा (I A S) तथा भारतीय पुलिस सेवा (I P S) आदि—से सम्बद्ध होते हैं। इसमे कोई सन्देह नही कि इन सेवाओ के पदाधिकारी

1 अनुच्छेद ३२४

2 अनु० १५० और १५१

3 अनु० ३१७

4 अनु० ३३६

5 अनुच्छेद २१७

राज्यो मे कार्य करते हैं, परन्तु उनकी भर्ती (Recruitment) तथा सेवाओ की शर्तें आदि सब केन्द्र सरकार द्वारा नियन्त्रित की जाती है।

केन्द्र तथा राज्यो के बीच वित्तीय सम्बन्ध
(Finance Relations between the Centre and the States)

भारत ससदीय पद्धति की सरकार से युक्त एक सघ-राज्य है। सघ मे वित्तीय प्रशासन का उत्तरदायित्व अपने-अपने सम्बन्धित क्षेत्राधिकार (Jurisdiction) मे केन्द्र तथा राज्य सरकारो पर ही अवलम्बित रहता है।

सघीय पद्धति की मूलभूत बात है केन्द्र तथा राज्य सरकारो के बीच शक्तियो का विभाजन, जिसमे अपने-अपने क्षेत्राधिकार मे दोनो को ही सर्वोच्चता प्राप्त होती है। इस सघीय सिद्धात को समुचित रूप से कार्यरूप मे परिणत करने के लिए यह आवश्यक है कि वित्तीय साधनो पर राष्ट्रीय सरकार तथा प्रत्येक राज्य सरकार (इकाई) का यथेष्ट मात्रा मे स्वतत्र नियत्रण कायम रहे जिससे कि वे अपने अनन्य कार्यों को सम्पन्न कर सकें। सघीय वित्त (Federal finance) की एक आदर्श पद्धति के लिए यह जरूरी है कि सघ तथा राज्य सरकारो के बीच राजस्व के स्रोतो (Sources of revenue) का स्पष्ट विभाजन हो जिससे कि प्रत्येक पक्ष को परस्पर वित्तीय दृष्टि से स्वतत्र बनाया जा सके। परन्तु यह पाया गया है कि ससार के किसी भी सघ-राज्य के लिए इस सिद्धात का अनुसरण करना बडा कठिन रहा है। वित्तीय विभाजन के इस सघीय सिद्धात के अनुसरण करने का निकटतम प्रयत्न सयुक्त राज्य अमेरिका मे किया गया है, यद्यपि वहाँ भी अभी हाल के वर्षों मे यह देखा गया है कि राज्यो को सघीय सहायक अनुदान (Grants-in-aid) दिये जाने लगे हैं। अन्य सघ-राज्यो मे या तो सघ सरकार राज्य सरकारो (इकाइयो) के साधनो मे अपना अशदान (Contribution) देती है जैसे कि कनाडा व आस्ट्रेलिया आदि मे, अथवा राज्य सघीय राजकोष (Federal Exchequer) अशदान देते हैं जैसे कि स्विट्जरलैंड मे।

संयुक्त राज्य साधनो का विभाजन
(The Division of Resources in the United States)

अमेरिका सविधान के अनुच्छेद (Article) १ की धारा (Section) ८, ६ व १० के द्वारा वित्तीय साधनो को केन्द्र तथा राज्य के बीच बाटा गया है। सयुक्त राज्य अमेरिका के सविधान के अनुच्छेद १ की ८वी धारा मे यह व्यवस्था दी गई है कि "काग्रेस को करो, शुल्को, महसूलो व उत्पादन करो के लगाने व उनका सग्रह करने की, ऋणो की अदायगियाँ करने की तथा सयुक्त राज्य की सामूहिक प्रतिरक्षा व सामान्य कल्याण के लिए व्यवस्था करने की शक्ति प्राप्त होगी, परन्तु समस्त सयुक्त राज्य (United States) मे सम्पूर्ण करो, महसूलो तथा उत्पादन करो की एकरूपता बनी रहेगी।"

इस प्रकार, संयुक्त राज्य अमेरिका मे, संघीय राजस्व (Federal revenue) के प्रमुख स्रोत इस प्रकार हैं —

मद्य व तम्बाकू आदि के निर्माण, विक्रय व उपभोग पर लगाये जाने वाले सीमा-कर तथा उत्पादन कर, व्यक्तियो, व्यावसायिक संगठनो (Business organisations) तथा निगमो (Corporations) पर लगाया जाने वाला आय कर (Income tax)। राज्यो की आय के प्रमुख स्रोत विक्री कर (Sales tax) व व्यवसाय कर (Business tax) आदि हैं।

भारत मे संघ तथा राज्यो के बीच साधनो का विभाजन

(The Division of Resources between the Union and the States in India)

भारत मे, राजस्व के स्रोतो का निम्न प्रकार से विभाजन किया गया है। भारतीय संविधान की सप्तम अनुसूचि (Seventh schedule) मे शक्तियो (Powers) की जो तीन सूचियाँ (Lists) दी गई हैं वे संघ तथा राज्यो के बीच राजस्व के स्रोतो (Sources of revenue) का निम्न प्रकार विभाजन करती है —

(क) संघीय स्रोत

(The Unions sources)

(१) कृषि की आय के अतिरिक्त अन्य आमदनियो पर कर।

(२) सीमा कर (Customs duties) जिसमे निर्यात कर भी सम्मिलित है।

(३) मानव उपभोग के लिए काम आने वाली मदिरा को छोडकर तथा अफीम, भारतीय भाग और अन्य नशीली औषधियो एव नशीले पदार्थों को छोड कर भारत मे निर्मित व उत्पादित तम्बाकू और अन्य वस्तुओ पर उत्पादन-कर (Excise duties)।

(४) निगम कर (Corporation tax)।

(५) व्यक्तियो तथा कम्पनियो की कृषि-भूमि सम्वन्धी परिसम्पति (Asset) को छोडकर अन्य परिसम्पत्तियो के पूंजीगत मूल्य पर कर तथा कम्पनियो की पूंजी पर कर।

(६) कृषि सम्वन्धी भूमि को छोड कर अन्य सम्पत्ति (Property) के सम्वन्ध मे आस्ति कर (Estate duty)।

(७) कृषि भूमि को छोड कर सम्पत्ति के उत्तराधिकारी (Succession) के सम्वन्ध मे कर।

(८) रेल-मार्ग, समुद्र-मार्ग तथा वायु-मार्ग से आने जाने वाले माल तथा यात्रियो पर सीमान्त कर (Terminal taxes), रेल के किरायो तथा भाडो पर कर।

(९) मुद्रांक शुल्को (Stamp duties) को छोड कर शेयर बाजारो (Stock exchange) तथा वायदा बाजारो (Future market) के सौदो पर कर।

(१०) विनिमय-पत्रो (Bills of exchange) चैको, प्रतिज्ञा-पत्रो (Promissory notes), वहन-पत्रो, (Bills of lading), प्रत्यय-पत्रो (Letters of Credit), बीमे की पालिसियो, शेयरो के हस्तान्तरण, डिबेन्चरो (Debentures) प्रतिहस्तक पत्रो (Proxies), तथा प्राप्ति-पत्रो (Receipts) के सम्बन्ध मे मुद्राक-शुल्क की दरें ।

(११) समाचार-पत्रो के क्रय अथवा विक्रय तथा उनमे प्रकाशित विज्ञापनो पर कर ।

(१२) किसी न्यायालय मे ली जाने वाली फीसो को छोड कर सघ सूची के विषयो मे से किसी के बारे मे फीस ।

अन्य स्रोत—सघ सरकार के राजस्व के तीन अन्य स्रोतो का भी यहाँ उल्लेख किया जा सकता है । वे इस प्रकार है (१) व्यावसायिक उद्यमो तथा सरकारी एकाधिकारो (Monopolies), जैसे कि रेलवे, डाक व तार, नमक उत्पादन, अफीम की खेती व उसके उत्पादन से होने वाली आय , (२) राज्य के सर्वोच्च अधिकारो और कार्यों से होने वाली आय, जैसे कि मुद्रा (Currency) तथा ढुलाई (Carriage) से होने वाली आय, राज्य की सम्पत्ति से होने वाली आय, सरकार द्वारा कब्जे से प्राप्त होने वाली आय अथवा सम्पत्ति आदि, (३) सरकार द्वारा ईकट्ठी की जाने वाली धनराशियाँ ।

(ख) राजकीय स्रोत
(The State Sources)

(१) मालगुजारी (Land revenue) ।

(२) कृषि आय पर कर ।

(३) कृषि-भूमि के उत्तराधिकार के सम्बन्ध मे लगाये जाने वाले कर ।

(४) कृषि-भूमि के सम्बन्ध मे आस्ति कर (Estate duty) ।

(५) भूमि तथा भवनो पर कर ।

(६) खनिज सम्वन्धी अधिकारो पर कर, किन्तु खनिज विकास के सम्बन्ध मे ससद द्वारा लगाई गई किसी भी शर्त के अन्तर्गत ।

(७) मानव उपभोग के काम मे लाई जाने वाली शराब पर तथा अफीम, भाग और अन्य नशीली औषधियो व नशीली वस्तुओ के उत्पादन पर लगाये जाने वाले कर ।

(८) किसी भी स्थानीय क्षेत्र मे उपभोग, प्रयोग अथवा विक्री के लिए आने वाले माल के प्रवेश पर कर ।

(९) समाचार-पत्रो को छोड कर अन्य वस्तुओ के विक्रय अथवा क्रय पर कर ।

(१०) विजली के उपभोग तथा विक्रय पर कर ।

(११) समाचार-पत्रो मे छपने वाले विज्ञापनो को छोड कर अन्य विज्ञापनो पर कर ।

(१२) सडको तथा आन्तरिक जल-मार्गों द्वारा ले जाये जाने वाले माल तथा यात्रियो पर कर।

(१३) सडको का उपभोग करने के लिए गाडियो पर लगाये जाने वाले कर।

(१४) पशुओ व नावो पर कर।

(१५) मार्ग कर (Toll tax)।

(१६) व्यवसायो, व्यापारी, धन्धो व रोजगार पर कर।

(१७) प्रति व्यक्ति-कर (Capitation tax)।

(१८) विलासिता की वस्तुओ पर कर, मनोरजन एव मनोविनोद कर, बाजी कर (Betting tax) तथा जुआ कर।

(१९) मुद्राक-शुल्क की दरो के सम्वन्ध मे सघ सूची मे उल्लिखित दस्तावेजो (Documents) को छोड कर अन्य दस्तावेजो के वारे मे मुद्राक-शुल्क (Stamp duty) की दरे।

(२०) राज्य सूची के विपयो मे से किसी के वारे मे शुल्क।

अन्य स्रोत—राज्यो के लिए आय के तीन अन्य स्रोत भी है जो कि निम्न प्रकार हैं—

(१) व्यावसायिक उद्यम जैसे परिवहन (Transport), मत्स्यपालन आदि, (२) खानो से प्राप्त रायल्टी, जगलो से होने वाली आय, पृथ्वी मे गढा हुआ धन आदि, (३) सघ सरकार से प्राप्त होने वाले सहायक अनुदान (Grants-in-aid), (४) उधार लेना।

(ग) समवर्ती स्रोत
(Concurrent sources)

(१) न्यायिक मुद्राको (Judicial stamps) द्वारा सगृहीत शुल्को या फीसो को छोडकर अन्य मुद्राक-शुल्क, किन्तु इसके अन्तर्गत मुद्राक-शुल्क की दरें नही है।

(२) सघ तथा राज्यो के लिए निर्धारित समवर्ती स्रोतो के विषय मे से किसी के भी वारे मे फीसें।

करो की प्राप्तियो का वास्तविक बंटवारा
(The actual allocation of Tax proceeds)

इस प्रकार भारतीय सविधान मे करो के शीर्षक (Heads) तथा करो द्वारा धन प्राप्त करने के सम्वन्ध मे सघ और राज्यो की शक्तियाँ निर्धारित कर दी गई हैं। कर-प्राप्तियो के वास्तविक बटवारे के दृष्टिकोण से, करो के सघीय स्रोतो को पाच श्रेणियो मे रखा जाता है। सर्वप्रथम, वे कर जो कि सघ द्वारा लगाये जाते है तथा सघ द्वारा ही उनका सग्रह (Collection) किया जाता है और उनकी प्राप्तियाँ भी पूर्णत सघ को ही उपलब्ध होती है। केवल उन करो को छोड कर, जिनके बारे मे सविधान मे कुछ अन्य विशिष्ट उपबन्ध (Provisions) दिये गए हैं, सघ सूची मे उल्लिखित शेष सभी कर इस श्रेणी के अन्तर्गत आते है।

दूसरे, वे कर जो कि केन्द्र सरकार द्वारा लगाये जाते है परन्तु उनका सग्रह राज्यो द्वारा किया जाता है तथा वे पूर्णतया राज्यो को ही सौंप दिए जाते हैं। ऐसे मुद्राक-शुल्क (Stamp duties) तथा औषधीय (Medicinal) व प्रशासकीय सामग्री (Toilet preparations) पर लगाये जाने वाले उत्पादन-शुल्क (Excise duties) जो सघ सूची मे वर्णित हैं, इस श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं।[1]

तीसरी श्रेणी के वे कर तथा शुल्क होते है जो सघ द्वारा लगाये जाते है और सघ द्वारा ही उनका सग्रह किया जाता है परन्तु उनकी शुद्ध प्राप्तियाँ (Net proceeds) राज्यो को सौप दी जाती हैं। इन करो मे निम्नलिखित सम्मिलित किये जाते हैं (क) कृषि-भूमि को छोडकर अन्य सम्पत्ति (Property) के उत्तराधिकार पर कर, (ख) कृषि-भूमि को छोडकर अन्य सम्पत्ति के सम्बन्ध मे आस्ति कर (Estate duty), (ग) रेल, समुद्र अथवा वायुमार्ग से लाये जाने वाले पदार्थों अथवा यात्रियो पर सीमान्त कर (Terminal taxes), (घ) रेल किरायो तथा भाडो पर कर, (ङ) शेयर बाजारो तथा वायदा बाजारो के सौदो पर मुद्राक-शुल्क को छोडकर अन्य कर, और (च) समाचार-पत्रो के क्रय-विक्रय तथा उनमे प्रकाशित विज्ञापनो पर कर।[2]

चौथे, कृषि आय को छोडकर अन्य आमदनियो पर कर भारत सरकार द्वारा लगाये जायेंगे तथा उसके द्वारा ही उनका सग्रह किया जायेगा किन्तु उनकी प्राप्तियों को सघ तथा राज्यो के बीच वितरित कर दिया जायेगा।[3]

अन्त मे, वे अधिभार (Surcharges) (अर्थात् करो की बढाई हुई दरें) होते हैं जिन्हे वे सघ सरकार ऊपर उल्लिखित तृतीय व चतुर्थ श्रेणी से सम्बन्धित किसी भी कर तथा शुल्क पर लगा सकती हैं। यद्यपि वे कर, जिन पर कि ऐसे अधिभार लगाये जाते हैं या तो राज्यो को सौंप दिए जाते है अथवा सघ तथा राज्यो मे वितरित कर दिए जाते हैं, किन्तु इन अधिभारो की प्राप्तिया पूर्णतया सघ को ही प्राप्त होती हैं।[4]

जहाँ तक आय-कर (Income tax) का सम्बन्ध है, यह सघ सरकार द्वारा लगाया जाता है तथा उसके द्वारा ही इसका सग्रह किया जाता है परन्तु इसकी प्राप्तिया सघ तथा राज्यो के बीच वितरित कर दी जाती हैं। इसके अतिरिक्त सघ की ओर से राज्यो को सहायक अनुदान (Grants-in-aid) दिये जाने की भी व्यवस्था है।[5] राज्य केन्द्र से कर भी माग सफते है अथवा खुले बाजार (Open market) से उधार ले सकते हैं।

---

1 अनुच्छेद २६८
2 अनुच्छेद २६९
3 अनुच्छेद २७० (१), (२) और (३)
4 अनुच्छेद २७१
5 अनुच्छेद २७५

वित्त आयोग
(Finance Commission)

भारतीय सविधान मे केन्द्र तथा राज्य सरकारो के बीच वित्तीय साधनो के वितरण की योजना की विस्तृत रूप मे व्याख्या की गई है। परन्तु देश की बदलती हुई आर्थिक परिस्थितियो को दृष्टिगत रखते हुए वित्तीय साधनो के वितरण की योजना मे समय-समय पर हेर-फेर करने पडते हैं। अत केन्द्र तथा राज्य सरकारो के बीच वित्तीय साधनो का उचित समायोजन (Adjustment) करने के उद्देश्य मे सविधान मे एक वित्त आयोग की नियुक्ति की व्यवस्था की गई है।

राष्ट्रपति सविधान के लागू होने के दो वर्ष के भीतर और उसके पश्चात् प्रत्येक पाँचवे वर्ष की समाप्ति पर (अथवा यदि वे आवश्यक समझे तो पाच वर्ष से पहले भी) आदेश द्वारा एक वित्त आयोग की नियुक्ति करेंगे जिसका एक अध्यक्ष (Chairman) तथा चार अन्य सदस्य होंगे। आयोग का कार्य यह होगा कि वह निम्न मामलो के सम्बन्ध मे राष्ट्रपति को अपनी सिफारिशे प्रस्तुत करे —

"(क) सघ तथा राज्यो के बीच उन करो की शुद्ध प्राप्तियो (Net proceeds) के वितरण के बारे मे, जोकि इस अध्याय (सघ तथा राज्यो के बीच राजस्वो का वितरण) के आधीन उनमे विभाजित होती हैं या होवें, तथा विभिन्न राज्यो के बीच ऐसी प्राप्तियो के तत्सम्बन्धी अशो के बटवारे के बारे मे,

(ख) उन सिद्धान्तो के बारे मे, जिनके आधार पर भारत की सचित निधि (Consolidated Fund of India) मे से (अर्थात् भारत सरकार की आय मे से राज्यो की सहायक अनुदान (Grants-in-aid) दिये जा सकें,

(ग) अनुच्छेद २७८ के खण्ड (१) के अधीन या अनुच्छेद ३०६ के अधीन भारत सरकार और प्रथम अनुसूची (Schedule) के भाग (ख)[1] मे उल्लिखित किसी राज्य की सरकार के बीच किये गये करार (Agreement) की शर्तों को जारी रखने अथवा उनमे सशोधन करने के बारे मे,

(घ) अन्य किसी भी ऐसे मामलो के बारे मे, जो कि दृढ एव सुस्थित वित्तीय व्यवस्था की दृष्टि मे राष्ट्रपति द्वारा आयोग को सौंपा जाये।"[2]

सविधान के इन उपबन्धो (Provisions) के अनुसार राष्ट्रपति द्वारा प्रथम वित्त आयोग की नियुक्ति ३० नवम्बर सन् १९५१ को की गई थी जिसने ३१ दिसम्बर सन् १९५२ को अपना प्रतिवेदन (Report) प्रस्तुत किया। श्री के० सी० नियोगी इस आयोग के अध्यक्ष (Chairman) थे। मई, सन् १९५६ मे श्री के० सन्थानम् की अध्यक्षता मे द्वितीय वित्त आयोग की नियुक्ति की गई थी जिसने अपना अन्तिम प्रतिवेदन सितम्बर, सन् १९५७ मे प्रस्तुत किया। प्रथम वित्त आयोग

1 भाग 'क' और 'ख' राज्यो का भेद सन् १९५६ से समाप्त कर दिया गया है।

2 अनुच्छेद २८० (३)

ने केन्द्र व राज्यो के बीच राजस्व-वितरण के सम्बन्ध मे तीन सिद्धान्त प्रतिपादित किये। वे सिद्धान्त इस प्रकार थे।

प्रथम, केन्द्र के पास से साधनो का अतिरिक्त स्थानान्तरण इस प्रकार होना चाहिये कि अर्थ-व्यवस्था (Economy) की स्थिरता तथा देश की प्रतिरक्षा जैसे महत्वपूर्ण विषयो के सम्बन्ध मे केन्द्र के उत्तरदायित्व को देखते हुये स्थानान्तरण का इसके साधनो पर कोई अनुचित बोझ न पडे तथा वह उस भार को सहन कर सके।

दूसरे सहायक अनुदानो के वितरण के बारे मे भाग 'क' तथा 'ख' के सभी राज्यो के सम्बन्ध मे एक से ही सिद्धान्त अपनाये जाने चाहिये (सन् १९५६ मे चूंकि राज्यो का पुनर्गठन हो गया है अत 'क' और 'ख' राज्यो के बीच भेद समाप्त कर दिया गया है)।

तीसरे, वितरण की योजना का उद्देश्य यह होना चाहिये कि विभिन्न राज्यो के बीच की असमानताये दूर हो जायें। वित्त आयोग ने यह विचार व्यक्त किया कि "राज्यो की सम्पन्नता निश्चित रूप से एक सुदृढ तथा वित्तीय दृष्टि से सुस्थिर केन्द्र की ठोस नीव पर ही निर्भर होती हैं।"[1] आयोग ने यह सिफारिश की कि राज्यो को बाटे जाने वाले आय-कर (Income tax) की शुद्ध प्राप्तियो (Net proceeds) का प्रतिशत ५०% से बढाकर ५५% कर दिया जाना चाहिये। द्वितीय वित्त आयोग ने इस प्रतिशत को ५५ से बढाकर ६० कर दिया। जहाँ तक विभिन्न राज्यो के बीच बटवारे का सम्बन्ध है, प्रथम, वित्त आयोग ने यह प्रस्ताव किया कि आय-कर की प्राप्तियो का २० प्रतिशत भाग तो कर के सापेक्षिक सग्रहो (Relative collections) के आधार पर और ८० प्रतिशत भाग सन् १९५१ की जनगणना (Census) के अनुसार सापेक्षिक जनसख्या (Population) के आधार पर विभाजित किया जाना चाहिये।[2]

इन परिस्थितियो मे, भारत मे केन्द्र तथा राज्यो के बीच वित्तीय स्रोतो (Financial sources) का विभाजन सर्वोत्तम है। आय-कर ही सरकारी आय का एकमात्र सबसे बडा स्रोत है और केन्द्र तथा राज्य सरकारो के बीच इसका बटवारा समुचित रूप से किया गया है। इसके अतिरिक्त, प्रत्येक पाच वर्ष के पश्चात् वित्त आयोग की स्थापना के द्वारा वित्तीय स्रोतो के पुनर्वलोकन (Review) की जो व्यवस्था की गई है वह भारतीय सघीय वित्तीय व्यवस्था (Indian Federal Financial System) का एक बडा अच्छा लक्षण है।

(२) राज्य-स्थानीय सम्बन्ध
(State Local Relations)

सघ राज्य सम्बन्धो का विवेचन करने के पश्चात्, अब हम प्रशासन के द्वितीय स्तर, अर्थात् राज्य सरकार तथा स्थानीय प्रशासन (Local administrations)

1 भारतीय वित्त आयोग का प्रतिवेदन, १९५२, पृष्ठ ७

2 भारतीय वित्त आयोग का प्रतिवेदन, १९५२, पृष्ठ ७६

के बीच के सम्बन्धो का अध्ययन करेंगे। किसी भी लोकतन्त्र (Democracy) को जब तक वास्तविक लोकतन्त्र नही कहा जा सकता तब तक कि उसमे स्थानीय स्वशासन (Local self government) की कोई व्यवस्था न हो। स्थानीय स्वशासन सस्थाये वे प्रशिक्षण स्कूल (Training school) हैं जिनमे कि देश के भावी प्रजातन्त्र के कर्णधार प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं। ये स्थानीय सस्थाये (Local bodies) अपने क्षेत्र के लोगो को केवल लोकतन्त्र का प्रशिक्षण ही नही देती, अपितु वे कुछ ऐसे कार्य भी सम्पन्न करती है जोकि समाज के अस्तित्व के लिए अनिवार्य होते हैं। अग्रेज जनता के स्वास्थ्य, समृद्धि तथा कल्याण मे स्थानीय सस्थाओ के योग की चर्चा करते हुए 'म्यूनिसिपल प्रगति की एक शताब्दी' (A Century of Municipal Progress) के सम्पादको ने यह कहा कि "स्थानीय सरकार के गत सौ वर्षों मे मृत्यु दर (Death rate) आधी कर दी है और बाल मृत्यु सख्या की दर मे तीन चौथाई की कमी कर दी है। हैजा जोकि समयकालीन अवधियो पर धमकियो के रूप मे हमारे सामने आता था, उसके बारे मे स्थानीय सरकार ने हमे सिखाया है कि हम उसे एक पुरानी व नयी गुजरी चीज समझे। · · अनेक अन्य सक्रामक रोग (Infectious diseases), जैसे कि क्षयरोग, जिस अनुपात मे अब कम हो गये है, एक शताब्दी पहले उसको पूर्णत· काल्पनिक समझा जाता था। ये वे तथ्य है जिन्हे आकडो द्वारा सिद्ध किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त लोगो के सुख तथा सुविधाओ मे जो असाधारण वृद्धि हुई है उसको हम इस रीति से सिद्ध नही कर सकते।"[1] भारत मे महत्वपूर्ण स्थानीय सस्थाये ये है जिले के लिये जिलाबोर्ड, नगर के लिए नगरपालिका (Municipal Board) और गावो के लिए ग्राम पचायते। बम्बई, मद्रास और देहली जैसे बडे नगरो मे तथा उत्तर प्रदेश मे कानपुर, इलाहाबाद, वाराणसी, आगरा तथा लखनऊ (KABAL towns) मे नगर निगम (City corporations) हैं।

स्थानीय संस्थाओ पर राज्य का नियन्त्रण
(State Control over Local Bodies)

राज्य अनेक प्रकार से स्थानीय सस्थाओ पर नियन्त्रण लगाते है। स्थानीय सस्थाओ का निर्माण राज्य के विधान-मण्डल (Legislature) की विधि (Law) द्वारा किया जाता है और इस विधि से ही उन्हे जीवन, शक्ति तथा दर्जा प्राप्त होता है। स्थानीय सस्थाओ के कार्य विशिष्ट रूप से सविधियो (Statutes) मे निर्धारित कर दिए जाते है। राज्य सरकारें स्थानीय प्रशासन के कार्य-सचालन के लिए विस्तृत नियम बनाती हैं। स्थानीय प्रशासन के महत्वपूर्ण मामले, जैसे कि बोर्डों की शक्ति, चुनावो का सचालन, करो का निर्धारण तथा सग्रह, स्थानीय बजटो को तैयार करना, ऋण लेने की शक्ति आदि सब, राज्य सरकारो द्वारा बनाए गए नियमो (Rules) के द्वारा ही व्यवस्थित एव नियमित किए जाते है। स्थानीय सस्थायें राज्य

1 पृष्ठ ११–१२

विधान-मण्डल की ही उत्पत्ति होती है और ये विधान-मण्डल के अधिनियम (Act) द्वारा निर्धारित सीमाओ के अन्तर्गत ही कार्य करती हैं।

राज्य सरकारें (State goverments) स्थानीय सरकारो (Local governments) का प्रशासकीय पर्यवेक्षण (Administrative supervision) भी करती हैं। स्थानीय सस्थाओ पर राज्य सरकारो की पर्यवेक्षणीय सत्ता (Supervisory authority) कायम होने के मुख्यत तीन कारण रहे हैं।

(१) कभी-कभी स्थानीय सस्थायें अपने कार्यों को पूरा करने मे असफल हो जाती हैं। कभी वे कुछ विशिष्ट क्रियाओ के क्षेत्रो मे अपने उत्तरदायित्व को निभाने मे असमर्थ रहती हैं। स्थानीय सस्थाओ की इस असफलता ने ही राज्य सरकारो को स्थानीय मामलो मे दखल देने को प्रोत्साहित किया और इस प्रकार राज्य सरकारो की पर्यवेक्षणीय सत्ता मे वृद्धि हो गई।

(२) दूसरा कारण, जिससे स्थानीय प्रशासन पर राज्य के पर्यवेक्षण की वृद्धि मे मदद मिली, इस भावना का उत्पन्न होना था कि राज्य पृथक्-पृथक् नगरों के मुकाबले अधिक अच्छे प्रशासनिक स्टाफ की व्यवस्था कर सकने की स्थिति मे होता है।

(३) इसका तीसरा कारण वित्तीय है। स्थानीय सस्थायें वित्तीय दृष्टि से आत्म-निर्भर (Self sufficient) नही होती। उनकी आय के स्रोत बहुत थोडे तथा सीमित होते हैं अत अपने कार्यों की वित्तीय व्यवस्था के लिए उन्हे राज्य के सहायक अनुदानो (Grants-in-aid) पर आश्रित रहना पडता है। इन सहायक अनुदानो के कारण भी रांज्यो को स्थानीय सस्थाओ का अत्यधिक पर्यवेक्षण करने का प्रोत्साहन मिला।

भारत मे, राज्य सरकारो को स्थानीय सस्थाओ के ऊपर निम्नलिखित प्रशासनिक अधिकार प्राप्त है —

(१) राज्य सरकारो को स्थानीय सस्थाओ से किसी भी प्रकार की सूचना प्राप्त करने का अधिकार है।

(२) राज्य सरकार को स्थानीय सस्थाओ की कार्य-प्रणाली के निरीक्षण (Inspection) का अधिकार प्राप्त है।

(३) स्थानीय सस्थाओ द्वारा बनाये जाने वाले विनियमो (Regulations) तथा उपनियमो (Bye-laws) के लिये राज्य सरकार का अनुमोदन (Approval) आवश्यक होता है।

(४) स्थानीय सस्थाओ के अनेक निर्णय तथा प्रस्ताव (Resolutions) राज्य सरकार की स्वीकृति के विना कार्यान्वित नही किये जा सकते। राज्य सरकार को स्थानीय सस्थाओ के अधिकारियो एव कर्मचारियो को नियुक्त करने की शक्ति प्राप्त होती है।

(५) राज्य सरकार स्थानीय सस्थाओ के लिये सामान्य स्तरो (Common standards) का निर्धारण करती है।

(६) स्थानीय सस्थाओ को अपने कार्यों के सम्बन्ध मे राज्य सरकार के सम्मुख नियतकालीन प्रतिवेदन (Periodic reports) प्रस्तुत करने पडते है।

(७) स्थानीय सस्थाये सहायक अनुदानो के लिये राज्य सरकार पर निर्भर होती हैं। स्थानीय सस्थाओ के वित्तीय दृष्टि से राज्य सरकार पर निर्भर रहने के कारण राज्य को स्थानीय प्रशासन पर अधिक नियन्त्रण लगाने की प्रेरणा मिलती है।

(८) राज्य सरकार उन स्थानीय सस्थाओ के विरुद्ध कठोर दण्डात्मक कार्यवाही (Drastic punitive action) कर सकती है जो अपना कार्य समुचित रूप मे सम्पन्न नही करती। ये कार्यवाहियाँ निम्नलिखित होती हैं —

(क) राज्य सरकारो को यह शक्ति प्राप्त होती है कि वे स्थानीय सस्थाओ के कुछ प्रस्तावो को निलम्बित (Suspend) कर सके। उदाहरण के लिए उत्तर-प्रदेश जिला बोर्ड अधिनियम, १६२२ (U P District Board Act, 1922) मे यह व्यवस्था है कि "कमिश्नर (Commissioner) अथवा जिलाधीश (District Magistrate), अपने क्षेत्रीय प्रदेश अथवा जिले की सीमाओ के अन्तर्गत, जैसी भी स्थिति हो, लिखित आदेश (Order) द्वारा, किसी वोर्ड अथवा बोर्ड की किसी समिति, अथवा सयुक्त समिति (Joint Committee) अथवा बोर्ड का सयुक्त समिति के किसी भी अधिकारी या कर्मचारी द्वारा, इस या अन्य किसी विधिकरण (Enactment) के अन्तर्गत दिये गये या पास किये गये आदेश अथवा प्रस्ताव के कार्यान्वय को अथवा आगे कार्यान्वित करने को रोक सकता है, यदि उसकी राय मे उक्त प्रस्ताव अथवा आदेश ऐसी प्रकृति का है जिससे वैधानिक रूप से काम मे लगी हुई जनता अथवा व्यक्तियो के किसी वर्ग या समुदाय के लिये बाधा, परेशानी या क्षति उत्पन्न हो, अथवा ऐसा होने की सम्भावना हो, अथवा जिससे मनुष्यो के जीवन, स्वास्थ्य तथा सुरक्षा को खतरा उत्पन्न हो, या जिससे दगा अथवा फिसाद पैदा होने की सम्भावना हो, और ऐसे प्रस्ताव या आदेश के अन्तर्गत अथवा उसके परिपालन के लिये किसी भी व्यक्ति द्वारा किये जाने वाले किसी भी कार्य अथवा कार्य के जारी रखने पर रोक लगा सकता है।" ऐसा उपलब्ध (Provision) सभी स्थानीय सस्थाओ के अधिनियम (Acts) मे पाया जाता है।

(ख) राज्य सरकार स्थानीय सस्थाओ के कुछ आदेशो के विरुद्ध स्थानीय सस्थाओ के कर्मचारियो की तथा जनता कि पुनर्न्यायार्थनाओ अथवा अपीलो की सुनवाई कर सकती है।

(ग) राज्य सरकारो को स्थानीय सस्थाओ के अध्यक्ष (Chairman) अथवा कुछ विशिष्ट सदस्यो को हटाने की शक्ति प्राप्त है।

---

1 धारा (Section) १६६ (१)

(घ) राज्य सरकार स्थानीय सस्था को कार्यच्युत करके स्वय उसका स्थान ले सकती है।

(ङ) इस सम्बन्ध मे राज्य सरकार की सबसे बडी तथा दृढ शक्ति यह है कि वह स्थानीय सस्था को भग (Dissolve) कर सकती है। यदि राज्य सरकार यह समझती है कि स्थानीय सस्था अपना कार्य सम्पन्न नही कर रही है अथवा उसका दोषपूर्ण रीति से कार्य करना बराबर जारी है तो उसको भग किया जा सकता है। ऐसा पग उठाने की धमकी इस कारण दी जाती है जिससे कि स्थानीय सस्था कुशलता के साथ अपना कार्य आरम्भ कर दे। उत्तर प्रदेश स्थानीय स्वायत्त-शासन समिति (U P Local Self Government Committee) ने यह प्रस्ताव किया है कि बोर्ड को कार्यच्युत करके उसका स्थान सरकार द्वारा स्वय नही लिया जायेगा, बल्कि एक निश्चित कार्यविधि (Fixed procedure) के अनुसार उसको भग किया जायेगा। सबसे पहले तो उससे लिखित स्पष्टीकरण (Explanation) माँगा जायेगा। यदि वह सन्तोषजनक न हो, तो निश्चित शिकायतो तथा उनके सुधार के सुझावो के साथ उसको एक चेतावनी (Warning) दी जायेगी। और यदि बोर्ड उस चेतावनी की भी ६ माह तक कोई परवाह न करे, तो उसको भग कर दिया जायेगा। तथापि, पहले बोर्ड की कालावधि के तीन माह के अन्दर नये चुनावो की व्यवस्था की जानी चाहिए। बोर्ड की एक कालावधि (Term) के अन्तर्गत बोर्ड को एक से अधिक बार भग करने की आज्ञा नही होगी।

(६) राज्य सरकार स्थानीय सस्थाओ के बीच उत्पन्न हुए मतभदो को तथा बोर्ड व उसकी समितियो और अधिकारियो के बीच उत्पन्न हुए क्षेत्राधिकार सम्बन्धी विवादो (Conflicts) को सुलझाती है।

(१०) राज्य अभिकरण (State agency) अर्थात्, (Examiner of Local Fund Accounts), बोर्ड के खातो (Accounts) का लेखा-परीक्षण (Audit) करता है और उसे अस्वीकृति (Disallowance) तथा अधिभार (Surcharge) का अधिकार प्राप्त होता है।

(११) न्यायालय (Courts) बोर्डो की किसी कार्यवाही को उसकी शक्ति से बाहर का घोषित कर सकते है।

राज्य का नियन्त्रण (State control) स्थानीय स्वशासन के राज्य विभाग तथा अन्य सम्बन्धित विभागो (Departments) द्वारा लागू किया जाता है। बोर्ड पर दिन-प्रतिदिन का नियन्त्रण जिलाधीश या कमिश्नर द्वारा लगाया जाता है। जिलाधीश बोर्डो के किसी भी अभिलेख (Record) की माग कर सकता है और उनकी सम्पत्ति (Property) आदि का निरीक्षण कर सकता है।

भारत मे स्थानीय सस्थाओ पर राज्य के नियन्त्रण का आलोचनात्मक अध्ययन
(Critical Examination of the State Control Over Local Bodies in India)

स्थानीय सस्थाओ द्वारा अपने कार्य-सम्पादन समुचित रूप से किए जाने के विषय मे निश्चिन्त होने के लिए राज्य सरकार को अत्यन्त महत्वपूर्ण भाग अदा करना पडता है। यह राज्य सरकार का ही उत्तरदायित्व है कि वह यह देखे कि स्थानीय सस्थाये अपने कार्य उपयुक्त रीति से सम्पन्न कर रही हैं और देश के निवास मे यथेष्ट रूप से भाग ले रही है या नही। इनकी सफलता के लिए यह आवश्यक है कि सरकारी नियन्त्रण मे निरन्तर देखभाल (Constant vigilance) तथा रचनात्मक मार्गदर्शन (Constructive guidance) का मिश्रण हो और ये दोनो चीजे स्थानीय समस्याओ के वैज्ञानिक अध्ययन तथा उन समस्याओ के प्रति विवेकपूर्ण एव सहानुभूतिपूर्ण रुचि पर आधारित हो। लोकतन्त्रीय व्यवस्थाओ मे, कार्यपालिका सत्ता (Executive authority) का अधिकाधिक विकेन्द्रीकरण (Decentralization) करने तथा राज्य शक्ति के उच्च अगो द्वारा अधिक कठोर नियन्त्रण एव निरीक्षण लागू किये जाने की प्रवृत्ति पाई जाती है। यदि स्थानीय सस्थाओ के नियन्त्रण को उनके कार्यों की अत्यधिक देखभाल करने तथा दोषी पाई जाने वाली सस्थाओ के विरुद्ध कठोर दण्डात्मक कार्यवाही करने तक ही सीमित रखा गया तो इन सस्थाओ के नियन्त्रण का कार्य नकारात्मक प्रकृति का ही अधिक हो जायेगा। पर्यवेक्षण (Supervision) के निश्चयात्मक पहलू (Positive aspect) को भी समान महत्व प्राप्त होना चाहिये।

भारत मे, राज्य रचनात्मक व निश्चयात्मक (Constructive and positive) नियन्त्रण की अपेक्षा औपचारिक व नकारात्मक (Formal and negative) नियन्त्रण लागू कर रहे हैं। राज्य सरकार बोर्ड के उन कार्यों पर रोक लगाती है जिन्हे वह गलत समझती है। बडे-बडे शहरो मे सडको की धूल व गन्दगी, सफाई की कमी तथा नालियो की खराब व्यवस्था के बारे मे प्रत्येक नागरिक जानता है। स्थानीय सरकारो की स्वास्थ्य सुधार सम्बन्धी गतिविधियाँ अत्यन्त अपर्याप्त हैं। भारत मे राज्य सरकारो को स्थानीय सस्थाओ पर नियन्त्रण की भारी वैधानिक शक्तियाँ प्राप्त हैं परन्तु कठिनाई से ही शायद स्थानीय सस्थाओ के किसी कार्य का निरीक्षण किया जाता है। जब कोई मन्त्री (Minister) या उच्च पदाधिकारी किसी नगर का दौरा करता है तब वे नगर साफ सुथरे दिखाई देते हैं परन्तु स्थानीय सस्थाओ द्वारा स्थानीय व्यक्तियो के स्वास्थ्य, सफाई व शिक्षा आदि की ओर अधिक ध्यान नही दिया जाता। उत्तर प्रदेश के स्थानीय सस्थाओ द्वारा सचालित किए जाने वाले अनेक ऐसे अस्पताल हैं जो समुचित योग्यता प्राप्त डाक्टरो के बिना ही कार्य कर रहे हैं। कलक्टर या कमिश्नर, जोकि राज्य सरकार

के उत्तरदायित्व पर इन सस्थाओ पर नियन्त्रण लगाते है, बडे कार्य-व्यस्त (Busy) पदाधिकारी हैं। वे स्थानीय सस्थाओ की देखभाल मे अपना अधिक समय नही लगा सकते। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि स्थानीय सस्थाओ पर राज्य के नियन्त्रण लगाने की मशीनरी तथा पद्धति अत्यधिक दोषपूर्ण हैं। राज्य सरकार अधिनियम (Act) की केवल कानूनी धाराओ की ओर ही ध्यान देती है, उनमे निहित भावना या आशय की ओर नही। यह राज्य सरकार का कर्तव्य है तथा उसकी ही महत्वपूर्ण जिम्मेवारी है कि वह स्थानीय सस्थाओ का पद-प्रदर्शन करे और उन्हे श्रेष्ठ प्रशासन की दशा मे अग्रसर करे। अत आवश्यकता इस बात की है कि वर्तमान मे पाये जाने वाले औपचारिक, वैधानिक एव नकारात्मक किस्म के नियन्त्रण के स्थान पर समुचित पद-प्रदर्शन, प्रोत्साहन तथा स्वाभाविक प्रेरणा के रूप मे नियन्त्रण के निश्चयात्मक एव रचनात्मक पहलू की ओर ध्यान दिया जाये। इस समस्या के सम्बन्ध मे अमेरिका मे किये गये प्रयोग (Experiment) के बारे मे लिखते हुए प्रोफेसर फिफनर ने यह विचार व्यक्त किया कि "राज्य का प्रशासकीय पर्यवेक्षण गहनता की दृष्टि से विभिन्न प्रकार का हो सकता है। इसका रूप केवल सूचना और परामर्श प्रदान करने मात्र से लेकर असफल स्थानीय सरकार के स्थान पर अपने प्रशासन को स्थानापन्न करने तक का हो सकता है। व्यवहार मे राज्यो ने स्थानीय इकाइयो पर कठोर अनुशासनात्मक नियन्त्रण लागू नही किये हैं। जहाँ कही इन पर यदि प्रभाव डाला भी है तो सामान्यत उनका रूप अनुचित जोर व दबाव का नही बल्कि अनुरोध व प्रोत्साहन का ही रहा है। दृढ स्थानीय परम्परा के कारण स्थानीय प्राधिकारियो को स्वेच्छा व विवेक से कार्य करने के विस्तृत अवसर मिले हैं और राज्य के प्रशासकीय नियन्त्रणो की वृद्धि मे कमी हुई है। तथ्य यह है कि नगरपालिकाओ (Municipalities) के अधिकारियो मे स्वायत्त शासन की भावना इतनी गहराई से घर कर गई है कि राज्य के पर्यवेक्षण को, यदि हो ही तो, अत्यन्त सावधानी के साथ लागू किया जाना चाहिए। जहाँ कही, कानूनी रूप से जोर दबाव डालना सम्भव भी हो, वहाँ भी दोनो के बीच कार्य का आधार सहयोग (Cooperation) ही होना चाहिये।"[1] भारत मे राज्य सरकारो को स्थानीय सस्थाओ के साथ सहयोग करना चाहिये और स्थानीय दशाओ मे सुधार करने के लिए उन्हे कार्यों की निश्चित तथा रचनात्मक रूप-रेखाओ के सुझाव देने चाहियें।

भारत मे सघ तथा राज्यो के बीच सम्बन्ध
(Union-State Relation in India)
(विशेषकर आर्थिक नियोजन एवं सामुदायिक विकास के संदर्भ मे)
(With special reference to Economic Planning and Community Development)

किसी भी देश के सविधान (Constitution) को ठीक प्रकार से समझने के

1 Pfiffner *op cit*, p 138

लिये वहाँ के सामाजिक व आर्थिक ढाचे, लोगो की आकाक्षाओ और उनकी विचार-धारा सम्बन्धी स्थिरताओ का अध्ययन करना अत्यन्त आवश्यक है। सविधान का प्रयोगात्मक रूप भी उतना ही महत्वपूर्ण होता है जितना कि उसका सैद्धान्तिक रूप। इसको प्रयोगात्मक रूप देना समाज की माँगो व दबावो पर निर्भर होता है। इस प्रकार भारतीय सघ (Indian federation) का अध्ययन 'कल्याणकारी राज्य' (Welfare State) तथा 'आर्थिक एव सामाजिक नियोजन' (Economic and social planning) के सन्दर्भ मे किया जाना चाहिए। भारत मे सभी नागरिको को 'सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक न्याय प्रदान करने तथा व्यक्ति की प्रतिष्ठा एव महत्ता और राष्ट्र की एकता को कायम रखने का निश्चय किया गया है। भारत सरकार को 'राजनैतिक जनतन्त्र' के द्वारा एक ऐसी सामाजिक एव आर्थिक व्यवस्था की स्थापना करनी है जिसमे कि जनसाधारण के रहन-सहन के स्तरो मे इतना सुधार किया जाए कि जिसमे 'कानून की दृष्टि मे समानता' (Equality before law) तथा 'अवसर की समानता' (Equality of opportunity), जिनके विषय मे कि प्रत्येक नागरिक के लिये सविधान के अन्तर्गत गारन्टी दी गई है, प्राप्त की जा सके। देश मे 'आर्थिक तथा सामाजिक प्रगति' करने के लिए जो विधि अपनाई गई है, वह है—आर्थिक एव सामाजिक नियोजन। आयोजन-रहित (Un-planned) प्रगति के मुकाबले एक आयोजनाबद्ध (Planned) विकास को सदा प्रमुखता दी जाती है।

निर्धनता, अशिक्षा, अज्ञानता, बीमारी व बेरोजगारी आदि, ये सभी समस्यायें है जो केवल कुछ राज्यो (States) तक ही सीमित नही हैं, अपितु सम्पूर्ण देश को ही उनका सामना करना पड रहा है। अन्न की कमी तथा महामारी के रूप मे फैलने वाली बीमारिया राज्यो की सीमाओ का कोई ध्यान नही रखती, और न वे राज्यो की स्वायत्तता (Autonomy) की ही चिन्ता करती हैं। अत जब समस्या राष्ट्रीय है तो उसका समाधान भी राष्ट्रीय पैमाने पर किये जाने वाले प्रयत्नो द्वारा ही हो सकता है। यही कारण है कि 'भारत मे सम्पूर्ण नियोजन का केन्द्र-बिन्दु केन्द्र (Centre) को ही बनाया गया है' यद्यपि सविधान निर्माताओ ने आर्थिक एव सामाजिक नियोजन को सम्मिलित सूची (Concurrent list) के विषयो मे रखा था। इसके अतिरिक्त, नियोजन से आशय है कि देश मे उपलब्ध साधनो का सर्वोत्तम उपयोग किया जाये। अधिकतम आर्थिक लाभ प्राप्त करने के लिए प्राथमिकताओ (Priorities) के निर्धारण की समस्या भी नियोजन से सम्बद्ध है। नियोजन के ये उद्देश्य (अर्थात् सीमित साधनो का बटवारा और उसके परिणामस्वरूप प्राथमिकताओ का निर्धारण) तभी प्राप्त किये जा सकते हैं जबकि केन्द्र सरकार (अथवा कोई केन्द्रीय अभिकरण) इस कार्य को करे। यही नही, आयोजनाबद्ध अर्थव्यवस्था (Planned economy) से सम्पूर्ण देश की आर्थिक क्रियाओ मे 'समन्वय' (Co-ordination) की समस्या भी उत्पन्न होती है। अत इन सब कारणो से यह स्पष्ट

के उत्तरदायित्व पर इन सस्थाओ पर नियन्त्रण लगाते हैं, बडे कार्य-व्यस्त (Busy) पदाधिकारी हैं। वे स्थानीय सस्थाओ की देखभाल मे अपना अधिक समय नही लगा सकते। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि स्थानीय सस्थाओ पर राज्य के नियन्त्रण लगाने की मशीनरी तथा पद्धति अत्यधिक दोषपूर्ण हैं। राज्य सरकार अधिनियम (Act) की केवल कानूनी धाराओ की ओर ही ध्यान देती है, उनमे निहित भावना या आशय की ओर नही। यह राज्य सरकार का कर्तव्य है तथा उसकी ही महत्वपूर्ण जिम्मेवारी है कि वह स्थानीय सस्थाओ का पद-प्रदर्शन करे और उन्हे श्रेष्ठ प्रशासन की दशा मे अग्रसर करे। अत आवश्यकता इस बात की है कि वर्तमान मे पाये जाने वाले औपचारिक, वैधानिक एव नकारात्मक किस्म के नियन्त्रण के स्थान पर समुचित पद-प्रदर्शन, प्रोत्साहन तथा स्वाभाविक प्रेरणा के रूप मे नियन्त्रण के निश्चयात्मक एव रचनात्मक पहलू की ओर ध्यान दिया जाये। इस समस्या के सम्बन्ध मे अमेरिका मे किये गये प्रयोग (Experiment) के बारे मे लिखते हुए प्रोफेसर फिफनर ने यह विचार व्यक्त किया कि "राज्य का प्रशासकीय पर्यवेक्षण गहनता की दृष्टि से विभिन्न प्रकार का हो सकता है। इसका रूप केवल सूचना और परामर्श प्रदान करने मात्र से लेकर असफल स्थानीय सरकार के स्थान पर अपने प्रशासन को स्थानापन्न करने तक का हो सकता है। व्यवहार मे राज्यो ने स्थानीय इकाइयो पर कठोर अनुशासनात्मक नियन्त्रण लागू नही किये हैं। जहाँ कही इन पर यदि प्रभाव डाला भी है तो सामान्यत उनका रूप अनुचित जोर व दबाव का नही बल्कि अनुरोध व प्रोत्साहन का ही रहा है। दृढ स्थानीय परम्परा के कारण स्थानीय प्राधिकारियो को स्वेच्छा व विवेक से कार्य करने के विस्तृत अवसर मिले हैं और राज्य के प्रशासकीय नियन्त्रणो की वृद्धि मे कमी हुई है। तथ्य यह है कि नगरपालिकाओ (Municipalities) के अधिकारियो मे स्वायत्त शासन की भावना इतनी गहराई से घर कर गई है कि राज्य के पर्यवेक्षण को, यदि हो ही तो, अत्यन्त सावधानी के साथ लागू किया जाना चाहिए। जहाँ कही, कानूनी रूप से जोर दबाव डालना सम्भव भी हो, वहाँ भी दोनो के बीच कार्य का आधार सहयोग (Cooperation) ही होना चाहिये।"[1] भारत मे राज्य सरकारो को स्थानीय सस्थाओ के साथ सहयोग करना चाहिये और स्थानीय दशाओ मे सुधार करने के लिए उन्हे कार्यों की निश्चित तथा रचनात्मक रूप-रेखाओ के सुझाव देने चाहियें।

भारत मे सघ तथा राज्यो के बीच सम्बन्ध
(Union-State Relation in India)
(विशेषकर आर्थिक नियोजन एवं सामुदायिक विकास के संदर्भ मे)
(With special reference to Economic Planning and Community Development)

किसी भी देश के सविधान (Constitution) को ठीक प्रकार से समझने के

1 Pfiffner *op cit*, p 138

लिये वहाँ के सामाजिक व आर्थिक ढाचे, लोगो की आकाक्षाओ और उनकी विचार-धारा सम्बन्धी स्थिरताओ का अध्ययन करना अत्यन्त आवश्यक है। सविधान का प्रयोगात्मक रूप भी उतना ही महत्वपूर्ण होता है जितना कि उसका सैद्धान्तिक रूप। इसको प्रयोगात्मक रूप देना समाज की माँगो व दबावो पर निर्भर होता है। इस प्रकार भारतीय सघ (Indian federation) का अध्ययन 'कल्याणकारी राज्य' (Welfare State) तथा 'आर्थिक एव सामाजिक नियोजन' (Economic and social planning) के सन्दर्भ मे किया जाना चाहिए। भारत मे सभी नागरिको को 'सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक न्याय प्रदान करने तथा व्यक्ति की प्रतिष्ठा एव महत्ता और राष्ट्र की एकता को कायम रखने का निश्चय किया गया है। भारत सरकार को 'राजनैतिक जनतन्त्र' के द्वारा एक ऐसी सामाजिक एव आर्थिक व्यवस्था की स्थापना करनी है जिसमे कि जनसाधारण के रहन-सहन के स्तरो मे इतना सुधार किया जाए कि जिससे 'कानून की दृष्टि मे समानता' (Equality before law) तथा 'अवसर की समानता' (Equality of opportunity), जिनके विषय मे कि प्रत्येक नागरिक के लिये सविधान के अन्तर्गत गारन्टी दी गई है, प्राप्त की जा सकें। देश मे 'आर्थिक तथा सामाजिक प्रगति' करने के लिए जो विधि अपनाई गई है, वह है—आर्थिक एव सामाजिक नियोजन। आयोजन-रहित (Unplanned) प्रगति के मुकाबले एक आयोजनाबद्ध (Planned) विकास को सदा प्रमुखता दी जाती है।

निर्धनता, अशिक्षा, अज्ञानता, बीमारी व बेरोजगारी आदि, ये सभी समस्यायें है जो केवल कुछ राज्यो (States) तक ही सीमित नही है, अपितु सम्पूर्ण देश को ही उनका सामना करना पड रहा है। अन्न की कमी तथा महामारी के रूप मे फैलने वाली बीमारिया राज्यो की सीमाओ का कोई ध्यान नही रखतीं, और न वे राज्यो की स्वायत्तता (Autonomy) की ही चिन्ता करती है। अत जब समस्या राष्ट्रीय है तो उसका समाधान भी राष्ट्रीय पैमाने पर किये जाने वाले प्रयत्नो द्वारा ही हो सकता है। यही कारण है कि 'भारत मे सम्पूर्ण नियोजन का केन्द्र-बिन्दु केन्द्र (Centre) को ही बनाया गया है' यद्यपि सविधान निर्माताओ ने आर्थिक एव सामाजिक नियोजन को सम्मिलित सूची (Concurrent list) के विषयो मे रखा था। इसके अतिरिक्त, नियोजन से आशय है कि देश मे उपलब्ध साधनो का सर्वोत्तम उपयोग किया जाये। अधिकतम आर्थिक लाभ प्राप्त करने के लिए प्राथमिकताओ (Priorities) के निर्धारण की समस्या भी नियोजन से सम्बद्ध है। नियोजन के ये उद्देश्य (अर्थात् सीमित साधनो का बटवारा और उसके परिणामस्वरूप प्राथमिकताओ का निर्धारण) तभी प्राप्त किये जा सकते है जबकि केन्द्र सरकार (अथवा कोई केन्द्रीय अभिकरण) इस कार्य को करे। यही नही, आयोजनाबद्ध अर्थव्यवस्था (Planned economy) से सम्पूर्ण देश की आर्थिक क्रियाओ मे 'समन्वय' (Co-ordination) की समस्या भी उत्पन्न होती है। अत इन सब कारणो से यह स्पष्ट

है कि आर्थिक नियोजन को यदि प्रभावशाली तथा सफल बनाना है तो इसका दायित्व केन्द्र सरकार पर ही रहना चाहिये। नियोजन का तर्कशास्त्र केन्द्रीकरण (Centralization) को नियोजन से सम्बद्ध करता है।[1]

II

१५ मार्च, सन् १९५० के मन्त्रि-परिषद् के प्रस्ताव मे इस बात पर विशेष जोर दिया गया था कि "देश के साधनो को सावधानी के साथ किये गये मूल्याकन तथा सभी सम्बद्ध आर्थिक तत्वो के उद्देश्यपूर्ण विश्लेषण के आधार पर विस्तृत नियोजन की आवश्यकता अधिक महत्वपूर्ण हो गई है।" इस प्रस्ताव द्वारा एक योजना आयोग (Planning commission) की स्थापना की गई जिससे कि देश के साधनो का सर्वाधिक प्रभावशाली तथा सन्तुलित ढग से उपयोग करने के लिए योजनाये बनाई जा सकें और उन योजनाओ को कार्यान्वित किया जा सके। पुनरावृत्ति का खतरा उठाकर भी यह उल्लेख कर देना उचित ही है कि इसके बावजूद कि भारत एक सघीय राज्य है, अनेक कारणो से योजना आयोग जैसे एक केन्द्रीय सगठन की स्थापना अनिवार्य ही थी। सर्वप्रथम तो इस कारण कि नियोजन का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य यह है कि अर्थ-व्यवस्था (Economy) के विभिन्न भागो एव क्षेत्रो के बीच सन्तुलन कायम किया जाये और सन्तुलन कायम रखने के इस कार्य को एक केन्द्रीय अभिकरण (Central agency) ही अधिक अच्छी प्रकार से सम्पन्न कर सकता है। दूसरे, नियोजन एक निरन्तर जारी रहने वाली प्रक्रिया (Process) है। इसमे केवल कुशलतापूर्ण कार्यान्वय (Execution) की ही आवश्यकता नही होती, अपितु निरन्तर मूल्याकन तथा दूरदर्शितापूर्ण सोच-विचार की भी आवश्यकता होती है। आने वाले २०-२५ वर्षों की आर्थिक समस्याओ पर विचार करना होता है और नियोजन के द्वारा उनको हल करना होता है। अत दूरदर्शितापूर्ण एव कुशल नियोजन तथा राष्ट्रीय पैमाने पर 'समन्वय' (Co-ordination) कायम करने की समस्या के हल के लिए यह आवश्यक है कि योजना आयोग जैसी एक केन्द्रीय सस्था की स्थापना की जाए। तीसरे, आयोजना-बद्ध अर्थ-व्यवस्था मे, तेजी के साथ आर्थिक विकास करना होता है। अतः यह कार्य तभी किया जा सकता है जबकि यह

1 Cf the observation of Dr Gadgil "The master plan of economic development must be country-wide In particular respects, the federating units might be left free to control the pace or direction of development and the plan itself would pay proper attention to all sided development of all regions At the same time, all federating units must accept over all direction imposed by the master-plan The federal government must have adequate powers to evolve the general plan of economic development for the whole country and must have powers to carry out its essential features and to supervise and enforce its implementation by the federating units This is only inherent in economic planning" —D R Gadgil Federating India, Poona, Gokhale Institute of Politics and Economics, 1945, p 44

कार्य पूर्णतया एक ही संस्था अथवा निकाय (Body) को सौंपा जाए। इसी कारण नियोगी समिति ने यह सिफारिश की थी कि उक्त कार्य की प्रकृति की दृष्टि से यह अत्यन्त आवश्यक है कि "केन्द्र स्तर पर केवल एक ऐसे ठोस, दृढ तथा अधिकारयुक्त संगठन की स्थापना की जानी चाहिए जो कि स्वयं को भारत के आर्थिक पुनर्निर्माण के सम्पूर्ण क्षेत्र से बराबर सम्बद्ध रखे तथा जो प्रत्यक्ष रूप से मन्त्रि-परिषद् (Cabinet) के प्रति उत्तरदायी हो।"

सम्पूर्ण देश के लिए योजनाओं के निर्माण का मुख्य उत्तरदायित्व योजना आयोग का ही है।[1] योजना को लागू करने का मुख्य उत्तरदायित्व केन्द्र सरकार के प्रशासकीय मन्त्रालयों तथा राज्य सरकारों का है। देश में नियोजन का प्रारम्भ होने और सरकार द्वारा विकास-कार्यों को अपने हाथ में लेने का कारण कई ऐसी प्रशासकीय व्यवस्थाओं की आवश्यकता उत्पन्न हुई, जैसे कि निष्पादक विभागों (Executive department) तथा मन्त्रालयों (Ministries) के अन्तर्गत नियोजन-कोष्ठ (Planning cells) बनाना, राज्य स्तर पर पूर्ण रूप से समर्थ नियोजन विभाग तथा नियोजन परामर्शदात्री संस्थायें बनाना, और केन्द्र पर परामर्श देने वाले निरीक्षक-मण्डलों (Panels) तथा वर्गों के ठोस कार्यों में युक्त एक राष्ट्रीय योजना आयोग

---

1 Under its terms of reference, the Planning Commission has to perform the following functions—

(a) Make an assessement of the material, capital and human resources of the country including technical personnel and investigate the possibilities of augmenting such of these resources as are found to be deficient in relation to the nation's requirements,

(b) Formulate a plan for the most effective and balanced utilisation of the country's resources,

(c) On a determination of priorities to define the stages in which the plan should be carried out and propose the allocation of resources for the due completion of each stage

(d) Indicate the factors which are tending to retard economic development and determine the conditions which, in view of the current social and political situation, should be established for the successful execution of the plan,

(e) Determine the nature of the machinery which will be necessary for securing the successful implementation of each stage of the plan is all its aspects,

(f) Appraise from time to time the progress achieved in the execution of each stage of the Plan and to recommend the adjustments of policy and measures that such appraisal might show to be necessary, and

(g) Make such interim or ancillary recommendations as might be appropriate on a consideration of the prevailing economic conditions, current policies, measures and development programmes or on an examination of such specific problems as may be referred to it for advice by Central and State Governments for facilitating the discharge of the duties assigned to it"

है कि आर्थिक नियोजन को यदि प्रभावशाली तथा सफल बनाना है तो इसका दायित्व केन्द्र सरकार पर ही रहना चाहिये। नियोजन का तर्कशास्त्र केन्द्रीकरण (Centralization) को नियोजन से सम्बद्ध करता है।[1]

II

१५ मार्च, सन् १९५० के मन्त्रि-परिषद् के प्रस्ताव मे इस बात पर विशेष जोर दिया गया था कि "देश के साधनो को सावधानी के साथ किये गये मूल्याकन तथा सभी सम्बद्ध आर्थिक तत्वो के उद्देश्यपूर्ण विश्लेषण के आधार पर विस्तृत नियोजन की आवश्यकता अधिक महत्वपूर्ण हो गई है।" इस प्रस्ताव द्वारा एक योजना आयोग (Planning commission) की स्थापना की गई जिससे कि देश के साधनो का सर्वाधिक प्रभावशाली तथा सन्तुलित ढग से उपयोग करने के लिए योजनाये बनाई जा सकें और उन योजनाओ को कार्यान्वित किया जा सके। पुनरावृत्ति का खतरा उठाकर भी यह उल्लेख कर देना उचित ही है कि इसके बावजूद कि भारत एक सघीय राज्य है, अनेक कारणो से योजना आयोग जैसे एक केन्द्रीय सगठन की स्थापना अनिवार्य ही थी। सर्वप्रथम तो इस कारण कि नियोजन का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य यह है कि अर्थ-व्यवस्था (Economy) के विभिन्न भागो एव क्षेत्रो के बीच सन्तुलन कायम किया जाये और सन्तुलन कायम रखने के इस कार्य को एक केन्द्रीय अभिकरण (Central agency) ही अधिक अच्छी प्रकार से सम्पन्न कर सकता है। दूसरे, नियोजन एक निरन्तर जारी रहने वाली प्रक्रिया (Process) है। इसमे केवल कुशलतापूर्ण कार्यान्वय (Execution) की ही आवश्यकता नही होती, अपितु निरन्तर मूल्याकन तथा दूरदर्शितापूर्ण सोच-विचार की भी आवश्यकता होती है। आने वाले २०-२५ वर्षों की आर्थिक समस्याओ पर विचार करना होता है और नियोजन के द्वारा उनको हल करना होता है। अत दूरदर्शितापूर्ण एव कुशल नियोजन तथा राष्ट्रीय पैमाने पर 'समन्वय' (Co-ordination) कायम करने की समस्या के हल के लिए यह आवश्यक है कि योजना आयोग जैसी एक केन्द्रीय सस्था की स्थापना की जाए। तीसरे, आयोजना-बद्ध अर्थ-व्यवस्था मे, तेजी के साथ आर्थिक विकास करना होता है। अतः यह कार्य तभी किया जा सकता है जबकि यह

---

1 Cf the observation of Dr Gadgil "The master plan of economic development must be country-wide In particular respects, the federating units might be left free to control the pace or direction of development and the plan itself would pay proper attention to all sided development of all regions At the same time, all federating units must accept over all direction imposed by the master-plan The federal government must have adequate powers to evolve the general plan of economic development for the whole country and must have powers to carry out its essential features and to supervise and enforce its implementation by the federating units This is only inherent in economic planning" —D R Gadgil Federating India, Poona, Gokhale Institute of Politics and Economics, 1945, p 44

कार्य पूर्णतया एक ही संस्था अथवा निकाय (Body) को सौंपा जाए। इसी कारण नियोगी समिति ने यह सिफारिश की थी कि उक्त कार्य की प्रकृति की दृष्टि से यह अत्यन्त आवश्यक है कि "केन्द्र स्तर पर केवल एक ऐसे ठोस, दृढ तथा अधिकारयुक्त संगठन की स्थापना की जानी चाहिए जो कि स्वयं को भारत के आर्थिक पुनर्निर्माण के सम्पूर्ण क्षेत्र में बराबर सम्बद्ध रखे तथा जो प्रत्यक्ष रूप में मन्त्रि-परिषद् (Cabinet) के प्रति उत्तरदायी हो।"

सम्पूर्ण देश के लिए योजनाओं के निर्माण का मुख्य उत्तरदायित्व योजना आयोग का ही है।[1] योजना को लागू करने का मुख्य उत्तरदायित्व केन्द्र सरकार के प्रशासकीय मन्त्रालयों तथा राज्य सरकारों का है। देश में नियोजन का प्रारम्भ होने और सरकार द्वारा विकास-कार्यों को अपने हाथ में लेने का कारण कई ऐसी प्रशासकीय व्यवस्थाओं की आवश्यकता उत्पन्न हुई, जैसे कि निष्पादक विभागों (Executive department) तथा मन्त्रालयों (Ministries) के अन्तर्गत नियोजन-कोष्ठ (Planning cells) बनाना, राज्य स्तर पर पूर्ण रूप से समर्थ नियोजन विभाग तथा नियोजन परामर्शदात्री संस्थायें बनाना, और केन्द्र पर परामर्श देने वाले निरीक्षक-मण्डलों (Panels) तथा वर्गों के ठोस कार्यों से युक्त एक राष्ट्रीय योजना आयोग

---

1 Under its terms of reference, the Planning Commission has to perform the following functions—

(a) Make an assessement of the material, capital and human resources of the country including technical personnel and investigate the possibilities of augmenting such of these resources as are found to be deficient in relation to the nation's requirements,

(b) Formulate a plan for the most effective and balanced utilisation of the country's resources,

(c) On a determination of priorities to define the stages in which the plan should be carried out and propose the allocation of resources for the due completion of each stage

(d) Indicate the factors which are tending to retard economic development and determine the conditions which, in view of the current social and political situation, should be established for the successful execution of the plan,

(e) Determine the nature of the machinery which will be necessary for securing the successful implementation of each stage of the plan is all its aspects,

(f) Appraise from time to time the progress achieved in the execution of each stage of the Plan and to recommend the adjustments of policy and measures that such appraisal might show to be necessary, and

(g) Make such interim or ancillary recommendations as might be appropriate on a consideration of the prevailing economic conditions, current policies, measures and development programmes or on an examination of such specific problems as may be referred to it for advice by Central and State Governments for facilitating the discharge of the duties assigned to it."

का निर्माण करना, तथा योजना के विशिष्ट कार्यक्रमो को पूरा करने के लिए विशिष्ट कार्यालयो तथा अभिकरणो की स्थापना करना और कुछ चुने हुए क्षेत्रो मे प्राप्त सफलताओ का अनुमान लगाने के लिए मूल्याकन इकाइयो (Evaluation units) की स्थापना करना।[1]

योजना आयोग एक परामर्शदात्री सस्था तथा एक स्टाफ अभिकरण (Staff agency) है। योजना आयोग की स्थापना के सम्बन्ध मे १५ मार्च, १९५० को जो प्रस्ताव रखा गया था उसमे कहा गया था कि

(१) "आयोग, अपनी सिफारिशो की रूपरेखा तैयार करते समय, केन्द्र सरकार के मन्त्रालयो तथा राज्य सरकारो के सम्पर्क मे रहते हुए उनके परामर्श से कार्य करेगा।"

(२) "आयोग मन्त्रि-परिषद् के समक्ष अपनी सिफारिशे प्रस्तुत करेगा।"

(३) "आयोग के निर्णयो को स्वीकार करने तथा उनको लागू करने का उत्तरदायित्व केन्द्र तथा राज्य सरकारो पर होगा।"

परन्तु योजना आयोग की गत बारह वर्षों की कार्य-प्रणाली के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इसने एक प्रकार की "आर्थिक मन्त्रिपरिषद्" (Economic cabinet) का ही रूप धारण कर लिया है अर्थात् एक ऐसी सत्ता जिसकी उपेक्षा नही की जा सकती। अब हम इस बात पर विचार करेंगे कि राज्यो की 'स्वायत्तता' (Autonomy) पर इस स्थिति का क्या प्रभाव पडा है।

जैसा कि ऊपर कहा गया है, योजना आयोग योजना का निर्माण करता है और नीतियो, लक्ष्यो, वित्तीय साधनो व मुख्य प्रायोजनाओ (Projects) आदि का निर्धारण करता है। योजना के निर्माण की कार्य-पद्धति इस प्रकार है योजना आयोग पचवर्षीय योजना का एक सक्षिप्त विवरण तैयार करता है और उसको केन्द्रीय मन्त्रिपरिषद् तथा राष्ट्रीय विकास परिषद् (National development council), (जो कि सभी राष्ट्रो के मुख्य मन्त्रियो से युक्त एक सगठन है), दोनो के ही समक्ष रखता है। जब से दोनो निकाय (Bodies) योजना के सक्षिप्त विवरण को

---

1 The Machinery of Planning is as follows In the Centre there is planning Commission with its working groups, research bodies, programming units, evaluation agencies etc At the *State* level following kind of Machinery for planning has been developed (a) There is usually a committee of the State cabinet under the Chief Minister to provide over all guidance and direction (b) For the coordination of the work of the various departments on the 'official level' there is a State Development Committee which consists of Secretaries of the various Departments usually headed by the Chief Secreatary (c) A Planning Department or Development Commissiner for 'co-ordination of Planning and implementing the district programmes (d) State Planning boards, a separate non-official advisory organ. (e) The, D M the B D O, the Village Panchayats, the technical personnel at each level co-operate in execution the Plan

स्वीकार कर लेते हैं तो योजना की प्रस्तावित रूपरेखा (Draft outline) तैयार की जाती है जिसमे योजना के उद्देश्यो व मुख्य लक्ष्यो आदि का उल्लेख किया जाता है। योजना की इस प्रस्तावित रूपरेखा पर समाचार-पत्रो मे, ससद मे तथा जनता द्वारा वाद-विवाद किया जाता है। योजना आयोग राज्यो के साथ विस्तृत विचार-विमर्श एव वाद-विवाद की व्यवस्था करता है। योजना की प्रस्तावित रूपरेखा को दृष्टिगत रखते हुए राज्य अपनी निजी योजनाये तैयार करते हैं। तब योजना आयोग द्वारा उन योजनाओ मे काट-छाँट की जाती है, सुधार किया जाता है और उनको अन्तिम रूप दिया जाता है। परिणाम यह होता है, कि एक बडी सीमा तक, योजनाओ की रूपरेखा बनाने अथवा उनके निर्माण का कार्य योजना आयोग पर ही केन्द्रित रहता है।

योजना के सफल सचालन के लिए यह अत्यन्त आवश्यक होता है कि राज्यो के साथ सहयोग अथवा समन्वय कायम रखा जाय।[1] योजना आयोग द्वारा यह समन्वय निम्न प्रकार से प्राप्त किया जाता है।

(१) निरीक्षक मण्डलो तथा कार्यकारी वर्गो द्वारा प्रत्यक्ष सम्पर्क (Direct contacts through panels and working groups)—ये मण्डल तथा वर्ग विशेष रूप से तब नियुक्त किये जाते हैं जबकि राज्यो की पचवर्षीय तथा वार्षिक योजनायें तैयार की जाती हैं। राज्यो को प्रायोजनाओ के लिए वित्तीय अनुदान (Financial grants) देने के बारे मे जब इनसे परामर्श माँगा जाता है तो ये मत्रालयो से सम्पर्क स्थापित करते है।

(२) परामर्शदाता (कार्यक्रम प्रशासन) [Advisors (Programme Administration)]—योजना आयोग के साथ चार परामर्शदाता (सलाहकार) कार्य करते हैं। ये उच्च तथा ज्येष्ठ पदाधिकारी होते है। इनका मुख्य कार्य यह होता है कि ये योजना आयोग को नियोजन के विभिन्न पहलुओ की प्रगति से परिचित रखें तथा विभिन्न प्रायोजनाओ (Projects) के कार्यान्विय से सम्बन्धित मामलो पर राज्य सरकारो तथा केन्द्रीय मन्त्रालयो को अधिकतम सम्भव सहायता दे। ये निम्नलिखित बातो के सम्बन्ध मे राज्यो तथा योजना आयोग के बीच समन्वय (Co-ordination) कायम रखने मे सहायता करते है—(क) पचवर्षीय योजना को तैयार करने के सम्बन्ध मे, (ख) वार्षिक योजनायें तैयार करने के सम्बन्ध मे, (ग) योजना मे

---

1 In this connection the Third Five Year Plan clearly mentions "The Plan has to be implemented at many levels—national, state, district, block and village At each level, in relation to the tasks assigned, there has to be co-operation between different agencies and an understanding of the purposes of the Plan and the means through which they are to be secured In a vast and varied structure organised on a federal basis, a great deal depends on being able to communicate effectively between different levels, and at the same level between different agencies"—Third Five Year Plan, Government of India—Planning Commission, 1961, p 276

हेर-फेर की व्यवस्था करने के सम्बन्ध मे, और (घ) योजना की प्रगति का मूल्याकन करने के बारे मे तथा योजना को लागू करने से सम्बन्धित उन समस्याओ के हल के बारे मे जो कि राज्यो मे उनके निरीक्षण के मध्य सामने आती हैं।

(३) राष्ट्रीय विकास परिषद् (National Development Council)—राष्ट्रीय विकास परिषद् की स्थापना इन उद्देश्यो को दृष्टिगत रखकर की गई थी (क) "योजना को सफल बनाने के लिए राष्ट्र के प्रयत्नो तथा साधनो को शक्तिशाली तथा गतिशील करना, (ख) सभी महत्वपूर्ण क्षेत्रो मे समान आर्थिक नीतियो का निर्माण करना, और (ग) देश के सभी भागो का सन्तुलित तथा तीव्र विकास करना।" इसके मुख्य कार्य निम्नलिखित हैं : "(अ) समय-समय पर राष्ट्रीय योजना के कार्य-सचालन का निरीक्षण करना, (आ) राष्ट्रीय विकास को प्रभावित करने वाले सामाजिक तथा आर्थिक नीति के महत्वपूर्ण प्रश्नो पर विचार करना, और (इ) राष्ट्रीय योजना मे निर्धारित उद्देश्यो एव लक्ष्यो की प्राप्ति के लिए उपायो के सुझाव देना, जिनमे कि जनता का सक्रिय सहयोग प्राप्त करने, प्रशासकीय सेवाओ की कार्य-कुशलता बढाने, कम उन्नत क्षेत्रो तथा समाज के कम उन्नत वर्गों के पूर्ण विकास के विषय मे आश्वस्त होने और सभी नागरिको द्वारा किये जाने वाले समान त्याग के द्वारा राष्ट्रीय विकास के साधनो को दृढ करने के उपाय भी सम्मिलित हैं।"

परिषद् मे मुख्य मन्त्रियो (Chief Ministers) का सम्मिलित किया जाना तथा उनके द्वारा योजना आयोग की योजनाओ का अनुमोदन करना—योजना मे सम्मिलित कार्यक्रमो के बारे मे राज्यो की एक प्रकार की सहमति ही है। राष्ट्रीय विकास परिषद् 'उच्च मन्त्रि परिषद्' (Super cabinet) के नाम से प्रसिद्ध है। इसकी रचना ही इस प्रकार की है कि केन्द्र तथा राज्यो की सरकारें इसकी सलाह को अत्यधिक महत्व प्रदान करती हैं। रा वि प ने वास्तव मे योजना को राष्ट्रीय बना दिया है और उसके लिए "किये जाने वाले प्रयत्नो मे एकरूपता (Uniformity) तथा इसके कार्य-सचालन मे सर्वसम्मति (Unanimity) उन्नत कर दी है।" रा वि प मे वे नीति-निर्माता सम्मिलित हैं जिनके हाथ मे शक्ति है अत योजना आयोग तथा मन्त्रि-परिषद् उनकी राय की उपेक्षा नही कर सकते। योजना के निर्माण व कार्यान्वय मे तथा उनके वास्तविक कार्य-सचालन व कार्य-प्रणाली मे केन्द्र व राज्यो के बीच समन्वय व सहयोग की स्थापना मे राज्यो की तुलना मे केन्द्र तथा योजना आयोग को अधिक सत्ता प्राप्त हो जाती है। भविष्य मे केन्द्र तथा राज्यो के बीच सहयोग और अधिक बढने की आशा है क्योकि राज्य सरकारो मे कहा गया है कि वे अपने-अपने राज्य मे दूरदर्शी तथा ठोस नियोजन का कार्य करें, और इस दूरदर्शी तथा ठोस नियोजन मे राज्य सरकारो तथा योजना-आयोग के बीच और भी अधिक सहकार्यता (Collaboration) उत्पन्न होगी।[1]

1 In this connection, Third Five Year Plan mentions "During the next three years states will also participate in the drawing up of a long term plan of

(See Next Page)

अब हम यहाँ, इस बात को दृष्टिगत रखते हुए कि भारत एक सघीय-राज्य है, नियोजन के कुछ तथ्यो एव पहलुओ पर कुछ विचार प्रकट करते हैं।

(१) अनुरूप अनुदानो (Matching grants) की व्यवस्था के कारण भारत मे शीर्षरूप सघीयवाद[1] (Vertical federalism) पनप रहा है। अनुरूप अनुदान की इस व्यवस्था मे केन्द्र किसी भी प्रायोजना की कुल लागत के आधे भाग का भार उठाने को सहमत हो जाता है बशर्ते कि शेष आधे भाग का भार राज्य उठाने को तैयार हो। ये अनुदान योजना आयोग की सिफारिश पर सम्बन्धित केन्द्रीय मन्त्रालयों द्वारा दिये जाते हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि सभी केन्द्रीय मन्त्रालय ऐसी स्थिति मे आते जा रहे हैं जिसमे कि वे समवर्ती राज्य मन्त्रालयो (Corresponding State Ministries) को आदेश दे सकते हैं।

(२) वित्त (Finances) का वार्षिक एव नियतकालिक बटवारा (Periodical allotment) करने मे योजना आयोग एक महत्वपूर्ण भाग अदा करता है। योजना के कार्य-क्रमो के लिए राज्यो के प्रस्तावो के बारे मे योजना आयोग राज्य सरकारो के साथ उसके बजट प्रस्तुत करने से कुछ माह पूर्व विचार-विमर्श करता है। उसमे योजना की लागत की सीमा तथा छोटे-मोटे एव मुख्य शीर्षको का उल्लेख किया जाता है। चालू वर्ष के योजना-कार्य का निर्धारण करने के लिए तथा बाद के वर्षो के कार्यक्रमो की मोटी रूपरेखा का निर्माण करने के लिए राज्यो के साथ प्रतिवर्ष योजना सम्बन्धी विचार-विमर्श एव वाद-विवाद किया जाता है। राज्यो की वार्षिक योजनायें—योजना आयोग के परामर्श से तैयार की जाती है।

(३) विदेशी विनिमय की कठिनाइयो ने योजना आयोग के लिए यह अनिवार्य बना दिया है कि वह राज्य सरकारो द्वारा इन वार्षिक योजनाओ के बनाये जाने मे स्वय को सम्बद्ध रखे।

---

development for the country This plan is intended to present the general design of development for the country as a whole over the next 15 years or so It will be based on a study of the resources and possibilities of different parts of the country and will seek to bring them together into a common frame This is a task of great complexity, as it is of great promise, and there will be need for close and continuous collaboration between various agencies at the centre and in the States, especially those responsible for Planning "—Vide Third Five Year Plan, Goverment of India—Planning Commission, 1961, p 289

1 "In other words, a sort of vertical Federation has been set up under the Planning Commission The constitution set up a territorial Federation, it is a horizontal Federation that was set up by the Consitituent Assembly The matching grants have set up a vertical Federation by which the Central Departments and the State Departments on the same subject as 'education' etc form a unit forthe purposes of programmes, projects, and most important of all, for expenditure—Vide K Santhanam *Centre-State Relations in India*, Asia Publishing House, p 54.

(४) अनुमान समिति (Estimates Committee) ने अपने २१वे प्रतिवेदन (रिपोर्ट) १९५९ मे यह व्यक्त किया था कि राज्य सरकारो मे यह आम भावना पाई जाती है कि योजना आयोग एक परामर्श देने वाली सस्था नही है, अपितु इसे केन्द्र पर स्थित एक अतिरिक्त सत्ता (Additional authority) कहा जा सकता है। राज्य सरकारो ने अनेक अवसरो पर यह शिकायत की है कि उन्हे योजना के बटवारे की धनराशि का उचित भाग नही मिला, और यह कि उनके प्रस्तावो को आयोग तक पहुँचाने की जो व्यवस्था है उसमे ऐसी अनावश्यक देरी होती है जिसे दूर किया जा सकता है।[1]

(५) धन के बटवारे के सम्बन्ध मे एक राज्य सरकार को केवल योजना आयोग को ही सन्तुष्ट नही करना पडता, बल्कि केन्द्र के प्रशासनिक मत्रालयो को भी सन्तुष्ट करना पडता है।[2]

(६) इसके अतिरिक्त चूंकि राज्य सरकार की आय के साधन लोचदार नही होते अत उसे उक्त साधनो के लिए आयोग पर निर्भर रहना होता है।[3]

---

1 The Committee appreciate that Planning involves allocation of scarce resources, and consequently fixation of priorities They also realise that in a federal constitution, it has special difficulties Also when it happens that the financial resources of the States are inelastic and they have to depend upon the Centre for financing a very large portion of their development programmes, very great importance is attached to the approval of the Planning Body as a pre-requisite to the release of funds by the Centre The Committee would, however, suggest that the entire procedure now adopted should be reviewed, so that if any practice has grown which lends support to this feeling, it could be rectified

Vide *Estimates Committee Report*, 1957-1958, p 5

2 The same opinion was expressed by the Estimates Committee of the Second Lok Sabha in its Twenty-first Report on Planning Commission The Committee suggested that for the purpose of getting schemes approved for Central assistance, the procedure should be so revised that the State Governments should approach directly the Central Ministries concerned The Ministries should take decisions on all such matters in consultation with the Planning Commission and the State Government concerned In case there is any difference of opinion between the Planning Commission and a Central Ministry the difference should be resolved by the Cabinet, and in case there is any difference between the Planning Commission and a State Government, it should be resolved by the National Development Council

—Vide *Estimates Commission Report*, 1957-58, pp 5-6

3 Third Plantotal outlay is Rs 7500 crores, total state share is Rs 3847 crores and Central Ministries Plan is Rs 3753 crores and as far as States are concerned Central assistance is Rs 2375 crores and States' own resources Rs 1462 crores

कुछ क्षेत्रो मे यह भावना उत्पन्न हो रही है कि भारत मे सघीयवाद (Federalism) कमजोर होता जा रहा है। भूमि की जोतो (Land holdings) आदि से सम्बन्धित भूमि-नीतियो (Land policies) का निर्माण एव प्रारम्भ तो केन्द्र द्वारा किया जाता है और उनका अनुपालन राज्यो द्वारा किया जाता है। इस नई भावना का एक अन्य पहलू यह है कि राज्यो का यह स्वभाव होता जा रहा है कि वे नीति-सम्बन्धी किसी भी असफलता के लिए केन्द्र को ही दोषी ठहरा देते है। यह भावना उत्पन्न हो रही है कि योजना आयोग तथा केन्द्रीय मत्रालयो द्वारा आर्थिक नीतियो का व्यापक निर्देशन (Comprehensive direction) किये जाने से राज्यो की स्वायत्तता (Autonomy) केवल नाम मात्र की स्वायत्तता बनती जा रही है।[1]

प्रश्न यह है कि नियोजन के मामलो मे योजना आयोग अथवा केन्द्रीय मन्त्रि-मण्डल जो कुछ भी कहते है, क्या राज्य उन्हे स्वीकार करने के लिए बाध्य है? सैद्धान्तिक रूप मे स्थिति यह है कि आर्थिक तथा सामाजिक नियोजन से सम्बन्धित मामलो मे राज्य, योजना आयोग अथवा केन्द्र सरकार की सलाह को मानने से इन्कार कर सकते हैं। ऐसा करना किसी प्रकार भी असवैधानिक (Unconstitutional) नही होगा। परन्तु राज्य केवल तभी इन्कार कर सकते हैं जबकि वे विकास कार्यों के लिए केन्द्र सरकार से मिलने वाली धनराशि की बलि चढाने को तैयार हो। प्रथम योजना मे नियोजन के कुल व्यय का लगभग ७० % और द्वितीय योजना मे लगभग ६५% भाग का सम्बन्ध ऐसे विषयो से था जो कि पूर्णतया राज्यो को सौंप दिये गये है, जैसे कि शिक्षा, स्वास्थ्य, वन, कृषि, सिचाई, बिजली आदि। वास्तव मे, राज्यो पर केन्द्र का नियत्रण राज्यो की 'सहमति' से ही किया जाता है और आर्थिक नियोजन की 'अनिवार्यता' के कारण किया जाता है।[2]

III

अन्य महत्वपूर्ण क्षेत्र, जिसके सदर्भ मे केन्द्र व राज्यो के सम्बन्धो का अध्ययन किया जा सकता है, **सामुदायिक विकास कार्यक्रम** (Community Development) है नियोजन को सफल बनाने के लिए, लोगो मे सामाजिकता की भावना जागृत करने के लिए और उनको राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के कार्य मे सक्रिय रूप से भाग लेने को प्रेरित करने के लिए ही सामुदायिक विकास कार्यक्रम आरम्भ किया गया था। केन्द्र सरकार ने सामुदायिक विकास कार्यक्रम की रूप-रेखा बनाई, इसके भारी वित्तीय उत्तरदायित्वो को स्वीकार किया और राज्य सरकारो को इस बात के

---

1 Cf K Santhanam *Planning and Plain Thinking*, Higginbotham (Private) Ltd , Madras 2, 1958, pp 138-39

2 Cf K Santhanam 'What I want to suggest is that Planning for purpose of economic development practically superseded the federal constitution so far as states were concerned but this supersession was not legal or consitutional but was by agreement and consent Planning has been comprehensive It has covered all the spheres of activities of both the Centre and the States "
—Vide K Santhanam *op cit* , p 47

लिए सहमत किया कि वे इस कार्यक्रम को अपनायें और लागू करें। इसमे कोई सन्देह नही कि इस कार्यक्रम के सभी विषय, उदाहरणत कृषि, पशुपालन, स्वास्थ्य, शिक्षा आदि राज्य-सूची के ही विषय हैं परन्तु इस कार्यक्रम से सम्बन्धित सभी मुख्य नीतिया, विकास की रीति तथा निर्देशन—सभी केन्द्र से ही प्राप्त होते हैं।

सामुदायिक विकास कार्यक्रम के प्रारम्भ होने से एक प्रशासनिक ढाचे का भी निर्माण किया गया जिसको सघीय सिद्धान्त के विरुद्ध कहा जा सकता है। सामुदायिक विकास प्रशासन की स्थापना ३१ मार्च १९५२ को सामुदायिक विकास प्रायोजनाओ को लागू करने के लिए की गई थी। यह एक 'प्रशासक' (Administrate) के अधीन एक स्वतन्त्र प्रशासकीय इकाई के रूप मे कार्य करता था, और यह प्रशासक योजना आयोग की केन्द्रीय समिति के सामान्य निरीक्षण के अन्तर्गत देश-भर मे सामुदायिक विकास प्रायोजनाओ (Community Development Projects) के नियोजन, निर्देशन (Direction) तथा समन्वय (Cordination) के लिए उत्तरदायी था। २८ सितम्बर सन् १९५६ से यह 'प्रशासन' सामुदायिक विकास मन्त्रालय मे मिला दिया गया था। 'प्रशासक' राज्यो मे कार्यक्रमो पर विस्तृत नियन्त्रण रखता था। क्षेत्रीय विकास अधिकारियो (B D O's) तथा उनके चुनाव के सम्बन्ध मे सामुदायिक प्रायोजना-प्रशासन का अनुमोदन प्राप्त करना होता था। क्षेत्रीय कार्य-क्रम (Block programmes) तथा प्रत्येक क्षेत्र (Block) से सम्बन्धित बजट तथा विस्तृत नियतकालीन प्रतिवेदन (Detailed periodical reports) इसके पास भेजे जाते थे। इसके अतिरिक्त प्रशासक तथा सामुदायिक प्रायोजना प्रशासन के अधिकारी विकास-क्षेत्रो के काफी दौरे करते थे। इसीलिए सन् १९५७ के अन्त में बलवन्त राय मेहता दल को यह सलाह देनी पडी कि केन्द्र को चाहिए कि वह किसी भी कार्यक्रम के सम्बन्ध मे नीति निश्चित कर दे और उसकी मोटी रूप-रेखा का निर्धारण कर दे और फिर उस कार्यक्रम का भार राज्य सरकारो पर छोड दे जिससे कि वे अपने-अपने ढगो तथा अपनी-अपनी स्थानीय परिस्थितियो के अनुसार ही उन कार्यों को सम्पन्न कर सके, केन्द्र को तो केवल इस बात से ही सन्तुष्ट रहना चाहिए कि कार्यक्रम के सामान्य उद्देश्यो का समुचित परिपालन किया जा रहा है।"[1]

---

1 In contrast to this view, B Mukerjee has observed "The Ministry of Community Development can justly claim that it has kept with itself less control over details of the programme, having passed on much of it to the State Governments than what most other Ministries of the Central Government have in respect of schemes sponsored and financed by them wholly or partly though executed by the State Government. It should also be stated that the Ministry of Community Development has used its control over the programme to the best advantage of the programme, has provided to the State Government dynamic leadership and much guidance, based on the ministry's intimate touch with the field operation of the programme all over the country The Ministry has also been able to establish genuine partnership with the States

(Contd. on next page)

प्रश्न यह है कि केन्द्र-स्तर पर सामुदायिक विकास मन्त्रालय की स्थापना होनी भी चाहिए या नही ? सामुदायिक विकास एक राज्य का विषय है। फिर केन्द्रीय स्तर पर मन्त्रालय की स्थापना क्यो हो ? और यदि ऐसे मन्त्रालय की स्थापना होती ही है, तो फिर उसका कार्य क्या होना चाहिए ? वी० मुकर्जी इस मन्त्रालय को "सामुदायिक विकास की विचारधारा के प्रचार तथा प्रसार का कार्य"[1] तथा "ग्रामीण विकास तथा ग्रामीण क्षेत्रो की समस्याओ पर ध्यान केन्द्रित करने का कार्य"[2] देना चाहते है। सामुदायिक विकास कार्यक्रम का राष्ट्रीय नियोजन के साथ राष्ट्रीय स्तर पर ही एकीकरण तथा समन्वय किया जाना चाहिए। अत सामुदायिक विकास मन्त्रालय को चाहिए कि वह राष्ट्रीय स्तर पर नीति का निर्धारण कर दे और फिर सभी स्तरो पर नियोजन तथा नीति के कार्य मे समन्वय स्थापित करे। इस प्रकार स्पष्ट है कि 'राष्ट्रीय स्तर पर मार्ग-दर्शन' के कार्य के लिए ही सामुदायिक विकास मन्त्रालय की आवश्यकता है।

केन्द्र निम्नलिखित रीतियो के द्वारा सामुदायिक विकास कार्यक्रम को, जो कि पूर्णतया एक राज्यीय विषय है, प्रभावित करता है

(१) सर्वप्रथम रीति, जिसके द्वारा कि केन्द्र सामुदायिक विकास प्रायोजनाओ पर नियन्त्रण रखता है, है नीति का निर्धारण। मुख्य नीति का निर्माण तथा उसका प्रारम्भ केन्द्र द्वारा ही किया जाता है। केन्द्र सरकार राज्यो को नीति के सम्बन्ध मे मार्ग-दर्शन प्रदान करती है। नीति सम्बन्धी एक मोटी रूप-रेखा केन्द्र द्वारा निर्धारित की जाती है और राज्य उसको कार्यान्वित करने का प्रयत्न करते हैं।

(२) दूसरी रीति, जिसके द्वारा कि केन्द्र सामुदायिक विकास कार्यक्रम को प्रभावित करता है, है प्रशिक्षण सस्थाओ (Training institutions) की स्थापना करना और राज्यो के अधिकारियो व कर्मचारियो को प्रशिक्षण की सुविधाये प्रदान करना। सामुदायिक विकास मत्रालय ने 'मूलभूत' (Basic) प्रशिक्षण अथवा पुनर्व्यवस्था पाठ्यक्रम (Orientation courses) का प्रशिक्षण प्रदान करने के लिए एक अध्ययन तथा अनुसधान की केन्द्रीय सस्था (Central Institute of Study and Research) की स्थापना की है। परन्तु यह सस्था भी "सामुदायिक विकास का प्रशिक्षण देने वाली अन्य सस्थाओ मे नेतृत्व की स्थिति प्राप्त करती जा रही है।"[3] केन्द्रीय सस्था का प्रिंसिपल विभिन्न क्षेत्रो के विशेषज्ञो (Experts) के साथ प्रशिक्षण केन्द्रो का निरीक्षण करता है और उनके कार्य मे उनका मार्ग-दर्शन करता है। यह सुझाव दिया जाता है कि सामुदायिक विकास कार्यक्रम के सम्बन्ध मे जानकारी

---

holding itself jointly responsible with the latter for the successful operation of the Programme"

—Vide B Mukerjee *Community Development in India*, p 169

1 B Mukerjee *op cit*, p 170.

2 *Ibid*

3 B Mukerjee *op cit*, p, 170

प्रदान करने के लिए केन्द्रीय सस्था (Central Institute) से ही सम्वद्ध एक 'सूचना सदन' की स्थापना की जानी चाहिए ।

(३) केन्द्रीय मन्त्रालय से परामर्श प्राप्त करके राज्यो ने प्रशिक्षण के सम्पूर्ण क्षेत्र की देखभाल करने के लिए प्रशिक्षण समितिया बनाई हैं। "सामुदायिक विकास मन्त्रालय की ओर से तो राज्य सरकारो को इस बात के लिए प्रेरित करने का प्रयत्न किया जाता है कि वे प्रशिक्षण के कार्य मे उसके साथ पूर्ण साझेदारी (Partnership) के रूप मे कार्य करें।"[1]

(४) केन्द्र सरकार ऐसे 'सयुक्त कार्यक्रम' (Package programme) मे ठोस रूप मे भाग लेती है जिसमे कि सघीय सहायता के समान ही व्यय करने का राज्यो का भी दायित्व होता है।

(५) केन्द्र सरकार समय-समय पर सम्मेलनो (Conferences), बैठको (Meetings) तथा विशेषाध्ययन वर्गों (Seminars) का आयोजन करके भी सामुदायिक विकास कार्यक्रम पर भारी प्रभाव डालती है।

(६) केन्द्र सरकार साहित्य का निर्माण करके भी, जो कि कार्यकर्त्ताओ के पास भेजा जाता है, राज्यो पर प्रभाव डालती है।

(७) योजना आयोग के आधीन बनाये गये 'कार्यक्रम-मूल्याकन-सगठन' द्वारा सभी राज्यो मे सामुदायिक विकास क्षेत्रो के कार्यो का मूल्याकन किया जाता है। इस सगठन के वार्षिक प्रतिवेदनो (Annual reports) सामुदायिक विकास कार्यक्रम के राज्य-प्रशासन पर भारी प्रभाव डालते हैं।

(८) ऋण (Loans), सहायक अनुदान (Grants-in-aid) तथा अनावर्ती व्यय (Non-recurring expenditure) के ७५ प्रतिशत भाग का भार केन्द्र सरकार द्वारा ही उठाया जाता है।

इस प्रकार सामुदायिक विकास प्रशासन के क्षेत्र मे राज्यो पर केन्द्रीय प्रभुत्व ने अनेक रूप धारण किये हैं। सामुदायिक विकास प्रशासन को "एक सयुक्त प्रशासन" (A Coalition Administration) का नाम दिया गया है। सहायक अनुदानो के लिए (और अनेक अवसरो पर विशेष उद्देश्यो की सहायता के लिए) राज्य सरकारो की केन्द्र सरकार पर बढती हुई निर्भरता ने इस कार्यक्रम के सम्बन्ध मे राज्यो पर केन्द्रीय नियन्त्रण की मात्रा मे सदा वृद्धि की है। केन्द्र तथा राज्यो की इस साझेदारी का लाभ ग्राम्य-स्तर से उच्च स्तर तक कार्यक्रम की आकृति तथा नामावली की एक-रूपता के विकास के रूप मे हुआ है। केन्द्र सरकार अधिक योग्यता तथा क्षमता रखती है अत यही नेतृत्व प्रदान करती है। यद्यपि साधनो, सूचनाओ व जानकारियो तथा अधिकारियो व कर्मचारियो के एकत्रीकरण से सामुदायिक विकास कार्यक्रम की शक्ति तथा प्रभाव मे वृद्धि हुई है। परन्तु ऐसे कार्यक्रम मे एक बुराई भी निहित होती है

1 *Ibid*, p 272

और वह है इसकी एकरूपता (Uniformity) तथा कठोरता अथवा दृढता (Rigidity)। जब भी कोई योजना ऊपर से अर्थात् केन्द्र से आती है तो उसका स्वाभाविक आशय यही होता है कि उसको सभी स्थानो पर समान रूप मे ही लागू किया जाय। इस परिस्थिति मे यह हो सकता है कि योजना वहाँ लागू कर दी जाय जहाँ कि स्थिति बिल्कुल भिन्न हो। अन्य शब्दो मे, एकरूपता की इस व्यवस्था के अन्तर्गत स्थान-स्थान की विभिन्नताओ को उचित महत्व नही प्रदान किया जाता। परन्तु केन्द्रीय प्रभाव का विस्तार राज्य सरकारो की सहमति एव स्वीकृति से ही होता है। यह केन्द्र पर राज्यो की वित्तीय निर्भरता के कारण भी होता है।

IV

उपर्युक्त तथ्यो मे सघीय सिद्धान्तो का अत्यधिक ध्यान रखने वाले व्यक्ति यह निष्कर्ष निकाल सकते है कि भारतीय सघीयवाद (Indian Federalism) खतरे मे है। परन्तु ऐसे निष्कर्ष पर पहुँचने से पूर्व हमे देश मे प्रचलित उन दशाओ को नही भूलना चाहिए जिन्होने कि केन्द्र सरकार के सामने ऐसी 'अनिवार्य परिस्थिति' उत्पन्न कर दी है जिसमे कि उसे पहल करने तथा नेतृत्व करने के लिए आगे आना पडा है। परिस्थितियो की अनिवार्यता, आर्थिक व सामाजिक नियोजन तथा सामुदायिक विकास की आवश्यकता, कल्याणकारी राज्य (Welfare State) की स्थापना का निश्चय सविधान मे व्यक्त की गई यह इच्छा कि देश मे एक ऐसी समाजवादी व्यवस्था की स्थापना की जाय जिसमे कि सभी व्यक्तियो के लिए सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक न्याय की गारन्टी की जा सके, केन्द्र पर अधिक योग्यता एव क्षमता की उपलब्धता (Availability), सम्पूर्ण देश का स्तर ऊचा करने की आवश्यकता तथा केन्द्र पर राज्यो की वित्तीय निर्भरता—इन सब दशाओ ने ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर दी है जिसमे कि केन्द्र को ऐसे क्षेत्रो मे भी पहल एव नेतृत्व करने को आगे आना पडा है जिनके बारे मे कि सविधान द्वारा निषेध किया गया था। सविधान मे स्वय ही केन्द्र को शक्तिशाली बनाने की बात व्यक्त की गई थी और अब समय एव परिस्थितियो की ललकार ने इसके महत्व को और भी दुगुना कर दिया है। इस केन्द्रीयकरण के अनेक ठोस लाभ होगे और इसका परिणाम यह होगा कि देश का सन्तुलित विकास होगा तथा पिछडेपन से सम्बन्धित भारी क्षेत्रीय विषमताए भी अन्तत समाप्त हो जायेंगी। विकास-कार्य देशभर मे फैला होगा और यदि किसी भी राज्य मे साधनो आदि की कमी के कारण ,परिस्थितया उसके प्रतिकूल हैं तो भी उस राज्य की जनता विकास-कार्य के लाभो से वचित नही रहेगी। राष्ट्र की शक्ति तभी बढती है जबकि उनके सभी हिस्से शक्तिशाली हो और कोई भी भाग कमजोर न हो। यदि प्रेरणा (Initiative) और नेतृत्व (Leadership) तथा नीति (Policy) केन्द्र से प्राप्त होते हैं तो इसमे कोई बुराई की बात नही है, परन्तु यदि नीति का क्रियान्वय (Policy-implementation) एकरूपता तथा कठोरता के साथ किया जाता है तो उसका

प्रतिकूल प्रभाव होता है। नीति को क्रियान्वित करते समय अत्यधिक केन्द्रीयकरण पर जोर नही दिया जाना चाहिए। इस बुराई को प्रशासन की दूरदर्शिता से जागृत नेतृत्व से, और इसकी देखभाल के लिए बनाये कुछ सस्थागत उपकरणो से दूर किया जा सकता है। केन्द्र सरकार, योजना आयोग तथा राष्ट्रीय विकास परिषद् के साथ होने वाले वाद-विवादो, सम्मेलनो तथा बैठको मे राज्य सरकारे अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत कर सकती हैं और अपनी कठिनाइयो के विकल्प (Alternative) का सुझाव दे सकती है। इस प्रकार नीति को लागू करने मे अत्यधिक केन्द्रीयकरण को रोका जा सकता है। यह बडी आश्चर्यजनक बात है कि वैसे राज्य सरकारें भूमि की सीमा निर्धारित करने की नीति का अनुसरण कर रही है परन्तु उन्होने योजना आयोग द्वारा निर्धारित की गई ३० एकड की सीमा को स्वीकार नही किया है। इस प्रकार प्रादेशिक मत-विभिन्नताओ का सम्मान किया गया है।

नई परिस्थितियो का सामना करने के कारण भारतीय सघीयवाद (Indian Federalism) विकास की एक नई स्थिति मे प्रवेश कर रहा है। वे परिस्थितियाँ हैं भारतीय सघीयवाद के कुछ नय पहलू, जिनके अनुसार महत्वपूर्ण मामलो मे सघ तथा राज्यो के बीच सहयोग अथवा साझेदारी वढ रही है। इसमे कोई सन्देह नही कि राज्य कमजोर साझीदार (Partner) है परन्तु इसके अतिरिक्त और चारा भी क्या है। यह बात ससार के अन्य सघ-देशो के विषय मे भी सत्य है। अनेक लेखको के अनुसार सयुक्त राज्य अमेरिका, आस्ट्रेलिया अथवा कनाडा जैसे सघीय देश 'अर्ध-सघीय'[1] (Quasi-federal) बन गये हैं। सन् १९३० की आर्थिक मन्दी (Economic depression) से पूर्व तथा उसके बाद की, विशेष रूप से राष्ट्रपति रूजवेल्ट के 'न्यू डील प्रोग्राम' के अन्तर्गत, अमेरिकन सघीय व्यवस्था मे काफी परिवर्तन हुआ। अमेरिका मे न्यू डील प्रोग्राम (New Deal Programme) से जनता के प्रति सघीय सरकार के कर्तव्यो मे और अधिक वृद्धि हो गई। शासन से यह माँग की गई कि 'उचित मजदूरियो' तथा 'काम के न्यायोचित घण्टो' का निर्धारण करे, किसानो की उन्नति के लिए योजनायें तैयार करे और बेरोजगारी को दूर करे। इससे उद्योग-धन्धो, परिवहन (Transport) तथा अन्य लोकोपयोगी सेवाओ (Public utility services) के निरीक्षण की भी माग की गई। 'न्यू डील प्रोग्राम' ने दोहरे सघीयवाद को "प्रत्यक्ष रूप से मृत तथा पुनर्जीवन से दूर" करके कल्याणकारी राज्य के विचार

---

1 According to S P Ayer, "The qualifying prefix 'quasi' indicates mere appearance or something that is seemingly so and is in fact different from what it appears to be we must limit the term 'quasi-federal' to a constitution that maintains the constitutional autonomy only in name However religiously the federal principle is embodied in the constitution, it is possible that in course of time social and economic conditions become so complicated that the powers of the federal Government increase It has to assume spheres of authority which did not originally belong to it"

S P Ayer *Federalism and Social Change a Study in Quasi-Federalism*, Asia Publishing House, 1951, p 91

को दृढ वनाया ।[1] अमेरिकी उच्चतम न्यायालय (American Supreme Court) ने सयुक्त राज्य वनाम डर्वी (१६४१) के मुकदमे मे 'स्वायत्तता' (Autonomy) के स्थान पर 'राष्ट्रीय सर्वोच्चता' (National supremacy) के सिद्धात को प्रस्थापित किया और ऐसा करने मे उसने अमेरिकन सवैधानिक कानून के विकास के सम्वन्ध मे 'न्यू डील प्रोग्राम' का अधिक स्पष्टता के साथ उल्लेख एव प्रकाशन किया ।[2]

V

प्रश्न यह है कि यदि केन्द्रीयकरण अनिवार्य है तो एकात्मक राज्य (Unitary State) की स्थापना ही क्यो न कर ली जाये ? सघीयवाद (Federalism) का लवादा ही क्यो पहना जाये ? कुछ ऐसे भी हैं जिनका विचार है कि एकात्मक व्यवस्था देश की आवश्यकताओ के अनुरूप है ।[3] परन्तु भारत मे सघीयवाद जिस मात्रा मे वर्तमान है, देश के जनतत्रीय विकास के लिए वह अत्यन्त आवश्यक है । लोकतत्र (Democracy) मे सत्ता के भिन्न-भिन्न केन्द्र होने चाहिये जहाँ कि लोग अपने अधिकारो का प्रयोग कर सकें और जहाँ प्रादेशिक विभिन्नताओ को भी उचित महत्व प्रदान किया जाये । एक ऐसे देश मे, जहाँ कि रीति-रिवाजो, परम्पराओ और रहन-सहन के ढगो मे अन्तर पाया जाता है, सम्पूर्ण विकास-कार्य पूर्णतया एक रूप मे नही किया जा सकता । भारत मे लोकतत्र केवल तभी सफल हो सकता है जवकि लोगो की भिन्न-भिन्न आवश्यकताओ तथा उनके पृथक-पृथक् महत्व को दृष्टिगत रखा जाये । यही वे कारण हैं जो कि सघीयवाद का पक्ष-पोषण करते हैं । जैसा कि ऊपर सकेत किया जा चुका है, कुछ अन्य शक्तियाँ (Forces) भी है जो केन्द्रीयकरण की दिशा मे अग्रसर है । अत आवश्यकता इस वात की है कि दोनो विचारधाराओ के वीच उचित सतुलन कायम किया जाये । इसमे कोई सन्देह नही कि आर्थिक व सामाजिक नियोजन ने भारत की केन्द्रीय सरकार को अत्यन्त शक्ति-शाली वना दिया है परन्तु फिर भी आर्थिक नियोजन के कारण उत्पन्न केन्द्रीयकरण सविधान की सघीय प्रकृति के कारण ही अपनी पूर्ण स्थिति को न प्राप्त कर सका । सघीयवाद तो आर्थिक नियोजन मे निहित इस केन्द्रीयकरण पर एक अवरोध

---

1 Kelly and Harbinson *The American Constitution* Its origin and Development (W R Norton & Co New York, 1948), p 718

2 Swisher C B *American Constitutional Development*, Hongton Miflin, p 967

3 Even Asoka Chanda maintains 'It is becoming more and more evident that—'if India is to realise fully her declared objectives' to secure to all its citizens, justice, social, economic and political fraternity, assuring, the dignity of the individual and the unity of the nation, "the structure of her administration should be reorganised to conform more to the unitary pattern with a well developed system of local grvernment"

—Vide Asoka, Chanda Indian Administration, George Allen and Unwin Ltd, London, 1958, p 30

(Check) है। सघीयवाद अत्यधिक केन्द्रीयकरण तथा विकेन्द्रीयकरण के बीच मध्य-मार्ग के रूप मे कार्य कर रहा है। भारत मे अपने निजी अधिकारो मे युक्त सोलह राज्यो का अस्तित्व ही अत्यधिक केन्द्रीयकरण (Excessive centralisation) पर एक अवरोधक प्रभाव के रूप मे कार्य करता है[1] और प्राय योजना के कार्यान्वय मे प्रादेशिक विभिन्नताओ की मान्यता की गुजाइश रखता है।

VI

कुछ व्यक्ति ऐसे भी है जो कहते हैं कि प्रशासन के दृष्टिकोण से केन्द्र सरकार बहुत कमजोर है और 'महत्वपूर्ण राष्ट्रीय योजनाओ' को लागू करने के बारे मे राज्यो पर निर्भर रहती है। योजनाओ को लागू करना केन्द्र के प्रशासकीय मन्त्रालयो तथा सरकारो का मुख्य उत्तरदायित्व है।[2]

आयोजना-बद्ध कार्यक्रमो तथा उनके क्रियान्वय (Implementation) मे उचित समन्वय (Coordination) स्थापित करने के लिए अधिक मात्रा मे 'अखिल भारतीय सेवाओ' की व्यवस्था की जानी चाहिए। ये सेवाए केन्द्र पर तथा राज्यो मे विकास-सम्बन्धी प्रशासन की 'रीढ की हड्डी' बन जायेंगी। इस सुझाव के समर्थन मे अनेक तर्क प्रस्तुत किए जा सकते हैं। **सर्वप्रथम,** कार्यकुशलता का एक न्यूनतम स्तर निर्धारित किया जाना चाहिए, और आर्थिक सेवाओ मे लगे हुए अधिकारी व कर्मचारी उस स्तर के अनुरूप होने चाहियें। परन्तु अब ऐसे कार्यों के लिए अधिकारियो एव कर्मचारियो की भर्ती राज्यो द्वारा की जाती है। परिणामस्वरूप, प्रत्याशियो (Candidates) का स्तर भिन्न-भिन्न प्रदेशो मे भिन्न होता है और उनकी कार्यक्षमताओ एव कुशलताओ मे भारी अन्तर आया जाता है। **दूसरे,** अखिल भारतीय सेवाओ के अधिकारी राज्यो मे एक नया दृष्टिकोण लेकर आते हैं जबकि केवल राज्य मे से ही भर्ती किए जाने वाले व्यक्ति समुचित दृष्टिकोण के हो सकते है। **तीसरे,** अखिल भारतीय सेवाए देश के विभिन्न भागो को जोडने वाली एक कडी के

---

1 "A local executive fully responsible to a local legislature ensures a good deal of local internal sovereignty and sovereignty means a Statehood, limited as it may be by the distribution of powers Local States pursue local policies, sometimes in accordance with the policy of the Centre, sometimes not This distinguishes them precisely from the position which prevails in administrative federations in which local units must toe the line and always follow the policy of the Centre India is undoubtedly a federation in which the attributes of statehood are shared between the Centre and local States" —Vide Alexandrowiez *Constitutional Development in India*, pp 168-9

2 As Appleby observes "The power that is exercised organically in New Delhi is the uncertain and discontinuous power of prestige It is influence rather than power Its method is making plans, issuing pronouncements, holding conferences Dependence for achievement, therefore, is in some crucial ways, apart form the formal organs of governance, in forces which in the future may take quite different forms" —Paul H Appleby *Public Administration in India* Report of a survey, Government of India, 1953, p 97-22

रूप मे कार्य करती है। अन्त मे, चूंकि इन सेवाओ के अधिकारियो पर नियन्त्रण रखने का कार्य पूर्णतया राज्य सरकारो पर नही छोडा जाता, अत अधिकारी बिना स्थानीय दबावो अथवा प्रभावो के अपना कर्तव्यपालन करते है। कल्याणकारी राज्य के प्रशासन के लिए अखिल भारतीय सेवाओ का सगठन करके देश प्रशासन तथा विकास के स्तर मे न्यूनतम एकरूपता लाई जाई जा सकती है।

परन्तु राज्यो ने निम्नलिखित कारणो से और अधिक मात्रा मे अखिल भारतीय सेवाओ की स्थापना का विरोध किया है (१) राज्यो की स्वायत्तता कम हो जाने के भय से, (२) राज्य के कोष पर अधिक भार पडने के भय से, (३) सेवाओ पर विभाजित नियन्त्रण किए जाने के कारण, (४) सेवाओ की 'अप्रतिनिधि रूप (Unrepresentative) प्रकृति' होने के कारण और (५) इस कारण कि राज्य के निवासियो को सेवाओ मे पर्याप्त अवसर नही प्राप्त होगे।

किन्तु इस विरोध के बावजूद, अखिल भारतीय सेवाओ मे वृद्धि की जानी चाहिए और राज्य-सेवाओ की कोटि अथवा किस्म (Quality) को पर्याप्त महत्व प्रदान किया जाना चाहिए। उनके प्रशिक्षण कार्यक्रमो, शिक्षा तथा भर्ती पर अधिकतम सम्भव ध्यान दिया जाना चाहिए।

१०

पंचायती राज

(Panchayati Raj)

पृष्ठभूमि (Background)

विषय की गहराई मे प्रवेश करने से पूर्व विषय की पृष्ठ-भूमि (Background) का अध्ययन करना बहुत जरूरी है। प्रत्येक राष्ट्र की कुछ परम्परायें कुछ सामाजिक तथा राजनैतिक सस्थाये (Social and political institutions) तथा कुछ विचार एव रहन-सहन के तरीके होते हैं। इनके विकास का भविष्य बहुत हद तक इन परम्पराओ के चरित्र पर निर्भर रहता है और सामाजिक क्राति भी इन परम्पराओ से पूरी तरह अपना दामन नही छुडा पाती। वस्तुत ये परम्परायें भूतकाल मे चलती आई प्रथाओ का विकसित एव नूतन स्वरूप ही होती है। इसके अतिरिक्त किसी भी सामाजिक अथवा राजनैतिक प्रणाली की सफलता लोगो के बुद्धि-कौशल (Genius) पर निर्भर करती है। इस दृष्टि से यह देखना अत्यावश्यक है कि क्या किसी प्रणाली विशेष की जडें भूतकाल की प्रथाओ मे भी हैं अथवा नही ? प्राय यह कहा जाता है कि पचायती-राज प्राचीन परम्पराओ का एक स्वाभाविक विकास ही है और वैदिक भारत मे हमे इसके दर्शन होते भी हैं। वेदो के अध्ययन से हमे ज्ञान होता है कि उस समय 'समिति' नाम की एक सार्वजनिक तथा सार्वभौम प्रतिनिध्यात्मक सस्था (Representative Insititution) होती थी। यह उस समय के जनसाधारण जो अनेक वर्गों मे विभक्त रहता था और "विश" कहलाता था कि एक राष्ट्रीय महासभा थी। यह सस्था राजा को चुनती थी। यदि किसी राजा को हटाना पडता था तो दुबारा यही राजा का चुनाव करके उस पद को भरती थी। समिति के विषय मे वेदो मे अनेक मत्र आते हैं जिनके अध्ययन से ज्ञात होता है कि वैदिक युग मे शासन मे राजा का प्रमुख भाग होने पर भी वह स्वेच्छाचारी नही होता था, अपितु समिति जैसी महान् सार्वभौम सस्था (Sovereign Institution) से नियन्त्रित रहता था। ये समितियाँ राजा को सब प्रकार की सहायता देती थी और शासन को ठीक चलाने की व्यवस्था करती थी। ऋग्वेद मे जिस समिति का वर्णन आता है उसके साथ सभा नाम की एक सस्था और होती थी। ऐसा ज्ञान होता है कि समिति राष्ट्र की बडी ससद हुआ करती थी जिसमे राष्ट्र के सब लोगो का प्रतिनिधित्व होता था। सभा कुछ निर्वाचित नागरिको की सस्था थी जो सम्भवत समिति के अाधीन था उससे अधिकार प्राप्त करके समिति क्षेत्र मे कार्य करती थी। इस प्रकार वैदिक युग मे राजा समिति एव सभा के बीच कार्य करता था।

वेद कालीन भारत प्रमुखत कृषि प्रधान था और यही वजह है कि हमे वेद मन्त्रो मे गावो के विकास मे सम्बन्धित ही स्वर सुनाई पडता है न कि कस्बो और शहरो के विकास की आवाज। इस तरह गावो का प्रशासन बहुत ही प्रारम्भिक अवस्था मे विकसित हुआ। गाव के मुखिया और ग्राम सभाए प्रशासनिक ढाचे की प्रमुख अग रही। आदि कवि वाल्मीकि ने जनपद का उल्लेख किया है। महाभारत मे ग्राम-सघ (Village union) तथा जातक मे ग्राम-सभा (Village Assembly) का उल्लेख प्राप्त होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि इन ग्रामीण सस्थाओ की परम्परा भारत मे दीर्घकाल तक रही। परन्तु विषय के प्रतिपादन की दृष्टि से हमे यह नही भूलना चाहिये कि प्राचीन ग्राम सस्थाओ की परम्परा मे और आज के पचायती राज की प्रणाली मे एक बहुत बडा अन्तर है।

प्राचीन पचायतो का लोगो के साथ-साथ अपने आप विकास हुआ। पुराने जमाने की पचायते किसी प्रकार के नियम अथवा विधान पर आधारित नही थी। इनका आधार वर्णाश्रम धर्म था और ये आधुनिक प्रतिनिधित्व की प्रणाली से पूर्णत अनभिज्ञ थी। हमारे देश पर समय-समय पर हुए विदेशी आक्रमणो का प्रभाव पचायतो की सार्वभौमिकता पर भी पडा। धीरे-धीरे शहर व्यापार एव राजनीति के केन्द्र बनने लगे और गावो के हाथ से सामाजिक एव राजनीतिक सत्ता प्राय छिन सी गई। मुगल शासको के समय मे गाव केवल लगान और कर वसूल करने की इकाई (Unit) मात्र ही रह गया। पचायतो के न्याय सम्बन्धी अधिकार भी कम कर दिये गये। धीरे-धीरे यह सस्था जागीरदारो के हाथ मे आई जो कि वश-परम्परा के आधार पर इसके मुखिया बनने लगे। इस प्रकार प्राचीन काल से चलती आई पचायतो की परम्परा जागीरदारो के जमाने मे एकदम कमजोर हो गई। अग्रेजो के भारत मे आगमन के समय पुरातन काल से चलती आई ग्राम प्रशासन की इकाई समझी जाने वाली यह पचायत प्राय मर सी गई थी। लार्ड हैले ने ह्यू टिकर की पुस्तक के प्राक्कथन मे लिखा है, "अग्रेजो के शासन से पूर्व पचायत हर हालत मे भारतवर्ष के बहुत से भागो मे काफी लम्बे अर्से तक काम करना बन्द कर चुकी थी।" ("The Panchayat, had, in any case, ceased to be operative in most parts of India for a considerable period before the adrent or the British rule")[1]

स्वतन्त्रता और उसके बाद :

१५ अगस्त सन् १९४७ को जब भारत स्वतन्त्र हुआ तब भारत की ग्राम-प्रशासन की प्रणाली बहुत कमजोर थी। उस समय तक न तो लोग पचायतो की कार्य प्रणाली मे दिलचस्पी ही लेते थे और न ही इनकी आर्थिक दशा भी सतोषजनक थी। परिणामस्वरूप इनका अस्तित्व पूर्णत सरकार पर निर्भर था। यही वजह है

1 Lord Hailey in Foreword to Hugh Tinker's book *'Foundations of Local Self Government in India, Pakistan and Burma* (London, 1954), p 15

कि भारतीय सविधान की ४०वी धारा मे विशेष तौर से यह प्रावधान रखा गया कि राज्य सरकारे ग्राम-पचायतो के निर्माण एव विकास पर स्वशासन की इकाइयो (Units of self-government) की तरह ध्यान दें। इस प्रकार भारत के नव-निर्माण मे पचायतो के योग, महत्व एव मूल्य को एक बार फिर समझने का सफल प्रयास किया गया। भारत के समस्त राज्यो (States) तथा केन्द्र द्वारा शासित प्रदेशो (Union territories) मे तत्सम्बन्धी कानून बनाये गये और जगह-जगह पर तेजी के साथ पचायतो का निर्माण किया गया। प्रथम पचवर्षीय योजना की समाप्ति तक भारत मे १,२३,६७० ग्राम-पचायतें थी। इन पचायतो मे भारत की कुल ग्राम सख्या के आधे से अधिक गाव थे। द्वितीय पचवर्षीय योजना मे भारत के सम्पूर्ण गावो को लेने का निश्चय किया गया। इसके बावजूद भी इन ग्राम सस्थाओ की तस्वीर बहुत धुधली थी। जिलाबोर्ड प्राय अकर्मण्य थे। गाव और जिले के प्रशासन मे अन्तर था, आपस मे सहयोग नही था और न ही कोई ऐसी सस्था थी जो इन दोनो के बीच मे पुल का काम कर सके। स्पष्ट है कि विकास सम्बन्धी कार्यों मे जन-सहयोग की भावना का निर्माण करने का जो भी प्रयास किया गया उस प्रयास को आशा के स्थान पर निराशा की शक्ल देनी पडी। पाच वर्षों के सामुदायिक विकास सम्बन्धी कार्यक्रम (Community Development Programme) ने यह सिद्ध किया कि कही न कही कोई ऐसी गड़बड अवश्य है जिसे दूर करने के लिए आमूलचूल परिवर्तन करना शायद अनिवार्य है। इसी अनिवार्यता को ध्यान मे रखते हुये श्री बलवन्तराय मेहता की कुशल अध्यक्षता मे एक समिति का निर्माण किया गया। इस समिति ने अपनी सिफारिशो मे लोकतान्त्रिक-विकेन्द्रीकरण (Democratic Decentraliation) की जो रूप-रेखा रखी उस रुपरेखा ने ग्राम-प्रशासन मे वास्तव मे एक नया अध्याय प्रारम्भ किया है।

सामुदायिक विकास कार्यक्रम (Communtiy Development Programme) का उद्देश्य जन-सहयोग के द्वारा गावो का सामाजिक एव आर्थिक विकास करना था। सरकार का काम केवल सलाह देने एव मार्ग-दर्शन करने मात्र का ही था। किन्तु शीघ्र ही यह देखा गया कि लोगो को इस कार्यक्रम से अरुचि है और वे इसमे सतोषजनक रूप से भाग भी नही लेते हैं। खण्डो (Blocks) का निर्माण सामुदायिक विकास कार्यक्रम मे एक नई कडी अवश्य थी, पर किसी प्रकार की प्रतिनिधि सस्था (Representative institution) इस स्तर पर भी नही थी। प्रत्येक खड (Block) पर एक सलाहकार समिति का गठन किया गया। यह समिति विशुद्ध रूप से एक सलाहकार समिति ही थी और इसके पास किसी प्रकार के प्रशासनिक कार्य नही थे। परिणामस्वरूप इस प्रकार की समितियाँ अपने उद्देश्यो मे सफल नही हो सकी। द्वितीय पचवर्षीय योजना मे इस बात पर जोर दिया गया कि ग्राम पचायतें नियोजन (Planning) की प्रकि[illegible] त करने का कार्य करें पर ग्राम-पचायतें इस प्रकार का बीडा उठाने[illegible] मे असमर्थ [illegible] दूसरे

शब्दो मे वैधानिक ढाचे (Legislative framework) और वास्तविक कार्य प्रणाली मे एक ऐसी खाई थी जिसे आसानी से नही पाटा जा सकता था। जैसे-जैसे योजना की प्रगति हुई यह महसूस किया गया कि जनता मे उत्साह पैदा करने के लिए जनता के प्रतिनिधियो का सलाहकारो के रूप मे काम करना ही काफी नही था। जब तक जनता पर स्वय अपने विकास की पूरी जिम्मेवारी नही हो वास्तविक प्रगति नही की जा सकती और न ही जनतत्र (Democracy) की नीव भी मजबूत की जा सकती है। जनतत्र की इसी नीव को मजबूत करने के लिए स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत के इतिहास मे जो नया अध्याय जोडा गया उस अध्याय की पक्तिया प्रारम्भ होती है—बलवन्तराय मेहता कमेटी की सिफारिशो के साथ।

मेहता कमेटी (Mehta Committee) :

ग्राम स्वराज्य हमारे राष्ट्रीय जीवन की रीढ है। आजादी हासिल करने के बाद भी यदि वह आजादी केवल दिल्ली की पार्लियामेट के इर्द-गिर्द ही घूमती रहे तो उसका कोई अर्थ नही जब तक कि हम उसे दिल्ली के गेट-वे-ऑफ इन्डिया मे भारत के बडे-बडे नगरो, कस्बो और छोटे से छोटे गावो तक नही ले जाते। भारत सरकार द्वारा ससद् सदस्य श्री बलवन्तराय मेहता की अध्यक्षता मे नियुक्त की गई तीन अन्य सदस्यो की कमेटी का उद्देश्य यही था कि उन उपायो की खोज की जाय जिससे प्रत्येक ग्रामवासी आजादी के सही अर्थ को समझ सके, ग्रामीण जनता को अपना प्रबन्ध अपने आप करने का अवसर मिल सके, जिससे कि नियोजन मे लोगो का विश्वास बढे और उसमे वे सक्रिय योगदान दे सके। २१ फरवरी से ४ अगस्त १९५७ तक इस मेहता कमेटी ने भारत के १३ राज्यो के चुने हुए ५८ खडो (Blocks) का निरीक्षण किया तथा विभिन्न प्रकार के उन व्यक्तियो से जो इन खडो से प्रत्यक्ष तथा अप्रयक्ष रूप से सम्बन्धित थे विचार-विमर्श एव बातचीत की। इसके बाद इस कमेटी ने अपने निरीक्षण एव अध्ययन के आधार पर तैयार की गई अपनी सिफारिशो तथा निर्णयो को विभिन्न राज्यो की सरकारो के पास भेजा। तत्पश्चात् सितम्बर तथा अक्टूबर सन् १९५७ के मध्य तक मेहता कमेटी ने राज्य सरकारो से विचार-विमर्श किया और अन्त मे २४ नवम्बर सन् १९५७ को मेहता कमेटी ने अपनी अन्तिम रिपोर्ट प्रस्तुत की। मेहता कमेटी की यह विस्तृत रिपोर्ट तीन भागो मे बटी हुई थी।

अपने गहन अध्ययन एव चिन्तन के बाद मेहता कमेटी ने यह सुझाव दिया कि देश मे चल रहे विकास कार्यों के लिए एक विकेन्द्रित योजना चलाई जावे और प्रशासनिक सत्ता का छोटे से छोटे स्तर पर विकेन्द्रीकरण किया जावे जिससे जनसाधारण यह समझे कि देश मे जो कुछ भी किया जा रहा है वह उनका अपना काम है और जो कुछ वे कर रहे है अपने लिए ही कर रहे है। कोई भी देश अपने व्यक्तित्व का तब तक विकास नही कर सकता जब तक कि वह अपने भाग्य की रूपरेखा तैयार करने मे स्वतन्त्र न हो। अतएव यदि हम चाहते है कि ग्रामवासियो के व्यक्तित्व का पूरा-पूरा विकास हो तो यह अनिवार्य है कि हम उन्हे

समुचित अधिकार, साधन, आवश्यक प्रशिक्षण और प्रशिक्षित कर्मचारियो को सुविधायें प्रदान करें। जनतन्त्र की परिकल्पना भी यही है कि केवल ऊपर से ही शासन न चलाया जाय बल्कि देश के कण-कण मे बिखरी हुई प्रतिमाओ का विकास किया जाय। यह तभी सम्भव है जबकि जनसाधारण सक्रिय सरकार मे सीधा भाग ले सकें। सक्रिय सरकार मे सीधे भाग लेने की इस प्रक्रिया को ही कहते हैं, लोकतन्त्रीय विकेन्द्रीकरण अथवा पचायती राज।

तीन-स्तरीय योजना
(Three tier system)

मेहता रिपोर्ट मे जो कतिपय सिफारिशें की गईं उनमे सबसे अधिक महत्वपूर्ण एव क्रातिकारी सिफारिश तीन-स्तरीय योजना (Three tier system) की है। इस योजना के अन्तर्गत सर्वप्रथम जिला स्तर पर एक जिला परिषद् होगी जो पुराने डिस्ट्रिक्ट बोर्डों का स्थान ले लेगी। इसका कार्य पचायत समितियो के बीच समन्वय स्थापित करना, उनके कार्यो की देख-रेख करना तथा उनके ऊपर नियन्त्रण रखना होगा। प्रत्येक खण्ड (Block) मे एक पचायत समिति स्थापित की जायेगी जो अपने क्षेत्र के कार्य के लिए योजना बनाएगी और अपने निरीक्षण मे पचायतो द्वारा उसे कार्यान्वित करायेगी। तीसरी इकाई पचायत होगी जिसका मुख्य कार्य पचायत समिति द्वारा निर्धारित नीति को कार्यरूप मे परिणित करना होगा। पचायतो के पच और सरपच का चुनाव ग्रामीण जनता द्वारा वयस्क मताधिकार के आधार पर प्रत्यक्ष रूप मे होगा। पचायतो के सरपचो से मिलकर पचायत समिति बनेगी और पचायत समितियो के प्रधान जिला परिषद् होगे।

राजस्थान मे लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण

लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की योजना को सर्वप्रथम लागू करने का श्रेय राजस्थान को प्राप्त है। भारत के इतिहास मे २ अकतूबर सन् १९५९ का दिन सदा अविस्मरणीय रहेगा। यह वही दिन है जब राजस्थान ने राजस्थान पचायत समिति और जिला परिषद् अधिनियम (Rsjasthan Panchayat Samiti and Zila Parishad Act) के माध्यम से सत्ता के लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण जैसी कठिन राह पर सबसे पहला कदम रखा। इसी दिन भारत के प्रधान मन्त्री जवाहरलाल नेहरु ने नागौर मे सत्ता के विकेन्द्रीकरण की आयोजना का सबसे पहले उद्घाटन करके राष्ट्र अभिनव चेतना का प्रारम्भ किया। इसके अन्तर्गत प्रान्त की १३२ पचायत समितियो और २६ जिला परिषदो ने अपना कार्य शुरू कर दिया है। प्रशासन सत्ता का यह विकेन्द्रीकरण उस प्रक्रिया का अन्तिम रूप है जिसका समारम्भ सामुदायिक विकास कार्यक्रम के साथ हुआ। तत्पश्चात् अन्य राज्यो के बीच भी इस योजना को लागू करने की, मानो होड सी लग गई है। १ नवम्बर सन् १९५९ मे आन्ध्र राज्य तथा २ अक्तूबर सन् १९६० मे मद्रास राज्य मे यह योजना लागू की गई। सन् १९६२ के अन्त तक राजस्थान, आन्ध्र, मद्रास, आसाम, मैसूर, उडीसा, पजाब,

उत्तर प्रदेश एव महाराष्ट्र प्रभृति ९ राज्यो मे यह योजना लागू हो चुकी है। गुजरात, बिहार तथा मध्य प्रदेश मे तत्सम्बन्धी विधेयक स्वीकृत किये जा चुके है और योजना को लागू करने का कार्य प्रगति पर है। दो अन्य राज्यो बगाल तथा केरल मे विकेन्द्रीकरण सम्बन्धी विधेयको की रूप रेखा बनाई जा रही है। यहाँ यह बात स्मरणीय है कि जम्मू तथा काश्मीर राज्य मे विकेन्द्रीकरण की योजना पर अभी तक कोई कार्यवाही नही हुई है। विकेन्द्रीकरण के सम्बन्ध मे हुई योजना की अब तक प्रगति वास्तव मे सराहनीय है। मार्च सन् ६२ तक ९४% ग्राम पचायतो मे विकेन्द्रीकरण के सूर्य की किरणे पहुँच चुकी हैं। इस प्रकार भारतवर्ष मे पचायती राज न सिर्फ सत्ता के लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया पर ही है अपितु वह भारतीय जीवन का तरीका (Way of life) बन गया है। अब हम यहाँ उदाहरण के रूप मे राजस्थान मे पचायती राज का वर्णन करेंगे क्योकि जहाँ तक पचायती राज के प्रशासनिक ढाचे का प्रश्न है अन्य राज्यो और राजस्थान की व्यवस्था के बीच कोई मौलिक अन्तर नही है।

पचायती राज की सस्थाये

पंचायत (Panchayat).

पचायत—पचायत एक गाव या कुछ गावो के समूह को मिलाकर बनाई जाती है। पचायत की आबादी १५०० से २००० तक की होती है। यदि एक गाव की ही आबादी १५०० के लगभग हो तो एक पचायत बनाई जाती है। १५०० से कम आबादी होने पर पचायत गावो को मिलाकर बनाई जाती है। बडे गावो की एक ही पचायत बनती है चाहे इनकी आबादी २००० हजार से भी अधिक हो।

निर्वाचन—हर पचायत मे ५ से १५ तक पच व एक सरपच होते हैं जिनका गुप्त मतदान प्रणाली से चुनाव होता है। सारे पचायत क्षेत्र को वार्डों मे बाट दिया जाता है तथा हर वार्ड से एक पच चुना जाता है। सरपच के चुनाव के लिये सारे क्षेत्र के मतदाता मत देते हैं। चुनाव लोकतन्त्रीय बहुमत से होता है। इन चुनावो की समाप्ति के बाद एक विशेष सभा बुलाकर निम्न सदस्यो का सहवरण (Co-operation) किया जाता है —

(१) दो महिलाएँ यदि कोई स्त्री नही चुनी गई हो, अथवा एक स्त्री यदि एक स्त्री पहले से सदस्य चुन ली गई हो,

(२) एक व्यक्ति अनुसूचित जाति का यदि कोई ऐसा व्यक्ति नही चुना गया हो,

(३) एक व्यक्ति अनुसूचित जाति से यदि उनमे से कोई व्यक्ति नही चुना गया हो, इन सब सहवृत सदस्यो के अधिकार निर्वाचित सदस्यो के समान होते है।

कार्य की अवधि—पचायतो की कार्य अवधि ३ साल निश्चित की गई है तथा राज्य सरकार उसे विशेष स्थिति मे एक साल और बढा सकती है।

पचायत के अधिकारी-वर्ग—पचायत का उच्चाधिकारी सरपच होता है तथ प्रत्येक पचायत मे एक सेक्रेटरी होता है जोकि बहुधा एक साथ दो-तीन पचायतों । कार्य करता है। कुछ पचायतो मे ग्राम सेवक ही सचिव का कार्य करता है।

सरपंच के कार्य :

(१) सभा की अध्यक्षता करना व कार्य-सचालन करना,
(२) पचायत के रिकार्ड अपने पास रखना,
(३) पचायत फण्ड का हिसाब रखना,
(४) न्याय पचायत की सभा का इन्तजाम करना,
(५) पचायत के सभी कार्यों का निरीक्षण,
(६) राज्य सरकार द्वारा मागे गये रिकार्ड हिसाब या अन्य विवरण देना।

पचायत का कार्य सभा मे होता है तथा १५ दिन मे एक बार उसकी सभा होना आवश्यक है। सभा मे सरपच सहित एक तिहाई पचो का होना अनिवार्य है।

सब पच आपस मे मिलकर उप-सरपच का निर्वाचिन करते हैं जो सरपच की अनुपस्थिति मे सभा की अध्यक्षता करता है। किसी भी पच के द्वारा प्रस्ताव रखने पर और यदि वह प्रस्ताव ⅔ के बहुमत से पारित हो जाय तो सरपच को अपना स्थान रिक्त करना पडता है। उप-सरपच को हटाने के लिए इस प्रकार का 'अविश्वास प्रस्ताव' केवल कुल सदस्यो के बहुमत से पारित हो जाना काफी है।

पचायत के कार्य

पचायती राज के अन्तर्गत पचायत को ग्रामीण विकास की मुख्य इकाई मानकर उसे ग्राम विकास सम्बन्धी सभी कार्यों का भार सौंप दिया गया है। इसके निम्नलिखित मुख्य कार्य है —

(१) स्वास्थ्य व सफाई, (२) सडकें व गली बनवाना व उनकी रक्षा करना, (३) शिक्षा व सास्कृतिक कार्य जैसे वाचनालय बनवाना, शिक्षा व प्रसार इत्यादि (४) ग्राम सुरक्षा, (५) प्रशासकीय तथा जनगणना, आकडे, मेले व यात्राओ की व्यवस्था इत्यादि, (६) जन-हित हेतु कार्य जैसे भूमि-सुधार योजना को क्रियान्वित करना, सरकारी आन्दोलन को बढावा देना, परिवार-नियोजन को समझाना आदि, (७) कृषि व वन सरक्षण सम्बन्धी कार्य, (८) नस्ल सुधार सम्बन्धी कार्य, (९) ग्रामीण उद्योग-धन्धो को चलाना तथा विविध कार्य जैसे कि अल्पबचत योजना मे योग देना व जीवन बीमा का प्रचार करना।

पचायतो की आय के साधन—पचायतो के बढते हुये निम्नलिखित आय के साधन दिये गये हैं —

(१) राज्य सरकार व अन्य स्रोतों से प्राप्त सहायता,
(२) विभिन्न करो मे आय।

पचायतें निम्न कर लगा सकती हैं —

(अ) भवन कर,

(ब) वाहन कर ,
(स) चुगी ,
(द) यात्रा कर तथा कोई अन्य कर ।

इन करो को राज्य सरकार की अनुमति प्राप्त करके ही लगाया जा सकता है ।

पचायत समिति

पचायत समिति की रचना—राजस्थान मे पचायत समिति का निर्माण 'विकास खण्ड' (Development Blocks) स्तर पर किया गया है तथा जहाँ पर अभी तक विकास खण्ड नही है वहाँ पर 'छाया खण्ड' (Shadow Blocks) खोलकर पचायत समिति का गठन किया गया है ।

पचायत समिति के सदस्य—(१) खण्ड की समस्त पचायतो के सरपच । इसके अलावा निम्न सदस्य सहवृत (Co-operation) किये जायेंगे —

(१) कृषि पण्डित ,
(२) दो महिलायें ,
(३) एक व्यक्ति अनुसूचित जाति अथवा आदिम जाति का ,
(४) एक व्यक्ति सरकारी समितियो की प्रवन्धकारी समिति मे से ,
(५) जिले के रहने वाले दो ऐसे व्यक्ति जिनको प्रशासन, जन स्वास्थ्य अथवा ग्राम विकास का अनुभव हो ।

इनके अलावा राज्य विधान सभा का प्रत्येक सदस्य, जब तक कि वह ऐसा सदस्य वना रहे, प्रत्येक ऐसे खण्ड की पचायत समिति का सहयोगी सदस्य होगा जो पूर्णत अथवा अशत इस निर्वाचन क्षेत्र मे स्थित हो या शामिल हो या उसका भाग हो जिसमे से कि वह सदस्य राज्य विधान सभा के लिए चुना गया हो ।

कार्य काल—पचायत समिति का कार्यकाल तीन वर्ष होता है । इसका अध्यक्ष **प्रधान** कहलाता है जिसका चुनाव पचायत समिति के सदस्य गुप्त मतदान प्रणाली से करते हैं ।

पचायत समिति के अधिकारी—प्रधान की अध्यक्षता मे एक विकास अधिकारी जो राज्य प्रशासकीय अधिकारी होता है तथा कुछ (Extension Officers) कार्य करते हैं । कार्य सुचारु रूप से करने के लिए हर पचायत समिति मे कुछ स्थायी समितियो का निर्माण किया जाता है तथा हर स्थायी समिति के निर्णय पचायत समिति के सामने रखे जाते हैं जिन्हे वह केवल दो तिहाई बहुमत से ही बदल सकती है ।

पचायत समिति के कार्य—पचायत समितियो के निम्नलिखित प्रमुख कार्य निर्धारित किये गये हैं —

(१) सामुदायिक विकास, (२) कृषि, (३) पशुपालन, (४) स्वास्थ्य तथा ग्राम सफाई, (५) शिक्षा, (६) समाज शिक्षा, (७) सचार साधन, (८) सहकारिता,

(६) कुटीर उद्योग, (१०) पिछडे वर्गों के लिये कार्य, (११) आपातिक सहायता, (१२) आकडो का सग्रह, (१३) न्यास, (१४) वन, (१६) ग्राम भवन निर्माण, (१६) प्रचार, (१७) विविध ।

पंचायत समिति की आय के साधन :

(१) राज्य सरकार द्वारा पचायत समिति को हस्तातरित दायित्वो के लिए अनुदान ।

(२) राज्य सरकार द्वारा वार्षिक तदर्थ (ADHOC) अनुदान ।

(२) ऋण (Loans) ।

(४) खण्ड की जनसख्या के प्रति व्यक्ति २५ नये पैसे की दर से आगणित भू-राजस्व का अश ।

(५) पचायत समिति के करो व फीसो से प्राप्त आय ।

(६) खण्ड मे हड्डियो के पट्टो से आय ।

पचायत समिति की हर महीने एक सभा होती है जिसमे सभी सदस्य मिलकर विभिन्न समस्याओ पर विचार करते हैं तथा स्थायी समितियो की रिपोर्ट पर विचार-विमर्श करते है ।

जिला परिषद

राजस्थान मे हर जिले मे एक जिला परिषद् का निर्माण किया गया है जो House of elders की तरह कार्य करती है ।

जिला परिषद् के निम्नलिखित सदस्य होते हैं —

(१) जिले की सभी पचायत समितियो के प्रधान ।

इनके अलावा कुछ सहवृत सदस्य होते है जो इस प्रकार हैं —

(१) एक महिला ।

(२) एक व्यक्ति अनुसूचित जाति अथवा अनुसूचित आदिम जाति का ।

उस जिले से निर्वाचित ससद सदस्य व राज्य विधान सभासद् जिला परिषद् के सहयोगी सदस्य होगे तथा सहवृत सदस्यो व सहयोगी सदस्यो को साधारण सदस्यो की भाँति सभा मे भाग लेने व मतदान देने के सभी अधिकार प्राप्त होगे ।

जिला परिषद् के कार्य :

(१) भिन्न-भिन्न पचायत समितियो के कार्य मे समन्वय स्थापित करना ।

(२) पचायतो व पचायत समितियो का निरीक्षण करना तथा पचायत समितियो के बजट की जाच करना ।

(३) पचायतो व पचायत समितियो के बारे मे सरकार को राय देना ।

(४) जिले मे सब विकास कार्यो का सम्पादन करना व राज्य सरकार को विकास कार्यों के बारे मे सलाह देना ।

आय के साधन—जिला परिषद् एक सलाहकार सभा है तथा इसके प्रशासकीय कार्य वहुत कम हैं अत उसे केवल निम्नलिखित आय के साधन दिये गये है —

(१) राज्य सरकार द्वारा अनुदान।

(२) जनता और पचायत समितियो द्वारा दी गई सहायता आदि।

ग्राम सभा

पचायनी राज की स्थापना के बाद यह स्वीकार कर लिया गया है कि ग्राम सभा ही लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की आधारभूत शिला है तथा उनको पुनजार्गृत करने का पूर्णरूप से प्रयास किया जा रहा है।

ग्राम के सभी वालिग निवामियो को मिलाकर एक सभा वुलाई जाती है जिसको ग्राम सभा कहते है तथा सरपच उसकी अध्यक्षता करता है। प्रत्येक वर्ष मे ग्राम सभा की दो सभाये वुलाया जाना अनिवार्य है तथा आवश्यकता पडने पर अधिक वार भी यह सभा वुलाई जा सकती है।

ग्राम सभा मे पचायत द्वारा किये गए कार्यो की प्रगति पर विचार-विमर्श किया जाता है तथा ग्रामवासियो के विचारो को लिखकर अगली पचायत की सभा मे विचारार्थ रखा जाता है।

न्याय पचायत

ग्राम पचायतो को न्याय सम्वन्धी कार्य भार से मुक्त करने के लिए तथा न्याय कार्य को ठीक प्रकार से सम्पादित करने के लिए राजस्थान मे न्याय पचायतो का गठन किया गया है।

एक न्याय पचायत का कार्यक्षेत्र ५ से ७ पचायतो तक सीमित होता है तथा इनकी सदस्य सख्या उतनी ही होती है जितनी उसमे पचायते शामिल होती है तथा हर पचायत से एक सदस्य चुनकर न्याय पचायत मे भेजा जाता है।

न्याय पचायत फौजदारी व दीवानी दोनो प्रकार के मुकदमो का फैसला कर सकती है परन्तु राजस्थान पचायत अधिनिम मे दिये गये First Schedule मे लिखित मुकदमो तक ही इसका कार्यक्षेत्र सीमित है। न्याय पचायत कैद की सजा नही दे सकती। इसी प्रकार Civil cases मे यदि झगडा २५० रुपये से ज्यादा का है तो वह न्याय पचायत के क्षेत्र (Jurisdiction) से वाहर हो जाता है।

न्याय पचायत एक अदालत के ढग से कार्य करती है तथा इसके फैसलो की अपील उसी न्याय क्षेत्र के मुन्सिफ या किसी अन्य समान स्तरीय जज की अदालत मे की जा सकती है।

तुलना :

प्राय प्रत्येक राज्य मे पचायती राज की सस्थाओ को अलग-अलग नामो से पुकारा जाता है अतएव एक राज्य से दूसरे राज्य की तुलना करना अपने आप मे

(अ) जनता मे साक्षरता का अभाव ।

(ब) राजनीतिक चेतना का अभाव ।

(स) नि स्वार्थ नेतृत्व का अभाव ।

(द) जनता का आलस्य तथा उसकी क्रियाहीनता ।

(ट) जातीय, धार्मिक तथा सामन्तवादी निष्ठाये (Loyalties) ।

(ठ) भारत का अलोकतन्त्रीय सामाजिक तथा पारिवारिक ढाँचा ।

(य) ग्राम समुदाय मे शक्तिशाली वर्गो का कमजोर वर्गो (जैसे अनुसूचित जातियो) पर दृढ प्रभुत्व इत्यादि ।

इन सामाजिक बाधाओ का उन्मूलन करने के लिए सतत प्रयास आवश्यक है । पचायती राज आदोलन के फलस्वरूप बहुत सी प्रशासकीय समस्याये भी पैदा हुई है । इनमे से कुछ ये है—

(अ) विकास सम्बन्धी गतिविधियो की आधारभूत इकाई क्या हो ? खण्ड (Block) या जिला (District) ?

(ब) पचायती राज के कार्यो मे अधिकारी-वर्ग तथा गैर-अधिकारियो मे परस्पर क्या सम्बन्ध हो ?

(स) विकास कार्यों मे जिला अधिकारियो का क्या स्थान तथा दायित्व हो ?

(द) पचायती राज सस्थाओ तथा राज्य सरकार मे क्या-क्या सम्बन्ध हो ?

(ड) क्या पचायती राज के कार्यो के मूल्याकन के लिए कुछ विश्वसनीय कसौटियाँ हो सकती है ?

(ढ) पचायती राज के अन्तर्गत विभिन्न सेवाओ के पदाधिकारियो की नियुक्ति किस प्रकार की जाये ?

(य) पचायती राज सम्बन्धी चुनावो मे राजनीतिक दलो का व्यवहार कैसा हो ?

लोक प्रशासन के विद्यार्थी के लिए इन सब समस्याओ का अध्ययन करना आवश्यक है । जिस समय बलवन्तराय मेहता अध्ययन समिति ने पचायती राज की स्थापना का सुझाव दिया उस समय सामुदायिक विकास खण्ड पहले से मौजूद थे । समिति ने खण्ड को ही विकास की इकाई स्वीकार किया तथा पचायती समिति को उसने विकास सम्बन्धी महत्वपूर्ण नियोजन व क्रियान्वन विषयक कार्य सौपे । लोकतन्त्रीय विकेन्द्रीकरण सम्बन्धी महाराष्ट्रीय समिति ने मेहता समिति का सुझाव स्वीकार नही किया । उसने जिला स्तर पर जिला परिषद् को ही मुख्य विकास-कार्य सुपुर्द किये । भारत मे परम्परा से जिला प्रशासन की एक महत्वपूर्ण इकाई रहा है । भविष्य का अनुभव ही यह बतायेगा कि पचायती राज सस्थाओ की प्रमुख इकाई 'खण्ड' होना चाहिए या 'जिला' ।[1]

---

1 Refer to "The three-tier system of Panchayati aj has almost universally been accepted in this country The Panchayat cannot be the basic unit The Zila Parishad or the District Council can probably be invested with (Contd)

पचायती राज सस्थाओ के प्रति राज्य सरकारो तथा जिला अधिकारियो का उदासीन होना इनके लिए घातक होगा। पचायती राज मे सस्थाओ के मार्ग-निर्देशन, देख-रेख तथा नियन्त्रण का प्रश्न सबसे महत्वपूर्ण होगा। राज्य सरकारो, उनके तकनीकी अभिकरणो तथा जिला अधिकारियो को पचायती राज सस्थाओ का मार्ग-निर्देशित करना तथा उन्हे प्रोत्साहित करना है। कम से कम प्रारम्भिक चरणो मे तो उनका परामर्श तथा निर्देशन अत्यन्त महत्वपूर्ण है। जिला अधिकारियो को इन विकेन्द्रीकृत लोकतन्त्रीय सस्थाओं के 'मित्र, दार्शनिक तथा पथ-प्रदर्शक' बनना है। उनका कार्य बहुत सकारात्मक प्रकृति का है। जहाँ पथ-प्रदर्शन आवश्यक है, वहाँ उन्हे पथ-प्रदर्शन करना है, जहाँ समस्याओ की व्याख्या करना जरूरी है, वहाँ उन्हे व्याख्या करनी है। उन्हे जनता को अधिकतम पहल करने का मौका देने वाले शिक्षको का कार्य करना है। कुछ अधिकारियो की यह मनोवृत्ति बन गई है कि उनका पचायती राज से कोई सम्बन्ध नही है।[1] यह गलत है। अधिकारीगण विकेन्द्रीकृत लोकतन्त्र की गतिविधियो मे सक्रिय हिस्सेदारो के रूप मे सम्मुख आने चाहिये। इसके साथ ही उन्हे अहकार व वर्ग-उच्चता की खोखली धारणाओ को त्यागना होगा। नौकरशाही की पुरानी उच्चता वाली मनोवृत्ति से काम नही चलेगा। अधिकारियो को पचायती राज का लालन-पालन बहुत सावधानी से करना है। जनता के सगठनो के प्रति उन्हे शिक्षण तथा समझाने बुझाने के तरीको का प्रयोग करना पडेगा।[2] यही कारण है कि आज कलक्टर के बदलते हुए कार्यो, प्रशासक-वर्ग

---

the functions of planning and execution But this institution at the district level will be at a distance from the people, which will not help in associating and enthusing them into active participation in the programmes of their economic and social uplift The institution at the block level is, therefore, the most convenient body to plan and execute programmes for the area" B Mehta The Panchayat Samiti at the Block Level as the Basic Unit of Panchayati Raj", The Indian Journal of Public Administration, New Delhi, Vol VIII No 4, Oct—Dec 1962, page 476

1 The Evaluation Report in Rajasthan gives statistical evidence to show that the District Level Officers (a) do not attend the meetings of the Panchayat Samitis regularly or frequently, (b) do not carry out the required number of tours and inspections *The Working of Panchayati Raj in Rajasthan* 1962, pages 86—87

2 Balwantrai Mehta rightly observes "But the conception of direction and control will have to change It is through persuasion and conversion if hearts, as well as through a process of securing willing consent that control in the present circumstances will have to be exercised Panchayati Raj in the country to-day is not only in its infancy but it is a tender plant which will require all the assistance we can give in order that it will grow and gather strength It may be necessary for this purpose to explore all possibilities of rendering guidance and assistance to the Panchayats for some time to come" (I J P A, New Delhi, *op cit*, page 457)

के नये दायित्वो तथा अधिकारियो की नई मनोवृत्तियो पर भारत मे सर्वत्र विचार-विमर्श हो रहा है। अगर 'खण्ड-विकास अधिकारी' (B D O.) 'बडे साहब' वाला रुख अपनाने का प्रयास करेगा तो पचायती राज आदोलन को भीषण कठिनाइयो का सामना करना पडेगा। श्री वी० टी० कृष्णमाचारी ने ठीक ही कहा कि "कलक्टर का कार्य बदला है पर कम नही हुआ है, क्योकि अब उसे लोकतन्त्रीय सस्थाओं का पथ-प्रदर्शन करना है। अक्सर अब उसे स्वय को लोकतन्त्रीय सस्थाओ के विश्वास के योग्य ठहराना पडता है।"[1] श्री वी० टी० कृष्णमाचारी ने अपनी रिपोर्ट "भारतीय व राज्यीय प्रशासकीय सेवाये तथा जिला प्रशासन की समस्याये" मे इस तथ्य पर बल दिया है कि अधिकारियो को पचायती राज के उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए सक्रिय सहयोग देना होगा। उनकी निम्नलिखित सिफारिशें महत्वपूर्ण हैं—

(अ) जिला स्तर के अधिकारियो, जिन्हे समूह भाव से काम करना चाहिए, का प्रमुख दायित्व जिला परिषद्, पचायती समितियो, खण्ड-विकास अधिकारियों तथा विस्तार अधिकारियो (Extension officers) को सरकारी नीतियो तथा निर्देशो के अनुसार तकनीकी दृष्टि से सुव्यवस्थित योजनायें बनाने मे मदद देना है, प्रशासनिक तथा तकनीकी दृष्टि से इन योजनाओ के क्रियान्वन की देख-रेख करना है तथा यह आश्वस्त करना है कि विकास योजनाओ के लिए मूल रूप मे आवश्यक सेवायें तथा वस्तुये समय पर तथा पर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध हो सकें। इसके साथ ही उन्हे जिले के अन्तर्गत विभिन्न खण्डो मे कार्यों मे समायोजन पैदा करना है।

(ब) विस्तार अधिकारियो को खण्ड विकास अधिकारी के सामान्य निर्देशन मे एक समूह के रूप मे कार्य करना चाहिये तथा उपक्रमो के क्रियान्वन मे तकनीकी सुव्यवस्था का प्रबन्ध करके पचायती समिति की सहायता करनी चाहिए। इसके साथ ही उन्हे ग्राम स्तर के कर्मचारियो (Village level workers) तथा अन्य क्षेत्रीय कर्मचारियो के कार्य की देख-रेख करनी चाहिये।

(स) खण्ड स्तर पर विस्तार अधिकारियो तथा गाम स्तर के कर्मचारियो को ऐसा प्रशिक्षण दिया जाये कि वे पचायतो तथा सहकारी समितियो (Co-operatives) के साथ काम कर सके तथा उन्हे रास्ता दिखा सके।"[2]

पचायती राज में अविरल मूल्याकन तथा अध्ययन आवश्यक है। इसके कार्य का पूर्ण अध्ययन होना चाहिए जिससे इसकी त्रुटियो व कमियो को दूर किया जा सके। इसके कार्य का मूल्याकन करते समय निम्नलिखित मापदण्ड उपयोगी सिद्ध

---

1 Also refer to B Sivaraman, 'The Collector and Panchayat Raj', pages 489—499, and M P Pai, 'The Emerging Role of the Collector', pages 478—488, I J P A, New Delhi, Special Number

2 Refer to *Report on Indian and State Administrative Service and Problems of District Administration*, Government of India, Planning Commission, August 1962, Paras 5, 6, 7, page 63

होंगे। इन मापदण्डो का निर्धारण हैदराबाद मे 'सामुदायिक विकास तथा पचायती राज' पर हुए जुलाई १९६१ के वार्षिक सम्मेलन मे किया गया था। ये दस-सूत्री मापदण्ड हैं—

(१) तृतीय योजना मे कृषि-उत्पादन की वृद्धि सर्वोपरि राष्ट्रीय प्राथमिकता (Priority) के रूप मे।

(२) ग्रामीण उद्योगो का विकास।

(३) सहकारी सस्थाओ का विकास।

(४) स्थानीय स्रोतो (जनशक्ति सहित) का विकास;

(५) पचायती राज सस्थाओ द्वारा उपलब्ध स्रोतो जैसे धन, स्टाफ, तकनीकी सहायता तथा उच्च स्तरो से प्राप्त अन्य सुविधाओ का अधिकतम उपयोग।

(६) समुदाय के आर्थिक दृष्टि से कमजोर वर्गों की सहायता।

(७) स्वय-सेवी सगठन पर विशेष बल देकर क्षितिजीय (Horizontal) तथा शिरोन्मुखी (Vertical) शक्ति एव पहल का प्रगतिशील प्रयोग।

(८) व्यापक प्रशिक्षण एव दायित्वो व कर्त्तव्यो के सुनिश्चित वितरण द्वारा जनता के प्रतिनिधियो व जनता के सेवको (कर्मचारियो) मे सद्भाव तथा सहिष्णुता की स्थापना।

(९) अधिकारियो तथा गैर-अधिकारियो मे निरन्तर योग्यता की वृद्धि।

(१०) समुदाय मे मेलभाव तथा सहयोगिक आत्म-सहायता का विकास।

ग्रामीण योजनाओ तथा कार्यक्रमो के मूल्याकन के लिए राजस्थान सरकार ने एक अर्ध-स्वतन्त्र 'मूल्याकन सगठन' (Evaluation organization) की स्थापना की है। इसको राज्य ने पचायती राज सस्थानो की गतिविधियो की जाँच का अधिकार भी दिया गया है। पचायती राज की गतिविधियो के अधिकृत तथा गैर अधिकृत मूल्याँकन के फलस्वरूप बहुत से रोचक तथ्य सामने आये हैं।[1]

बहुत से दोषो का उद्घाटन हुआ है। यह कहा गया है कि पचायती राज के फलस्वरूप गावो मे दलबन्दी तथा गुटबन्दी पर आधारित राजनीतिक गतिविधियाँ बढी हैं। पचायत चुनावो के कारण ग्राम समाज के विभिन्न वर्गों मे एक प्रकार के 'शीत युद्ध' (Cold war) का वातावरण विकसित हुआ है। राजनीतिक वैमनस्य के फलस्वरूप ग्रामो मे हत्याओ की सख्या बढी है। यह सुझाव दिया गया है कि ये सब दोष तब दूर हो सकते है जब राजनीतिक दल पचायती कार्यों मे हस्तक्षेप न करे तथा जब पचायतो के चुनाव सर्वसम्मति पर आधारित हो।[2] राजनीतिक दलो को पचायती गतिविधियो से दूर रहने की घोषणा करनी चाहिए।

---

1 Refer to (1) Evaluation Organisation (Government of Rajasthan) *A Report on the Panchayat Elections in Rajasthan*, 1960, August 1961, page 36, (2) Evaluation Organisation (Government of Rajasthan) *The Working of Panchayati Raj in Rajasthan (April 1961 to March 1962)—A Report*, June, page 92

2 Refer to Jaya Prakash *A Plea for Reconstruction of Indian Polity* Kashi, Akhil Bharat Sarva Sewa Sangh Prakashan, Rajaghat, 1959, *Swaraj*

किन्तु यह तो एक कठिन समस्या का सरल वर्णन मात्र है। विभिन्न हितो पर आधारित तथा उनका प्रतिनिधित्व करने वाले दल लोकतन्त्र मे हमेशा बने रहेंगे। राजनीतिज्ञो के आचरण को सुधारने की बात तो जरूरी है किन्तु यह आशा करना व्यर्थ है कि राजीतिक दल स्थानीय संस्थाओ के क्षेत्र से हटा लेंगे। पचायती सस्थाओ से राजनीतिक दलो को हटने के लिए कहना अवाछनीय भी है। उनके हटने से रिक्त स्थान की पूर्ति गावो के प्रभुत्वशाली आर्थिक, जातीय या धार्मिक-वर्ग करेंगे। सुसग-ठित राष्ट्र-व्यापी राजनीतिक दल ऐसे सामन्तवादी तथा प्रतिक्रियावादी वर्गो से कही अच्छे है। इसके अतिरिक्त अनेक बार बहुसख्यक-वर्ग अल्पसख्यक-वर्गो पर अपने निर्णय सर्वसम्मत निर्णय कहकर थोप देता है। अच्छा यह है कि लोकतन्त्रीय सस्थाओ को स्वतन्त्र रूप से कार्य करने दिया जाये। समय आने पर स्वस्थ परम्पराओ व परि-पाटियो की नीव स्वयमेव पड जायेगी तथा स्थिति सुधर जायेगी।

पचायती राज के फलस्वरूप एक महत्वपूर्ण तथ्य यह सामने आया है कि ग्रामीणो के मस्तिष्क से अधिकारियो का भय जाता रहा है। अंग्रेजी शासन के युग मे ग्रामीण जब नौकरशाही की शक्ति से आतकित थे। "गाव मे बडे-बडे जमीदारो को छोड कर बाकी सबके लिए, पटवारी (जोकि मालगुजारी एकत्रित करने वाले अधि-कारियो मे सबसे नीचे होता है तथा जो एक गाव या कुछ गांवो की जमीन का हिसाब-किताब भी रखता है) दूरस्थ कलक्टर, बल्कि गवर्नर से भी अधिक शक्ति-शाली व्यक्ति था। साधारणतया उसी को खुश करना पर्याप्त था और यही वाता-वरण उन अन्य छोटे-छोटे दफ्तरो मे भी था जिनका ग्रामीण जनता से सीधा सम्पर्क था।[1]

अब ग्रामीण जन खण्ड विकास अधिकारी के पास जाकर विश्वास के साथ उससे अपनी समस्याओ पर बातचीत कर सकते हैं। भारतीय सदर्भ मे पचायती राज से यह एक मूल्यवान लाभ प्राप्त हुआ है क्योकि यहा शताब्दियो से राजकीय शक्ति जन-साधारण के लिए भय का विषय रही है। पचायती राज का प्रारम्भ जनता मे आत्म सहायता की भावना पैदा करने, विकास कार्यक्रमो मे जनता को भाग लेने का अवसर प्रदान करने तथा उनमे लोकतन्त्रीय विचारो का प्रसार करने हेतु किया गया था। यदि पचायती राज के लाभो व हानियो की एक सूचि तैयार की जाये तो यह स्पष्ट प्रतीत होगा कि इसका श्रेष्ठतम लाभ जनसाधारण मे आत्म-महत्व की अनुभूति को उत्पन्न करना रहा है।

---

for the people Varanasi, Akhil Bharat Sarva Sewa Sangh, Rajaghat, 1961 Also refer to 'Unhappy' Utopia—J P in Wonderland' by W H Morris-Jones Economic Weekly, Bombay, Vol XII, No 26, June 25, 1960

1 Henry Maddick, 'Panchavati Raj, Rural Local Government in India', Journal of Local Administration Overseas, H M Stationery Office, London, Volume I, No 4, October, 1962 page 202,

पचायती राज के परीक्षण की सफलता हमारी जागरूकता तथा समस्याओ का साहस व उत्साह से सामना करने की हमारी क्षमता पर निर्भर करेगी। प्रारम्भिक चरणो मे पचायती राज सस्थाओ को अपने उद्देश्यो की प्राप्ति मे अधिकारियो के महत्वपूर्ण परामर्श तथा निर्देशन की अत्यधिक आवश्यकता है। अधिकारियो को ग्रामीण क्षेत्रो मे हो रहे परिवर्तनो के अनुकूल स्वय को बदलना है।[1] किन्तु साथ ही हमे इन सस्थाओ को वे कार्य नही सौपने चाहिये जो वे नही कर सकती। उनको केवल वे ही दायित्व सौपे जाने चाहिये जिनको वे सफलता से निभा सके। इसके अतिरिक्त राज्य सरकारो को इन सस्थाओ पर उचित नियन्त्रण रखना चाहिए। तथा उनकी देख-रेख करनी चाहिए। किसी भी स्तर पर यह विचार नही आना चाहिये कि पचायती राज की स्थापना से सब समस्याये सुलझ गई है। भविष्य मे आशा तथा ग्राम-जनता की योग्यता मे विश्वास इस परीक्षण को सफल बना सकते हैं। जैसा श्री बलवन्त राय मेहता ने कहा है "ग्रामीण भारत की जनता अनपढ बेशक हो, किन्तु वह एक महान् पैतृक सम्पत्ति तथा एक महान् सस्कृति की स्वामी है तथा समय आने पर वह निश्चित रूप से अपने वास्तविक रूप मे आयेगी। यदि हममे पचायती राज सस्थाओ, अपने ग्रामीण-जनो तथा उनके अपने छिपे हुये गुणो का उपयोग करने की क्षमता मे विश्वास है तो निश्चित रूप से सफलता उनके हाथ लगेगी। आज पचायती राज मे बहुत से दोष हो सकते है परन्तु यह भविष्य की एक महत्वपूर्ण शक्ति है।"[2]

---

1 S Dey rightly observes "We invariably came back to the Block Development Officer He is a person who has no responsibilities other than development—development of himself and of the environment around Where he is of the right type, the whole area vibrates with a youthful exuberance Where he takes himself to be just another functionary of Government, we see only targets, we do not feel the human pulsation behind" *Community Development—A Chronicle*, 1954-1961, Publications Division, Government of India, New Delhi, 1962, page 55

2 *Kurukshetra*, New Delhi, Vol 11, No 6, March 1963, page 21 Also refer to The Indian Journal of Public Administration, New Delhi, Vol VIII, No 4, October—December 1962 It is a special number devoted to the study of Panchayati Raj A detailed bibliography is provided at the end of Journal pages 698—709 A recent study by Henry Maddick—*Democracy, Decentralisation and Development*, Asia Publishing House, Bombay, 1962, also provides a detailed bibliography on local bodies in Asia and African countries This bibliography will be helpful for comparative study of local institutions in developing countries Important evaluation reports by official and non-official agencies also give an insight into the problem Refer to Congress party in Parliament Study Team's Report on Panchayati Raj in Rajasthan, October 1960 page 27 Congress Party in Parliament Study Team's Report

किन्तु यह तो एक कठिन समस्या का सरल वर्णन मात्र है। विभिन्न हितों पर आधारित तथा उनका प्रतिनिधित्व करने वाले दल लोकतन्त्र मे हमेशा बने रहेंगे। राजनीतिज्ञो के आचरण को सुधारने की बात तो जरूरी है किन्तु यह आशा करना व्यर्थ है कि राजनीतिक दल स्थानीय संस्थाओ के क्षेत्र से हटा लेंगे। पचायती संस्थाओं से राजनीतिक दलो को हटने के लिए कहना अवाछनीय भी है। उनके हटने से रिक्त स्थान की पूर्ति गावो के प्रभुत्वशाली आर्थिक, जातीय या धार्मिक-वर्ग करेंगे। सुसगठित राष्ट्र-व्यापी राजनीतिक दल ऐसे सामन्तवादी तथा प्रतिक्रियावादी वर्गो से कही अच्छे हैं। इसके अतिरिक्त अनेक बार बहुसख्यक-वर्ग अल्पसख्यक-वर्गों पर अपने निर्णय सर्वसम्मत निर्णय कहकर थोप देता है। अच्छा यह है कि लोकतन्त्रीय संस्थाओ को स्वतन्त्र रूप से कार्य करने दिया जाये। समय आने पर स्वस्थ परम्पराओं व परिपाटियो की नीव स्वयमेव पड जायेगी तथा स्थिति सुधर जायेगी।

पचायती राज के फलस्वरूप एक महत्वपूर्ण तथ्य यह सामने आया है कि ग्रामीणो के मस्तिष्क से अधिकारियो का भय जाता रहा है। अग्रेजी शासन के युग मे ग्रामीण जब नौकरशाही की शक्ति से आतकित थे। "गाव मे बडे-बडे जमीदारो को छोड कर बाकी सबके लिए, पटवारी (जोकि मालगुजारी एकत्रित करने वाले अधिकारियो मे सबसे नीचे होता है तथा जो एक गाव या कुछ गाँवो की जमीन का हिसाब-किताब भी रखता है) दूरस्थ कलक्टर, बल्कि गवर्नर से भी अधिक शक्तिशाली व्यक्ति था। साधारणतया उसी को खुश करना पर्याप्त था और यही वातावरण उन अन्य छोटे-छोटे दफ्तरो मे भी था जिनका ग्रामीण जनता से सीधा सम्पर्क था।[1]

अब ग्रामीण जन खण्ड विकास अधिकारी के पास जाकर विश्वास के साथ उससे अपनी समस्याओ पर बातचीत कर सकते हैं। भारतीय सदर्भ मे पचायती राज से यह एक मूल्यवान लाभ प्राप्त हुआ है क्योंकि यहा शताब्दियो से राजकीय शक्ति जन-साधारण के लिए भय का विषय रही है। पचायती राज का प्रारम्भ जनता मे आत्म सहायता की भावना पैदा करने, विकास कार्यक्रमो मे जनता को भाग लेने का अवसर प्रदान करने तथा उनमे लोकतन्त्रीय विचारो का प्रसार करने हेतु किया गया था। यदि पचायती राज के लाभो व हानियो की एक सूचि तैयार की जाये तो यह स्पष्ट प्रतीत होगा कि इसका श्रेष्ठतम लाभ जनसाधारण मे आत्म-महत्व की अनुभूति को उत्पन्न करना रहा है।

---

for the people Varanası, Akhıl Bharat Sarva Sewa Sangh, Rajaghat, 1961 Also refer to 'Unhappy' Utopıa—J P ın Wonderland' by W H Morrıs-Jones Economıc Weekly, Bombay, Vol XII, No 26, June 25, 1960

1 Henry Maddıck, 'Panchayıtı Raj, Rural Local Government ın Indıa', Journal of Local Admınıstratıon Overseas, H M Statıonery Office, London, Volume I, No 4, October, 1962 page 202,

पचायती राज के परीक्षण की सफलता हमारी जागरूकता तथा समस्याओं का साहस व उत्साह से सामना करने की हमारी क्षमता पर निर्भर करेगी। प्रारम्भिक चरणों मे पचायती राज सस्थाओं को अपने उद्देश्यों की प्राप्ति मे अधिकारियों के महत्वपूर्ण परामर्श तथा निर्देशन की अत्यधिक आवश्यकता है। अधिकारियों को ग्रामीण क्षेत्रो मे हो रहे परिवर्तनों के अनुकूल स्वय को बदलना है।[1] किन्तु साथ ही हमे इन सस्थाओं को वे कार्य नही सौंपने चाहिये जो वे नही कर सकती। उनको केवल वे ही दायित्व सौंपे जाने चाहिये जिनको वे सफलता से निभा सके। इसके अतिरिक्त राज्य सरकारों को इन सस्थाओं पर उचित नियन्त्रण रखना चाहिए। तथा उनकी देख-रेख करनी चाहिए। किसी भी स्तर पर यह विचार नही आना चाहिये कि पचायती राज की स्थापना से सब समस्याये दूर हो गई है। भविष्य मे आशा तथा ग्राम-जनता की योग्यता मे विश्वास इस परीक्षण को सफल बना सकते है। जैसा श्री बलवन्त राय मेहता ने कहा है "ग्रामीण भारत की जनता अनपढ बेशक हो, किन्तु वह एक महान् पैतृक सम्पत्ति तथा एक महान् संस्कृति की स्वामी है तथा समय आने पर वह निश्चित रूप मे अपने वास्तविक रूप मे आयेगी। यदि हममे पचायती राज सस्थाओं, अपने ग्रामीण-जनो तथा उनके अपने छिपे हुये गुणों का उपयोग करने की क्षमता मे विश्वास है तो निश्चित रूप मे सफलता उनके हाथ लगेगी। आज पचायती राज मे बहुत से दोष हो सकते है परन्तु यह भविष्य की एक महत्वपूर्ण शक्ति है।"[2]

---

1 S Dey rightly observes "We invariably came back to the Block Development Officer He is a person who has no responsibilities other than development—development of himself and of the environment around Where he is of the right type, the whole area vibrates with a youthful exuberance Where he takes himself to be just another functionary of Government, we see only targets, we do not feel the human pulsation behind " *Community Development—A Chronicle*, 1954-1961, Publications Division, Government of India, New Delhi, 1962, page 55

2 *Kurukshetra*, New Delhi, Vol 11, No 6, March 1963, page 21 Also refer to The Indian Journal of Public Administration, New Delhi, Vol VIII, No 4, October—December 1962 It is a special number devoted to the study of Panchayati Raj A detailed bibliography is provided at the end of Journal pages 698—709 A recent study by Henry Maddick—*Democracy, Decentralisation and Development*, Asia Publishing House, Bombay, 1962, also provides a detailed bibliography on local bodies in Asia and African countries This bibliography will be helpful for comparative study of local institutions in developing countries Important evaluation reports by official and non-official agencies also give an insight into the problem Refer to Congress party in Parliament Study Team's Report on Panchayati Raj in Rajasthan, October 1960, page 27 Congress Party in Parliament Study Team's Report

on Panchayati Raj in Andhra, December 1960 page 36, Association of Voluntary Agencies for Rural Development Report of a Study Team on Democratic Decentralization in Rajasthan, February 1961, page 38, and also Panchayati Raj in Andhra Pradesh October 1961, page 48, Iqbal Narayan, 'Democratic Decentralisation The Idea, The Image, and The Reality', I J P A, New Delhi, January—March 1963 pages 1—26 This article is based on the field experiences of the author

Writing about the role of Collector in relation to Panchayati Raj, Henry Maddick observes "The term Collector may go, for one so inappropriate to the task of executive officer or supervisor of the Panchayati Raj system could hardly be devisd This, however, does not and could not mean the elimination of the Indian Administrative Service from the rural field Members of this service need the experience, not of revenue-collecting but of local government, local administration and a local political society The programme of development and of democratic decentralization needs the support of their intelligence, education, training, drive and enthusiasm" 'The Present and Future Role of Collector in India' Journal of Local Administration Overseas H M's Stationery Office, London, Vol 11, No 2, April, 1963, page 87

११

क्षेत्रीय संस्थाएं
(Field Establishments)

प्रधान कार्यालय और स्थानीय कार्यालयो के बीच सम्बन्ध
(Relations between Headquarters and Local Offices)

देश की राजधानियाँ (Capitals) ही केवल एक स्थान मे होती हैं जहाँ से सरकार के कार्य का सचालन किया जाता है। किन्तु वास्तव मे राष्ट्रीय अथवा राज्य सरकारें उन कार्यालयो (Offices) द्वारा अपने कार्य का सम्पादन करती हैं जोकि देश भर मे फैले होते हैं। यहाँ तक कि किसी देश की सरकार के कार्यालय ससार के अन्य देशो मे भी पाये जाते हैं। इस प्रकार सरकार के कार्य उन सैकडो तथा हजारो कार्यालयो द्वारा सम्पन्न किये जाते हैं। जोकि राजधानी मे काफी दूर अर्थात् "क्षेत्र" (The field) मे स्थित होते हैं। इन क्षेत्रीय कार्यालयो अथवा क्षेत्रीय सस्थाओ के माध्यम से ही सरकार जनता तक पहुचती है। डाक के वितरण का कार्य केवल दिल्ली के स्थित डाकखाने (Post office) द्वारा ही सम्पन्न नही किया जाता बल्कि यह कार्य देश भर मे दूर-दूर तक फैले हुए हजारो डाकखानो द्वारा पूरा किया जाता है। इसी प्रकार करो का सग्रह केवल दिल्ली के कर सग्रह करने वाले कार्यालयो (Tax Collecting Offices) द्वारा ही नही किया जाता करो के सग्रह का कार्य देश भर मे बिखरे हुए हजारो कार्यालयो द्वारा सम्पन्न किया जाता है। जनोपयोगी सेवाएँ (Public utility services) केवल दिल्ली मे स्थिति कार्यालयो के कार्य द्वारा ही लोगो तक नही पहुचाई जाती। इन जनोपयोगी सेवाओ को सम्पन्न करने के लिये लाखो कर्मचारी काम मे लगे रहते हैं और ये कर्मचारी प्रधान कार्यालयो (Headquarters) से काफी दूर स्थित होते हैं। **क्षेत्रीय सस्थायें अथवा क्षेत्रीय कार्यालय वे कार्यालय हैं जोकि प्रधान कार्यालयों से दूर क्षेत्र अथवा मुफस्सिल' (Field) मे कार्य करते हैं।** क्षेत्रीय स्थल (Field stations) जैसे कि डाकखाने, आय-कर सग्रह करने वाले कार्यालय आदि देश भर मे फैले होते हैं। राजनयिक अधिकारी (Diplomatic officers) ससार भर मे नियुक्त किये जाते है। ये क्षेत्रीय सस्थाएं कुछ अपनी ही प्रशासकीय समस्यायें प्रस्तुत करती हैं जोकि बडी कठिन प्रकृति की होती है, और सम्पूर्ण देश की प्रशासकीय व्यवस्था की कुशलता एव दक्षता बडी मात्रा मे इन 'क्षेत्रीय सस्थाओ' मे सम्बन्धित समस्याओ के हल पर ही निर्भर रहती है।

क्षेत्र-स्थलो की स्थापना के कारण
(Reasons for the establishment field stations)

क्षेत्र मे कार्यालयो की स्थापना क्यो की जाती है ? इसके तीन प्रमुख कारण है जोकि निम्न प्रकार के है —

(१) यह स्पष्ट है कि प्रत्येक प्रकार का कार्य केवल प्रधान कार्यालयो द्वारा ही सम्पन्न नही किया जा सकता। देश भर मे डाक का वितरण करने के लिए कोई भी सरकार केवल एक ही राष्ट्रीय डाकखाने की स्थापना से काम-नही चला सकती। केवल एक डाकखाना लाखो मील के क्षेत्र मे फैली हुई भारत की ४४ करोड जनता की आवश्यकताओ को पूरा नही कर सकता।

(२) राज्य के कार्य दिन-प्रतिदिन वढते ही जा रहे है। राज्य द्वारा अनेक प्रकार की क्रियाओ की सम्पन्नता के लिए देश के सभी भागो मे क्षेत्रीय कार्यालयो की स्थापना की आवश्यकता होती है। क्षेत्रीय सेवाओ (Field services) की वृद्धि का प्रत्यक्ष सम्बन्ध राज्य के कार्यों के विस्तार से है। कल्याणकारी राज्य (Welfare state) को अपने सभी नागरिको की आवश्यकताओ को पूरा करना होता है और उसके लिये क्षेत्रीय कार्यालयो की स्थापना की जाती है।

(३) सचार के साधनो (Means of communications) के विकास ने क्षेत्रीय सेवाओ की स्थापना के कार्य को काफी सुविधाजनक बना दिया है। अब प्रधान कार्यालय (Head Office) देश के किसी भी भाग मे स्थित किसी भी क्षेत्रीय कार्यालय से बडी आसानी के साथ पत्र व्यवहार कर सकता है तथा सम्बन्ध कायम रख सकता है। यातायात के सचार के आधुनिक साधनो, जैसे कि रेल मार्ग, वायु मार्ग, बेतार के तार (Wireless), टेलीफोन तथा तार (Telegraph) आदि के क्षेत्रीय कार्यालयो की स्थापना मे बडी सहायता पहुचाई है। दिल्ली मे स्थित किसी भी पदाधिकारी के लिए अब आसाम के दूर से दूर कोने मे स्थित किसी भी अधिकारी के साथ पत्र-व्यवहार करना तथा उससे सम्बन्ध रखना बडा आसान है।

क्षेत्रीय सस्थाओ से उत्पन्न होने वाली प्रशासकीय सस्थाये
(Administrative Problems Created by Field Establishments)

क्षेत्रीय कार्यालयो की अपनी निजी महत्वपूर्ण समस्याएँ होती है और प्रशासन की कोई सुस्थिर व्यवस्था उनकी उपेक्षा नही कर सकती। किसी भी बडे सगठन मे, सदर मुकाम अथवा प्रधान कार्यालय (Headquarter) तथा क्षेत्रीय कार्यालयो (Field office) के बीच सघर्ष (Friction) उत्पन्न हो जाना मामूली सी बात है। यह भी सम्भव है कि प्रधान कार्यालय तथा क्षेत्रीय कार्यालय के बीच सम्पर्क ही टूट जाए और प्रधान कार्यालय के अधिकारी स्थानीय कठिनाइयो एव समस्याओ को यथेष्ट रूप मे समझने तथा उनका मान करने मे समर्थ न हो सके। क्षेत्रीय कार्यालय

द्वारा उत्पन्न होने वाली महत्वपूर्ण समस्या है **प्रधान कार्यालय तथा क्षेत्रीय कार्यालय के बीच सम्बन्ध की समस्या।** यह अत्यन्त आवश्यक है कि क्षेत्रीय सेवाओ पर प्रभावशाली नियन्त्रण लगाया जाय जिसमे कि राष्ट्रीय नीति (National policy) मे एकरूपता (Uniformity) कायम रखी जा सके। साथ ही साथ, क्षेत्र स्थलो को अपने-अपने क्षेत्र के लोगो की विशिष्ट आवश्यकताओ को पूरा करने के लिये पर्याप्त मात्रा मे प्रबन्ध सम्बन्धी स्वायत्तता (Managerial autonomy) भी प्रदान की जानी चाहिए। यही **'केन्द्रीकरण बनाम विकेन्द्रीकरण'** (Centralization versus decentralization) की परम्परागत समस्या है, अर्थात् यह कि क्या प्रशासन के सम्बन्ध मे निर्णय करने की पूर्ण सत्ता (Authority) मुख्य कार्यालय केन्द्रित कर दी जाए, अथवा क्षेत्रो मे स्थित कार्यालयो के निर्णय करने के लिये आवश्यक सत्ता मे सम्पन्न व्यक्तियो को नियुक्त कर लिया जाए तथा कार्य करने दिया जाय ? **क्षेत्रीय सेवाओ की प्रमुख समस्या यह है कि प्रधान कार्यालय द्वारा उन पर कितना नियन्त्रण लागू किया जाए ? क्षेत्र स्थलो** (Field stations) **को, अपने कर्त्तव्यो को पूरा करने के लिए, कितनी सत्ता सौंपी जाए ?**

क्षेत्रीय सेवाओ (Field services) से सम्बन्धित दूसरी प्रशासकीय समस्या उसके निर्माण अथवा उसकी स्थापना से सम्बन्ध रखती है। क्या क्षेत्रीय कार्यालयो की स्थापना करने की सत्ता महा-प्रबन्धक के रूप मे मुख्य कार्यपालिका (Chief executive as general manager) मे निहित की जाए अथवा विधान-मण्डल (Legislature) मे ? क्या इस बात का निश्चय विधान-मण्डल को करना चाहिए कि कहाँ-कहाँ नये डाकखाने कायम किए जाए, अथवा उनकी स्थापना के बारे मे देश के प्रशासन के प्रधान के नाते मुख्य निष्पादक या मुख्य कार्य-पालिका (Chief Executive) को निश्चय करना चाहिए ? इस प्रश्न के उत्तर मे हम कह सकते है कि विधान-मण्डल का कार्य केवल सरकार द्वारा सम्पन्न की जाने वाली सेवा या क्रिया (Service or activity) को तय करना होता है। उस क्रिया को सम्पन्न करने के लिए स्थानीय कार्यालयो के निर्माण की जिम्मेदारी मुख्य कार्यपालिका की ही होनी है।

केन्द्रीकरण बनाम विकेन्द्रीकरण
(Centralization Versus Decentralization)

अब हम प्रधान कार्यालय (Headquarter) तथा क्षेत्रीय सेवाओ (Field services) के पारस्परिक सम्बन्धो की समस्या की विवेचना करते है।

अर्थ (Meaning)

यदि लगभग सभी महत्वपूर्ण मामलो का निर्णय करने वाली सत्ता (Authority) प्रधान कार्यालय पर केन्द्रित कर दी जाती है, यदि क्षेत्रीय सस्थायें केवल कार्यवाहक अभिकरणो (Executing agencies) के रूप मे कार्य करती हैं और

उन्हे अपनी प्रेरणा अथवा पहलकदमी पर कार्य करने की कोई शक्ति प्राप्त नही होती, यदि सभी मामलो मे, यहाँ तक कि आन्तरिक प्रवन्ध के मामलो मे भी, क्षेत्रीय कार्यालयो को प्रधान कार्यालय की पूर्व अनुमति लेनी पडती है, यदि क्षेत्रीय कार्यालयो को स्वय अपने विवेक के कार्य करने की छूट नही होती, और यदि प्रत्येक निर्णय केन्द्रीय कार्यालय द्वारा ही किया जाता है तो उसे केन्द्रीकरण कहा जाता है। इससे उल्टी स्थिति विकेन्द्रीकरण कहलाती है। यदि सत्ता विकेन्द्रित कर दी जाती है और क्षेत्रस्थलो के कर्मचारियो को इस वात की पर्याप्त सत्ता तथा छूट प्राप्त होती है कि वे प्रधान कार्यालय को सूचित किये बिना ही अपने अनेक प्रश्नो के वारे मे स्वय ही निश्चय कर सकें, तो उसे प्रशासन की विकेन्द्रित व्यवस्था के नाम से पुकारा जाता है।

विकेन्द्रित व्यवस्था की आवश्यक बातें
(Essentials of a Decentralized system)

(१) प्रशासन की इस व्यवस्था मे अधिकाश निर्णय (Decisions) क्षेत्र मे ही किये जाते हैं। इसमे सत्ता विकेन्द्रित रहती है।

(२) विकेन्द्रित व्यवस्था मे स्थानीय कर्मचारियो मे विभिन्न स्थानीय परिस्थितियो के अनुसार व्यापक सामान्य राष्ट्रीय नीतियो को अपनाने के प्रति काफी स्वय प्रेरणा अथवा पहल करने की क्षमता (Initiative) पाई जाती है।

(३) प्रशासन की विकेन्द्रित व्यवस्था मे स्थानीय लोगो के सक्रिय रूप से भाग लेने को प्रोत्साहन दिया जाता है।

(४) प्रशासन की इस पद्धति मे, प्रधान कार्यालय को तो केवल नेतृत्व प्रदान करना होता है, वास्तविक कार्य स्वय स्थानीय कार्यालयो द्वारा ही सम्पन्न किया जाता है।

(५) क्षेत्रीय कार्यालय प्रधान कार्यालय के सन्देशवाहको (Messangers) के रूप मे कार्य नही करते। वे उन उत्तरदायी व्यक्तियो के रूप मे कार्य करते हैं जिन्हे दूरगामी प्रभाव वाले अनेक महत्वपूर्ण निर्णय करने की शक्ति प्राप्त होती है।

इस सम्वन्ध मे एक वात विल्कुल स्पष्ट रूप से समझ लेनी चाहिये और वह यह कि केन्द्रीकरण और विकेन्द्रीकरण के बीच किया जाने वाला भेद पूर्ण अथवा निरपेक्ष (Absolute) नही है। किसी भी प्रशासन को पूर्णत केन्द्रित अथवा पूर्णत विकेन्द्रित नही कहा जा सकता। अन्तर केवल मात्रा का होता है। यदि प्रधान कार्यालय मे अधिक सत्ता केन्द्रित कर दी जाती है तो उसे प्रशासन की केन्द्रित व्यवस्था के नाम से पुकारा जाता है, और यदि क्षेत्रीय कार्यालयो को अपेक्षाकृत अधिक शक्तियाँ दे दी जाती है तो उस पद्धति को विकेन्द्रित व्यवस्था का नाम दिया जाता है। अत केन्द्रीकरण तथा विकेन्द्रीकरण के बीच का भेद सापेक्षिक Relative) है।

केन्द्रीकरण और विकेन्द्रीकरण के लिए उत्तरदायी तत्व
(Factors responsible for Centralization and Decentralization)

जेम्स डब्लू० फेसलर (James W Fesler) के मतानुसार, ऐसे चार तत्व अथवा कारण हैं जोकि सामान्यत उस मात्रा को नियन्त्रित करते है जिसके अनुसार कोई अभिकरण (Agency) अपनी सत्ता को केन्द्रित अथवा विकेन्द्रित करता है। वे तत्व इस प्रकार है (१) उत्तरदायित्व का तत्व (Factor of responsibility), (२) प्रशासकीय तत्व (Administrative factors), (३) कार्यात्मक तत्व (Functional factors), (४) वाह्य तत्व (External factors)।[1]

अब हम इन तत्वो मे प्रत्येक की क्रमश विवेचना करते है।

(१) **उत्तरदायित्व का तत्व**—किसी विभाग से कार्यकरण (Functioning) मे यदि कोई गलती हो जाती है तो उसके लिए विभागाध्यक्ष (Head of the Department) को उत्तरदायी ठहराया जाता है। यदि रेलवे प्रशासन मे कोई काम गलत हो जाता है तो ससद (Parliament) समाचार-पत्र तथा जनता रेल-मन्त्री (Railway Minister) से स्पष्टीकरण मागते है। प्रधान कार्यालयो के अधिकारी क्षेत्रीय अधिकारियो को इस कारण सत्ता (Authoriey) नही सौंपते, क्योकि क्षेत्रीय अधिकारी दैनिक नियन्त्रण से विल्कुल पृथक् होते है और उस विभाग के कुशल सचालन का उत्तरदायित्व प्रधान कार्यालय के अधिकारियो के कन्धो पर होता है।

(२) **प्रशासकीय तत्व**—विकेन्द्रीकरण को प्रभावित करने वाले महत्वपूर्ण प्रशासकीय तत्व ये है अभिकरण (agency) का गत कार्यालय, उसकी नीतियो एव कार्यविधियो की स्थिरता, उसके क्षेत्रीय कर्मचारियो की योग्यता व क्षमता, कार्य की गति एव उसमे मितव्ययता के लिए दवाव, और प्रशासकीय भ्रष्टाचार (Administrative sophistication)। यदि कोई अभिकरण पुराना है, उसकी सुनिर्धारित नीतिया हैं तथा उसके पास योग्य एव अनुभवी कर्मचारी है तो उस अभिकरण के मुकावले, जिसके लिये कि वह कार्य नया है और जिसकी नीतिया (Policies) तथा तकनीकें (Techniques) अभी तक निश्चित नही हैं, वह आसानी के साथ अपने आपको विकेन्द्रित कर सकता है।

(३) **कार्यात्मक तत्व**—किसी अभिकरण द्वारा सम्पन्न किये जाने वाले कार्य भी केन्द्रीकरण अथवा विकेन्द्रीकरण के निर्धारण मे मदद करते हैं। एक ही कार्य को करने वाले अभिकरण के मुकावले एक वहुल प्रकार के कार्यो को सम्पन्न करने वाला अभिकरण विकेन्द्रीकरण के लिए अधिक प्रस्तुत रहता है। एक ही कार्य को सम्पन्न करने वाले अभिकरण को विकेन्द्रीकरण की वहुत कम आवश्यकता होती है। यदि अभिकरण द्वारा सम्पन्न किये जाने वाले कार्यो मे राष्ट्रीय एकरूपता (Uniformity) लाने की आवश्यकता है तो इससे केन्द्रीकरण को प्रोत्साहन मिलेगा और यदि

---

1 James W Fesler in *Elements of Public Administration*, Ed by Morstein Marx, pp 270-276

अभिकरण द्वारा किये जाने वाले कार्यों मे भिन्न-भिन्न प्रदेशो के अन्दर बहुरूपता (Diversity) लानी आवश्यक है तो उसमे विकेन्द्रीकरण की प्रेरणा मिलेगी ।

(८) बाह्य तत्व—यदि किसी अभिकरण (Agency) को सगठन से बाहर के व्यक्तियो का सहयोग प्राप्त करने की आवश्यकता है, अथवा यदि उसे अपनी सफलता के लिए बडी सख्या मे लोगो के सहयोग की आवश्यकता है, अथवा यदि किसी अभिकरण को अन्य अनेक अभिकरणो के साथ मिलकर काम करना पडता तो इन सब परिस्थितियो मे विकेन्द्रीकरण को प्रोत्साहन मिलता है । ऐसे अभिकरण के लिये यह आवश्यक हो जाता है कि वह अपने क्षेत्रीय पदाधिकारियो को पर्याप्त सत्ता प्रदान करे जिससे कि भिन्न-भिन्न अभिकरणो के दृष्टिकोणो को अपनाया जा सके ।

इसके अतिरिक्त, केन्द्रीकरण अथवा विकेन्द्रीकरण को प्रभावित करने वाले अन्य तत्व निम्न प्रकार हैं —

(१) यदि क्षेत्रीय अधिकारी योग्य तथा सक्षम (Competent) हैं और उनमे स्वय अपने लिये निर्णय करने की सामर्थ्य एव क्षमता है तो प्रधान कार्यालय उनको अनेक शक्तियां हस्तान्तरित कर देगा ।

(२) क्षेत्रीय अधिकारियो मे प्रधान कार्यालय के अधिकारियो का विश्वास होना विकेन्द्रीकरण की इच्छा की पूर्व-शर्त है ।

केन्द्रीकरण के दोष
(Defects of Centralization)

(१) केन्द्रीकृत प्रशासन को स्थानीय परिस्थितियो के बारे मे कम जानकारी होती है और वह एकरूपता पर काफी जोर देता है, जोकि हानिकारक सिद्ध होता है और अकुशलता को प्रोत्साहन देता है ।

(२) केन्द्रीकरण के कारण निर्णयो पर पहुंचने पर देरी होती है और इन देरियो के कारण अनेक प्रशासकीय कठिनाइया व परेशानिया उत्पन्न हो जाती हैं ।

(३) केन्द्रीकरण लोगो को प्रशासन के साथ सहयोग करने को प्रोत्साहित नही करता, जबकि जनता का सहयोग किसी भी प्रशासकीय योजना की सफलता के लिये आवश्यक होता है ।

(४) प्रशासन की केन्द्रीकृत व्यवस्था (Centralized system) मे, अधिकारियो पर काम का इतना अधिक भार होता है कि वे उसे वहन नही कर सकते । जैसा कि एक लेखक ने कहा है कि “ ····एक केन्द्रीकृत प्रशासन चूकि असह्य मात्रा मे उत्तरदायित्व अपने ऊपर लाद लेता है अत समय-समय पर पडने वाले भार व दबाव के कारण वह शक्तिहीनता को आमन्त्रित करता है ।”[1]

---

1 David B Truman, *Administrative Decentralization*, A study of the Chicago Field of Offices of the United States Department of Agriculture, a Chicago 1940, University of Chicago Press

(५) केन्द्रीकरण से प्रशासन मे लचीलेपन (Flexibility) की कमी तथा कठोरता उत्पन्न हो जाती है।

(६) केन्द्रीय कार्यालय अनेक बार स्थानीय दशाओ की जानकारी के बिना ही कार्य करता है। स्थानीय दशाओ के बारे मे जानकारी के अभाव मे स्थानीय समस्याओ के सम्बन्ध मे गलत निश्चय तथा गलत अनुमानो पर आधारित निर्णय किये जा सकते हैं।

केन्द्रीयकरण के लाभ
(Advantages of Centralization)

(१) प्रशासन की केन्द्रीकृत व्यवस्था मे, प्रशासन के सभी अगो (Organs) पर प्रभावशाली एव सक्रिय नियत्रण रहता है।

(२) प्रशासन मे एकरूपता रहती है। कार्य का सम्पादन देश भर मे एक ही तरीके से एकसी ही सामान्य नीतियो व सिद्धातो के अनुसार किया जाता है।

(३) प्रशासन की केन्द्रीकृत व्यवस्था मे, नियमो की एकरूपता (Uniformity) के कारण माल की खरीद तथा कर्मचारियो आदि के मामलो मे दुरुपयोग तथा अनियमिततायें नही हो सकती।

विकेन्द्रीयकरण के लाभ
(Advantages of Decentralization)

(१) सामान्य जनता द्वारा भाग लेना तथा लोकप्रिय नियत्रण (Popular control) प्रशासन की विकेन्द्रीकृत व्यवस्था (Decentralized system of administration) मे ही सम्भव है। ऐसी व्यवस्था लोकतन्त्र (Democracy) को वास्तविक तथा व्यापक आधार वाला बनाती है।

(२) विकेन्द्रीकरण नियमो तथा विनियमो (Rules and regulations) के लागू करने मे लचीलेपन को प्रोत्साहन देता है।

(३) इस व्यवस्था मे, प्रशासन स्वय को विशिष्ट स्थानीय दशाओ के अनुकूल बना सकता है। उद्देश्यमूलक स्थानीय दशाओ तथा प्रशासकीय अधिकारियो के बीच घनिष्ठ सम्पर्क कायम रहता है। इस प्रकार, विकेन्द्रीकरण के द्वारा किसी विशिष्ट क्षेत्र की विशिष्ट समस्यायें अधिक अच्छी प्रकार समझायी जा सकती हैं।

(४) यदि सत्ता विकेन्द्रित है तो सगठन की विभिन्न सतहो पर प्रशासन मे अनेक नये प्रयोग (Experiments) किये जा सकते है।

(५) प्रशासन की विकेन्द्रीकृत व्यवस्था किसी भी सकट के दबावो एव खिचावो को अधिक अच्छी प्रकार सहन कर सकती है।

(६) यह व्यवस्था किसी भी आकस्मिक अथवा आपत्कालीन परिस्थिति का अधिक अच्छी तरह से सामना कर सकती है क्योकि इसके अधिकारियो को यह सत्ता प्राप्त होती है कि वे परिस्थितियो की माँग के अनुसार शीघ्र निर्णय कर सकें।

(७) इस पद्धति मे, विभिन्न प्रकार की देरियां तथा लाल फीताशाही (Red tapism) समाप्त की जा सकती है। इसमे चूंकि केन्द्रीय कार्यालय को बारबार हवाले देने की आवश्यकता नही होती अत कार्य मे देरी नही होती।

(८) इस व्यवस्था मे, ऊपर के सर्वोच्च अधिकारी दिन-प्रतिदिन के छोटे-मोटे कामो से मुक्त हो जाते है। इस प्रकार वे नीति (Policy) तथा नियोजन (Planning) की बडी-बडी समस्याओ पर अपनी शक्तियो को केन्द्रित कर सकते है। उच्च अधिकारियो का समय अनावश्यक छोटे-मोटे कामो मे नष्ट होने से बच जाता है जिससे वे विभाग (Department) को प्रभावित करने वाली बडी समस्याओ के बारे मे शांत विचार कर सकते है।

(९) विकेन्द्रीकरण क्षेत्रीय अधिकारियो को अपनी योग्यता तथा कार्यक्षमता दिखाने का अवसर प्रदान करता है। क्षेत्रीय अधिकारी अपना काम भारी उत्साह तथा लगन के साथ करते है।

(१०) विकेन्द्रीकरण का अर्थ है क्षेत्रीय अधिकारियो को बडी मात्रा मे विवेक तथा इच्छा से परिपूर्ण सत्ता का हस्तातरण। इससे क्षेत्रीय अधिकारियो मे यह भावना पैदा होती है कि प्रधान कार्यालय को उनकी क्षमता तथा योग्यता मे भारी विश्वास है। यह भावना क्षेत्रीय अधिकारियो को और अधिक उत्तरदायी (Responsible) तथा कर्तव्य-परायण (Dutiful) बनाती है। वे अपनी पूर्ण शक्ति से यह दिखाने का प्रयत्न करते है कि वे वास्तव मे उस विश्वास (Confidence) के पात्र है जो कि प्रधान कार्यालय ने उनमे प्रकट किया है।

विकेन्द्रीकरण के दोष
(Defects of Decentralization) .

(१) प्रशासन की इस व्यवस्था मे एक समान राष्टीय नीति को कायम रखना कठिन हो सकता है। यह हो सकता है कि भिन्न-भिन्न क्षेत्रस्थल (Field stations) विभिन्न प्रकार की क्रियाविधियाँ (Courses of action) अपनायें।

(२) इस व्यवस्था से विभिन्न क्षेत्रस्थलो की नीतियो के बीच समुचित समन्वय (Co-ordination) का अभाव हो सकता है। यह हो सकता है कि एक क्षेत्रीय कार्यालय राष्ट्रीय नीति से पृथक् अपनी निजी नीति का अनुसरण करे।

(३) इस व्यवस्था से स्थानीय अधिकारियो मे राष्ट्रीय हित के दृष्टिकोण का लोप हो सकता है। स्थानीय अधिकारी स्थानीय समस्याओ मे इतने अधिक व्यस्त रहते हैं कि वे अदूरदर्शी (Short-sighted) तथा सकुचित विचार वाले (Narrow-minded) बन सकते हैं। उनका मानसिक दायरा सीमित हो जाना है और वे राष्ट्रीय समस्याओ के सदर्भ मे विचार करना ही छोड देते हैं।

(४) स्थानीय राजनीति (Local Politics) स्थानीय कार्यालय पर हावी हो सकती है और फिर उसका परिणाम क्षेत्रीय सेवाओ मे भ्रष्टाचार तथा अकुशलता के रूप मे ही सामने आता है। निष्कर्ष के रूप मे कहा जा सकता है कि "प्रशासकीय

विकेन्द्रीकरण की नीति के गुणो तथा दोषो के इस सक्षिप्त विवरण से यह प्रकट होता है कि इस व्यवस्था को अत्यन्त सावधानी के साथ अपनाये जाने की आवश्यकता है। इससे खतरे भी उतने ही बडे हो सकते है जितने कि इसके विपरीत की प्रशासन-व्यवस्था मे पाये जाते है। इसके अतिरिक्त, ऐसा प्रतीत होता है कि व्यवहार मे किसी भी प्रशासकीय सगठन मे इन दोनो ही प्रकार की प्रवृत्तियो (पद्धतियो) के कुछ न कुछ लक्षण अवश्य पाये जाते है। वस्तुत इन दोनो ही प्रवृत्तियो को उद्देश्य (Ends) नही समझ लेना चाहिये वल्कि कुशल प्रशासन के उद्देश्य की प्राप्ति का साधन-मात्र (Means to the end of efficient administration) ही समझना चाहिये। किसी भी प्रशासकीय सगठन मे ये दोनो ही प्रवृत्तिया ऐसे अनुपात मे वर्तमान रहनी चाहिये जिसमे कि न्यूनतम मात्रा मे ही अकुशलता पाई जाय।"[1]

क्षेत्रीय सस्थाओ के सगठन का वर्तमान झुकाव केन्द्रीकरण की ओर है। यातायात तथा सचार के शीघ्रगामी साधनो ने भौगोलिक दूरिया न्यूनतम कर दी है। डाक, तार तथा टेलीफोन के द्वारा देश के किसी भी भाग मे सम्पर्क कायम किया जा सकता है। इस स्थिति मे स्वभावतः ही केन्द्रीय नियन्त्रण मे वृद्धि हो रही है। इसके अतिरिक्त, एकरूपता (Uniformity) पर जोर देना, स्थानीय अधिकारियो की क्षमता मे अविश्वास, प्रशासन मे विशेषज्ञो के वर्ग की उत्पत्ति, और प्रशासन की पेचीदगियां (Compexities)—इन सभी तत्वो ने केन्द्रीकरण को प्रोत्साहन दिया है।

क्षेत्रीय सेवाओ का सगठन
(The Organization of Field Services)

वहुधा ऐसा होता है कि क्षेत्रस्थल (Field station) के अन्तर्गत अनेक इकाइया (Units) अथवा सभाग (Divisions) होते है। भारत मे रेलवे प्रशासन का ही उदाहरण लीजिये। भारत मे रेल व्यवस्था के आठ क्षेत्र (Zones) है। प्रत्येक क्षेत्र एक जनरल मैनेजर के अधीन है। प्रत्येक क्षेत्र को आगे भी सभागो मे उप-विभाजित किया गया है। यहाँ प्रत्येक रेलवे क्षेत्र (Railway zone) को एक क्षेत्रस्थल माना जा सकता है और इस प्रत्येक क्षेत्र के अन्तर्गत अनेक सभाग है। प्रश्न यह है कि उस क्षेत्रीय कार्यालय का, जिसके अन्तर्गत अनेक इकाइयाँ अथवा सभाग काम कर रहे हो, सगठन किस प्रकार किया जाय? ऐसे बडे-बडे अनेको डाकखाने है जिनको विभिन्न प्रकार की डाक (Mail) को सभालने की दृष्टि से सभागो मे सगठित किया गया है। एक वडे डाकखाने मे भिन्न-भिन्न श्रेणियो की डाक को सभालने के लिए पृथक् सभाग (Separate divisions) हो सकते है, उदाहरण के लिए, समुद्रपार की डाक के लिये, अन्तर्देशीय डाक के लिए, डाक रजिस्ट्रेशन के लिये। प्रश्न यह है कि क्षेत्रीय कार्यालय की अधीनस्थ इकाइयो का पर्यवेक्षण (Supervision) तथा नियन्त्रण किस प्रकार किया जाये? इस समस्या के बारे मे भिन्न-भिन्न लेखको ने विभिन्न प्रकार के विचार व्यक्त किये है। अब हम कुछ लेखको के विचारो की विवेचना करेंगे।

---

1 David B Truman *Administrative Decentralization* A study of the Chicago Field Offices to the United States Dept of Agriculture, Chicago, 1944

विलोवी के विचार (Views of W F Willoughby) उपरिनिर्देशन तथा नियत्रण की एकल बनाम बहुल पद्धति (Unitary versus Multiple overhead Direction and Control)—एकल पद्धति (Unitary system) के अन्तर्गत, एक क्षेत्रस्थल (Field station) की इकाइया अथवा सभाग क्षेत्रस्थल के ही अधिकारी के पर्यवेक्षण तथा नियन्त्रण मे रहते है और वह अधिकारी बदले मे अपने क्षेत्रस्थल के सभी सभागो के कार्यों के लिए केन्द्रीय कार्यालय के प्रति उत्तरदायी होता है। इस व्यवस्था मे, क्षेत्रस्थल के प्रधान को उसके क्षेत्रस्थल की तथा उस क्षेत्रस्थल के सभागो (Divisions) की सभी क्रियाओं का पूर्ण कार्यभार सौप दिया जाता है। सभागो के प्रधान अपने क्षेत्रस्थल के प्रधान के अधीन (Subordinate) तथा उसके प्रति उत्तरदायी होते हैं। इस व्यवस्था को 'एकल पद्धति' इसलिए कहा जाता है क्योकि इसमे आदेश की एक ही रेखा (Single line of command) होती है जोकि केन्द्रीय कार्यालय से प्रारम्भ होकर क्षेत्रस्थल के प्रधान (Head) तक जाती है और फिर उस प्रधान से सभागो के प्रधान (Division heads) अपने लिए आदेश प्राप्त करते हैं। इस प्रकार केन्द्रीय नियन्त्रण के दृष्टिकोण से, क्षेत्रस्थल को एक इकाई माना जाता है और उस क्षेत्रस्थल का प्रधान अपने क्षेत्रीय कार्यालय की सभी विभिन्न इकाइयो पर पूर्ण नियन्त्रण रखता है।

बहुल पद्धति (Multiple system) मे, क्षेत्रीय कार्यालय इकाइयो (Units) का एक ढीलाढाला जुटाव या सगठन सा प्रतीत होता है। इस व्यवस्था मे क्षेत्रस्थल की कार्यात्मक इकाइया (Functional units) केन्द्रीय कार्यालय के समवर्ती सभागो (Corresponding divisions) के प्रति प्रत्यक्ष रूप से उत्तरदायी होती हैं और उनसे ही सम्बद्ध होती हैं। क्षेत्रस्थल (Filed station) की ये इकाइया उस क्षेत्रीय सगठन के नही बल्कि केन्द्रीय कार्यालय मे स्थित समवर्ती सभागो के उप-सभाग (Sub-division) माने जाते है।

इस सम्बन्ध मे हमे यह बात अवश्य दृष्टिगत रखनी चाहिये कि कोई भी विभाग (Department) उपरिनिर्देशन तथा नियन्त्रण की पूर्णतया एकल अथवा पूर्णतया बहुल पद्धति के उदाहरण के रूप मे कार्य नही करता। सर्वदा इन दोनो ही पद्धतियो का एक ऐसा सम्मिश्रण अपनाया जाता है जोकि सुविधाजनक हो।

एकल पद्धति (Unitary system)
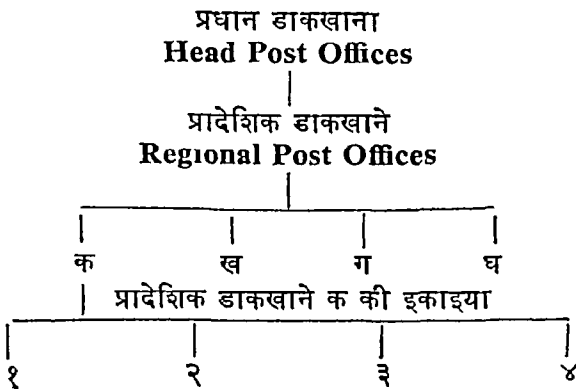
(एकल पद्धति के अन्तर्गत ये सभी इकाइया प्रादेशिक प्रधान (Regional head) के अधीन हैं जोकि अपने क्षेत्रीय कार्यालय (प्रादेशिक कार्यालय) तथा इन सब इकाइयो के कार्य-सचालन के लिए प्रधान कार्यालय (Head Office) के प्रति उत्तरदायी होता है)।
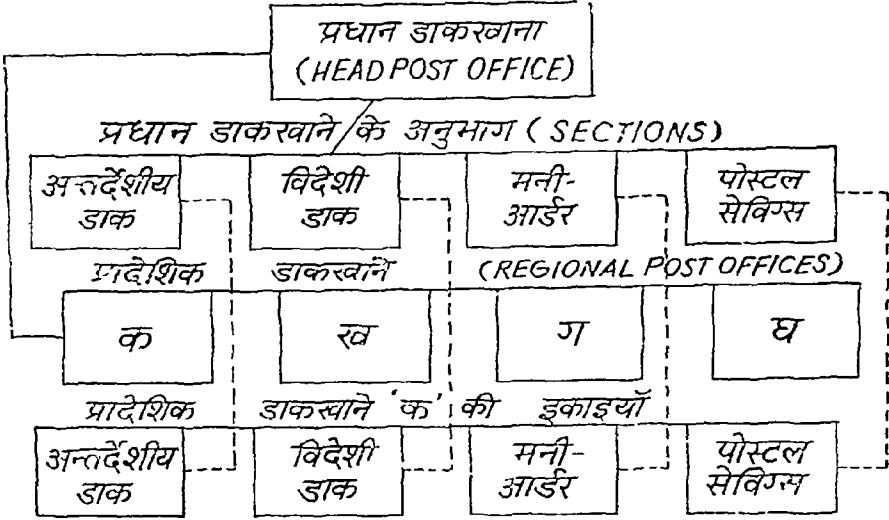
बहुल पद्धति (Multiple System)

(बहुल पद्धति के अन्तर्गत, क्षेत्रस्थल की कार्यात्मक इकाई (Functional unit) तथा केन्द्रीय कार्यालय मे स्थित उसके समवर्ती सभाग (Corresponding division) के बीच प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है। क्षेत्रीय कार्यालय की अन्तर्देशीय डाक की इकाई प्रधान कार्यालय की अन्तर्देशीय डाक की इकाई से प्रत्यक्ष रूप से सम्बद्ध होती है)।

आर्थर मैकमोहन *(Arthur Mac Mohan)* के अनुसार त्रिलोवी का यह वर्गीकरण असन्तोषजनक है। वह उपरिनिर्देश (Multiple overhead direction) के लिये उन्होने "विशिष्टता के द्वारा विकेन्द्रीकरण" (Decentralisation by speciality) नामक शब्दो को प्रमुखता दी—अर्थात् ऐसी व्यवस्था जिसमे कि अनेक क्षेत्रीय कार्यालय भिन्न-भिन्न सम्भागो तथा ब्यूरो मे निकले होते हैं। और "एकल उपरिनिर्देश" (Unitary overhead direction) के लिये उन्होने 'पद-सोपान द्वारा विकेन्द्रीकरण' नामक शब्दो का प्रयोग किया, अर्थात् ऐसा सगठनात्मक ढाचा जोकि वाशिंगटन मे केन्द्रीय प्रशासक (Central administrator) से लेकर नीचे क्षेत्र (Field) मे प्रादेशिक प्रशासक (Regional administrator) तक आता है और उस प्रादेशिक प्रशासक को ठीक वैसे ही कार्य करने होते हैं जैसे कि उसके उच्च अधिकारी को, किन्तु उसके कार्य उसके विशिष्ट क्षेत्र तक ही सीमित रहते हैं।

क्षेत्रीय सेवाओ के सगठन के विषय मे लूथर गुलिक के विचार

(Luther Gullick's views about the organisation of Field Services)

उपरि नियन्त्रण तथा निर्देशन की दृष्टि से लूथर गुलिक ने क्षेत्रीय सस्थाओ का तीन श्रेणियो मे वर्गीकरण किया है।

क्षेत्रीय सस्थाओ के उनके द्वारा किये गये तीन वर्गीकरण इस प्रकार है "सब उगलिया" (All Fingers) "छोटी भुजाए, लम्बी उगलिया" (Short Arms Long Fingers) और "लम्बी भुजाए छोटी उगलियाँ" (Long Arms, Short Fingers)। यहाँ 'भुजाए" शब्द से तात्पर्य 'प्रादेशिक अथवा भौगोलिक कार्यालयो' से है और 'उगलियो' से मतलब सवादवाहन की उन रेखाओ से है जो कि आदेश के सूत्र (Firing line) पर निम्नतम क्षेत्रीय इकाइयो तक पहुँचती हैं।[2]

(१) "सब उगलियो" के सगठन से तात्पर्य है कि उस सगठन मे बहुत उगलिया हैं जो कि प्रधान कार्यालयो से सीधी क्षेत्र (Field) तक जाती हैं अर्थात् केन्द्रीय प्रधान कार्यालय बीच मे कही भी किसी "भौगोलिक अथवा प्रादेशिक" उप-सभाग (Sub-division) के बिना ही क्षेत्रीय इकाइयो के साथ प्रत्यक्ष रूप मे सम्बन्ध रखता है।

(२) "छोटी भुजाओ और लम्बी उंगलियो" की व्यवस्था विलोवी की एकल व्यवस्था (Unitary system) से केवल इन मानो मे अन्तर रखती है कि इसमे (प्रथम मे) प्रादेशिक प्रधान कार्यालय भौतिक रूप मे क्षेत्र (Field) की बजाय केन्द्रीय प्रधान कार्यालय मे ही स्थित होते हैं और इसी कारण इसको 'छोटी भुजाओ और लम्बी उगलियो' के नाम से पुकारा जाता है। इस पद्धति मे भौगोलिक सभाग अथवा इकाइयाँ (Geographical division or units) तो होती है परन्तु वे सम्बन्धित प्रदेश अथवा क्षेत्र मे स्थित न होकर केन्द्रीय प्रधान कार्यालय मे ही स्थित होती हैं। केन्द्रीय प्रधान से क्षेत्रीय प्रधानो तक "छोटी भुजाये" होती हैं क्योकि क्षेत्रीय प्रधान भौतिक रूप से उसी भवन (Building) मे स्थित होते हैं, अपने-अपने क्षेत्रो मे नहीं। "लम्बी उगलियाँ" इसलिए कहलाती है क्योकि क्षेत्रीय प्रधानो से आदेश की रेखा सभवत सैकडो हजारो मील दूर क्षेत्रीय इकाइयो तक जाती है।

(३) "लम्बी भुजाओ और छोटी उगलियो" वाली व्यवस्था मे भौगोलिक सभाग प्रधान कार्यालयो से दूर स्वय अपने क्षेत्र मे ही स्थित होते है जैसे कि भारत

---

1 Arthur W Mac Mohan, John D Millet and Gladys Ogden The Administration of Federal Work Relief Chicago *Public Administration Service*, 1951, Chapter II

2 Gullick and Urwick, *op cit*, pp 26-30

मे जिला कार्यालय (District office)। इस पद्धति मे प्रादेशिक अथवा क्षेत्रीय कार्यालय भौगोलिक दृष्टि से विकेन्द्रित रहते है।

जब एक जिले के सब चिकित्सा स्वास्थ्य अधिकारी (Medical Health) Officers) जिला स्वास्थ्य अधिकारी (District Health officer) के अधीन होते है और वह जिला स्वास्थ्य अधिकारी उस जन-स्वास्थ्य निर्देशक (Director of Public Health) के समक्ष अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करता है जिसका कि कार्यालय जिले अथवा क्षेत्र से दूर राज्य की राजधानी मे स्थित होता है तो उसे "लम्बी भुजाओ और छोटी उगलियो" वाली व्यवस्था कहा जाता है क्योकि इसमे जिला स्वास्थ्य अधिकारी राज्य की राजधानी से दूर अपने-अपने क्षेत्र मे स्थित होते है। परन्तु यदि जिला स्वास्थ्य अधिकारियो के कार्यालय जन-स्वास्थ्य निर्देशक के कार्यालय मे ही स्थित हो और जिले के सब स्वास्थ्य अधिकारियो द्वारा अपने जिला स्वास्थ्य अधिकारी के समक्ष रिपोर्ट प्रस्तुत की जानी हो तो इस स्थिति मे जिला स्वास्थ्य अधिकारी अपने जिले से दूर होता है परन्तु अपने उच्च अधिकारी के समीप होता है। अत यह व्यवस्था "छोटी भुजाओ व लम्बी उगलियो" वाली व्यवस्था कहलाती है क्योकि इसमे जिला स्वास्थ्य अधिकारी अपने जिले से दूर किन्तु अपने प्रधान के समीप होता है। और यदि जिला स्वास्थ्य अधिकारी बिल्कुल ही न हो, तथा जिले के प्रत्येक डाक्टर को अपने राज्य के प्रधान कार्यालय मे सीधे जन-स्वास्थ्य निर्देशक के समक्ष ही अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करनी हो, तो इसे "सब उगलियो" वाली व्यवस्था का नाम दिया जायेगा।[1]

क्षेत्रीय व प्रधान कार्यालयो के सम्बन्ध (Field-Headquarters Relations)

'केन्द्रीकरण बनाम विकेन्द्रीकरण' की समस्या की विवेचना करते समय यह कहा गया था कि क्षेत्र स्थलो (Field stations) को काफी सत्ता Authority) सौपी जानी चाहिए। उन्हे इतनी शक्ति प्राप्त होनी चाहिए कि अपने सामने आने वाली समस्याओ के सम्बन्ध मे निर्णय कर सके। परन्तु क्षेत्र स्थलो को सत्ता सौपे जाने का अर्थ यह नही है कि वे प्रधान कार्यालय के किसी भी नियन्त्रण से पूर्णतया मुक्त होगे। प्रधान कार्यालय का नियन्त्रण अवश्य विद्यमान रहेगा परन्तु इस नियन्त्रण का यह आशय कदापि नही है कि क्षेत्र स्थलो के दिन प्रतिदिन के कार्यो मे हस्तक्षेप किया जाय। क्षेत्रीय सेवाओ पर प्रधान कार्यालय के नियन्त्रण की वास्तविक प्रकृति (Real nature) के बारे मे लिखते हुए डोनाल्ड सी० स्टोन (Donald C Stone) ने यह विचार व्यक्त किया—

"वाशिगटन कार्यालय (प्रधान कार्यालय) का वास्तविक कार्य क्षेत्रीय कर्मचारी-वर्ग (Field staff) को उसके काम करने मे सहायता पहुँचाना था, क्षेत्रीय

1 Luther Gullick and L Urwick (Eds), *op cit*, pp 26-30

कार्य को स्वय अपने आप करना नही । इसका अर्थ है निर्देशन के मार्ग, आदेश की रेखा द्वारा निर्धारित मदो के बजटो (Line item budgets), सौदो के पुनर्विलोकन, मामलो के पूर्वलेखा-परीक्षण की समाप्ति तथा सबसे खराब चीज सर्वाधिक अत्यावश्यक व शीघ्र की जाने वाली कार्यवाहियों को करने से पूर्व लम्बे चौडे पत्र व स्मृतिपत्र लिखने की प्रथा की समाप्ति । ये सब बाते क्षेत्रीय कर्मचारियो की स्वय प्रेरणा अथवा पहल करने की क्षमता (Initiative) को नष्ट करती हैं । ये प्रशासन का दम घोटती है । ये सरकार के समक्ष गलत जानकारी एव गलत पक्ष प्रस्तुत करती हैं । सत्ता सौंपने का कार्य वास्तविक रूप मे होना चाहिये, केवल कागजो पर नही । सत्ता सौंपने के इस कार्य के सम्बन्ध मे एक सघीय अभिकरण (Federal agency) के एक उच्च अधिकारी की भावना का अनुसरण किया जाना चाहिये जिसने कि अभी हाल मे ही अपने क्षेत्रीय प्रबन्धको (Field Managers) से यह कहा, कि जब भी उन्हें कोई कार्यवाही करने की आवश्यकता हो, वे आगे बढ़े और करें, भले ही उन्हे इसके लिये विनियमो (Regulations) का उल्लघन करना पडे, बशर्ते कि ऐसा उल्लघन करना आवश्यक हो, और ऐसी कार्यवाही करने के बाद वे अपने अभिकरण (Agency) को उसके बारे मे सूचना दे दे । केवल इस तरह के प्रशासन से ही हम यह आशा कर सकते हैं कि उसके द्वारा योग्य, उत्तरदायी व विस्तृत विचार वाले अधिकारियो को क्षेत्रीय सेवाओ मे आने के लिये आकर्षित किया जा सकेगा ।"[1] प्रधान कार्यालय के नियन्त्रण द्वारा क्षेत्रीय सेवाओ के अधिकारियो की स्वय प्रेरणा अथवा पहल करने की क्षमता नष्ट नही होनी चाहिये ।

क्षेत्रस्थलो पर प्रधान कार्यालय के नियन्त्रण की रीतियाँ
(Methods of Headquarter Control Over Field Stations)

(१) कार्य करने से पूर्व विशिष्ट अधिकार प्राप्त करना (Specific Authority in advance)—इस व्यवस्था के अन्तर्गत, क्षेत्रीय कार्यालयो के लिये यह आवश्यक होता है कि वे किसी भी कार्य को, जिसे कि वे करना चाहते हैं, करने से पूर्व प्रधान कायालयो से अधिकार प्राप्त करें । इस प्रकार प्रधान कार्यालयो से प्राप्त होने वाली विशिष्ट सत्ता के बिना क्षेत्रस्थल कुछ नही कर सकते । यह व्यवस्था सत्ता सौंपने के सिद्धान्त का उल्लघन करती है ।

(२) कार्यवाहियों के पुर्नविलोकन द्वारा नियत्रण (Control through Review of Actions)—इस व्यवस्था मे, क्षेत्रीय कार्यालयो को कोई भी कार्यवाही करने के लिये एक सामान्य शक्ति तथा सत्ता मिली होती है । परन्तु किसी भी कार्यवाही को करने के पश्चात् क्षेत्रीय कार्यालयो को प्रधान कार्यालय के समक्ष उसका पूर्ण विवरण प्रस्तुत करना पडता है और प्रधान कार्यालय स्थानीय कार्यालय की किसी भी कार्यवाही अथवा किसी भी निर्णय पर पुनर्विचार कर सकता है ।

---

8 Lectures and Papers by Donald C Stone Washington—*Field Relationship in the Federal Service*, Washington, 1942

(३) **बजट द्वारा नियन्त्रण** (Control through Budget)—प्रधान कार्यालय बजट अनुदानो (Budget grants) के द्वारा क्षेत्र-स्थलो की क्रियाओ पर नियन्त्रण लगाता है । विस्तृत बजट अनुदान देने की रीति एक ऐसी विधि है जिसके द्वारा प्रधान कार्यालय क्षेत्रस्थलो की क्रियाओ पर विस्तृत नियन्त्रण लगाता है ।

(४) **विवरण प्राप्त करने की शक्ति द्वारा नियन्त्रण** (Control through the power to get Reports)—क्षेत्रस्थलो का यह कर्त्तव्य है कि वे अपने द्वारा किये गये कार्य की मात्रा तथा अपने द्वारा नियुक्त किये गये कर्मचारियो के सम्बन्ध मे प्रधान कार्यालय को सूचना दें । क्षेत्रीय कार्यालयो द्वारा प्रधान कार्यालय को इस सम्बन्ध मे विवरण प्रस्तुत करना पडता है कि उन्होंने कौन-कौन से कार्य अथवा क्रियायें सम्पन्न की । इन सूचनाओ तथा विवरणो के आधार पर, प्रधान कार्यालय क्षेत्रीय कार्यालयो द्वारा अपनायी गई । किन्ही भी क्रियाविधियो (Procedures) के बारे मे आपत्ति उठा सकते है और क्रियाविधि मे सशोधन के सुझाव दे सकते हैं ।

(५) **व्यक्तित्व निरीक्षणो द्वारा नियन्त्रण** (Control through Personal Inspections)—प्रधान कार्यालय के अधिकारी व्यक्तिगत रूप से क्षेत्रस्थल मे जाकर वहाँ के कार्यो का निरीक्षण कर सकते हैं । मौके पर जाकर किये जाने वाले निरीक्षणो से अनेक ऐसे तथ्यो के प्रकट होने की सभावना रहती है जो कि अन्य स्थिति मे, यह हो सकता है कि प्रकाश मे न आयें ।

(६) **जांच-पडताल की शक्ति के द्वारा, नियन्त्रण** (Control through the power of Investigation)—गैर-कानूनी कार्यवाहियो, जालसाजियो अथवा बेइमानी की चरम सीमा की स्थितियो मे प्रधान कार्यालय के अधिकारियो द्वारा जाच पडताल की जा सकती है और इस प्रकार क्षेत्रीय कार्यालयो पर नियन्त्रण लगाया जा सकता है ।

ये वे रीतिया हैं जो कि प्रधान कार्यालय द्वारा क्षेत्रीय सेवाओ पर नियन्त्रण लगाने के लिए काम मे लाई जाती हैं । परन्तु नियन्त्रण की समस्या एक बडी कठिन समस्या है । अत प्रत्येक प्रयत्न यही होना चाहिये कि स्थानीय कार्यालयों को पर्याप्त ऐच्छिक शक्तिया प्रदान की जायें , क्योकि सर्वोत्तम निर्णय (Decision) वही होता है जो सत्ता की उस सतह पर किया जाता है जो कि उस निर्णय से प्रभावित होने वाली जनता का निकटतम प्रतिनिधित्व करती हो । इस प्रकार क्षेत्रस्थलो पर केन्द्रीय नियन्त्रण पद-प्रदर्शन (Guidance), प्रोत्साहन तथा परामर्श के रूप मे होना चाहिये ।

प्रधान कार्यालयों तथा क्षेत्रस्थलों के बीच ऐक्य अथवा तालमेल उत्पन्न करने की रीतियां (Methods of Creating Harmony between the Headquarters and the Field Stations)

किसी भी बड़े सगठन मे, यह बिल्कुल मामूली सी बात है कि प्रधान कार्यालय तथा क्षेत्रस्थलो के बीच संघर्ष उत्पन्न हो जाये। वे अधिकारी जो कि केन्द्र से दूर होते हैं यह मानने लगते हैं, और कभी-कभी तो बहुत जल्दी ही, कि सगठन मे उच्च पदो पर स्थित अधिकारी स्थानीय कठिनाइयो पर पर्याप्त ध्यान नही देते। अत उनमे इस भावना के कारण "प्रधान कार्यालय विरोधी" (Anti-Headquartef) यह दृष्टिकोण उत्पन्न हो जाता है कि प्रधान कार्यालय के अधिकारी दिन-प्रति-दिन की उन क्षेत्रीय कठिनाइयो से दूर एक अलग ही दुनिया मे रहते है जो कि स्थानीय कार्यालयो मे उनके सहयोगियो को परेशान करती है।

वे उपाय जो कि प्रधान कार्यालय तथा क्षेत्रस्थलो के बीच ऐक्यपूर्ण सम्बन्ध (Harmonious relationship) उत्पन्न करने मे मदद कर सकते हैं, निम्नलिखित हैं —

(१) केन्द्रीय कार्यालय के उच्च अधिकारियों द्वारा किये जाने वाले व्यक्तिगत निरीक्षणो अथवा दौरो (Visits) से क्षेत्रीय कर्मचारियो के मन मे किसी विशेष कार्यालय के प्रति नही बल्कि 'सेवा' (Service) के प्रति अपनत्व की भावना उत्पन्न होती है। इन व्यक्तिगत निरीक्षणो के द्वारा केन्द्रीय कार्यालय के अधिकारी क्षेत्रीय अधिकारी-वर्ग की कठिनाइयो तथा समस्याओ के निकट सम्पर्क मे रहते हैं। इससे प्रधान कार्यालय तथा क्षेत्रीय कार्यालय के बीच ऐक्यपूर्ण सम्बन्धो का निर्माण करने मे भारी मदद मिलती है।

(२) क्षेत्रीय अधिकारियो के मन मे यह भावना रहनी चाहिए कि प्रधान कार्यालय के अधिकारी उनकी योग्यता एव क्षमता मे विश्वास रखते हैं। उनमे यह भावना रहनी चाहिये कि प्रधान कार्यालय उन पर विश्वास करता है और उनका उपयोग केवल सदेशवाहको (Massengers) के रूप मे नही करता।

(३) क्षेत्रीय अधिकारी-वर्ग मे यह भावना रहनी चाहिये कि प्रधान कार्यालय उनकी आवाज सुनता है और उनके तर्कों को मानता है। यदि प्रधान कार्यालय स्थानीय अधिकारियो की राय तथा उनके विचारो को पर्याप्त महत्व प्रदान करता है तो 'प्रधान कार्यालय विरोधी' भावना उत्पन्न नही होती।

(४) प्रधान कार्यालय से क्षेत्रीय कार्यालयो को और क्षेत्रीय कार्यालयो से प्रधान-कार्यालय को कर्मचारियो की अदला-बदली होती रहनी चाहिये। दोनो के बीच ऐक्यपूर्ण सम्बन्धो के विकास के लिये ऐसा होना अत्यन्त आवश्यक है। इससे क्षेत्र तथा प्रधान कार्यालय दोनो के ही कर्मचारियो को एक दूसरे की समस्याओ की

वास्तविकताओ को समझने का अवसर मिलता है। अधिकारियो का एक स्थान से दूसरे स्थान को स्थानान्तरण (Transfer) किया जाना चाहिये। इससे एक दूसरे के प्रति उत्पन्न मिथ्या धारणाओ को दूर करने मे मदद मिलेगी। यदि ऐसी कोई धारणा उत्पन्न हो गई हो तो, और ऐक्यपूर्ण सम्बन्धो की उत्पत्ति मे सहायता मिलेगी।

(५) क्षेत्र तथा प्रधान कार्यालय का सम्बन्ध वहुत कुछ पत्र-व्यवहार तथा सन्देशो के आदान-प्रदान पर निर्भर रहता है। नीचे मे ऊपर तथा ऊपर मे नीचे तक सूचनाओ का आदान-प्रदान होता है। प्रशासन अपने जीवन-रक्त (Life-blood) के लिये पत्र-व्यवहार तथा सदेशो के आदान-प्रदान की पर्याप्तता (Adequacy) पर निर्भर रहता है, चाहे वह आदान-प्रदान उच्च तथा अधीनस्थ अधिकारियो के वीच प्रत्यक्ष विचार-विमर्श के रूप मे हो अथवा सम्मेलनो (Conferences), टेलीफोन की वातचीतो, पत्रो, स्मृतिपत्रो, आदेशो (Orders), परिपत्रो (Circulars) या सार-पुस्तिकाओ (Manuals) आदि के रूप मे हो। अत पत्र-व्यवहार वहुत ही सरल, सीधी-सादी तथा आसानी से समझने योग्य भाषा मे होना चाहिए। भाषा ऐसी होनी चाहिए जो मूल विचार को विल्कुल स्पष्ट रूप से दूसरो तक पहुँचा दे। पत्र-व्यवहार इतना विस्तृत तथा लम्वा-चौडा नही होना चाहिए कि जिससे क्षेत्रीय अधिकारियो का समय नष्ट हो।

(६) प्रधान कार्यालय को अनावश्यक प्रमाणिकता (Standardization) अथवा एकरूपता (Uniformity) पर जोर नही देना चाहिए। उसका प्रयत्न यही होना चाहिए कि 'प्रत्येक स्थिति की अपनी अलग विशेषता होती है, अत उसी के अनुरूप उससे निपटना चाहिये।

(७) प्रधान कार्यालय पर स्थित तकनीकी विशेषज्ञ (Technical specialist) का क्षेत्रीय कार्यालय के साथ सम्वन्ध अधिकारी-वर्ग जैसा ही होना चाहिए। उसका चाहिए कि क्षेत्रीय स्टॉफ को अनावश्यक रूप मे आदेश न दे। उसे क्षेत्रीय कार्यालयो को प्रशिक्षण देना चाहिए, परामर्श देना चाहिए, उनका पथप्रदर्शन करना चाहिए, निरीक्षण करना चाहिए तथा उनको तकनीकी जानकारी प्रदान करनी चाहिए। तकनीकी विशेषज्ञ को चाहिए कि वह स्थानीय स्टॉफ पर अपने आपको लादे नही, वल्कि इसके वजाए उसे उनके लिए अपनी आवश्यकता उत्पन्न कर देनी चाहिए।

(८) सवसे महत्वपूर्ण तत्व जोकि प्रधान कार्यालय तथा क्षेत्रीय कार्यालय के वीच ऐक्य उत्पन्न करने मे मदद करता है, प्रधान कार्यालय के अधिकारियो द्वारा इस तथ्य (Fact) का स्वीकार किया जाना है कि सम्पूर्ण सगठन का कुशल सचालन केवल प्रधान कार्यालय पर ही निर्भर नही होता है। कार्य-कुशलता (Efficiency) तभी आएगी जव कि सगठन के सभी कार्यालय, जोकि देश की विशाल लम्वाई चौडाई मे दूर-दूर तक फैले हुये हैं, कुशलता के साथ कार्य करेंगे। प्रधान कार्यालय

के अधिकारियो को यह तथ्य अच्छी प्रकार समझ लेना चाहिए कि सम्पूर्ण सगठन की कुशलता के लिए क्षेत्रीय कार्यालयो का सुयोग्य स्टाफ से युक्त होना अत्यन्त आवश्यक है। इसी प्रकार क्षेत्रीय स्टाफ को भी यह बात जान लेनी चाहिए कि वे सगठन रूपी शरीर के अग मात्र है। यदि सांगठनिक रचना को स्वस्थ एव सुचारु रूप से कायम रखना है तो यह आवश्यक है कि इसके अगो पर नियन्त्रण रखा जाय। अत 'प्रधान कार्यालय विरोधी' रुख अपनाने के बजाय उन्हे सहयोगी दृष्टिकोण (Co-operative attitude) अपनाना चाहिए। इस प्रकार इन भावनाओ के आधार पर प्रधान कार्यालय तथा स्थानीय स्टाफ के बीच अपेक्षाकृत श्रेष्ठ तथा ऐक्यपूर्ण सम्बन्धो का विकास किया जा सकता है।

क्षेत्र मे समन्वय
(Co-ordination in the Field)

अधिकाश सरकार विभाग (Government department) क्षेत्रीय कार्यालयो का उपयोग करते हैं। किसी भी खास क्षेत्र मे विभिन्न सरकारी विभागो के अनेक क्षेत्रीय कार्यालय स्थित हो सकते हैं। किसी विशिष्ट स्थान पर एक रेलवे स्टेशन, एक डाकखाना, एक अस्पताल, एक स्कूल, एक राजस्व कार्यालय (Revenue Office), आय-कर कार्यालय (Income tax office), एक बिक्री कर कार्यालय (Sales tax office), एक भवन निर्माण कार्यालय (Building construction office), एक सडक निर्माण कार्यालय आदि हो सकते हैं। ये सब विभिन्न विभागो के क्षेत्रीय कार्यालय है। इन क्षेत्र-स्थलो की स्थापना विभिन्न प्रकार के कार्यो को सम्पन्न करने के लिए की जाती है किन्तु फिर भी उनमे परस्पर समन्वय कायम होना चाहिये। चूंकि ये सब क्षेत्रीय कार्यालय एक ही विशिष्ट क्षेत्र मे स्थित होते हैं और उसी क्षेत्र मे उनकी क्रियाओ के बीच समन्वय कायम किया जाता है अत इसे **'क्षेत्र मे समन्वय'** का नाम दिया जाता है। इनकी क्रियाओ के बीच समन्वय अथवा ताल-मेल रखने के लिए चार उपाय काम मे लाये जाते है। जो इस प्रकार हैं : (१) प्रादेशिक सीमाओ तथा क्षेत्रीय कार्यालयो की स्थापना मे अधिकाधिक एकरूपता, (२) सस्थागत सेवाओ मे मितव्ययता लाने के लिये सयुक्त कार्यवाही, (३) कार्यक्रमो के निष्पादन मे समन्वय, (४) कार्यक्रमो की योजना बनाने मे समन्वय। अब हम इस क्षेत्र मे समन्वय लाने वाले इन उपायो पर क्रमश विचार करते है।

(१) प्रादेशिक सीमाओ तथा क्षेत्रीय कार्यालयो की स्थिति निर्धारण करने मे अधिकाधिक एकरूपता (Increased uniformity in the locaton of regional boundaries and field offices)—क्षेत्रीय कार्यालयो की स्थिति के निर्धारण करने मे प्रादेशिक एकरूपता से उनके बीच अच्छा समन्वय उत्पन्न होता है। यदि महत्वपूर्ण क्षेत्र-स्थलो की स्थापना किसी एक ही सामान्य नगर मे की जाये तो उनके बीच बडी सुगमता के साथ समन्वय कायम किया जा सकता है। यही कारण है जिसकी वजह से भारत मे विभिन्न प्रकार के महत्वपूर्ण क्षेत्रीय कार्यालयों की स्थापना करने के लिये

तहसील अथवा जिले का उपयोग किया जाता है। यदि महत्वपूर्ण क्षेत्रीय कार्यालय एक ही स्थान पर स्थापित किये जाये तो उनमे सरलता के साथ समन्वय कायम किया जा सकता है।

(२) **सस्थागत सेवाओ मे मितव्ययतायें लाने के लिए सयुक्त कार्यवाही** (Joint action to effect economies in Institutional services)—विभिन्न क्षेत्रीय कार्यालय माल की खरीद तथा कर्मचारियो की भर्ती आदि के लिए एक से ही सामान्य अभिकरणो (Agencies) का उपयोग कर सकते हैं। एक रोजगार का दफ्तर (Employment Exchange) प्रदेश (Region) के सभी क्षेत्रीय कार्यालयो की आवश्यकताओ की पूर्ति कर सकता है। यदि क्षेत्रीय कार्यालय अनेक कार्यों को सयुक्त रूप से सम्पन्न करें और अपनी समान समस्याओ के हल के लिये एक ही सामान्य अभिकरण का उपयोग करें तो मितव्ययता लाई जा सकती है तथा उन क्षेत्रस्थलो की क्रियाओ मे ताल-मेल अथवा समन्वय कायम किया जा सकता है।

(३) **प्रादेशिक अथवा क्षेत्रीय समन्वयकर्त्ता** (Regional Co-ordinators)–'क्षेत्र मे समन्वय' कायम करने के लिये प्रादेशिक अथवा क्षेत्रीय समन्वयकर्त्ताओ का उपयोग किया जा सकता है। भारत मे जिलाधीश (District Magistrate) अपने जिले मे स्थित अनेक क्षेत्रीय कार्यालयो का क्षेत्रीय समन्वयकर्त्ता है।

सयुक्त राज्य अमेरिका मे प्रादेशिक अथवा क्षेत्रीय समन्वयकर्त्ताओ से निम्न-लिखित कार्यों को सम्पन्न करने की आशा की गई थी—

"(क) सघीय अभिकरणो (Federal agencies) तथा उनकी क्रियाओ एव गतिविधियो के सम्बन्ध मे सूचना विभाग (Bureau of information) का कार्य करना, (ख) सघीय अभिकरणो के बीच सहयोग उत्पन्न करना, (ग) सघीय अभि-करणो तथा राज्य प्रशासन के बीच सम्पर्क अधिकारी (Liaison Officer) के रूप मे कार्य करना, (घ) प्रत्येक सघीय अभिकरण के कार्य की साधनाओ का आलोचनात्मक मूल्याकन करते हुये तथा आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए सघीय कार्यक्रम की पर्याप्तता (Adequacy) का विश्लेषण करते हुए हर एक अभिकरण को पाक्षिक अथवा अर्धमासिक रिपोर्ट वाशिंगटन मे प्रस्तुत करना।"[1]

प्रशासकीय प्रबन्ध पर राष्ट्रपति की समिति (President's Committee on Administrative Management) ने प्रधान कर्यालयो के इन प्रादेशिक प्रतिनिधियो के लिये तीन कार्यों का सुझाव दिया।

(१) वे क्षेत्र मे अन्तरभिकरणीय (Inter agency) विवादो के सम्बन्ध मे निष्पक्ष रूप से समझौता कराने वाले व्यक्तियो के रूप मे कार्य करेंगे और ऐसे विवादो को जिन पर कि समझौता नही हो सका है, वाशिंगटन के समक्ष प्रस्तुत करेंगे, जहाँ कि अधिक प्रभावपूर्ण रीति से उनका हल खोजा जा सकेगा।

---

1 Morstein Marx (Eds) *op cit*, p 287-88

(२) वे क्षेत्रीय अधिकारियो मे सभी अभिकरणो के क्षेत्रीय कार्यक्रमो के सम्वन्ध मे पारस्परिक परिचय व जानकारी उत्पन्न करेंगे। इस कार्य को वे स्थानीय सघीय व्यवसायिक सघो के निर्माण के द्वारा तथा प्रत्येक राज्य से एक-सी ही पद-स्थिति (Rank) के सघीय अधिकारियो की राज्यव्यापी बैठको (Meetings) के द्वारा सम्पन्न करेंगे।

(१) वे विशिष्ट प्रशासकीय अध्ययन करेंगे और इसके लिए वे विशिष्ट अभिकरणो के क्षेत्रीय कार्यक्रमो की फल-साधनाओ का तथा एक निश्चित क्षेत्र मे सघीय क्षेत्र क्रियाओ के सम्पूर्ण प्रतिरूप (Pattern) का परीक्षण करेंगे।

(४) **प्रादेशिक योजना आयोग प्रादेशिक विकास सत्तायें** (Regional Planning Commissions and Regional Development Authorities) — ये प्रादेशिक अथवा क्षेत्रीय सस्थायें विभिन्न क्षेत्रीय कार्यालयो के बीच अधिक अच्छा समन्वय कायम कर सकती हैं। ये सस्थायें क्षेत्र के विकास के लिए योजनाये (Plans) बनायेगी और अपनी योजनायें विभिन्न क्षेत्रीय कार्यालयो के सम्मुख रखेंगी जोकि क्षेत्र के विकास के लिये उस योजना को क्रियान्वित करने के उद्देश्य के साथ मिलकर काम करेंगे। इस प्रकार, ऊपर उल्लेख किये गये इन उपायो के द्वारा 'क्षेत्र मे समन्वय' कायम किया जा सकता है।

निष्कर्ष
(Conclusion)

इस प्रकार, प्रधान कार्यालय तथा क्षेत्र के पारस्परिक सम्वन्ध मे एक ऐसी कठिन व पेचीदा समस्या प्रस्तुत करते हैं जिसकी कोई भी प्रशासन उपेक्षा नही कर सकता। किसी भी प्रशासकीय व्यवस्था की कुशलता केवल प्रधान कार्यालय पर ही निर्भर नही हुआ करती। इसके लिये आवश्यक है कि प्रत्येक कार्यालय तथा उस प्रशासन की प्रत्येक इकाई कुशलता के साथ कार्य करे। केवल तभी प्रशासन का लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है अर्थात् उच्च तथा सुखी जीवन का विकास किया जा सकता है। फिर, एक बात यह है कि नागरिक प्रधान कार्यालय की अपेक्षा क्षेत्रस्थलो के अधिक सम्पर्क मे आते हैं। अत क्षेत्रस्थलो को कुशल बनाने तथा प्रधान कार्यालय के साथ उनके सम्बन्धो को मधुर तथा ऐक्यपूर्ण बनाने के लिये यथासभव प्रत्येक प्रयत्न किया जाना चाहिये। क्षेत्रस्थलो को प्रदान की जाने वाली शक्तियो को स्पष्ट रूप मे व्याख्या की जानी चाहिये। स्थानीय समस्याओ मे निपटने के लिये उन्हे पर्याप्त स्वतन्त्रता दी जानी चाहिये। क्षेत्रस्थलो मे योग्य एव अनुभवी कर्मचारी-वर्ग की नियुक्ति की जानी चाहिये और उन्हे प्रधान कार्यालय का विश्वास प्राप्त करना चाहिये। क्षेत्रस्थलो को स्थानीय लोगो के कल्याण तथा सुख मे वृद्धि करने का पूर्ण प्रयत्न करना चाहिये, अन्यथा उनकी विद्यमानता का कोई महत्त्व नहीं रह जाता।

———

१२

प्रशासनिक सुधार
(Administrative Improvement)

किसी प्रशासनिक अभिकरण की स्थापना कुछ विशिष्ट हितो की सेवा, कुछ उद्देश्यो व लक्ष्यो की प्राप्ति तथा कुछ सेवाओ को सचालित करने के मन्तव्य से की जाती है। प्रत्येक प्रशासक को एक मुख्य चुनौती का अक्सर सामना करना पडता है क्या उसके अभिकरण का कार्य वर्तमान की अपेक्षा अधिक कार्य-कुशलता से सम्पन्न किया जा सकता है? उद्देश्य सदा लागत मे कमी लाना, उत्पादन बढाना तथा अभिकरण के योगदान का विस्तार करना होता है। प्रत्येक देश के लोक-प्रशासन के सम्मुख आज यह एक महत्वपूर्ण चुनौती है कि सीमित स्रोतो से अधिकतम लाभ किस प्रकार उठाया जाये तथा लोक सेवाओ का उत्पादन व उनका जनहित मे योगदान कैसे बढाया जाये। १९३७ मे अमरीकी राष्ट्रपति द्वारा नियुक्ति 'प्रशासनिक प्रबन्ध सम्बन्धी समिति' (Committee on Administrative Management) ने "प्रतिदिन, प्रति वर्ष तथा प्रत्येक परिस्थिति मे लागत कम करने, सेवाए सुधारने तथा कार्य का स्तर ऊँचा उठाने के लिए" केन्द्रीय कार्यपालिका निर्देशन पर बल दिया था।[1]

प्रशासनिक प्रबन्ध मे निरन्तर सुधार की आवश्यकता को सबने महसूस किया है। इस प्रकार का सुधार लाने के लिए प्रशासनिक सगठनो के कार्यों का मूल्याकन तथा उन पर पुनर्विचार करना आवश्यक है। अक्सर प्रशासनिक अभिकरणो के स्वरूप मे सगठनात्मक परिवर्तन अनिवार्य हो जाते है। कभी-कभी क्रिया प्रणालियो तथा प्रक्रियाओ मे सशोधन व ताल-मेल आवश्यक हो जाता है। कभी-कभी कर्मचारी वर्ग को अधिक कार्य कुशल बनाने के लिए विशेष लाभकारी प्रेरणाए (In centives) देना भी अनिवार्य हो जाता है। प्रशासनिक सुधार के कार्य मे तीन ऐसे चरण है जो परस्पर सम्बद्ध है (अ) प्रशासनिक सगठन मे स्वरूप सम्बन्धी सुधार (ब) क्रिया-प्रणालियो तथा प्रक्रियाओ मे सुधार, तथा (स) प्रशासनिक अभिकरणो मे काम कर रहे कर्मचारियो के उत्साह मे निरन्तर वृद्धि।

प्रशासनिक सुधार लाना असम्भव होगा यदि कर्मचारी-वर्ग अपने कार्य से असन्तुष्ट व अप्रसन्न होगा। ऐसी दशाए पैदा करनी आवश्यक है जो कर्मचारी-वर्ग

1 President's Committee on Administrative Management, Report with General Studies, Washington Government Printing Office, 1937, page 45

को सन्तोष तथा प्रसन्नता प्रदान कर सके जिससे वे अपने काम को तन-मन-धन से कर सके। ऐसी दशाए होने पर उनमे उत्तरदायित्व की भावना भी आयेगी। इस प्रकार प्रशासनिक सुधार का अभिप्राय कार्य-प्रणालियो तथा सगठनात्मक स्वरूप मे सुधार लाने मात्र से नही हैं। किसी भी देश के प्रशासनिक ढांचे को सुधारने के लिए 'व्यक्ति' (Man), जोकि प्रशासन की प्रेरणा शक्ति है, पर ध्यान देना अत्यावश्यक है।

प्रशासनिक सुधार के लिए समय-समय पर अनेक महत्वपूर्ण अध्ययन किए गये है। ये अध्ययन व्यक्तिगत रूप से विद्वानो या सरकार द्वारा किए गये हैं। हाल ही मे इस प्रकार के अध्ययन सरकारी क्षेत्र की अपेक्षा निजी औद्योगिक व व्यापारिक क्षेत्र मे अधिक लोकप्रिय हुए हैं। बहुत से देशो की सरकारें अपने-अपने प्रशासनिक ढांचो के विश्लेषणात्मक निरीक्षण के महत्व को स्वीकार कर रही हैं तथा प्रशासन मे कार्य कुशलता तथा उत्पादन की समस्याओ का अध्ययन करने के लिए बहुत से अभिकरण स्थापित किए गये है।

वैज्ञानिक प्रबन्ध
(Scientific Management)

प्रशासनिक सुधार के किसी भी अध्ययन मे अमेरीका के फ्रेडरिक टेलर (Frederick W Taylor) का नाम महत्वपूर्ण स्थान रखता है। उसने १६११ मे प्रकाशित अपनी पुस्तक "वैज्ञानिक प्रबन्ध के सिद्धान्त" मे अपने विचारो का प्रतिपादन किया था। उसने अपने अध्ययन का प्रारम्भ एक छोटे कारखाने (Shop) की समस्याओ के निरीक्षण मे किया। उसने अपव्यय, मालिक तथा कर्मचारियों के पारस्परिक सघर्ष, उत्पादन के साधनो के अकार्यकुशल प्रयोग तथा नियोजन के अभाव के कारणो की जांच की।[1] टेलर ने वैज्ञानिक प्रबन्ध के चार सिद्धान्त प्रतिपादित किए

(अ) पुराने घिसे-पिटे तरीको के स्थान पर 'विज्ञान' का विकास,

(ब) कर्मचारियो का वैज्ञानिक चुनाव तथा उनका प्रगतिशील प्रशिक्षण एव विकास,

(स) वैज्ञानिक तरीके मे चुने हुए कर्मचारियो तथा 'विज्ञान' मे निकटता लाना तथा

(द) प्रबन्धकर्त्ताओ तथा कर्मचारियो मे कार्य का लगभग समान विभाजन।[2]

---

1 For further studies on Taylor refer to H F Merrill (Ed), *Classes in Management*, N Y American Management Association, 1960, A Lepawshy [illegible] N Y A A Knopf 1955, Harlow S Person, "The Genius of Frederick W. Taylor" Advanced Management 1945, Vol, 10, Page 2

2 Merrill H. F (Ed) *op cit*, page 94

सरकार मे समय तथा क्रिया का अध्ययन
(Time and Motion Studies in Government)

वैज्ञानिक प्रबन्ध के आन्दोलन ने 'समय व क्रिया अध्ययन' नामक एक अन्य आन्दोलन को जन्म दिया है। इस प्रकार के अध्ययन का उद्देश्य वस्तुओ के उत्पादन मे समय की लागत को कम करना है। समय अध्ययन का उद्देश्य एक वस्तु के उत्पादन या एक गति विधि के लिए एक अधिकतम समय-सीमा निश्चित करना है। क्रिया अध्ययन का उद्देश्य एक 'कार्य' (Job) के लिए आवश्यक क्रियाओ की शृंखला का अध्ययन करके 'अलाभकारी' या 'गैर-उत्पादक' क्रियाओ का उन्मूलन करना है।[1]

'समय तथा क्रिया' अध्ययन सरकारी विभागो मे लोकप्रिय नही हो पाये है परन्तु इन्ही से उपजी 'कार्य सरलीकरण' (Work simplification) की प्रक्रियाये अब सरकारी क्षेत्र मे भी लोक-प्रिय हो रही हैं।[2]

प्रशासनिक कार्य-प्रणालियो मे सुधार
(Improvement in Administrative Procedures)

प्रशासन मे कार्य कुशलता की वृद्धि के लिए प्रशासनिक कार्य-प्रणालियो मे सुधार अत्यन्त आवश्यक है। बहुत सी कार्य-प्रणालिया समयानुकूल न रहने के कारण अनुपयोगी साबित हो जाती हैं। किन्तु आदत के कारण प्रशासक-वर्ग उन्हे अक्सर नही त्यागता। इसके फलस्वरूप समय का अपव्यय, काम मे विलम्ब तथा लालफीता शाही का जन्म होता है।[3] कार्य-प्रणालियो का अविरल निरीक्षण प्रशासनिक सुधार के लिये आवश्यक है। सरकारी कार्य-प्रणालियो मे व्यर्थ की पुनरावृत्ति बहुत होती है, औपचारिकताये भी उनमे बहुत होती है। इसलिए किसी भी लोक-सेवा के कार्य-

---

1 Refer to Allan H Mogensen, "Time and Motion Study", Advanced Management, VI (January—March 1941), page 28

2 For further attempts at such studies refer to the work of late Elton Mayo of Harvard University "Hawthorne Studies" are important in the field of administrative improvement For further details refer to Dwight Waldo (Ed), *Ideas and Issues in Public Administration*, pages 370—380

3 A writer has put it very well "Perhaps the strongest single impediment to management progress is the dead weight of tradition—the habit of doing things the way they have always been done Habits are powerful and the habitual method may survive simply because we are used to it, not because it is the best method The only way organizations can rid themselves of outmoded procedures, unnecessary operations, and wasteful duplications of efforts is to subject every activity periodically to searching re-examination" F. M Marx (Ed) *Elements of Public Administration*, page 428

को सन्तोष तथा प्रसन्नता प्रदान कर सके जिससे वे अपने काम को तन-मन-धन से कर सके। ऐसी दशाए होने पर उनमे उत्तरदायित्व की भावना भी आयेगी। इस प्रकार प्रशासनिक सुधार का अभिप्राय कार्य-प्रणालियो तथा सगठनात्मक स्वरूप मे सुधार लाने मात्र से नही हैं। किसी भी देश के प्रशासनिक ढाँचे को सुधारने के लिए 'व्यक्ति' (Man), जोकि प्रशासन की प्रेरणा शक्ति है, पर ध्यान देना अत्यावश्यक है।

प्रशासनिक सुधार के लिए समय-समय पर अनेक महत्वपूर्ण अध्ययन किए गये हैं। ये अध्ययन व्यक्तिगत रूप से विद्वानो या सरकार द्वारा किए गये है। हाल ही मे इस प्रकार के अध्ययन सरकारी क्षेत्र की अपेक्षा निजी औद्योगिक व व्यापारिक क्षेत्र मे अधिक लोकप्रिय हुए हैं। बहुत से देशो की सरकारे अपने-अपने प्रशासनिक ढाँचो के विश्लेषणात्मक निरीक्षण के महत्व को स्वीकार कर रही हैं तथा प्रशासन मे कार्य कुशलता तथा उत्पादन की समस्याओ का अध्ययन करने के लिए बहुत से अभिकरण स्थापित किए गये है।

वैज्ञानिक प्रबन्ध
(Scientific Management)

प्रशासनिक सुधार के किसी भी अध्ययन मे अमेरीका के फ्रेडरिक टेलर (Frederick W Taylor) का नाम महत्वपूर्ण स्थान रखता है। उसने १९११ मे प्रकाशित अपनी पुस्तक "वैज्ञानिक प्रबन्ध के सिद्धान्त" मे अपने विचारो का प्रतिपादन किया था। उसने अपने अध्ययन का प्रारम्भ एक छोटे कारखाने (Shop) की समस्याओ के निरीक्षण मे किया। उसने अपव्यय, मालिक तथा कर्मचारियो के पारस्परिक सघर्ष, उत्पादन के साधनो के अकार्यकुशल प्रयोग तथा नियोजन के अभाव के कारणो की जाँच की।[1] टेलर ने वैज्ञानिक प्रबन्ध के चार सिद्धान्त प्रतिपादित किए

(अ) पुराने घिसे-पिटे तरीको के स्थान पर 'विज्ञान' का विकास ;

(ब) कर्मचारियो का वैज्ञानिक चुनाव तथा उनका प्रगतिशील प्रशिक्षण एव विकास ,

(स) वैज्ञानिक तरीके से चुने हुए कर्मचारियो तथा 'विज्ञान' मे निकटता लाना , तथा

(द) प्रबन्धकर्त्ताओ तथा कर्मचारियो मे कार्य का लगभग समान विभाजन।[2]

---

1 For further studies on Taylor refer to H F Merrill (Ed), *Classes in Management*, N Y , American Management Association, 1960 , A Lepawshy *Administration* N Y , A A Knopf, 1955, Harlow S, Person, "The Genius of Frederick W Taylor", Advanced Management, 1945, Vol, 10, Page 2

2 Merrill H F. (Ed), *op cit* , page 94

सरकार मे समय तथा क्रिया का अध्ययन
(Time and Motion Studies in Government)

वैज्ञानिक प्रबन्ध के आन्दोलन ने 'समय व क्रिया अध्ययन' नामक एक अन्य आन्दोलन को जन्म दिया है। इस प्रकार के अध्ययन का उद्देश्य वस्तुओ के उत्पादन मे समय की लागत को कम करना है। समय अध्ययन का उद्देश्य एक वस्तु के उत्पादन या एक गति विधि के लिए एक अधिकतम समय-सीमा निश्चित करना है। क्रिया अध्ययन का उद्देश्य एक 'कार्य' (Job) के लिए आवश्यक क्रियाओ की शृंखला का अध्ययन करके 'अलाभकारी' या 'गैर-उत्पादक' क्रियाओ का उन्मूलन करना है।[1]

'समय तथा क्रिया' अध्ययन सरकारी विभागो मे लोकप्रिय नही हो पाये है परन्तु इन्ही से उपजी 'कार्य सरलीकरण' (Work simplification) की प्रक्रियाये अब सरकारी क्षेत्र मे भी लोक-प्रिय हो रही है।[2]

प्रशासनिक कार्य-प्रणालियो मे सुधार
(Improvement in Administrative Procedures)

प्रशासन मे कार्य कुशलता की वृद्धि के लिए प्रशासनिक कार्य-प्रणालियो मे सुधार अत्यन्त आवश्यक है। बहुत सी कार्य-प्रणालिया समयानुकूल न रहने के कारण अनुपयोगी साबित हो जाती हैं। किन्तु आदत के कारण प्रशासक-वर्ग उन्हे अक्सर नही त्यागता। इसके फलस्वरूप समय का अपव्यय, काम मे विलम्ब तथा लालफीता शाही का जन्म होता है।[3] कार्य-प्रणालियो का अविरल निरीक्षण प्रशासनिक सुधार के लिये आवश्यक है। सरकारी कार्य-प्रणालियो मे व्यर्थ की पुनरावृत्ति बहुत होती है, औपचारिकताये भी उनमे बहुत होती हैं। इसलिए किसी भी लोक-सेवा के कार्य-

1 Refer to Allan H Mogensen, "Time and Motion Study", Advanced Management, VI (January—March 1941), page 28

2 For further attempts at such studies refer to the work of late Elton Mayo of Harvard University "Hawthorne Studies" are important in the field of administrative improvement For further details refer to Dwight Waldo (Ed), *Ideas and Issues in Public Administration*, pages 370—380

3 A writer has put it very well "Perhaps the strongest single impediment to management progress is the dead weight of tradition—the habit of doing things the way they have always been done Habits are powerful and the habitual method may survive simply because we are used to it, not because it is the best method The only way organizations can rid themselves of outmoded procedures, unnecessary operations, and wasteful duplications of efforts is to subject every activity periodically to searching re-examination" F- M Marx (Ed) *Elements of Public Administration*, page 428

को सन्तोष तथा प्रसन्नता प्रदान कर सके जिससे वे अपने काम को तन-मन-धन से कर सकें। ऐसी दशाए होने पर उनमे उत्तरदायित्व की भावना भी आयेगी। इस प्रकार प्रशासनिक सुधार का अभिप्राय कार्य-प्रणालियो तथा सगठनात्मक स्वरूप मे सुधार लाने मात्र से नही हैं। किसी भी देश के प्रशासनिक ढांचे को सुधारने के लिए 'व्यक्ति' (Man), जोकि प्रशासन की प्रेरणा शक्ति है, पर ध्यान देना अत्यावश्यक है।

प्रशासनिक सुधार के लिए समय-समय पर अनेक महत्वपूर्ण अध्ययन किए गये है। ये अध्ययन व्यक्तिगत रूप से विद्वानो या सरकार द्वारा किए गये हैं। हाल ही मे इस प्रकार के अध्ययन सरकारी क्षेत्र की अपेक्षा निजी औद्योगिक व व्यापारिक क्षेत्र मे अधिक लोकप्रिय हुए हैं। बहुत से देशो की सरकारें अपने-अपने प्रशासनिक ढांचो के विश्लेषणात्मक निरीक्षण के महत्व को स्वीकार कर रही हैं तथा प्रशासन मे कार्य कुशलता तथा उत्पादन की समस्याओ का अध्ययन करने के लिए बहुत से अभिकरण स्थापित किए गये है।

वैज्ञानिक प्रबन्ध
(Scientific Management)

प्रशासनिक सुधार के किसी भी अध्ययन मे अमेरीका के फ्रेडरिक टेलर (Frederick W Taylor) का नाम महत्वपूर्ण स्थान रखता है। उसने १९११ मे प्रकाशित अपनी पुस्तक "वैज्ञानिक प्रबन्ध के सिद्धान्त" मे अपने विचारो का प्रतिपादन किया था। उसने अपने अध्ययन का प्रारम्भ एक छोटे कारखाने (Shop) की समस्याओ के निरीक्षण मे किया। उसने अपव्यय, मालिक तथा कर्मचारियो के पारस्परिक सघर्ष, उत्पादन के साधनो के अकार्यकुशल प्रयोग तथा नियोजन के अभाव के कारणो की जॉच की।[1] टेलर ने वैज्ञानिक प्रबन्ध के चार सिद्धान्त प्रतिपादित किए

(अ) पुराने घिसे-पिटे तरीको के स्थान पर 'विज्ञान' का विकास,

(ब) कर्मचारियो का वैज्ञानिक चुनाव तथा उनका प्रगतिशील प्रशिक्षण एव विकास,

(स) वैज्ञानिक तरीके से चुने हुए कर्मचारियो तथा 'विज्ञान' मे निकटता लाना तथा

(द) प्रबन्धकर्त्ताओ तथा कर्मचारियो मे कार्य का लगभग समान विभाजन।[2]

---

1 For further studies on Taylor refer to H F Merrill (Ed), *Classes in Management*, N Y American Management Association, 1960, A Lepawshy *Administration*, N Y, A A Knopf, 1955, Harlow S Person "The Genius of Frederick W Taylor", Advanced Management, 1945, Vol, 10, Page 2

2 Merrill, H F (Ed), *op cit*, page 94

सरकार में समय तथा क्रिया का अध्ययन
(Time and Motion Studies in Government)

वैज्ञानिक प्रवन्ध के आन्दोलन ने 'समय व क्रिया अध्ययन' नामक एक अन्य आन्दोलन को जन्म दिया है। इस प्रकार के अध्ययन का उद्देश्य वस्तुओ के उत्पादन मे समय की लागत को कम करना है। समय अध्ययन का उद्देश्य एक वस्तु के उत्पादन या एक गति विधि के लिए एक अधिकतम समय-सीमा निश्चित करना है। क्रिया अध्ययन का उद्देश्य एक 'कार्य' (Job) के लिए आवश्यक क्रियाओ की शृंखला का अध्ययन करके 'अलाभकारी' या 'गैर-उत्पादक' क्रियाओ का उन्मूलन करना है।[1]

'समय तथा क्रिया' अध्ययन सरकारी विभागो मे लोकप्रिय नही हो पाये है परन्तु इन्ही से उपजी 'कार्य सरलीकरण' (Work simplification) की प्रक्रियाये अब सरकारी क्षेत्र मे भी लोक-प्रिय हो रही हैं।[2]

प्रशासनिक कार्य-प्रणालियो मे सुधार
(Improvement in Administrative Procedures)

प्रशासन मे कार्य कुशलता की वृद्धि के लिए प्रशासनिक कार्य-प्रणालियो मे सुधार अत्यन्त आवश्यक है। बहुत सी कार्य-प्रणालिया समयानुकूल न रहने के कारण अनुपयोगी साबित हो जाती हैं। किन्तु आदत के कारण प्रशासक-वर्ग उन्हे अक्सर नही त्यागता। इसके फलस्वरूप समय का अपव्यय, काम मे विलम्ब तथा लालफीता शाही का जन्म होता है।[3] कार्य-प्रणालियो का अविरल निरीक्षण प्रशासनिक सुधार के लिये आवश्यक है। सरकारी कार्य-प्रणालियो मे व्यर्थ की पुनरावृत्ति बहुत होती है, औपचारिकतायें भी उनमे बहुत होती है। इसलिए किसी भी लोक-सेवा के कार्य-

---

1 Refer to Allan H Mogensen, "Time and Motion Study", Advanced Management, VI (January—March 1941), page 28

2 For further attempts at such studies refer to the work of late Elton Mayo of Harvard University "Hawthorne Studies" are important in the field of administrative improvement For further details refer to Dwight Waldo (Ed), *Ideas and Issues in Public Administration*, pages 370—380

3 A writer has put it very well "Perhaps the strongest single impediment to management progress is the dead weight of tradition—the habit of doing things the way they have always been done Habits are powerful and the habitual method may survive simply because we are used to it, not because it is the best method The only way organizations can rid themselves of outmoded procedures, unnecessary operations, and wasteful duplications of efforts is to subject every activity periodically to searching re-examination" F- M Marx (Ed) *Elements of Public Administration*, page 428

स्तर मे सुधार तथा उसकी लागत मे कमी सरकारी विभागो की कार्य-प्रणालियो के सरलीकरण पर निर्भर करती है ।

किपलिंग के शब्दो मे कार्य-प्रणालियो का विश्लेषण करने वाले व्यक्ति को छ प्रश्नो को अपने सम्मुख रखना पडता है क्या-क्या गतिविधियाँ सचालित हो रही हैं ? ये कदम क्यो वाछनीय हैं ? इस काम को कहाँ किया जाना चाहिए ? इसको कब प्रारम्भ करना चाहिए ? इसको किसे करना चाहिए ? इसको किस प्रकार करना चाहिए ?[1] इन प्रश्नो के उत्तर सर्वेक्षणो (Surveys), प्रश्नावलियो (Questionnaires) तथा व्यक्तिगत भेंटो (interviews) से प्राप्त किये जा सकते हैं । कार्य का सरलीकरण कर्मचारियो मे कार्य के उचित विभाजन पर निर्भर करता है । अगर कार्य-विभाजन अनुचित तथा अवैज्ञानिक है और एक ही काम अनेक व्यक्तियो को करना पड रहा है तो इसके परिणामस्वरूप कर्मचारियो द्वारा काम का एक दूसरे पर टालना बढ जायेगा तथा उनका उत्तरदायित्व निश्चित करना कठिन हो जायेगा । कार्य-कुशलता लाने के लिए निम्न बातो पर ध्यान देकर अध्ययन न करना आवश्यक है (अ) प्रशासन मे फाइलें कैसे एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचती हैं ? (ब) देख-रेख (Supervision) की तकनीक तथा तरीका क्या है (स) कार्य के प्रवाह (Flow) मे कितने तथा कौन-कौन से चरण निहित है ? (द) कार्यालय मे यन्त्र-उपकरण तथा अन्य सामान लगाने का नमूना क्या है ? क्या कर्मचारियो मे उचित कार्य वितरण है ? इस प्रकार कार्य-प्रणालियो का विश्लेषण करने वाले व्यक्ति को एक प्रशासनिक सगठन के काम करने के सम्पूर्ण ढग का विस्तार, गहनता तथा बारीकी से अध्ययन करना पडता है । तभी वह प्रशासनिक सुधार के लिये उपयोगी सुझाव दे सकता है ।

अभीकरणो के प्रबन्ध मे सुधार के लिए बहुत से तकनीकी तरीको का प्रयोग किया जाता है । इनमे महत्वपूर्ण हैं, (अ) सर्वेक्षण, (ब) कार्य-वितरण चार्ट, (स) कार्य मापन (Work measurement), (द) प्रश्नावलियाँ, तथा (ढ) व्यक्तिगत भेंट ।

एक प्रशासनिक सगठन के सर्वेक्षण मे सम्बन्धित समस्याओ के बारे मे सभी उपलब्ध तथ्य एकत्रित किये जाते है । ये तथ्य भेंटो, पर्यवेक्षणो (Observations) या कार्यालयो की फाइलो, अधिकारी-दायित्वो का वर्णन करने वाली विभागीय पुस्तिकाओं तथा अन्य लिखित प्रपत्रो के अध्ययन द्वारा इकट्ठे किये जा सकते हैं । ये तथ्य तब सकलित तथा वर्गीकृत किये जाते हैं तथा इस प्रकार प्राप्त होने वाली नई जानकारी, निष्कर्षो तथा सिफारिशो के विषय मे एक प्रतिवेदन तैयार किया जाता

---

1 Also refer to Marshall E Dimock, 'Administrative Standards for Improving Naturalization Procedure," 37 American Political Science Review 31 February 1943 Also refer to *Governmental Administration* by James C Charlesworth, N Y, Harper Brothers, 1951, Chapters XVIII and XIX, pages 409—436

है। तब वह सम्बन्धित अधिकारियो को समर्पित किया जाता है। इसके बाद सर्वेक्षण कार्य के क्रियान्वन की भी जाँच की जाती है। इसका उद्देश्य यह पता लगाना होता है कि सर्वेक्षण की सिफारिशो पर क्या कदम उठाये गये हैं। कार्य-वितरण चार्ट का उद्देश्य एक प्रशासनिक इकाई के कर्मचारियो के सामूहिक तथा व्यक्तिगत कार्य का स्पष्ट चित्र प्रस्तुत करना होता है। कार्य-विभाजन तथा कर्मचारियो के व्यक्तिगत योगदान का अध्ययन करने का उद्देश्य यह पता लगाना होता है कि कार्य-वितरण मे कोई दोष तो नही है।

कार्य सुधार मे इस्तेमाल की जाने वाली एक अन्य तकनीकी विधि का उद्देश्य कार्य उत्पादन तथा प्रयुक्त जनशक्ति (Man-power) के मध्य कुछ मापदण्डो (Standards) को स्थापित करना होता है। इसी को कार्यमापन की विधि कहते हैं। प्रयुक्त जन-शक्ति को दृष्टिगत रखकर कार्य उत्पादन का मापन (Measurement) किया जाता है। प्रशासन मे कार्य-कुशलता के मापन की यह एक अच्छी तकनीक है।[1]

साराश मे, पिछले कुछ वर्षो मे प्रशासनिक सुधार के कार्य मे सर्वत्र रुचि जागृत हुई है। प्रशासनिक कार्य-प्रणालियो के अध्ययन के लिए वैज्ञानिक विधियाँ विकसित की जा रही हैं। किन्तु प्रशासनिक सुधार की एक तकनीक हर स्थिति मे लाभप्रद सिद्ध नही होती। ऐसी विधियो के प्रयोग मे सावधानी आवश्यक है तथा अध्ययन के परिणामो की परीक्षा तथा पुनर्परीक्षा जारी रहनी चाहिये।

सगठन तथा प्रणालिया
(Organisation and Methods)

किसी भी प्रशासकीय सगठन को, कुशल बनने के लिए, अपने सभी उपलब्ध साधनो का पूर्णरूप से उपयोग करना चाहिए और जहाँ तक भी सम्भव हो सके मानवीय प्रयत्न तथा शक्ति का किसी भी प्रकार का अपव्यय (Waste) तथा नुकसान नही होना चाहिए। सरकारी विभागो (Government Departments) के विरुद्ध की जाने वाली सामान्य आलोचनाये (Criticisms) ये है। लालफीताशाही (Red tapism) का प्रचलन, काम मे देरी व कार्य-कुशलता एव दक्षता का अभाव आदि। प्रशासन के अनेक कार्यक्रम तथा नीतियाँ विभागो के सचालन मे कार्य-विधि सम्बन्धी दोषो के कारण धरी की धरी रह जाती हैं। अतः विभागीय कामो के सचालन की

---

1 For further details refer to John D Millett, *Management in the Public Service* Chapter XI, Management Improvement, pages 253—276, Louis A Allen *Management and Organization* N Y, Mc Graw-Hill Book Co, 1958, Chapter 17, Changing the Organization Structure, pages 273—307, Morstein Marx (Ed), *Elements of Public Administration*, Chapter 20, Administrative Self- mprovement, pages 448—477, Dimock, Dimock and Koenig, *Public Administration*, Chapter 25, Administrative Control, pages 425—445

कार्य-विधि (Procedure) मे सुधार होना चाहिए जिससे कि प्रशासन के कार्यों मे गति तथा कुशलता लाई जा सके ।

सगठन तथा प्रणाली का कार्य (Organization and methods work) चालित सेवाओ की कार्य-विधियो मे सुधार का प्रयत्न करता है । सगठन तथा प्रणाली के कार्य को यह देखना होता है कि सगठन मे मनुष्यो तथा सामग्रियो का समुचित उपयोग किया जा रहा है या नही । ओ० तथा एम० (O and M) प्रशासकीय ढांचे का विश्लेषण करता है, कार्य-विधि सम्बन्धी दोषो व त्रुटियो का पता लगाता है और उनको दूर करने के लिए उपायो अथवा साधनो का सुझाव देता है । ओ० तथा एम० कार्यकर्त्ता (O and M workers) प्रशासकीय विश्लेषक (Analysts) होते हैं जिनका कार्य सगठन का अध्ययन करना तथा देरी और उत्पादकता व कार्य-कुशलता की कमी के कारणो की ओर सकेत करना होता है । ओ० तथा एम० को उपलब्ध कार्मिक वर्ग (Personnel) के सर्वोत्तम उपयोग के लिए उपायो का सुझाव देना होता है । ओ० तथा एम० का सरकार की सामान्य नीतियो से कोई सम्बन्ध नही होता । इसका सम्बन्ध तो उन उपायो तथा साधनो से होता है जिनके द्वारा सरकारी काम-काज कम लागत तथा कम श्रम (Labour) लगाकर सम्पन्न हो सके । अनुमानो पर ब्रिटिश प्रवर समिति (१९४७) (British Select Committee on Estimates) के शब्दो मे, "सिविल सेवा मे ओ० तथा एम० का उद्देश्य सरकार के शासन-तन्त्र के सचालन मे अधिकतम दक्षता लाना तथा सगठन की वैज्ञानिक प्रणालियो के निपुण उपयोग के द्वारा लागत तथा श्रम (Cost and labour) मे कमी करना है ।" ओ० तथा एम० पूर्णतया परामर्शदात्री प्रकृति का होता है । विभागीय प्रमुख द्वारा इसकी सलाह स्वीकार की भी जा सकती है और नही भी ।

भारत सरकार मे सगठन तथा प्रणाली (ओ० तथा एम०)

(O & M in the Government of India) :

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात्, भारत के प्रशासन-यन्त्र पर कल्याणकारी राज्य (Welfare State) की पेचीदी समस्याओ से निपटने का भार आ पडा । भारत को अपनी बढती हुई जनसख्या के रहन-सहन के स्तर (Standard of living) मे सुधार के विशाल कार्य मे लगना पडा है । अत आवश्यकता इस बात की है कि प्रशासन स्वय को आर्थिक नियोजन (Economic planning) के कारण उत्पन्न होने वाली नवीन आवश्यकताओ के अनुरूप बना ले । प्रशासनिक कार्य-कुशलता अथवा दक्षता (Administrative efficiency) आज की सबसे बडी आवश्यक मांग है । सन् १९४९ मे, श्री एन० गोपाल स्वामी आयंगर ने 'सरकार की मशीनरी के पुनर्गठन' (Reorganisation of the Machinery of Government) पर अपने प्रतिवेदन (Report) मे केन्द्र (Centre) मे 'सगठन तथा प्रणाली सभाग' (O and M Division) के निर्माण की दलील दी । उन्होने लिखा कि "सरकार को जिन समस्याओ का सामना करना पडता है वे स्थिर तथा अपरिवर्तनीय नही हैं । आगे तो

उनमे भूतकाल से भी अधिक तेजी मे परिवर्तन होने की सम्भावनाये हैं, अत प्रशासन के सगठन तथा प्रणालियो मे भी तदनुकूल परिवर्तन करने ही पड़ेंगे ।" श्री ए० डी० गोरवाला और पाल एच० एपिलबी ने भी भारत मे सगठन तथा प्रणाली (O and M) के निर्माण का सुझाव दिया । प्रथम पचवर्षीय योजना मे इसको काफी महत्त्व दिया गया । प्रथम पचवर्षीय योजना मे यह व्यवस्था की गई कि ओ० तथा एम० निम्नलिखित समस्याओ मे अपना सम्बन्ध रखेगा—

(१) यह कार्यालयो की कार्यविधियो (Procedures) का अध्ययन करेगा और उनके सरलीकरण (Simplification) के लिए उपायो के सुझाव देगा । (२) यह कार्य होने वाली देरियो को दूर करने के लिए उपाय सुझायेगा । (३) यह अभिलेखो (Records) को सुरक्षित रखने की प्रणाली मे सुधार करने के लिए सुझाव देगा । (४) यह फाइलो के आवागमन की प्रणाली का अध्ययन करेगा । (५) यह उपयुक्त सतहो (Appropriate levels) पर अधिकाधिक सत्ता एव उत्तरदायित्व के हस्तान्तरण के लिये उपाय सुझायगा" ।[2]

कार्यक्रम की रूपरेखा[3]
(Outline of Programme)

सगठन तथा प्रणाली सभाग (O and M Division) के निम्नलिखित उद्देश्य है—

(१) सरकार की सभी शाखाओ मे प्रशासनिक कार्य-क्षमता की वृद्धि करने के लिए सूत्रबद्ध प्रयत्न करना और उसे कायम रखना ।

(२) कार्य-क्षमता लाने के लिए अन्य किसी भी यन्त्र के ही समान, सरकारी शासनयन्त्र की ठीक प्रकार से रचना होनी चाहिए तथा उसे समुचित रीति मे कार्य करना चाहिए । गतिशील तथा विकासोन्मुख परिस्थितियो मे कार्य-कुशलता कायम रखने के लिए आवश्यक है कि यन्त्र की बार-बार जाँच-पडताल की जाए, उसकी पूर्णत सफाई की जाए और यदि आवश्यक हो तो उसकी मरम्मत अथवा पुन रचना भी की जाए । कल्याणकारी राज्य के विचार की दिशा मे आगे बढने की स्थिति मे तो ऐसी सावधानी तथा जागरूकता अत्यन्त आवश्यक है ।

(३) प्रशासनिक व्यवहार मे, यह सभाग किये जाने वाले कार्य की प्रकृति तथा मात्रा, कार्य की गति (Speed) तथा कोटि (Quality) की ओर तथा अनेक ऐसे तत्वो की ओर, जो कि इनको प्रभावित करते हैं, निरन्तर ध्यान दिये जाने की माँग करता है, जैसे कि निर्णय अथवा कार्य के लिए उत्तरदायी व्यक्तियो की सख्या, किस्म तथा उनके पारस्परिक सम्बन्ध, कार्य का प्रवाह, कार्य का भार, कार्यविधियो का सरलीकरण तथा वैज्ञानिकीकरण, समय व श्रम बचाने वाली तकनीके (Techniques) तथा सगठन आदि ।

---

1 P 35

2 प्रथम पचवर्षीय योजना, पृष्ठ १२२–१२३

3 Outline Programme and Circulars etc issued during 1954-55, pp c 1-2

(४) केन्द्र सरकार जैसे विशाल तथा विविध सगठन मे, इस दिशा मे मुख्य प्रयत्न सगठन के सभी अगो को ही करना होगा। इष्टतम कार्य-कुशलता (Optimum efficiency) तब तक नही लाई जा सकती अथवा कायम नही रखी जा सकती जब तक कि प्रत्येक मन्त्रालय (Ministry), विभाग (Department) तथा चालित अभिकरण (Operating agency) अपनी निजी 'सगठन तथा प्रणाली की इकाई (O and M Unit) की व्यवस्था करने के लिए पर्याप्त रुचि तथा आन्तरिक क्षमता का निर्माण कर ले। 'केन्द्रीय सगठन तथा प्रणाली सभाग' का मुख्य कार्य तो यह होगा कि वह उन्हे नेतृत्व प्रदान करे, आगे बढाये और सरकारी प्रयत्न द्वारा, ओ० तथा एम० कार्य मे सूचना, अनुभव तथा क्षमता के एक सामान्य कोष का निर्माण करे।

(५) अत प्रारम्भ मे, प्रत्येक मन्त्रालय तथा विभाग से यह कहा जाएगा कि यह अपने निजी 'स्थापना व ओ० तथा एम० कार्य० (Establishment and O and M Work) का भार सभालने के लिए एक अधिकारी नियुक्त करे (जो कि मुख्यत उपसचिव के स्तर का होना चाहिए)। ये अधिकारी परस्पर एक दूसरे के और 'सगठन तथा प्रणाली सभाग' के निर्देशक (Director) के निकट सम्पर्क मे रखे जायेंगे। साथ ही साथ एक अध्ययन मण्डली (Study group) तथा प्रगतिशील एव आयोजनाबद्ध क्रियाओ अथवा कार्यवाहियो को सम्पन्न करने के लिए एक कार्य-साधक दल का निर्माण करेंगे। प्रत्येक क्रिया के निश्चित तथा सीमित उद्देश्य होंगे। इस प्रकार की जाने वाली क्रियाओ अथवा कार्यवाहियो की सम्पूर्ण शृ खला 'ओ० तथा एम० कार्य' मे केवल प्रशिक्षण ही प्रदान नही करेगी अपितु उससे कार्य-कुशलता लाने की दिशा मे ठोस प्रगति भी होगी।

(६) प्रथम कार्यवाही के रूप मे प्रत्येक 'ओ० तथा एम० अधिकारी' से कहा जायेगा कि वह अपने निजी मन्त्रालय/विभाग मे अनुभाग (Section) छाँट ले और कार्य-सम्पादन की गति तथा कोटि (Quality) मे दोषो की छानबीन करने के लिये उसका पूर्ण रूप से निरीक्षण करे। फिर प्रत्येक अधिकारी अपने-अपने निरीक्षण सम्बन्धी विचारो का विवरण सम्पूर्ण मण्डली के पास भेजेगा। इस प्रकार सूचनाओ के आदान-प्रदान के फलस्वरूप पहले निरीक्षण मे निगाह से चूक जाने वाले दोष भी अच्छी प्रकार प्रकाश मे आ जायेंगे।

(७) यह हो सकता है कि कार्य-सम्पादन तथा उसकी गति मे पाये जाने वाले अनेक दोष प्रचलित सगठन तथा कार्यविधियो (Procedures) की कमियो के कारण न हो बल्कि केवल सम्बन्धित कर्मचारियो की इस असफलता के कारण हो कि उन्होंने कार्य उस प्रकार नही किया जिस प्रकार कि वह होना चाहिए था। ओ० तथा एम० अधिकारी प्रचलित सगठन तथा कार्यविधि मे कोई नाटकीय परिवर्तन किये बिना सर्वप्रथम कार्य-सम्पादन की गति मे सुधार करने के लिये उपाय तथा साधनो के सुझाव देंगे। इन सुझावो पर मण्डली (Group) द्वारा भी विचार-विमर्श

किया जायेगा। फिर जो सुझाव 'संगठन तथा प्रणाली सभाग' (O and M Division) द्वारा अनुमोदित कर दिये जायेंगे उन्हे उन अनुभागो (Sections) मे, जिनमे कि सर्वप्रथम दोष पाये गये थे, मार्गदर्शक प्रायोजनाओ (Pilot projects) के रूप मे लागू कर दिया जायेगा। बाद मे, उनके परिणामो पर फिर विचार किया जायेगा और फलीभूत सिद्ध होने वाले सुझावो को वैसे ही दोषो से युक्त अन्य अनुभागो तथा शाखाओ मे लागू कर दिया जायेगा।

(८) इस कार्यवाही के बीच प्रत्येक 'ओ॰ तथा एम॰ अधिकारी' (O and M Officer) आने तथा जाने वाली अन्तर्विभागीय निर्देशो अथवा हवालो (References) की गणना तथा सूक्ष्म-परीक्षण करेगा। इससे सभी सम्बन्धित अधिकारियो को उन देरियो का ज्ञान होगा जोकि वर्तमान मे आवश्यकता से अधिक तथा व्यर्थ के हवालो के आवागमन के कारण उत्पन्न होती हैं।

(९) पृथक्-पृथक् अनुभागो (Sections) की कार्य-प्रणाली के अध्ययन से, ओ॰ तथा एम॰ अधिकारी को सम्पूर्ण रूप मे मन्त्रालय/विभाग की ही कार्य-प्रणाली का आलोचनात्मक परीक्षण करने का अवसर प्राप्त होगा। इससे कार्य-सम्पादन की गति तथा किस्म मे पाये जाने वाले वे दोष प्रकट हो सकते है जोकि संगठन तथा उसकी प्रणालियो की कमियो के कारण उत्पन्न हो जाते हैं और विशेषकर, पत्र-व्यवहार की व्यवस्था, फाइलिंग की पद्धति, तथा कागजो का आवागमन आदि के कारण। इससे यह बात भी प्रकाश मे आ सकती है कि एकरूपता (Uniformity) के लाभो की प्राप्ति के प्रयत्न मे हमने उन लाभो को भी खो दिया जो कि उस समय प्राप्त होते जबकि पृथक्-पृथक् मन्त्रालयो को यह अनुमति दे दी जाती है कि वे अपने-अपने संगठन तथा कार्यविधियो मे अपने निजी कार्यों तथा आवश्यकताओ के अनुरूप हेर-फेर कर सकते है। ओ॰ तथा एम॰ अधिकारियो से यह कहा जायेगा कि वे सुधारात्मक उपायो के सुझाव दें। बाद मे फिर मण्डली (Group) तथा ओ॰ तथा एम॰ सभाग द्वारा इन पर विचार-विमर्श किया जायेगा और उपयुक्त पाये जाने वाले मार्गदर्शक प्रयोगो को व्यवस्थित कर लिया जायेगा।

(१०) सरकार के संगठन तथा कार्यविधि (Organisation and Prcedure) को सम्पूर्ण रूप मे प्रभावित करने वाले बड़े-बड़े मसले, जैसे कि उत्तरदायित्व और सत्ता का विस्तार किये बिना समन्वय कायम करना, अन्तर्विभागीय विवादो का निबटारा, और प्रत्येक मन्त्रालय के अन्तर्गत वित्त (Finance), कार्मिक-वर्ग (Personnel) तथा पूर्ति (Supply) के मामलो मे आन्तरिक क्षमता तथा सत्ता वृद्धि करना आदि, केन्द्रीय ओ॰ तथा एम॰ सभाग (Central O and M Division) द्वारा साथ ही साथ अपने हाथ मे लिये जायेंगे।

(११) प्रत्येक स्तर पर ओ॰ तथा एम॰ अधिकारियो को संगठन तथा प्रणाली सभाग (O and M Division) के निर्देशक तथा स्टॉफ का पूर्ण सहयोग तथा मार्ग-दर्शन प्राप्त होगा और उनको अपने साथियो के साथ टिप्पणियो (Notes) का मिलान

करने के अनेक अवसर भी प्राप्त होगे। इसके साथ ही साथ, उन्हे अपने निजी सचिवो (Secretaries) के पूर्ण सहयोग तथा विश्वास (Confidence) की भी आवश्यकता होगी। अधिक कार्य-कुशलता प्राप्त करने का आन्दोलन केवल तभी सफल हो सकता है जबकि उसका सचालन सयुक्त एव सहकारितापूर्ण प्रयत्नो द्वारा किया जायेगा और सभी मन्त्रालयो (Ministries) मे सभी पदक्रम के स्टॉफ को सुझाव देने के लिए प्रोत्साहन दिया जायेगा तथा उनको पर्याप्त महत्व भी प्रदान किया जायेगा। जो अधिकारी विशिष्ट योग्यता का प्रदर्शन करेंगे उन्हे चुन लिया जायेगा और उनको ओ० तथा एम० कार्य मे और अधिक प्रशिक्षण देने के अवसर प्रदान किये जायेंगे जिससे कि इस क्षेत्र मे ज्ञान तथा अनुभव के भण्डार का निर्माण हो सके।

मन्त्रि-परिषद् सचिवालय (Cabinet Secretariat) मे मार्च १९५४ मे केन्द्रीय सगठन तथा प्रणाली सभाग की स्थापना की गई थी, किन्तु प्रत्येक मन्त्रालय विभाग से यह आशा की गई थी, कि वह स्वय ही 'सगठन तथा प्रणाली कार्य' (O and M Work) मे आन्तरिक क्षमता का विकास करे। केन्द्रीय सगठन तथा प्रणाली सभाग का कार्य तो "इस दिशा मे नेतृत्व प्रदान करना, समन्वय कायम करना तथा ज्ञान एव अनुभव के एक सामान्य कोष का निर्माण करना था।"

'भारत मे 'संगठन तथा प्रणाली' संगठन'
(Organisation of O & M in India)

सगठन तथा प्रणाली (ओ० तथा एम०) का एक निर्देशक (Director) होता है जो कि भारत सरकार के स्थापना अधिकारी (Establishment Officer) तथा स्वराष्ट्र मन्त्रालय (Ministry of Home Affairs) मे सयुक्त सचिव (Joint Secretary) के रूप मे भी कार्य करता है। निर्देशक की सहायता के लिए एक उप-निर्देशक (Deputy Director) तथा एक अन्य अधिकारी होता है जिसे "निर्देशक का सहायक" (Assistant to the Director) कहा जाता है। निर्देशक मन्त्रालयो के अनौपचारिक (Informal) दौरे करता है और उनमे अपनाई जाने वाली कार्य-विधि का अध्ययन करता है। वह छोटे-मोटे मामलो के सम्बन्ध मे तो मौके पर (On the spot) ही परामर्श दे सकता है। सगठन तथा प्रणाली कार्य (O and M Work) विभिन्न मन्त्रालयो तथा विभागो (Departments) मे स्थापित की गई 'सगठन तथा प्रणाली इकाइयो' (कोष्ठो) (O and M Units cells) द्वारा सचालित किया जाता है। 'सगठन तथा प्रणाली इकाई' उप-सचिव (Deputy Secretary) के पदक्रम के एक अधिकारी के कार्यभार के अन्तर्गत अपना काम करती है। यह अधिकारी अपने अन्य कर्तव्यो के साथ ही साथ ओ० तथा एम० अधिकारी के रूप मे भी कार्य करता है। सन् १९५७-५८ के अन्त तक ओ० तथा एम० कोष्ठो (O and M Cells) की सख्या बढकर ६० तक पहुँच गई थी। सन् १९५७ मे कुछ ऐसी विशिष्ट समस्याओ की जाच पडताल करने के लिए, जिनकी पेचीदगियो के कारण

उनके विस्तृत परीक्षण की आवश्यकता थी, एक विशेष कार्याधिकारी (Officer on special duty) की नियुक्ति की गई थी। सगठन तथा प्रणाली सभाग का निर्देशक समय-समय पर विभिन्न मन्त्रालयो अथवा विभागो के ओ० तथा एम० अधिकारियो की सयुक्त बैठको (Meetings) का आयोजन करके उनके साथ विचारो तथा अनुभवो का आदान-प्रदान करता है। ओ० तथा एम० सभाग का उपनिर्देशक विभिन्न मन्त्रालयो अथवा विभागो के अनौपचारिक दौरे करता है तथा इस बात का पता लगाने के लिए, कि निर्धारित कार्यविधियो का कहाँ तक पालन किया जा रहा है, जहाँ-तहाँ आकस्मिक देखभाल व जाच-पडताल करता है और ओ० तथा एम० कार्य मे सम्बन्धित अनेक समस्याओ के बारे मे परामर्श देता है।

सगठन तथा प्रणाली सभाग ने सन् १९५४-५५ के अपने प्रतिवेदन (Report) मे अपने कार्यों की योजना की रूपरेखा बनाई। इसके उद्देश्य ये है

(१) सभी सम्बन्धित विभागो, कार्यालयो तथा मन्त्रालयो को उनमे पाई जाने वाली अकुशलताओ तथा उनके सुधार की आवश्यकता एव क्षेत्र के बारे मे सचेत रखना।

(२) काम को निबटाने मे सम्बन्धित तथ्यो (Facts) का पता लगाना तथा यह देखना है कि वास्तव मे गलती क्या है और कहाँ है, काम मे देरी होने के कारणो की छानबीन करना और यह देखना कि वे कौन से तत्व है जो कि काम मे कुशलता व दक्षता लाने मे बाधक बनते हैं।

(३) सुधार के लिए समुचित उपाय बताना तथा उन्हे क्रियान्वित करना।

ओ० तथा एम० द्वारा भारत सरकार के कार्यालयो के कार्यों की प्रणालियो का अध्ययन किये जाने से यह प्रकट हुआ कि भारतीय प्रशासन मे वास्तविक दोष सगठन के कारण नही है बल्कि प्रचलित रीतियो के अनुसार समुचित रूप से काम करने मे असफल रहने के कारण है। इसके प्रथम वार्षिक प्रतिवेदन (Report) मे कहा गया कि "सम्पूर्ण रूप मे, असफलता प्रचलित सगठन तथा कार्यविधियो के कारण इतनी नही है बल्कि प्रचलित व्यवस्था के अनुसार जिस प्रकार कार्य होना चाहिये उस प्रकार मे कार्य करने मे सभी के सफल न हो सकने के कारण है।" यह निष्कर्ष किसी एक मन्त्रालय का सम्पूर्ण रूप मे परीक्षण करने के उपरान्त नही निकाला गया है बल्कि पृथक्-पृथक् प्रत्येक अनुभाग (Section) के उस निरीक्षण द्वारा इस निष्कर्ष पर पहुँच गया है जो कि यह देखने के लिए किया गया था कि प्रचलित कार्यविधि (Existing proecdure) का बुद्धिमत्ता तथा परिश्रम के साथ अनुसरण किया जा रहा है या नही और कार्य की गति तथा किस्म मे पाये जाने वाले दोपो का मूल स्रोत कहाँ है।"[1]

1 प्रथम वार्षिक प्रतिवेदन, १९५४-५५, पृष्ठ २.

ओ० तथा एम० के अध्ययनो के द्वारा निम्नलिखित महत्वपूर्ण दोष प्रकाश मे आये हैं —

(१) निर्धारित कार्यविधि तथा अनुदेशो (Instructions) का पालन न होना।

(२) नियतकालीन निरीक्षणो का तथा उसके परिणामस्वरूप प्रभावपूर्ण नियन्त्रण का अभाव।

(३) टाइप करने मे तथा केन्द्रीय रजिस्ट्रियो के प्रेषण मे देरियाँ तथा पिछड़ा हुआ काम (Arrears)।

(४) मन्त्रालयो तथा सलग्न कार्यालयो (Attached offices) मे टिप्पणी लेखन (Noting) की पुनरावृत्ति तथा कार्यालयो मे देरियाँ (Delays)।

(५) समाप्त किये जाने योग्य अन्तर्विभागीय निर्देश अथवा हवाले।

(६) समय-सूचियो (Time-schedule) का पालन न होना, यहाँ तक कि बजट अनुमानो जैसे मामलो मे भी।

(७) लेखा कार्यालयो (Accountant offices) मे देरियाँ।

(८) चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियो द्वारा कागजो के ले जाने मे देरिया।

(९) चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियो के वेतन क्रम का परिपालन न होना।

(१०) आवश्यक सुविधाओ, समुचित स्थान तथा उपयुक्त कार्य की दशाओ का अभाव।

(११) टाइप राइटरो, स्टेशनरी और अन्य सामग्री का अभाव।

ओ० तथा एम० इन कमियो की ओर सम्बन्धित मन्त्रालयो अथवा विभागो का ध्यान दिलाता है और वे उन्हे दूर करने का प्रयत्न करते हैं।

विशिष्ट पुनर्गठन इकाई
(Special Re-organisation Unit) :

सन् १९५२ मे एक 'विशिष्ट पुनर्गठन इकाई' की स्थापना की गई थी जिसका कार्य था मन्त्रालयो की कर्मचारी-वर्ग की आवश्यकताओ पर पुनर्विचार करना तथा कार्यकुशलता व मितव्ययता लाने के लिए उनमे आवश्यक परिवर्तनो की सिफारिश करना। जाच पडताल के लिए कार्य के अध्ययन की तकनीक अपनाई गई है जिसमे निम्न बातें सम्मिलित हैं—

(क) सगठनात्मक ढाचे का, सत्ता के हस्तातरण व नियन्त्रण के क्षेत्र आदि का अध्ययन।

(ख) कार्यवाहियो का विश्लेषण (Analysis)।

(ग) जहाँ भी सम्भव हो, काम के सरलीकरण (Simplification) तथा प्रमाणीकरण (Standardization) का कार्यक्रम।

(घ) कार्य-सम्पादन के स्तरो का विकास और उसी के अनुसार कर्मचारी-वर्ग की आवश्यकताओ मे वृद्धि। यह इकाई अपना एक अनुसधान विभाग भी रखती है और ओ० तथा एम० सभाग के घनिष्ठ सहयोग से कार्य करती है।

निष्कर्ष
(Conclusion)

भारत मे ओ० तथा एम० अभी अपने शैशव मे है अत उसकी प्रभावपूर्णता के विषय मे कुछ भी कहना अभी जल्दबाजी करना है। कुछ थोडे से वर्षों मे किसी भी प्रशासकीय यन्त्र का पूर्णत शुद्धीकरण तथा पुनर्गठन नही हो सकता। किन्तु एक तथ्य की ओर अवश्य सकेत किया जा सकता है कि भारत मे ओ० तथा एम० अपनी अधिकाश शक्तियो, कार्य की विधियो अथवा प्रणालियो पर ही केन्द्रित करता है और सगठन की ओर कम ध्यान देता है। इसको समस्या के प्रति विस्तृत दृष्टिकोण अपनाना चाहिये और अपने आपको केवल कार्य की प्रणालियो (Methods of work) से ही नही बल्कि प्रशासकीय सगठन से भी सम्बन्धित रखना चाहिये। श्री एस० बी० बापत ने ओ० तथा एम० के कार्यो की इन शब्दो मे व्याख्या की है। "सामान्य भाषा मे इसका उद्देश्य है बुद्धिमत्तापूर्ण तथा आलोचनात्मक दृष्टि से केवल इस बात की ओर ही ध्यान नही देना कि क्या किया गया है वलिक इस पर भी कि यह कैसे किया गया है और समय, श्रम व द्रव्य के रूप मे किस कीमत मे किया गया है, प्रशासन यन्त्र की रचना तथा इसके कार्य-सचालन की प्रक्रियाओ (Working processes) की ओर भी ध्यान देना, केवल उसके परिणाम की ओर ही नही।"[1]

सबसे अधिक महत्वपूर्ण सगठनात्मक मामला, जिस पर भारत मे तत्काल ध्यान दिये जाने की आवश्यकता है, सत्ता के सौंपने की समस्या का है। भारतीय प्रशासन ऊपर की ओर भारी है। कोई भी अधिकारी अपने अधीनस्थो (Subordinates) को सत्ता सौपना नही चाहता। अत यह समझना बडा कठिन है कि कोई भी प्रशासन विशेषकर भारतीय प्रशासन, सत्ता तथा उत्तरदायित्व के समुचित हस्तान्तरण अथवा प्रत्यायोजन (Delegation) के बिना कैसे कुशलतापूर्वक, कार्य कर सकता है। सगठन तथा प्रणाली सभाग को अपना अधिक से अधिक ध्यान सत्ता के सौंपने तथा लालफीताशाही के दोषो की ओर देना चाहिए जो कि भारत मे सबसे बडी सगठन तथा कार्यविधि सम्बन्धी बुराइया हैं।[2]

---

1 S B Bapat First Director of the Central O & M Division, in Indian Journal of *Public Administration*, Delhi Vol 1, No 1 Jan—March, 1955, page, 61

2 Also refer to S B Bapat, "O & M in the Government of India" Indian Journal of Public Administration, New Delhi Jan—March 1955, Annual Reports of O & M Division, S P Aiyar, O & M in the Government of India, Indian Journal of Political Science, Oct Dec, 1959, pp 358-70, A Avasthi 'A New Perspective for 'O & M' *The Indian Journal of Public Administration* Vol V, N 4 Oct—Dec 1959 pp 427-441

१३

भारत में नियोजन तथा योजना आयोग

(Planning and Planning Commission in India)

आज का युग नियोजन का युग है। नियोजन मनुष्य की सभी गतिविधियो, व्यक्तिगत व सामाजिक, की एक सर्वव्यापी विशेषता है। प्रश्न उठता है नियोजन क्या है ? साधारण भाषा मे नियोजन का अर्थ है उचित रीति से, सोच-विचार कर पग उठाना। दूसरे शब्दो मे इसका अर्थ है यह तय करना कि क्या कार्य किया जाये और कैसे किया जाये। फेयल के अनुसार नियोजन का अर्थ है 'पूर्व दृष्टि' (Prevision), इस से अभिप्राय आगे की ओर देखना है जिससे यह स्पष्ट पता चल जाये कि क्या-क्या काम किया जाना है। प्रत्येक वह क्रिया नियोजन क्रिया (Planned activity) कहलाती है जो दूरदर्शिता, विचार-विमर्श तथा उद्देश्यो एव उनकी प्राप्ति हेतु प्रयुक्त होने वाले साधनो की स्पष्टता पर आधारित हो। नियोजन से आशय किसी भी कार्य को करने से पूर्व निर्णय पर पहुँचना है, बजाय इसके कि काम हो चुकने के बाद पुर्नविचार तथा भूल-सुधार किया जाये।[1] किसी भी सामूहिक क्रिया (Group action) मे नियोजन का अर्थ है व्यक्तिगत तथा सयुक्त प्रयत्नो का इस प्रकार बुद्धिमत्ता तथा दूरदर्शिता से निर्देशन तथा नियमन (Regulation) कि जिससे प्राप्त होने वाला सम्पूर्ण प्रतिफल पहले की अपेक्षा अधिक तथा श्रेष्ठ हो। नियोजन भावी कार्यों के लिये एक सुदृढ आधार बनाने की प्रक्रिया है। यह इस बात का एक सुव्यवस्थित अध्ययन है कि वर्तमान घटनाओ का भविष्य के लिये क्या महत्व है, भविष्य मे किन-किन सामाजिक आवश्यकताओ की पूर्ति करनी होगी तथा वर्तमान समय मे भविष्य की समस्याओ को सरल बनाने के लिये क्या-क्या प्रबन्ध किये जा सकते हैं। नियोजन मे वर्तमान को दृष्टिगत रखते हुए भविष्य के विषय मे सोचना आवश्यक है। दूसरे शब्दो मे नियोजन कदम उठाने के लिये आवश्यक तैयारी का नाम है।[2]

---

1 According to Urwick "Planning is fundamentally an intellectual process, a mental predisposition to do things in an orderly way, to think before acting, and to act in the light of facts rather than of guesses It is the antithesis of the gambling, the speculative tendency " L. Urwick, *The Elements of Administration*, Harper and Brothers, N Y , 1943, Page 33

2 M. John D Millett observes "Planning is the process of determining the objectives of administrative effort and of devising the means calculated to achieve them , planning is preparation for action The word 'planning, in

(counted)

प्रत्येक ऐसे व्यक्ति को, जो नियोजन कार्य मे सलग्न है, बहुत से मोटे-मोटे काम करने पडते हैं। नियोजन मे प्रथम पग है लक्ष्यो व उद्देश्यो का निर्धारण। किसी अज्ञात वस्तु का नियोजन नही किया जा सकता। यदि उद्देश्य या ध्येय ही स्पष्ट नही है तो नियोजन किस बात का ? इसलिये प्रथम चरण मे तो यह तय करना है कि किया क्या जाना है, अन्तिम उद्देश्य तथा लक्ष्य क्या है ? जब यह निश्चित हो जाये तो दूसरा चरण आता है। वह यह तय करना है कि निर्धारित लक्ष्यो तथा उद्देश्यो की प्राप्ति के लिये साधन कौन से प्रयुक्त किये जाये, कार्य किस प्रकार किया जाये। इस प्रश्न का उत्तर खोजने के लिये उपलब्ध साधनो तथा स्रोतो का मूल्याकन करना पडता है। वित्त, मानवीय शक्ति (Man power) तथा निपुणता (Skill) के रूप मे उपलब्ध साधनो को दृष्टिगत रखकर काम को कर्मचारी-वर्ग मे बाटना होता है। वाछित उद्देश्यो की प्राप्ति के लिये कार्यविधिया तथा प्रक्रियाएँ करनी पडती हैं।' कर्मचारियो के कर्त्तव्यो तथा दायित्वो की स्पष्ट परिभाषा करनी पडती है। नियोजन की प्रक्रिया लक्ष्यो तथा साधनो के निर्धारण के साथ ही समाप्त नही हो जाती। कार्य की प्रगति की जाच तथा उसका मूल्याकन करना भी आवश्यक है, यह देखने के लिये कि नियोजन से वाछित फल प्राप्त भी हो रहे हैं कि नही। अत प्राप्तियो को मापने के लिये माप करने वाले साधनो (Yard-sticks) का निर्माण तथा विकास करना होता है। इस प्रकार की मापन-क्रिया (Evoluation) नियोजन के दोषो, यदि कोई है, की ओर ध्यान अर्कषित करती है तथा गुणात्मक व मात्रात्मक (Qualitative and quantitative) श्रेष्ठता की प्राप्ति के लिये सबको प्रेरित करती है। इसके अतिरिक्त नियोजन सुपरिवर्तनशील, प्रगतिशील तथा परिस्थितियो के अनुकूल ढलने योग्य होना चाहिये। अन्यथा नियोजन का मूल उद्देश्य ही समाप्त हो जायेगा। मूल्याकन या मापन-क्रिया भावी सशोधनो तथा परिवर्तनो की दिशा निर्धारित करने के लिये आवश्यक है। नियोजन मे नये-नये अनुभवो के अनुसार परिवर्तन के लिये स्थान होना चाहिये। इसलिये मूल्याकन नियोजन प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण चरण है। सेक्लर हडसन (Seckler Hudson) ने सुव्यवस्थित नियोजन के निम्न छ चरण बताये हैं—

(१) यथासम्भव समस्याओ की सोच-विचार कर व्याख्या तथा उनका क्षेत्र निर्धारण,

---

and of itself is 'neutral', it implies no particular set of goals and no one special type of procedure, dictatorial or otherwise Planning is simply the endeavour to apply foresight to human activity, planning anticipates desired results and prepares the steps necessary for their realization " *Management in the Public Service* page 55, also refer to his another volume *The Process and Organization of Government Planning*, N Y Columbia University Press, 1947 F W Taylor in *The Principles of Scientific Management* (N Y Harper, 1916) refers to the importance of Planning in Management, page 26

(२) समस्याओं से सम्बन्धित समस्त जानकारी की प्राप्ति तथा उसका अध्ययन ,

(३) समस्याओ के निराकरण के लिये उपलब्ध तथा भिन्न-भिन्न विधियो तथा मार्गों का ज्ञान ,

(४) व्यावहारिक गतिविधियो से एक या एक से अधिक मार्गों तथा विधियो का अस्थायी प्रयोग द्वारा परीक्षण ,

(५) अनुभव, अनुसधान तथा नवीन प्रवृत्तियो के प्रकाश मे परिणामो का मूल्याकन , तथा

(६) समस्याओ एव परिणामो पर पुर्नविचार तथा, यदि आवश्यक हो तो, पुर्ननिर्णय ।[1]

उद्देश्यो का निर्धारण, क्रियान्वन, मूल्याकन तथा उन पर अनुसधान इत्यादि इस प्रकार नियोजन के कुछ महत्वपूर्ण अग है ।[2]

नियोजन का उद्देश्य समाप्त हो जायेगा यदि नियोजनकर्त्ता का दृष्टिकोण कठोर तथा कट्टर है । एक अच्छी योजना के लिये सुपरिवर्तनशील तथा खुले मानसिक विचारो की आवश्यकता है। साधारणतया एक अच्छी योजना मे निम्नाकित विशेषताएँ होनी चाहिये—

(१) वह सुस्पष्ट उद्देश्यो पर आधारित होनी चाहिए ।

(२) वह सरल होनी चाहिए ।

(३) उसमे कार्यों के समुचित विश्लेषण (Analysis) तथा वर्गीकरण (Classification) की व्यवस्था होनी चाहिए ।

(४) वह लचीली (Flexible) होनी चाहिए ।

(५) वह सन्तुलित होनी चाहिए ।

(६) उसमे नयी सत्ताओ (Authorities) तथा साधनो के प्रयोग से पूर्व उपलब्ध (Available) साधनो के प्रयोग पर बल होना चाहिए ।[3]

नियोजन के प्रकार
(Kinds of Planning)

नियोजन के कई प्रकार होते है। एक **अन्तर्राष्ट्रीय नियोजन** है। इसका सम्बन्ध प्रशुल्को (Tariffs) की कमी, डाक सेवाओ के प्रशासन, युद्ध की रोकथाम तथा विश्व के विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रो के सन्तुलित आर्थिक विकास से है। आज के

---

1 Seckler-Hudson, C *Organisation and Management*, Washington, D C, The American University Press, 1957, page 106

2 Also refer to H S, Person 'Research and Planning as Functions of Administration and Management', Public Administration Review (U S A) Vol I, Autumn, 1940, pages 65—73, W Brooke Graves, *Public Administration in a Democratic Society*, (N Y) Heath and Co, 1960, pages 469—489

3 Refer to L Urwick, *op. cit*, Chapter III, 'Planning', pages 26—34

युग मे सयुक्त राष्ट्र सघ (U N O) की बहुत सी सस्थाये तथा विशिष्ट अभिकरण (Agencies) अन्तर्राष्ट्रीय नियोजन मे सलग्न है। नियोजन का दूसरा महत्वपूर्ण किन्तु विवादग्रस्त प्रकार **आर्थिक नियोजन** है। आर्थिक विकास के नियोजन मे अभिप्राय है राज्य द्वारा राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था का निर्देशन तथा नियमन (Regulation)। उत्पादन की वृद्धि तथा उत्तम वितरण व्यवस्था की आवश्यकताओ को देखते हुये राष्ट्रीय आर्थिक नियोजन आवश्यक हो गया है क्योकि अनेक क्षेत्रो मे द्रुत-गति से आर्थिक विकास तथा धन के श्रेष्ठतर वितरण के लिये राज्य का हस्तक्षेप अब उचित सिद्ध हो गया है। बहुत से राष्ट्र अपने सीमित तथा कठिनता से उपलब्ध होने वाले स्रोतो का अधिकाधिक लाभ उठाने के लिये अब आर्थिक नियोजन का आश्रय ले रहे हैं। एक तीसरे किस्म का नियोजन **नगर नियोजन** (City planning) कहलाता है। यह आजकल सर्वत्र लोकप्रिय हो रहा है। तीव्र विस्तार तथा बढती हुई जनसख्या को देखते हुए यह आवश्यक हो गया है कि नगरो का सुरुचिपूर्ण तथा स्वस्थ नियोजन हो। इस प्रकार के नियोजन का उद्देश्य शिक्षा, स्वास्थ्य, व्यवसाय तथा मनोरजन की आवश्यकताओ के अनुकूल नगरो मे सडको, नालियो, चिकित्सालयो, दफ्तरो, मकानो तथा अन्य सार्वजनिक भवनो का निर्माण करना है।

नियोजन का चौथा प्रकार प्रशासनिक या प्रशासकीय नियोजन है। यह वह साधन है जिसका प्रयोग प्रशासक-वर्ग भावी कार्यक्रमो के निर्माण के लिए पिछले अनुभवो को दृष्टिगत रखते हुए करता है। प्रत्येक सरकारी सगठन मे क्रियाओ का समुचित रूप से नियोजन किया जाता है तथा सगठन के लक्ष्यो की प्राप्ति के लिए कार्यविधियो तथा कार्यपद्धतियो का निर्धारण किया जाता है। कोई प्रशासन उस समय तक कार्यकुशल नही हो सकता जब तक कि वह अपनी क्रियाओ एव गतिविधियो का नियोजन नही करता। प्रशासकीय नियोजन अनुसधान तथा तथ्यो की खोज पर आधारित होता है। तथ्यो एव आकडो के सग्रह के पश्चात् कार्यों की योजना तैयार की जाती है तथा उद्देश्यो की पूर्ति के लिये सर्वश्रेष्ठ विधियाँ अपनाई जाती हैं। रोबर्ट मोसेस (Robert Moses) के अनुसार, "किसी भी प्रशासक की परीक्षा इस बात से होती है कि वह अपने कार्यों के सभी परिणामो पर विचार करता है या नही।" नियोजन सभी परिणामो को स्पष्ट कर देता है। निर्धारित उद्देश्यो को दृष्टिगत रखते हुए उन परिणामो का मूल्याकन किया जा सकता है।

लोक प्रशासन मे 'नीति नियोजन' तथा 'कार्यक्रम नियोजन' मे भेद किया जाता है। नीति नियोजन (Policy Planning) मे प्रशासनिक गतिविधियो के लिए मोटे रूप मे कुछ सामान्य उद्देश्य तथा लक्ष्य निर्धारित कर दिये जाते हैं। लोक प्रशासन की गतिविधियो की विषय वस्तु तथा उनका क्षेत्र नीति नियोजन मे निर्धारित किया जाता है। नीति नियोजन का कार्य व्यवस्थापिका तथा मुख्य कार्यपालिका का होता है। निस्सन्देह प्रशासक-वर्ग की नीति निर्धारण मे हिस्सा लेता है किन्तु नीति की मोटी-मोटी रूपरेखा राजनीतिज्ञो द्वारा व्यवस्थापिका या कार्यपालिका मे निर्धारित

होती है । दूसरी ओर कार्यक्रम नियोजन का अर्थ है निर्धारित नीति के आधार पर क्रियाओ को तय करना । दूसरे शब्दो मे कार्यक्रम का अर्थ इस प्रश्न पर ध्यान देना है "सार्वजनिक नीति मे निहित लक्ष्यो की प्राप्ति के लिए कौन-कौन से विशिष्ट कदम उठाये जाने चाहियें ?"[1] लोक नीति के श्रेष्ठतम क्रियान्वन के लिए प्रशासक-वर्ग को आवश्यक कदमो के विषय मे सोचना तथा उनका नियोजन करना पडता है ।

भारत मे आर्थिक नियोजन
(Economic Planning in India)

स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् भारत की राष्ट्रीय सरकार का प्रथम कार्य देश से निर्धनता तथा विपन्नता की स्थिति दूर करना एव उन करोडो व्यक्तियो का जीवन-स्तर सुधारने के लिए प्रयास करना रहा है जो असहाय जीवन व्यतीत करने के अभ्यस्त हो चुके थे । निर्धनता, बेरोजगारी तथा भुखमरी की समस्याओ का सामना करने के लिए आर्थिक नियोजन का मार्ग अपनाया गया है । इससे पूर्व विश्व ने आर्थिक नियोजन को सर्वाधिकारवादी (Totalitarian) देशो की विशेषता के रूप मे ही देखा था । साधारणतया लोगो का यह विश्वास था—और यह दुर्भाग्य का विषय था—कि आर्थिक नियोजन मे जनता के जीवन का सैनीकरण प्रशासनिक केन्द्रीय-करण तथा व्यक्तिगत स्वाधीनता का अभाव अनिवार्य रूप से निहित है । यह धारणा बन गई थी कि जोर-दबाव तथा बलपूर्वक नियन्त्रण के बिना आर्थिक नियोजन किया ही नही जा सकता । लोकतन्त्र, इस धारणा के समर्थको के अनुसार, इस कार्य के लिए अनुपयुक्त है क्योकि यह सहमति पर आधारित होता है तथा इसमे तर्क-वितर्क एव प्रोत्साहन का प्रयोग किया जाता है ।

भारत ही विश्व का एक ऐसा महत्वपूर्ण देश है जिसने सर्वप्रथम लोकतन्त्र तथा व्यक्तिगत स्वाधीनता युक्त नियोजन के आधार पर अपनी अर्थ-व्यवस्था के पुनरुद्धार का बीडा उठाया है । यह एक ऐसी चुनौती तथा ऐसा प्रयोग है कि इसकी सफलता-असफलता पर न केवल भारत मे बल्कि सम्पूर्ण एशिया तथा अफ्रीका मे लोकतन्त्र का भविष्य टिका हुआ है । भारत इस समय लोकतन्त्रीय नियोजन मे सलग्न है तथा इसके परिणामो पर ही भारत के आर्थिक सुधार तथा सामाजिक एव भौतिक पुर्ननिर्माण के लिए किये जा रहे प्रयासो की सफलता-असफलता निर्भर है । भारतीय राजनीति के एक विदेशी पर्यवेक्षक के अनुसार "भारत सरकार की आर्थिक योजनाओ की सफलता-असफलता केवल ४० करोड व्यक्तियो के लिए ही जीवन-मरण का प्रश्न नही है बल्कि यह बात अर्ध-विकसित ससार के प्रत्येक भाग मे लोगो के दिमागो मे उत्पन्न होने वाले इस प्रश्न के निर्णायक उत्तर के रूप मे व्यापक स्तर पर स्वीकार की जायेगी कि क्या तीव्र आर्थिक विकास के एक साधन के रूप मे साम्यवाद का कोई व्यावहारिक विकल्प (Alternative) है ? भारत इस समय लोकतन्त्रीय

---

1 For its distinction refer to John D Millett, *op cit*, 56-59

नियोजन के एक ऐसे प्रयोग मे सलग्न है जिसका व्यापक भावी महत्व है। अत जो यह विश्वास करते हैं या भविष्य मे जिनके ऐसा विश्वास करने की सम्भावना है कि साम्यवाद ही प्रगति का एकमात्र साधन नही है या जो ये सोचते हैं कि तीव्र आर्थिक विकास के लिए साम्यवाद जो कीमत माँगता है वह बहुत अधिक है वे सब भारत की पचवर्षीय योजनाओ की ओर उतनी ही आशाभरी दृष्टियो मे देख रहे है जितनी आशा से उनमे से कुछ व्यक्ति युद्धोत्तरकाल की रूसी योजनाओ की ओर देखा करते थे।"[1]

भारत मे लोकतन्त्र का भविष्य तभी उज्जवल होगा जव यहाँ से निर्धनता, बीमारी, अज्ञान तथा निरक्षरता जैसे काले धब्बे दूर होगे। लोकतन्त्र को भारत मे स्वतन्त्रता, समानता, न्याय तथा भ्रातृत्व के आधार पर एक नये समाज का निर्माण करना है।

भारत मे आर्थिक नियोजन के निम्न उद्देश्य है—

"मूल उद्देश्य लोकतत्रीय तथा कल्याणकारी कार्यविधियो द्वारा तीव्र गति से प्रगति करना है।" उपरोक्त मूल उद्देश्य को दृष्टिगत रखकर निम्न मुख्य उद्देश्य निर्धारित किये गये—

(१) राष्ट्रीय आय मे इतनी वृद्धि करना जिससे देश का जीवन-स्तर ऊँचा उठ सके।

(२) मूल तथा भारी उद्योगो के विकास पर विशेष बल देते हुए देश का तीव्र गति से औद्योगीकरण,

(३) रोजगार सम्बन्धी सुविधाओ एव सेवाओ का विस्तार, तथा

(४) आय और धन की विषमताओ का निराकरण तथा आर्थिक शक्ति का पहले से अधिक समान वितरण।

ये सब उद्देश्य परस्पर सम्बद्ध हैं तथा इनकी प्राप्ति एक सन्तुलित ढग से ही की जा सकती है।

रहन-सहन का निम्न या स्थिर स्तर, बेरोजगारी तथा कम रोजगारी तथा कुछ सीमा तक औसत एव अधिकतम आमदनियो मे अन्तर, ये सब एक कृषि-प्रधान अर्थ-व्यवस्था के आधारभूत अल्प-विकास के लक्षण हैं। तीव्र औद्योगीकरण तथा अर्थ-व्यवस्था को विविधपूर्ण बनाना (Diversification) ऐसी परिस्थितियो मे विकास के प्रमुख ध्येय होने चाहिये।[2] तृतीय पचवर्षीय योजना इस तर्क पर बल देती है। इसके मुख्य उद्देश्य है (अ) नियोजित विकास, (ब) समाजवाद की दिशा मे प्रगति,

1 A H Hanson, *Public Enterprise and Economic Development*, London, 1959, page 147

2 Approach to the Second Five Year Plan Objects and Techniques, Second Five Year Plan, Government of India—Planning Commission, 1959, page 11

(स) सबको समान अवसर प्रदान करने की व्यवस्था, (द) आर्थिक शक्ति का समान वितरण, (ढ) आमदनियो मे तीव्र विषमताओ का उन्मूलन तथा, (य) आर्थिक एव सामाजिक एकीकरण। योजना मे कहा गया है "इस प्रकार स्वाधीनता प्राप्ति के समय से ही भारत के आर्थिक विकास का मार्ग दो प्रमुख उद्देश्यो ने निर्देशित किया है—लोकतन्त्रीय साधनो द्वारा तीव्र गति से विस्तृत होने वाली एव वैज्ञानिक दृष्टि से प्रगतिशील अर्थ-व्यवस्था का निर्माण तथा एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था की स्थापना जो सबके हित के लिए समान अवसरो के प्रबन्ध एव न्याय पर आधारित हो।"[1]

भारत मे आर्थिक नियोजन के उद्देश्यो के अध्ययन के पश्चात् अब योजना निर्माण, उसके क्रियान्वन तथा मूल्याकन की प्रक्रियाओ का विवेचन लाभप्रद होगा।

योजना निर्माण
(Plan Formulation)

भारत में योजना आयोग
(Planning Commission in India)

१५ मार्च, १९५० को केन्द्रीय मन्त्री परिषद के एक प्रस्ताव मे कहा गया था "आवश्यक आर्थिक तत्वो के निष्पक्ष विश्लेषण तथा स्रोतो की सावधानीपूर्ण जाच पर आधारित व्यापक नियोजन अब अनिवार्य हो गया है।" इसी प्रस्ताव के अन्तर्गत भारत मे एक नियोजन आयोग की स्थापना की गई जिसे भारत के "स्रोतो का सर्वाधिक प्रभावशाली तथा सन्तुलित उपयोग करने के लिए" योजना निर्माण तथा क्रियान्वन की देख-रेख का दायित्व सौंपा गया। १९४६ मे नियोगी समिति ने सिफारिश की थी कि आर्थिक नियोजन के कार्य की प्रकृति ही ऐसी है कि "एक ऐसे एकीकृत, शक्तिशाली तथा मन्त्रि परिषद के प्रति प्रत्यक्ष रूप से उत्तरदायी सगठन की केन्द्र मे स्थापना आवश्यक है जो भारत के आर्थिक पुनर्निर्माण के सम्पूर्ण क्षेत्र पर दत्तचित्त होकर स्थायी रूप से कार्य कर सके।"

आयोग ने २८ मार्च १९५० से कार्य करना आरम्भ किया। सौंपे गये दायित्व के अन्तर्गत भारत सरकार के योजना आयोग को निम्नलिखित कार्य सम्पन्न करने हैं

(१) देश के भौतिक, पूजीगत तथा मानवीय (तकनीकी दृष्टि से कुशल कर्मचारियो सहित) साधनो का सर्वेक्षण करना और इस बात का पता लगाना कि देश की आवश्यकताओ को देखते हुए यदि इनमे से कुछ साधन कम हैं तो उनमे जैसे वृद्धि की जा सकती है,

(२) देश के समस्त साधनो का प्रभावशाली तथा सन्तुलित उपयोग करने के लिए एक योजना का निर्माण करना,

---

1 Third Five Year Plan Government of India—Planning Commission, 1961, page 4 For details refer to Chapter I, Objectives of Planned Development, pages 1—19

(३) प्राथमिकताओ (Priorities) का निश्चय करने के पश्चात् योजना के सचालन चरणो (Stages) का निर्धारण करना तथा प्रत्येक चरण के कार्य की पूर्ति के लिए साधनो के उचित बटवारे का सुझाव देना ,

(४) आर्थिक विकास मे बाधक बनने वाले कारणो व तत्वो को इगित करना तथा देश की सामाजिक व राजनीतिक स्थिति को दृष्टिगत रखते हुए ऐसी दशाओ का निर्धारण करना जो योजना के सफल सचालन के लिए आवश्यक हो ,

(५) एक ऐसे प्रशासनिक यन्त्र की प्रकृति का निर्धारण करना जो योजना के सभी क्षेत्रो के प्रत्येक चरण के कार्यक्रमो को सफलतापूर्वक पूरा करने के लिए आवश्यक हो ,

(६) योजना के प्रत्येक चरण के सचालन काल मे समय-समय पर उसकी प्रगति का मूल्याकन करना और ऐसे उपायो एव नीति सम्बन्धी सशोधनो की सिफारिश करना जो ऐसे मूल्याकन के फलस्वरूप आवश्यक प्रतीत हुए हो , तथा

(७) ऐसी अन्तरिम अथवा सहायक सिफारिशें प्रस्तुत करना जो कि प्रचलित आर्थिक परिस्थितियो, चालू नीतियो, उपायो एव विकास कार्यक्रमो की दृष्टि से उपयुक्त हो , अथवा वे ऐसी विशिष्ट समस्याओ के सूक्ष्म विवेचन की दृष्टि से उपयुक्त हों, जोकि केन्द्रीय अथवा राज्य सरकारो द्वारा परामर्श के लिए उसको इस लिए सौपी गई हो कि जिससे वे अपने कर्त्तव्यो को सुविधा के साथ पूरा कर सके ।

योजना आयोग एक प्रकार की परामर्शदात्री समिति ही है । १५ मार्च १९५० का वह प्रस्ताव जिसके अन्तर्गत योजना आयोग की स्थापना की गई थी इस सगठन को मुख्यत परामर्श सम्बन्धी कार्य ही प्रदान करता है

(अ) अपनी सिफारिशो की रचना करते समय योजना आयोग केन्द्रीय तथा राज्य सरकारो के मन्त्रालयो से परामर्श तथा सहयोग करेगा ,

(ब) आयोग अपनी सिफारिशें मन्त्रि-परिषद् को प्रस्तुत करेगा , तथा

(स) इन सिफारिशो पर निर्णय लेना तथा उन्हे क्रियान्वित करना केन्द्रीय एव राज्य सरकारो का दायित्व होगा ।"

योजना आयोग का स्वरूप तथा मन्त्रिपरिषद् से इसका सम्बन्ध
(Composition of the Commission and its Relation to the Cabinet)

योजना आयोग की रचना करते समय इस उद्देश्य को सामने रखा गया था कि आयोग तथा मन्त्रिपरिषद् मे निकटतम सम्बन्ध हो । प्रधान मन्त्री आयोग के अध्यक्ष हैं तथा केबिनेट स्तर के तीन अन्य मन्त्रीगण, अर्थात् प्रतिरक्षा मन्त्री, वित्त-मन्त्री तथा नियोजन मन्त्री इसके सदस्य हैं । योजना आयोग मे चार या पाँच सदस्य

ऐसे होते हैं जो अपना सम्पूर्ण समय इसी के कार्यों मे व्यतीत करते है। ये पूर्णकालीन (Whole time) सदस्य कहलाते है। पूर्णकालीन सदस्यो को आर्थिक मामलो या प्रशासन के क्षेत्र मे अपनी विशिष्ट ख्याति के आधार पर नियुक्त किया जाता है यो तो सदस्यो के लिए कोई औपचारिक योग्यताए निर्धारित नही की गई है। उनकी नियुक्ति करते समय विभिन्न क्षेत्रो मे उनके सार्वजनिक कार्यों तथा अनुभव पर विशेष बल दिया जाता है।

आयोग के सभी सदस्य एक निकाय (Body) के रूप मे कार्य करते हैं किन्तु सुविधा के लिए प्रत्येक सदस्य को एक या एक से अधिक विषयो का कर्त्ताधर्त्ता बना दिया जाता है। वह अपने विषयो मे समस्याओ के अध्ययन तथा अनुसधान को निर्देशित करता है। पूर्णकालीन सदस्यो मे निम्नलिखित महत्वपूर्ण विषय वितरित किये गये हैं

(अ) प्राकृतिक स्रोत (सिंचाई, विद्युत शक्ति, कोयला, तेल इत्यादि), (ब) कृषि तथा सामुदायिक विकास, (स) उद्योग, रेल सेवाए, परिवहन तथा सचार। (द) सामाजिक सेवाए—शिक्षा स्वास्थ्य, इत्यादि।

वित्तमन्त्री योजना आयोग के आर्थिक सभाग (Economic Division) से निकटतम सम्पर्क रखता है। वित्त मन्त्रालय तथा योजना आयोग का आर्थिक परामर्शदाता (Economic Advisor) एक ही व्यक्ति होता है। योजना आयोग के कार्यों के लिए नियोजन मन्त्री ससद तथा मन्त्रिपरिषद् के प्रति उत्तरदायी होता है।

क्या मन्त्रियो को योजना का सदस्य बनाना उचित है ? इस प्रश्न पर काफी विवाद हो चुका है और मतभेद तीव्र हैं। कुछ व्यक्तियो के अनुसार योजना आयोग एक पूर्णतया स्वतन्त्र सगठन होना चाहिए। इसका कार्य देश की प्रमुख आर्थिक समस्याओ पर सरकार को परामर्श देना है। इसलिए इसके सदस्य ख्याति प्राप्त व्यक्ति होने चाहियें तथा उन्हे स्वतन्त्र किन्तु सयुक्त रूप से कार्य करने का अधिकार मिलना चाहिए। प्रधानमन्त्री तथा अन्य मन्त्रियो को आयोग का सदस्य बनाना अवाछनीय है। जैसा प्रोफेसर डी० आर० गाडगिल ने कहा है "योजना आयोग द्वारा अपने प्रमुख कार्यो की उपेक्षा का एक महत्वपूर्ण कारण यह भी है कि यह एक विशाल शक्ति सगठन बन गया है तथा इसके सदस्यो मे भी मन्त्रियो की भाँति शक्ति व सरक्षण का प्रयोग तथा प्रदर्शन करने की एक स्वाभाविक इच्छा है। इसी कारण आयोग गतिविधियो का अनेक असम्बद्ध क्षेत्रो तक अनावश्यक विस्तार कर दिया गया है। आयोग के अपने निर्धारित मार्ग से हटकर गलत मार्ग पर चलने की प्रवृत्ति को इस तथ्य से और भी सहायता मिली है कि स्वय प्रधानमन्त्री तथा वित्तमन्त्री इसके सदस्य हैं। योजना आयोग तथा उसके निर्णयो पर इस कारण एक अस्वाभाविक किस्म की प्रतिष्ठा एव महत्व छा गया है। इस स्थिति मे केवल तभी सुधार किया जा सकता है जब कि योजना आयोग को केवल वही कार्य सौंपे जायें जो प्रारम्भ मे

उसके लिए नियत किये गये थे और आयोग को इस योग्य बनाया जाये कि वह उन्हे सम्पन्न कर सके।"[1]

संसद की अनुमान समिति (Estimates Committee) भी ऐसा ही मत व्यक्त कर चुकी है "जहाँ नियोजन आयोग के प्रारम्भिक चरणो मे प्रधानमन्त्री का इसके साथ सम्बद्ध होना आवश्यक था तथा जहाँ यह सही है कि अब भी प्रधान मन्त्री को नियोजन को सफल बनाने के लिए आयोग का मार्ग निर्देशित करना होगा वहाँ यह प्रश्न भी विचारणीय है कि क्या प्रधानमन्त्री के लिए आयोग के साथ अपना औपचारिक सम्बन्ध बनाये रखना नितान्त अनिवार्य है ? इसी प्रकार इस प्रश्न पर भी विचार करना होगा कि केन्द्रीय सरकार के वित्तमन्त्री तथा अन्य मन्त्रियो का आयोग के साथ निरन्तर औपचारिक सम्बन्ध बनाये रखना कहाँ तक उचित है। आयोग के साथ मन्त्रियो के समागम को मुख्यत इस आधार पर उचित ठहराया जाता है कि इससे मन्त्रालयो के साथ निकट सम्पर्क तथा ताल-मेल बनाये रखने एव सलाह-मशविरा करने मे सुविधा रहती है। किन्तु ऐसा तो इस प्रकार की व्यवस्था द्वारा भी किया जा सकता है कि जब भी आयोग की बैठक मे किसी मन्त्री से सम्बन्धित विषय पर विचार होना हो तो उस मन्त्री को बैठक मे उपस्थित होने का निमन्त्रण दे दिया जाये। मन्त्रि-परिषद के साथ सामञ्जस्य तथा ताल-मेल इस प्रकार भी कायम रखा जा सकता है कि जब भी मन्त्रि-परिषद की बैठक मे आयोग से सम्बन्धित कोई मामला विचाराधीन हो तो आयोग का एक प्रतिनिधि उस बैठक मे उपस्थित हो।"[2]

यह शिकायत की जाती है कि योजना आयोग के साथ मन्त्रियो के औपचारिक सम्बन्धो ने इसको एक 'सर्वोपरि मन्त्रि-परिषद' (Super-Cabinet) बना दिया है। किन्तु मन्त्रियो का आयोग के साथ सम्बधित होना मन्त्रि-मण्डल तथा आयोग के मध्य समायोजना या ताल-मेल के लिए आवश्यक है। इसके अतिरिक्त मन्त्रि-मण्ड योजना के क्रियान्वन के लिए उत्तरदायी है। क्रियान्वन उसी स्थिति मे अच्छा हो सकता है जब मन्त्रि-मन्डल के सदस्य भी आयोग के विचार-विवेचन तथा निर्णयो मे भाग ले।[3]

---

1 D R Gadgil, *Indian Planning and the Planning and Commission*, Harold Laski Institute of Political Science, Ahmedabad, India, 1958, pages 27—28 Also refer to P P, Agarwal, 'The Planning Commission', Indian Journal of Public Administration, New Delhi, October—December 1957, pages 333—345

2 Estimates Committee, 1957—59, Twentyfirst Report (Second Lok Sabha) Planning Commission, Para 21

3 V T Krishanamachari rightly observes "Experience in the last ten years has shown that the connection of the Prime Minister and the Finance Minister with the Commission is facilitating continuous contact between the Cabinet and the Commission on important matters of policy and smooth working with the Ministries There is also no doubt about the need for a Minister to answer questions in Parliament on planning and to assist the Prime Minister in debates on subjects relating to planning" *Fundamentals of Planning in India*, Orient Longmans, New Delhi, 1962, page 57

जहाँ तक आयोग की प्रक्रियाओ एव कार्यविधियो का प्रश्न है, इसके सब सदस्य एक निकाय के रूप मे कार्य करते हैं। सब नीति सम्बन्धी प्रश्न सम्पूर्ण आयोग के सम्मुख प्रस्तुत किये जाते है। सम्पूर्ण आयोग के सम्मुख प्रस्तुत होने वाले मामलो मे पचवर्षीय योजनाओ का निर्धारण तथा उनकी प्रगति, वार्षिक योजनाओ का निर्धारण, योजनाओ मे सशोधन तथा अनुकूलन एव ऐसे प्रश्न सम्मिलित है जिनके फलस्वरूप योजना सम्बन्धी नीतियो मे परिवर्तन आवश्यक हो जाये। किसी केन्द्रीय-मन्त्रालय या राज्य सरकार के साथ महत्वपूर्ण मतभेद के मामले आयोग के किन्ही दो सदस्यो मे मतभेद के मामले तथा वे सब प्रश्न जो आयोग के आन्तरिक सगठन या क्रिया-प्रणालियो से सम्बन्धित हो सम्पूर्ण आयोग के सम्मुख प्रस्तुत किये जाते है। मन्त्रि-परिषद् (Cabinet) के सदस्य योजना आयोग की बैठको मे उपस्थित रहते हैं तथा आयोग के सदस्यो को मन्त्रि-परिषद् की बैठको मे अपना मत व्यक्त करने के लिए आमन्त्रित किया जाता है। योजना आयोग, मन्त्रालयो, मन्त्रि-परिषद् तथा मन्त्रि-परिषद् की समितियो मे परस्पर अविरल सम्पर्क बना रहता है। मन्त्रि-परिषद् का सचिव ही आयोग का सचिव होता है। आयोगपूर्ण गोपनीयता बरतता है तथा मन्त्रि परिषद् के साथ मतभेद उठने की दशा मे उन्हे सार्वजनिक रूप से व्यक्त नही करता।

योजना आयोग के तीन प्रमुख सम्भाग (Divisions) हैं —कार्यक्रम परामर्शदातागण (Programme Advisors), सामान्य सचिवालय (General Secretariat) तथा तकनीकी सचिवालय (Technical Secretarial)। इसकी तीन महत्वपूर्ण समितिया भी है अनुसधान कार्यक्रम समिति (Research Programme Committee), कार्यक्रम मूल्याकन समिति (Programme Evaluation Committee) तथा योजना उपक्रम समिति (Committee on plan projects)। कार्यक्रम परामर्शदातागण क्षेत्र अध्ययन (Field study) तथा विभिन्न गतिविधियो एव उपक्रमो के पर्यवेक्षण तथा उनके क्रियान्वन की प्रगति के विषय मे योजना आयोग को सहायता देते है। सामान्य सचिवालय तथा तकनीकी सचिवालय आयोग की आन्तरिक सचालय क्रियाओ मे सम्बन्धित हैं। अनुसधान कार्यक्रम समिति सामाजिक तथा आर्थिक विकास की समस्याओ पर शोध-कार्य सचालित करती है। कार्य-क्रम मूल्याकन समिति सामुदायिक विकास आन्दोलन के अन्तर्गत किये जा रहे कार्य का मूल्याकन करती है। योजना उपक्रम समिति महत्वपूर्ण योजना उपक्रमो के कार्य की जाच करती है जिससे अधिकतम कार्यकुशलता एव मितव्ययता की प्राप्ति की जा सके।[1] अब यहाँ भारतीय नियोजन की निर्धारण, क्रियान्वन तथा मूल्याकन क्रियाओ का अध्ययन करना उपयुक्त होगा।

---

1 For further details refer to V T Krishnamachari *Fundamentals of Planning in India,* Orient Longmans, Delhi, 1962, especially Chapters III, pages 49—68, IV, V, VI, VII, pages 69—113 The Indian Journal of public Administration July—September 1961, Vol VII No 3, Special No— Planning in India 'Planning Machinery in India', S R Sen, pages 215—235

योजना-निर्धारण
(Plan Formulation)

योजना आयोग का मुख्य दायित्व सम्पूर्ण देश के लिए योजनाओ का निर्धारण करना है। योजनाओ के क्रियान्वन का दायित्व मुख्यत केन्द्रीय तथा राज्य सरकारो के प्रशासकीय मत्रालयो पर है। सरकार द्वारा विकास कार्यो का दायित्व सम्भालने तथा नियोजन का मार्ग अपनाने के फलस्वरूप विभागो तथा मत्रालयो मे नियोजन कोषको (Planning cells), राज्यो मे नियोजन विभागो तथा परामर्शदात्री सस्थाओ एव केन्द्र मे योजना आयोग तथा इसके विभिन्न निकायो (जिनका ऊपर उल्लेख किया गया है) की स्थापना हुई है। भारत मे नियोजन सम्बन्धी यन्त्र-उपकरण निम्नलिखित है केन्द्र मे योजना आयोग तथा इसके विभिन्न निकाय जिनका कार्य योजना सम्बन्धी अनुसधान कार्य सचालित करना, उपक्रमो की प्रगति की देख-रेख करना तथा उनका मूल्याकन करना इत्यादि है। राज्यो मे नियोजन सम्बन्धी यन्त्र-उपकरण निम्नलिखित हैं —

(अ) साधारणतया मुख्य-मन्त्री के आधीन मन्त्री-परिषद की एक समिति होती है जिसका कार्य उच्चस्तरीय निर्देशन तथा मार्ग-प्रदर्शन करना होता है,

(ब) प्रशासकीय स्तर पर विभिन्न विभागो के कार्यो मे समायोजन पैदा करने के लिए प्रत्येक राज्य मे एक विकास परिषद (State Development Council) होती है जिसमे सभी विभागो के सचिव सदस्य होते हैं तथा जिसका अध्यक्ष साधारणतया मुख्य सचिव होता है।

(स) एक योजना विभाग या विकास आयुक्त (Development Commissioner) होता है जिसका कार्य नियोजन मे समन्वय स्थापित करना तथा जिला कार्यक्रमो के क्रियान्वन की देख-भाल करना होता है।

(द) राज्य मे नियोजन बोर्डो (Planning Boards) की भी व्यवस्था है। ये बोर्ड गैर सरकारी (Non-official) परामर्शदाता निकाय का कार्य करते हैं।

(ड) जिलाधीश, खण्ड विकास अधिकारी (B D O), पचायत समिति, ग्राम पचायत तथा कुछ तकनीकी अधिकारी विभिन्न स्तरो पर योजना के क्रियान्वन मे सहयोग देते हैं। हाल ही के एक सुझाव के अनुसार राज्यो मे भी पृथक रूप से योजना आयोगो की स्थापना पर विचार हो रहा है।

इस समय योजना आयोग का मुख्य कार्य नीतियाँ निर्धारित करना, लक्ष्य निश्चित करना एव वित्तीय स्रोतो तथा मुख्य उपक्रमो के विषय मे निर्णय करना है। योजना निर्माण की प्रक्रिया कुछ इस प्रकार है योजना आयोग सर्वप्रथम पचवर्षीय योजना सम्बन्धी एक सक्षिप्त प्रपत्र (Memorandum) तैयार करता है तथा उसे केन्द्रीय सरकार एव 'राष्ट्रीय विकास परिषद' (जिसके सब राज्यो के मुख्य मन्त्रीगण

सदस्य होते है) के सम्मुख प्रस्तुत करता है। इन दो सस्थाओ द्वारा सक्षिप्त प्रपत्र स्वीकृत हो जाने पर, आयोग योजना का एक प्रारूप (Draft) तैयार करता है जिसमे प्रस्तावित योजना के मुख्य उद्देश्यो, लक्ष्यो इत्यादि का उल्लेख किया जाता है। इस प्रारूप पर ससद, जनता तथा समाचार-पत्र इत्यादि विचार करते है। योजना आयोग राज्यो से प्रारूप पर विस्तृत विचार-विमर्श करता है। राज्य सरकारें प्रारूप मे उल्लिखित लक्ष्यो के अनुकूल अपनी-अपनी योजनायें तैयार करती हैं। इन योजनाओ मे आवश्यक काट-छाट तथा सशोधन करके योजना आयोग उन्हे एक एकीकृत अन्तिम योजना का रूप देता है। परिणाम यह है कि काफी सीमा तक योजना निर्माण का कार्य केन्द्रीकृत (Centralized) हो गया है।

राष्ट्रीय विकास परिषद
(National Development Council)

योजना सम्बन्धी मामलो मे केन्द्र तथा राज्यो के मध्य समायोजन (Coordination) की स्थापना के लिये राष्ट्रीय विकास परिषद नामक एक महत्वपूर्ण सगठन की रचना की गई है। इसकी स्थापना के मुख्य उद्देश्य थे (अ) योजना की सहायता के लिए राष्ट्र के स्रोतो तथा परिश्रम को सुदृढ करना तथा उनका सचालन (Mobilazation) करना, (ब) सभी महत्वपूर्ण क्षेत्रो मे समरूप (Common) आर्थिक नीतियो के अपनाने को प्रोत्साहित करना, तथा (स) देश के सभी भागो के तीव्र तथा सन्तुलित विकास के लिए प्रयास करना। परिषद के मुख्य कार्य हैं (अ) राष्ट्रीय योजना की प्रगति पर समय-समय पर विचार करना, (ब) राष्ट्रीय विकास को प्रभावित करने वाली आर्थिक तथा सामाजिक नीतियो सम्बन्धी प्रश्नो पर विचार करना, तथा (स) राष्ट्रीय योजना मे निर्धारित लक्ष्यो व उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए सुझाव देना। साथ ही परिषद का यह भी कार्य है कि वह योजना के क्रियान्वन मे जनता का सक्रिय सहयोग प्राप्त करने, प्रशासकीय सेवाओ की कार्य-कुशलता मे वृद्धि करने, अल्पविकसित प्रदेशो एव समाज के पिछडे वर्गों की पूर्णतम प्रगति तथा राष्ट्रीय विकास के लिए सम्पूर्ण जनता के समान बलिदान द्वारा स्रोतो के निर्माण पर सुझाव दे।

राष्ट्रीय विकास परिषद मे राज्यो के मुख्य मन्त्रियो की सदस्यता तथा योजना आयोग द्वारा निर्धारित कार्यक्रमो पर उनकी स्वीकृति के कारण योजना को राज्यो की ओर से एक प्रकार की पूर्व स्वीकृति (Prior-sanction) प्राप्त हो जाती है। इस परिषद ने भी एक 'सर्वोपरि केबिनेट' (Super Cabinet) की ख्याति प्राप्त कर ली है। इसके उच्च स्वरूप के कारण इसके परामर्श को केन्द्रीय तथा राज्य सरकारें सर्वाधिक महत्व प्रदान करती हैं। परिषद ने योजनाओ को एक सच्चा राष्ट्रीय स्वरूप प्रदान किया है तथा योजनाओ के निर्माण मे "दृष्टिकोण की एकरूपता एव

सर्वसम्मति पैदा की है। परिषद के सदस्य सत्ताधारी नीति निर्माता है, उनके मत की योजना आयोग या केबिनेट किसी भी स्थिति मे अवहेलना नही कर सकते।[1]

योजना का क्रियान्वन तथा आर्थिक नियोजन के अन्तर्निहित परिणाम

(Implementation of Plan and Administrative Implications of Economic Planning)

योजना के निर्माण के बाद उसके क्रियान्वन की जिम्मेदारी केन्द्रीय तथा राज्य सरकारो के प्रशासकीय विभागो पर आती है। सर्वश्रेष्ठ से सर्वश्रेष्ठ योजना भी निरर्थक है, यदि उसे उचित रूप से क्रियान्वित न किया जा सकता हो। "योजना मे सर्वाधिक बल क्रियान्वन, व्यावहारिक परिणाम प्राप्त करने मे गति एव पूर्णता तथा अधिकतम उत्पादन, रोजगार व मानवीय स्रोतो के विकास के लिए पर्याप्त परिस्थितियाँ पैदा करने पर होना चाहिये।"[2]

भारत मे योजना क्रियान्वन से सम्बन्धित प्रथम समस्या केन्द्रीय तथा राज्य सरकारो के बीच समायोजन स्थापित करने की है। इस सम्बन्ध मे तृतीय पचवर्षीय योजना मे स्पष्ट रूप से कहा गया है "योजना को अनेक स्तरो पर क्रियान्वित किया जाना है—राष्ट्रीय, राज्य, जिला, खण्ड तथा ग्राम स्तर पर, पृथक्-पृथक् रूप से। प्रत्येक स्तर पर, सम्बन्धित कार्यों को दृष्टिगत रखते हुए विभिन्न प्रकार के अभिकरणो (Agencies) मे पारस्परिक सहयोग का होना आवश्यक है तथा उनमे योजना के एव उनकी प्राप्ति के लिए प्रयुक्त होने वाले साधनो का भी ज्ञान होना चाहिये। सघीय आधार पर सगठित एक विशाल तथा विविधतापूर्ण ढाचे मे बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि विभिन्न स्तरो मे परस्पर तथा किसी एक स्तर पर विभिन्न अभिकरणो मे सचार (Communications) की व्यवस्था कैसी है।"[3]

आर्थिक नियोजन के फलस्वरूप भारतीय प्रशासनिक यन्त्र को एक शक्तिशाली एव महत्वपूर्ण चुनौती मिली है। स्वतन्त्र भारत के लोकप्रशासन की गतिविधियो का क्षेत्र तथा उसके दायित्वो का बोझ प्रतिवर्ष तीव्र गति से बढ रहा है। प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय पचवर्षीय योजनाओ मे भारत के प्रशासनिक यन्त्र के नवीन दायित्वो पर विशेष बल दिया गया है।[4]

---

1 For further details refer to M Brecher, *Nehru A political Biography*, London, Oxford University Press, 1959, page 521 H M Patel, Review Section of the I J P A, October, 1959 page 460, A P Jain, *Food Problem and the N D C* Times of India, May 6, 1959

2 *Third Five Year Plan*, Government of India—Planning Commission 1961, page 14

3 *Ibid*, page 276

4 First five Year plan observed "In all directions, the pace of development will depend largely upon the quality of Public administration, the efficiency with which it work and the cooperation which it evokes, *First Five*

योजना के क्रियान्वन के सम्बन्ध मे अक्सर भारत मे असन्तोष व्यक्त किया गया है। योजना के क्रियान्वन के दौरान उपस्थित होने वाली कठिनाइयो के लिये प्रशासनिक अकर्मण्यता, विलम्ब, अकार्यकुशलता तथा दोषपूर्ण कार्य-प्रणालियाँ, इत्यादि कारण जिम्मेदार ठहराये गये हैं। मुख्यत दोष निम्नलिखित हैं (अ) क्रियान्वन की मन्द गति, (ब) समय-सीमा Time (schedules) का उल्लघन एव खर्चे मे वृद्धि, (स) उचित स्तर तथा अनुभव वाले प्रशिक्षित कर्मचारी-वर्ग का अभाव, (द) अर्थ-व्यवस्था के परस्पर सम्बद्ध क्षेत्रो (Sectors) मे विस्तृत समायोजन का अभाव, तथा (ढ) समाज के व्यापक समर्थन व सहयोग की प्राप्ति मे असफलता। इन दोषो पर विजय प्राप्त करने के लिए नई कार्य-प्रणालिया तथा प्रक्रियाये बनानी आवश्यक है जिससे देश का प्रशासनिक यन्त्र आर्थिक नियोजन की चुनौती का सामना कर सके।[1]

भारत की तीनो योजनाओ मे लोक-प्रशासन के सगठन तथा प्रबन्ध प्रक्रियाओ मे सुधार के सुझाव दिये जा चुके हैं। इन योजनाओ मे प्रशासन की व्यवस्था तथा कार्य-विधियो के निरन्तर अध्ययन पर विशेष बल दिया गया है। धारणा यह है कि यदि प्रशासन कार्य कुशल व तीव्र गति से कार्य करने वाला न हुआ तो योजनाओ मे निहित लक्ष्यो की प्राप्ति असम्भव है। "हमारी पुरानी कार्य-प्रणालिया अत्यधिक अवरोध एव प्रत्यावरोध (Checks and counter-checks) पर आधारित हैं। प्रशासन का एक महत्वपूर्ण कार्य, कार्य-प्रणालियो को सरल बनाना है जिससे आवश्यक जनशक्ति (Man-power) तथा अन्य प्रकार की सामग्री प्राप्त

Year Plan, planning Commission, page 117 Similarly *the Second Plan* observed "If the administrative machinery both at Centre and in the States does it work with efficiency, integrity and with a sense of urgency and concern for the community, the success of the Second Plan would be assured " *Second Five Year Plan*, Planning Commission, 1956, page 126, *Third Five Year Plan*, refer to Chapter XVII, Administration and Plan Implemenattion, pages 276—290

1 Third Plan rightly observes "In the larger setting of the Third Plan, these Problems are accentuated and gain greater urgency It is widely realised that the benefit that may accrue from the Third Plan will depend, in particular in its early states, upon the manner in which these problems are resolved As large burdens are thrown on the administrative structure, it grows in size, as its size increases, it becomes slower in its functioning Delays occur and affect operations at every stage and the expected outputs are futher deferred New tasks become difficult to accomplish if the management of those inhand is open to just criticism In these circumstances, there is need for far-reaching changes in procedures and approach and for re-examination of prevalent methods and attitudes " *Ibid*, page 277

करने के लिए शीघ्रता से निर्णय लिए जा सके ।"[1]

आर्थिक नियोजन तथा लोक कल्याणकारी राज्य की चुनौती का सामना करने के लिए निम्नलिखित प्रशासनिक सुधार आवश्यक प्रतीत होते हैं (अ) कार्य-प्रणालियो का सरलीकरण, (ब) विलम्ब की प्रवृत्ति का उन्मूलन, (स) व्यक्तिगत दायित्व का उचित स्पष्टीकरण, (द) काम के खर्चे मे कमी, (य) प्रशासनिक अनुसधान तथा मूल्याकन पर उचित बल, (र) वित्त मन्त्रालय की कार्य प्रणालियो मे क्रातिकारी परिवर्तन, (ल) मन्त्रालयो को वित्तीय शक्तियो का अधिक हस्तातरण, (व) बजट-पूर्व निरीक्षण पर बल, (क) मत्रालयो का पुनर्गठन, (ख) भारत सरकार के मन्त्रालयो, विभागो मे श्रेष्ठतर समायोजन, (ग) जन-सम्पर्क का विकास, (घ) निर्णय लेने की प्रक्रिया मे गतिशीलता, (ड) सिविल अधिकारियो का उचित प्रशिक्षण (च) लोक-प्रशासन मे नेतृत्व के योगदान पर उचित बल, (छ) प्रत्येक स्तर पर कार्य की उचित तथा प्रभावशाली देख-रेख (ज) प्रशासन मे शीघ्रता की भावना पर बल, (झ) प्रशासन मे स्पष्ट सचार व्यवस्था के महत्व की अनुभूति, (ञ) लालफीताशाही मे कटौती के साधनो का विकास इत्यादि ।

ये तथा अन्य प्रशासनिक सुधार योजना के क्रियान्वन को सफल बनाने मे सहायता देंगे ।[2]

योजना का मूल्याकन
(Plan Evaluation)

योजना मे मूल्याकन का चरण बहुत महत्वपूर्ण है । इस उद्देश्य से योजना आयोग मे एक 'कार्यक्रम मूल्यांकन सगठन' (Programme Evaluation Organization) की रचना की गई है । मार्च १६६२ मे स्थापित इस सगठन का कार्य ग्रामीण क्षेत्रो मे सामुदायिक विकास कार्यक्रम के प्रभाव तथा परिणामो को आकना है । इसके कार्यों की इस प्रकार की व्याख्या की गई है —

"(अ) कार्यक्रम के उद्देश्यो की प्राप्ति हेतु की जा रही प्रगति से सब सम्बन्धित व्यक्तियो को परिचित कराना ,

---

1 Inderjit Singh, 'Administration in the Third Five Year Plan', The Indian Journal of Public Administration, New Delhi, July—September, 1961, Vol, VII No 3, page 247

2 For further details refer to 'The Working Paper on the Administrative Implications of the Plan' Indian Institute of Public Administration, New Delhi, 1960 *Third Five Year Plan* Chapter XVII 'Administration and Plan Implementation', pages 276—290 Inderjit Singh 'Administration in The Third Five Year Plan,' I J P A , New Delhi, July—September, 1961, Vol VII, No 3, pages 247—255 V T Krishnamachari, *Fundamentals of Planning in India*, Orient Longmans, New Delhi 1962, Chapter XVI, The Machinery of Government, pages 225—235 Writing about Administration and the (*Contd.*)

(ब) विस्तार (Extension) की प्रभावशाली तथा प्रभावहीन विधियो की ओर सकेत करना ,

(स) यह समझाना कि अनुमोदित (Recommended) तरीको मे से ग्रामीणो ने कुछ को क्यो चुनना पसन्द किया तथा कुछ को क्यो अस्वीकृत किया , तथा

(द) भारत की अर्थ-व्यवस्था तथा सस्कृति पर सामुदायिक विकास कार्य-क्रम के प्रभाव का एक पूर्ण चित्र प्रस्तुत करना ।'

'कार्य-क्रम मूल्यांकन सगठन' (P E O) एक स्वायत्त निकाय है किन्तु यह कृषि मत्रालय तथा सामुदायिक विकास मन्त्रालय के साथ निकट सहयोग से कार्य करता है। यह सख्यात्मक (Statistical) तथा गुणात्मक (Qualitative) केस अध्ययन (Case studies) भी करता है। एक अन्य महत्वपूर्ण सगठन 'योजना उपक्रमो की समिति' (Committee on plan projects) है। सितम्बर १९५६ मे स्थापित इस समिति के कार्य निम्नलिखित है —

"(अ) केन्द्र तथा राज्यो मे विशेष रूप से चुने हुए व्यक्तियो द्वारा महत्वपूर्ण उपक्रमो (Projects) का निरीक्षण करवाना ,

(ब) उपक्रमो के कार्य-कुशल क्रियान्वन, अपव्यय को दूर करने तथा मित-व्ययता की प्राप्ति के लिए सगठन, कार्यविधियो, स्तरो तथा प्रणालियो के उचित रूप निर्धारित करना एव इस उद्देश्य से अध्ययन सचालित करना ,

(स) प्रत्येक उपक्रम मे तथा उनको क्रियान्वित करने वाले अभिकरणो मे पृथक-पृथक कार्य-कुशलता प्रधान लेखा-परीक्षण (Efficiency audit) के निरन्तर सचालन के लिए उचित सगठन के विकास को प्रोत्साहन देना ,

(द) योजना उपक्रमो सम्बन्धी समिति (Committee on plan projects) को विभिन्न प्रतिवेदनो मे समर्पित सुझावो को लागू करवाने का प्रयास करना तथा अध्ययनो व निरीक्षणो के परिणामो को सम्बन्धित व्यक्तियो व सस्थाओ के सम्मुख प्रस्तुत करना , तथा

Third Plan, R K, Rangan observed "The lesson drawn from the two earlier Plans indicate the spheres that would require pointed attention Most important of them are the pace of execution of projects in many fields, problems involved in the Planning construction and preparation of larg project especially increase in cases and non-adherence to time schedules, difficulties in trainning men on a large enough scale and securing personnel with the requisite calibre and experience, achieving coordination in detail in related sectors of economy and above all enlisting widespread support and cooperation from the community as a whole" R K Rangan *India—Administration and the Third Plan* International Review of Administrative Science, Vol XXVIII 1962, No 1, International Institute of Administrative Sciences—Brussels 4 (Belgium), pages 31—32

(इ) द्वितीय पचवर्षीय योजना के क्रियान्वन मे कार्य-कुशलता व मितव्ययता लाने के उद्देश्य से राष्ट्रीय विकास परिषद् द्वारा सुपुर्द किये गये अन्य कार्यों को सम्पन्न करना।"

इस समिति ने विभिन्न उपक्रमो के अध्ययन के लिए बहुत से अध्ययन समूह नियुक्त किये जिनके प्रतिवेदनो का भविष्य के लिए भी काफी महत्व है।

निष्कर्ष
(Concluison)

भारतीय नियोजन का सचालन का कई कठिनाइयो का सामना कर रहा है कई प्रकार की प्रशासकीय समस्यायें योजनाओ के सफल क्रियान्वन के मार्ग मे भारी बाधाओ के रूप मे आ खडी हुई है। व्यापक स्तर पर आर्थिक नियोजन के फलस्वरूप प्रशासको के कन्धो पर जो भारी दायित्व आ पडे है, उनको देखते हुए प्रशासनिक यन्त्र का पुनर्गठन आवश्यक है। एक लोक-कल्याणकारी राज्य के प्रशासनिक सगठन के सम्मुख तीव्रगति, पहल (Initiative) तथा निष्ठा के आदर्शो का होना आवश्यक है। लोक-कल्याणकारी राज्य की आवश्यकताओ को देखते हुए पुराने पुलिस-राज्य के प्रशासनिक सगठन की उपयोगिता समाप्त हो चुकी है। आर्थिक नियोजन के फलस्वरूप उत्पन्न हुई समस्याओ के प्रकाश मे प्रशासनिक सगठन पर पुर्नविचार करने के लिए एक उच्चस्तरीय समिति की स्थापना आवश्यक है। ए० डी० गोरवाला तथा पॉल एच० एपलबी के सक्षिप्त प्रतिवेदन तथा "सगठन व विधि सम्भाग" (O V M) का कार्य अपर्याप्त है। भारत मे आर्थिक नियोजन मे निहित प्रशासनिक समस्याओ के विषय मे अनुभूति तो है किन्तु उनके निराकरण के लिए निश्चय का अभाव है।[1]

———

1 For further details refer to V T Krishnamachari *Fundamentals of Planning in India*, Orient Longmans, New Delhi, 1962, I J P A, New Delhi, Special Issue on 'planning' July—September, 1961, Vol VII, No 3 Five Year Plans devote chapters on Administration, I J P A, New Delhi 'The Administrative Implications of the Third Plan', 1960 Measures for strengthening of Administration, Statement on "Administrative Procedure" laid before Parliament by the Prime Minister on August 10, 1961

भाग २

कार्मिक-वर्ग प्रशासन

(PERSONNEL ADMINISTRATION)

१४

सिविल सेवा का योग तथा महत्व

(Role and Importance of Civil Service)

कार्मिक-वर्ग सरकारी यन्त्र का सचालन करता है। नीति, विधियो (Laws), नियमो (Rules) तथा विनियमो (Regulations) को क्रियान्वित करने के लिए प्रशासन जो भी कार्यवाहिया करता है वे सब कर्मचारी-वर्ग द्वारा ही की जाती है। यदि उपलब्ध अधिकारी एव कर्मचारी-वर्ग कार्य करने के लिए योग्य व समर्थ नही होता तो अच्छी प्रकार सोच-विचार के पश्चात् निर्माण की जाने वाली नीतिया तथा योजनायें भी असफल हो जाती हैं और अच्छे से अच्छे सगठन भी, जोकि वैज्ञानिक सिद्धान्तो, नियमो एव विनियमो पर आधारित होते हैं, भग हो जाते है। एक दृष्टि-कोण से तो प्रशासन (Administration) तथा सगठन (Organisation) स्वय मानवीय समस्यायें ही हैं और उपलब्ध मानवो के गुण तथा योग्यता ही एक बडी मात्रा मे इस बात का निर्धारण करते हैं कि किसी भी देश का प्रशासन कितनी कुशलता के साथ कार्य कर सकेगा। लोक-प्रशासन की कोई भी क्रिया सुयोग्य एव समर्थ कार्मिक-वर्ग के बिना सम्पन्न नही की जा सकती।

राज्य के बढते हुए कार्यों के साथ ही साथ कार्मिक-वर्ग का योग एव महत्व भी बढता जा रहा है। पहले जबकि सरकारें अबन्ध नीति (Laissez-faire) मे विश्वास करती थी और अपने कार्यों को केवल समाज मे कानून व व्यवस्था बनाये रखने तक ही सीमित रखती थी, उस समय तो कर्मचारी-वर्ग के कार्य भी इन थोडे से उद्देश्यो की पूर्ति तक ही सीमित थे। परन्तु विज्ञान तथा शिल्पकला की प्रगति के वर्तमान युग मे राज्य की क्रियाओ मे असाधारण रूप से वृद्धि हुई है। आजकल तो राज्य जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त मानवीय कल्याण मे वृद्धि करता है। राज्य की क्रियायें अत्यन्त विस्तृत तथा विविध प्रकार की हो गई है। प्रत्येक स्थान पर राज्य वर्तमान रहता है और कोई भी नागरिक राज्य के प्रभाव और उसकी शक्तियो से बच कर नही रह पाता। राज्य उन सिविल सेवको (Civil servants) के माध्यम से नागरिको तक पहुचता है 'जोकि प्रशिक्षण-प्राप्त (Trained), निपुण, स्थायी तथा व्यावसायिक रूप से कार्य करने वाले वैज्ञानिक अधिकारी (Officials) होते है।'

आधुनिक समाज की जटिल एव पेचीदा समस्याओ को ऐसे अधिकारियो की देख-रेख मे नही छोडा जा सकता जोकि अप्रशिक्षित (Untrained), अवैतनिक, अशिक्षित (Illiterate) तथा अनिच्छुक हो। १७वी तथा १८वी शताब्दी की वह

कार्मिक व्यवस्था (Personnel system), जिसमे कि अप्रशिक्षित तथा अवैतनिक वर्ग के सिविल कर्मचारी हुआ करते थे, वर्तमान समय के लिएं अनुपयुक्त हैं। आधुनिक समय मे तो कुशल, प्रशिक्षण प्राप्त तथा सुरक्षित व्यक्तियो के एक ऐसे वर्ग की आवश्यकता है जोकि राज्य की सेवा कर सके तथा उसकी योजनाओ एव कार्यक्रमो को लागू कर सके। कार्यों का विशिष्टीकरण तथा श्रम-विभाजन (Division of labour) वर्तमान वैज्ञानिक युग की विशेषता है। एक ही आदमी सभी कार्यों व उत्तरदायित्वों को पूरा नही कर सकता। अत प्रशासन के विभिन्न कार्यों को पूरा करने के लिए तकनीकी योग्यता प्राप्त कर्मचारी नियुक्त किये जाते हैं। आजकल तो हम देखते हैं, कि सिविल सेवको के एक व्यावसायिक वर्ग (Professional class) के द्वारा शासन-कार्य चलाया जाता है। ये कुशल प्रशासक तथ्य एवं आँकडे इकट्ठे करते हैं, अनुसधान (Research) करते हैं और जनता की आवश्यकताओ को सन्तुष्ट करने के लिए योजनायें वनाते हैं। यह कहना ठीक है कि "लोक प्रशासन मे कार्मिक-वर्ग को ही सर्वोच्च तत्व माना जाता है।"[1] आधुनिक राज्य के कार्यों को सम्पन्न करने के लिए ऐसे योग्य एव सभ्य व्यक्तियो की आवश्यकता है जो निष्पक्ष रूप से तथा केवल योग्यता के आधार पर ही चुने जायें।

आधुनिक सिविल सेवा की अनेक विशेषताओ मे से निम्नलिखित विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं

(१) सिविल सेवा ऐसे अधिकारियो का एक व्यावसायिक वर्ग है जोकि प्रशिक्षण प्राप्त, कुशल, स्थायी तथा वैतनिक होते हैं। उन अन्य व्यक्तियो के समान ही, जोकि भिन्न-भिन्न व्यवसायो मे व्यस्त रहते हैं, सिविल सेवको का व्यवसाय भी प्रशासन का सचालन करना होता है। उन्हे इस कार्य के लिए वेतन दिया जाता है। प्रशासन का कार्य करना ही सिविल सेवको का पूर्णकालिक व्यवसाय है।

(२) सिविल सेवको का सगठन पद-सोपान (Hierarchy) के आधार पर किया जाता है जिसका अर्थ होता है उच्च (Superior) एव अधीनस्थ (Subordinate) अधिकारियो की एक ऐसी सुदृढ एव अनुशासित व्यवस्था, जिसमे उच्च अधिकारियो द्वारा निम्न अधिकारियो का पर्यवेक्षण (Supervision) किया जाता है। प्रत्येक अधिकारी को अपने उच्च अधिकारी की आज्ञाओ का पालन करना होता है।

(३) सिविल सेवको को राजनैतिक दृष्टि से तटस्थ (Natural) रहना होता है। वे प्रशासन के सेवक होते हैं किसी दल-विशेष के नही। अत उन्हे विना इस वात का ध्यान किये, कि मन्त्रिमण्डल किस दल अथवा पार्टी का है, अपना कार्य करना होता है।

(४) सिविल सेवक जो भी कार्य करते हैं, विना अपने नाम के करते हैं। उन्हें अनाम ही रहना पडता है।

1 Hermen Finer op cit, p 722.

(५) सिविल सेवको को समाज मे व्यक्तियो के किसी भी वर्ग के प्रति किसी भी बात का पक्षपात किये बिना राज्य के कानूनो को लागू करना होता है ।

(६) देश के कानून द्वारा सिविल सेवको के कर्तव्य की व्याख्या की जाती है। अत उन्हे सविधियो (Statutes) मे उल्लिखित न्यूनतम तथा अधिकतम अनुज्ञाओ (Permissions) की सीमाओ के अन्तर्गत कार्य करना होता है ।

(७) सिविल सेवक सेवा की भावना से जनता की सेवा करते है। सिविल सेवको को, जोकि राज्य के सेवक होते है, सम्पूर्ण समाज के कल्याण के लिए कार्य करना होता है । उन्हे व्यक्तिगत लाभ से पहले सार्वजनिक हित को दृष्टिगत रखना होता है।

(८) सिविल सेवक जो भी कार्य करते है उसके लिए वे जनता के प्रतिनिधियो के प्रति उत्तरदायी होते है ।

ये सिविल सेवा के कुछ विशिष्ट लक्षण है । 'A Primer of Public Administration' नामक अपनी पुस्तक मे इसके बारे मे लिखते हुए एस० ई० फिनर (*S E Finer*) ने कहा कि

"सिविल सेवा का अस्तित्व लाभोपार्जन के लिए नही होता । अत इसके सदस्यो की प्रेरणा, अन्तिम आश्रय के रूप मे, वेतन प्राप्त करने की ही होती है, जोखिम उठाकर अधिक धन कमाने की नही । दूसरे, सिविल सेवा सार्वजनिक होती है । अत उसके कार्यों की दृढ एव सूक्ष्म जाच की जाती है और वे अस्वीकृत भी किये जा सकते है । इससे पुन उसकी लोचशीलता तथा तत्परता सीमित हो जाती है । तीसरे,' ' 'सिविल सेवको तथा उनके मन्त्रियो (Ministers) को निरन्तर ससद (Parliament) की आलोचनाओ का सामना करना होता है। इससे उन्हे अवसरो के प्रति सतर्क एव सन्नद्ध रहने के लिए प्रोत्साहन मिलता है । अन्तत इसकी सेवायें व्यापक होती है । यह स्थिति इसको इस बात के लिए बाध्य करती है कि यह अपने स्टाफ-सम्बन्धो की ओर विशेष ध्यान दे और उनमे पारस्परिक प्रेम के अभाव अथवा विवाद को दूर करने के लिए, सेवा की कोटि (Quality) के सम्भावित व्यय पर व्यवहार की समानता उत्पन्न करे ।"[1]

सिविल सेवा अथवा नौकरशाही
(Civil Service or Bureaucracy)

गत पृष्ठो से यह स्पष्ट है कि आधुनिक सभ्यता के लिए सिविल सेवको के व्यावसायिक-वर्ग का होना अत्यन्त आवश्यक है, यद्यपि तोड-मरोड कर तथा व्यगात्मक रूप मे कभी-कभी सिविल सेवको को 'नौकरशाही पदाधिकारियो (Bureaucrats) का नाम दिया जाता है, नौकरशाही एक ऐसा शब्द है जिसका प्रयोग अनादर अथवा तिरस्कार के साथ किया जाता है । यह एक प्रकार का दुरुपयोग है और यह दुरुपयोग

1 S E Finer *A Primer of Public Administration*, Frederick Muller, Ltd London, 1950, p 112.

चुनाव (Election) अथवा अन्य किसी सार्वजनिक सकट-काल के समय विशेष रूप से किया जाता है । राजनीतिज्ञ, जनता तथा समाचार-पत्र जब भी व्यावसायिक सिविल सेवको की आलोचना अथवा निन्दा करने की आवश्यकता समझते है तभी वे इनको 'नौकरशाही' पदाधिकारियो' के नाम से सम्बोधित करते हैं ।

यदि पारिभाषिक दृष्टि से नौकरशाही (Bureaucracy) की व्याख्या की जाए तो साधारणतया इसका अर्थ है "मेज प्रशासन" अर्थात् व्यूरो अथवा कार्यालयो द्वारा प्रबन्ध । "कार्मिक वर्ग, (Personnel) उसके कार्य करने के साधनो तथा कार्य-विधियो (Procedures) के योग को नौकरशाही पद्धति कहा जाता है जिनके द्वारा कि एक सगठन अपने कार्यों का प्रबन्ध करता है तथा अपने उद्देश्यों को प्राप्त करता है ।" इस प्रकार नौकरशाही अथवा सेवकतन्त्र सभी बडे पैमाने के उद्यमो का एक विशिष्ट लक्षरण है । किन्तु जब नौकरशाही शासन की आलोचना की जाती है तो इसके आलोचक यह तर्क प्रस्तुत करते हैं कि यह इसलिए दोषी है क्योकि बजाए सार्वजनिक उद्देश्यो को पूरा करने के, जिसके लिए कि इसका निर्माण किया जाता है, यह अपने निजी उद्देश्यो को ही पूरा करने लगता है । 'नौकरशाही' शासन कभी-कभी लालफीताशाही (Red-tapism) सैनिकीकरण, अनाधिकार हस्तक्षेप, अपव्ययता, भ्रष्टाचार (Corruption), कार्य के बेढगेपन, अकुशलता तथा उदासीनता से सम्बद्ध हो जाता है ।

नौकरशाही के विशिष्ट लक्षण
(Characteristics of Bureaucracy)

मेक्स वैबर (Max Weber) ने समाज शास्त्र के (Sociology) पर लिखे गये अपने निबन्धो मे नौकरशाही के निम्नलिखित विशिष्ट लक्षणो का उल्लेख किया है —[1]

(१) नौकरशाही पद्धति के प्रशासनिक ढाचे के उद्देश्यो की पूर्ति के लिए जिन नियमित क्रियाओ की आवश्यकता होती है उनको एक निश्चित रीति से सरकारी कर्तव्यो के रूप मे बाट दिया जाता है ।

(२) इन कर्तव्यो को पूरा करने के लिए जिन आदेशो (Commands) की आवश्यकता होती है उनको जारी करने की सत्ता को एक स्थायी तरीके से विभाजित कर दिया जाता है और उसको दृढता के साथ ऐसे नियमो (Rules) की सीमाओ मे बाध दिया जाता है जोकि बलपूर्वक लागू किये जाने वाले उन भौतिक अथवा अभौतिक साधनो से सम्बन्धित होते हैं जोकि अधिकारियो को सौंपे जा सकते हैं ।

(३) इन कर्तव्यो की नियमित एव निरन्तर पूर्ति के लिए तथा समवर्ती अधिकारो (Corresponding rights) के क्रियान्वय के लिए विधिपूर्वक व्यवस्था की जाती है , केवल उन्ही व्यक्तियों को नियुक्त किया जाता है जोकि सामान्य रूप से सेवा करने की निर्धारित योग्यतायें रखते हैं ।

1. Max Weber, in Sociology, transmitted by H H Gerth and C Wright Mills 1946, Oxford University Press Inc, pp 197-98

वैंवर के अनुसार ये तीनो तत्व 'लोक-प्रशासन मे नौकरशाही सत्ता' की अथवा 'निजी उद्यम (Private enterprise) मे नौकरशाही प्रबन्ध-व्यवस्था' की रचना करते हैं। उन्होने आगे कहा कि सभी नौकरशाही व्यवस्थाओ मे पद-सोपान का सिद्धान्त (Hierarchical principle) लागू होता है, लिखित दस्तावेजो (Documents), फाइलो, अभिलेखो (Records) तथा आधुनिक दफ्तरी प्रबन्ध के उपकरणो पर निर्भर रहा जाता है, कार्यालय के प्रबन्ध के लिये सामान्य नियमो अथवा व्यवहारो का निर्माण किया जाता है, और सरकारी तथा गैर-सरकारी दोनो ही प्रकार के प्रशासन के अधिकारी उन नियमो तथा तकनीको मे, जिनमे कि उनके विशेषज्ञ एव निपुण होने की आवश्यकता हो, प्रशिक्षण-प्राप्त (Trained) होने चाहिये।

प्रो० फ्रेडरिच (Friedrich) ने 'नौकरशाही' के छ प्रारम्भिक सिद्धान्त बताये हैं। वे है कार्यों का विभिन्नीकरण, पद के लिए योग्यतायें, पदसोपान-क्रम का सगठन तथा अनुशासन, कार्य-रीति की उद्देश्य-विषयता, नियमो, लालफीताशाही तथा अभिलेखो के रखने के सम्बन्ध मे यथार्थता तथा दृढता अथवा निरन्तरता, और अन्त मे, विवेक (Discretion) का प्रयोग जिससे प्रशासन के कुछ पहलुओ के सम्बन्ध मे गुप्तता रहे।[1] Simon ने नौकरशाही को 'बडे पैमाने के सगठन, (Large scale organisation) का पर्यायवाची माना है।[2] डीन पाल एपिलबी (Dean Paul Appleby) का कहना है कि "इसको सामान्य तथा जटिल शर्तों के अन्तर्गत सयुक्त हुए अनेक व्यक्तियो के व्यवस्थित पारस्परिक कार्यों से पृथक् नही किया जा सकता।"[3]

नौकरशाही (Bureaucracy) प्रशासन की एक ऐसी व्यवस्था है जिसमे सिविल सेवको का निपुण व्यावसायिक वर्ग निष्पक्ष रूप से शासन कार्य चलाता है। नौकरशाही अथवा सेवकतन्त्र उन तकनीकी दृष्टि से कुशल व्यक्तियो का एक व्यावसायिक वर्ग (Professional class) है जिनका पद-सोपान के क्रम (Hierarchical way) मे सगठन किया जाता है और जो निष्पक्ष रूप मे राज्य का कार्य करते हैं। नौकरशाही सिविल सेवको का एक प्रवीण व्यावसायिक वर्ग है। नौकरशाही शासन के पदाधिकारियो की भर्ती योग्यता (Merit) के आधार पर की जाती है और योग्यता के आधार पर ही उनकी पदोन्नति (Promotion) की जाती है। वे नियमो तथा विनियमो (Rules and regulations) के आधार पर शासन-कार्य का सचालन करते हैं, पक्षपात के आधार पर नही। समस्त जनता के साथ उनका व्यवहार एकरूप तथा एक समान होता है।

---

1 Friedrich, *Constitutional Government and Democracy*, 2nd Edition 1951 pp 57 58

2 Herbert A Simon, Staff and Management Control's in the Annals of *the American Academy of Political and Social Science* March 1954, p 95

3 Paul H Appleby, *Bureaucracy and the Future*, p 118

नौकरशाही अथवा सेवक तन्त्र की बुराइयां
(Evils of Bureaucracy)

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है नौकरशाही शब्द का प्रयोग अनादर अथवा तिरस्कार के साथ किया जाता है। जहां कही भी लोक कर्मचारी (Public servants) प्रभावशाली जन-नियन्त्रण की परिधि से बाहर रहते हैं, जहां वे अपने निजी लाभ के लिये कार्य करते है, जहां ये सार्वजनिक आलोचना के प्रति उत्तरदायी एव जवाबदेह नही होते, जहां वे जनता अथवा ससद की आलोचना के किसी भी प्रकार के भय के बिना समाज मे एक पृथक् वर्ग का रूप धारण कर लेते हैं—वहां उन्हे नौकरशाही अफसरो (Bureaucrats) की सज्ञा दी जाती है। अत: नौकरशाही की व्याख्या इस प्रकार की गई कि "यह वह शासन-प्रणाली है जिसका नियन्त्रण अधिकारियो के हाथ मे इतनी अधिक मात्रा मे रहता है कि उससे सामान्य नागरिको की स्वतन्त्रताए सकट मे पड जाती है।"[1]

शुद्ध नौकरशाही व्यवस्था, जोकि अपने कार्यों के लिये उत्तरदायी एव जवाबदेह नही होती, राजाओ अथवा निरकुश शासको के शासन मे वर्तमान थी और आजकल यह साम्यवादी (Communistic) तथा सामन्तवादी (Totalitarian) राज्यो मे पाई जाती है।

प्रश्न यह है कि प्रजातन्त्र (Democracy) मे 'नौकरशाही' की आलोचना क्यो की जाती है?

लार्ड हीवर्ट (Lord Hewart) ने 'नई निरकुशता' (The New Depotism) नामक अपनी पुस्तक मे, जोकि सन् १६२६ मे प्रकाशित हुई थी, सिविल-सेवको की आलोचना की। इस पुस्तक का सार यह है कि कार्यपालिका (Executive) जिसमे कि सिविल सेवा भी सम्मिलित है, उस शक्ति को प्राप्त करने का प्रयत्न कर रही है जिसका सम्बन्ध यथोचित दृष्टि से व्यवस्थापिका (Legislature) तथा न्यायपालिका (Judiciary) से है। इसी प्रकार, रैम्जे-म्योर (Ramsay Muir) से 'ब्रिटेन किस प्रकार शासित किया जाता है' (How Britain is governed) नामक अपनी पुस्तक मे, जोकि सन् १६३० मे प्रकाशित हुई थी, कहा कि "नौकरशाही अथवा सेवकतन्त्र अग्नि के समान है जोकि एक सेवक के रूप मे तो बहुमूल्य सिद्ध होती है परन्तु जब वह मालिक या स्वामी (Master) बन जाती है तो घातक सिद्ध होती है।" उन्होने आगे कहा कि "नौकरशाही मन्त्रीय उत्तरदायित्व (Ministerial responsibility) के लबादे मे पनपती तथा बढती है।"[2] अमेरिकन राष्ट्रपति हूवर (Hoover) का कहना था कि "नौकरशाही मे तीन सन्तुष्ट न होने वाली प्रवृत्तियां पाई जाती हैं – अर्थात् आत्म-स्थिरता (Self-perpetuation) आत्म-विस्तार तथा अधिक शक्ति की माग।"

---

1 Prof Harold J Laski in the *Encyclopaedia of the Social Sciences*
2 Ramsay Muir, *How Britain is governed*, Indian Ed Allahabad, p 53

नौकरशाही के दोष
(Defects of Bureaucracy)

(१) **लालफीताशाही** (Red tape)—नौकरशाही की सबसे बडी आलोचना इसके कार्य की नैत्यक अथवा दैनिक प्रकृति (Routine nature) के कारण की जाती है। नौकरशाही अधिकारी औपचारिक (Formal) नियमो तथा विनियमो की बहुत अधिक चिन्ता करते हैं। ये नियम तथा विनियम (Rules and regulations) अनेक बार कार्य को आगे बढाने की बजाए उसमे बाधा डालते हैं। वाल्टर बेजहोट (Walter Bagehot) ने 'अग्रेजी सविधान' (The English Constitutions 1867) नामक अपनी पुस्तक मे नौकरशाही के इस दोप के बारे मे लिखते हुए कहा कि "यह एक अनिवार्य दोष है कि नौकरशाही अधिकारी परिणाम (Result) की अपेक्षा दैनिकता (Routine) की अधिक परवाह करते है, अथवा जैसा कि बर्क (Burke) ने कहा कि "वे कार्य के रूप (Form) को उतना ही महत्व देने लगते हैं जितना कि कार्य की विषयवस्तु अथवा सार (Substance) को।" इस प्रकार सिविल सेवक नियमो तथा विनियमो मे प्रशिक्षण (Training) प्राप्त करते हैं और तब वे उनको लागू करते हैं। परिणाम यह होता है कि वे 'अपने व्यवसाय के ऐसे दर्जी बन जाते है' जोकि कपडो का छाँट (फिटिंग) तो करते है परन्तु उन्हे शरीर का पता नही होता।"[1]

(२) **प्रशासकीय आत्मोन्नति** (Administrative self-promotion)—नौकरशाही अधिकारी जन-कल्याण के लिय उत्साहित होने की बजाए उसके नाम पर ऐसे कार्य करना प्रारम्भ कर सकते है जिन्हे करने की उन्हे वैधानिक दृष्टि से आज्ञा नही होती।

(३) **आत्म-महत्व** (Self-importance)—अन्य मनुष्यो के समान ही सिविल सेवक भी अपनी सत्ता (Authority) तथा अपने महत्व का प्रदर्शन करना चाहते है, जैसा कि शेक्सपियर (Shakespeare) ने कहा है कि "प्रत्येक मनुष्य अपनी सत्ता के छोटे से छोटे क्षण को भी प्यार करता है।"

(४) **वर्गीय चेतना** (Classical consciousness)—नौकरशाही अफसर समाज मे एक पृथक-वर्ग का रूप धारण करने लगते हैं। उनका विचार होता है कि वे अन्य लोगो से श्रेष्ठ होते हैं और इस प्रकार वे शासक व शासित के बीच उपयुक्त सम्बन्ध स्थापित रखने मे असफल रहते है जबकि ऐसा सम्बन्ध लोकतन्त्रीय प्रक्रिया (Democratic process) का एक आवश्यक अग होता है।[2]

---

1 Walted Bagehot, *World classic* Edition, p 171

2 For details also refer to prof William A Robson's—*The Civil Service in Britain and France*, London 1956

निरंकुशता का आरोप
(The Charge of Despotism)

एक ब्रिटिश विधिवेत्ता, लार्ड हीवर्ट (Lord Hewart) ने 'नई निरंकुशता (New Despotism) नामक अपनी पुस्तक मे यह विचार व्यक्त किया कि इन बढ़ती हुई प्रशासकीय निरकुशता के भार के अन्तर्गत ब्रिटिश नागरिक अपनी स्वाधीनतायें खो देंगे। "एक मामूली सी जाच इस बात को स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त होगी कि प्रशासनिक कार्य पर गत कुछ वर्षो मे एक दृढ प्रभाव पड़ता रहा है तथा अब भी पड रहा है और नि सन्देह जिसका असर यह हुआ है कि विभागीय सत्ता तथा क्रियाओ का विशाल एव अधिकाधिक क्षेत्र सामान्य विधि (Law) की पहुच से बाहर हो गया है, चाहे इस प्रभाव का पोषण करने वाली प्रेरणायें व भावनायें कुछ भी क्यो न हो।"[1] लार्ड हीवर्ट का विश्वास था कि व्यक्तिगत स्वाधीनता खतरे मे है। क्योकि 'तीव्र नौकरशाही मनोवृत्ति' के अफसर 'कुछ ऐसे विश्वासो' के साथ काम करते हैं जैसे कि

(१) कार्यपालिक (Executive) का कार्य शासन करना है।
(२) शासन करने के लिए उपयुक्त व्यक्ति केवल विशेषज्ञ (Experts) ही होते है।
(३) सरकारी कार्य के विशेषज्ञ स्थायी पदाधिकारी ही होते है।
(४) उन विशेषज्ञो को प्रचलित परिस्थितियो से व्यवहार करना होता है और वे जिन परिस्थितियो मे भी होते है अपने को उसी के अनुसार सब से अधिक उपयुक्त बना लेते है।
(५) विशेषज्ञ के कार्य मे दो मुख्य बाधाये सामने आती है। एक तो ससद का प्रभुत्व (Sovereignty of Parliament) और दूसरी कानून का शासन (Rule of law)।
(६) अज्ञानी जनता मे जो एक प्रकार की अध-श्रद्धा प्रचलित है वह इन दोनो बाधाओ को दूर करने मे बाधक बनती है। अत विशेषज्ञ को दूसरी बाधा को निरर्थक करने के लिये प्रथम का उपयोग करना चाहिये।
(७) इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये, उसे ससदीय जामा पहन कर पहले मनमानी शक्ति अपने हाथ मे ले लेनी चाहिये और फिर कानूनी अदालतो का विरोध करना चाहिये।

(८) यह सब प्रक्रिया बहुत सरल सिद्ध होगी यदि वह (क) एक मोटी रूप-रेखा की शक्ल मे पास किया हुआ विधान प्राप्त कर सकता है, (ख) उस विधान की खाइयो को स्वय अपने नियमो, विनियमो तथा आज्ञानो से भर सकता है, (ग) ससद के लिये यह कठिन अथवा असम्भव बना सकता है कि वह इन नियमो, विनियमो

1 Hewart of Bury, *The New Despotism*, p 5

तथा आज्ञाओ पर रोक लगाये, (घ) उनके लिए कानून की शक्ति प्राप्त कर सकता है, (ड) अपने निजी निर्णयो को अन्तिम बना सकता है, (च) इस बात की व्यवस्था कर सकता है कि उसके निर्णय के तथ्य ही उसकी वैधता (Legality) के अन्तिम प्रमाण होगे, (छ) कानूनो की धाराओ मे सशोधन करने की शक्ति प्राप्त कर सकता है, (ज) न्यायालय मे की जाने वाली किसी भी प्रकार की अपील को रोक सकता है अथवा उसकी उपेक्षा कर सकता है।

(६) यदि विशेषज्ञ लार्ड चान्सलर के पद को समाप्त कर सकता है, न्यायाधीशो की पद स्थिति को सिविल सेवा की एक शाखा के रूप मे घटा सकता है, और मुकदमो मे पहले ही अपनी राय प्रकट करने के लिये उन्हे बाध्य कर सकता है, और एक 'न्यायमन्त्री' (Minister of Justice) की मार्फत स्वय उनकी नियुक्ति कर सकता है, तब तो सारी बाधाए खत्म हो जायेंगी।"[1]

निरकुशता के इस आरोप के मुख्य कारण का स्रोत 'हस्तान्तरित विधान' (Delegated legislation) है। विधानमण्डल (Legislature) एक कानून पास करता है और उस कानून से सम्बन्धित छोटी-छोटी बातो की पूर्ति का कार्य सिविल सेवको पर छोड देता है। 'नौकरशाही' के आलोचको का यह मत है कि इस प्रकार सिविल सेवक विधान के बारे मे सत्ता हथियाने लगे है। इससे विधान-मण्डल की शक्तिया सीमित होती जा रही हैं। इस आरोप का उत्तर यह है कि जब तक ससद को सिविल सेवको द्वारा किसी भी कानून के सम्बन्ध मे बनाये गये नियमो एव विनियमो पर पुनर्विचार करने की शक्ति प्राप्त है, तब तक हस्तान्तरित विधान को बुरा नही कहा जा सकता। यह तो एक आवश्यकता है और जब तक विधि अथवा कानून की बागडोर विधान-मण्डल के हाथो मे हैं तब तक इस बात का खतरा नही है कि सिविल सेवक अपनी शक्तियो का प्रयोग करते समय निरकुश बन जायेंगे।

निम्नलिखित उपाय 'नौकरशाही' को इसके अनेक दोषो से मुक्त कर सकते है —

इन दोषो को दूर करने के लिए सुझाव

(Suggestions for the Removal of these Defects) :

(१) नौकरशाही (Bureaucracy) की शक्तियो को सीमाओ के अन्तर्गत रखने के लिए सत्ता का विकेन्द्रीकरण (Decentralisation of authority) होना चाहिए। विकेन्द्रीकरण 'नौकरशाही' अधिकारियो की बढती हुई सत्ता पर लगाया जाने वाला सबसे अधिक शक्तिशाली अवरोध (Check) है। अत्यधिक केन्द्रीकरण (Centralisation) के कारण 'नौकरशाही' अधिकारियो मे निम्नलिखित बुराइया पनप जाती है "पृथक्ता, लोचहीनता, भावुकता का अभाव, स्थानीय दशाओ के विषय मे अज्ञानता, कार्य मे विलम्ब या टालमटोल करना, कार्य का बेढगापन तथा आत्म-सन्तुष्टि।"[2]

---

1 Lord Heward, *New Despotism*, pp. 13-14
2 Prof William A. Robson, *The Civil Service in Britain and France*

(२) सिविल सेवकों पर संसद तथा मन्त्रि-मण्डल का नियन्त्रण प्रभावशाली होना चाहिए।

(३) ऐसे प्रशासकीय न्यायाधिकरणों (Administrative tribunals) की स्थापना होनी चाहिए जिनके सम्मुख नागरिक सिविल सेवकों के विरुद्ध अपनी शिकायतें रख सकें और अपने दुखों को दूर करा सकें। बिना किसी भेदभाव के प्रत्येक नागरिक को यह अवसर प्राप्त होना चाहिए कि वह इनके द्वारा अपने दुखों व अपनी पीडाओं को दूर करा सके।

प्रोफेसर रोबसन (Robson) ने यह सुझाव दिया है कि

(१) सिविल सेवक पूर्णतया समाज मे एकीकृत होने चाहियें। सिविल सेवा एक सामान्य नागरिक तक के प्रति भी जवाबदेह होनी चाहिए। ऐसा न हो कि सिविल सेवक स्वय एक पृथक् वर्ग अथवा जाति का रूप धारण कर लें।

(२) सिविल सेवा मुख्यत विभिन्न सामाजिक तथा आर्थिक वर्गों की प्रतिनिधि (Representative) होनी चाहिए।

(३) शासकों (Governors) तथा शासितों (Governed) के बीच अर्थात् सरकारी विभागों (Government departments) तथा उन लोगों के बीच, जिनकी कि वे सेवा करते हैं, पत्र-व्यवहार अथवा सन्देशों के आदान-प्रदान की एक प्रभावशाली तथा सतत् व्यवस्था होनी चाहिए।

(४) प्रशासन मे सामान्य मनुष्यों अथवा गैर-सरकारी व्यक्तियों को सक्रिय रूप मे भाग लेना चाहिए। "एकीकरण (Integration), पत्र-व्यवहार अथवा संदेशों का आदान-प्रदान (Communications) तथा प्रशासन मे भाग लेना (Participation) - ये शब्द उन लोगों को सदा दृष्टिगत रखने चाहियें जोकि यह चाहते हैं, कि प्रजातन्त्रीय सरकार की आवश्यकताओं एव आकाक्षाओं के साथ लोकप्रशासन के सगठनात्मक सम्बन्ध कायम हो। इससे सुधार की ऐसी प्रवृत्तियाँ जागृत होती हैं जिनका यदि अनुसरण किया जाये तो ये सिविल सेवा को सर्वाधिक मात्रा मे योग्य समर्थ जवाबदेह तथा उत्तरदायी बना देंगी।[1]

निष्कर्ष के रूप मे हम यह कह सकते हैं कि 'नौकरशाही' अधिकारी (Bureaucrats) राष्ट्र की सेवा करते हैं। अत उचित अवसर पर उनकी प्रशसा की जानी चाहिए और जब उनकी आलोचना की आवश्यकता हो, तो आलोचना भी की जानी चाहिए। नौकरशाही आधुनिक युग की एक अनिवार्य आवश्यकता है और इसको पूर्णत समाप्त करने की बात अविवेकपूर्ण तथा अवैधानिक है। होना यह चाहिए कि केवल अवरोध (Checks) ही इस प्रकार लगाये जायें कि जिससे 'नौकरशाही' अधिकारी जनता के वास्तविक सेवक बने रहें।

———

1 Prof William A, Robson, *op cit*, pp 13-15

१५

सिविल अथवा असैनिक सेवा—इसके कार्य और विभिन्न पद्धतिया

(Civil Service—Its Functions And Various Systems)

सिविल सेवक (Civil servants) सरकार के वैतनिक कर्मचारी होते हैं। न्यायाधीश (Judges), सैनिक तथा अन्य अनेक व्यक्ति भी सरकारी कर्मचारी होते है परन्तु उन्हे सिविल सेवक नही माना जाता। ब्रिटिश राजकोष (British Treasury) द्वारा दी गई निम्नलिखित परिभाषा सिविल सेवा की व्याख्या के लिए एक सुविधा-जनक मार्ग प्रस्तुत करती है

"मुख्य रूप मे सिविल सेवक की परिभाषा इस प्रकार की जा सकती है कि सम्राट् (Crown) का सेवक (जो कोई राजनीतिक अथवा न्यायिक पद नही रखता), जो सिविल स्थिति मे नियोजित होता है और जिसका पारिश्रमिक (Remuneration) पूर्णतया ससद द्वारा उपबन्धित धन मे से दिया जाता है।" सिविल सेवा की दो मुख्य श्रेणिया होती है निम्न लिपिक वर्ग तथा उच्च प्रशासकीय अधिकारी वर्ग। उक्त प्रशासकीय अधिकारी विभाग (Department) के राजनैतिक प्रमुख से प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित होते हैं। वे नीतियो का निर्माण करने मे सरकार के मन्त्रियो (Ministers) की सहायता करते हैं और राज्य के बडे विभागो का नियन्त्रण एव निर्देशन करते है। इन उच्च पदाधिकारियो को कभी-कभी सिविल अथवा असैनिक सेवा का 'सार भूत वर्ग' (Elite class) कहा जाता है। सिविल सेवा मे प्रशासक (Administrators) तथा, साथ ही साथ, तकनीकज्ञ (Technicians) जैसे कि इजीनियर, डाक्टर और ड्राफ्ट्समैन (नक्शानवीस) सम्मिलित होते हैं। यहाँ हमारा सम्बन्ध मुख्यत उच्च प्रशासकीय वर्ग की समस्याओ से ही रहेगा।

सिविल सेवको का मुख्य कार्य देश की विधि अथवा कानून (Law) का प्रबन्ध करना है। वे निष्ठा से, निष्पक्षता से तथा राजनैतिक दृष्टि से तटस्थ रह कर विधि को कार्यान्वित करते है। सिविल सेवा के उच्च पदाधिकारी नीति-निर्माण विधान (Legislations) तथा कराधान (Taxation) के मामलो मे अपने राजनैतिक प्रमुखो (Political heads) पर भारी प्रभाव डालते है। सिविल सेवक विशिष्ट परामर्श प्रदान करते हैं और तथ्य एव आँकडे (Facts and figures) प्रस्तुत करते हैं जिनके बिना आधुनिक युग मे विधि का निर्माण करना (Law-making) अव्यावहारिक एव दुष्कर है। कोई भी विधेयक (Bill) जोकि ससद के सामने प्रस्तुत किया जाता है उस महान् श्रम, तथा शक्ति का एक प्रमाण होता है जोकि सिविल सेवको द्वारा उसके

तैयार करने मे लगाई जाती है। वित्तीय क्षेत्र मे, सिविल मेवक केवल बजट ही तैयार नही करते, अपितु एक बडी मात्रा मे सरकार की कराधान तथा व्यय नीति (Taxation and expenditure policy) को भी प्रभावित करते हैं। सिविल सेवक विभागो का सचालन करते हैं और मन्त्रियो के, जिनके पास कि शायद ही कभी समय, ज्ञान तथा बिना सहायता के नीति-निर्माण करने की प्रवीणता होती है, नीति सम्बन्धी निर्णयो पर भारी प्रभाव डालते हैं। प्रशासक विधान-मण्डल के कानूनो की व्याख्या एव विश्लेपण भी करते हैं और अनेक बार तो उनसे ससद के कानूनो के अन्तर्गत नियम तथा विनिमय बनाने को कहा जाता है (हस्तान्तरित विधान)। अपने राजनैतिक प्रधानो को वे परामर्श भी देते हैं। मन्त्री अपने वरिष्ठ अधिकारियो के परामर्श पर भरोसा करते हैं। रैम्जे म्योर (Ramsay Muir) ने इस तथ्य को सुन्दर रूप मे व्यक्त किया है यद्यपि उसमे काफी अतिशयोक्ति (Exaggeration) है। उन्होने कहा कि "एक नवनियुक्त मन्त्री का विचार करो जिसे कि अपना पद सामान्य राजनीति के क्षेत्र मे प्राप्त सफलताओ के प्रतिफल मे मिला है। अधिकाश मामलो मे यह देखा गया है कि जिस विभाग का उसे अध्यक्ष बनाया गया है उसके विशाल तथा जटिल कार्यों का उसे विशिष्ट ज्ञान नही होता • । उसको ऐसे अधिकारियो के साथ कार्य करना पडता है जो विभाग की समस्याओ के अध्ययन मे अपना पूरा समय लगाते हैं तथा जिनका विगत जीवन भी उन्ही समस्याओ के अध्ययन मे व्यतीत हुआ है जबकि वह (मन्त्री) ससार मे अपनी प्रतिष्ठा कायम करने, अपनी स्थिति बनाने अथवा सार्वजनिक मचो पर धारा-प्रवाह भाषण देने मे व्यस्त रहा करता था। वे उसके सामने सैकडो कठिन समस्याए निर्णय के लिये लाते हैं, जिनमे से अधिकाश के विषय मे वह कुछ नही जानता। वे उसके समक्ष सबसे अधिक निश्चयात्मक तर्कों एव तथ्यो से युक्त अपने सुझाव रखते हैं। यह स्पष्ट है कि जब तक कि वह एक स्वाभिमानी गधा अथवा असाधारण समझ, शक्ति एव साहस वाला व्यक्ति ही न हो ६६ प्रतिशत मामलो मे वह उनके विचारो से अपनी सहमति प्रकट करेगा और बिन्दुचिह्नित स्थान पर अपने हस्ताक्षर कर देगा • । इस प्रकार लगभग सदैव कार्यालय की नीति ही विजयी होती है। इसकी शान्त दृढता व शान्त व्यवधान अथवा रुकावट की शक्ति तथा तथ्यो की पूर्ण जानकारी इसके ऐसे सबल अस्त्र हैं जिन पर एक असाधारण योग्यता का व्यक्ति ही विजय पा सकता है।"[1]

मन्त्रियो पर सिविल सेवा का प्रभाव निम्नलिखित तीन तत्वो पर निर्भर होता है

(१) सिविल सेवा का प्रभाव वरिष्ठ मन्त्रियो (Senior Ministers) की अपेक्षा उन मन्त्रियो पर अधिक होता है जिनके लिये कि अपना काम नया-नया होता है।

---

1 Ramsay Muir, *How Britain is government*, pp 42 43

(२) यह तथ्यो एव आँकडो के बारे मे उनके ज्ञान पर निर्भर होता है। यदि वे अपने कार्य तथा विभाग से सम्बन्धित तथ्यो एव आँकडो से अच्छी प्रकार परिचित हैं तो वे मन्त्रियो पर अधिक प्रभाव डाल सकेंगे।

(३) सरकार पर सिविल सेवा का प्रभाव इस बात पर निर्भर होता है कि सरकार उसका किस प्रकार उपयोग करती है। जब कोई ऐसा दल (Party) शासनारूढ होता है जोकि यथापूर्व स्थिति कायम रखने के लिए दृढप्रतिज्ञ होता है तो सिविल सेवा केवल नियामक कार्यों को ही सम्पन्न करती है और जब कोई ऐसा दल पदारूढ होता है जो सामाजिक परिवर्तनो से सयुक्त हो तो सिविल सेवा अधिक सक्रिय (Active) हो जाती है और इसका प्रभाव भी अधिक पडता है।"[1]

लूट-खसोट बनाम योग्यता प्रणाली
(Spoils *Versus* Merit system) :

यह सर्वविदित है कि अमेरिकी कार्मिक व्यवस्था (American personnel system) 'लूट-खसोट प्रणाली' (Spoils system) पर आधारित थी अर्थात् विजेता राजनैतिक दल, इस सिद्धान्त के अनुसार कि 'उपलब्ध द्रव्य पर विजेताओ का ही अधिकार होता है', सभी सरकारी पदो पर अपने दल के आदमियो को पदारूढ करता था। सरकारी अथवा लोक-पदो (Public offices) को 'लूट का माल या द्रव्य (Spoils) समझा जाता था जिसका उपयोग चुनाव (Election) मे विजयी होने वाला राजनैतिक दल करता था।

ससार के लगभग सभी देशो मे कर्मचारी-वर्ग की नियुक्ति के आधार के रूप मे योग्यता सिद्धान्त (Merit principle) के प्रचलन से पूर्व सरक्षणता (Patronage) की पद्धति वर्तमान थी। फ्रास की कार्मिक व्यवस्था के इतिहास के बारे मे लिखते हुए प्रो० हरमन फिनर (Hermen Finer) ने कहा कि "फ्रास मे क्रान्ति (Revolution) होने तक राज्य भर मे दर्जन भर अथवा कुछ अत्यन्त ऊचे पदो को छोडकर लगभग प्रत्येक केन्द्रीय अथवा स्थानीय पद (Office) केवल व्यक्तिगत क्रय (Purchase), उपहार (Gift) अथवा उत्तराधिकार (Inheritance) के द्वारा प्राप्त किया जा सकता था। सभी सरकारी पद व्यक्तिगत सम्पत्ति (Private property) की ही एक किस्म बन गये थे और एक विस्तृत व्यवहार-शास्त्र (Jurisprudence) के द्वारा इनके हस्तान्तरण की व्यवस्था की जाती थी। ये पद, जोकि बेचे जा सकते थे तथा वश-परम्परा मे प्राप्त किये जा सकते थे, द्विमुखी प्रकृति के थे एक तो वे सम्पत्ति (Property) बने हुए थे और दूसरे उनका रूप सरकारी कार्य (Public function) का था। उस समय कोई भी व्यक्ति जो कि पद प्राप्त करना चाहता था, मालिक से उसे सम्पत्ति के रूप मे खरीद लेता था और फिर उस पद का कार्य चालू करा दिया करता था। क्रेता सम्राट को यह अवसर प्रदान करता

1 Also refer to, The Civil Service To-day, E H Dale, the Higher Civil Service of Great Britain William A Robson, The Civil Service in England and France

था कि वह (सम्राट) उससे उस पद को सभालने की क्षमता की गारन्टी की मांग कर सकें, परन्तु वास्तव मे, सम्राट तथा उसके पदाधिकारी, जिनके रजिस्टरो मे इन हस्तान्तरणो तथा पदनियुक्तियो का लेखा लिखा जाता था, ऐसी गारन्टियो की माग ही नही करते थे। वे तो व्यक्तिगत रूप से मिलने वाली फीसो, रिश्वतो तथा ऐसी ही अन्य बातो से पूर्णतया सन्तुष्ट रहते थे। वैसे कोई भी व्यक्ति किसी पद की कीमत देकर कानूनी रूप से उसका अधिकारी नही बन सकता था लेकिन व्यवहार मे, प्रत्येक व्यक्ति कीमत चुका कर पद प्राप्त कर लेता था। योग्यता (Ability) का यदि धन अथवा परिवार का समर्थन प्राप्त नही था तो वह सरकारी पदो से बिल्कुल बहिष्कृत ही थी। सक्षेप मे, व्यवस्था यह थी कि धन लेकर पदो की बिक्री की जाती थी और वह बिक्री पक्षपात से प्रभावित होती थी।"[1]

इगलैण्ड मे भी सरक्षणता की व्यवस्था वर्तमान थी। एडवर्ड बर्क (Edward Burke) ने ११ फरवरी १७८० को लोकसभा (House of Commons) मे दिये गये एक भाषण मे "ससद (Parliament) की स्वतन्त्रता की अधिक सुरक्षा की तथा सिविल सेवा व अन्य सस्थाओ मे अल्प-व्यय सम्बन्धी सुधार की एक योजना प्रस्तुत की" जिसमे उन्होने कार्मिक व्यवस्था (Personnel system) की आलोचना की और "उसके उस बडे मूलभूत दोष का उल्लेख किया कि न तो व्यवस्था उद्देश्य से मेल खाती है और न कर्मचारी कार्य से।"

लूट-खसोट प्रणाली इस विश्वास के कारण अधिक प्रचलित हो गई थी कि दलीय राजनीति का सचालन सर्वोत्तम तरीके से उन्ही व्यक्तियो के द्वारा किया जा सकता है जोकि दल (Party) के सिद्धान्तो तथा उसकी विचारधाराओ मे विश्वास रखते हो। अत असैनिक अथवा सिविल सेवा मे केवल अपने दल के सदस्यो को ही नियुक्त किया जाना चाहिये। यह समझा जाता था कि दल के व्यक्ति के रूप मे प्रशिक्षण (Training) प्राप्त करना ही लोक-सेवक (Public servant) बनने के लिए पर्याप्त योग्यता है। विलियम टर्न (William Turn) ने सरक्षणता की प्रणाली (System of patronage) की पैरवी करते हुए आधुनिक सिविल सेवा के कर्मचारियो की आलोचना की है। उन्होने कहा कि —

"यह एक अनोखी पद्धति है जिसमे यह माना जाता है कि मनुष्य शारीरिक अवयवो के सरल मिश्रण (Simple organic compounds) हैं जोकि प्रयोगशाला की विधियो (Laboratory methods) के आधीन होते हैं। इनके नमूनो के परीक्षण किये जाते हैं और उनके परिणामो के आधार पर उनकी सूचियाँ बनाली जाती हैं तथा उनको उस समय तक फाइलो मे रखा जाता है जब तक कि उनकी आवश्यकता नही होती । उनका विश्वास है कि सिविल सेवक विचारशील नही होते, सरक्षण प्राप्त कर्मचारियो (Patronage employees) के समान उनकी प्रशासन मे कोई अभिरुचि या टेक (Stake) नही होती और वे काफी लम्बी अवधि तक अपने

1 Herman Finer, *op ct*, pp 750-751

पदो पर बने रहते है , वे दैनिक कार्य के अभ्यासी व्यक्ति बन जाते हैं , उस घोडे के समान, जिसकी दोनो आँखो की ओर को आड के लिए पट्टिया लगी रहती हैं, वे केवल एक ही दिशा की ओर को देखते है ।"[1]

कर्मचारियो की नियुक्ति के लिये लूट प्रणाली के प्रचलन की अन्य प्रेरणाये इस कारण उत्पन्न होती थी कि विजयी दल अपने कार्यकर्त्ताओ अथवा मित्रो को सरकारी पद देकर उनके प्रति आभार प्रदर्शित करता था । जब एक दल ऐसा करता था तो अन्य दल भी, जैसे ही वह शक्ति प्राप्त करता था, ऐसा ही करता था । एक दल जब अपने प्रतिद्वन्दियो का इस प्रकार बहिष्कार करता था तो दूसरा दल भी शासनारूढ होने पर इसका बदला लेता था । शासनारूढ दल के परिवर्तन के साथ ही सिविल सेवा के कर्मचारी भी बदल दिये जाते थे । सरक्षणता के पक्ष मे प्रस्तुत किया जाने वाला सबसे अधिक महत्वपूर्ण कारण यह था कि सरकार उस समय तक अपनी नीतियो को अधिकतम प्रभावपूर्ण रीति से क्रियान्वित नही कर सकती जब तक कि उसके प्रमुख कर्मचारी उन उद्देश्यो के प्रति पूर्णतया सहानुभूति न रखें जिन्हे कि प्राप्त करने के लिये वह प्रयास कर रही है ।

यह बात तो अब बिल्कुल स्पष्ट रूप से तथा बिना किसी सदेह के कही जा सकती है कि 'लूट प्रणाली' से प्रशासन (Administration) मे अनेक बुराइयाँ आ जाती हैं । प्रशासन भ्रष्टाचारी (Corrupt) तथा अकुशल हो जाता है । देश का राजनैतिक जीवन बडा गदा हो जाता है क्योकि विभिन्न दलो का मुख्य ध्येय यही होता है कि विधान-मण्डल (Legislature) मे अधिक से अधिक स्थान (Seates) प्राप्त किये जायें जिससे कि सरकारी पदो पर अपने कार्यकर्त्ताओ तथा समर्थको को नियुक्त किया जा सके । दल के अयोग्य तथा भ्रष्टाचारी कार्यकर्त्ता उच्च प्रशासकीय पदो पर नियुक्त कर दिये जाते है । यह सम्पूर्ण व्यवस्था राजनीति (Politics) तथा प्रशासन के प्रति सार्वजनिक घृणा उत्पन्न करती है । **जार्ज विलियम करटिस** (George William Curtis) ने लूट प्रणाली के गभीर दोषो के बारे मे लिखते हुए कहा कि

"लोक सेवा (Pubilc service) का दलीय आधार पर दुरुपयोग करना लोक-प्रिय सरकार के प्रति मौलिक विश्वासघात है क्योकि इसके द्वारा सार्वजनिक कल्याण (Public welfare) की बजाय व्यक्तिगत स्वार्थ राजनैतिक कार्यों का प्रेरणा स्रोत बन जाता है •• •। लूट प्रणाली की प्रमुख बुराइयो मे से एक यह है कि सरक्षणता (Patronage) के प्रमादपूर्ण दुरुपयोग तथा अत्यधिक अपव्यय एव भ्रष्टाचार ने दल को इतना अधिक निरकुश तथा स्वच्छन्द बना दिया है कि देश का सद्विवेक तथा बुद्धि-मत्ता अधिकतर सिद्धातहीन अज्ञानता और धृष्ठतापूर्ण चालाकी की दासता मे बध गये हैं ।"

---

1 William Turn In defence of Patronage,' in "Improved Personnel in Government Service"

योग्यता प्रणाली
(Merit System) .

लोग अब यह अनुभव करने लगे हैं कि पद (Office) 'योग्य' व्यक्ति को दिया जाना चाहिये, विजयी' (Victor) को नही। सभी लोकतन्त्रीय देशो मे 'सिविल सेवा योग्यता सिद्धात' (Merit principle) पर आधारित है। सयुक्त राज्य अमेरिका मे, जो कि लूट-प्रणाली की कुख्यात भूमि रही है, 'पेन्डलटन अधिनियम' (Pendleton Act) के पास होने के साथ ही, सन् १८८३ मे सुधार आदोलन प्रारम्भ हुआ था। एक सधीय सिविल सेवा आयोग (Federal Civil Service Commission) की स्थापना की गई थी। सिविल सेवा के पदो का क्रमानुसार वर्गीकरण कर दिया गया था और उनको नियुक्ति के नियमो के अधीन कर दिया गया था।

'योग्यता प्रणाली' का अर्थ है—

(१) केवल योग्य एव समर्थ व्यक्ति ही सिविल अथवा असैनिक पदो पर नियुक्त किये जायेंगे। प्रत्याशी अथवा उम्मीदवार (Candidates) की योग्यता अथवा क्षमता ही सिविल सेवा के चुनाव का आधार होगी।

(२) प्रत्याशियो (Candidates) की क्षमता अथवा योग्यता का निर्णय एक निष्पक्ष तथा स्वतत्र सेवा आयोग के द्वारा किया जायेगा।

(३) भर्ती (Recruitment) खुली प्रतियोगिता के द्वारा होगी।

(४) पदो (Posts) के लिए प्रतियोगिता करने वाले सभी नागरिको को समान अवसर प्रदान किये जायेंगे।

(५) किसी भी दल से सम्बन्धित होने के आधार पर नागरिक-नागरिक मे कोई भेद नही किया जायेगा। सभी नागरिको के साथ न्याय किया जायेगा।

(६) लोगो की नियुक्तियाँ दलीय आधार (Party basis) पर नही की जायेंगी। व्यक्तियो को पद के लिए उनकी योग्यता के आधार पर चुना जायेगा, राजनैतिक सेवाओ के पुरस्कार के आधार पर नही।

(७) पद के कार्यकाल के विषय मे स्थायित्व (Parmanence) रहेगा। सिविल सेवा का भाग्य राजनैतिक दल के भाग्य के साथ नही बधा रहेगा।

(८) सिविल सेवक राजनीति मे तटस्थ (Neutral) रहेगे।

(९) पदोन्नतियाँ (Promotions) भी योग्यता के आधार पर ही किये जायेंगे।

योग्यता प्रणाली सिविल सेवा मे पद के लिए दलबन्दी के आधार पर की जाने वाली खीचतान के द्वारा उत्पन्न होने वाले अनैतिक प्रभाव को दूर करती है। योग्यता प्रणाली के अन्तर्गत सिविल सेवक किसी भी दल (Party) के बजाय सरकार के प्रति वफादार रहते हैं। योग्यता प्रणाली कर्मचारियो को पदावधि (Tenure) की सुरक्षा प्रदान करती है जिसके बिना कोई भी तकनीकी अथवा व्यावसायिक अधिकारी अपना कार्यालय का काम नही कर सकता। यह प्रणाली सिविल सेवा को एक

व्यवसाय (Profession) के रूप मे ऊपर उठाती है और इस प्रकार सेवा के अन्तर्गत उच्च कोटि के विशिष्टीकरण (Specialisation) को सम्भव बनाती है जो कि सरकार द्वारा उन अनेक तकनीकी (Technical) कार्यों की पूर्ति के लिए अत्यन्त आवश्यक होता है जिनका भार आजकल सरकार अपने ऊपर लेती है।

उचित पदो पर उचित एव योग्य व्यक्ति ही नियुक्त किये जायेंगे और राज्य के किसी भी पद के लिए प्रतियोगिता के एक समान अवसर प्रदान करके सभी नागरिको के साथ पूर्ण न्याय किया जायेगा। सिविल सेवा की नियुक्तियो के समय योग्यता ही एकमात्र विचारणीय बात होगी।

आधुनिक सिविल सेवा विधियो (Laws) का इस प्रकार निर्माण किया गया है कि जिससे लोक कर्मचारियो के चुनाव की योग्यता प्रणाली को लागू किया जा सके

(१) राजनैतिक विचारो के आधार पर कर्मचारियो को पदो पर नियुक्त करना अथवा हटाना अब अवैधानिक (Illegal) कर दिया गया है।

(२) किसी भी दल के सगठन के लिए कर्मचारियो को अपनी सेवायें अथवा धन देने को बाध्य करना भी अवैधानिक है।

(३) भर्ती तथा पदोन्नति आदि के मामलो मे सिविल सेवा पर नियन्त्रण लागू करने के लिए एक स्वतत्र एव निष्पक्ष सिविल सेवा अभिकरण (Agency) की स्थापना की गई है।

(४) सिविल सेवा के पदो पर नियुक्तियाँ करने के लिए लिखित परीक्षाओ (Written examinations) तथा अन्य लघु परीक्षाओ अथवा जाचो पर आधारित कार्यविधियो (Procedures) की एक पद्धति का निर्माण किया है।

(५) राजनैतिक विचारो के आधार पर कर्मचारियो को अपने पदो से हटाये जाने के विरुद्ध सुरक्षा प्रदान करने के लिए भी कार्यविधियो की एक पद्धति की स्थापना की गई।

प्रत्येक पद पर सबसे अधिक योग्य व्यक्ति की ही नियुक्ति की जानी चाहिये। "यह आदर्श अथवा लक्ष्य हमारे समाज मे व्यापक रूप मे मान्य कुछ महत्ताओ का एक प्रतिबिम्ब (Reflection) है, अर्थात् यह कि (१) प्रशासकीय क्षेत्र मे, कर्मचारियों का सम्बन्ध सरकारी सेवा की कुशलता (Efficiency) मे होना चाहिये और यह कि कर्मचारियो की योग्यता एव क्षमता ही प्राप्त की जाने वाली कार्य-कुशलता के स्तर का मुख्य निर्धारक तत्व होनी चाहिए, (२) यह कि प्रशासकीय शाखा के कर्मचारी "नीति" (Policy) के मामलो—अर्थात् मूलभूत महत्व के प्रश्नो—से सम्बन्धित नही होते हैं अत सिविल सेवा राजनैतिक दृष्टि से तटस्थ रह सकती है। और रहनी भी चाहिए, और (३) यह कि सरकारी नौकरियो के आर्थिक अवसर सभी नागरिको के लिये बिना किसी पक्षपात के उपलब्ध होने चाहियें।"[1]

---

1 *Public Administration*, Herbert A Simon

योग्यता प्रणाली के कारण विभिन्न राष्ट्रो के राजनैतिक जीवन मे निखार आ गया है और कर्मचारियो के लिए, जो कि योग्यता के आधार पर चुने जाते हैं, यह सम्भव हो गया है कि वे सरकारी नौकरी को अपना स्थायी जीवन-क्रम बना सकें। अब कोई भी नागरिक राज्य के किसी भी पद को पाने की आशा कर सकता है। इस प्रकार योग्यता प्रणाली 'सभी के लिए समान अवसर तथा समान व्यवहार' के लोक तत्रीय सिद्धात का ही एक विस्तार है। इस प्रणाली के अन्तर्गत सरकारी कर्मचारियों को दलीय उद्देश्यो की पूर्ति के लिए अपने पदो की शक्तियो के दुरुपयोग करने का कोई प्रलोभन नही मिल सकता।

कुलीनतन्त्रीय तथा प्रजातन्त्रीय प्रणाली
(Aristocratic and Democracy System) :

प्राय दो अन्य प्रकार की कार्मिक-प्रणालियो (Personnel system) का उल्लेख भी किया जाता है। वे कुलीनतत्रीय और प्रजातत्रीय किस्म की कार्मिक प्रणालियाँ हैं। यदि कर्मचारियो के निर्देशक-वर्ग की नियुक्ति, प्रतियोगिता के द्वारा नही बल्कि नियोक्ता प्राधिकारी (Appointing authority) के व्यक्तिगत विवेक के आधार पर समाज के केवल उच्च श्रेणी के लोगो मे से ही की जाती है तो उसे कुलीनतत्रीय किस्म की कार्मिक प्रणाली की सज्ञा दी जाती है। इसमे सिविल सेवा के उच्च पदो पर समाज के केवल उच्च-वर्ग के व्यक्तियो का ही एकाधिकार (Monopoly) होता है और देश की बहुसख्यक जनता देश के प्रशासन मे भाग लेने से वचित हो जाती है। **विलोबी** *(Willoughby)* ने ब्रिटिश सिविल सेवा को कुलीन-तत्रीय प्रणाली का नाम दिया है क्योकि केवल आक्सफोर्ड तथा केम्ब्रिज विश्व-विद्यालयो के स्नातक (Graduates) ही इसमे सम्मिलित हो सकते है, और केवल धनिक व्यक्तियो के लडके तथा लडकिया ही आक्सफोर्ड तथा केम्ब्रिज विश्वविद्यालयो की महगी शिक्षा के व्यय का भार उठा सकते हैं।

प्रजातत्रीय प्रणाली मे, सरकारी सेवा मे, प्रवेश के लिए आयु की कोई सीमा नही होती और कर्मचारियो को यह अवसर प्राप्त होता है कि वे सिविल सेवा मे ऊचे से ऊचे पद पर पहुँच सकें। कोई भी व्यक्ति सिविल अथवा असैनिक सेवा के सबसे नीचे के पद पर नियुक्त होकर क्रमश सबसे ऊपर के पद पर अर्थात् सीढी के ऊपर के डण्डे पर पहुँच सकता है। प्रजातत्रीय प्रणाली के तत्व योग्यता प्रणाली (Merit system) मे पाये जाते हैं जिसका पहले ही ऊपर विवेचन किया जा चुका है।

———

१६

जीवनवृत्ति के रूप में सरकारी सेवा

(Government Service as a Career)

सरकारी सेवा अथवा सरकारी नौकरी (Government service) के सम्बन्ध मे एक अत्यन्त महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि सिविल सेवको को उसके सम्बन्ध मे आकर्षण प्रदान किया जाना चाहिए जिससे कि वे सरकारी सेवा को एक स्थायी जीवनवृत्ति (Permanent career) के रूप मे अपना सकें। ऐसी दशायें उत्पन्न की जानी चाहियें कि जिनके द्वारा लोगो को उनके सम्पूर्ण जीवन के लिए सरकारी सेवा मे प्रवेश के लिये आकर्षित किया जा सके।

दिसम्बर १६३३ मे, अमेरिका की सामाजिक विज्ञान अनुसधान परिषद् (Social Science Research Council) ने लोक सेवाओ की जाँच के लिए एक आयोग (Commission) की नियुक्ति की, जिसने जीवनवृत्ति की दृष्टि से सरकारी सेवा की स्पष्ट रूप से परिभाषा की। आयोग के शब्दो मे 'हम सिफारिश करते हैं, कि सरकार का दिन-प्रतिदिन का प्रशासनिक कार्य निश्चित रूप से जीवनवृत्ति सेवा (Career service) बन जाये। इससे हमारा अभिप्राय यह है कि ऐसे पग उठाये जायें कि सरकारी सेवा एक श्रेयस्कर जीवनचर्या बने, क्षमता, चरित्र तथा निष्ठा वाले युवक व युवतियो के प्रवेश के लिए सरकारी सेवा खुली रहे तथा आकर्षक बनी रहे, और विकास तथा सेवा के आधार पर विशिष्टता और सम्मान के पदो के लिए उन्नति के अवसर सुलभ हो।'[1]

इस प्रकार आयोग ने जीवनवृत्ति (Career) को इस तरह परिभाषित किया कि "यह एक सामान्य व्यवसाय है जिसे कि एक व्यक्ति सामान्यतया प्रगति की आशा से अपनी युवावस्था मे अपनाता है तथा जो निवृत्ति-काल (Retirement) तक रहता है।" आयोग ने सरकार मे जीवन-वृत्ति सेवा (Career service) की परिभाषा इस प्रकार की, कि "यह एक लोक-सेवा अथवा सरकारी सेवा (Public service) है जिसका सगठन इस प्रकार किया जाता है कि जिससे जीवनवृत्तियो को प्रोत्साहन मिले।[2]"

जीवनवृत्ति सेवा का उद्देश्य यह है कि सरकारी सेवाओ मे गुणो तथा अभिलाषाओ वाले युवक व युवतियो को आकर्षित किया जाये तथा रखा जाए। प्रगति

1 Better Government Personnel, 1935 p 3
2 Better Government Personnel, 1935 p 25

तथा पदोन्नति के ऐसे अवसर प्रदान किये जायें, कि जिससे लोगो को सरकारी सेवा को स्थायी जीवनवृत्ति के रूप मे चुनने की प्रेरणा मिले। इस प्रकार सरकार को ऐसी दशायें उत्पन्न करनी चाहिए कि जिनमे सिविल सेवक सन्तोष अनुभव करें और अपने आपको सर्वोत्तम रूप मे सेवा मे लगा सके। एक जीवनवृत्ति सेवा अच्छे तथा कुशल प्रशासन का सर्वश्रेष्ठ बीमा (Insurance) है। लोग सरकारी सेवा को अपनी स्थायी जीवनवृत्ति के रूप मे केवल तभी अपना सकते हैं जबकि योग्यता के अनुसार उन्नति करने के अवसर प्रदान किये जायें। यदि भावना यह है कि सरकारी सेवा में प्रवेश के पश्चात् प्रगति के समस्त अवसर नष्ट हो जाते है तो किसी भी व्यक्ति के लिए ऐसा कोई आकर्षण नही रहेगा कि वह सरकारी सेवा को एक स्थायी जीवन-वृत्ति के रूप मे अपनाये।

जीवनवृत्ति के रूप मे सरकारी सेवा को स्थापना करने के लिए तथा सेवा मे सर्वोत्तम गुणो वाले व्यक्तियो को आकर्षित करने के लिए कुछ अनिवार्यताओ का ध्यान रखना होता है। वे निम्नलिखित हैं

(१) सभी नागरिको को सरकारी सेवा मे प्रवेश के लिए 'समान अवसर' प्राप्त होने चाहियें।

(२) समान कार्य के लिए समान वेतन मिलना चाहिए।

(३) पदोन्नति (Promotion) तथा प्रगति के समान अवसर प्रदान किये जाने चाहियें। पदोन्नति योग्यता (Merit) के आधार पर होनी चाहिए, उच्च पदाधिकारियो के व्यक्तिगत पक्षपात के आधार पर नही। सरकारी सेवा मे योग्य व्यक्तियो के लिए ऐसे अवसर उपलब्ध होने चाहिए कि वे ऊचे से ऊचे वेतन वाले पदो तक उन्नति कर सकें। यदि सरकारी सेवा मे योग्य तथा गुणो वाले व्यक्तियो को रखना है तो उनकी श्रेष्ठ योग्यताओ के विकास का एक उपयुक्त द्वार अवश्य खुला रहना चाहिए।

(४) पद की सुरक्षा और स्थिरता होनी चाहिए। पद मालिक अथवा नियोक्ता (Employer) की सनक, तरग अथवा कृपा पर निर्भर नही होना चाहिये। अयोग्य व्यक्तियो को पदच्युत (Dismiss) कर दिया जाना चाहिए किन्तु इससे पूर्व उन्हे अयोग्यता अथवा असमर्थता के आरोपो (Charges) का जवाब देने के लिए समुचित अवसर प्रदान किये जाने चाहियें।

जीवन-वृत्ति के सिद्धान्त के मार्ग मे आने वाली बाधायें
(Hindrances in the way of Career Principle)

ऐसे अनेक तत्व हैं जिनके कारण जीवन-वृत्ति सिद्धान्त के विकास मे बाधा पडी है।

(१) जीवनवृत्ति के सिद्धान्त के विकास मे सबसे पहली बाधा यह है कि किसी भी विशिष्ट पद के लिए 'स्थानीय निवासियो' की मांग की जाती है। कुछ

पदो पर केवल स्थानीय व्यक्ति (Local people) ही नियुक्त किये जाते हैं। सघीय शासन-व्यवस्था वाले देश मे तो, राज्य के पद के लिए राज्य का ही निवासी होना अत्यन्त आवश्यक होता है। यह स्थिति उन्नति के अवसरो को प्रतिवन्धित करती है क्योकि यह हो सकता है कि गुणो से युक्त एक व्यक्ति 'स्थानीय निवासी' (Local rasident)) न हो।

(२) कभी-कभी कर्मचारियो की पदोन्नतियाँ (Promotions) केवल उसी विभाग (Department) मे की जाती हैं जिसमे कि वे कार्य कर रहे होते है, उदाहरणार्थ, रेलवे कर्मचारियो की पदोन्नति केवल रेलवे विभाग मे ही की जा सकती है। यह स्थिति लोक-अधिकारियो की पदोन्नति के क्षेत्र को सीमित करती है।

(३) एक व्यापक भावना यह पाई जाती है कि सरकारी कर्मचारी तो 'लकीर के फकीर' हो जाते हैं और उनमे कुशलता के लिये कोई प्रेरणाये नही पाई जाती। इन तत्वो ने अनेक योग्य व गुणो से युक्त व्यक्तियो को सरकारी सेवा को जीवनवृत्ति के रूप मे अपनाने के प्रति हतोत्साहित किया है। सरकारी सेवा को जीवनवृत्ति के रूप मे अपनाये जाने के मार्ग मे आने वाली इन बाधाओ को दूर करने के लिये प्रत्येक प्रयत्न किया जाना चाहिये।

पदोन्नति के लिए उपलब्ध अवसर
(Available opportunities for Promotion)

जीवनवृत्ति व्यवस्था (Career system) कर्मचारियो को उपलब्ध होने वाले पदोन्नति के अवसरो की सख्या पर निर्भर होती है। वे महत्वपूर्ण तत्व, जोकि पदोन्नति के अवसरो की सख्या का निर्धारण करते हैं, निम्नलिखित हैं

(१) "सगठन के बढने (अथवा घटने) की दर,

(२) जीवनवृत्ति-स्तूप (Career Pyramid) का आकार (विशेषकर, यह कि सेवा के प्रत्येक स्तर पर ऊपर की ओर को पदो की सख्या कितनी तेजी से घटती है),

(३) उन नियुक्तियो (Appointments) की सख्या जोकि अन्दर से पदोन्नति के रूप मे नही वल्कि वाहर से की जाती हैं, और

(४) कार्य-काल की औसत अवधि जब तक कि कर्मचारी किसी भी स्तर पर पदो पर कार्य करते हैं। यह चौथा तत्व निम्नलिखित वातो पर निर्भर होता है (क) सेवा के प्रत्येक स्तर पर नियुक्त किये जाने वाले व्यक्तियो की औसत आयु, और (ख) वह औसत आयु जिस पर कि कर्मचारी किसी भी स्तर पर या उससे ऊपर सेवानिवृत्ति (Retirement), त्याग-पत्र (Resignation) (जिसमे अन्य सगठनो के श्रेष्ठतर पदो के लिये की जाने वाली पदोन्नतियाँ भी सम्मिलित हैं), मृत्यु अथवा पदच्युति (Dismissal) के द्वारा सगठन से पृथक् किये जाते है।"[1]

---

1 Herbert A Simon and others, Public Administration, *op cit*, pp 344-45

इन तत्वो के आधार पर हम पता लगा सकते है, कि कर्मचारी किस सीमा तक निम्नस्तर से ऊपर की ओर को जा सकते हैं। यदि सगठन वृद्धि पर है तो कर्मचारियो की पदोन्नति के अवसर भी बढ जायेंगे। यदि बाहर से की जाने वाली नियुक्तियो की सख्या अधिक है तो अन्दर पदोन्नतियो की सख्या कम होगी। यदि कर्मचारी बाद की आयु मे उच्च पदो पर पहुँचते है और जल्दी सेवानिवृत्त (Retire) हो जाते है तो एक बडी सख्या मे कर्मचारियो की पदोन्नति के अवसर उत्पन्न हो जायेंगे। जिन स्तरो पर पदो की सख्या अधिक होती है, कर्मचारियो को उन स्तरो तक पहुँचने का एक श्रेष्ठ अवसर प्राप्त होता है।

सरकार मे कर्मचारियो की भिन्न-भिन्न श्रेणियाँ होती हैं। अत सभी श्रेणी के कर्मचारियो को समुचित प्रगति तथा पदोन्नति के अवसर प्रदान किये जाने चाहियें।

विशेषज्ञो के लिए जीवन-वृत्ति
(Career for specialists)

सरकार आजकल विज्ञान, शिल्पकला (Technology), उद्योग, व्यापार एव वाणिज्य के विभिन्न क्षेत्रो मे अनेक प्रकार के कार्यों को सम्पन्न करती है। अत अनेक तकनीकी (Technical) तथा व्यावसायिक (Professional) वर्गों के व्यक्ति सरकारी नौकरियो मे लिये जाते हैं। सेवा के इस वर्ग को भी उन्नति के उपयुक्त अवसर प्रदान किये जाने चाहियें। इन तकनीकी कर्मचारियो को उन्नति की दृष्टि से पदो (Positions) के एक पद-सोपान (Hierarchy) के क्रम मे वर्गीकृत (Classified) किया जाना चाहिये।

लिपिक-वर्ग के कर्मचारियो के लिए जीवन-वृत्ति
(Career for Clerical Personnel)

सरकार को सार्वजनिक पत्रो व जांचो आदि के उत्तर की प्रकृति के दैनिक अथवा नैत्यक कार्य (Routine work) भी सम्पन्न करने पडते है। ये नैत्यक कार्य सरकार के लिपिक-वर्ग द्वारा सम्पादित किये जाते हैं। अत इनकी पदोन्नति के नियम भी स्पष्ट रूप से निर्धारित किये जाने चाहियें।

सामान्य प्रशासन मे जीवन-वृत्ति
(Career in General Administration)

उच्च सिविल सेवा मे आने वाले व्यक्तियो के लिये अधिकतम आकर्षण प्रदान किये जाने चाहियें जिससे कि वे सरकारी सेवा (Government service) को स्थायी जीवन-वृत्ति के रूप मे चुन सकें। इस श्रेणी के कर्मचारियो के कन्धो पर वास्तव मे सरकार के सचालन का उत्तरदायित्व रहता है। उन्हे अनेक प्रकार की जटिल समस्याओ का सामना करना पडता है। इस श्रेणी के कर्मचारियो के लिये पदोन्नति की एक निश्चित नीति निर्धारित की जानी चाहिए।

प्रशासन मे कार्य-कुशलता लाने के लिए जीवन-वृत्ति सेवा (Career service) अत्यन्त आवश्यक है। लोक-सेवा के लिये सबसे अधिक योग्य तथा गुणो वाले

प्रत्याशियो (Candidates) को आकर्षित करने का केवल यही प्रभावशाली तरीका है। भारत मे बेरोजगारी (Unemployment) के ऊचे प्रतिशत (Percentage) के कारण इस समस्या की ओर अधिक ध्यान नही दिया गया है और दासता के दिनो से ही सरकारी पदो अथवा सरकारी नौकरियो को इतनी अधिक प्रतिष्ठा प्रदान की जाती रही है कि सरकार अपने कार्य के लिए सबसे अधिक योग्य तथा गुणो वाले कर्मचारियो को प्राप्त कर सकती है।

१७

वर्गीकरण और प्रतिफल
(Classification and Compensation)

कार्मिक प्रशासन (Personnel administration) की मूलभूत समस्याओ मे से एक समस्या इसके वर्गीकरण की है। लोक-कर्मचारी अनेक प्रकार के कार्यों को सम्पन्न करते हैं। भिन्न-भिन्न कार्यों की प्रकृति, तथा कर्मचारियो के उत्तरदायित्व एव प्राधिकार (Auhtority) मे अन्तर होता है। चपरासी (Peon), लिपिक (Clerk), अधीक्षक (Superintendent), विभागाध्यक्ष (Head of a Department), सचिव (Secretary)—ये सभी शासन-सेवाओ के सदस्य होते हैं किन्तु इनमे से प्रत्येक भिन्न-भिन्न प्रकार के कार्य सम्पन्न करता है। अत कार्यों की विभिन्नता के कारण और भिन्न-भिन्न प्रकार अथवा पदक्रमो (Grades) के कार्यों के लिए भिन्न-भिन्न किस्म की साज-सज्जा की आवश्यकता होने के कारण सेवाओ का वर्गीकरण करना पडता है। चूंकि श्रम-विभाजन (Division of labour) किसी भी सहकारी प्रयत्न (Co operative effort) का आधार होता है अत वर्गीकरण किसी भी सरकारी कार्मिक व्यवस्था का आधार होता है। यह वर्गीकरण १९वी शताब्दी के मध्य मे सबसे पहले इगलैण्ड मे किया गया था।

अर्थ (Meaning)

जैसा कि हम हम बतला चुके है कि भिन्न-भिन्न कर्मचारी विभिन्न प्रकार के कार्यों को सम्पन्न करते है। प्रत्येक कर्मचारी को सेवा मे एक 'पद' (Position) प्राप्त होता है। सेवा मे कर्मचारी की स्थिति उस पद के कर्त्तव्यो एव उत्तरदायित्वो पर निर्भर होती है जिसे कि कर्मचारी धारण करता है। व्यक्ति को सेवा मे कुछ ऐसे कर्त्तव्यो को पूरा करने के लिये नियुक्त किया जाता है जोकि उपयुक्त प्राधिकारी द्वारा उसको सौंपे जाते है। उन व्यक्तियो के समूह को, जोकि एक सी ही स्थिति रखते हैं तथा जिनके कर्तव्य एव उत्तरदायित्व एक सी ही प्रकृति के होते हैं, 'वर्ग' कहा जाता है। विभिन्न पदो के कर्त्तव्यो तथा उत्तरदायित्वो और उनके ही अनुसार अपेक्षित योग्यताओ को उन सिद्धान्तो के रूप मे स्वीकार किया जाता है जिनके द्वारा कि वर्गों अथवा श्रेणियो (Classes) का निर्धारण किया जाता है। 'पद वर्गीकरण' (Position Class fication) का अर्थ है कि उन सभी पदो को, जिनके कर्त्तव्य तथा उत्तरदायित्व बहुत कुछ मिलते-जुलते तथा एक से होते हैं, भर्ती (Recruitment) प्रतिफल (Compensation) और अन्य कर्मचारी सम्बन्धी मामलो की दृष्टि से

'एक साथ वर्गीकृत' कर दिया जाना चाहिये। पदो को उन कर्तव्यो एव उत्तरदायित्वो के आधार पर, जोकि विभिन्न पदो से सलग्न होते हैं, श्रेणियो मे वर्गीकृत कर लिया जाता है। वर्गीकरण से तात्पर्य है पदो का, उनके कार्यों तथा अपेक्षिक योग्यताओ के आधार पर, वर्गों अथवा श्रेणियो मे सगठन करना। वर्ग कर्मचारियो के पदो की कुछ सामान्य विशिष्टताओ पर आधारित होता है, जैसे कि एक से ही प्रकार के कर्तव्यो तथा उत्तरदायित्वो को पूरा करना। सेवा (Service) मे पदो के वर्गीकरण से तात्पर्य है इस बात का पता लगाना कि ऐसे कौन-कौन से विभिन्न प्रकार अथवा विभिन्न श्रेणियो के पद सेवा मे वर्तमान है जो कर्मचारियो के क्रम मे विभिन्न प्रकार के व्यवहार की माग करते है, तथा इस प्रकार पता लगाई श्रेणियो का, और साथ ही साथ, प्रत्येक श्रेणी मे पाये जाने वाले विशिष्ट पदो का अभिलेख (Record) रखना।

जब दो पदो के कर्त्तव्य तथा उत्तरदायित्व बहुत कुछ एक से होते है तो वे एक ही वर्ग से सम्बन्ध रखते है और इसके विपरीत स्थिति मे उनका सम्बन्ध भिन्न-भिन्न वर्गों से होता है। कार्यों तथा उत्तरदायित्वो मे काफी समानताए होना ही पद-वर्गीकरण का आधार है। प्रत्येक सरकारी विभाग (Department) मे कर्मचारियो के दो मुख्य वर्ग होते हैं (१) लिपिक वर्ग, और (२) प्रशासकीय वर्ग। इन वर्गों को फिर अनुभागो (Sections) अथवा पदक्रमो (Grades) मे विभाजित किया जा सकता है।

एक बात का प्रारम्भ मे ही स्पष्टीकरण कर देना उचित होगा। किसी भी पद का वर्गीकरण स्तर (Classification level) उसके कार्यो तथा उत्तरदायित्वो पर निर्भर होता है, किसी विशिष्ट पदधारी (Incumbent) की वैयक्तिक विशिष्टताओ अथवा योग्यताओ (Qualifications) पर नही। यह हो सकता है कि एक एम ए पास व्यक्ति एक लिपिक (Clerk) का कार्य कर रहा हो, इस स्थिति मे उसका एक लिपिक के पद मे ही वर्गीकरण किया जावेगा। एक से ही पदो पर आरूढ दो व्यक्तियो मे एक पदधारी दूसरे से अच्छा तथा श्रेष्ठ कार्य कर सकता है, परन्तु उन दोनो को एक सा ही वेतन प्राप्त होगा। इस प्रकार पद-वर्गीकरण मे पदाधिकारियो के वैयक्तिक तत्वो को अधिक महत्व नही प्रदान किया जाता। पदधारी जो कुछ करते हैं उसी के आधार पर पद वर्गीकृत किये जाते है, इस आधार पर नही कि वे उसको कितनी अच्छी प्रकार से करते है। वर्गीकरण पद का होता है उस व्यक्ति का नही जो कि उस पद को उस समय धारण किये होता है। पद की कल्पना उन कर्त्तव्यो तथा उत्तरदायित्वो के एक ढाचे के रूप मे की जाती है जोकि कार्य-सम्पादक से दूर वर्तमान रहते है, ठीक उसी प्रकार जैसे कि एक कमरा वर्तमान रहता है चाहे उसमे कोई बसा हुआ हो या नही। **हरमन फिनर** (Herman Finer) के अनुसार, वर्गीकरण की समस्या यह है कि 'सभी सेवको (Servants) को ऐसे काम पर लगाना जिसे सम्पन्न करना उनके लिये न तो बहुत कठिन हो और न बहुत सरल,

और फिर उन लोगो के साथ समान व्यवहार करना जोकि समान कार्य करते हैं, और जहाँ किये गये कार्य की मात्रा तथा कोटि (Quality) मे अन्तर हो वहाँ उस सेवा को उसी अनुपात से पुरस्कृत करना।"[1]

"वर्गीकरण से तात्पर्य है कर्त्तव्यो एव अपेक्षित योग्यताओ की समानता के आधार पर पदो को वर्गबद्ध करना।"[2] वर्गीकरण की परिभाषा इस प्रकार की जा सकती है कि "तुलनात्मक कठिनाइयो एव उत्तरदायित्वो के अनुसार पदसोपान (Hierarchy) के क्रम के पदो (Positions) को व्यवस्थित रूप से क्रमबद्ध तथा श्रेणीबद्ध करना ही वर्गीकरण है।"[3]

इस प्रकार लोक सेवाओ (Public Services) को विभिन्न वर्गों, श्रेणियो व पदक्रमो (Grades) आदि मे रखा जाता है। यह वर्गीकरण सरकार के सभी कर्मचारियो का किया जाता है। वर्गीकरण सरकार के किसी एक विभाग (Department) अथवा ब्यूरो तक ही सीमित नही रहता है। सभी एक पदो का, चाहे वे सेवा

---

1 Herman Finer, *The Theory and Pvblic of Modern Government*, p 156

2 "By classification is meant the grouping of position on the basis of similarity of duties and qualification requirements" *Elements of Public Administration*, Morstein Marx, p 553

3 "Classification may be defined as the systematic sorting and ranking of positions in a hierarchical sequence according to comparative difficulty." Dimock, Dimock, *op cit*, p 146

"The position-classification plan as a whole is the skeleton on which the personnel requirements of the service are built It is derived from a logical analysis of the various types of work and degrees of responsibility which are found within public employment It reduces what may be an exceedingly complicated mass of positions to an orderly in intelligent consideration of operating problems It is essential to the development of a career service, because it sets out the successive steps by which a beginner may advance to responsible Positions" L D White, *op cit*, p 375

The Position classification plan refers to the allocation of positions to classes and the basis of duties performed, the responsibilities involved, and the authority and supervisory functions concerned In other words, Positions with like functions and like responsibilities are grouped into a single class, without regard to the department or service in which they are located" (Pfiffiner, *op cit*, p 284)

"The position-classification plan is a device widely used in public civil service jurisdictions to simplify and standardize personnel procedures The position, the fundamental building block in such a classification, is a group of duties and responsibilities that are to be assigned to a single employee The basic idea in a position-classification is that all these positions in an organization which involve closely similar duties and responsibilities should be grouped together for purposes of recruitment, compensation, other personnel matters" (Simon and other, *op cit*, p 553-)

मे कही भी हो, एक वर्ग बनता है। जब यह कहा जाता है कि लिपिको (Clerks) का एक वर्ग है तो इसका अर्थ होता है सरकार के सभी विभागो के लिपिक, किसी एक विभाग अथवा ब्यूरो के नही। वर्गीकरण किसी भी विभागीय आधार पर कर्मचारियो का नही किया जाता, बल्कि यह तो सामान्य कर्त्तव्यो तथा उत्तरदायित्वो के आधार पर पदो (Positions) का किया जाता है। एक से ही कर्त्तव्यो तथा उत्तरदायित्वो को वहन करने वाले पद एक से ही वर्ग मे रक्खे जाते हैं।

वर्गीकरण की रीति
(Methods of Classification)

प्रश्न यह है कि पदो को किस प्रकार वर्गीकृत किया जाये ? रीति यह है कि प्रत्येक पृथक् पद से सलग्न कर्तव्यो के सम्बन्ध मे, और सगठन की उस इकाई मे, जिसमे कि वह पद स्थित है, उसके स्थान के सम्बन्ध मे तथ्यो (Facts) का सग्रह किया जाना चाहिये। इन तथ्यो का सग्रह करने के पश्चात् पृथक्-पृथक् पदो को ऐसी श्रेणियो मे वर्गीकृत किया जाना चाहिये जिनमे कि एक ही प्रकार के कर्त्तव्यो तथा उत्तरदायित्वो को सम्पन्न करने वाले पदधारी (Incumbents) सम्मिलित हो, जिससे उनको एकसा ही प्रतिफल (Compensation) दिया जा सके और उनके चुनाव (Selection) के लिए एक सी ही परीक्षाओ की पद्धति को अपनाया जा सके। प्रत्येक पद का पृथक् से अध्ययन किया जाना चाहिये और पदधारियो का ऐसे वर्गो मे विभाजन तथा उप-विभाजन किया जाना चाहिये जिनमे कि वे पद सम्मिलित किये जायें जो कि कर्तव्यो, उत्तरदायित्वो तथा अपेक्षित योग्यताओ मे लगभग समान हो। पद-वर्गीकरण के लिये जो सिद्धात मार्ग-दर्शक का कार्य करते हैं, वे निम्नलिखित है–

(क) एक सी ही व्यावसायिक प्रकृति वाले सभी पदो को एक सी ही श्रेणी मे एक साथ वर्गीकृत कर लिया जाना चाहिये, ऐसा करते समय विभागीय स्थिति (Departmental location) पद के वर्तमान नाम अथवा प्रतिफल, या अन्य किसी ऐसे तत्व की परवाह नही की जानी चाहिये जो कि व्यवसाय की प्रकृति मे न पाया जाता हो,

(ख) किसी भी पद मे कार्य या व्यवसाय की प्रकृति का निर्धारण उस पद से सम्बद्ध कर्तव्यो एव उत्तरदायित्वो तथा उन योग्यताओ (Qualifications) के द्वारा किया जाना चाहिये जो कि एक नये नियुक्तार्थी (Appointee) को उस पद के कार्य-सम्पादन के योग्य बनाने के लिए आवश्यक हो,

(ग) किसी भी पद के वर्गीकरण मे वर्तमान पदधारी की सेवा की श्रेष्ठता की मात्रा का या किसी ऐसी योग्यता का जिसे वह धारण करता हो या न करता हो, अथवा उसके व्यक्तित्व (Personality) पर आधारित अन्य किसी भी तथ्य का विचार नही किया जाना चाहिये।"

पदो के आधार पर वर्गो (Classes) की व्याख्या करने के पश्चात् एक विशिष्ट वर्ग के पदधारी के लिए न्यूनतम योग्यतायें निर्धारित कर दी जानी चाहियें। इस प्रकार सिविल अथवा असैनिक सेवा के सभी पदो का उपयुक्त श्रेणी तथा वर्ग मे बटवारा कर लिया जाना चाहिये।

Position-Classification Individual Job Analysis Form

POSITION DESCRIPTION

(1) Department (and field) Finance Deptt Revenue Division—Excise

(2) Official Headquarters Central Secretariat, New Delhi

(3) Reason for submissing :—

(a) If this position replaces other, identify such position by title and position number

(b) Other (specify) New position

(4) Position No XY—12345

(5) Union Public Service Commission Certificate No LM—301

Allocated by	Class title of Position	Class	Initials	Date
U P S C		Service Grade		
Deptt or Agency	Clerk Typist Gs—2	Gs—2		
Recommended by Initiating Officer	Clerk Typist			

(6) Date of certification 1 5 55

(7) Date received from U P S C 2 5 55

(8) Classification Action

(9) Name of employee (It vacant, write V—1) Ram Singh

(10) Organisatioal Title of Position (if any)

(11) Description of Duties and responsibilities of Position

(a) Under the general supervision of the Accounts Office or any of the sections of the Division to which assigned, performs the following clerical and typing duties

(b) Types from involved rough draft, including tabulated material, textual material of a technical nature, stencils and master ditto copies of reports, directives, etc as well as carrespondence, memoranda, etc

(c) Unper direction of the administrative clerk, assists in the maintenance of alphabetical files of correspondence, reports, directions, publications, etc

(d) Performs miscellaneous related duties of clerk

(12) This is a correct and accurate description of my position

Signature of the Employee

Date

(10) Certification by supervision

(14) Certification by Head of Division

(15) Certification by Head of Department

पद-वर्गीकरण के लाभ
(Advantages of Position-Classification)

पद-वर्गीकरण का आन्दोलन **'समान कार्य के लिए समान वेतन'** (Equal pay for equal work) की मांग के साथ प्रारम्भ हुआ। एक ही प्रकार के कार्य सम्पन्न करने वाले और एक से ही प्रकार के उत्तरदायित्वो का निर्वाह करने वाले कर्मचारी प्रतिफल (Compensation) की एक सी ही दरो की मांग करते थे। पद-वर्गीकरण का उद्देश्य यह था कि सरकार के भिन्न-भिन्न अभिकरणो (Agencies) मे एक से ही काम के लिए दिये जाने वाले प्रतिफल की भिन्न-भिन्न दरो के अन्याय को समाप्त किया जाये। पद-वर्गीकरण को उचित तथा न्यायपूर्ण व्यवहार का प्रधान स्रोत (Source) समझा जाता था। यह पक्षपात के विरुद्ध सुरक्षा का एक अस्त्र था।

प्रारम्भ मे समान कार्य के लिए समान वेतन के सिद्धान्त पर आधारित होकर, अब इसने कार्मिक अथवा सेवी-वर्ग प्रशासन मे एक केन्द्रीय स्थिति प्राप्त कर ली है। बिना वर्गीकरण के किसी भी देश के कार्मिक प्रशासन मे भ्रम तथा अव्यवस्था प्रणालियो, परीक्षाओ, वेतन सूचियो (Salary schedules) तथा पदोन्नतियो (Promotions) के लिये एक आधार (Basis) प्रस्तुत करता है। भर्ती की कुशलता, एक विवेकपूर्ण पदोन्नति व्यवस्था के निर्माण की सम्भावना, तथा विभिन्न विभागो मे कार्य करने वाले व्यक्तियो के साथ न्यायपूर्ण व्यवहार की आशा समुचित वर्गीकरण पर ही निर्भर रहती है। पद-वर्गीकरण के कुछ अन्य लाभ निम्न प्रकार हैं

(१) **यह कर्मचारियो की भर्ती की समस्या को सुविधाजनक बनाता है।** विभिन्न विभाग (Departments) पहले इस बात का निश्चय करते हैं कि उन्हें एक विशिष्ट-वर्ग के कितने कर्मचारियो की आवश्यकता है और फिर भर्ती करने वाले अभिकरण (Recruitment agency) को उसकी सूचना दे देते है। भर्ती-अभिकरण एक विशिष्ट-वर्ग के कर्मचारियो के लिये एक सी ही परीक्षाओ की व्यवस्था करता है। इन परीक्षाओ के पश्चात् भर्ती अभिकरण 'पात्र व्यक्तियो' (Eligibles) की एक सूची तैयार करता है और फिर विभिन्न विभाग 'पात्र व्यक्तियो' की इस सूची मे से नियुक्तियाँ करते है। निम्नलिखित उदाहरण इस बात को बिलकुल स्पष्ट कर देगा।

मान लीजिये भारत सरकार के पचास विभागो को आशुलिपिको (Stenographers) की आवश्यकता है। यदि आशुलिपिको की भर्ती के लिये प्रत्येक विभाग अपनी-अपनी निजी परीक्षाओ की व्यवस्था करता है, तो इसमे दो बडे दोष उत्पन्न हो जाते हैं। प्रथम तो ऐसा करना बडा महगा पडेगा और उसमे समय काफी लगेगा, क्योकि आशुलिपिको की भर्ती के लिये पचास विभागो को पृथक्-पृथक् परीक्षाओ की व्यवस्था करनी होगी। दूसरे, यह हो सकता है कि भिन्न-भिन्न विभागो मे परीक्षाओ (Tests) का स्तर पृथक्-पृथक् हो, और ऐसा होना अनुचित तथा

अन्यायपूर्ण है। इन कठिनाइयो को दूर करने के लिए, सिविल-सेवा आयोग द्वारा एक परीक्षा ली जाती है और उस सामान्य परीक्षा के आधार पर 'पदो के योग्य' आशुलिपिको की एक सूची तैयार करली जाती है। फिर, किसी भी विभाग की आशुलिपिको की मांग को इस सूची मे से पूरा कर दिया जाता है। पद-वर्गीकरण की व्यवस्था से भर्ती का कार्य बडा सुविधाजनक तथा सुगम हो जाता है।

(२) **पद-वर्गीकरण न्याय और समानता के आधार पर पदोन्नति की व्यवस्था की स्थापना करता है।** कर्मचारियो को पदोन्नति (Promotion) के नियमो व मार्गो का पता रहता है। एक विशिष्ट-वर्ग के कर्मचारी यह जानते है कि दूसरे विशिष्ट-वर्ग मे उनकी पदोन्नति की जा सकती है। इससे अधिक कठिनाइयो, अधिक उत्तरदायित्वो तथा अधिक सुविधाओ वाले पदो के लिये की जाने वाली पदोन्नतियो मे व्यवहार की एकरूपता को प्रोत्साहन मिलता है।

(३) **पद-वर्गीकरण और प्रतिफल (Compensation) के बीच एक गहरा सम्बन्ध पाया जाता है।** वर्गीकरण 'समान कार्य के लिये समान वेतन' के सिद्धान्त के आधार पर वेतनो के मानवीकरण (Standardization) को प्रोत्साहित करता है। इस प्रकार प्रतिफल पदाधिकारियो की मनचाही इच्छा पर निर्भर नहीं रहता। पद-वर्गीकरण पद के कार्यों, कठिनता की मात्रा, तथा उन कार्यों की जिम्मेदारियो के स्तर को निर्धारित करता है। कार्यो की प्रकृति का निर्धारण करने के पश्चात् प्रत्येक वर्ग या श्रेणी के कर्मचारियो के लिये प्रतिफल की दरे निश्चित की जाती है। कर्मचारी एक सी ही किस्म के कार्यों तथा उत्तरदायित्वो के लिए समान पारिश्रमिक (Remuneration) प्राप्त करते हैं। इससे एक उचित तथा व्यवसाय जैसी वेतन नीति और स्पर्धायुक्त सेवा को प्रोत्साहन मिलता है। इस प्रकार प्रतिफल की दर तथा किये हुए कार्य के बीच प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित हो सकता है।

(४) **पद-वर्गीकरण व्यवहार की समानता और प्रतिफल-दरो के मानवीकरण को प्रोत्साहन देता है।** यह सरकारी सेवा मे अपने पद के प्रति सम्मान तथा सहयोग की भावना को प्रोत्साहन देता है जोकि कुशलता के लिये अत्यन्त आवश्यक होती है। इसमे कोई सन्देह नही कि कुछ विशिष्ट कर्मचारी अपने वर्ग अथवा श्रेणी के प्रति रोप प्रकट करते हैं परन्तु राज्य एक इतना बडा नियोक्ता (Employer) होता है कि वह अपने सभी सेवको से पृथक्-पृथक् व्यक्तिश सौदे करने मे असमर्थ होता है। पद-वर्गीकरण लोक-सेवा मे सहयोग की भावना को प्रोत्साहन देता है।

(५) **पद-वर्गीकरण बजट बनाने के कार्य को सुविधाजनक बनाता है।** एक विशिष्ट-वर्ग के कर्मचारियो की सख्या के आधार पर वेतनो की गणनायें की जाती हैं। बजट-कार्यालय कर्मचारियो के पद की श्रेणी के आधार पर उनके वेतनो की गणना करता है।

(६) **पद-वर्गीकरण भर्ती के लिए ली जाने वाली परीक्षाओ (Tests) के कार्य को सुविधाजनक बनाता है।** परीक्षाओ के विषय अथवा परीक्षाओ की किस्मे विशिष्ट-

वर्गों के लिये आवश्यक न्यूनतम योग्यताओ से सम्बन्धित होती हैं। अपेक्षित योग्यताओ तथा ली जाने वाली परीक्षाओ के बीच एक सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। पद-वर्गीकरण भर्ती, प्रतिफल तथा पदोन्नति के कार्य को सुविधाजनक बनाता है और कर्मचारियो के लिये सरकारी सेवा को एक स्थायी जीवनवृत्ति बनाने की प्रेरणा देता है। इस प्रकार वर्गीकरण के लाभो को सक्षेप मे निम्न प्रकार व्यक्त किया जा सकता है।

(१) यह 'समान कार्य के लिए समान वेतन' के सिद्धान्त को लागू करके सेवाओ मे नैतिकता की स्थापना को सम्भव बनाता है और इस प्रकार सेवाओ मे अधिक अच्छे कार्य तथा अधिक प्रसन्न कर्मचारियो की उत्पत्ति करता है।

(२) चूँकि चुनाव (Selection) का आधार प्रतियोगात्मक होता है अत उचित एव न्यायपूर्ण पदोन्नति सम्भव हो जाती है।

(३) इसमे चूँकि प्रत्येक पद अथवा कार्य का विश्लेषण किया जाता है अत प्रत्येक पद के लिए कर्मचारियो का उचित चुनाव करना सम्भव हो जाता है।

(४) कर-दाता (Tax-payer) को निम्नतर लागत पर श्रेष्ठतर सेवा प्राप्त होती है।

(५) सेवाओ पर किये जाने वाले सरकारी खर्चों की जाँच-पडताल करना सम्भव हो जाता है, कर्मचारियो की बढती हुई सख्या के सम्बन्ध मे की जाने वाली गलतियो अथवा पक्षपात को रोका जा सकता है।"[1]

पद-वर्गीकरण कर्मचारियो, प्रबन्धको, व्यवस्थापको तथा कर-दाताओ के हितो मे वृद्धि करता है। पद-वर्गीकरण के लाभो के विषय मे लिखते हुए प्रो० **हरमन फिनर** (Herman Finer) ने कहा कि 'सभी देशो का अनुभव बतलाता है कि ऐसे वर्गीकरण की कितनी अधिक आवश्यकता होती है । बिना वर्गों अथवा श्रेणियो के गणना (Calculation), तुलना (Comparision) सापेक्षिक कर-निर्धारण (Assessments) तथा मूल्याकन नही किया जा सकता, और एक लोकप्रिय शासन वाले राज्य मे, विशेषकर वहाँ जहाँ कि सार्वजनिक प्रचार के लिये तथा राजनैतिक अनिपुणो की सरकार के लिये आसानी से समझे जा सकने योग्य तथ्यो एव आकडो की आवश्यकता होती है, वर्गो अथवा श्रेणियो के अभाव मे नियन्त्रण ढीला पड जाता है । सर्वश्रेष्ठ वर्गीकरण के द्वारा राज्य सेवा मे बुराई की मात्रा न्यूनतम हो जाती है।"[2]

पद-वर्गीकरण व्यवस्था की कुछ हानियाँ भी हैं जिन्हे दृष्टिगत रखा जाना चाहिये। वर्गीकरण हो जाने के पश्चात् कर्मचारियो के नियत कतव्यो मे यदि

---

1 Article on salaries of state employees by King in Annals of the American Academy of *Political and Social Science*, May, 1924

2 Herman Finer, *op cit*, p 556

अस्थायी हेर-फेर भी की जाती है तो वे उसका विरोध करते हैं। वे अपने कर्त्तव्य-वर्णनो को कानूनी प्राधिकार के रूप मे प्रस्तुत करते हैं और केवल उन्ही कार्यो को सम्पन्न करते हैं जिन्हे करने के लिए उनके वर्ग बनाये गये हैं इसके अतिरिक्त पद-वर्गीकरण व्यवस्था मे मनुष्य के वैयक्तिक गुण अपुरस्कृत ही रह जाते हैं। इसमे मनुष्य के साथ वस्तुओ के सदृश व्यवहार किया जाता है। किसी विशिष्ट कार्य को सम्पन्न करते समय मनुष्यो के वैयक्तिक गुणो को पुरस्कृत नही किया जाता। इससे अच्छी प्रतिभा तथा बौद्धिक योग्यता वाले व्यक्तियो मे निराशा की भावना पैदा होती है और प्रशासन मे अकुशलता को प्रोत्साहन मिलता है।

यदि पद-वर्गीकरण को प्रभावशाली बनाना है तो समय-समय पर इस पर पुनर्विचार करते रहना चाहिये। वस्तुनिष्ठ आधार (Objective basis) पर पदो का वर्गीकरण करने के लिये हर सम्भव प्रयत्न किया जाना चाहिये। कर्त्तव्यो, उत्तर-दायित्वो व विभाग के सगठन आदि की प्रकृति से सम्बन्धित तथ्य (Facts) प्रश्नावली रीतियो (Questionnaire Methods) द्वारा प्राप्त किये जाने चाहियें और फिर इन तथ्यो के आधार पर वर्गीकरण किया जाना चाहिये।

संयुक्त राज्य अमेरिका मे पद-वर्गीकरण

(Position Classification in the United States of America):

सयुक्त राज्य अमेरिका मे पहले लोक-कर्मचारियो के सम्बन्ध मे बडा भ्रम तथा उनके वेतनो मे भारी असमानताए वर्तमान थी। इस सम्बन्ध मे इतना अधिक भ्रम पैदा हो गया था कि सन् १९२० मे पुनर्वर्गीकरण आयोग (Reclassification Commission) ने यह रिपोर्ट दी कि "कभी-कभी एक साथ तथा एक सा ही कार्य करने वाले कर्मचारियो को जिन दरो से वेतन दिया जाता है उनमे ५० प्रतिशत अथवा इससे भी अधिक अन्तर होता है। प्राय ऐसा होता है कि अपेक्षाकृत अधिक कुशल कर्मचारियो को निम्न दरो से वेतन दिया जाता है। ऐसे अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं जबकि किसी अनुभाग (Section) का कार्य-भारी लिपिक अथवा सगठन का अन्य कोई व्यक्ति उन कर्मचारियो से भी कम वेतन प्राप्त करता है जोकि उसके निर्देशन (Direction) मे कार्य कर रहे होते हैं।" प्रतिवेदन (रिपोर्ट) मे दृढतापूर्वक यह बात कही गई कि "अतिरिक्त उत्तरदायित्व के लिए उनको मिलने वाला प्रतिफल इस तथ्य मे निहित होता है कि उसके अपेक्षाकृत उच्च वेतन प्राप्त अधीनस्थ कर्मचारियो मे से कोई यदि त्यागपत्र दे, तो उस रिक्त-स्थान को प्राप्त करने के सुअवसर उसे सुलभ हो जाते हैं।" आयोग के प्रतिवेदन से सन् १९२३ के वर्गीकरण अधिनियम (Classification-Act) के बनाने की प्रेरणा मिली। इसके बाद समय-समय पर स्थिति पर पुनर्विचार किया गया और सन् १९४९ के वर्गीकरण अधिनियम द्वारा एक सामान्य अनुसूची (General schedule) (G S) के लिए, जिसमे कि व्यावसायिक व वैज्ञानिक सेवा, लिपिक-वर्गीय, प्रशासकीय, राजकोषीय (Fiscal) तथा उप-व्यवसायिक सेवाए सम्मिलित है और एक शिल्पिक (Crafts),

रक्षक (Protective) तथा अभिरक्षक अनुसूची (Custodial schedule) (C P C) के लिये, जिसमे कि सन्देशवाहक लडके व पारसलो की जाच करने वाले आदि की किस्म के कर्मचारी सम्मिलित हैं, प्रतिफल की दरे (Compensation rates) निश्चित की गईं। इस प्रकार जो वर्गीकरण प्रचलित हुआ वह निम्न प्रकार है—

(१) व्यावसायिक और वैज्ञानिक (Professional and scientific), (२) उप-व्यावसायिक और उप-वैज्ञानिक, (३) लिपिकवर्गीय, प्रशासकीय और सामान्य कार्य सम्बन्धी, तथा (४) अभिरक्षित श्रम (Custodial labour) तथा यान्त्रिक (Mechanical)।

ब्रिटिश सिविल-सेवा के विभिन्न वर्ग
(The Various Classes of the British Civil Service)

ब्रिटिश सिविल सेवा के दो बडे वर्ग हैं औद्योगिक (Industrial) तथा गैर-औद्योगिक कर्मचारी गैर औद्योगिक कर्मचारियो का (जिन्हे कि सिविल सेवा प्रमुख कहा जा सकता है) निम्नलिखित राजकोषीय वर्गीकरण किया जाता है

(१) प्रशासकीय (Administrative) वर्ग।
(२) निष्पादक अथवा कार्य-पालक (Executive) वर्ग।
(३) लिपिक तथा उप-लिपिक वर्ग।
(४) मुद्रलेखन (Typing) वर्ग।
(५) निरीक्षक सेवी-वर्ग।
(६) व्यावसायिक, वैज्ञानिक व तकनीकी-वर्ग।
(७) गौण तकनीकी (Ancillary-technical) वर्ग।
(८) तुच्छी तथा अभिसाधक-वर्ग (Minor and Manipulative)।
(९) सन्देश-वाहक व द्वारपाल आदि।

भारत मे सेवाओ का वर्गीकरण
(Classification of Services in India)

भारत मे सेवाओ को निम्नलिखित वर्गों अथवा श्रेणियो मे रखा गया है

(१) अखिल भारतीय सेवायें (All India Services),
(२) केन्द्रीय (सघीय) सेवाये, प्रथम श्रेणी (Class I),
(३) केन्द्रीय (सघीय) सेवायें, प्रथम श्रेणी (Class II),
(४) प्रान्तीय (राज्य) सेवाये,
(५) विशेषज्ञ सेवाये (Specialist services),
(६) केन्द्रीय सेवायें, तृतीय श्रेणी और
(७) केन्द्रीय सेवायें, चतुर्थ श्रेणी,
(८) केन्द्रीय सचिवालय सेवा (Central secretariat service) प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ श्रेणी।

अखिल भारतीय सेवाओ मे भारतीय प्रशासन सेवा (I A S), भारतीय पुलिस सेवा (I. P S) तथा भारतीय विदेश सेवा (I F S) सम्मिलित है। यह भारतीय सिविल अथवा असैनिक सेवा का उच्च-वर्ग है। इसके अधिकारियो की भर्ती सघीय लोक सेवा आयोग (Union Public Service Commission) द्वारा की जाती है और इनको भारत अथवा भारत से बाहर कही भी काम करने के लिये भेजा जा सकता है। होता यह है कि भारतीय प्रशासन तथा पुलिस सेवाओ के अधिकारी एक निर्धारित कोटे (Fixed quota) के आधार पर विभिन्न राज्यो मे बांट दिये जाते है।

केन्द्र सरकार (Central Government) के अन्तर्गत आने वाली सेवाओ तथा पदो को चार वर्गो अथवा श्रेणियो मे विभाजित किया जाता है—प्रथम, द्वितीय तृतीय और चतुर्थ।

प्रथम श्रेणी की केन्द्रीय सेवाओ के पदाधिकारी अपने-अपने क्रमिक विभाग (Department) मे ज्येष्ठ पदो (Senior posts) पर रखे जाते है। वे भारत सरकार के अन्तर्गत केन्द्रीय सचिवालय के तथा अन्य प्रशासकीय पदो पर नियुक्त किये जाते हैं। इन सेवाओ के अधिकारियो की भर्ती (Recruitment) एक ऐसी सयुक्त प्रतियोगिता परीक्षा (Combined Competitive Examination) के परिणाम के आधार पर की जाती है जो कि सघीय लोक सेवा आयोग द्वारा अखिल भारतीय सेवाओ तथा प्रथम व द्वितीय श्रेणियो की सेवा के लिये प्रत्याशियो (Candidates) का चयन (Selection) करने के लिये आयोजित की जाती है। निम्नलिखित सेवायें महत्वपूर्ण प्रथम श्रेणी की केन्द्रीय सेवायें (Class Central Services) हैं।

प्रथम श्रेणी की केन्द्रीय सेवाओ की वर्तमान समय मे सख्या २४ है, जिनके नाम इस प्रकार हैं (१) भारतीय लेखा-परीक्षण तथा लेखा सेवा (Indian Audit and Account Service), (२) भारतीय प्रतिरक्षा लेखा सेवा (Indian Defence Accounts Service), (३) केन्द्रीय इजीनियरिंग सेवा, प्रथम श्रेणी (Central Engineering Service Class I), (४) भारतीय सीमा शुल्क सेवा (Indian Customs Service), (५) भारतीय डाक व तार विभाग की उच्चतर तार इजीनियरिंग तथा बेतार के तार की शाखायें, (६) भारतीय डाक व तार यातायात सेवा प्रथम श्रेणी, (७) भारत का भू-गर्भ सर्वेक्षण (Geological Survey of India) प्रथम श्रेणी, (८) भारतीय अन्तरिक्ष-विज्ञान सेवा (Indian Meteorological Service) प्रथम श्रेणी, (९) पुरातत्व विभाग (Archaeological Department), (१०) खान विभाग (Mines Department) प्रथम श्रेणी, (११) भारत का जीव-विज्ञान सर्वेक्षण (Zoological Survey of India), (१२) भारतीय भू-माप (Survey of India) प्रथम श्रेणी, (१३) भारतीय गिरजा विभाग सस्थान (Indian Ecclesiastical Establishment), (१४) भारत सरकार का राजनैतिक विभाग (Political Department of Government of India), (१५) चिकित्सा

अनुसधान विभाग (Medical Research Department) (भारतीय चिकित्सा सेवा (I M S) के अधिकारियो को छोडकर), (१६) अफीम विभाग, (१७) बगाल विमानचालक सेवा (Bengal Pilot Service), (१८) आय-कर सेवा (Income Tax service) प्रथम श्रेणी, (१६) सचिवालय सेवा (Secretariat Service) प्रथम श्रेणी, (२०) वणिक-पोतीय प्रशिक्षण जलयान सेवा (Mercantile Marine Trainingship Service) प्रथम श्रेणी, (२१) केन्द्रीय राजस्व रासायनिक (Central Revenues Chemical) प्रथम श्रेणी, (२२) रेलवे निरीक्षक-वर्ग सेवा (Railway Inspectorate Service), (२३) भारतीय डाक सेवा (Indian Postal Service) प्रथम श्रेणी, और (२४) सामान्य केन्द्रीय सेवा (General Central Service) प्रथम श्रेणी।

उपर्युक्त प्रथम श्रेणी की केन्द्रीय सेवाओ मे से प्रत्येक के (कुछ उनको छोड कर जोकि अब अप्रचलित हो चुकी हैं) समवर्ती (Corresponding) एक-एक द्वितीय श्रेणी की सेवा भी होती है।

तृतीय और चतुर्थ श्रेणी की केन्द्रीय सेवाओ मे क्रमश पहली 'अधीनस्थ' (Subordinate) तथा 'अवर' (Inferior) सेवाये सम्मिलित की जाती है।

भारत सरकार ने अभी हाल मे ही (१९५५) मे एक भारतीय सीमान्त प्रशासन सेवा' (Indian Frontier Administrative Service) तथा एक भारतीय वैज्ञानिक सेवा (Indian Scientific Service) की स्थापना की है। अन्य अनेक केन्द्रीय सेवाओ के गठन के प्रस्ताव विचाराधीन (Under Consideration) हैं। ये सेवायें इस प्रकार हैं (१) केन्द्रीय वन सेवा (Central Forest Service), (२) केन्द्रीय कृषि तथा पशु-पालन सेवा, (३) भारतीय राजस्व सेवा, (४) प्रतिरक्षा विज्ञान सेवा, (Defence Science Service), (५) भारतीय इजीनियरिंग सेवा, (६) पुस्त-कालयाध्यक्षो की केन्द्रीय सेवा (Central Service of Librarians), (७) भारतीय सूचना सेवा (Indian Information Service), (८) औद्योगिक प्रबन्ध सेवा, (९) केन्द्रीय स्वास्थ्य सेवा, और (१०) आर्थिक तथा सांख्यिकीय परामर्श सेवा (Economic and Statistical Advisory Service)।

प्रथम श्रेणी की प्रत्येक केन्द्रीय सेवा के समवर्ती एक-एक द्वितीय श्रेणी की सेवा भी होती है।

तृतीय और चतुर्थ श्रेणी की केन्द्रीय सेवायें अधीनस्थ सेवाये हैं। इनमे लिपिक-वर्गीय (Clerical) मन्त्रीय (Ministerial), निष्पादक (Executive) अथवा वाह्य कर्तव्यो (Outdoor duties) वाले पद सम्मिलित किये जाते है।

कुछ वर्षो पहले तक, विभिन्न श्रेणियो की सेवाओ के बीच सेवा की अनेक शर्तो व दशाओ के सम्बन्ध मे भिन्नताये पाई जाती थी और चतुर्थ श्रेणी (Class IV) तथा अन्य श्रेणियो के बीच तो विशेष रूप मे निम्न बातो के सम्बन्ध मे भारी अन्तर पाया जाता था निवृत्ति-वेतन अथवा पेन्शन (Pension) और सेवोपहार

(Gratuity) की दरें, पेन्शन के लिए योग्य बनाने वाली सेवा (Qualifying service for pension), चिकित्सा सम्बन्धी लाभ (Medical benefits) तथा अवकाश (Leave) सम्बन्धी अधिकार। निम्न श्रेणी के कर्मचारियो की सेवा-शर्तों मे उत्तरोत्तर उदारता बनती जाने के साथ ही साथ अवकाश (Leave) व सेवा-निवृत्ति लाभो (Retirements benefits) आदि के सम्बन्ध मे विभिन्नताए वास्तव मे कम हो गई हैं, और यदि कुछ छोटी-मोटी विभिन्नताए वर्तमान हैं भी, तो वे सब उच्च श्रेणियो के अनुकूल नही है उदाहरण के लिए, चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियो को अधिक उदार छुट्टिया तथा यात्रा-सम्बन्धी छूटें (Concessions) प्राप्त हैं और उनमे से बहु-सख्यक कर्मचारियो को अतिवयस्कता (Superannuation) की अपेक्षाकृत ऊची आयु की सुविधा प्राप्त है। भर्ती तथा सेवा की कुछ अन्य शर्तों के सम्बन्ध मे अभी भी भिन्नताए वर्तमान हैं जिनका उल्लेख नीचे किया जाता है

(१) जहाँ प्रथम श्रेणी की सेवाओ/पदो पर सम्पूर्ण प्रथम नियुक्तिया राष्ट्रपति (President) द्वारा की जाती हैं, वहाँ अन्य मामलो मे निम्न प्राधिकारियो (Lower authorities) को ऐसी नियुक्तिया करने के अधिकार दे दिये गये है

(२) प्रथम श्रेणी (Class I) के सभी पद और द्वितीय श्रेणी के बहुत से पद राजपत्रित (गजटेड) होते हैं किन्तु अन्य नही होते।

(३) राष्ट्रपति प्रथम श्रेणी के लिए तो अनुशासनिक प्राधिकारी (Disciplinary authority) और द्वितीय श्रेणी के लिए अपील सुनने वाले प्राधिकारी (Appellate authority) हैं किन्तु तृतीय और चतुर्थ श्रेणियो के लिए अनुशासनिक तथा अपील प्राधिकारी अधिकतर विभागाध्यक्ष (Head of Department) अथवा उनके अन्तर्गत काम करने वाले अधिकारी होते हैं।

(४) जबकि प्रथम श्रेणी तथा द्वितीय श्रेणी सेवाओ/पदो की सीधी भर्ती सघीय लोक-सेवा आयोग के परामर्श मे की जाती है (बशर्ते कि किसी भी सेवा अथवा सेवाओ के इस प्रतिबन्ध मे विशेष रूप से मुक्त कर दिया हो) किन्तु तृतीय श्रेणी और चतुर्थ श्रेणी की सेवाओ के सम्बन्ध मे ऐसा सामान्य नियम नही है।

वर्गीकरण का अन्य आधार राजपत्रित (Gazetted) तथा अराजपत्रित (Non-gazetted) श्रेणियो का है। उन सब पदो को राजपत्रित अथवा गजटेड कहा जाता है जिनके पदधारियो के नाम नियुक्ति, स्थानान्तरण, पदोन्नति तथा सेवा-निवृत्ति आदि के सम्बन्ध मे राजपत्र अथवा सरकारी गजट मे प्रकाशित किये जाते हैं। सामान्य तथा प्रथम तथा द्वितीय श्रेणी राजपत्रित श्रेणी (Gazetted class) हैं। अराजपत्रित पद वे होते हैं जिनके पदधारियो के नाम इस प्रकार सरकारी गजट मे नही छपते। तृतीय और चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारी अराजपत्रित होते हैं।

उपर्युक्त वर्गीकरण व्यवस्था की मुख्य आलोचना यह है कि यह वर्ग-भेद की भावना, उत्पन्न करती है और यह एक प्रकार की जाति-प्रथा है जोकि किसी विशिष्ट वर्ग को अवश्य सन्तुष्ट कर सकती है किन्तु सिविल सेवको के सुगम व सहकारिता-

पूर्ण कार्य-संचालन के लिए यह खतरनाक है। वेतन आयोग (Pay Commissions) ने वर्गीकरण की इस पद्धति के उन्मूलन की सिफारिश की। वेतन आयोग ने कहा कि

"एकत्रित साक्षिया इस वर्गीकरण के उन्मूलन के पक्ष मे है। इसके उन्मूलन के पक्ष मे मुख्य आधार यह प्रस्तुत किया जाता है कि इससे कोई ऐसा व्यावहारिक उद्देश्य पूरा नही होता जोकि इसके बिना पूरा न हो सकता हो और दूसरी ओर, इसका एक अस्वस्थ मनोवैज्ञानिक प्रभाव पडता है। हम (आयोग के सदस्य) इस विचार से सहमत हैं। हम तो महत्व इस बात को देते हैं कि सिविल-सेवको मे यह भावना पैदा की जाये कि वे सब एक सर्वमान्य लोक-सेवा से सम्बन्ध रखते हैं, और वर्गीकरण की कोई भी पद्धति या नाम-सूची (Nomenclature) अथवा लोक-कर्मचारी प्रशासन का कोई भी रूप या लक्षण, जिसके द्वारा कि ऐसी भावना के विकास मे बाधा पडने की सम्भावना हो—चाहे इस बाधा की मात्रा कितनी ही कम क्यो न हो—हमारे विचार मे समाप्त कर दिया जाना चाहिये, जब तक इससे कोई ऐसा व्यावहारिक उद्देश्य न पूरा होता हो जोकि इस व्यवस्था के अभाव मे यथेष्ट रूप मे पूरा न हो सकता हो। उन देशो सहित, जिनमें कि एक बडा तथा जटिल सिविल सेवा सगठन प्रचलित है, अन्य देशो ने भी यह आवश्यक नहीं समझा है कि वे अपने सिविल सेवा पद-क्रमो (Grades) तथा व्यावसायिक सगठनो पर हमारे जैसा एक विस्तृत वर्गीकरण लादें, और हम यह नहीं समझते कि यदि इस विचाराधीन वर्गीकरण को छोड दिया जाये तो भारत के लिए कोई गम्भीर कठिनाई उत्पन्न हो जायेगी।[1]

वेतन आयोग का उपर्युक्त दृष्टिकोण सही नही है। कर्मचारियो के बीच अन्तर तो रखना ही पडता है। हम वर्गीकरण व्यवस्था को इस कारण नहीं छोड सकते क्योकि कुछ कर्मचारी अपने मे हीनता की भावना (Inferiority complex) का अनुभव करते हैं। पद-वर्गीकरण के बिना प्रशासन की कोई भी वैज्ञानिक व्यवस्था कायम नही रह सकती।

भारतीय वर्गीकरण की एक अन्य महत्वपूर्ण आलोचना यह है कि प्रथम व द्वितीय श्रेणी के बीच का भेद मिटा दिया जाना चाहिए। द्वितीय श्रेणी की सेवाओ का प्रतिनिधित्व करने वाले सगठन आम तौर पर यह कहा करते है कि द्वितीय श्रेणी समाप्त कर देनी चाहिये और इस श्रेणी मे इस समय जो सेवाओ तथा पद है उनको सम्बन्धित प्रथम श्रेणी की सेवाओ के ढाचे मे ही सम्मिलित कर लेना चाहिये और उसी के अनुसार उनको पारिश्रमिक भी दिया जाना चाहिए। प्रथम तथा द्वितीय श्रेणी के कर्मचारियो के बीच अन्तर की समाप्ति के सम्बन्ध मे मुख्य तर्क यह है कि द्वितीय श्रेणी के पदाधिकारियो को वही कर्तव्य तथा उत्तरदायित्व सौंपे जाते

---

1 Commission of Enquiry of Emoluments and conditions of service of Central Government Employees 1957-59 Report, Govt of India, p 562

हैं जोकि प्रथम श्रेणी के पदाधिकारियो को कनिष्ट वेतनक्रम (Junior scale) मे सौंपे जाते हैं। इस आलोचना के उत्तर मे यह कहा जा सकता है कि यह भेद जारी रहना चाहिये क्योकि द्वितीय श्रेणी की सेवाओ के वहुसख्यक अधिकारियो की सीधी भर्ती (Direct recuitment) नही होती और द्वितीय श्रेणी के ऐसे सब रिक्त स्थान तृतीय श्रेणी के अधिकारियो की पदोन्नति के आधार पर भरे जाते हैं। इस प्रकार जहाँ द्वितीय श्रेणी के पदाधिकारियो के तथा प्रथम श्रेणी की कनिष्ट शाखा (Junior branch) के पदाधिकारियो के कर्त्तव्य तथा उत्तरादायित्व एक से हैं, वहा उनके पारिश्रमिक (Remuneration) तथा उनकी पदस्थिति (Status) मे पाई जाने वाली विभिन्नता को इस आधार पर न्यायोचित ठहराया जा सकता है कि प्रथम श्रेणी के पदाधिकारियो की भर्ती उच्चतर पदो के सभालने के लिए की जाती है, और इसी श्रेणी के कनिष्ट वेतनक्रम वाले पदो (Junior scale posts) का उद्देश्य केवल यह होता है कि वे पदाधिकारियो के लिए प्रशिक्षण के आधार के रूप मे (As training ground) कार्य करे और उनको उन उच्चतर उत्तरदायित्वो को वहन करने के योग्य वना दें जिनके लिये उनकी भर्ती की गई है। इसके विपरीत, द्वितीय श्रेणी के पदाधिकारियो की भर्ती चाहे वह पदोन्नति द्वारा की जाए अथवा सीधे ही, उस पदक्रम (Grade) के कर्तव्यो को सम्पन्न करने के लिये की जाती है जिस पर कि उनकी नियुक्ति की जाती है।

वरादाचेयिर आयोग (Varadachariar Commission) ने इस प्रश्न की काफी गहराई के साथ जाच की। इस सम्बन्ध मे आयोग के कुछ सदस्यो का जहाँ यह विचार था कि द्वितीय श्रेणी की सेवाओ मे उन सभी पदो का, जिनके कर्त्तव्यो तथा प्रथम श्रेणी के पदाधिकारियो के कर्त्तव्यो मे कोई अन्तर न हो, प्रथम श्रेणी के कनिष्ट वेतनक्रम मे विलय कर दिया जाना चाहिए, वहा अधिकाश सदस्यो का दृष्टिकोण, आयोग के अपने ही शब्दो मे, निम्नलिखित था

"तथापि अधिकाश सदस्यो का झुकाव इस ओर था कि दोनो श्रेणियो को कायम रखना वाञ्छनीय है, किन्तु उन विभागो (Department) मे, जहाँ कि या तो भर्ती की रीति के कारण अथवा प्रथम और द्वितीय श्रेणी के पदाधिकारियो द्वारा क्रमिक रूप मे सम्पन्न किये जाने वाले कर्त्तव्यो के महत्व के बीच अन्तर करने की कठिनाई के कारण दोनो श्रेणियो के बीच भेद करना आवश्यक न हो अथवा सम्भव न हो, वहाँ इस द्विमुखी वर्गीकरण को समाप्त किया जा सकता है और दोनो श्रेणियो के साथ एक राजपत्रित सेवा (Gazetted service) के रूप मे व्यवहार किया जा सकता है।"

इस प्रकार, प्रथम तथा द्वितीय श्रेणी के बीच का भेद वरावर जारी रहना चाहिए।[1]

---

1 विस्तृत अध्ययन के लिये नेमन आयोग की १९५७-५९ की रिपोर्ट के अध्याय १३ तथा १४ मे पृष्ठ १३९

पद-वर्गीकरण (Position-Classification) में भविष्य में परिवर्तन तभी किया जाना चाहिये जबकि नये तथ्यों (Facts) और नई परिस्थितियों की दृष्टि से ऐसा परिवर्तन करना आवश्यक हो।

प्रतिफल
(Compensation)

वेतन (Pay) अथवा प्रतिफल (Compensation) का महत्व प्रत्येक कर्मचारी के लिए बहुत अधिक होता है। चूंकि वेतन ही कर्मचारी (Employee) का एकमात्र आय का स्रोत होता है अतः इस पर ही उसका रहन-सहन का स्तर (Standard of living) तथा सामाजिक प्रतिष्ठा निर्भर रहती है। मनुष्य उस वेतन के आधार पर ही अपनी जीवनवृत्ति (Career) का चुनाव करता है जिसकी कि उसे प्राप्त होने की आशा होती है। लोग इस कारण अपने पदों में परिवर्तन कर लेते हैं चूंकि अन्य पद उनके लिए उच्चतर वेतन-क्रम (Pay scales) प्रस्तुत करते हैं। अतः यह स्पष्ट है कि सरकार द्वारा दिया जाने वाला वेतन इतना पर्याप्त होना चाहिये कि वह योग्य व गुणों वाले व्यक्तियों को आकर्षित कर सके।

एक लोक सेवा में सामान्य वेतन-स्तर क्या होना चाहिए यह एक बड़ा जटिल प्रश्न है। सरकारी कर्मचारियों के वेतन-क्रम के निर्धारण में अनेक विचार एवं तत्व महत्वपूर्ण भाग अदा करते हैं। उनमें से कुछ तत्व निम्नलिखित हैं

(१) कुछ लोगों का विश्वास है कि लोक सेवा (Public service) में वेतन-क्रम ऊंचा होना चाहिये। अपने कर्मचारियों को उच्चतर वेतन देकर सरकार 'आदर्श नियोक्ता' (Model employer) के रूप में कार्य करेगी और इस प्रकार निजी व्यवसायियों (Private businessmen) को नेतृत्व प्रदान करेगी। फिर, सरकार सर्वोत्तम गुणों वाले व्यक्तियों को केवल तभी आकर्षित कर सकती है जबकि वह निजी क्षेत्र (Private sector) के सर्वश्रेष्ठ नियोक्ता से भी अधिक वेतन देने की व्यवस्था करें।

(२) इसके अतिरिक्त, सरकारी कर्मचारियों के उत्तरदायित्व (Responsibilities) ही अधिक प्रतिफल की मांग की प्रेरणा देने वाले होते हैं तथा सरकारी पदों में प्रवेश करने के लिये वाञ्छित योग्यतायें भी सामान्यतः उच्चतर होती हैं। अतः योग्य व पात्र (Qualified) व्यक्ति लोक सेवाओं में प्रवेश के लिये प्रतियोगिता कर सकें, इसके लिये आवश्यक है कि उनके वेतन-क्रम इतने पर्याप्त हों कि जिससे उनकी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके और उनको अच्छी सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त हो सके। यदि सरकारी सेवा को एक जीवनवृत्ति बनाना है तो यह जरूरी है कि इसके कर्मचारियों की भौतिक आवश्यकताएं समुचित रूप से सन्तुष्ट हों। वेतन-क्रम इतने पर्याप्त होने चाहियें कि उनसे कर्मचारियों की आवश्यकताएं पूरी हो सकें।

वेतन-क्रम का निश्चय आर्थिक तथा सामाजिक बातों के आधार पर किया जाना चाहिये ।

(३) सेवा की शर्तों एव लाभो के ढाचे का निर्माण इस प्रकार किया जाना चाहिये कि जिससे विभिन्न स्तरो पर आवश्यक आर्हताओ (Qualifications) तथा योग्यताओ (Abilities) वाले व्यक्तियो की भर्ती के विषय मे निश्चित किया जा सके और उनको कुशल बनाये रखा जा सके ।

(४) सरकारी कर्मचारियो के वेतन क्रम ऐसे होने चाहियें कि बाहर के व्यवसायो मे दिये जाने वाले पारिश्रमिक की दरो से उनकी स्पष्ट तुलना की जा सके ।

(५) उपभोक्ता कीमतो का स्तर (Level of consumer prices) उन तत्वो मे से एक है जो कि सरकारी कर्मचारियो के पारिश्रमिक की दरो के निर्धारण से सम्बन्ध रखते हैं ।

(६) कार्य के निष्पादन मे काम आने वाले अनुभव (Experiences), प्रवीणता, तथा उत्तरदायित्व की मात्राओ का ध्यान रख कर ही प्रतिफल (Compensation) मे घट-बढ की जानी चाहिये । यदि कार्य अधिक जोखिमपूर्ण (Risky) है तो वेतन-क्रम ऊचा होना चाहिये ।

(७) वेतन-क्रमो के निर्धारण मे एक महत्वपूर्ण तत्व है समान कार्य के लिए समान वेतन । वेतन-क्रम मे पक्षपात के आधार पर व्यक्ति-व्यक्ति के बीच विविधतायें (Variations) नही होनी चाहिये । 'प्रतिफल या प्रतिकर पद के अनुसार मिलना चाहिये व्यक्ति के अनुसार नही ।'

(८) निर्वाह-खर्च (Cost of living) एक ही देश के अन्तर्गत प्रदेश-प्रदेश मे भिन्न-भिन्न होता है । अत कर्मचारियो को प्रतिफल देते समय प्रादेशिक (Regional) तथा स्थानीय (Local) विविधताओ को भी दृष्टिगत रखा जाना चाहिये ।

इस प्रकार वेतन-क्रमो (Pay scales) का निर्धारण करने मे अनेक विचारणीय बातो का ध्यान रखा जाता है । इसके निर्धारण मे कोई भी एक तत्व निर्णायक (Decisive) भाग अदा नही कर सकता । उन सभी आयोगो तथा व्यक्तियो ने, जिन्होने कि सरकारी कर्मचारियो की प्रतिफल की समस्या का अध्ययन किया है, इन तत्वो के सयुक्तिकरण पर ही जोर दिया है ।

देश मे, लगभग तीस वर्षों से वेतनो का जो आधारभूत ढाचा (Basic structure) प्रचलित है वह शाही आयोग (Royal Commission) द्वारा, जिसकी अध्यक्षता लार्ड इसलिंग्टन (Lord Islington) ने की थी, भारत मे लोक सेवाओ (१६१२–१५) पर दी गई सिफारिशो के ही अनुरूप है और उन सिफारिशो के प्रतिरूप (Pattern) मे जो सिद्धान्त अन्तर्निहित हैं उनका वर्णन इसलिंगटन आयोग[1] ने निम्न प्रकार किया था

1 Para 49 of their Report

"इसका एकमात्र सुरक्षित सिद्धान्त यह है कि सरकार अपने कर्मचारियो को इतना, और केवल इतना ही, वेतन दे जितना कि उचित प्रकृति एव चरित्र वाले व्यक्तियो की भर्ती के लिए आवश्यक हो, और जिसके द्वारा वे सन्तुष्टि तथा प्रतिष्ठा की ऐसी मात्रा कायम रख सके जोकि उनको प्रलोभनो से बचाये, तथा उन्हे सेवाकाल तक कुशल बनाये रखे। अत जब हमने कीमतो मे होने वाली वृद्धि का ध्यान किया है, हमने कोई भी सामान्य सिफारिश इसके आधार पर नही की है। जहाँ हमने वेतन के परिवर्तनो की सलाह दी है वह इस कारण कि पारिश्रमिक की असमानताओ को, जो कि कार्य-कुशलता के लिए हानिकारक होती है दूर किया जा सके, उन आशाओ को पूरा किया जा सके जो कि सरकार के द्वारा पहले की गई घोषणाओ पर न्यायोचित दृष्टि से आधारित हैं, और भर्ती मे सुधार किया जा सके, क्योकि भर्ती की वर्तमान शर्तें सन्तोषजनक कार्मिक-वर्ग को प्राप्त करने की दृष्टि से अपर्याप्त नही हैं।"

भारत मे उच्चतर सिविल सेवाओ (१९२३–२४) पर नियुक्त किये गये शाही आयोग ने भी, जो कि ली आयोग (Lee Commission) के नाम से विख्यात है, इस सिद्धान्त के साथ पूर्ण सहमति प्रकट की।

वरादाचेरियर आयोग (Varadachariar Commission १९४६-४७) ने वेतन निर्धारण के सिद्धान्तो की फिर से जाच की और (उनके प्रतिवेदन का अनुच्छेद ४४) वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा

"वे सामान्य शैक्षणिक योग्यतायें जिनकी प्रत्याशियो (Candidates) से आशा की जाती है तथा साथ ही वे विशिष्ट योग्यतायें व प्रशिक्षण (Training), जो कि विशेष पदाधारियो के लिए आवश्यक होते हैं, विचारणीय बाते अवश्य हैं। परन्तु इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात पद के कार्यों एव उत्तरदायित्वो की प्रकृति है। एक पदधारी (Holder of an office) को अपना स्तर तथा गौरव कायम रखने के योग्य बनाने की आवश्यकता पर अत्यधिक जोर दिया गया है। यद्यपि इस प्रजातन्त्रीय युग मे किसी जादू के डन्डे से ऐसा नही किया जा सकता, परन्तु इसकी पूर्णतया उपेक्षा भी नही की जा सकती। कुछ पदाधिकारियो ने लोक-कर्मचारियो को प्रलोभन से दूर रखने की आवश्यकता पर जोर दिया है, यह बात सत्य है, बशर्ते कि इसका अभिप्राय यथोचित रीति से उनको न्यूनता अथवा अभाव से ऊपर रखना हो। परन्तु इस बात को दृढता से स्वीकार करना तो बहुत अधिक होगा कि ऊचे वेतन ही भ्रष्टाचार के विरुद्ध पूर्ण सुरक्षा के साधन हैं। जहाँ यह बात सामान्य रूप से स्वीकार की जाती है कि बाजार मूल्य की कसौटी (Market value test) सदा ही उपलब्ध नही हो सकता और यदि यही कसौटी पूर्ण रूप से लागू की जाये तो उचित भी नही होगा—उचित एव तर्कपूर्ण बात केवल यही है कि जहाँ तक भी व्यावहारिक हो, सिविल सेवको के कुछ वर्गों के वेतन की दरो तथा तुलनात्मक बाहरी दरो (Rates) के बीच एक "उचित सापेक्षिता" (Fair relativity) कायम रखी जानी चाहिये और समानता

सेवाओ से बाहर रखे जाते हैं, परन्तु शायद इस प्रकार अनेक योग्य व बुद्धिमान व्यक्ति भी बाहर रह जाते है।"[1]

लूट-प्रणाली द्वारा निर्माण किये गये वातावरण को शान्त करने के साथ ही साथ, भर्ती के सम्बन्ध मे फिर जोर इस बात पर दिया जाने लगा कि लोक सेवाओं के लिए सर्वश्रेष्ठ तथा सबसे योग्य व सूक्ष्म (Competent) व्यक्ति प्राप्त किये जायें। निश्चयात्मक भर्ती (Positive recruitment) से आशय है कि कार्मिक-वर्ग के चुनाव करने वाला अभिकरण (Agency) सक्रिय होकर सर्वोत्तम व्यक्तियो की खोज करेगा और वह इस बात का तथाशक्ति प्रयत्न करेगा कि लोक सेवाओ के लिए सबसे अधिक योग्य (Able) तथा सर्वोत्तम अर्हताओ वाले (Qualified) व्यक्तियो को आकर्षित किया जाये। निश्चयात्मक भर्ती मे जोर इस बात पर दिया जाता है कि सर्वोत्तम अर्हताओ वाले प्रत्याशियो (Best qualified candidates) की तीव्रता से खोज की जाये और ऐसा करने के लिये कर्मचारियो की प्राप्ति के 'सबसे अधिक समर्थ व शक्तिशाली स्रोतो (Sources) की ओर ध्यान केन्द्रित किया जाए। सबसे अधिक ऊची योग्यताओ व अर्हताओ वाले कार्मिक-वर्ग को आकर्षित करने के लिये नई-नई विधियाँ अपनानी पडती है। भर्ती के कार्यक्रम की योजना इस प्रकार बनानी होती है कि केवल योग्य व पात्र व्यक्तियो को ही प्रतियोगिता मे सम्मिलित होने की अनुमति दी जाये।

भर्ती की समस्याएं
(Problems of Recruitment)

लोक सेवाओ के लिए योग्य व सूक्ष्म व्यक्तियो को प्राप्त करने के सम्बन्ध मे अनेक समस्याये उठ खडी होती हैं जोकि निम्नलिखित हैं

(१) सरकारी कर्मचारियो की भर्ती कहाँ से की जाये, अर्थात् क्या सभी भर्तियां बाहर (Outside) से की जायें अथवा विभाग (Department) के अन्दर से ही ? समस्या सीधी भर्ती बनाम पदोन्नति द्वारा भर्ती (Direct Recruitment *Versus* Recruitment by Promotion) की है।

(२) भिन्न-भिन्न पदो के लिये विभिन्न कर्मचारियो की अपेक्षित योग्यताये अथवा अर्हताए (Required-Qualifications) क्या हो ?

(३) प्रत्याशियो की योग्यताओ का निर्धारण किस प्रकार किया जाए ? इससे (क) परीक्षाओ (Examinations), (ख) मौखिक व लिखित परीक्षणो (Oral and written tests) (ग) प्रत्याशियो के व्यक्तित्व (Personality) की जांच के लिए साक्षत्कारो (Interviews) और, (घ) प्रत्याशियो की बुद्धि तथा दृष्टिकोण की जांच करने के लिए मनोवैज्ञानिक परीक्षणो (Psychological tests) की समस्या उत्पन्न

---

1 J. Donald Kingsley, 'Recruiting Applicants for the Public service (Chicago. 1942) A report submitted to the Civil Service Assembly by the Committee on Recruiting for the Public service

होती है। प्रश्न यह है कि ये परीक्षाए किसी विशिष्ट पद के लिए विशिष्ट प्रत्याशी की योग्यताओ के निर्धारण मे कहाँ तक सफल हो सकती हैं।

(४) इन योग्यताओ अथवा अर्हताओ का निर्धारण करने के लिए किस प्रकार के अभिकरण (Agency) की स्थापना की जाए और वह अभिकरण किस प्रकृति का होना चाहिए ?

ये भर्ती की अनेक महत्वपूर्ण समस्याये हैं। अब हम एक-एक करके इनकी विवेचना करेंगे

(१) भर्ती की रीतिया (Methods of Recruitment)—सेवा के अन्दर से अथवा **पदोन्नति द्वारा भर्ती** बनाम सेवा के बाहर से अथवा **सीधी भर्ती**।

सरकारी कर्मचारी-वर्ग की भर्ती दो तरीको से की जाती है एक तरीका है सीधे खुले बाजार से कर्मचारियो की भर्ती करना। इसे सीधी भर्ती (Direct Recruitment) कहा जाता है। दूसरा तरीका यह है कि कर्मचारियो की एक पद से दूसरे पद को पदोन्नति (Promotion) करदी जाती है। इसे सेवा के अन्दर से की जाने वाली भर्ती कहा जाता है क्योकि कर्मचारियो की एक पद से दूसरे पद को तरक्की करदी जाती है। लोक सेवा मे उच्चतर अधिकारियो के मामले मे अधिकतर भर्ती के इसी सिद्धान्त को लागू किया जाता है। लगभग सभी देश के लोक कर्मचारियो का चुनाव करने के लिए इन दोनो ही रीतियो का उपयोग करते हैं।

सेवा के भीतर से अथवा पदोन्नति द्वारा भर्ती करने की अच्छाइयाँ
(Merits of Recruitment from within or by Promotion)

भर्ती की इस विधि मे, जिसमे कि कर्मचारी पहले से ही सेवा मे होते हैं और उच्चतर पदो पर उनकी पदोन्नति कर दी जाती है, अनेक अच्छाइयाँ पाई जाती हैं।

(१) कर्मचारी पहले से ही सरकारी काम का अनुभव प्राप्त किये होते हैं और यह पिछला अनुभव नये कर्तव्यो की पूर्ति मे उनकी सहायता करता है।

(२) भर्ती की यह रीति कर्मचारियो को उन्नति के प्रचुर अवसर प्रदान करती है। यह कर्मचारियो को और अधिक कुशलता के साथ कार्य करने की प्रेरणा देने वाली एक शक्ति होती है। इस प्रकार सेवा मे कार्य-कुशलता (Efficiency) बढती है।

(३) निष्ठा तथा उत्साहपूर्ण सेवा के लिये पुरस्कार के रूप मे पदोन्नति की जो आशा होती है वह सेवा मे कार्य-सचालन के स्तर को ऊचा बनाये रखने के लिये अमूल्य सिद्ध होती है।

(४) यह कहा जाता है कि 'परीक्षा पद्धति' व्यक्तियो की कार्य करने की क्षमताओ (Capacities) का पता नही लगा सकती। परीक्षा पद्धति की यह कमी सेवा के भीतर से अथवा पदोन्नति द्वारा भर्ती करके दूर करदी जाती है। चूंकि कर्मचारी पहले से ही एक पद पर काम कर रहा होता है अत उनकी कार्य करने की सामर्थ्य का अच्छी प्रकार पता रहता है।

(५) कर्मचारी के पिछले कार्यो के लेखे-जोखे के आधार पर उसको सुरक्षा के साथ नया उत्तरदायित्व सौंपा जा सकता है।

(६) परीक्षा पद्धति तथा सीधी भर्ती की अपेक्षा इस रीति के द्वारा उच्चतर पदो के लिये कुशल कर्मचारियो की प्राप्ति की अधिक सम्भावना है।

(७) चूकि कर्मचारी पहले से ही प्रशिक्षण-प्राप्त (Trained) होते हैं अत विना किसी जोखिम अथवा कठिनाई के उनको नया काम सौपा जा सकता है। इस प्रकार नई भर्ती किये गये कर्मचारियो को दिये जाने वाले प्रशिक्षण (Training) के व्यय की बचत होती है।

यदि भर्ती की इस पद्धति को अपनाया जाये तो सम्पूर्ण रूप मे सरकारी सेवा की कुशलता मे वृद्धि होती है। इससे कठिन श्रम करने की भारी प्रेरणा मिलती है जोकि कार्य-कुशलता के लिए अत्यन्त आवश्यक होती है।

सेवा के भीतर से अथवा पदोन्नति द्वारा भर्ती करने के दोष
(Defects of Recruitment from within or by Promotion).

(१) इस पद्धति से कर्मचारियो के चुनाव का क्षेत्र सकुचित हो जाता है क्योकि भर्ती का कार्य केवल उन लोगो तक ही सीमित हो जाता है जोकि पहले से ही सेवा मे लगे होते हैं। जब चुनाव की परिधि ही सीमित हो जाती है तो कम योग्य व्यक्तियो की भर्ती की ही सम्भावना रहती है।

(२) इससे गतिहीनता तथा रूढवादिता को प्रोत्साहन मिलता है क्योकि सेवा मे नये रक्त का इन्जेक्शन नही दिया जाता।

सीधी भर्ती (Direct recruitment) का लाभ यह है कि प्रार्थियो (Applicants) की एक बहुत बडी सख्या मे से सर्वोत्तम गुणो वाले व्यक्तियो का चयन किया जा सकता है। कर्मचारियो के चुनाव की परिधि बहुत बडी होती है क्योकि चुनाव व्यक्तियो की एक वहुत बडी सख्या मे मे किया जाता है।

सीधी भर्ती की पद्धति के अन्तर्गत, सभी व्यक्तियो को पदो के लिए प्रतियोगिता करने का एक न्यायोचित अवसर प्रदान किया जाता है। सीधी भर्ती की पद्धति के द्वारा 'समान अवसर' के सिद्धान्त को सर्वोत्तम रीति से लागू किया जाता है।[1]

सभी प्रजातन्त्रीय देशो मे भर्ती की इन दोनो ही पद्धतियो का अनुसरण किया जाता है, अर्थात् खुली प्रतियोगिता (Open competition) की पद्धति का और साथ ही साथ पदोन्नति (Promotion) की पद्धति का। उच्चतर पर्यवेक्षकीय स्टाफ (Higher Supervisory Staff) के मामले मे सामान्यत पदोन्नति द्वारा भर्ती की

---

1 The best amount of this problem is given by Lewis Mayers, The Federal service A study of the system of Personnel Administration of the United States Government Institute for Government Research, studies in Administration 1921, Chapter on 'Selection by Promotion from within versus Recruitment from without, pp 215-17

पद्धति का आश्रय लिया जाता है। भारत मे आय-कर विभाग (Income-tax Department) मे प्रथम श्रेणी (Class I) के २० प्रतिशत से अधिक स्थान पदोन्नति द्वारा भरे जाते हैं। प्रथम तथा द्वितीय श्रेणी की केन्द्रीय सेवाओ के सम्बन्ध मे भारत मे जो स्थिति चल रही है उसका वर्णन केन्द्रीय वेतन आयोग द्वारा इस प्रकार किया गया है, "यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि प्रथम श्रेणी के लिए भर्ती मुख्यत लोक-सेवा आयोग द्वारा आयोजित की जाने वाली एक प्रतियोगिता परीक्षा (Competitive Examination) के द्वारा की जाती है (और कभी-कभी उनके द्वारा चयन करके भी की जाती है) तथा द्वितीय श्रेणी मे से (लोक सेवा आयोग की सहमति से) कम मात्रा मे की जाती है। द्वितीय श्रेणी (Class II) की भर्ती भी अनेक मामलो मे लोक सेवा आयोग द्वारा आयोजिन की जाने वाली एक प्रतियोगिता परीक्षा द्वारा की जाती है (अथवा उनके द्वारा चयन करके)। तथापि, प्रथम श्रेणी के लिये की जाने वाली पदोन्नतियो के मुकाबले निम्न श्रेणियो मे मे द्वितीय श्रेणी के लिये पदोन्नत किये जाने वाले व्यक्तियो का अनुपात अधिक होता है. कुछ विभागो (Departments) मे द्वितीय श्रेणी के पदो को पूर्णतया पदोन्नति द्वारा ही भरा जाता है।[1]

लोक-कर्मचारियो के लिए अपेक्षित योग्यतायें अथवा अर्हतायें

(Qualifications required of the Public servants).

प्रत्येक देश मे लोक-सेवा मे प्रवेश के लिये कुछ पूर्वापेक्षित (Pre-requisite) योग्यताये निर्धारित की जाती है। वे व्यक्ति, जोकि समानता और मानवता के समर्थक है, यह चाहते है कि प्रत्येक व्यक्ति को सिविल सेवा आयोगो मे अवसर प्रदान किया जाये। उनके अनुसार लोक-सेवाओ के लिये योग्यताओ अथवा अर्हताओ की कोई भी पूर्वशर्त समानता के सिद्धान्त (Principle of equality) के विरुद्ध है। शैक्षिणिक योग्यताये (Educational qualifications) प्रतियोगिता के क्षेत्र को केवल उन्ही लोगो तक सीमित कर देती हैं जोकि उन योग्यताओ को पूरा कर सकते हैं, जबकि प्रत्येक व्यक्ति को इस बात का एक अवसर दिया जाना चाहिये कि वह अपनी पसन्द की किसी भी सेवा के लिए प्रतियोगिता कर सके। वे व्यक्ति, जोकि इस बात के समर्थक हैं कि लोक-सेवा मे प्रवेश के लिए कुछ पूर्वापेक्षित योग्यतायें होनी चाहिये, यह दावा करते है कि प्रत्येक व्यक्ति हर एक पद के लिए उपयुक्त तथा योग्य नही होता। अत पदो के लिए प्रतियोगिता करने की अनुमति केवल उन्ही प्रत्याशियो (Candidates) को दी जानी चाहिये जिनमे कि उसके लिए

---

1 Report of the Central Pay Commisson, 1950, pp 15-16

Note—No Direct Recruitment of upper Division Clerks The Government of India has decided that there will be no direct recruitment to the posts of Upper Division Clerks in Central Government offices except the Audit and Accounts Departments These posts will be filled exclusively by promotion of lower division clerks

विशिष्ट क्षमता पाई जाये । इस प्रकार उन लोगो को सेवाओ से दूर रखने के लिये, जिनके कि सफल होने की सम्भावना नही है, यह आवश्यक है कि परीक्षाओ की पूर्वशर्तों के रूप मे कुछ प्रतिबन्ध लगाये जाये ।

लोक सेवा मे प्रवेश के लिए सदा ही कुछ योग्यतायें अथवा अर्हतायें निर्धारित की जाती हैं जिससे कि किसी विशिष्ट-पद के लिए दो प्रकार की योग्यताओ की आवश्यकता होती है । (१) सामान्य (General) और विशिष्ट (Special) । प्रत्येक लोक-कर्मचारी के लिए जिन सामान्य योग्यताओ की आवश्यकता होती है वे है नागरिकता (Citizenship), अधिवास (Domicile) अथवा निवास (Residence) तथा लिंग (Sex) । विशिष्ट योग्यताये आयु (Age), शिक्षा (Education) तथा अनुभव (Experience) से सम्बन्ध रखती हैं । शिक्षा सामान्य अथवा तकनीकी (Technical) हो सकती है । अब हम इन योग्यताओ का एक-एक करके अध्ययन करेंगे ।

योग्यतायें अथवा अर्हतायें
(Qualifications)

(१) **नागरिकता** (Citizenship)—एक लोक-कर्मचारी के लिये प्रथम अपेक्षित योग्यता यह है कि उसे राज्य का नागरिक होना चाहिए । इस योग्यता का अस्तित्व उस समय तक जारी रहेगा जब तक कि पृथक्-पृथक् राष्ट्रीय-राज्य बने रहेंगे ।

(२) **अधिवास अथवा निवास** (Domicile or Residence)—कभी-कभी लोक-कर्मचारियो के लिये अधिवास योग्यताओ की आवश्यकता होती है । इस स्थिति मे केवल देश के किसी विशिष्ट राज्य अथवा भाग के निवासी ही कुछ सरकारी नियुक्तियो के लिए योग्य समझे जाते हैं । इसका अर्थ यह है कि कम योग्य एव कम सक्षम व्यक्तियो की नियुक्ति इसलिए हो सकती है क्योकि वे निवास की योग्यता की शर्त को पूरा करते है और यह हो सकता है कि अनेक योग्य एव सक्षम व्यक्तियो को प्रतियोगिता का अवसर केवल इसलिए न मिले क्योकि वे उस विशिष्ट-क्षेत्र मे नही रहते ।

(३) **लिंग** (Sex)—कभी-कभी लिंग किसी एक विशिष्ट-पद के लिए योग्यता और अन्य पद के लिए अयोग्यता अथवा अनर्हता (Disqualification) बन जाता है । प्रजातन्त्रीय देशो मे, अधिकाश सरकारी नियुक्तियो के सम्बन्ध मे लिंग की समानता के सिद्धान्त का पालन किया जाता है, यद्यपि कभी-कभी उच्च प्रशासकीय पदो पर विवाहित स्त्रियो की नियुक्ति पर रोक लगा दी जाती है । यह समझा जाता है कि उनके पारिवारिक उत्तरदायित्व उनके प्रशासकीय कर्त्तव्यो से टकरा सकते हैं ।

(४) **आयु** (Age)—कुछ देश तो लोक-सेवाओ के लिए नवयुवको (Young persons) को भर्ती करने की पद्धति का अनुसरण करते हैं, जबकि अन्य देश इस बात मे विश्वास करते हैं कि अधिक आयु के परिपक्व एव अनुभवी (Experienced)

व्यक्ति भर्ती किये जाने चाहिये । इगलैड और भारत मे १६, १८, २२ अथवा २५ वर्ष के युवा व्यक्तियो को भर्ती करने की प्रथा है अर्थात् ठीक उस समय के पश्चात् जबकि वे स्कूलो अथवा कालिजो से निकलते हैं । नवयुवको को भर्ती कर लिया जाता है और फिर जब वे सेवा मे होते हैं तो उच्चतर पदो के लिए उन्हे प्रशिक्षण (Training) दिया जाता है । सयुक्त राज्य अमेरिका मे, प्रशिक्षण प्राप्त, अनुभवी तथा परिपक्व आयु वाले व्यक्तियो को भर्ती करने की प्रथा है । वहाँ वैज्ञानिक व व्यावसायिक पदो के लिए आयु की सीमा (Age-limit) ३५, ४५, तथा ५३ है । अमेरिका मे जोर इस बात पर दिया जाता है कि 'प्रत्येक व्यक्ति को, जब भी वह चाहे, लोक सेवा के लिये प्रतियोगिता करने का अवसर प्रदान किया जाए ।' जो व्यक्ति इस बात मे विश्वास करते है कि लोक-सेवा को एक स्थायी जीवन-वृत्ति (Permanent career) बनाया जाय, उनकी राय यह है कि इसमे नवयुवको को भर्ती किया जाना चाहिए और बाद मे उच्चतर पदो के लिए उनकी पदोन्नति कर दी जानी चाहिए । यह कहा जाता है कि मध्यम-आयु के व्यक्ति, जो कि लोक-सेवा मे प्रवेश करना चाहते है, अधिकतर वे होते हैं जोकि गैर-सरकारी व्यवसाय मे असफलता के साथ अपना भाग्य आजमाते हैं और जो सरकारी नौकरी की सुरक्षा मे शान्ति के साथ रहना चाहते हैं ।

आयु की समस्या के बारे मे लिखते हुए **जे० डी० किंगसली** (J D Kingsley) ने कहा कि "पहली (अर्थात् नवयुवको तथा नवयुवतियो की भर्ती) की प्रथा मे यह पहले से ही मान लिया जाता है कि सेवाओ मे जीवन-वृत्ति पद-सोपानो (Career hierarchies) अथवा अपवर्ती सीढियो का एक क्रम वर्तमान रहता है जिन पर अधिक योग्य व प्रभावशाली अधिकारी अपने समस्त सेवा-काल मे आगे बढते रहते है । दूसरी (अर्थात् कार्य और अनुभव से सम्बन्धित व्यावहारिक परीक्षाओ के आधार पर परिपक्व आयु वाले पुरुषो व स्त्रियो की भर्ती की) प्रथा मे सिविल सेवा को न्यूनाधिक रूप मे पृथक्-पृथक् पदो (Discrete positions) का एक समूह माना जाता है कि मुख्यत विशिष्ट-पद के लिए आवश्यक विशिष्ट ज्ञान एव योग्यता के आधार पर भरा जाता है । पहली पद्धति पदोन्नति (Promotion) पर जोर देती है और सेवा को गतिशील बनाती है । दूसरी पद्धति प्रवेश के समय विशिष्ट एव तकनीकी ज्ञान पर जोर देती है और सेवा को और अधिक स्थिर अथवा गतिहीन बनाती है । पहली होनहार नवयुवको का पक्ष लेती है और दूसरी उदासीन प्रौढता (Mediocre maturity) का । पहली पद्धति सिविल सेवा को शिक्षा-प्रणाली के अनुकूल बनाती है और दूसरी इसको निजी उद्योग मे रोजगार की मात्रा की घट-बढ के अनुरूप बनाती है ।"[1]

---

1 J Donald Kingsley 'Recruiting Applicants for the Public service (Chicago , 1942) A report submitted to the Civil Service Assembly the Committee on Recruiting for the Public service Civil service Assembly of the United States and Chanada

भर्ती आमतौर पर अपेक्षाकृत शुरू की आयु मे ही की जानी चाहिये और पदोन्नति के अवसरो मे वृद्धि की जानी चाहिए जिससे कि लोक-सेवा कर्मचारियो की एक स्थायी जीवनवृत्ति बन सके ।

(५) **शिक्षा** (Education)—सरकार को केवल सामान्य प्रशासको (General administrators) की आवश्यकता नही होती, अपितु शिल्पियो अथवा तकनीकज्ञो (Technicians), वैज्ञानिको, डाक्टरो, इजीनियरो तथा अन्य विशिष्टीकृत व्यवसायो के व्यक्तियो की भी आवश्यकता होती है ।

शिक्षा की योग्यता दो प्रकार की होती है (१) सामान्य शिक्षा अर्थात् वह जोकि एक छात्र सामान्य शैक्षणिक सस्थाओ मे प्राप्त करता है और (२) विशिष्ट शिक्षा जो कि व्यावसायिक स्कूलो मे दी जाती है जैसे डाक्टरी अथवा इजीनियरिंग की शिक्षा । तकनीकी (Technical) और व्यावसायिक (Professional) पदो पर केवल उन्ही *व्यक्तियो की भर्ती की जानी चाहिए जिन्होने उस व्यवसाय मे तकनीकी* शिक्षा प्राप्त की हो । डाक्टरो के रूप मे केवल उन्ही व्यक्तियो की भर्ती की जानी चाहिये जिन्होने डाक्टरी की शिक्षा प्राप्त की हो ।

जहाँ तक अन्य सरकारी नौकरियो का सम्बन्ध है, कुछ देशो मे औपचारिक शिक्षा (Formal education) की आवश्यकता अनिवार्य है जबकि कुछ अन्य देश इसके पक्ष मे नही है । अमेरिकन अप्रावैधिक अथवा अतकनीकी (Non-Technical) प्रकृति की सरकारी नौकरियो मे प्रवेश के लिये औपचारिक शिक्षा की आवश्यकता के विचार का विरोध करते हैं । उनका विश्वास है कि प्रत्येक अमरीकी नागरिक किसी भी लोक-सेवा परीक्षा मे बैठने के लिये समान अवसर प्राप्त करने का अधिकारी है । सन् १९४८ मे अमेरिकन काग्रेस ने वैज्ञानिक, तकनीकी तथा व्यावसायिक पदो को छोडकर अन्य सभी पदो के लिए किसी प्रकार की शैक्षणिक आवश्यकता का निषेध कर दिया था ।

भारत तथा इगलैड मे, औपचारिक शिक्षा सरकारी नौकरियो मे प्रवेश की एक पूर्वशर्त है । ब्रिटेन मे, लिपिक पदों के लिए हायर-सेकेण्डरी सार्टिफिकेट, निष्पादक (Executive) पदो के लिए बी० ए० की डिग्री और प्रशासकीय पदो के लिए आनर्स डिग्री आवश्यक योग्यता है । भारत मे, लिपिक पदो के लिये हाई स्कूल अथवा हायर सैकेण्डरी का प्रमाण पत्र, और उच्च पदो के लिए कला (Arts), विज्ञान, वाणिज्य (Commerce) या विधि (Law) मे डिग्री आवश्यक योग्यता है । औपचारिक शिक्षा की आवश्यकताओ की इस व्यवस्था का लाभ यह है कि प्रतियोगिता परीक्षाओ मे बैठने की केवल उन्ही व्यक्तियो को अनुमति दी जाती है जिनकी कि प्रतियोगिता मे सफल होने की कोई सम्भावना हो । यदि औपचारिक शैक्षणिक योग्यतायें (Formal educational qualifications) प्रत्याशियो के लिए आवश्यक न हों तो कोई भी व्यक्ति प्रतियोगिता परीक्षाओ मे बैठ सकता है, और इस स्थिति मे सरकारी

धन का भारी अपव्यय होगा और लोक-सेवा आयोग अनावश्यक किस्म के कार्य के भार मे लदा रहेगा।

(६) अनुभव (Experience)—कभी-कभी वह प्रशिक्षण अथवा अनुभव जोकि एक प्रत्याशी (Candidate) ने कार्य के वास्तविक सम्पादन के समय प्राप्त किया होता है, सरकारी नौकरियो के लिये एक आवश्यक योग्यता माना जाता है।

(७) वैयक्तिक गुण अथवा योग्यतायें (Personal Qualifications)—ईमानदारी (Honesty), चातुरी (Tact), प्रतिभाशाली अथवा सामयिक सूझ (Presence of mind), साधनपूर्णता (Resourcefulness), विश्वस्तता (Reliability) दृढ़ता (Persistence) तथा निर्देश देने व नियन्त्रण करने की सामर्थ्य—एक लोक कर्मचारी के लिए महत्वपूर्ण योग्यताए तथा अर्हताए मानी जाती है।

इन सभी योग्यताओ अथवा अर्हताओ का उद्देश्य यही है कि लोक सेवा के लिए सबसे अधिक योग्य एव सक्षम (Competent) व्यक्ति प्राप्त हो।

३. कर्मचारियो की योग्यताओ की जॉच करने का ढग
(The Method of Determining qualifications)

भर्ती मे सम्बन्धित एक अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि प्रत्याशियो की योग्यताओ के निश्चय के लिए विधियो तथा उपायो की खोज की जाय। कर्मचारियो की योग्यताओ के निश्चय के लिए साधारणत परीक्षा विधि (Examination device) का प्रयोग किया जाता है। परीक्षा के द्वारा प्रत्याशी की योग्यता की जाँच करली जाती है और अयोग्य अथवा अपात्र व्यक्तियो को छोड दिया जाता है।

कर्मचारियो की योग्यताओ की जाँच करने के लिए ली जाने वाली किसी भी परीक्षा मे कम से कम दो विशिष्टतायें होनी चाहियें (१) परीक्षा किसी विशिष्ट कार्य को सम्पन्न करने की योग्यता का माप करने के लिए यथेष्ट रूप मे मान्य होनी चाहिए। यदि परीक्षा प्रत्याशी की वास्तविक योग्यता का ठीक-ठीक पता नही लगा सकती तो वह व्यर्थ है। यदि वह व्यक्ति जिसने कि परीक्षा को पास कर लिया है, अपना कार्य नही कर सकता तो उस परीक्षा की कोई उपयोगिता नही।

(२) परीक्षा विश्वस्त और प्रामाणिक होनी चाहिए। कोई व्यक्ति यदि एक ही परीक्षा को दुबारा दे तो उसे लगभग एक से ही अक अथवा स्थिति प्राप्त होनी चाहिए। इसके अतिरिक्त, परीक्षा ऐसी होनी चाहिये जो प्रत्याशियो को भी स्पष्ट रूप से इस सम्बन्ध मे सन्तुष्टि प्रदान करदे कि उनमे से किसी के साथ भी अन्याय नही किया गया है। यह व्यक्ति-निरपेक्ष (Objective) होनी चाहिए जिससे कि किसी भी प्रत्याशी के मन मे यह भावना पैदा न हो कि कम योग्य व्यक्ति चुन लिए गये और अधिक योग्य छोड दिये गये।

भर्ती की परीक्षाये दो प्रकार की होती हैं (१) प्रतियोगिता (Competitive) और (२) अप्रतियोगी (Non-Competitive)। प्रतियोगिता परीक्षा को दो बातो का

निर्णय करना पड़ता है (क) इसे इस बात का निर्णय करना होता है कि कौन-कौन से प्रत्याशी (Candidates) न्यूनतम स्तरो मे आते हैं। (ख) इसे प्रार्थियो (Applicants) के क्रम का भी निर्णय करना होता है अर्थात् यह है कि कौनसा प्रार्थी सबसे अच्छा है और उसके बाद कौनसा अच्छा है, तथा इसी प्रकार आगे भी क्रम निर्धारण करना। इन परीक्षाओ को प्रत्याशियो की सापेक्षिक स्थितियो (Relative positions) का निर्धारण करना होता है। अप्रतियोगी परीक्षा को केवल उन न्यूनतम स्तरो (Minimum standards) का निर्धारण करना होता है जोकि प्रत्याशियो के लिए आवश्यक होते हैं। प्रत्याशियो की योग्यताओ अथवा अर्हताओ की जाच करने के लिए निम्न प्रकार की परीक्षाओ की व्यवस्था की जाती है

(क) लिखित परीक्षा (The Written Examination),

(ख) मौखिक परीक्षा (The Oral Examination),

(ग) कार्य-सम्पन्नता का प्रदर्शन (The performance demonstration),

(घ) शिक्षा व अनुभव का मूल्याकन (Evaluation of education and experience),

(ङ) बुद्धि परीक्षा (Intelligence test)।

अब हम इन परीक्षाओ मे से एक-एक की विवेचना करेंगे —

(क) लिखित परीक्षा (Written Examination)

प्रत्याशियो की योग्यताओ की जाच करने के लिए सभी देशो द्वारा आमतौर पर लिखित परीक्षाओ का उपयोग किया जाता है। प्रश्न यह है कि परीक्षा का उद्देश्य क्या होना चाहिये? क्या परीक्षा के द्वारा प्रत्याशियो के श्रेष्ठतर ज्ञान या सामान्य योग्यता और बौद्धिक बल का पता लगाने का प्रयत्न किया जाना चाहिये अथवा इसके द्वारा उस विशेष जानकारी (Specific information) का पता लगाने का प्रयत्न किया जाना चाहिये जोकि उस पद के कर्त्तव्यो के सम्बन्ध मे प्रत्याशी मे पाई जाये जिसके लिये कि वह प्रतियोगिता कर रहा है? भारतवर्ष तथा इगलैण्ड मे इन परीक्षाओ का उद्देश्य यह है कि प्रत्याशियो की सामान्य बुद्धिमत्ता (General intelligence) अथवा श्रेष्ठतर ज्ञान (Superior mind) का पता लगाया जाए। परीक्षाओ उन विषयो मे ली जाती है जोकि कालिजो तथा विश्वविद्यालयो मे पढाये जाते हैं। इस प्रकार की परीक्षा के समर्थको का यह विश्वास है कि श्रेष्ठतर बुद्धि तथा ज्ञान वाले व्यक्ति हर एक प्रकार का कार्य कर सकते हैं और अपने आपको सभी परिस्थितियो के अनुकूल बना सकते हैं।

मैकाले, जोकि इस विचार के सबसे बडे नायक थे, ने यह तर्क दिया कि "ऐसे व्यक्ति जोकि २१—२२ वर्ष तक ऐसे अध्ययनो (Studies) मे व्यस्त रहे जिनका किसी भी प्रकार के व्यवसाय से कोई सम्बन्ध नहीं रहा और जिनके प्रभाव मे उनका

मस्तिष्क खुला, ग्रहणशील तथा शक्तिशाली बना है, वे व्यवसाय के प्रत्येक कार्य मे उन व्यक्तियो से अधिक सफल सिद्ध होगे जिन्होने कि १८–१६ वर्ष तक अपने व्यवसायो के विशेष अध्ययन मे व्यतीत किये है।" यह विश्वास किया जाता है कि इतिहास, उच्च कोटि के साहित्य तथा उदार शिक्षा के अध्ययन से सर्वश्रेष्ठ प्रशासक पैदा होगे क्योकि वे अध्ययन व्यक्तियो मे सोचने-विचारने का एक ऐसा तरीका तथा बौद्धिक एव नैतिक अनुशासन उत्पन्न करते है जोकि कुशल तथा योग्य प्रशासको के लिये आवश्यक होता है। शिक्षा प्रत्याशियो मे एक सर्वोच्च कोटि की व्यावहारिक सूझ-बूझ उत्पन्न करती है। भारत मे उच्च सिविल सेवा के लिये प्रतियोगिता करने वाले प्रत्याशियो को उन विषयो मे परीक्षायें देनी होती है जोकि विश्वविद्यालयो मे पढाये जाते है। इन परीक्षाओ का उद्देश्य प्रत्याशियो की सामान्य बुद्धिमत्ता का पता लगाना होता है।

सयुक्त राज्य अमेरिका मे सिविल सेवको की परीक्षाओ की एक पृथक् ही योजना है। अमेरिकन सिविल सेवा परीक्षाओ का उद्देश्य उस विशिष्ट ज्ञान (Specific knowledge) का पता लगाना है जोकि प्रत्याशी मे उन कर्त्तव्यो (Duties) के सम्बन्ध मे पाया जाता है जो उसे सम्पन्न करने होते है। परीक्षा का उद्देश्य यह है कि किसी भी विशिष्ट क्षेत्र मे प्रत्याशी के उस ज्ञान का पता लगाया जाए जोकि उसने प्रशिक्षण (Training) अथवा अनुभव (Experience) द्वारा प्राप्त किया हो। एक ऐसे पद के लिए अर्थशास्त्र (Economics) मे परीक्षा ली जाती है जिसमे कि अर्थशास्त्र के बारे मे ज्ञान होना आवश्यक होता है। जिस पद मे कानूनी ज्ञान की आवश्यकता होती है उसके लिये कानून (Law) मे परीक्षा ली जाती है। इस पद्धति का लाभ यह है कि कर्मचारी कार्यालय मे अपना कार्य तुरन्त ही प्रारम्भ कर देता है।

लिखित परीक्षा की किस्मे (Types of Written Test)

(अ) निबन्ध परीक्षा (Essay Type Test)—इस परीक्षा के अन्तर्गत, प्रत्याशी से किसी विशिष्ट समस्या पर एक लम्बा निबन्ध लिखने को कहा जाता है। इस परीक्षा का उद्देश्य तथ्यो (Facts) के बारे मे प्रत्याशी के ज्ञान तथा एक समस्या के बारे मे तर्क एव प्रमाण प्रस्तुत करने की उसकी सामर्थ्य का पता लगाना है। इस विधि मे तर्क प्रस्तुत करने के उसके ढग, उसकी वर्णन शैली तथा भाषा शैली की भी जाच हो जाती है। भारत मे अखिल भारतीय सेवाओ के लिए अनिवार्य 'निबन्ध' की परीक्षा होती है। इस पद्धति के निम्नलिखित दोष है (१) यह पद्धति खर्चीली है क्योकि इसमे योग्य परीक्षको (Examiners) को पारिश्रमिक देना पडता है। (२) पृथक्-पृथक् परीक्षको के मूल्याकन-स्तर भिन्न-भिन्न होते है अत परीक्षा प्रणाली मे भावनात्मक तत्व (Subjective elements) उत्पन्न हो जाता है। इस पद्धति मे मूल्याकन मे एकरूपता (Uniformity) नही लाई जा सकती।

(आ) लघु उत्तर परीक्षायें (Short answer tests)—प्रत्याशी को एक ऐसी परीक्षा देनी होती है जिसमे सौ या दो सौ प्रश्न दिये होते हैं जिनका उसे हाँ या ना मे उत्तर देना होता है। इसमे झूठे-सच्चे प्रश्न पूछे जाते हैं और प्रत्याशी को केवल यह बताना होता है कि प्रश्नो मे पूछी गई बात ठीक है या नही। कभी-कभी ऐसा होता है कि एक प्रश्न दिया होता है और उसके बहुत से उत्तर दिये होते हैं जिनमे से प्रत्याशी को सही उत्तर छाटना होता है। इसे 'बहु विकल्पी लघु परीक्षा' (Multiple choice short test) कहा जाता है। कभी-कभी प्रत्याशी को रिक्त स्थानो (Blanks) अथवा छूटे हुए शब्दो की पूर्ति करनी होती है। इस परीक्षा के निम्न-लिखित लाभ है—

(१) यह परीक्षा इन मानो मे व्यक्तिनिरपेक्ष (Objective) होती है कि इसमे एक प्रश्न का एक ही उत्तर होता है, अत परीक्षक का भावनात्मक तत्व कतई भी प्रकाश मे नही आता। उत्तर या तो सही होता है या गलत, बीच का कोई रास्ता नही होता और परीक्षक के किसी भी प्रकार के स्व-विवेक (Discretion) का प्रश्न नही उत्पन्न होता।

(२) चूंकि परीक्षा 'छोटे प्रश्नो' के रूप मे होती है अत थोडे से समय मे दी प्रत्याशी के बारे मे बहुत कुछ जाना जा सकता है।

(३) ये परीक्षायें निबन्ध परीक्षाओ के मुकाबले अधिक विश्वस्त एव प्रमाणिक होती हैं।

(४) इनके प्रबन्ध करने मे भी कम व्यय होता है क्योंकि एक ही समय मे हजारो प्रत्याशियो की परीक्षा ले ली जाती है। इनका परीक्षा-फल बिजली के द्वारा गणना करने वाली मशीनो से तैयार किया जाता है अत कार्य बहुत शीघ्र निबट जाता है।

परन्तु इन परीक्षाओ के द्वारा प्रत्याशी (Candidate) की वर्णनशैली अथवा भाषा की जाच नही की जा सकती। इनके द्वारा जटिल समस्याओ के विश्लेषण की उसकी योग्यता का पता नही लगाया जा सकता। इस रीति के द्वारा प्रत्याशी के अनेक मानसिक गुणो की जाच नही की जा सकती। कभी-कभी यह भी आरोप लगाया जाता है कि ये परीक्षायें प्रत्याशी के केवल तथ्य सम्बन्धी ज्ञान (Factual knowledge) की जाच कर सकती हैं। कुछ अमरीकी लेखको का यह विश्वास है कि यदि इन परीक्षाओ के प्रश्नो को सावधानी के साथ तैयार किया जाये तो ये निबन्ध-परीक्षा अथवा अन्य किसी प्रकार की परीक्षा के मुकाबले अधिक यथार्थ रूप मे तथा अल्प-व्यय के साथ प्रत्याशी का निर्णय, तर्क तथा विश्लेषण करने की योग्यता का माप कर सकती है।[1] 'लघु उत्तर परीक्षाओ' के बारे मे लिखते हुए प्रो० विलियम ए० रोबसन (William A Robson) ने कहा कि "···· लिपिक सहायकों का चयन ऐसी लघु परीक्षाओं के द्वारा किया जाता है जिनमे कि गणित, अक्षर-विन्यास

1 Marx Morstein (Ed), *op cit*, p 563

(Spelling) तथा शब्दो के अर्थ आदि से सम्बन्धित सरल 'सही व गलत' प्रश्न दिये होते हैं। इन परीक्षाओ का गम्भीर दोष यह है कि इनमे ठोस योग्यता के लिए कोई गु जाइश नही होती जैसी कि स्पष्ट वर्णनशैली मे होती है, परन्तु इनमे यह लाभ अवश्य है कि कार्य शीघ्र गति से हो जाता है।"[1]

(ख) मौखिक परीक्षा (Oral Test)

केवल लिखित परीक्षा के द्वारा प्रत्याशी के व्यक्तित्व (Personality) की विशेषताओ का मूल्याकन नही किया जा सकता। अत उसकी वैयक्तिक विशेषताओ का माप करने के लिए मौखिक परीक्षा अथवा साक्षात्कार (Interview) का सहारा लिया जाता है। साक्षात्कार-विधि (Interview device) का प्रयोग सन् १९०९ मे सर्वप्रथम इगलैड मे नये श्रम कार्यालयो के प्रबन्धको (Managers) का चुनाव करने के लिए किया गया था। प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् इगलैड मे, सदर्शन अथवा साक्षात्कार प्रशासकीय-वर्ग के लिए किये जाने वाले चयन (Selection) की प्रक्रिया का एक अग ही बन गया। बाद मे इसका विस्तार अन्य वर्गो मे भी कर दिया गया। भारत मे, भारतीय प्रशासन सेवा (I A S) और भारतीय विदेश सेवा (I F S) के लिए ४०० अको (Marks) की अन्य केन्द्रीय सेवाओ के लिए ३०० अको की एक व्यक्तित्व परीक्षा' (Personality test) होती है। मौखिक परीक्षा प्रत्याशी की क्षिप्रग्राहिता (Sharpness), सतकर्ता (Alertness), बुद्धिमत्ता (Intelligence) तथा शीघ्र निर्णय करने की क्षमता (Quick mindedness) की जाच करने के लिए ली जाती है। यह हो सकता है कि प्रत्याशी को तुरन्त ही सुलझाने के लिए एक समस्या (Problem) दे दी जाय। समस्या को सुलझाने के उसके ढग से सकटकाल का मुकाबला करने की उसकी क्षमता का पता चलता है। मौखिक परीक्षा अथवा साक्षात्कार के द्वारा प्रत्याशी मौखिक वर्णनशैली, समस्याओ के निपटने के ढग तथा दूसरो को सन्तुष्ट करने की उसकी सामर्थ्य का पता लगाया जा सकता है। इसका मुख्य उद्देश्य प्रत्याशी की वैयक्तिक विशिष्टताओ की जाच करना होता है। उसके नेतृत्व के सम्भावित गुणो, उसके उत्साह तथा चरित्र-बल का मूल्याकन परीक्षा की इसी पद्धति के द्वारा हो सकता है।

मौखिक परीक्षा अथवा साक्षात्कार प्रणाली मे सामान्यतया दो दोष पाये जाते हैं। प्रथम तो यह कि इस प्रणाली की प्रकृति प्रभावात्मक तथा अत्यधिक भावनात्मक अथवा व्यक्तिसापेक्ष (Largely subjective) है। व्यक्तित्व (Personality) के बारे मे भिन्न-भिन्न लोगो के विभिन्न विचार होते हैं। चूंकि इस रीति की प्रकृति अत्यधिक व्यक्तिसापेक्ष अथवा भावनात्मक है अत प्रत्याशियो की जाच करने की यह एक अविश्वस्त (Unreliable) रीति है। दूसरे, परेशानी तथा भय के वातावरण मे अनेक प्रत्याशी घबरा जाते हैं और अपनी बात को पूर्णतया

1 William A Robson, (Ed), *The Civil Service in Britain and France*, p 37

अच्छी प्रकार से स्पष्ट नही कर पाते । साक्षात्कार-कक्ष (Interview room) प्रत्याशी के लिये एक ऐसी कृत्रिम स्थिति उत्पन्न कर देता है जिसमे कि वह उत्तेजित हो सकता है तथा घबरा सकता है। अत सदर्शन अथवा साक्षात्कार व्यक्ति के लिये ज्ञान की परीक्षा नही है। इसकी उपयोगिता केवल यह है कि प्रत्याशी के व्यक्तित्व के कुछ वाह्य पहलुओ, जैसे भाषण, सामान्य मानसिक योग्यता व उसके वाह्य रूप आदि, के विषय मे जानकारी मिल जाती है।

मौखिक साक्षात्कारो (Oral interviews) मे 'सामूहिक वाद-विवाद' (Group discussion) की रीति भी काम मे लाई जाती है। अनेक प्रत्याशी एक मेज के चारो ओर बैठे जाते हैं और एक विषय पर वाद-विवाद करते हैं। साक्षात्कार मण्डल (Interview Board) के सदस्य उनका निरीक्षण करते हैं परन्तु वे वाद-विवाद मे भाग नही लेते। इस रीति के द्वारा प्रत्याशी की तर्क एवं वाद-विवाद करने की क्षमता की जाच की जा सकती है। सन् १६१७ मे इगलैंड मे प्रथम श्रेणी की परीक्षा (Class I examination) के सम्बन्ध मे एक समिति की नियुक्ति की गई थी। यह समिति मौखिक साक्षात्कार अथवा मौखिक परीक्षा (Viva voce test) के अत्यधिक पक्ष मे थी। समिति का कहना था कि

"हमारा विश्वास है कि मौखिक परीक्षा (Viva voce examination) मे प्रत्याशी के कुछ ऐसे गुण प्रकाश मे आते हैं जिनकी कि लिखित परीक्षा के द्वारा जाच नही की जा सकती और यह कि वे गुण लोक सेवको के लिये बडे उपयोगी होते हैं। कभी-कभी यह तर्क दिया जाता है कि एक सब प्रकार से सुयोग्य प्रत्याशी मौखिक परीक्षा मे घबरा सकता है और इस प्रकार न्यायप्राप्ति से वचित रह सकता है। किन्तु हमारा विचार है कि इस प्रकार घबरा जाना तथा धैर्य खो देना क्या स्वय ही एक गम्भीर कमी नही है, अथवा प्रतिभाशवित या सामयिक सूझ-बूझ (Presence of mind) तथा मानसिक सन्तुलन, जोकि ऐसी दशाओ मे प्रत्याशी को उसके सभी साधनो का समुचित उपयोग करने के योग्य बनाते हैं, क्या बहुमूल्य गुण नही है । हमारे विचार से मौखिक साक्षात्कार को प्रत्याशी की सतर्कता, बुद्धिमत्ता तथा उसके मानसिक दृष्टिकोण की जाच करने की एक परीक्षा बनाया जा सकता है और इस प्रकार यह अन्य किसी भी परीक्षा से श्रेष्ठतर है । हमारा विचार है कि मौखिक परीक्षा शैक्षणिक अध्ययन के विषयो मे नही बल्कि सामान्य अभिरुचि (General interest) के ऐसे विषयो के सम्बन्ध मे होनी चाहिये जिन पर कि प्रत्येक नवयुवक को कुछ न कुछ कहना ही पडे।"

परन्तु मौखिक परीक्षाओ से सम्बन्धित इस चित्र का दूसरा पहलू भी है। इस सम्बन्ध मे परीक्षाओ की जाच की अन्तर्राष्ट्रीय सस्था (International Institute of Examination Enquiry) द्वारा एक अनुसधान किया गया। इस संस्था ने सिविल सेवा की मौखिक परीक्षा के प्रतिरूप (Replica) की स्थापना की और

यह पता लगाया कि भिन्न-भिन्न साक्षात्कार मण्डलो (Interview boards) द्वारा एक से ही प्रत्याशियो को दिये गये अको मे ६२ तथा ७० तक का अन्तर देखा गया और उनके अको का औसत अन्तर (Average difference) ३७ था। जाच मण्डल ने यह कहा कि "१०० मे २० से लेकर ३० अको तक के ये तीव्र अन्तर .. और १०० मे लगभग १२ अको का औसत अन्तर साक्षात्कार परीक्षा (Interview test) की अविश्वस्तता तथा अप्रमाणिकता की ओर सकेत करते हैं और इस बात को प्रकट करते है कि यह परीक्षा (Test) प्रत्याशी को सिविल सेवा परीक्षा मे निर्णायक स्थान पर रखने मे कितना अधिक प्रभाव डालती है . . ।"

इस प्रकार यदि एक ही प्रत्याशी दो भिन्न-भिन्न साक्षात्कारो मे सम्मिलित होता है तो भिन्न-भिन्न साक्षात्कार मण्डल उसको पृथक्-पृथक् अक देते है। अको का यह अन्तर इतना अधिक होता है कि ऐसा प्रतीत होता है कि मानो भिन्न-भिन्न प्रत्याशियो का साक्षात्कार (Interview) किया गया है। सदर्शन अथवा साक्षात्कार अविश्वस्त, अप्रमाणिक तथा भावनात्मक (Subject) होता है। प्रो० फिनर ने साक्षात्कार के लिए निम्नलिखित सिद्धातो के अपनाने का सुझाव दिया है—

(१) साक्षात्कार की अवधि आधा घण्टा होनी चाहिए।

(२) साक्षात्कार के समय पूर्णतया प्रत्याशी की शैक्षणिक रुचि के ऐसे विषयो पर वाद-विवाद होना चाहिए जो कि उसके परीक्षा पाठ्यक्रम मे उल्लिखित हो।

(३) साक्षात्कार को एक अनुपूरक परीक्षा (Supplimentary test) बनाया जाना चाहिए, चुनाव करने की एक निर्णायक (Decisive) परीक्षा नही।

(४) साक्षात्कार मण्डल मे एक व्यावसायिक प्रशासक तथा एक विश्वविद्यालय का प्रशासक होना चाहिए।

(५) सदर्शन अथवा साक्षात्कार लिखित परीक्षा से पहले नही बल्कि बाद मे होना चाहिए।

(६) जब तक कि साक्षात्कार का निर्णय न हो जाए तथा अक न दिये जायें तब तक विश्वविद्यालय के शिक्षको की रिपोर्ट पर विचार नही किया जाना चाहिए।

(७) चूंकि साक्षात्कारो मे अभी तक स्वेच्छाचारिता पाई जाती है अत इसको सीमित करने के लिए साक्षात्कार के अको की सख्या ३०० से घटा कर १५० कर देना चाहिए।[1]

भारत मे इस बात की तीव्र आलोचना की जाती है कि मौखिक साक्षात्कार के ४०० अक पूर्णतया चुनाव मण्डल (Selection Board) की भावनाओ, तरगो एव रुचियो पर निर्भर होते हैं। सेवा आयोग के सदस्य इस दृष्टिकोण को सामने रखकर

1 Herman Finer, *The Theory and Practice of Modern Government*, p 779

साक्षात्कार मे बैठते हैं कि प्रत्याशियो की एक बडी सस्था का छटाव करना है अत साक्षात्कार मे मनमाने अक देते हैं। इसके अतिरिक्त, उनका व्यवहार भी कभी-कभी बडा उत्तेजनात्मक तथा आपत्तिजनक होता है। यह प्रत्याशी को प्रोत्साहित करने के बजाय और हतोत्साहित कर देता है। यदि ये बाते सत्य हैं (क्योकि लेखक तथा अनुवादक ने किसी भी प्रकार के साक्षात्कार के लिए स्वय को कभी भी सिविल सेवा आयोग के सन्मुख उपस्थित नही किया है) तो इसमे मौलिक परिवर्तन करने की आवश्यकता है। साक्षात्कार के अग किसी भी दशा मे २०० से अधिक नही होने चाहियें।

(ग) कार्य सम्पन्नता की परीक्षा (The Performance Test)

तकनीकी कार्यों अथवा व्यवसायो के लिए कर्मचारियो की भर्ती करते समय कार्य-सम्पन्नता की परीक्षा विधि का उपयोग किया जाता है। मुद्र-लेखको (Typists) या आशुलिपिको (Stenographers) अथवा परिचारिकाओ (Nurses) की भर्ती तब की जाती है जब कि वे उस विशिष्ट अथवा तकनीकी कार्य को करने की अपनी प्रवीणता एव कुशलता का प्रदर्शन कर देते है जिसके लिए कि उनकी भर्ती की जानी है। इस परीक्षा के द्वारा सफलता के साथ इस बात का पता लगाया जा सकता है कि किसी व्यक्ति मे एक विशिष्ट कार्य को सम्पन्न करने की कितनी सामर्थ्य है कि भर्ती किए जाने वाले इन कर्मचारियो को यह दिखाना होता है कि वे निर्धारित कार्य को सम्पन्न कर सकते हैं, इसी कारण इसे कार्य-सम्पन्नता की परीक्षा (Performance Test) कहा जाता है। एक मुद्रलेखक को यह दिखाना पडता है कि वह टाइप कर सकता है, एक वैद्युतिक (Electrician) को यह सिद्ध करना होता है कि वह समुचित रीति से तार आदि लगाकर एक भवन का विद्युतीकरण कर सकता है, और केवल तभी उनको काम पर लगाया जाता है। ऐसे व्यवसायो के लिए, जिनमे कि प्रवीणता की जरूरत होती है, यह परीक्षा अत्यन्त आवश्यक है।

(घ) शिक्षा, अनुभव तथा शारीरिक जांच का मूल्य
(Evaluation of Education, Experience and Physical Test)

प्रत्याशी के चुनाव के लिए उसकी शैक्षणिक योग्यताओ एव अनुभव का भी मूल्याकन किया जाता है। एक प्रत्याशी उस कार्य को करने के लिए शारीरिक दृष्टि से ठीक होना चाहिए जोकि उसे सौंपा जाना है। यह आशा की जाती है कि कर्मचारी अपनी आंखो तथा श्रवण क्षमता (Hearing capacity) के सम्बन्ध मे एक न्यूनतम स्तर को अवश्य बनाये रखेगा। वह किसी भी छूत की बीमारी अथवा किसी भी प्रकार की शारीरिक अयोग्यता मे ग्रसित नही होगा।

(ङ) बुद्धिपरीक्षा (Intelligence Test).

वुद्धि परीक्षाए प्रत्याशी की मानसिक परिपक्वता (Mental maturity) का पता लगाने के लिए ली जाती है। बुद्धि भाज्यफल (Intelligence Quotient),

जिसे कि ग्रामतौर "I Q" कहा जाता है, व्यक्ति की मानसिक ग्रायु (Mental age) का सूचक होता है। I Q का निर्णय मानसिक ग्रायु की काल-क्रमानुसार ग्रायु (Chronological age) से तुलना करके उसके ग्राधार पर किया जाता है। इस प्रकार, यदि एक वच्चे की कालक्रमानुसार ग्रायु ८ है ग्रौर मानसिक ग्रायु १० है तो इसका I Q १२५ होगा, क्योकि दस ग्राठ का १२५ प्रतिशत है। परन्तु इस सम्बन्ध मे कोई एक राय नही है कि मानसिक विकास की दृष्टि से I Q का ग्रर्थ क्या है ? इस विषय मे सामान्य मत यह है कि ६९ तथा इससे कम ग्रक दुर्बल ग्रथवा चचल मस्तिष्क के सूचक हैं, ९० से ११० तक के ग्रक सामान्य मस्तिष्क के ग्रौर २३० से ग्रधिक ग्रक ग्रत्यन्त श्रेष्ठ मस्तिष्क के सूचक है। यह भी विश्वास किया जाता है कि मानसिक परिपक्वता १४ से १६ तक के वर्षो के वीच मे प्राप्त कर ली जाती है।

कार्य-कौशल परीक्षायें (Aptitude Tests) प्रत्याशी के जन्मजात सामान्य मानसिक गुणो की जाच करने के वजाय इस वात का पता लगाने का प्रयत्न करती है कि व्यक्ति मे किसी विशेष कार्य को सीखने की कितनी योग्यता ग्रथवा क्षमता है।

ये मनोवैज्ञानिक परीक्षायें प्रत्याशी के व्यक्तित्व के कुछ गुणो का निर्धारण कर सकती हैं। भारत मे सैनिक प्रतियोगिता परीक्षाग्रो (Military Competitive Tests) मे इनका उपयोग किया जाता है।

सभी प्रकार की परीक्षाये प्रत्याशियो की क्षमता एव योग्यता का पता लगाने के लिए की जाती है। प्रयत्न यह होना चाहिए कि इन परीक्षाग्रो मे से भावनात्मक तत्व (Subjective elements) को समाप्त किया जा सके। ऐसे प्रत्येक उपाय को ग्रपना लेना चाहिए जो कि व्यक्तिनिरपेक्ष भाव से प्रत्याशियो की योग्यताग्रो का निर्धारण कर सके। जब भी कोई दोष प्रकाश मे ग्राये तभी इन परीक्षाग्रो पर पुन-विचार किया जाना चाहिए। इसके ग्रतिरिक्त, किसी भी एक परीक्षा को निर्णायक नही माना जाना चाहिये, क्योकि कोई भी एक परीक्षा पूर्णतया वैज्ञानिक, विश्वस्त प्रामाणिक तथा मूर्ख-प्रूफ (Fool-proof) नही होती।

(४) योग्यताग्रो के निर्धारण के लिए प्रशासकीय यन्त्र

(Administrative Machinery for the Determination of Qualification)

प्रश्न यह है कि प्रत्याशियो की उन परीक्षाग्रो की व्यवस्था करने के लिए कौन से प्रशासकीय यन्त्र का उपयोग किया जाए। यह तो सभी स्वीकार करते है कि इन परीक्षाग्रो का ग्रायोजन स्वतत्र तथा निष्पक्ष व्यक्तियो के एक निकाय (Body) द्वारा किया जाना चाहिए ग्रौर विभिन्न लोक सेवाग्रो के लिए प्रत्याशियो (Candidates) का चुनाव करना चाहिये। योग्यताग्रो का निर्धारण ऐसे व्यक्तियो के एक निकाय द्वारा किया जाना चाहिये जो कि राजनैतिक दलबन्दी का शिकार न हो सके। चुनाव मण्डल (Selection board) के सदस्य व्यक्तियो तथा उनकी योग्यताग्रो की जाच के क्षेत्र के विशेषज्ञ (Experts) भी होने चाहियें।

लोकतन्त्रीय देशो मे, प्रत्याशियो की भर्ती करने का यह कठिन कार्य स्वतन्त्र सिविल सेवा आयोगो को सौंपा जाता है। सिविल सेवा आयोग का कार्य यह होता है कि मक्कारो व दुर्जनो (Rascals) को सेवाओ से बाहर रखा जाय और सर्वोत्तम व्यक्तियो को सेवा मे लेने का प्रयत्न किया जाए।

भारत मे लोक सेवा आयोग
(The Public Service Commission in India)

भारत मे लोक सेवा आयोग की स्थापना के विचार का उल्लेख ५ मार्च सन् १९१९ को भारतीय सवैधानिक सुधार (Indian Constitutional Reforms) पर दिये गए एक आवश्यक प्रपत्र मे किया गया था। उसमे कहा गया था कि

"अधिकाश अधिराज्यो (Dominions) मे, जहाँ कि उत्तरदायी सरकार की स्थापना हो गई है, इस बात की आवश्यकता अनुभव की जाती रही है कि कुछ स्थायी कार्यालयो की स्थापना करके राजनैतिक प्रभाव से लोक सेवाओ को सुरक्षित बनाया जाए, इन कार्यालयो का मुख्य कार्य सेवा के मामलो मे विनिमय बनाना हो। वर्तमान समय मे अभी हम इस स्थिति मे तो नही है कि भारत मे एक लोक सेवा आयोग की स्थापना के मामले को पूर्णतया आगे बढायें परन्तु हम यह अनुभव करते हैं कि यह सम्भावना अथवा आशा हो, कि सेवाये अधिकाधिक मत्रीय नियन्त्रण (Ministerial Control) मे आ सकती है, एक ऐसे निकाय (Body) की स्थापना का दृढ आधार प्रस्तुत करती है।" सन् १९१९ के भारत सरकार अधिनियम (Government of India Act) मे एक लोक सेवा आयोग की स्थापना की व्यवस्था की गई थी यद्यपि अधिनियम के लागू होने के एकदम बाद ही इसका निर्माण नही किया गया।

भारत मे उच्च सिविल सेवा के सम्बन्ध मे नियुक्त शाही आयोग (Royal Commission) ने, जिसके अध्यक्ष फर्नहम के विस्काउन्ट ली (Viscount Lea) थे, अपने प्रतिवेदन (Report) मे, एक स्वतन्त्र तथा निष्पक्ष सिविल सेवा आयोग की आवश्यकता के बारे मे सन् १९२४ मे निम्नलिखित विचार व्यक्त किये—

"जहाँ कही भी लोकतन्त्रीय सरकारें वर्तमान हैं, अनुभव से यही पता चला है कि कुशल सिविल सेवा की प्राप्ति के लिये यह अत्यावश्यक है कि जहाँ तक भी सभव हो सके उसको (सिविल सेवा को) राजनैतिक अथवा वैयक्तिक प्रभावो से बचाये रखा जाय और उसे स्थिरता तथा सुरक्षा की वह स्थिति प्रदान की जाए जो कि ऐसे निष्पक्ष तथा कुशल साधन के रूप मे इसके सफल कार्य-सचालन के लिए अनिवार्य होती है जिसके द्वारा कि सरकारें चाहे वे कैसी भी राजनैतिक विचारधारा की क्यो न हो, अपनी नीतियो को क्रियान्वित करती हैं। उन देशो मे जहाँ कि इस सिद्धात की उपेक्षा कर दी गई है और जहाँ इसके स्थान पर 'लूट खसोट प्रणाली' (Spoils system) लागू है, इनका अनिवार्य परिणाम एक अकुशल तथा असगठित सिविल

सेवा के रूप मे सामने आया है और भ्रष्टाचार (Corruption) अनियन्त्रित रूप मे बढा है। अमेरिका मे, सेवाओ मे भर्ती पर नियन्त्रण लागू करने के लिए एक सिविल सेवा आयोग का गठन किया गया है। भारत के लिए, ब्रिटिश साम्राज्य के अधिराज्यो से शायद अधिक उपयुक्त एव लाभदायक निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। कनाडा, आस्ट्रेलिया तथा दक्षिणी अफ्रीका मे अब सरकारी सिविल सेवा अधिनियम (Public Civil Service Act) बने हुए हैं जो कि लोक सेवाओ की स्थिति तथा नियन्त्रण का नियमन करते हैं और उन सबका एक सामान्य लक्षण है एक लोक सेवा आयोग का गठन, जिसे कि अधिनियमो के प्रवन्ध का कार्य सौंपा गया है। सन् १९१९ के भारत सरकार अधिनियम का निर्माण करने वालो ने एक लोक सेवा आयोग की स्थापना के लिए जब अधिनियम मे धारा ९६ (स) की व्यवस्था की तो इसी उपरोक्त आवश्यकता को दृष्टिगत रखा था, इस लोक सेवा आयोग को निम्न कार्य सम्पन्न करने थे "भारत मे लोक सेवाओ की भर्ती तथा नियन्त्रण से सम्बन्धित ऐसे कार्य जो परिषद् (Council) मे राजमन्त्री (Secretary of State) द्वारा बनाये गए नियमो के द्वारा उसे सौंपे जाये।"[1] भारत मे सन् १९२६ मे अखिल भारतीय तथा उच्च सेवाओ के लिए एक केन्द्रीय लोक सेवा आयोग, जिसे कि "लोक सेवा आयोग, भारत" कहा जाता है, स्थापित किया गया था।

आयोग का गठन तथा कार्य
(Constitution and Functions of the Commission)

भारतीय सविधान (Indian Constitution) मे एक सघीय लोक सेवा आयोग (U P S C) की व्यवस्था की गई है। निम्नलिखित सवैधानिक उपबन्धो की व्यवस्था इसलिए की गई है कि जिससे आयोग को किसी भी प्रकार के बाहरी प्रभाव से मुक्त देखा जा सके।

(१) लोक सेवा आयोग के सदस्य, अपने पद-ग्रहण की तारीख से ६ वर्ष की अवधि तक, अथवा पैंसठ वर्ष की आयु को प्राप्त होने तक, जो भी इनमे से पहले हो, नियुक्त किये जायेंगे।[2]

(२) आयोग के सदस्य की सेवा की शर्तों मे, उसकी नियुक्ति के पश्चात् ऐसा परिवर्तन न किया जा सकेगा जो उसके लिए अलाभकारी हो।[3]

(३) आयोग के सदस्य को कुछ विशिष्ट बातो के आधार पर उच्चतम न्यायालय (Supreme Court) के परामर्श से राष्ट्रपति (President) की आज्ञा द्वारा हटाया जा सकता है। ये आधार अग्रलिखित हैं।[4]

---

1 See Commission Report Para 24

2 Art 316 (2)

3 Art 318

4 Art. 317 (1) (2) (3) (4)

देना जो कि वह अपने उत्तरदायित्वो का पालन करते समय चोट खाने की स्थिति मे करता है।

(६) अन्य कोई ऐसा मामला जो कि राष्ट्रपति या राज्यपाल द्वारा विशेष रूप से उनको सौपा जाए।[1]

इस बात की भी व्यवस्था है कि ससद द्वारा अथवा राज्य विधान-मण्डल द्वारा केवल सरकारी सेवाओ के ही सम्बन्ध मे नही, बल्कि उन सेवाओ के सम्बन्ध मे भी जो कि स्थानीय प्राधिकारियो (Local Authorities), निगमो (Corporations) अथवा सार्वजनिक सस्थाओ के अधीन हो, आयोग के कार्यों का विस्तार किया जा सकेगा।[2]

लोक सेवा आयोग के प्रतिवेदन[3]
(Reports of Public Service Commission) :

(१) सघीय आयोग का यह कर्त्तव्य होगा कि राष्ट्रपति को अपने द्वारा किये गये काम के बारे मे, प्रतिवर्ष प्रतिवेदन दे, तथा ऐसे प्रतिवेदन के मिलने पर राष्ट्रपति इन मामलो के बारे मे, यदि कोई हो, जिनमे कि आयोग का परामर्श स्वीकार नही किया गया, ऐसी अस्वीकृति के कारणो को स्पष्ट करने वाले ज्ञापन के सहित उस प्रतिवेदन की प्रतिलिपि ससद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखवायेगा।

(२) राज्य आयोग का यह कर्त्तव्य होगा कि राज्य के राजपाल या राजप्रमुख को अपने द्वारा किये गये काम के बारे मे प्रतिवर्ष प्रतिवेदन दे तथा सयुक्त आयोग (Joint Commission) का कर्त्तव्य होगा कि ऐसे राज्यो मे से प्रत्येक के, जिनकी आवश्यकताओ की पूर्ति सयुक्त आयोग द्वारा की जाती है, राज्यपाल या राजप्रमुख को उस राज्य के सम्बन्ध मे अपने द्वारा किये गये काम के बारे मे प्रतिवर्ष प्रतिवेदन दे तथा इनमे से प्रत्येक अवस्था मे ऐसे प्रतिवेदन के मिलने पर यथास्थिति राज्यपाल या राजप्रमुख उन मामलो के बारे मे, यदि कोई हो, जिनमे कि आयोग का परामर्श स्वीकार नही किया गया है, ऐसी अस्वीकृति के कारणो को स्पष्ट करने वाले ज्ञापन के सहित उस प्रतिवेदन की प्रतिलिपि राज्य के विधान-मण्डल के समक्ष रखवायेगा।

लोक सेवा आयोग एक परामर्शदात्री सस्था (Advisory body) है। भारत के राजमन्त्री (Secretary of State for India) Sir Samoel Hoare ने सन् १६५५ के भारत सरकार विधेयक (Government of India Bill) के पास होते समय ब्रिटिश ससद मे यह बात कही

"सयुक्त प्रवर समिति (Joint Select Committee) का यह निश्चित मत था और यहाँ तथा भारत मे मेरे सलाहकारो का भी यही निश्चित मत है कि लोक सेवा आयोग (P S C) परामर्शदाता के रूप मे ही अधिक अच्छी प्रकार कार्य कर

1 Art 320 (1), (2), (3), (a), (b), (c), (d), (e).
2 Art 321
3 Art 323 (1), (2)

सकना है। अनुभव से यह पता चला है कि यदि आयोग को परामर्शदाता के रूप मे रखा जाए तभी उनका अधिक प्रभाव पडने की सम्भावना है, बजाए इसके कि यदि उन्हे आदेशात्मक शक्तियाँ (Mandatory powers) दी जाये। खतरा यह है कि यदि हम उन्हे आदेशात्मक शक्तियाँ दे दे तब हम एक प्रान्त (Province) मे दो सरकारे तथा केन्द्र मे दो सरकारे स्थापित कर देंगे और फिर इस प्रकार की कार्यविधि (Procedure) के विरोध मे बहुत कुछ कहा जा सकता है। अनेक दृष्टिकोणो से अधिक अच्छी तरह बात यही है कि वे परामर्शदाता हो।"

सरकार को इस बात की स्वतत्रता होती है कि वह आयोग द्वारा दी गई सलाह को स्वीकार अथवा अस्वीकार करे, परन्तु एक ऐसी व्यवस्था है जिसके अनुसार सरकार से यह माग की जाती है कि वह, आयोग का वार्षिक प्रतिवेदन विधान-मण्डल के समक्ष प्रस्तुत करते समय, उन कारणो का भी स्पष्टीकरण करे कि कुछ विशिष्ट मामलो के सम्बन्ध मे आयोग की सलाह क्यो न स्वीकार की जा सकी। आयोग की सलाह की उपेक्षा करके सरकार द्वारा की जाने वाली मनमानी कार्रवाई के विरुद्ध यह एक सुरक्षा है।

आयोग का निर्माण सविधान (Constitution) के द्वारा किया गया था। इस बात के लिए सभी उचित सुरक्षाओ की व्यवस्था की गई थी कि इसको सभी प्रकार के अनुचित प्रभावो से बचाये रखा जा सके और उनको इस योग्य बनाया जा सके कि जिससे वे अपने निर्धारित कर्त्तव्यो को निष्पक्षता, सत्यनिष्ठा (Integrity) तथा बिना भय या पक्षपात के स्वतत्रता के साथ पूरा कर सके।[1]

इगलैंड मे सन् १८५५ से ही सपरिषद् महाराज्ञी (Queen-in-Council) अथवा सपरिषद् सम्राट (King-in-Council) सिविल सेवा मे नियुक्ति के हेतु प्रत्याशियो की परीक्षा तथा चुनाव करने के लिए आयुक्तो (Commissioners) की नियुक्ति करते है। "प्रत्येक स्थिति मे आयुक्तो की स्वतत्रता की स्थिति का वास्तविक आधार यह है कि राजनैतिक दलो मे यह मौन तथा अलिखित पक्का समझौता है, जिसको ससदीय तथा जनता का सबल मत भी प्राप्त है, कि आयुक्त अपने कार्यों को पूर्णतया स्वतत्र तथा निष्पक्ष रीति से सम्पन्न करे।'[2]

इगलैंड मे नियुक्तियो के सम्बन्ध मे आयोग की सिफारिशो का अनुपालन किया जाता है। आयुक्तो ने अपने प्रथम प्रतिवेदन (१८५६) मे कहा कि "जहाँ तक हमारे अधीन व्यक्तिगत मामलो की परीक्षाओ का प्रश्न है किसी भी प्रकार का बाह्य हस्तक्षेप नही हुआ है और आपकी (महाराज्ञी की) सरकार द्वारा हमारे कार्यों के न्यायिक स्वभाव को पूर्ण मान्यता दी गई है।" सौभाग्यवश वह परम्परा बराबर जारी है।

---

1 *The Public Service Commission in India* Sukumar Basu, I C S, pp 81-84

2 *What are Public Service Commissions for?* by A P Sinker

इस प्रकार भारतीय सविधान लोक सेवा आयोग की स्वतन्त्रता तथा निष्पक्षता के लिए सभी सुरक्षाओ की व्यवस्था करता है, परन्तु एक ऐसे स्वस्थ अभिसमय (Convention) के विकास की आवश्यकता है कि कोई भी शासनरूढ दल आयोग के कार्यों मे हस्तक्षेप नही करेगा और जो भी सरकार वर्तमान होगी वह लोक सेवाओ की नियुक्तियो के सम्बन्ध मे आयोग की सभी सिफारिशो को स्वीकार करेगी।

भारत के कुछ राज्यो मे, सेवा आयोगो को उतना महत्व नही प्रदान किया गया है जितने के वे अधिकारी हैं। बहुत सी राज्य सरकारो ने अनेक पदो को आयोग के अधिकार-क्षेत्र से बाहर रखने का प्रयोग आरम्भ किया है। अनेक बार उन्होने नियुक्तियो के मामलो मे आयोग की सलाह को स्वीकार नहीं किया है। यह के वडी अनुचित प्रवृत्ति है। पजाब राज्य के लोक सेवा-आयोग के १९५९–६० प्रतिवेदन के उद्धरण से हम इस बात को स्पष्ट करते हैं।

सरकार और लोक सेवा-आयोग के बीच मतभेद :

सरकार की कार्यवाहियाँ प्रकट रूप मे भी होनी चाहिये जिससे कि लोगो मे विश्वास उत्पन्न हो सके। केवल यह ही आवश्यकता नही है कि न्याय (Justice) किया जाए बल्कि यह भी आवश्यक है न्याय किए जाने के कार्य को प्रकट भी किया जाये जिससे कि ऐसा प्रतीत हो कि न्याय किया गया है, और सेवाओ मे भर्ती किये जाने की स्थिति मे तो विशेष रूप से ऐसा होना आवश्यक है।

सविधान के अन्तर्गत सरकार को यह अधिकार दिया गया है कि वह किसी भी पद को आयोग की अधिकार-सीमा से बाहर रख सकती है परन्तु इस अधिकार का उपयोग केवल अपवाद-भूत मामलो (Exceptional cases) मे ही होना चाहिए अर्थात् तब-जब कि वह पद राजनैतिक अथवा अत्यावश्यक या सकटकालीन प्रकृति का हो या लोक-हित की दृष्टि से सरकार द्वारा ही उस पद के भरे जाने की आवश्यकता हो। निश्चय ही, कुछ व्यक्तियो को सेवाओ मे खपाने के लिये अथवा सेवा मे किसी विशिष्ट वर्ग के कुछ प्रतिशत पदो को आयोग के दायरे से बाहर रखने मात्र के लिये इस प्रनिबन्धात्मक अधिकार का विस्तार नही किया जा सकता। जैसा कि आयोग के प्रतिवेदन मे कहा गया है कि "इससे तो राज्य-सेवाओ मे भर्ती के लिये एक ऐसे वैधानिक निकाय (Body) की स्थापना का वह उद्देश्य ही समाप्त हो जाता है कि जिसके द्वारा ही केवल यह आशा की जाती थी कि वह न्यायसगत तरीके से जनता मे विश्वास उत्पन्न कर सकेगा।"

विवादपूर्ण विचारो का आदान-प्रदान

प्रतिवेदन से यह भी प्रकट होता है कि इस उपरोक्त उपलब्ध (Provision) को अमल मे लाने के प्रश्न पर सरकार तथा आयोग के बीच विवादपूर्ण विचारो का आदान-प्रदान हुआ। एक विशेष घटना से इस मामले पर बड़ा अच्छा प्रकाश पड़ता है जिसमे कि तत्कालीन फरीदकोट रियासत के टीका साहब के एक शिक्षक को

गवर्नमेंट कालिज का प्रिंसिपल नियुक्त दिया गया था। प्रतिवेदन मे इस प्रसग का वर्णन इस प्रकार किया गया है 'यह सज्जन १ अक्तूबर, १६४४ से भूतपूर्व फरीदकोट रियासत की सेवा मे थे जहाँ कि इन्हो ने अनेक पदो पर कार्य किया जैसे कि राजेन्द्र कालिज फरीदकोट मे प्रवक्ता (Lecturer) के रूप मे, साहित्यादि शाखा के अध्यक्ष (Dean of the Arts Faculty) के रूप मे तथा बाद मे टीका साहब मे शिक्षक के रूप मे। जब पेप्सू (PEPSU) का निर्माण हुआ, उस समय वह टीका साहब के एक शिक्षक के रूप मे कार्य कर रहे थे और चूंकि यह एक सिविल सूची (Civil List) की नियुक्ति थी, राज्य सरकार के अधीन एक सेवा नही थी, अत पेप्सू के शिक्षा विभाग (Education Department) मे उसका एकीकरण नही किया गया। पेप्सू की रियासतो तथा पजाब का विलय होने पर फरीदकोट के राजा साहब ने सरकार से उन महोदय को किसी उपयुक्त पद पर नियुक्त पद पर नियुक्त करने के लिये कहा। बाद मे सरकार ने यह निश्चय किया कि उनको राज्य शिक्षा सेवा (P E S) मे प्रथम श्रेणी (Class I) का एक पद दिया जाय।"

कम सम्मान
(Scant Respect)

"आयोग यह अनुभव करता है कि इस नियुक्ति का चाहे कुछ भी आधार क्यो न हो अथवा चाहे कुछ भी कारण क्यो न रहे हो, इस घटना से दो तथ्य तो बिल्कुल स्पष्ट हो जाते है। **प्रथम** तो यह कि किसी भी पद को आयोग की अधिकार-सीमा से बाहर रखने से पहले आयोग के साथ पूर्व-परामर्श करने के सम्बन्ध मे जो अभिसमय (Convention) स्वय सरकार द्वारा स्थापित किया गया था अब सरकार उसको कम सम्मान प्रदान कर रही है। **दूसरे**, पद ऐसी परिस्थितियो मे आयोग की अधिकार सीमा से बाहर ले जा रहे हैं जोकि स्पष्ट रूप से अन्यायपूर्ण हैं। इस उपर्युक्त मामले मे सरकार की कार्यवाही स्पष्टत इस इच्छा मे प्रेरित थी कि एक विशिष्ट व्यक्ति को सेवा मे खपाना है, सामान्य सिद्धान्त का तो इसमे कोई प्रश्न ही नही था।"

इसके अतिरिक्त, सरकार को एक अधिकार यह प्राप्त है कि वह आकस्मिक रूप से रिक्त होने वाले स्थानो को तीन माह के लिये भर सकती है यदि इस बात की सम्भावना हो कि आयोग को इस कार्य मे अधिक समय लगेगा। किन्तु अब इस अधिकार का दुरुपयोग करने की अधिकाधिक प्रवृत्ति पाई जा रही है। यदि सरकार इस उपबन्ध (Provision) के शब्दो या इसकी भावना का अनुसरण करने लगे तब सारी स्थिति ही बदल जाती है। सरकार इस सम्बन्ध मे किसी को अनावश्यक सन्देह करने का मौका नही देना चाहती, यह तो इस तथ्य से ही स्पष्ट है कि सरकार ने तीन माह की अवधि को एक वर्ष तक कर देने के प्रस्ताव को छोड दिया (यद्यपि, यह अवधि छ माह तक के लिये बढा दी गई है)। तथापि, बार-बार इस उपाय का आश्रय लेने से इसका वास्तविक आशय ही समाप्त हो जाता है और जब इस पद की

स्थायी व्यवस्था करने के लिये चुनाव होता है तो खुली प्रतियोगिता करने वाले प्रत्याशियो के प्रति अन्याय होता है। आयोग का मत है कि इस उपाय का प्रयोग तो अपवादरूप मे ही करना चाहिए। "ऐसा प्रतीत होता है कि विभागो (Departments) ने इस उपबन्ध का दुरुपयोग ही करना शुरू कर दिया है क्योंकि वे लगभग प्रत्येक मामले के लिए एक सामान्य आदत के रूप मे तीन माह के लिए भर्ती करने के इस उपलब्ध का आश्रय लेते हैं और फिर ऐसी अनियमित नियुक्तियो की कालावधि मे वृद्धि करने के लिये आयोग की अनुमति मागी जाती है। इस कार्य-विधि से निश्चय ही उस प्रणाली को बडा अनुचित लाभ प्राप्त होता है जो कि उस पद पर स्थायी रूप से वर्तमान होता है क्योकि वह इस बात का दावा करता है कि उसे एक निश्चित अवधि तक उस पद पर कार्य करने का अनुभव प्राप्त है।"

भर्ती की महत्वपूर्ण समस्याओ का विवेचन करने के पश्चात् एक प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि भर्ती की किसी भी पद्धति की सफलता की अन्तिम कसौटी क्या है ? भर्ती की किसी भी प्रणाली को अपने उद्देश्य मे सफल हुआ तभी माना जायेगा जबकि उसके द्वारा की गई भर्ती मे उचित किस्म के काफी व्यक्ति प्राप्त हो। इस प्रश्न का उत्तर इस तथ्य का अध्ययन करने के पश्चात् ही दिया जा सकता है कि जिन व्यक्तियो की भर्ती की गई है उनका चयन किस सीमा तक न्यायोचित रहा है।

प्रमाणन
(Certification)

सिविल-सेवा आयोग परीक्षाये लेने के पश्चात् पात्र व्यक्तियो (Eligibles) की एक सूची तैयार करते हैं और फिर वे नियुक्ति प्राधिकारियो (Appointing authorities) के पास उन नामो की सिफारिश करते हैं। 'प्रमाण' से आशय है कि नियुक्ति के लिए विचाराधीन प्रत्याशियो के नाम नियुक्ति-कार्यालयो के सम्मुख प्रस्तुत करना। सयुक्त राज्य अमेरिका मे आयोग तीन नामो की सिफारिश करता है और नियुक्त-अधिकारी रजिस्टर मे लिखे हुए तीन सर्वोच्च नामो मे से एक का चुनाव कर लेता है। भारत मे सिविल सेवा आयोग योग्यता के आधार पर प्रत्याशियो की एक सूची तैयार करता है और सम्बन्धित विभाग फिर योग्यता के क्रम से उस सूची मे से नियुक्तिया कर लेते हैं। योग्यता के इस क्रम मे की जाने वाली कोई भी घट-बढ जनता द्वारा सहन नही की जाती। सयुक्त राज्य अमेरिका मे 'तीन के नियम' की आलोचना इसलिए की जाती है क्योकि इसमे पक्षपात तथा दलीय आधार पर चयन करने की सम्भावना हो सकती है।

नियुक्ति और परिवीक्षा
(Appointment and Probation)

नामो की वह सूची जब नियोक्ता प्राधिकारी के पास पहुचती है तो वह निर्णय सिविल-सेवा आयोग के पास भेजता है और प्रत्याशी (Candidate) के लिए नियुक्ति-पत्र (Appointment letter) जारी करता है। नियुक्ति-पत्र प्रत्याशी के

लिये एक प्रस्ताव होता है यदि इस प्रस्ताव को स्वीकार करता है तो वह अपना पद ग्रहण कर लेता है और इसका अर्थ होता है कि उसकी नियुक्ति हो गई।

नये नियुक्त किये जाने वाले व्यक्तियो को हमेशा 'परीक्षण-आधार' (Trial basis) पर रखा जाता है। इस बीच मे उसे अपनी योग्यताओ का प्रदर्शन करना होता है कि जिस कार्य के लिये उसकी नियुक्ति हुई है उसे यह सम्पन्न कर सकता है। अत प्रत्येक नियुक्ति अस्थायी अर्थात् छ माह या एक वर्ष की परिवीक्षा (Probation) के आधार पर होती है। यह काल नियोक्ता प्राधिकारी के लिए चुनाव की क्रिया को पूर्ण करने का अवसर माना जाता है। इस कालावधि मे प्रत्याशी का सूक्ष्म रूप से पर्यवेक्षण (Supervision) कर लिया जाता है।

जब नियोक्ता प्राधिकारी इस सम्बन्ध मे एक लिखित प्रतिवेदन दे देता है कि प्रत्याशी का कार्य सन्तोषजनक रहा है, तब ही उसको अपने पद पर स्थायी किया जाता है।

―――――

१६

प्रशिक्षण
(Training)

कर्मचारी को उस कार्य को सम्पन्न करने के लिए प्रशिक्षण प्राप्त करना होता है जिसके लिये कि उसकी भर्ती की गई है। उसे कार्य की प्रवीणता तथा विधि के सम्बन्ध मे परिचित कराया जाना होता है। कर्मचारियो के समुचित प्रशिक्षण के बिना कार्य को कुशलता के साथ सम्पन्न नही किया जा सकता। यही कारण है कि प्रशिक्षण को 'स्टाफ की कार्य-कुशलता की कुजी' समझा जाता है।

प्रशिक्षण का उद्देश्य (Object of Training) :

प्रशिक्षण लोक-कर्मचारी की कार्य-कुशलता के लिये ही आवश्यक नही है, अपितु उसके दृष्टिकोण को विस्तृत बनाने के लिये भी आवश्यक है। कर्मचारी को यथार्थता (Precision) का पाठ पढाने, आत्म-निर्भर तथा स्वतन्त्र बनाने, और उसमे निर्णय करने की क्षमता उत्पन्न करने की दृष्टि से प्रशिक्षण बडा महत्वपूर्ण होता है। प्रशिक्षण कर्मचारियो मे एक ऐसा व्यापक दृष्टिकोण उत्पन्न करने मे सहायता करता है जिसकी कि लोक-सेवको को नितान्त आवश्यकता होती है। इसी कारण शिक्षा के सदृश्य प्रशिक्षण भी एक ऐसी सतत प्रक्रिया है जोकि कभी भी समाप्त नही होती क्योकि इसकी आवश्यकता सदा बनी ही रहती है। प्रशिक्षण से व्यक्ति की शक्ति प्रवीणता तथा कुशलता मे वृद्धि होती है। प्रशिक्षण कर्मचारी मे एक ऐसी क्षमता उत्पन्न करता है जिसके द्वारा वह स्वय को नई परिस्थितियो के अनुकूल बना सकता है। प्रशिक्षण कर्मचारी को इस योग्य बनाता है कि जिससे वह अपने सगठन को, जिसमे कि उसे काम करना होता है, भली प्रकार समझ सके तथा उसकी महत्ताओ व लक्ष्यो को स्वीकार कर सके। यह अत्यन्त आवश्यक है कि प्रशिक्षण के द्वारा कर्मचारियो मे स्वतन्त्र निर्णय करने की योग्यता उत्पन्न की जाए, क्योकि यदि कर्मचारी पद पर अनुदेशो (Instructions) पर ही निर्भर रहे तो कोई भी सगठन सुचारु रूप से कार्य नही कर सकता।

'सिविल-सेवको के प्रशिक्षण,' (१६४४), (ग्रेट ब्रिटेन) पर नियुक्त की गई समिति ने प्रशिक्षण के कुछ उद्देश्य तथा सामान्य सिद्धान्त निर्धारित किये। समिति ने कहा कि

"सबसे पहले हम स्वय मे ही यह प्रश्न पूछें कि प्रशिक्षण का उद्देश्य क्या है? यदि इसका उत्तर यह है कि प्रशिक्षण का उद्देश्य सर्वाधिक सभव मात्रा मे

कार्य-कुशलता प्राप्त करना है, तो आवश्यकता इस बात की है कि कार्य-कुशलता (Efficiency) शब्द की कुछ सूक्ष्म रूप से व्याख्या की जाए। किसी भी बडे पैमाने के सगठन मे कार्य-कुशलता दो तत्वो पर निर्भर होती है **एक तो**, व्यक्ति को सौंपे गये किसी विशिष्ट कार्य को कर सकने की उसकी तकनीकी (Technical) कुशलता पर **और दूसरे**, निगम निकाय (Corporate body) के रूप मे सगठन की उस कम स्पष्ट कुशलता पर जोकि उन व्यक्तियो की सामूहिक भावना तथा दृष्टिकोण से प्राप्त होती है जिससे कि इस निकाय अथवा सगठन की रचना की जाती है। प्रशिक्षण मे इन दोनो ही तत्वो का ध्यान रखा जाना चाहिये —

प्रशिक्षण के पांच **मुख्य उद्देश्य** निम्नलिखित है —

प्रथम, प्रशिक्षण के द्वारा ऐसे सिविल-सेवक उत्पन्न करने का प्रयास किया जाना चाहिए जिनकी कार्य-निष्पादन की यथार्थता एव शुद्धता को सत्य रूप मे स्वीकार किया जा सके।

दूसरे, सिविल सेवक को उन कार्यो की दृष्टि से उपयुक्त बनाया जाना चाहिए जिन्हे कि परिवर्तनशील परिस्थितियो मे सम्पन्न करने के लिए उससे कहा जायेगा। सिविल-सेवक को चाहिए कि वह अपने दृष्टिकोण तथा अपनी कार्यविधियो को सतत रूप मे तथा साहस के साथ नये-नये विषयो की नई आवश्यकताओ के अनुरूप बना ले।

तीसरे, आवश्यकता इस बात की है कि सिविल-सेवक यन्त्रवत् बन जाने के खतरे को रोका जाय। जब हम यह कहते है कि हमारा उद्देश्य यह होना चाहिए कि कुशलता का उच्चतम सम्भव स्तर प्राप्त किया जाए, तो इससे हमारा तात्पर्य यह नही है कि एक यन्त्र-मानव के समान यान्त्रिक साज-सज्जो से युक्त सिविल सेवा का निर्माण किया जाए। भर्ती किये जाने वाले कर्मचारी को प्रारम्भ से ही इस बात का ज्ञान होना चाहिए कि उसके विभाग (Department) द्वारा समाज के लिये सम्पादित की जाने वाली सेवा से उसके कार्य का क्या सम्बन्ध है? वह अपने विस्तृत सगठन मे क्या कार्य सम्पन्न कर रहा है? इस बात को समझने की उसकी क्षमता केवल उसके कार्य को विभाग के लिए मूल्यवान ही नही बनायेगी, अपितु वह स्वय उसके लिये भी अत्यधिक प्रेरणादायक होगी। अत उसके दिन-प्रति-दिन के समुचित सम्पादन के लिये आवश्यक शुद्ध व्यावसायिक प्रशिक्षण (Vocational training) के साथ ही साथ, उसको अपने निजी शैक्षणिक विकास के हेतु निरन्तर प्रयास करने के लिये व्यापक आधार पर अनुदेश (Instruction) तथा प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए।

चौथे, व्यावसायिक प्रशिक्षण के सम्बन्ध मे भी, केवल यह ही पर्याप्त नही है कि कर्मचारी को पूर्णतया केवल उसी कार्य के लिये प्रशिक्षित किया जाए जोकि उस समय वह कर रहा हो। व्यक्ति को केवल इस योग्य बनाने के लिये ही प्रशिक्षण नही दिया जाना चाहिये कि जिससे वह अपने वर्तमान कार्य को अधिक कुशलता के साथ

कर सके, बल्कि उसको अन्य कार्यों के लिये उपयुक्त बनाने के लिये, तथा जहाँ उचित हो, उसमे उच्चतर कार्य और उच्चतर उत्तरदायित्वो को सभालने की क्षमता उत्पन्न करने के लिए भी दिया जाना चाहिये।

पांचवे, ये उद्देश्य भी पर्याप्त नही है। लोगो की एक बडी सख्या को अपने कार्यकारी जीवन का अधिकाश भाग अनिवार्य रूप से नैत्यक प्रकृति (Routine character) के कार्यों मे ही व्यय करना पडता है। इस मानवीय समस्या की दृष्टि से, प्रशिक्षण योजनाओ की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि कर्मचारी-वर्ग के मनोबल (Morale) की ओर गम्भीरता के साथ ध्यान दिया जाये।[1]

इस प्रकार सक्षिप्त रूप मे प्रशिक्षण के पांच मुख्य उद्देश्य निम्न प्रकार हैं—

(१) कार्य के निष्पादन मे यथार्थता एव शुद्धता लाना।

(२) कर्मचारियो के दृष्टिकोण तथा कार्यविधियो को परिवर्तित समय की नई-नई आवश्यकताओ के अनुरूप बनाना।

(३) यन्त्र मानव जैसी कार्य-पद्धति की प्रवृत्ति को रोकने के सम्बन्ध मे व्यापक विचार।

(४) व्यावसायिक प्रशिक्षण—व्यक्ति को केवल उसके वर्तमान कार्य की दृष्टि से ही उपयुक्त बनाने के लिये नही, अपितु उसके बढते हुए कार्यों यथा उच्चतर क्षमता का भार वहन कर सकने की दृष्टि से भी।

(५) नैत्यक प्रकृति के कार्य अनुपेक्षणीय होते हुए भी, कर्मचारियो के मनोबल (Morale) की ओर यथेष्ट ध्यान दिया जाना।

कार्य के निष्पादन मे यथार्थता तथा शुद्धता और कर्मचारियो के मनोबल मे वृद्धि करने के अतिरिक्त यह भी आवश्यक है कि प्रशिक्षण द्वारा सिविल-सेवक को इस बात का प्रोत्साहन दिया जाये कि वह अपने कार्य को अधिक से अधिक व्यापक सदर्भ (Context) की दृष्टि से देखे। यह आवश्यक है कि प्रशिक्षण उसको अपेक्षाकृत ऊचा कार्य तथा बडा उत्तरदायित्व सम्भालने के लिये तैयार करदे।

इस प्रकार के विविध उद्देश्य किसी भी एक प्रकार के प्रशिक्षण द्वारा नही प्राप्त किये जा सकते। सिविल-सेवको के लिए अनेक प्रकार के प्रशिक्षणो की व्यवस्था करनी होती है जिससे कि वे अपने कार्य को सर्वश्रेष्ठ रीति से सम्पन्न करने के योग्य बन सके।

प्रशिक्षण के प्रकार (Kinds of Training)

प्रशिक्षण की मुख्य श्रेणियां निम्नलिखित हैं—

(१) **औपचारिक तथा अनौपचारिक प्रशिक्षण** (Formal and Informal Training)—कर्मचारी को विभागाध्यक्षो (Departmental heads) द्वारा दिये जाने वाले उपदेशो (Lectures) अथवा अनुदेशो (instruction) द्वारा उस कार्य के सम्बन्ध मे औपचारिक प्रशिक्षण दिया जा सकता है जोकि उसे करना होता है। इस

1 Para 15 and 16

प्रकार का प्रशिक्षण प्रशासकीय स्कूलो अथवा विद्यापीठो (Academies) मे दिया जा सकता है। यह औपचारिक प्रशिक्षण कुछ प्रवीणताओ अथवा कार्यविधियो मे सम्बन्धित वास्तविक अनुदेशो के रूप मे हो सकता है। कर्मचारी को विभाग की कार्य-प्रणाली, उसके कार्यों की प्रकृति तथा उस आचार-सहिता (Code of conduct) के बारे मे अनुदेश दिये जा सकते हैं जिसका कि उसे कार्यालय मे पालन करना होता है।

परन्तु स्कूलो तथा विद्यापीठो मे और उच्च अधिकारियो के भाषणो के रूप मे दिया जाने वाला औपचारिक प्रशिक्षण उस समय तक अधूरा ही रहता है जब तक कि कर्मचारी वास्तविक रूप मे अपने विभाग मे कार्य नही करता। वह दिन प्रतिदिन जो वास्तविक कार्य सम्पन्न करता है उससे बहुत कुछ सीखता है। एक कर्मचारी व्यावहारिक रूप से जब फाइलो, कागजातो तथा अधिकारियो के सम्पर्क मे आता है तब उसे **अनौपचारिक प्रशिक्षण** मिलता है। जब वह वास्तव मे अपना कार्य सम्पन्न करता है तो उसे उसके बारे मे अनेक बातो की जानकारी प्राप्त होती है। वह जब अपना कार्य सम्पादित करता है तो उसे अपने उच्च अधिकारियो से अनेक सुझाव प्राप्त होते हैं जिनसे उसका अनुभव (Experience) बढता है। 'आत्म-शिक्षा (Self-Education) ही सर्वोत्तम शिक्षा है।' वास्तविक कार्य-सम्पादन का अनुभव कर्मचारी को कार्य करने की कला का ज्ञान कराता है। यदि उचित समयान्तरो पर एक कर्मचारी का एक शाखा से दूसरी शाखा को स्थानान्तरण कर दिया जाये तो इससे उसके अनुभव की परिधि बढाई जा सकती है। ऐसी व्यवस्था से उसे सम्पूर्ण सगठन की कार्य-प्रणाली का ज्ञान हो जायेगा।

परन्तु यदि पर्यवेक्षक अधिकारी (Supervising officer) नये प्रविष्ट होने वाले कर्मचारी मे गहरी रुचि नही लेता है तो अनौपचारिक प्रशिक्षण सफल नहीं होगा। विभागीय अध्यक्षो को कर्मचारी के कार्य के सम्बन्ध मे सुझाव देने होते हैं तथा आलोचनायें करनी होती हैं। उन्हे कर्मचारी के कार्य मे पाये जाने वाले दोषो को बतलाना होता है और उन दोषो को दूर करने के लिए सुझाव भी देने होते हैं। इस प्रकार अनौपचारिक प्रशिक्षण की सफलता उस रुचि (Interest) पर निर्भर होती है जोकि पर्यवेक्षक अधिकारी नये प्रविष्ट होने वाले कर्मचारी के कार्य के प्रति दिखाता है। जिले के युवा अधिकारी कलक्टर से बहुत कुछ सीखते हैं। एक अच्छे कलक्टर का घर एक युवा सहायक कलक्टर के लिए प्राय एक दूसरा घर बन जाता है। उसे कलक्टर के घर शाम व्यतीत करने का प्रोत्साहन दिया जाता है। शायद ही कोई कलक्टर इतना व्यस्त रहता हो कि इन युवा अधिकारियो के साथ बातचीत करने का समय न निकाल सके। बल्कि इसके अतिरिक्त, वह इन नये युवा अधिकारियो मे चाय पर आने तथा सप्ताह मे एक शाम अपने यहाँ बिताने को कहता है। फिर वहाँ बैठकर वह युवा सहायक कलक्टर अपनी जटिल समस्याओ पर विचार-विमर्श करता है और उससे बहुत कुछ सीखता है।

कर सके, वल्कि उसको अन्य कार्यों के लिये उपयुक्त बनाने के लिये, तथा जहाँ उचित हो, उसमे उच्चतर कार्य और उच्चतर उत्तरदायित्वो को सभालने की क्षमता उत्पन्न करने के लिए भी दिया जाना चाहिये।

पांचवे, ये उद्देश्य भी पर्याप्त नही है। लोगो की एक बडी सख्या को अपने कार्यकारी जीवन का अधिकाश भाग अनिवार्य रूप से नैत्यक प्रकृति (Routine character) के कार्यों मे ही व्यय करना पडता है। इस मानवीय समस्या की दृष्टि से, प्रशिक्षण योजनाओ की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि कर्मचारी-वर्ग के मनोवल (Morale) की ओर गम्भीरता के साथ ध्यान दिया जाये।[1]

इस प्रकार सक्षिप्त रूप मे प्रशिक्षण के पाँच मुख्य उद्देश्य निम्न प्रकार हैं—

(१) कार्य के निष्पादन मे यथार्थता एव शुद्धता लाना।

(२) कर्मचारियो के दृष्टिकोण तथा कार्यविधियो को परिवर्तित समय की नई-नई आवश्यकताओ के अनुरूप बनाना।

(३) यन्त्र मानव जैसी कार्य-पद्धति की प्रवृत्ति को रोकने के सम्बन्ध मे व्यापक विचार।

(४) व्यावसायिक प्रशिक्षण—व्यक्ति को केवल उसके वर्तमान कार्य की दृष्टि से ही उपयुक्त बनाने के लिये नही, अपितु उसके बढते हुए कार्यों यथा उच्चतर क्षमता का भार वहन कर सकने की दृष्टि से भी।

(५) नैत्यक प्रकृति के कार्य अनुपेक्षणीय होते हुए भी, कर्मचारियो के मनोबल (Morale) की ओर यथेष्ट ध्यान दिया जाना।

कार्य के निष्पादन मे यथार्थता तथा शुद्धता और कर्मचारियो के मनोवल मे वृद्धि करने के अतिरिक्त यह भी आवश्यक है कि प्रशिक्षण द्वारा सिविल-सेवक को इस वात का प्रोत्साहन दिया जाये कि वह अपने कार्य को अधिक से अधिक व्यापक सदर्भ (Context) की दृष्टि से देखे। यह आवश्यक है कि प्रशिक्षण उसको अपेक्षाकृत ऊचा कार्य तथा वडा उत्तरदायित्व सम्भालने के लिये तैयार करदे।

इस प्रकार के विविध उद्देश्य किसी भी एक प्रकार के प्रशिक्षण द्वारा नही प्राप्त किये जा सकते। सिविल-सेवको के लिए अनेक प्रकार के प्रशिक्षणो की व्यवस्था करनी होती है जिससे कि वे अपने कार्य को सर्वश्रेष्ठ रीति से सम्पन्न करने के योग्य वन सकें।

प्रशिक्षण के प्रकार (Kinds of Training)

प्रशिक्षण की मुख्य श्रेणियां निम्नलिखित हैं—

(१) **औपचारिक तथा अनौपचारिक प्रशिक्षण** (Formal and Informal Training)—कर्मचारी को विभागाध्यक्षो (Departmental heads) द्वारा दिये जाने वाले उपदेशो (Lectures) अथवा अनुदेशो (instruction) द्वारा उस कार्य के सम्वन्ध मे औपचारिक प्रशिक्षण दिया जा सकता है जोकि उसे करना होता है। उस

1 Para 15 and 16

प्रकार का प्रशिक्षण प्रशासकीय स्कूलो अथवा विद्यापीठो (Academies) मे दिया जा सकता है। यह औपचारिक प्रशिक्षण कुछ प्रवीणताओ अथवा कार्यविधियो मे सम्बन्धित वास्तविक अनुदेशो के रूप मे हो सकता है। कर्मचारी को विभाग की कार्य-प्रणाली, उसके कार्यों की प्रकृति तथा उस आचार-संहिता (Code of conduct) के बारे मे अनुदेश दिये जा सकते हैं जिसका कि उसे कार्यालय मे पालन करना होता है।

परन्तु स्कूलो तथा विद्यापीठो मे और उच्च अधिकारियो के भाषणो के रूप मे दिया जाने वाला औपचारिक प्रशिक्षण उस समय तक अधूरा ही रहता है जब तक कि कर्मचारी वास्तविक रूप मे अपने विभाग मे कार्य नही करता। वह दिन प्रतिदिन जो वास्तविक कार्य सम्पन्न करता है उससे बहुत कुछ सीखता है। एक कर्मचारी व्यावहारिक रूप से जब फाइलो, कागजातो तथा अधिकारियो के सम्पर्क मे आता है तब उसे **अनौपचारिक प्रशिक्षण** मिलता है। जब वह वास्तव मे अपना कार्य सम्पन्न करता है तो उसे उसके बारे मे अनेक बातो की जानकारी प्राप्त होती है। वह जब अपना कार्य सम्पादित करता है तो उसे अपने उच्च अधिकारियो से अनेक सुझाव प्राप्त होते हैं जिनसे उसका अनुभव (Experience) बढता है। 'आत्म-शिक्षा (Self-Education) ही सर्वोत्तम शिक्षा है।' वास्तविक कार्य-सम्पादन का अनुभव कर्मचारी को कार्य करने की कला का ज्ञान कराता है। यदि उचित समयान्तरो पर एक कर्मचारी का एक शाखा से दूसरी शाखा को स्थानान्तरण कर दिया जाये तो इससे उसके अनुभव की परिधि बढाई जा सकती है। ऐसी व्यवस्था से उसे सम्पूर्ण सगठन की कार्य-प्रणाली का ज्ञान हो जायेगा।

परन्तु यदि पर्यवेक्षक अधिकारी (Supervising officer) नये प्रविष्ट होने वाले कर्मचारी मे गहरी रुचि नही लेता है तो अनौपचारिक प्रशिक्षण सफल नहीं होगा। विभागीय अध्यक्षो को कर्मचारी के कार्य के सम्बन्ध मे सुझाव देने होते हैं तथा आलोचनायें करनी होती हैं। उन्हे कर्मचारी के कार्य मे पाये जाने वाले दोषो को बतलाना होता है और उन दोषो को दूर करने के लिए सुझाव भी देने होते हैं। इस प्रकार अनौपचारिक प्रशिक्षण की सफलता उस रुचि (Interest) पर निर्भर होती है जोकि पर्यवेक्षक अधिकारी नये प्रविष्ट होने वाले कर्मचारी के कार्य के प्रति दिखाता है। जिले के युवा अधिकारी कलक्टर से बहुत कुछ सीखते हैं। एक अच्छे कलक्टर का घर एक युवा सहायक कलक्टर के लिए प्राय एक दूसरा घर बन जाता है। उसे कलक्टर के घर शाम व्यतीत करने का प्रोत्साहन दिया जाता है। शायद ही कोई कलक्टर इतना व्यस्त रहता हो कि इन युवा अधिकारियो के साथ बातचीत करने का समय न निकाल सके। बल्कि इसके अतिरिक्त, वह इन नये युवा अधिकारियो से चाय पर आने तथा सप्ताह मे एक शाम अपने यहाँ बिताने को कहता है। फिर वहाँ बैठकर वह युवा सहायक कलक्टर अपनी जटिल समस्याओ पर विचार-विमर्श करता है और उससे बहुत कुछ सीखता है।

इस प्रकार प्रशासक मे मनोबल का निर्माण किया जाता है। पर इस अनौपचारिक प्रशिक्षण की सफलता उस रुचि पर निर्भर होती है जोकि पर्यवेक्षक अधिकारी नये प्रविष्ट होने वाले अधिकारी के कार्य के प्रति दिखाता है। साधारणत ऐसा होता है कि उच्च अधिकारी अपने अधीनस्थ अधिकारी को उसके कार्य के बारे मे समझाने के वजाय यही सरल समझता है कि जहाँ भी आवश्यक हो उसके कार्य को स्वय ही कर दिया जाये। ऐसी परिस्थितियो मे, नया प्रविष्ट होने वाला अधिकारी बहुत कम सीख सकेगा और उसका उत्साह भी नष्ट हो सकता है। नये भर्ती किये गये कर्मचारी को इस प्रकार का प्रशिक्षण अन्य लोगो के कार्य का निरीक्षण करने से प्राप्त होता है। अत जब तक कि नये कर्मचारी को विभाग के पुराने तथा अनुभवी कर्मचारियो की सहायता न प्राप्त हो तब तक वह कुछ नही सीख सकता। यदि अनौपचारिक प्रशिक्षण को सफल बनाना है तो यह आवश्यक है कि उच्चतर अधिकारी नये प्रविष्ट होने वाले कर्मचारियो के कार्य मे गहरी रुचि ले।

इस तथ्य के बावजूद भी कि अनौपचारिक प्रशिक्षण से अनेक बडे लाभ होते हैं, औपचारिक प्रशिक्षण अत्यन्त आवश्यक है। एक सुविचारपूर्ण प्रशिक्षण योजना के द्वारा ही कर्मचारियो मे सन्तुलित निर्णय करने की शक्ति का विकास किया जा सकता है। अत औपचारिक प्रशिक्षण के महत्व की उपेक्षा नही की जा सकती। **औपचारिक प्रशिक्षण तीन प्रकार का होता है**— (१) पूर्व प्रवेश प्रशिक्षण, (२) सेवाकालीन प्रशिक्षण, और (३) प्रवेशोत्तर प्रशिक्षण। अब हम इनकी क्रमश विवेचना करते हैं।

(१) पूर्व-प्रवेश प्रशिक्षण (Pre-entry Training)—यह प्रशिक्षण कर्मचारी को इसलिए दिया जाता है कि जिससे वह लोक-सेवा मे प्रवेश की प्रतियोगिता परीक्षा के लिए तैयार हो सके। यह उसके कार्यालय मे प्रवेश पाने का प्रशिक्षण होता है। इससे उसे कार्य के बारे मे जानकारी मिलती है जोकि उसे कार्यालय मे करना होता है। इस प्रशिक्षण के द्वारा उसे उस सगठन से परिचित कराया जाता है जिसमे कि उसे कार्य करना होता है, और उस विशिष्ट कार्य का ज्ञान कराया जाता है जोकि उससे सम्पन्न करने की आशा की जाती है। यह प्रशिक्षण कर्मचारी को उन कार्यो का भार उठाने के लिये तैयार करता है जोकि उसे सम्भालने होते है।

(२) सेवाकालीन प्रशिक्षण (In-service Training)—यह प्रशिक्षण उस कर्मचारी को दिया जाता है जोकि पहले से ही सेवा मे लगा होता है। सेवाकालीन प्रशिक्षण उन लोगो के लिए होता है जोकि वस्तुत अपने पद पर बने होते है। उनको यह प्रशिक्षण इसलिये दिया जाता है जिससे कि वे अपना कार्य समुचित रूप से सम्पन्न कर सकें। सेवाकालीन प्रशिक्षण के दो उद्देश्य होते है—

(क) यह प्रशिक्षण कार्य के श्रेष्ठतर निष्पादन के लिये अनिवार्य होता है।

(ख) ऐसा प्रशिक्षण पदोन्नति (Promotion) के लिए भी लाभदायक होता है। सेवाकालीन प्रशिक्षण सभी कर्मचारियो को तब दिया जाता है जबकि वे नौकरी

मे प्रवेश पा लेते है। यह प्रशिक्षण कर्मचारियो मे विचार व कार्य, प्रवीणता, ज्ञान तथा दृष्टिकोण सम्बन्धी उपयुक्त आदतो का विकास करके उनके वर्तमान अथवा भावी कार्य के सम्बन्ध मे सक्रियता उत्पन्न करने मे उनकी सहायता करता है।

इस प्रकार का प्रशिक्षण अपने कार्य के बारे मे नई-नई तकनीकें (Techniques) सीखने मे कर्मचारी की सहायता करता है। इससे उनका ज्ञान नवीनतम हो जाता है। यह प्रशिक्षण कार्य की नई तकनीको की दौड मे कर्मचारियो को पीछे न रहने देने के लिये आवश्यक होता है। यह कर्मचारी को प्रगति के लिए तैयार करने का प्रशिक्षण होता है। उसे प्रशिक्षण इसलिये दिया जाता है जिससे कि वह नये उत्तरदायित्वो को सम्भालने के योग्य बन सके। प्रशिक्षण को केवल सेवा के आरम्भ तक के लिए ही सीमित नही किया जा सकता। प्राथमिक प्रशिक्षण (Initial training) के साथ ही साथ ऐसे विशिष्ट पाठ्यक्रमो तथा नवीनीकरण पाठ्यक्रमो (Refresher courses) की पद्धति भी अपनायी जानी चाहिए जोकि एक बार मे एक माह अथवा इससे अधिक अवधि मे समाप्त हो और सम्पूर्ण सेवा तक विस्तृत हो।

(३) **प्रवेशोत्तर प्रशिक्षण** (Post-entry Training)—कर्मचारी नई-नई बातें सीखने का इच्छुक होता है। वह जिस कार्य मे लगा होता है उसके बारे मे अपने ज्ञान की वृद्धि करना चाहता है। कर्मचारी अपनी योग्यताओ मे भी वृद्धि करना चाहते हैं जिससे कि उनकी पदोन्नति हो सके। सरकार को चाहिए कि वह उन कर्मचारियो को, जोकि अपनी योग्यताओ मे वृद्धि करना चाहते है, अवकाश तथा छात्रवृत्ति (Scholarship) के रूप मे सम्पूर्ण सुविधाये प्रदान करे। उन कर्मचारियो को, जोकि अपने निजी प्रयत्नो से ऊपर उठना चाहते है, सभी प्रकार का सम्भव प्रोत्साहन किया जाना चाहिये।

प्रशिक्षण के प्रकार (Types of Training)

कर्मचारियो को कई प्रकार का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए, उदाहरणार्थ, मूलभूत लिपिक तकनीको (Clerical techniques) का विभाग की विशिष्ट तकनीको का तथा लोक प्रशासन के सिद्धान्त एव प्रयोग का प्रशिक्षण। प्रशिक्षण की किस्म पर जोर देने की बात विभिन्न सेवाओ के कार्यो की प्रकृति के अनुसार परिवर्तित होती रहती है। उदाहरणार्थ, प्रशासकीय वर्ग को पर्यवेक्षण (Supervision) के प्रशिक्षण की आवश्यकता होगी, जबकि मुद्रलेखक (Typist) अथवा लिपिक-वर्ग के लिए ऐसा प्रशिक्षण आवश्यक अथवा महत्वपूर्ण नही होता।

'सिविल-सेवको के प्रशिक्षण' पर नियुक्त समिति, १९४४ ने चार प्रकार के प्रशिक्षण का सुझाव दिया—(१) व्यावसायिक प्रशिक्षण, (२) पृष्ठप्रदेशीय प्रशिक्षण, (३) आगामी या अतिरिक्त शिक्षा और (४) केन्द्रीकृत प्रशिक्षण। इन प्रशिक्षणो के उद्देश्य के अनुसार विभिन्न श्रेणियो मे इनका फिर उप-विभाजन किया जाता है—(क) प्राथमिक अथवा प्रारम्भिक प्रशिक्षण, (ख) गतिशीलता के लिये प्रशिक्षण,

(ग) पर्यवेक्षरण के लिये प्रशिक्षरण, (घ) उच्चतर प्रशासन के लिये प्रशिक्षरण। अब हम इनकी क्रमश विवेचना करते हैं।

(१) **व्यावसायिक प्रशिक्षण** (Vocational Training)—कर्मचारी को इस विशिष्ट तकनीक मे प्रशिक्षरण प्राप्त करना होता है जोकि उसके व्यवसाय के लिये आवश्यक होती है। दस्तकारी का प्रशिक्षरण व्यावसायिक प्रशिक्षरण है।

(२) **पृष्ठ प्रदेशीय प्रशिक्षण** (Background Training)—पृष्ठ-प्रदेशीय प्रशिक्षरण का उद्देश्य कर्मचारी को किसी तकनीक अथवा प्रवीरणता मे विशिष्ट रूप से प्रशिक्षित करना नही है। इसका उद्देश्य तो साधारणत कर्मचारियो के दृष्टिकोरण को व्यापक बनाना है। कर्मचारियो को राजनीति, अर्थशास्त्र (Economics), समाज-शास्त्र (Sociology) आदि, जैसे सामान्य विषयो मे प्रशिक्षित किया जाना चाहिए जिससे कि वे समाज की आर्थिक एव सामाजिक समस्याओ को समझने के योग्य बन सकें। इस प्रकार का प्रशिक्षरण साप्ताहिक वाद-विवाद-वर्गों, प्रबन्धको द्वारा की जाने वाली बातचीतो तथा नीति के नियतकालीन विवरणपत्रो (Periodical statements) के द्वारा दिया जा सकता है। विभागीय-पत्रिका, मासिक पत्रिका, पुस्तकालय, फिल्मो का प्रदर्शन, अन्य शाखाओ तथा विभागो मे भ्रमरण—ये सब आयोजन कर्मचारियो के दृष्टिकोरण एव मस्तिष्क को व्यापक बनाने मे सहायक सिद्ध होगे।

(३) **अतिरिक्त शिक्षा** (Further education)—विभागो (Departments) द्वारा अपने सदस्यो को इस बात की सुविधायें प्रदान की जानी चाहियें कि वे व्यावसायिक महत्व के अतिरिक्त शिक्षा प्राप्त कर सकें, उदाहरणार्थ, लेखाकारो (Accountants) तथा अकशास्त्रियो (Statisticians) को उनके धन्धो के अतिरिक्त शिक्षा दी जानी चाहिये। गैर-व्यावसायिक अतिरिक्त शिक्षा को भी प्रोत्साहन दिया जाना चाहिये।

(४) **केन्द्रीकृत प्रशिक्षण** (Centralised Training)–प्रशासकीय अधिकारियो के प्रशिक्षरण के लिए तो एक केन्द्रीय सगठन होना चाहिए और शेष कर्मचारियो के लिये सम्बन्धित विभागो के अपने निजी प्रशिक्षरण केन्द्र होने चाहिए।

(४) **प्राथमिक अथवा प्रारम्भिक प्रशिक्षण** (Initial Training)—सम्बन्धित विभागो को इस बात के लिये उत्तरदायी बनाया जाना चाहिए कि वे अपने कर्मचारियो को प्रारम्भिक प्रशिक्षरण दें। भर्ती किये गये नये कार्मचारियो को सरकारी कार्यालय की कार्यप्रणाली के बारे मे सामान्य जानकारी दी जानी चाहिये, उसके विशिष्ट विभाग के सगठन तथा कर्त्तव्यो के बारे मे उसको सामान्य ज्ञान कराया जाना चाहिए और गुप्तता (Secrecy), कार्यालय के अनुशासन आदि की दृष्टि से सरकारी कार्य के निष्पादन के लिए सामान्य पृष्ठभूमि का निर्माण किया जाना चाहिए। प्रारम्भिक अवस्थाओ मे, नये भर्ती किये गये कर्मचारी को अनुभवी व उपयुक्त व्यक्तियो के अधीन काम करना चाहिए।

(६) **गतिशीलता के लिए प्रशिक्षण** (Training for Mobility)—कर्मचारी को केवल एक कार्य का ही नही, अपितु अन्य तथा भिन्न प्रकार के कार्य का भी प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। प्रशिक्षणार्थियो (Trainees) का एक पद मे दूसरे पद पर को तथा एक प्रकार के कार्य मे दूसरे प्रकार के कार्य पर को स्थानान्तरण किया जाना चाहिये। विभाग तथा सेवा के अन्दर ही अन्दर होने वाली इस गतिशीलता से सम्पूर्ण रूप मे कर्मचारी की वैयक्तिक क्षमता का विकास होता है।

(७) **पर्यवेक्षण के लिए प्रशिक्षण** (Training for Supervision)—जिन लोगो को पर्यवेक्षण का कार्य सौंपा जाना हो, उन्हे अधीनस्थ कर्मचारियो (Subordinates) मे व्यवहार करने की कला का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिये। इससे पूर्व एक अधिकारी की किसी पर्यवेक्षणिक पद (Supervisory post) पर पदोन्नति की जाए उस पद पर कार्य करने की उसकी क्षमता की परख कर लेनी चाहिए।

(८) **उच्चतर प्रशासन के लिए प्रशिक्षण** (Training for Higher Administration)—प्रशासकीय वर्ग के व्यक्तियो को सबसे महत्वपूर्ण कार्य सम्पन्न करने पडते है अत. उनके प्रशिक्षण पर विशिष्ट ध्यान दिया जाना चाहिये। इस वर्ग के कर्त्तव्यो का सम्बन्ध नीति के निर्माण मे, सरकारी यन्त्र के सुधार व समन्वय से तथा लोक-सेवा के विभागो के सामान्य प्रशासन एव नियन्त्रण मे होता है। प्रशासकीय पदो पर भर्ती किये जाने वाले व्यक्तियो को आर्थिक तथा राजनैतिक नेतृत्व का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। उन्हे लोकतन्त्रीय सिद्धान्तो का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए जिससे कि उन्हे यह बात ध्यान रहे कि उन्हे जनता के सेवक के रूप मे कार्य करना है। उन्हे सरकारी विभागो के सगठन तथा प्रशासन की समस्याओ से सम्बन्धित प्रशिक्षण दिया जाना चाहिये। उन्हे इस प्रकार का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिये कि वे अपने स्टाफ, उच्च अधिकारियो तथा सामान्य जनता का सहयोग प्राप्त करने मे समर्थ हो सकें। इस प्रकार प्रशासनिक वर्ग के अधिकारियो का प्रशिक्षण इस प्रकार होना चाहिये जोकि उनके दृष्टिकोण को विस्तृत करे, उनको स्वतन्त्र निर्णय कर सकने के योग्य बनाये और जो देश की आर्थिक व सामाजिक समस्याओ से उन्हे पूर्ण अवगत रखे। उनको प्रशासन तथा प्रशासन के सिद्धान्त की कला मे प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। प्रशासनिक वर्ग को केवल वर्गीकरण, परीक्षण, बजट-निर्माण, कार्य-विधि के विश्लेषण, लोक-कल्याण, सार्वजनिक स्वास्थ्य, गृह-निर्माण, सडको तथा राजपथो (Highways) से सम्बन्धित प्राथमिक सिद्धान्तो का ही प्रशिक्षण नही दिया जाना चाहिए बल्कि राजवित्त (Public finance), अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, राजनैतिक सस्थाओ के इतिहास का भी प्रशिक्षण दिया जाना चाहिये। इस प्रकार उन्हे दोनो ही प्रकार के विषय मे प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए और केवल तभी वे उच्च कोटि के पदाधिकारी बन सकते है। एक अनुभवी प्रशासक श्री ए० डी० गोरवाला ने ठीक ही सुझाव दिया है कि सामान्य प्रशासक (General administrator) को व्यावहारिक अर्थशास्त्र (Practical economics) का ठोस ज्ञान होना चाहिए। उससे यह समझने

की योग्यता होनी चाहिए कि व्यावहारिक समस्याओ मे आर्थिक सिद्धान्तो को किस प्रकार लागू किया जाए। उसको व्यावहारिक मनोविज्ञान (Practical Psychology) का पर्याप्त प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए जिससे कि वह जनता से, जिसके बीच मे कि उसे अधिकतर काम करना होगा, अपने नेतृत्व के समर्थन मे उचित प्रत्युत्तर प्राप्त करने मे समर्थ हो सके। उसका ज्ञान इतना पर्याप्त होना चाहिए जो उसको योग्य बनाए कि वह समझ सके कि लोगो का मस्तिष्क कैसे कार्य करता है और ऐसी कौन सी बाते तथा ऐसे कौन से बिन्दु हैं जो उन्हे सबसे अधिक प्रभावित करते हैं। चूंकि सम्भावना यह है कि भविष्य मे सरकारी उद्यम (State enterprises) देश की अर्थ-व्यवस्था मे एक अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त करेंगे तथा अनेक प्रचलित औद्योगिक व्यवसायो का राष्ट्रीयकरण (Nationalisation) कर दिया जायेगा, अत यह आवश्यक है कि कुछ ऐसे सामान्य प्रशासको को, जो कि प्रबन्ध-सम्बन्धी कार्यों के सम्बन्ध मे विशेष योग्यता का प्रदर्शन करें, सेवा के प्रारम्भिक चरण मे ही ऐसे उद्यमो मे तथा प्रबन्ध (Management) की कला मे प्रशिक्षित किया जाना चाहिये।

प्रशिक्षण देने की रीतियां (The Methods of Imparting Training)

लोक सेवको को प्रशिक्षण देने के लिए अनेक प्रकार की विधियो का प्रयोग किया जाता है। कर्मचारियो को अपने कार्य के बारे मे सीखने की अनुमति एक तो तब दी जा सकती है जब कि वे कार्यालय अथवा क्षेत्र मे वास्तव मे कार्य करें। इसे अनुभव (Experience) द्वारा प्रशिक्षण प्राप्त करना कहते हैं। प्रशिक्षण प्रशासकीय विद्यापीठो (Administrative academies) अथवा प्रशिक्षणशालाओ (Training schools) मे औपचारिक व्याख्यानो (Formal lectures) अथवा अनुदेशो (Instructions) के रूप मे दिया जा सकता है। जिस प्रकार कि कक्षाओ मे छात्रो को शिक्षा दी जाती है उसी प्रकार लोक-कर्मचारियो को उस कार्य का प्रशिक्षण दिया जा सकता है जो कि उन्हे करना होगा। प्रशिक्षण की अन्य विधि यह है कि 'पत्र-व्यवहार (Communications) के द्वारा कर्मचारियो को कार्य की प्रकृति तथा उस विभाग के नियमो एव विनियमो (Rules and regulations) से अवगत कराया जाए जिसमे कि उन्हे काम करना है। विभाग अपने कर्मचारियो को उनके कर्त्तव्यो एव दायित्वो के बारे मे तथा सामान्य आचार-सहिता (General code of conduct), निबन्धो और विशेषाधिकारो के बारे मे सूचनाए प्रसारित कर सकता है। लोक-कर्मचारियो को प्रशिक्षण देने की अन्य रीति है सम्मेलन (Conference) अथवा वर्गीय वादविवादो (Group discussions) की। सम्मेलन की रीति मे, प्रशिक्षणार्थियो को शिक्षको द्वारा किसी भी प्रकार के औपचारिक व्याख्यान नही दिये जाते वल्कि विभिन्न मामलो पर वे स्वय ही वाद-विवाद करते है, एक दूसरे की टिप्पणियो की परस्पर तुलना करते हैं और अपना निजी विचार या दृष्टिकोण आगे रखते है।

इस प्रकार, प्रशिक्षण वाद-विवाद (Discussion), सम्मेलन अथवा औपचारिक व्याख्यानो की अनेक विधियो द्वारा दिया जा सकता है। प्रशिक्षण देने के

लिये किसी भी रीति का उपयोग किया जा सकता है परन्तु एक बात निश्चित है कि प्रशिक्षण प्रबन्ध वर्ग के व्यक्तियो का एक कार्य है और प्रशिक्षण देना किसी भी ऐसे व्यक्ति का, जिसे कि अन्य लोगो के पर्यवेक्षण (Supervision) का भार सौपा गया हो, एक प्रमुख उत्तरदायित्व होना चाहिये। अत प्रशिक्षण सुव्यवस्थित तथा सुनियोजित होना चाहिये। यदि प्रशिक्षण व्याख्यानो द्वारा दिया जाए तो शिक्षक प्रशिक्षणार्थियो से ऊची पद स्थिति के होने चाहिए। यदि प्रशिक्षण देने वाला अधिकारी एक योग्य तथा व्यावहारिक आदमी है और विभागाध्यक्ष (Head of the Department) तथा अपने स्थापना अधिकारी (Establishment Officer) का उसको समर्थन प्राप्त है तो वह अपने कर्त्तव्यो का सुचारु रूप से पालन कर सकेगा। इसके विपरीत, यदि प्रशिक्षण देने वाले के पद को स्थापना शाखा का एक ऐच्छिक पद समझा गया और एक ऐसे अधिकारी की उस पर नियुक्ति कर दी गई जोकि केवल सैद्धान्तिक है और जिसने आपको उस पर सेवा के लिए अच्छी प्रकार से उपयुक्त सिद्ध नही किया है तो यह माना जायेगा कि युद्ध प्रारम्भ होने से पहले ही पराजय हो गई।[1]

संयुक्त राज्य अमेरिका मे लोक-कर्मचारियो का प्रशिक्षण :
(Training of the Public Personnel in the United States of America)

जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है, सरकारी कर्मचारियो द्वारा सर्वश्रेष्ठ स्तरो तक पहुँचने मे असफल रहने का एक प्रमुख कारण यह है कि सिविल सेवा के लिये तथा सिविल सेवा मे उनको पर्याप्त प्रशिक्षण नही मिलता। सयुक्त राज्य अमेरिका मे, कालिज तथा विश्वविद्यालय युवा व्यक्तियो की सरकारी सेवा मे प्रवेश की तैयारी का प्रशिक्षण देते हैं। पूर्व-प्रवेश प्रशिक्षण विश्वविद्यालय काल मे ही प्रारम्भ हो जाता है। सयुक्त राज्य मे सिविल सेवा मे भर्ती होने का इच्छुक व्यक्ति राजनीति विज्ञान तथा लोक-प्रशासन मे एक उच्च डिग्री प्राप्त करने के लिए विश्वविद्यालय (University) मे स्नातकोत्तर अध्ययन (Post-graduate study) पर एक, दो अथवा यहाँ तक कि तीन वर्ष तक का समय अतिरिक्त व्यय करता है। कुछ विश्वविद्यालयो मे अधिक उच्च स्तर की प्रशासनिक शिक्षा दी जाती है। ये विश्वविद्यालय लोक प्रशासन मे डाक्टर की डिग्री प्रदान करते हैं। सयुक्त राज्य मे विश्वविद्यालय तकनीकी पाठ्यक्रमो के प्रमाण-पत्र देते है तथा सेवा-कालीन प्रशिक्षण भी देते हैं। कुछ विश्वविद्यालय नगर-नियोजन (Town planning), बजट निर्माण, सार्वजनिक स्वास्थ्य, पुलिस तथा अग्नि सेवा प्रशासन आदि विषयो मे प्रशिक्षण देते

1 Also refer to Dr E N Gladden The Civil Service Its Problems and Future Chapter VI Training, pp 71-86, Frank Dunnill, The Civil Service, Some Human Aspects, Chapter III 'Conditioning' pp 47-68, Simon and others *Public Administration*, pp 366-380, Committee on the Training of Civil Servants, 1944 (Great Britain)

है। सरकारी सेवाओ मे कुछ विशिष्ट कार्यों को सम्पन्न करने का ज्ञान प्रदान करने के लिए प्रवेशोत्तर प्रशिक्षण (Post entry training) दिया जाता है क्योंकि उन सेवाओ मे मितव्ययता तथा कार्य-कुशलता बनाये रखने के लिए ऐसा प्रशिक्षण अत्यन्त आवश्यक होता है। अत कर्मचारियो के लिये वहुमूल्य एव मार्ग-दर्शन व्याख्यानो का आयोजन किया जाता है। ब्रूकिंग्स सस्था (Brooking Institution) जोकि सन् १९३७ मे वाशिंगटन मे स्थापित की गई थी, सघीय सेवा के कर्मचारियो के प्रशिक्षण मे बहुत सहायता देती है। यह सस्था केवल प्रशासकीय कार्य-विधियो (Procedures) की शिक्षा मात्र ही नही देती वल्कि इससे भी आगे बढकर यह कर्मचारियो मे ऐसी दूरदर्शिता तथा विवेक-शक्ति का विकास करती है जोकि व्यापक निर्णयो तथा विस्तृत कार्यवाहियो की दृष्टि से आवश्यक होती है। ऐसे अध्ययनो की व्यवस्था "वाशिंगटन से वाहर की जाती है और इनमे भाग लेने वाले व्यक्ति एक साथ रहते तथा एक साथ कार्य करते है।" इस प्रकार सयुक्तराज्य अमेरिका मे विश्वविद्यालय लोक कर्मचारियो के प्रशिक्षण के क्षेत्र मे एक बडा महत्वपूर्ण तथा मार्गदर्शक कार्य सम्पन्न कर रहे हैं।[1]

यूनाइटेड किंगडम
(United Kingdom)

मुख्य रूप से कहा जाए तो ब्रिटेन मे लोक कर्मचारी-वर्ग प्रशिक्षण के लिए ब्रिटिश राजकोष (British Treasury) ही उत्तरदायी है। सन् १९४४ की असेटन समिति (जिसका कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है) के प्रतिवेदन के पश्चात् राजकोष ने प्रशिक्षण की एक योजना का निर्माण किया। इसके सचालन के लिए एक शिक्षा तथा प्रशिक्षण निर्देशक (Director of Education and Training) नियुक्त किया जाता है। प्रत्येक विभाग (Department) मे प्रशिक्षण अधिकारी नियुक्त किये जाते हैं जोकि ह्विटले परिषदो (Whitley councils) के सहयोग से इस योजना का सचालन करते हैं। नव प्रविष्टो (Entrants) को विभाग के स्थान, उसकी सेवा के सम्बन्धो तथा समाज के लिए उसकी उपादेयता के बारे मे परिचय कराया जाता है। उनको नीतिशास्त्र (Ethics) तथा सेवा के आचार व्यवहार सम्बन्धी नियमो की शिक्षा दी जाती है। इसके पश्चात् कार्य अथवा पद का वास्तविक प्रशिक्षण दिया जाता है। कार्यालय समय के वाहर व्यावसायिक (Vocational) तथा सामान्य ज्ञान की शिक्षा को प्रोत्साहन दिया जाता है। अनेक नव प्रविष्ट व्यक्ति स्वय अपने अनुभव मे प्रयोगात्मक रूप मे अपने कार्य का ज्ञान प्राप्त करते है। वरिष्ठ स्तर (Senior level) के पदाधिकारियो के प्रशिक्षण के लिए एक प्रशासकीय स्टाफ

---

1 Also refer to W B Graves, *Public Administration in a Democratic Society* (1950) p 7-24 W E Mosher and J D Kingsley, *Public Personnel Administration* (1941) Ed , L D White Introduction to the Study of Public *Administration* (1948 ed) Chs XXII-XXXI and Cluadius O Johnson, American Government, New York 1923 Chapter XVI

कालिज है। यह कालिज सिंडीकेट प्रणाली का उपयोग करता है जिसके अनुसार कि छात्र एक जाँच समिति (Committee of Enquiry) की विधि द्वारा अपने लिए विषय की खोज करते हैं। 'इस कालिज मे उद्योग तथा बैंकिंग के उच्च प्रशिक्षण पर ह्वाइट हाल की अपेक्षा बहुत अधिक प्रभाव डाला है।' लन्दन विश्व विद्यालय लोक-प्रशासन मे डिप्लोमा प्रदान करके तथा ब्रामशिल (Bramshill) का पुलिस कॉलिज, पुलिस अधिकारियो को प्रशिक्षण देकर, कर्मचारियो के लिए प्रशिक्षण की पर्याप्त सुविधाए प्रदान करते है। इस सब प्रशिक्षण का उद्देश्य "विभाग के कार्य मे अधिक परिशुद्धता उत्पन्न करना, अधिकारियो को परिवर्तनीय आवश्यकताओ के अनुरूप बनाना और नैत्यक कार्य का अभ्यासी बनने से रोकना, विशेषकर यान्त्रिक कार्यपद्धति के प्रभाव को रोकना, उनको अधिक महत्वपूर्ण भावी उत्तरदायित्वो के लिए तैयार करना तथा कर्मचारी-वर्ग के मनोबल (Morale) को पुष्ट करना है।"[1]

भारत मे लोक कर्मचारी-वर्ग का प्रशिक्षण
(Training of the Public Personnel in India)

भारत मे मान्यता प्राप्त विद्यालयो के स्नातक (Graduates) अखिल भारतीय सेवाओ के लिए—उदाहरणार्थ, भारतीय प्रशासन सेवा (I A S), भारतीय पुलिस सेवा (I P S) और केन्द्रीय सरकार की अन्य सेवाओ जैसे कि लेखा-परीक्षण सेवा (Audit), आय-कर (Income-Tax) तथा रेलवे सेवा के लिए —प्रतियोगिता कर सकते हैं। प्रत्याशियो (Condidates) की सामान्य बौद्धिक क्षमता की जाच करने के लिए सघीय-लोक सेवा आयोग (U P S C) भर्ती-परीक्षा की व्यवस्था करता है। यह परीक्षा इतिहास, अर्थशास्त्र, राजनीतिक विज्ञान, विधि (Law), गणित तथा रसायनशास्त्र (Chemistry) जैसे विषयो मे ली जाती है। इन विषयो का उस कार्य से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नही होता जोकि प्रत्याशियो को सरकारी सेवा मे नियुक्ति के पश्चात् करना पडता है। अत प्रत्याशियो के लिए प्रशिक्षण की व्यवस्था करनी होती है जिससे कि वे अपने कार्य के सम्बन्ध मे आवश्यक ज्ञान तथा ऐसी प्रवीणता प्राप्त करने मे समर्थ हो सके जिसके बिना वे सेवा मे कोई भी प्रभावशाली कार्य सम्पन्न नही कर सकते। अब हम भारत सरकार की विभिन्न सेवाओ के प्रशिक्षण-कार्य-क्रम का अध्ययन करेंगे।

(१) **भारतीय प्रशासन सेवाओ के लिए प्रशिक्षण** (Training for Indian Administrative Services)—मार्च सन् १९४७ मे दिल्ली मे भारतीय प्रशासन सेवा के परिवीक्षाधीनो (I A S Probationers) के लिए एक प्रशिक्षण सस्था की स्थापना की गई थी। अब इसको समाप्त कर दिया गया है और इसका स्थान प्रशासन की राष्ट्रीय अकादमी (National Academy of Administration) ने

---

1 Herman Finer, Governments of greater European Powers, P 208 Also refer to Public Service Training in the Past Decade, F J Tickner, *Public Administration vol* XXXIV p p 27-38

ले लिया है। भा० प्र० से० (I A S) के परिवीक्षाधीनो को एक वर्ष के लिए दिल्ली की प्रशिक्षण सस्था मे भेज दिया जाता था। इसके पाठ्यक्रम मे ये विषय सम्मिलित थे भारत का सविधान तथा पचवर्षीय योजनायें, देश की दण्ड-विधि (Criminal law) अर्थात् भारतीय दण्ड सहिता (Indian Penal Code), दण्ड प्रक्रिया सहिता (Criminal Procedure Code) तथा भारतीय साक्ष्य अधिनियम (Indian Evidence Act), भारतीय इतिहास व इसके सामाजिक एव राजनीतिक पहलू, अर्थशास्त्र के सामान्य सिद्धान्त, लोक प्रशासन व सरकारी सस्थाओ का सगठन, हिन्दी और एक प्रादेशिक भाषा। प्रत्याशियो को इन विषयो मे एक परीक्षा पास करनी पडती थी जिसकी व्यवस्था सघीय लोक-सेवा आयोग द्वारा की जाती थी। यदि वे इस परीक्षा को उत्तीर्ण कर लेते थे तो सेवा मे उनका स्थिरीकरण (Confirmation) कर दिया जाता था। भा० प्र० सेवा प्रशिक्षण सस्था मे प्रशिक्षण की इस एक वर्ष की अवधि के बीच प्रत्याशियो को देश के विभिन्न भागो का भ्रमण करने के लिये भेजा जाता था जिससे कि वे देश की समस्याओ को समस्त रूप मे (As a whole) समझ सकें। परन्तु यह एक वर्ष का प्रशिक्षण प्रत्याशियो को कलक्टर जैसे पद अथवा ऐसे ही अन्य किसी उच्च पद के लिए उपयुक्त बनाने की दृष्टि से अपर्याप्त है। भा० प्र० सेवा का एक पदाधिकारी सेवा के छटवें वर्ष मे कलक्टर के पद का कार्य-भार सभालने के योग्य हो जाता है। उसे एक वर्ष या उससे अधिक तक अतिरिक्त 'काम पर प्रशिक्षण' (On the job training) दिया जाता है। उसे जिला कार्यालयो से सलग्न कर दिया जाता है जिससे कि वह अनुभव प्राप्त कर सके। उसको और अनुभव प्रदान करने के लिए, प्रारम्भिक अवस्थाओ मे उसका विभिन्न जिलो मे स्थानान्तरण किया जाता है। उसे लगभग अठारह माह के लिये अपर सचिव (Under-secretary) का कार्य करने के लिये सचिवालय (Secretariat) मे भी भेजा जाता है। यह सब प्रशिक्षण इसलिये दिया जाता है जिससे भा० प्र० सेवा के पदाधिकारी जिले मे अथवा किसी सरकारी विभाग मे कोई भी उत्तर-दायित्व का पद सभालने के योग्य हो जायें। मुख्य जोर 'काम पर प्रशिक्षण' पर दिया जाता है, यद्यपि इसके अनुपूरक के रूप मे भा० प्र० सेवा प्रशिक्षण सस्था मे एक वर्ष का औपचारिक प्रशिक्षण दिया जाता है।

(२) **भारतीय विदेश सेवा के लिए प्रशिक्षण** (Training for the Indian Foreign Service)—इस सेवा के प्रत्याशियो की प्रशिक्षणावधि तीन वर्ष की होती है। इस अवधि मे प्रत्याशी एक जिले से सलग्न कर दिये जाते हैं जहाँ कि वे प्रयोगात्मक कार्य के बारे मे शिक्षा प्राप्त करते हैं। इसके पश्चात् सचिवालय प्रशिक्षण (Secretariat training) दिया जाता है।

इस सेवा के प्रशिक्षण कार्यक्रम मे भाषाओ (हिन्दी तथा एक विदेशी भाषा) के तथा उन विषयो के अध्ययन पर जोर दिया जाता है जिनका ज्ञान इस सेवा के

एक पदाधिकारी के लिये आवश्यक होता है जैसे कि अन्तर्राष्ट्रीय विधि (International law) राजनय (Diplomacy) तथा भूगोल आदि विषयो की शिक्षा। इनको सस्थागत प्रशिक्षण (Institutional training) भा० प्र० सेवा के परिवीक्षाधीनो (I A S Probationers) के साथ ही दिया जाता है।

(३) **भारतीय पुलिस सेवा के लिए प्रशिक्षण** (Training for the Indian Police Service)—भारतीय पुलिस सेवा के लिए, सितम्बर १६४८ मे माऊन्ट आबू मे एक केन्द्रीय पुलिस प्रशिक्षण कालिज (Central Police Training College) की स्थापना की गई थी। इस सेवा के प्रत्याशियो के लिये अध्ययन के विषय है—दण्ड विधि, दण्ड प्रक्रिया, भारतीय साक्ष्य अधिनियम, भारतीय सविधान आदि, परन्तु विशेष जोर शारीरिक प्रशिक्षण (Drill) तथा अस्त्र-शस्त्र चलाने के प्रशिक्षण पर दिया जाता है। अस्त्र-शस्त्र चलाने के प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए उन्हे सैनिक इकाइयो (Military Units) मे भी भेजा जाता है। एक वर्ष के प्रशिक्षण के पश्चात् उन्हे जिलो मे भेजा जाता है और वहाँ के 'काम पर प्रशिक्षण' प्राप्त करते हैं। प्रशिक्षणार्थी वरिष्ठ जिला पुलिस अधिकारियो के मार्ग-दर्शन मे अनेक अधीनस्थ अधिकारियो का कार्य करके अपने काम की शिक्षा प्राप्त करता है। लगभग एक वर्ष तक इस प्रकार का प्रशिक्षण प्राप्त करने के उपरान्त, एक भा० प्र० सेवा से अधिकारी को सहायक पुलिस अधीक्षक (Assistant Superintendent of Police) के रूप मे नियुक्त कर दिया जाता है।

भारत सरकार ने भारतीय पुलिस सेवा के परिवीक्षाधीनो के सस्थागत प्रशिक्षण के पाठ्यक्रम मे सशोधन किया है। इसके अनुसार सिन्डीकेट कार्य तथा वर्गीय वाद-विवादो (Group discussions) पर अधिक जोर दिया गया है तथा पाठ्यक्रम मे कुछ ऐसे विषयो की शिक्षा को सम्मिलित किया गया है जैसे कि अपराध (Crime) तथा इस सम्बन्ध मे कार्य करने का ढग, अपराधी (Criminals), अपराधियो के गिरोह, तथा औपराधिक मनोविज्ञान (Criminals Psychology), पुलिस तथा लोक-प्रशासन आदि। पाठ्यक्रम की नई विशेषता है निम्न कार्यों का प्रयोगात्मक प्रशिक्षण (Practical training) भीड को तितर-बितर करना, यातायात का नियमन करना, भ्रष्टाचार को रोकना, अग्निसेवा, सकटकालीन सहायता, नागरिक प्रतिरक्षा परिवीक्षा तथा मुक्त किये गये बन्दियो (कैदियो) की बाद की देखभाल।

(४) **भारतीय-लेखा-परीक्षण तथा लेखा सेवा के लिए प्रशिक्षण** (Training for the Indian Audit and Accounts Service)—भारतीय लेखा-परीक्षण तथा लेखा सेवा मे भर्ती होने वाले अधिकारियो को 'विभागीय प्रशिक्षण स्कूल' शिमला में एक वर्ष का प्रशिक्षण दिया जाता है। परिवीक्षाधीनो को यह प्रशिक्षण केवल उन्ही विषयो मे दिया जाता है जिनका उनके काम से प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है। इसके पाठयक्रम मे ये विषय सम्मिलित किये जाते हैं लेखा-परीक्षण

(Audit), लेखाकन (Accounts), दण्ड तथा स्थानीय विधियाँ, भारतीय सविधान, मसदीय वित्तीय नियन्त्रण, वाणिज्यिक बहीखाता (Commercial book-keeping), लेखा सहितायें (Account codes), आधार-भूत नियम (Fundamental rules), प्रादेशिक भाषा आदि। प्रशिक्षण-काल मे, प्रशिक्षणार्थी (Trainee) को कार्य का प्रयोगात्मक प्रशिक्षण देने के लिये अनेक लेखा-कार्यालयो तथा जिला राजकोषो से सलग्न कर दिया जाता है। इस प्रशिक्षण का उद्देश्य प्रत्याशी को लेखाकन तथा लेखा-परीक्षण पद्धति की समस्याओ तथा कार्यविधियो से पूर्ण परिचित करना है। इस सेवा के प्रत्याशी (Candidates) को उन विषयो मे सुनियोजित एव व्यवस्थित प्रशिक्षण दिया जाता है जोकि उसके भावी कर्तव्यो की दृष्टि से अत्यावश्क होता है। उसे काम पर 'प्रशिक्षण' भी दिया जाती है। स्कूल से उत्तीर्ण होने के पश्चात् उसकी सहायक लेखा अधिकार (Assistant Accunts Officer) के पद पर नियुक्ति कर दी जातो है।

(५) **आय-कर सेवा** के परिवीक्षाधीनो (Income-tax probationers) को कलकत्ता के प्रशिक्षण स्कूल मे १८ माम का प्रशिक्षण दिया जाता है। रेलवे बोर्ड बडोदा मे एक स्टाफ कॉलिज का सचालन करता है। यह यातायात, परिवहन व वाणिज्यिक विभाग मे तथा रेलवे लेखा सेवा (Railway Accounts Service) मे भर्ती होने वाले अधिकारियो को प्रशिक्षण देता है। इन स्कूलो मे प्रशिक्षण के सभी विषय एक दम प्रयोगात्मक होते हैं और उनका इन अधिकारियो के कार्य से प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है। उन्हे उनके ऐमे भावी तकनीकी एव प्रवीण कार्यों का प्रशिक्षण दिया जाता है जो कि उनके लिये नवीन होते हैं।

(६) **केन्द्रीय सचिवालय सेवा** (Central Secretariat Service)—इस सेवा मे भर्ती होने वाले प्रत्याशियो को सचिवालय प्रशिक्षण स्कूल मे प्रशिक्षा दी जाती है। इस प्रशिक्षण सस्था की स्थापना मई १९४८ मे नई दिल्ली मे हुई थी। प्रशिक्षणार्थियो को सगठन तथा प्रणालियो (O and M), कार्यालय को कार्यविधियो, वित्तीय नियमो का विनियमो आदि मे प्रशिक्षण दिया जाता है। सस्थागत प्रशिक्षण अधिकारीयो के कार्य के सम्बन्धित होता है। प्रशिक्षण पूरा करने के उपरान्त, इससे पूर्व कि प्रत्याशियो को अनुभाग अधिकारी (Section officers) बनाया जाए, उन्हे कुछ ममय के लिए सहायको (Assistants) के रूप मे कार्य करना होता है। वस्तु-स्थिति यह है कि जोर अधिकतर उस प्रयोगात्मक कार्य पर दिया जाता है जो कि अधिकारी को भविष्य मे कार्यालय मे करना होता है।

भारत मे विभिन्न सेवाओ के व्यक्तियो को केन्द्रीय सस्थाओ मे प्रशिक्षण दिया जाता है। उनको विधियो (Laws), नियमो (Rules) विनियमो (Regulations), कार्यविधियो (Procedures) तथा मारपुस्तिकाओ (Manuals) से मम्बन्धित औपचारिक शिक्षा दी जाती है। परन्तु यह अनुभव किया जाता है कि मस्थागत प्रशिक्षण पर्याप्त नही है, अत प्रशिक्षण का एक अन्य अग है 'काम पर

प्रशिक्षण' (On the job training)। नये भर्ती किये गये अधिकारियो के लिए 'काम पर प्रयोगात्मक प्रशिक्षण' अत्यन्त आवश्यक है।

भारतीय प्रशासन सेवा के परिवीक्षाधीनो की वर्तमान प्रशिक्षण व्यवस्थाओ की कुछ आलोचना भी की जाती है। यह कहा जाता है कि सैद्धान्तिक तथा कक्षा मे पढाये जाने वाले विषयो पर अधिक जोर दिया गया है। भा० प्र० सेना के एक परिवीक्षाधीन (Probationer) को प्रशिक्षण सस्था मे पर्याप्त प्रयोगात्मक प्रशिक्षण नही दिया जाता। अध्ययनात्मक पर्यटनो (Study tours) पर तथा न्यायालयो जिलो, परगनो, तहसीलो के प्रधान कार्यालयो के निरीक्षणो अथवा भ्रमणो (Visits) पर अधिक जोर दिया जाना चाहिये।

वर्तमान प्रशिक्षण व्यवस्था का एक अन्य दोष यह है कि पृथक्-पृथक् व्यक्तियो की उन न्यूनताओ को दूर करने का बहुत कम प्रयत्न किया जाता है जो उनके द्वारा विश्वविद्यालयो मे कुछ विषयो (Subjects) के न पढने के कारण उत्पन्न होती है। सामाजिक विद्वान (Social science) के एक स्नातक (Graduate) को भौतिक विज्ञानो (Physical science) के बारे मे कुछ ज्ञान नही होता। विज्ञान तथा शिल्पकला के इस युग मे यह एक बडा भारी दोष है। शुद्ध विज्ञान (Pure-science) का एक स्नातक राजनीति विज्ञान, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान आदि के मूलभूत सिद्धान्तो के बारे मे कुछ नही जानता। परन्तु इस युग मे कोई भी प्रशासक इन विषयो के समुचित ज्ञान बिना अपने कार्यो को कुशलता के साथ सम्पन्न नही कर सकता। जब सिविल सेवक को 'व्यावहारिक जीवन मे सामाजिक वैज्ञानिक' की सज्ञा दी जाती है। शिल्पकला विज्ञान (Technology) के इस युग की मागो का महान् सामाजिक उत्कर्ष की आवश्यकतायो के साथ ताल-मेल बिठाना पडता है। अत पाठयक्रम का विस्तार किया जाना चाहिए, प्रशिक्षण की अवधि बढायी जानी चाहिए, और भा० प्र० सेवा के युवा परिवीक्षाधीनो को इस विस्तृत पाठयक्रम के विषयो का यथेष्ट ज्ञान कराया जाना चाहिए। प्रत्याशियो के दृष्टिकोण एव ज्ञान को व्यापक बनाने के लिये इस प्रकार का प्रशिक्षण अत्यन्त आवश्यक है। इसके अतिरिक्त भारत मे युवक अपनी स्नातकीय परीक्षा मे जिन विषयो को लेते हैं उनके अतिरिक्त अन्य विषयो का स्थूल ज्ञान तक प्राप्त करने का कोई प्रयत्न नही करते। अत भा० प्र० सेवा की प्रशिक्षणशालाओ मे जो प्रशिक्षण दिया जाए उसमे भौतिक तथा सामाजिक, दोनो विज्ञानो का समावेश होना चाहिए जिससे कि प्रशिक्षार्थियो की पहली कमिया दूर की जा सकें और उनके ज्ञान के क्षेत्र का विस्तार किया जा सके। प्रशिक्षण सस्थाओ मे दी जाने वाली प्रशिक्षा से प्रशिक्षणार्थियो का मानसिक दृष्टिकोण पुनर्व्यवस्थित होना चाहिये अन्यथा तो विश्वविद्यालय के एक युवा स्नातक, जिसने कि अपना अध्ययन अभी ही समाप्त किया हो, तथा एक भा० प्र० सेवा (I A S) के

अधिकारी के बीच, जोकि बडे प्रशासकीय उत्तरदायित्वो का भार अपने कन्धो पर उठाने जा रहा है, कोई अन्तर ही नही रह जायेगा ।

जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है प्रत्याशी को एक तो प्रशिक्षण तब दिया जाता है जबकि वह सरकारी सेवा मे प्रवेश करता है । यह प्रशिक्षण उसको ऐसे ज्ञान से सुसज्जित करता है जो उस पद के कर्तव्यो को सम्पन्न करने की दृष्टि से आवश्यक होता है जिस पर कि उसकी नियुक्ति की जाती है । इसके पश्चात् भी समय-समय पर उसको प्रशिक्षण दिया जाता है । इस प्रशिक्षण का उद्देश्य उसके ज्ञान को फिर से तरो-ताजा करना, उसको नये-नये विकासो के सम्पर्क मे लाना तथा उसके मस्तिष्क को सक्रिय (Active) रखना है । इस प्रवेशोत्तर (Post-entry) प्रशिक्षण के लिए पर्याप्त व्यवस्थाए की जानी चाहिए । पदाधिकारियो के लिए समय-समय पर नवीनीकरण पाठ्यक्रमो (Refresher courses) की व्यवस्था की जानी चाहिए जिससे कि वे प्रशासन तथा आयोजन (Planning) की नवीनतम विधियो एव तकनीको से परिचित हो सकें ।

भारत मे प्रशिक्षण कार्यक्रम मे कुछ नवीन परिवर्तन[1]
(Recent Developments in Training Programme in India)

अगस्त १९५९ मे दिल्ली के मेटकॉफ हाउस मे स्थित आई० ए० एस० प्रशिक्षण विद्यालय को उन्मूलित कर दिया गया तथा मसूरी मे प्रशासन की एक राष्ट्रीय अकादमी (National Academy Administration) की स्थापना की गई जिसका उद्देश्य निम्न प्रकार के प्रशिक्षण सचालित करना निश्चित किया गया

(अ) अखिल भारतीय तथा प्रथम श्रेणी की केन्द्रीय सेवाओ के लिए पाँच महीने का एक समान आधारभूत पाठ्यक्रम',

(ब) आई० ए० एस० के प्रत्यक्ष रूप से भर्ती किये गये प्रशिक्षणार्थियो के लिए सात महीने का "व्यावसायिक प्रशिक्षण" (Professional Training) ,

(स) तीन-तीन महीने की अवधि के दो "रिफ्रेशर रिओरिएण्टेशन कोर्स" उन प्रत्यक्ष रूप से भर्ती किये गये आई० ए० एस० अधिकारियो के लिए जिन्हे ६ से १० साल का सेवा-अनुभव हो तो उन आई० ए० एस० अधिकारियो के लिए जिन्हे राज्यीय सेवाओ (State services) से उन्नत (Promote) किया गया हो , तथा

(द) वरिष्ठ (Senior) अधिकारियो के लिए अल्पावधि के कोर्स, विचार-गोष्ठियाँ (Seminars) तथा सम्मेलन ।

अखिल भारतीय तथा प्रथम श्रेणी की केन्द्रीय सेवाओ (गैर-प्राविधिक (Non-technical), जैसे पोस्टल सेवा, इन्कम टैक्स सेवा, ऑडिट एण्ड एकाउन्ट्स

1 For National Academy of Administration also refer to The Indian Journal of Public Administration, New Delhi, Vol V No 4, October—December, 1959 and Vol VI No 1, January—March, 1960

सेवा, कस्टम्स सेवा, एक्साइज सेवा, डिफेन्स तथा रेलवे सेवाओ के लिए एक समान आधारभूत पाठ्यक्रम द्वारा प्रशिक्षण का उद्देश्य उपरोक्त विभिन्न सेवाओ के नवीन सदस्यो मे यह भावना पैदा करना है कि वे अन्तिम रूप से एक ही सार्वजनिक सेवा के सदस्य हैं तथा उनमे एक व्यापक, समान दृष्टिकोण को जन्म देना है। इस कोर्स के फलस्वरूप अकादमी छोडने के बाद भी प्रशिक्षणार्थियो मे पारस्परिक सद्भावना बनी रहती है। इस कोर्स मे प्रशिक्षणार्थियो को राज्य के सामाजिक तथा राजनीतिक दर्शन एव विकासोन्मुख प्रशासन की समस्याओ से अवगत कराया जाता है। इस प्रशिक्षण की पृष्ठभूमि मे यह विचार काम कर रहा है कि भारत की सभी उच्च सिविल सेवाओ के सदस्यो को उस सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक ढाँचे से परिचित होना चाहिए जिसके दायरे मे उन्हे काम करना है।

पाँच मास की अवधि के इस आधारभूत पाठ्यक्रम मे प्रशिक्षण प्राप्त करने के बाद आई० ए० एस० को छोडकर बाकी सभी सेवाओ के सदस्य अपनी-अपनी सेवा के प्रशिक्षण विद्यालयो मे जाते है। आई० ए० एस० के प्रशिक्षणार्थी अकादमी मे सात महीने और रहकर अपने प्रशिक्षण का "व्यावसायिक" भाग खत्म करते है। इस अवधि मे वे लोक-प्रशासन, जिला प्रशासन तथा फौजदारी कानून इत्यादि का विस्तृत अध्ययन करते हैं। इन प्रशिक्षणार्थियो को ३—४ सप्ताह के लिए सैनिक केन्द्रीय घुड-सवारी तथा शस्त्रास्त्र प्रयोग की साधारण ट्रेनिंग भी दी जाती है।

सघीय लोक सेवा आयोग (U P S C) इन प्रशिक्षणार्थियो की एक अन्तिम परीक्षा लेता है। यह परीक्षा प्रशिक्षणार्थियो के अकादमी-प्रवास के अन्तिम दिनो मे ली जाती है। प्रशिक्षणार्थी का अन्तिम स्थान प्रतियोगी परीक्षा के फल, अकादमी मे उसके कार्य तथा अन्तिम परीक्षा के फल के आधार पर निश्चित किया जाता है। आई० ए० एस० प्रशिक्षणार्थियो की "प्रोबेशन" अवधि दो वर्ष होती है। अपने राज्य मे एक वर्ष काम कर चुकने तथा इसी प्रकार अन्य व्यावहारिक कार्यो मे उसकी योग्यता परखने के बाद उसकी नियुक्ति 'पक्की' (Confirmed) की जाती है।

एक आई० ए० एस० प्रशिक्षणार्थी को १० से २० मास का 'काम-पर' (On-the-Job) प्रशिक्षण दिया जाता है। इस प्रशिक्षण मे निम्न विशेषताये सम्मिलित होती हैं

(अ) राज्य के सचिवालय मे एक अल्पावधि के लिए कार्य,

(ब) कलक्टरो के दफ्तर मे कार्य,

(स) कोष (Treasury) तथा लेखो (Accounts) सम्बन्धी कार्य,

(द) 'सेटिलमेण्ट' तथा भूमि सम्बन्धी कागजात की जानकारी,

(ड) पुलिस स्टेशनो का निरीक्षण तथा पुलिस कार्यालयो मे कार्य,

(ढ) कृषि, सहकारिता, पचायती राज, सामुदायिक विकास, राष्ट्रीय विस्तार, सेवा तथा सिचाई जैसे विकास सम्बन्धी विभागो मे कार्य।

(क) किसी सब-डिविजनल कार्यालय मे कार्य , तथा
(ख) न्यायाधिकारी का तथा इसी प्रकार का अन्य न्यायिक कार्य ।

व्यावहारिक प्रशिक्षण पूरा करने के बाद प्रशिक्षणार्थी की राज्य, जिला या सब-डिवीजन स्तर पर कई छोटे-छोटे पदो पर नियुक्ति की जाती है । लम्बे अनुभव के बाद उसे किसी जिले का स्वतन्त्र नियन्त्रण सौंपा जाता है । इन प्रशिक्षणार्थियो के प्रशिक्षण कार्यक्रम का विवरण नीचे प्रस्तुत है ।

प्रशासन की राष्ट्रीय अकादमी मे तथा तदोपरान्त (At the National Academy of Administration and After)

(अ) आधारभूत पाठ्यक्रम (Foundational Course) —५ मास ।
(ब) सैनिक प्रशिक्षण (Army Attachment) —१ मास ।
(स) सैनिक प्रशिक्षण (Cross country visits or Bharat Darshan) —१½ मास ।
(द) दिल्ली यात्रा (महत्वपूर्ण व्यक्तियो से भेंट के लिए) तथा केन्द्रीय पुलिस प्रशिक्षण महाविद्यालय की यात्रा —१५ दिवस ।
(ड) अकादमी मे अध्ययन —४ मास ।
(ढ) व्यावहारिक प्रशिक्षण —१८ मास ।
(क) किसी सब-डिवीजन का कार्यभार —१८–२४ मास ।
(ख) राज्य सरकार का अवर सचिव तथा किसी विभागाध्यक्ष का सहायक (Under Secretary to the State Government and deputy to a head of Department)—१८–२४ मास ।
(ग) किसी जिले का कार्यभार—सेवा के छटे वर्ष के अन्तिम दिनो मे या सातवें वर्ष के प्रारम्भ मे ।

आई० ए० एस० के प्रशिक्षणार्थियो के राज्यो मे प्रशिक्षण कार्यक्रम मे श्री वी० टी० कृष्णमाचारी ने निम्न परिवर्तन करने के सुझाव दिये हैं ।

(अ) प्रशिक्षण की अवधि १८ मास निश्चित करदी जानी चाहिए जिससे सब विषय पूरे किये जा सकें ।

(ब) कार्य की उन शाखाओ (अ) जिनके विषय मे ज्ञान सम्बन्धित पदो पर रहकर तथा वास्तविक रूप मे कार्य करके प्राप्त किया जा सकता है तथा (ब) जिनके विषय मे ज्ञान वरिष्ठ अधिकारियो के साथ रहकर प्राप्त किया जा सकता है, मे स्पष्ट भिन्नता की जानी चाहिए । इन भिन्न कार्य-शाखाओं का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रशिक्षणार्थी को पर्याप्त समय तक सम्बन्धित कार्यालयो मे रहने देना चाहिए । दूसरे प्रकार के कार्य का ज्ञान वरिष्ठ अधिकारियो की देख-रेख मे तथा उनके साथ कार्य करके सरलता से प्राप्त किया जा सकता है ।

(स) आई० ए० एस० के प्रशिक्षणार्थियो को प्रशिक्षण के दौरान 'केस कार्य' (Case work) भी सम्पन्न करना चाहिए। इस प्रकार का कार्य करके प्रशिक्षणार्थी कानून, शान्ति व व्यवस्था विषयक समस्याओ से अच्छी प्रकार परिचित हो सकता है।

(द) विभागीय परीक्षाओ का ढांचा उचित रूप से परिवर्तित करना चाहिए—प्रशासन मे हाल ही मे हुए परिवर्तनो, विशेपकर सामुदायिक विकास आन्दोलन के विस्तार के प्रकाश मे।

(ढ) सावधानी से चुने हुए जिलाधीशो की देख-रेख मे ही प्रशिक्षणार्थियो को व्यावहारिक प्रशिक्षण देना चाहिए तथा जिलाधीशो को उनके कार्य एव उनकी सामान्य योग्यता के विषय मे समय-समय पर गोपनीय प्रतिवेदन ऊपर भेजने चाहियें।[1]

---

1 V T Krishnamachari *Report on Indian and State Administration*, Government of India, Planning Commission, New Delhi, August, 1962, pages 17—18 Also refer to Leo M Snowiss 'The Education and Role of the Superior Civil Service in India' The Indian Journal of Public Administration, New Delhi, Jonuary—March, 1961, Vol VII, No 1, pages 6—25, A. J Platt Some Problems of Training in the British Civil Service, I J P A, New Delhi, April—June, 1959, Vol V, No 2, pages 174—185, I J P A, New Delhi, October—December, 1959, Vol V, No 4, pages 447—48, Gopeshwar Nath, The Secretarial Training School, I J P A., New Delhi, April—June, 1961, Vol VII, No 2, pages 170—180, N K Bhojwani, Training of Public Servants in a Developing Economy, I J P A, New Delhi, October—December, 1961, Vol VII No 4, pages 447—473, O G Stahl, *op*, *cit*, Chapter 14, Staff Development and Training, pages 335—380, Felix A Nigro, *op cit*, Chapters 7, 8, pages 226—293, Peter du Sautoy, *op cit*, Chapter 4, pages 45—54, E N. Gladden, *op cit*, Chapter, Fitting the Official to the Job, pages 83—95

२०

पदोन्नति
(Promotion)

कोई भी सरकारी कार्मिक व्यवस्था (Public personnel system) उस समय तक कार्यकुशल नही रह सकती जब तक कि वह कर्मचारियो को अधिकाधिक ऊंचा उठने के यथेष्ट अवसर न प्रदान करे। कर्मचारियो को कुशल (Efficient) बनाये रखने के लिए कुछ प्रेरणाओ (Incentives) की आवश्यकता होती है और एक कर्मचारी के लिए सबसे बडी प्रेरणा एक पद से दूसरे उच्च पद पर उसकी पदोन्नति होना है। कर्मचारियो को तथा साथ ही साथ, सम्पूर्ण सगठन को कुशल बनाये रखने के लिये एक सामान्य पदोन्नति नीति का होना आवश्यक है।

पदोन्नति का अर्थ व महत्व
(Meaning and Importance of Promotion) .

यह बात अच्छी प्रकार समझ लेनी चाहिए कि पदोन्नति से तात्पर्य कर्मचारी के वेतन की वार्षिक वृद्धि से नही है। प्रत्येक कर्मचारी मूल वेतन (Basic salary) पर नियुक्त किया जाता है, और जब तक कि वह अपने वेतन-क्रम (*Pay scale*) की सर्वोच्च सीमा पर नही पहुँच जाता जब तक उसे वार्षिक वेतनावृद्धि (Annual increment) मिलती रहती है। यह वार्षिक वेतन-वृद्धि या तो स्वय चालित (Automatic) हो सकती है अथवा सप्रतिबन्ध (Conditional), परन्तु किसी भी दशा मे इसे पदोन्नति नही कहा जा सकता। वास्तविक पदोन्नति से तात्पर्य है, उच्चतर पदक्रम (Higher grade) पर पहुँचना। **'कर्त्तव्यो तथा उत्तरदायित्वो मे परिवर्तन होना पदोन्नति प्रक्रिया का एक अनिवार्य लक्षण है।'** पदोन्नति से तात्पर्य है एक निम्न श्रेणी से उच्च श्रेणी के पद पर उन्नति होना और उसके साथ ही साथ कर्त्तव्यो व उत्तरदायित्वो मे भी परिवर्तन होना। यदि एक प्रवक्ता (Lecturer) को किसी कालिज मे विभागाध्यक्ष (Head of the Department) नियुक्त किया जाता है तो इसे पदोन्नति कहा जायेगा क्योकि एक प्रवक्ता उच्चतर श्रेणी के पद पर पहुँच गया और साथ ही साथ, उसके कर्त्तव्यो एव उत्तरदायित्वो मे भी परिवर्तन हो गया। यदि एक विभागाध्यक्ष को कालिज के प्रिंसिपल के पद पर नियुक्त किया जाय तो इसे पदोन्नति कहा जायेगा। जब एक कर्मचारी एक श्रेणी से दूसरी उच्चतर श्रेणी के पद पर पहुचता है और साथ ही साथ उसके कर्त्तव्यो एव उत्तरदायित्वो मे भी परिवर्तन होता है तब इसे पदोन्नति कहा जाता है। जब एक कर्मचारी को

पदोन्नति होती है तो उसके परिणामस्वरूप उसके वेतन मे भी वृद्धि होनी है। परन्तु केवल वेतन मे वृद्धि होना ही पदोन्नति नही है। वेतन मे वृद्धि होना तो पदोन्नति का एक सहायक अग है, पदोन्नति का वास्तविक अथवा मुख्य अग (Real part) है कर्मचारी की पदस्थिति (Class status) जिसके कारण कि उसके कर्त्तव्यो व उत्तर-दायित्वो मे परिवर्तन होता है।

कर्मचारियो की कुशलता के लिए एक सुविकसित पदोन्नति नीति का होना अत्यन्त आवश्यक है। पदोन्नति एक ऐसी सतत प्रेरणा है जो कि कर्मचारी को सदा कार्य-कुशल बनाये रखती है। पदोन्नति की आशा व्यक्ति की अपने कार्य मे रुचि बनाये रखने के लिए पर्याप्त है। पदोन्नति नीति के लाभ इस प्रकार है —

(१) यह कर्मचारी-वर्ग को कुशल बनाये रखती है।

(२) यह कुशल सेवा के लिये पुरस्कार की गारन्टी करती है।

(३) भर्ती के समय योग्य व्यक्ति सेवा की ओर आकर्षित होते है क्योकि वे जानते हैं कि सेवा मे उन्नति करने के अवसर वर्तमान है।

(४) नियोक्ता (Employer) के दृष्टिकोण मे भी पदोन्नति की नीति अत्यन्त लाभदायक होती है। वह ऊचे तथा उत्तरदायित्व वाले पदो को उन योग्य एव अनुभवी व्यक्तियो से भर देता है जो कि पहले से ही सेवा मे वर्तमान होते है। इस प्रकार नियोक्ता अपने कर्मचारियो के अनुभव का पूरा-पूरा लाभ उठाता है।

पदोन्नति के अभाव मे, महत्वकाक्षी, बुद्धिमान तथा योग्य व्यक्ति अपने पद पर बने नही रहते। अनेको योग्य व्यक्ति त्याग-पत्र (Resignations) दे देते है जिसके परिणामस्वरूप विभाग (Department) मे अकुशल तथा अनैतिकता उत्पन्न हो जाती है। कर्मचारी असन्तुष्ट रहते है जिससे उनके मनोबल (Morale) मे सामान्य कमी हो जाती है। पदोन्नति के अभाव मे महत्वाकाक्षी तथा योग्य व्यक्ति लोक सेवा मे प्रवेश नही करते। एक सुविकसित पदोन्नति योजना के अभाव मे उच्च स्तर की व्यक्तिगत तथा वर्गीय कार्य-कुशलता बनाये रखना बडा कठिन है। कर्मचारियो को सन्तुष्ट, अनुशासित (Disciplined) तथा कुशल बनाये रखने के लिए पदोन्नति अत्यन्त आवश्यक है। पदोन्नति एक ऐसी प्रेरणा है जो कि सभी के लिए मूल्यवान है और इसका उपयोग करके असाधारण तथा अद्वितीय शक्तिया जाग्रत की जाती हैं और उनको सभी कर्मचारियो के लिए लाभदायक बनाया जाता है।[1]

सरकारी कर्मचारियो की कुशलता के लिए पदोन्नति अत्यन्त आवश्यक है परन्तु केवल योग्य तथा उपयुक्त व्यक्तियो की ही पदोन्नति की जानी चाहिए। पदोन्नति की एक गलत पद्धति सम्पूर्ण सगठन को ही आचार-भ्रष्ट कर देती है। समता, न्याय तथा सबके साथ समान व्यवहार किसी पदोन्नति व्यवस्था के सिद्धात होने चाहिए। पदोन्नति नीति का मार्ग-दर्शन पृथक्-पृथक् कर्मचारियो के विशिष्ट

1 Also refer to—Promotion Principles and practices, Civil Service Assembly Chicago P 10 Mr Mayers, *The Federal Service*, P 137, Arthur W Proctor, *Principles of Personnel Administration*, P 175

स्वार्थों की दृष्टि से नही किया जाना चाहिए। पदोन्नति की नीति का मार्ग-दर्शन तो सदा ही लोक-सेवाओ के सर्वोच्च हितो को सामने रखकर किया जाना चाहिये।

पदोन्नति के लिए पात्रता का क्षेत्र
(Area of Eligibility for Promotion)

पदोन्नति से सम्बन्धित एक अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रश्न इस बात का निर्धारण करता है कि पदोन्नति के लिए कर्मचारी की पात्रता का क्षेत्र क्या हो ? पदोन्नति के लिए पात्रता के क्षेत्र का निर्धारण किस प्रकार किया जाए ? (१) क्या पदोन्नति केवल उन्ही व्यक्तियो तक सीमित रहनी चाहिए जो कि उस सेवा मे, जिसमे कि भरे जाने वाले उस पद का वर्गीकरण किया गया है, उस पद के नीचे के दूसरे पद-स्थिति (Rank) के पदो पर आसीन हो ? (२) क्या पदोन्नति की पात्रता केवल उन कर्मचारियो तक ही सीमित रहनी चाहिये जो कि उस सेवा मे निरन्तर पदो (Lower positions) पर स्थित हो ? (३) क्या यह उस सगठनात्मक इकाई (Organisational of unit) के कर्मचारियो तक ही सीमित रहनी चाहिए जिसमे कि वह स्थान रिक्त हुआ हो ? (४) क्य। इसको उस ब्यूरो (Bureau) के कर्मचारियो तक सीमित रखा जाना चाहिए जिसका कि वह सगठनात्मक इकाई एक अग है ? (५) क्या उसको केवल उस विभाग (Department) के कर्मचारियो तक सीमित रखा जाना चाहिए जिसमे कि वह ब्यूरो स्थित है अथवा इसकी पात्रता का विस्तार सम्पूर्ण सरकारी सेवा के कर्मचारियो तक कर दिया जाना चाहिये ?

पदोन्नति के पात्रता के क्षेत्र पर एक सगठनात्मक प्रतिवन्ध लगाया जाता है। पदोन्नतियाँ साधारणत एक ही ब्यूरो अथवा विभाग के अन्तर्गत की जाती हैं। अन्त-विभागीय पदोन्नतियो का समर्थन नही किया जाता। पदोन्नति की पात्रता के क्षेत्र को सकुचित तथा सीमित कर देने का लाभ यह है कि पदोन्नति की रेखायें (Lines) स्थिर तथा निश्चित हो जाती है। परन्तु इससे हानि यह होती है कि प्रतियोगिता की सीमित प्रकृति के कारण योग्य तथा सक्षम व्यक्ति, यह हो सकता है कि सेवा मे न आ पायें। अत पदोन्नति की पात्रता के क्षेत्र का विस्तार किया जाना चाहिए। विभागीय प्रतिवन्धो को दूर करके पात्रता के क्षेत्र को विस्तृत बनाया जाना चाहिए और प्रत्येक व्यक्ति को यह आज्ञा होनी चाहिए कि वह पदोन्नति वाले पदो के लिए प्रतियोगिता कर सके। इसका परिणाम यह होगा कि सबसे अधिक योग्य तथा उप-युक्त व्यक्ति की ही पदोन्नति होगी।

पदोन्नति की समस्यायें
(Problems of Promotion)

पदोन्नति के प्रश्न के साथ ही कुछ कठिन समस्यायें उत्पन्न हो जाती है जोकि निम्नलिखित हैं

(१) पदोन्नति के सिद्धात अर्थात् ज्येष्ठता बनाम योग्यता।

(२) योग्यता को आंकने की विधियां—

(क) पदोन्नति परीक्षा खुली प्रतियोगिता परीक्षा (Open Competitive Examination), सीमित प्रतियोगिता परीक्षा और उत्तीर्णता परीक्षा (Pass exam)

(ख) सेवा अभिलेख (Service records) अथवा कार्य-कुशलता माप (Efficiency ratings),

(ग) विभागीय अध्यक्ष का वैयक्तिक निर्णय (Personal judgment of the Departmental Head)।

पदोन्नति के सिद्धान्त : ज्येष्ठता बनाम योग्यता
(Principles of Promotion Seniority *Versus* Merit)

पदोन्नति के सम्बन्ध मे सबसे पहला प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि पदोन्नति की व्यवस्था किन-किन सिद्धातो पर आधारित होनी चाहिए ? पदोन्नति के सिद्धातो को निर्धारण करने की आवश्यकता दो कारणो से होती है। प्रथम तो, चूंकि पदोन्नति के स्थान सीमित होते हैं अत सेवा मे वर्तमान प्रत्येक व्यक्ति की पदोन्नति नही की जा सकती। दूसरे पदोन्नति केवल योग्यता के आधार पर होनी चाहिए। कर्मचारियो की पदोन्नति करने से किसी भी प्रकार का पक्षपात नही होना चाहिए। मनमाने ढग से की जाने वाली पदोन्नतियो मे सगठन के सुगम कार्य सचालन को बडी भारी ठेस पहुँचती है। इससे कर्मचारियो मे ईर्ष्या, मतभेद व विवाद उत्पन्न होते हैं। पदोन्नति का एकमात्र आधार योग्यता ही होनी चाहिए और योग्यता को आंकने के लिए जो परीक्षायें ली जायें वे इतनी व्यक्ति निरपेक्ष (Objective) होनी चाहियें कि जिससे पदोन्नतियाँ करने मे किसी भी प्रकार का पक्षपात न किया जा सके।

ज्येष्ठता का सिद्धान्त
(Principle of seniority)

कर्मचारी पदोन्नति के आधार के रूप मे सदा ज्येष्ठता के सिद्धात का ही समर्थन करते हैं। किसी विशिष्ट पद-क्रम (Grade) मे, जिसमे से पदोन्नतियाँ की जानी है, कर्मचारी की ज्येष्ठता अथवा सेवा की अवधि पदोन्नति का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण तत्व है। इस सिद्धात से आशय यह है कि उच्चतर पद-क्रम पर किसी भी कर्मचारी की पदोन्नति इसलिए की जानी चाहिए क्योकि उसकी सेवा की अवधि अन्य कर्मचारियो की अपेक्षा अधिक है। कर्मचारियो ने किसी भी प्रकार के अन्य अथवा पक्षपात के विरुद्ध सुरक्षा के रूप मे सदा ज्येष्ठता के नियम का ही समर्थन किया है। सबसे अधिक ज्येष्ठ कर्मचारी को ही पदोन्नति का लाभ प्राप्त होना चाहिए। ज्येष्ठता के सिद्धात के समर्थन मे जो कारण प्रस्तुत किये जाते हैं वे निम्नलिखित हैं

(१) यह सिद्धात व्यक्तिनिरपेक्ष है। ज्येष्ठता एक वास्तविकता होती है जिससे इन्कार नही किया जा सकता।

(२) ज्येष्ठ (Senior) व्यक्ति अधिक अनुभवी होता है। अधिक अनुभव ही पदोन्नति के लिए एक बडी योग्यता अथवा अर्हता (Qualification) है।

(३) इस सिद्धात के अनुसार क्रमिक रूप मे प्रत्येक व्यक्ति को पदोन्नति का अवसर प्राप्त होता है। अत यह पदोन्नति का एक उचित एव न्यायपूर्ण आधार है।

(४) यदि ज्येष्ठता ही पदोन्नति का सिद्धात है तो कर्मचारियो की पदोन्नति मे राजनीतिज्ञो द्वारा किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप नही किया जा सकता ।

(५) इस सिद्धात के अनुसार चूंकि पदोन्नतिया एक न्यायोचित सिद्धात के आधार पर की जाती हैं अत कर्मचारियो का मनोबल (Morale) ऊँचा होता है ।

(६) ज्येष्ठता का सिद्धात कर्मचारियो को पदोन्नति की निश्चितता प्रदान करता है अत अधिक अच्छे व्यक्ति सरकारी नौकरियो की ओर आकर्षित होते हैं।

(७) ज्येष्ठता का सिद्धान्त स्वय-चालित पदोन्नति का नेतृत्व करता है ।

(८) कर्मचारी इस सिद्धात का समर्थन इसलिए करते हैं क्योकि यह पदोन्नति को स्वय चालित बनाता है और साथ ही, इसमे कम आयु वाले व्यक्तियो को अधिक आयु वाले व्यक्तियो के ऊपर नही रखा जाता ।

ज्येष्ठता के सिद्धात का एक बडा लाभ यह है कि यह पदोन्नतियो को किसी भी प्रकार के पक्षपात अथवा राजनैतिक हस्तक्षेप के विरुद्ध सुरक्षा प्रदान करता है ।

ज्येष्ठता के सिद्धान्त के दोष
(Defects of the Principle of seniority)

(१) इस सिद्धात मे इस बात की कोई गारन्टी नही होती कि एक ज्येष्ठ कर्मचारी हो अधिक योग्य अथवा सक्षम होगा। पदोन्नतिया तो केवल योग्यता के आधार पर ही की जानी चाहिए ।

(२) केवल ज्येष्ठता को ही पदोन्नति का आधार मानने से कर्मचारियो मे प्रतिस्पर्धा की भावना समाप्त हो जाती है अत. वे कार्य को अधिक उत्साह तथा बुद्धिमत्ता के साथ सम्पन्न नही करते।

(३) यदि पदोन्नति का आधार केवल ज्येष्ठता ही होता है तो कर्मचारी आत्मोन्नति के लिए कोई प्रयत्न नही करते।

(४) ज्येष्ठता के सिद्धात को अपनाने से अनिवार्य रूप से सर्वाधिक योग्य व्यक्तियो का ही चयन हो जाता हो, ऐसी बात नही है।

(५) मध्यम श्रेणी के उदासीन तथा कम बुद्धिमान व्यक्ति ही, जो कि युवा, योग्य तथा बुद्धिमान व्यक्तियो से प्रतियोग्यता नही कर सकते, ज्येष्ठता के सिद्धात के सबसे बडे समर्थक हैं। पुराने तथा ज्येष्ठ कर्मचारियो के लिए तो यह सिद्धात न्यायपूर्ण तथा अविघ्नकारक है, किन्तु सम्पूर्ण रूप मे सगठन के लिए यह खतरनाक होता है क्योकि यह हो सकता है कि ज्येष्ठ कर्मचारी कुशल तथा बुद्धिमान न हो। यदि कोई व्यक्ति सौभाग्यवश अन्य व्यक्तियो के मुकाबले ससार मे पहले आ गया है। तो इसका अर्थ यह तो नही है कि वह अपने साथ योग्यता तथा बुद्धिमत्ता भी लाया है। केवल ज्येष्ठता ही पदोन्नति का एक खतरनाक सिद्धात है ।

फिफनर ने इस सम्बन्ध मे ठीक कहा है कि केवल ज्येष्ठता को ही पदोन्नति का आधार बनाने का परिणाम यह होगा कि उच्च पद अयोग्य तथा असमर्थ व्यक्तियो से भरने लगेंगे। इससे कर्मचारियो की महत्वाकाक्षा नष्ट हो जायेगी और वे प्रेरणा यें समाप्त हो जायेंगी जिनके द्वारा कर्मचारियो मे व्यक्तित्व, साहस, आत्म-निर्भरता तथा प्रगतिशील दृष्टिकोण का विकास होता है। इससे कर्मचारियो मे आत्म-सतुष्टि तथा उदासीनता के साथ कार्य को सम्पन्न करने की भावना उत्पन्न हो जायेगी।

कर्मचारियो का बहुमत, जो कि योग्यतानुसार चयन के लिए कभी भी उत्सुक नही होता, ज्येष्ठता के सिद्धात को अपना उत्साहपूर्ण समर्थन प्रदान करता है क्योकि यह सिद्धात सभी व्यक्तियो के साथ समानता का व्यवहार करता प्रतीत होता है। ई० एन० ग्लेडन का कहना है कि ज्येष्ठता का सिद्धान्त निम्नलिखित गलत मान्यताओ (Assumptions) पर आधारित है —

(१) इसमे यह माना जाता है कि एक पद-क्रम (Grade) के सभी सदस्य पदोन्नति के लिए उपयुक्त होते है।

(२) इसमे यह माना जाता है कि ज्येष्ठता सूची न्यूनाधिक रूप मे कर्मचारी-वर्ग की आयु के अनुसार ही इस प्रकार क्रमबद्ध की जाती है जिससे कि क्रमानुसार प्रत्येक व्यक्ति उस उच्च पद पर सेवा करने का अवसर प्राप्त कर सकेगा। (यह माना जाता है कि ज्येष्ठता सूची सभी को अवसर प्रदान करेगी। परन्तु ऐसा होता नही)।

(३) इसमे यह मान लिया जाता है कि निम्न पदो की अपेक्षा उच्च पदो का प्रतिशत ऊचा होता है अत प्रत्येक को सेवा का अवसर प्राप्त होगा।

(४) इसमे यह मान लिया जाता है कि रिक्त स्थान काफी अधिक मात्रा मे उत्पन्न होते हैं।

"व्यवहार मे ऐसी आदर्श दशाओ का पाया जाना पूर्णतया एक अनहोनी सी बात होती है। एक पदक्रम के सभी व्यक्ति पदोन्नति के लिए उपयुक्त नही होते, पदोन्नतियाँ सामान्यत थोडी होती है ।"[1]

इस वाद-विवाद के निष्कर्ष के रूप मे यह कहा जा सकता है कि पदोन्नति से तात्पर्य कर्त्तव्यो एव उत्तरदायित्वो के परिवर्तन से है। पदोन्नति ऐसे अपेक्षाकृत बडे उत्तरदायित्वो से सम्बद्ध होती है जो कि किसी भी व्यक्ति को केवल इस कारण ही नही सौंपे जा सकते क्योकि वह ज्येष्ठ (Senior) है। उच्चतर प्रशासकीय पदो पर पदोन्नति के लिए एकमात्र ज्येष्ठता के सिद्धात को स्वीकार नही किया जाता। उच्च पदो के लिए योग्यता (Merit) ही एकमात्र विचारणीय विषय होना चाहिए।

निम्न श्रेणियो के कुछ नैत्यक किस्म के पदो के लिए, पदोन्नति के आधार के रूप मे ज्येष्ठता को स्वीकार किया जा सकता है। उच्चतर प्रशासकीय पदो के

1 Dr E N Gladden *The Civil Service, its Problems and Future*, P 88

लिये तो योग्यता व गुणो को ही एकमात्र सिद्धात माना जाना चाहिए। जब ज्येष्ठता को पदोन्नति का एकमात्र आधार बनाया जाता है तो इससे योग्यता व गुणो से युक्त युवा पुरुषो मे असन्तोष उत्पन्न होता है जिसके फलस्वरूप सगठन को हानि पहुँचती है। परन्तु आयु तथा ज्येष्ठता की परम्परागत मान्यता का अभी भी बराबर सम्मान किया जाता है और व्यवहार मे कठिनाई से ही ज्येष्ठता की उपेक्षा की जाती है। इसी कारण टोमलिन आयोग (Tomlin Commission) को यह कहना पडा कि "सेवा के सम्बन्ध मे सामान्यत ज्येष्ठता के तत्व के कम मूल्याकन की सम्भावना नही है •।"[1]

योग्यता का सिद्धान्त
(Principle of Merit)

पदोन्नति के लिए योग्यता को जाँचने की रीतियाँ
(Methods of testing merit for Promotion)

यदि योग्यता के सिद्धान्त को पदोन्नति का आधार बनाया जाता है तो प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि योग्यता तथा गुणो की जांच किस प्रकार की जाये ? योग्यता की जाँच करने के लिए कुछ व्यक्ति-निरपेक्ष अथवा वस्तुनिष्ठ परीक्षाओ (Objective tests) की व्यवस्था होनी चाहिए।

(१) प्रत्याशी (Candidate) की योग्यता की जाँच करने की प्रथम व्यक्ति-निरपेक्ष रीति है पदोन्नति परीक्षाये (Promotional examinations)। पदोन्नति परीक्षा खुली प्रतियोगिता, सीमित प्रतियोगिता अथवा केवल उत्तीर्णता परीक्षा हो सकती है। यह परीक्षा साक्षात्कार अथवा सदर्शन (Interview) से युक्त भी हो सकती है और उससे रहित भी।

(२) योग्यता की जाँच की दूसरी रीति सेवा अभिलेखो (Service records) अथवा कार्य-कुशलता मापो (Efficiency ratings) की है।

(३) पदोन्नति के लिए प्रत्याशी की योग्यता को जाँचने की तीसरी रीति है विभागाध्यक्ष अथवा पदोन्नति मण्डल (Promotion board) का निर्णय।

इस प्रकार, पदोन्नति परीक्षाओ के सम्बन्ध मे भारी विवाद पाया जाता है। प्रश्न यह है कि क्या पदोन्नति का आधार प्रतियोगिता परीक्षाओ को बनाया जाए ? यदि ऐसा है तो इन परीक्षाओ को लेने का कार्य किसे सौंपा जाए ? क्या पदोन्नति के लिए चुनाव करने का कार्य पूर्णतया विभागीय अध्यक्षो (Departmental heads) पर नही छोडा जा सकता ? सेवा अथवा कार्य-कुशलता-मापो के द्वारा ही कर्मचारी की प्रगति का अकन क्यो न कर लिया जाए ? अब हम प्रत्याशियो की योग्यता को जाँचने की इन रीतियो पर क्रमश विचार करते है।

(१) पदोन्नति के लिए परीक्षाएं (Examinations for Promotion)

योग्यता को जांचने की प्रथम व्यक्ति-निरपेक्ष रीति पदोन्नति परीक्षा की है। पदोन्नति परीक्षाए तीन प्रकार की होती हैं।

(क) खुली प्रतियोगिता परीक्षा (Open Competitive Examination)—इस व्यवस्था के अन्तर्गत, पदोन्नति के रिक्त-स्थान के लिए कोई भी व्यक्ति, चाहे वह सेवा मे है या नही, प्रतियोगिता कर सकता है। इस स्थिति मे सेवा मे बाहर के व्यक्ति भी पदोन्नति के रिक्त-स्थानो के लिए प्रतियोगिता कर सकते है। बाहर के व्यक्तियो को रिक्त-पद के लिए प्रतियोगिता करने की खुली छूट देने की पद्धति के प्रति वे व्यक्ति असन्तोष प्रकट करते हैं जोकि पहले से ही सेवा मे वर्तमान होते हैं। तर्क यह दिया जाता है कि पदोन्नति का रिक्त-स्थान केवल उन्ही के लिए होता है जोकि पहले से ही सेवा मे होते हैं। अत केवल उनको ही उस पद के लिए प्रतियोगिता करने की आज्ञा दी जानी चाहिए।

(ख) सीमित प्रतियोगिता परीक्षा (Limited Competitive Examination)—पदोन्नति परीक्षा की दूसरी किस्म सीमित प्रतियोगिता की है। यह प्रतियोगिता उन व्यक्तियो की होती है जोकि पहले से सेवा मे वर्तमान होते हैं। 'खुली पद्धति' (Open system) के विपरीत, जिसमे कि प्रत्येक व्यक्ति प्रतियोगिता कर सकता है, इससे 'बन्द अथवा सकुचित पद्धति' (Closed system) कहा जाता है।

(ग) उत्तीर्णता परीक्षा (Pass Examination)—इस व्यवस्था के अन्तर्गत, प्रत्याशी को परीक्षा केवल उत्तीर्णमात्र करनी होती है और उसके द्वारा अपनी न्यूनतम योग्यताओ का प्रमाण देना होता है। भारत सरकार मे, प्रतिवर्ष ऐसी अनेक पदोन्नति परीक्षायें आयोजित की जाती हैं। इनके द्वारा योग्य प्रत्याशियो की एक सूची तैयार कर ली जाती है और फिर स्थान रिक्त होने पर इस सूची के आधार पर उनकी पदोन्नति कर दी जाती है।

परीक्षा पद्धति की आलोचना
(Criticism of Examination Method)

यह समझा जाता है कि परीक्षा पक्षपात (Favouritism) भ्रष्टाचार (Corruption) तथा मनमानी पदोन्नतियो को समाप्त करती है। यह ज्येष्ठता के सिद्धात के भी विरुद्ध पडती है। परन्तु लिखित परीक्षा के द्वारा कर्मचारी के व्यक्तित्व (Personality) की जाँच नही की जा सकती। यह हो सकता है कि एक बौद्धिक दृष्टि से श्रेष्ठ व्यक्ति मे विभाग का प्रबन्ध अथवा पर्यवेक्षण करने की योग्यता न हो। परीक्षा तो कुछ तथ्यो (Facts) को याद करके तथा रट करके भी पास की जा सकती है परन्तु उच्च प्रशासकीय पदो के लिए नेतृत्व के अनेक ऐसे गुणो की तथा पहल-कदमी (Initiative) की आवश्यकता होती है जिनकी जाँच लिखित परीक्षा के द्वारा नही की जा सकती। इस पद्धति के कुछ आलोचको के अनुसार, लिखित परीक्षा प्रत्याशी के व्यक्तित्व की जांच नहीं कर सकती। अत इस बात की क्या गारन्टी है कि उपयुक्त तथा योग्यता व गुणो से सम्पन्न व्यक्तियो की ही पदोन्नति की जायेगी।

इसमे कोई सन्देह नही कि सयुक्त राज्य अमेरिका के कुछ सघीय विभागो (Federal Departments) मे पदोन्नति परीक्षाओ की व्यवस्था की जाती है परन्तु योग्यता की जाँच करने की यह रीति ससार के अन्य देशो मे प्रचलित नही हुई है। इगलैंड मे, (सीमा शुल्क सेवा को छोडकर) अधिकाशत इन पदोन्नति परीक्षाओ को कर्मचारी के सामान्य सरकारी कार्य मे एक हस्तक्षेप समझा जाता है। फिर, यदि प्रारम्भिक अथवा मौलिक परीक्षा कठिन होती है तो एक अनुपूरक (Supplementary) परीक्षा की आवश्यकता तो एक अनावश्यक भार के ही सदृश होती है। फ्रास मे, पदोन्नति के लिए परीक्षाओ की रीति को अनुपयुक्त समझा जाता है क्योकि विचार यह है कि सरकारी पदाधिकारियो के लिए पहल-कदमी, विवेचन-शक्ति (Judgement) तथा चातुर्य (Tact) की अपेक्षा विस्तृत सैद्धान्तिक ज्ञान की कम आवश्यकता होती है और इसी के आधार पर बडी आयु के कर्मचारियो की परीक्षा न लेने के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है।

परीक्षा पद्धति मे पाये जाने वाले इन दोषो के कारण ही योग्यता के निर्धारण की वैकल्पिक रीतियो की खोज की गई। अत सामान्य प्रवृत्ति 'औपचारिक विवरण रखने की पद्धति' को ही अपनाने की ओर है जिसके द्वारा कि प्रत्येक पात्र-अधिकारी (Eligible officer) के गुणो का एक प्रमाणिक आधार पर नियमित मूल्याकन कर लिया जाता है।

(२) सेवा अभिलेख अथवा कार्य-कुशलता माप

(Service records or Efficiency Ratings)

इस रीति के अनुसार, प्रत्येक कर्मचारी की सेवा का एक अभिलेख अथवा विवरण रखा जाता है और वरिष्ठ अधिकारियो (Superiors) द्वारा इस सेवा-अभिलेख अथवा सेवा-विवरण के आधार पर कर्मचारी की कार्य सम्पन्न करने की क्षमता का मूल्याकन कर लिया जाता है। इन सेवा-अभिलेखो के आधार पर कर्मचारियो की सापेक्षिक योग्यता (Relative merit) का निर्धारण कर लिया जाता है। ब्रिटेन मे, सन् १९२१ से ७०० पौंड वार्षिक से कम वेतन पाने वाले प्रत्येक कर्मचारी की सेवा का वार्षिक विवरण रखा जाता है। इस विवरण मे मानवीय गुणो से सम्बन्धित निम्नलिखित बातो का उल्लेख किया जाता है शाखा (Branch) तथा विभाग (Department) का ज्ञान, व्यक्तित्व एव चरि Personality and force of character), विवेचन-शक्ति (Judgment), उत्तरदायित्व ग्रहण करने की क्षमता, स्वय-प्रेरणा अथवा पहल-कदमी (Initiative), परिशुद्धता (Accuracy), बातचीत का ढग तथा व्यवहार-कौशल, कर्मचारियो का पर्यवेक्षण (Supervision) करने की क्षमता, उत्साह (Zeal) तथा पदीय आचरण (Official conduct) सम्बद्ध अधिकारी कर्मचारियो के उन गुणो की जाँच करता है और अपने निर्णय को सेवा-विवरण मे तीन श्रेणियो के अन्तर्गत लिखता है अर्थात् वह कर्मचारी पद-क्रम (Grade) के औसत से ऊपर है, औसत से नीचे है अथवा औसत (Average) पर

है। कर्मचारी के असाधारण सद्गुण अथवा दुर्गुण, सभी उस विवरण मे सम्मिलित किये जाते हैं। सन् १९३८ तक, इस सम्बन्ध मे निर्णय किया जाता था कि क्या कोई अधिकारी (क) विशिष्ट रूप मे शीघ्र पदोन्नति करने के लिए अत्यधिक उपयुक्त है, या (ख) पदोन्नति के लिए उपयुक्त है तो परन्तु असाधारण अथवा अद्वितीय रूप मे उपयुक्त नही है, अथवा (ग) वर्तमान मे पदोन्नति के लिए उपयुक्त नही है। यदि किसी अधिकारी को पदोन्नति के लिए उपयुक्त नही समझा जाता था तो इसे इस तथ्य की सूचना दे दी जाती थी। सन् १९३८ मे, अनेक वर्षो का अनुभव प्राप्त करने के पश्चात्, यह कोटिकरण (Grading) इस प्रकार कर दिया गया असाधारण रूप से सुयोग्य (Exceptionally well qualified), उच्च रूप से योग्य (Highly qualified), योग्य (Qualified), अभी तक योग्य नही (Not yet qualified)। कर्मचारियो के विभिन्न गुणो का कोटिकरण—औसत से ऊपर, औसत मे नीचे अथवा औसत से बढाकर इस प्रकार कर दिया गया उत्कृष्ट (Outstanding), बहुत श्रेष्ठ (Very good), सतोषजनक (Satisfactory), उदासीन (Indifferent), और निकृष्ट (Poor), जो कर्मचारी 'असाधारण रूप मे सुयोग्य' अथवा 'अभी तक योग्य नहीं' की कोटियो मे आते थे, उन्हे इन कोटियो मे रखे जाने के कारण बतलाये जाते थे क्योकि उनको औसत कोटि मे बहुत ऊपर का अथवा नीचे का समझा जाता था।

अमरीकियो ने कार्य-कुशलता माप को एक अत्यन्त विस्तृत क्षेत्र का कार्य बना दिया है। उन्होने कर्मचारी की कार्य-कुशलता का निर्धारण करने के लिए इसको गणितीय, स्वयचालित, विशुद्ध तथा अत्यन्त वस्तुनिष्ठ मार्ग-दर्शक (Guide) बनाने का प्रयत्न किया है। कार्य-कुशलता मापो के प्रमुख भेद इस प्रकार है (१) उत्पादन अभिलेख (Production records), (२) बिन्दु रेखीय दर मापमान (The graphic rating scale) तथा (३) व्यक्तिगत तालिका (Personality Inventory)।

(१) उत्पादन अभिलेख (Production records)—उत्पादन अभिलेख अथवा उत्पादन विवरण के आधार पर कर्मचारी की कार्य-क्षमता का निर्धारण किया जाता है। इस पद्धति का प्रयोग केवल उन्ही कर्मचारियो के कार्य के लिए किया जाता है जिनके कार्य के परिणाम की उत्पादन के आधार पर तुलना की जा सकती हो। मुद्रलेखक (Typist) आशुलिपिक (Stenographer), फाइल क्लर्क अथवा एक यन्त्रचालक (Machine operator) के कार्य के सम्बन्ध मे उत्पादन अभिलेख रखा जा सकता है। इन कर्मचारियो का काम पुनरावृत्ति प्रकृति का होता है और उनके किये हुए कार्य अथवा उत्पादन को मापा जा सकता है। उत्पादन अभिलेख को कर्मचारियो के अन्य अनेक गुणो के साथ सयुक्त किया जा सकता है जैसे कि समय-निष्ठता (Punctuality), परिश्रमशीलता तथा उपस्थिति। इन अभिलेखो की सहायता से कर्मचारी की क्षमता के सम्बन्ध मे पर्याप्त जानकारी प्राप्त की जा सकती है। परन्तु यह बात ध्यान मे रखनी आवश्यक है कि इस पद्धति का प्रयोग उन

पदाधिकारियो पर नही रखा जा सकता जोकि प्रशासकीय (Administrative) अथवा पर्यवेक्षणिक (Supervision) कार्य सम्पन्न करते हैं।

(२) **विन्दुरेखीय दर मापमान पद्धति** (The Graphic Rating Scale System)—इस पद्धति मे एक प्रपत्र (Form) का प्रयोग होता है जिसमे कुछ सेवा सम्बन्धी तत्वो का उल्लेख किया रहता है। मापक अधिकारी उन तत्वो पर निशान लगाता है जोकि उसकी सम्पत्ति मे कर्मचारी मे पाये जाते हैं और फिर उनके आधार पर कर्मचारी मे पाये जाने वाले गुणो का अकन किया जाता है। विन्दुरेखीय दर मापमान के प्रपत्र पर निम्नलिखित सेवा सम्बन्धी तत्व होते हैं (क) परिशुद्धता, (ख) पराश्रयता (Dependability), (ग) कार्य की स्वच्छता तथा क्रमबद्धता, (घ) कार्य-सम्पादन की गति, (ङ) परिश्रमशीलता, शक्ति सम्पन्नता तथा कर्तव्य-निष्ठता, (च) कार्य का ज्ञान, (छ) विवेकशक्ति, सामान्य ज्ञान तथा अनुभव से लाभ उठाने की इच्छा, (ज) व्यक्तित्व द्वारा विश्वास तथा सम्मान प्राप्त करने मे सफलता, विनयशीलता, व्यवहार-कुशलता, आवेगो अथवा भावनाओ का नियन्त्रण तथा सतुलन, (झ) नये विचारो तथा नई रीतियो का परीक्षण करने के लिए प्रस्तुत रहना तथा उसके लिए सहयोग प्राप्त करना, प्रबन्धको की आज्ञाकारिता, (ञ) पहल-कदमी (Initiative), साधनपूर्णता (Resourcefulness), कल्पनाशक्ति (inventiveness), (ट) कार्य का निष्पादन, (ठ) सगठन करने की योग्यता, सत्ता का हस्तान्तरण करने की योग्यता तथा कार्य की योजनाए बनाने की योग्यता, (ड) नेतृत्व करने की क्षमता, अधीनस्थ कर्मचारियो का सहयोग प्राप्त करने की योग्यता निर्णय करने की क्षमता, आत्मा, नियन्त्रण, व्यवहार-कुशलता, साहस, दूसरो के साथ व्यवहार मे निष्पक्षता (ढ) कर्मचारियो को सूचनाए देकर उनका सुधार तथा विकास करने, मे उनमे गुणो की वृद्धि करने मे तथा उनमे महत्वाकांक्षा जाग्रत करने मे सफलता, (ण) कार्य की कोटि (Quality) (इसका प्रयोग केवल तभी किया जाता है जबकि ठीक-ठीक तथा पर्याप्त उत्पादन अभिलेख रखे जाते है)। इस प्रकार इन तत्वो पर दिये जाने वाले अको के आधार पर कर्मचारी के गुणो का मूल्याकन किया जाता है। यदि निर्णय उसके पक्ष मे होता है तो उनकी पदोन्नति कर दी जाती है।

(३) **व्यक्तित्व तालिका पद्धति** (Personality Inventory system)—कार्य-कुशलता को मापने के लिए एक तीसरी पद्धति भी काम-मे लाई जाती है जिसे व्यक्तित्व तालिका का नाम दिया गया है। इसका स्पष्टीकरण सेंट पाल सिविल सेवा व्यूरो के भूतपूर्व मुख्य परीक्षक Mr J B Probst द्वारा आविष्कृत तथा विकसित Probst Rating scale के द्वारा किया जाता है। इस पद्धति के मुख्य लक्षण इस प्रकार हैं

(क) इस पद्धति मे सेवा से सम्बन्धित मानवीय स्वभाव के तत्वो की एक व्यापक सूची बनाई जाती है। (ख) मापक अधिकारी (Rating officer) इस सूची मे से दस से पच्चीस तक ऐसे तत्वो को छाँट लेता है जिनसे किसी कर्मचारी का

Graphic Rating Scale
REPORT OF EFFICIENCY RATING

As of BASED ON PERFORMANCE

during period from to,

(name of employee) (title of position, service, grade)

organisation

On lines below mark employee	
√ if adequate — if weak + if outstanding	1 Underline the elements which are important in the position 2 Rate only on elements pertinent to the position (a) For administrative, supervisory and planning positions, rate on elements given in italics (b) For other positions, rate on element not given in italics

1. Maintenance of equipment, tools, and instruments
2. Mechanical skill
3. Skill in the application of techniques and procedures
4. Presentability of work
5. Attention to broad phases of assignments
6. Accuracy of operation, results and judgments
7. Effectiveness in presenting ideas
8. Industry
9. Amount of work produced
10. Ability to organise work
11. Effectiveness in meeting and dealing with others
12. Co-operativeness
13. Initiative
14. Dependability
15. Physical fitness

1. *Effectiveness in planning broad programme*
2. *Effectiveness in adapting the work programme to broader and related programmes*
3. *Effectiveness in devising procedures*
4. *Effectiveness in laying out work and establishing standards*
5. *Effectiveness in directing, reviewing and checking the work of subordinates*
6. *Effectiveness in instructing, training developing subordinates*
7. *Effectiveness in promoting high working moral*
8. *Effectiveness in determining space, personnel and equipments needs*
9. *Effectiveness in setting and obtaining adherence to time limits and deadliness*
10. *Effectiveness in delegating clearly defined authority to act*

State any other element considered

(a)
(b)
(c)

Standard	Adjective Rating	Adjective Rating
1 Plus marks on all elements considered	Excellent	Rating officer
2 Plus marks on at least half the elements but no minus	very good	Revising officer
3 Check marks on a majority of elements, any minus marks over compensated by plus marks	Good	
4 Check marks on a majority and minus marks not compensated	Fair	
5 Minus marks on at least half the elements	Unsatisfactory	Signature

स्वभाव अच्छी प्रकार से व्यक्त हो जाये। (ग) यद्यपि सूची अत्यन्त व्यापक तथा विवरणात्मक (Descriptive) होती है किन्तु फिर भी विभिन्न प्रकार के कर्मचारियो के लिए विशेष प्रपत्र (Special forms) रखने की रीति अपनाई जाती है।

J B Probst ने अपने Rating Scale मे कर्मचारी के अनेक गुणो तथा अवगुणो का उल्लेख किया है जोकि निम्न प्रकार है —

(१) आलसी, (२) धीरे कार्य करने वाला, (३) तेज तथा सक्रिय, (४) कार्य के लिये अधिक आयु वाला, (५) छोटे-मोटे शारीरिक दोप वाला, (६) गम्भीर शारीरिक दोष वाला, (७) उदासीन , रुचि न लेने वाला, (८) अत्यधिक वात करने वाला, (९) अधिक स्पष्टवादी, (१०) स्वय को ही अधिक महत्व देने वाला, (११) वर्ग के रूप मे अच्छा कार्य करने वाला, (१२) वर्ग के रूप मे अच्छा कार्य न करने वाला, (१३) आलोचनाओ अथवा सुझावो से क्रोधित होने वाला, (१४) अन्य लोगो से व्यवहार करते समय विरोध करने वाला, (१५) प्राय अधिक विचारशील रहने वाला, (१६) सामान्यत प्रसन्न रहने वाला, (१७) असामान्य रूप से विनयशील, (१८) कुछ झक्की स्वभाव वाला, (१९) प्राय असन्तुष्ट रहने वाला, (२०) प्राय शिकायत करने वाला, (२१) गलत निर्णय करने वाला, (२२) अच्छे निर्णय करने वाला आदि-आदि। इन गुणो व अवगुणो के आधार पर कर्मचारी के कार्य का मूल्याकन किया जाना चाहिये और कार्य-कुशलता दर-माप का निर्माण करना चाहिए।

पदोन्नति के आधार के रूप मे कार्य-क्षमता मापो की पद्धति की विवेचना करने के पश्चात् प्रश्न यह होता है कि उनकी उपयोगिता क्या है ? यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक कार्य-कुशलता माप, चाहे वह कितना ही विस्तृत क्यो न हो, व्यक्तिनिष्ठ (Subjective) होता है। एक कर्मचारी को किन-किन गुणो की आवश्यकता होती है, इस वारे मे भी मत-विभिन्नता पाई जाती है। इस विषय पर लोगो मे काफी मतभेद हैं कि एक कर्मचारी को किन-किन गुणो से युक्त होना चाहिये। सेवा अभिलेखो (Service records) पर उच्च अधिकारियो की व्यक्तिनिष्ठ भावनाओ का प्रभाव पडता है।[1]

कार्य-कुशलता मापो की पद्धति को उपयोगी वनाने के लिए मापक अधिकारियो का प्रशिक्षण तथा पर्यवेक्षण नितान्त आवश्यक है। मापक अधिकारियो को कर्मचारियो के गुणो का मूल्याकन करने की कला मे पूर्णरूप से प्रशिक्षित (Trained) किया जाना चाहिये। यदि कर्मचारी यह अनुभव करें कि कार्य-कुशलता मापो द्वारा उनके गुणो का मूल्याकन ठीक नही हुआ है तो उन्हे सिविल सेवा आयोग के सम्मुख अपील करने का अधिकार भी दिया जाना चाहिये। सेवा-माप को पदोन्नति के लिए

1 "But a judgement ratings are subjective and not cured of the inevitable variability of human opinion by being spread out on a graphic rating scale or in an slaborate personality inventory "

अथवा किसी भी प्रकार के दण्ड के लिए एक स्वयचालित मार्ग-दर्शक (Automatic guide) नही बना लेना चाहिये। इसका प्रयोग पदोन्नति के लिए एक यान्त्रिक निर्धारक (Mechanical determinant) के सदृश नही किया जाना चाहिये। यदि कार्य-कुशलता अभिलेख को पूर्णत कर्मचारी का भाग्य-निर्णायक बना दिया गया तो लोक-सेवा के लिए उसका परिणाम बडा हानिकारक होगा। कार्य-कुशलता अभिलेखो के आधार पर, कर्मचारियो का ध्यान उनकी कमजोरियो की ओर तो आकर्षित किया जाना चाहिये, परन्तु इन अभिलेखो को पदोन्नति करने अथवा दण्ड (Punishment) देने का स्वयचालित आधार नही बनाना चाहिये।

(३) विभागाध्यक्ष का व्यक्तिगत निर्णय
(The Personal Judgment of the Head of the Department)

पदोन्नति के सम्बन्ध मे सबसे महत्वपूर्ण तत्व सम्बद्ध विभाग के उच्च पदाधिकारियो का व्यक्तिगत मत तथा निर्णय होता है और होना भी चाहिए। एक अधिकारी उस कर्मचारी के गुणो के बारे मे अच्छी प्रकार जानकारी प्राप्त कर सकता है जिसने कि उसके साथ अनेक वर्षों तक काम किया है। व्यक्तिगत सम्पर्क पर आधारित निर्णय कर्मचारी के गुणो का अकन करने वाली अन्य किसी भी पद्धति से अधिक मूल्यवान होता है। परन्तु विभागाध्यक्ष के वैयक्तिक निर्णय की महत्ता तथा उपयोगिता तीन तत्वो पर निर्भर होगी—अर्थात् श्रेष्ठ निर्णय करने की क्षमता, विभाग मे उसको कार्य करने के लिए मिलने वाली स्वतन्त्रता, और उसकी श्रेष्ठ भावना। उच्च अधिकारी की श्रेष्ठ भावना वैयक्तिक, राजनैतिक तथा विरोधी विचारो से प्रभावित हो जाती है। कर्मचारी पदोन्नति की इस प्रणाली (अर्थात् विभागाध्यक्ष के वैक्तिक निर्णय पर आधारित पदोन्नति की प्रणाली) का इसलिये विरोध करते हैं क्योकि उन्हे पदोन्नतियो मे अन्याय तथा भ्रष्टाचार का भय रहता है। उनका विचार है कि इस पद्धति मे पदोन्नतियो पक्षपात पर आधारित होती हैं। इसमे चापलूस, खुशामदी तथा हाँ मे हाँ मिलाने वाले व्यक्ति तो लाभ मे रहते हैं। और स्वतन्त्र विचार वाले गुणवान व्यक्तियो को हानि उठानी पडती है।

विभागीय पदोन्नति मण्डलो (Departmental Promotion Boards) की स्थापना करके ऊपर बताए गये दोषो को दूर किया जा सकता है। ये मण्डल विभाग के प्रमुख कर्मचारियो व अधिकारियो को मिलाकर बनाए जाने चाहियें और ज्येष्ठता तथा सेवा अभिलेखो आदि के आधार पर इन्हे पदोन्नतियो की सिफारिशे करनी चाहिए। यदि कोई कर्मचारी यह समझता है कि पदोन्नति के सम्बन्ध मे कोई बात गलत हुई है तो वह कर्मचारियो के सगठन के द्वारा विभागाध्यक्ष अथवा पदोन्नति मण्डल से उसकी अपील कर सकता है। सगठन की सामान्य कार्य-कुशलता को देखकर ही पदोन्नति मण्डलो की समर्थता एव योग्यता का पता चलेगा। सन् १९२२ के आस्ट्रेलियन लोक-सेवा अधिनियम (Australian Public Service Act) मे यह

व्यवस्था की गई थी कि सभी पदोन्नतियो को अस्थायी रूप से ही राजपत्रित (Gazetted) किया जाना चाहिये और उन पदोन्नतियो का स्थिरीकरण (Confirmation) करने से पूर्व अधिकारियो को उनके विरुद्ध अपील करने की छूट होनी चाहिये। इन अपीलो पर लोक-सेवा मण्डल (Public Service Board) द्वारा विचार किया जाता है जोकि सूक्ष्म जाँच पडताल करने के पश्चात् ही अपना निर्णय देता है।

इन सभी परीक्षाओ एव जाचो की व्यवस्था इसलिए की जाती है जिससे कि पदोन्नति की एक सुदृढ एव ठोस नीति का निर्माण किया जा सके। पदोन्नति नीति ही सफलता की कसौटी है—कर्मचारियो मे पाया जाने वाला सामान्य सतोष, उच्च मनोबल (High morale) तथा सहयोग, सेवा तथा कर्त्तव्यनिष्ठा की भावना।

सयुक्त राज्य अमेरिका में पदोन्नतियां
(Promotions in the United States of America)

सयुक्त राज्य अमेरिका मे, उच्च प्रशासकीय अधिकारी तथा विभागीय अध्यक्ष ज्येष्ठता (Seniority), परीक्षाओ तथा कार्यकुशलता अभिलेखो (Efficiency records) के आधार पर पदोन्नतिया करते हैं। यह देखा जाता है कि अमरीकियो ने कार्य-कुशलता मापो का विस्तृत उपयोग किया है। परन्तु वे 'कार्य-कुशलता माप की पद्धति' से सतुष्ट नही हैं। हूवर आयोग (Hoover Commission) का विचार था कि कार्य-कुशलता माप की पद्धति अत्यधिक उलझनपूर्ण व जटिल है। आयोग ने कर्मचारियो को पुरस्कृत करने तथा दण्ड देने—इन दोनो के ही आधार के रूप मे इसका उपयोग किये जाने की आलोचना की। आयोग ने कार्य-कुशलता माप (Efficiency rating) के स्थान पर 'योग्यता तथा सेवा अभिलेख माप' (Ability and service record ratings) का प्रस्ताव किया जो कि कार्य-कुशलता माप का ही सुधरा रूप है। अमेरिका मे सन् १९३८ के कार्यपालिका आदेश (Executive order) के अन्तर्गत, सिविल-सेवा आयोग द्वारा एक पदोन्नति योजना का निर्माण किया गया। इस योजना के अन्तर्गत, निम्नलिखित शर्तों के अधीन, पदोन्नति की प्रतियोगिता परीक्षाओ व उसकी कार्यविधियो (Procedures) के विकास तथा प्रवध का उत्तरदायित्व विभागो को ही सौंप दिया गया है --

(१) प्रतियोगिता की घोषणा, विस्तार तथा विज्ञप्ति (Notice), (२) परीक्षाओ की प्रकृति, और (३) विना प्रतियोगिता वाली पदोन्नति की शर्तें। आयोग केवल सामान्य स्तरो का निर्धारण करता है और निर्धारित सीमाओ के अन्तर्गत उनकी बारीकियो (Details) से निवटने की समस्या विभागो पर ही छोड देता है। सयुक्त राज्य अमेरिका की डाक सेवा (Postal service) की पदोन्नति पद्धति नि सदेह स्पर्धा करने योग्य है। वाशिंगटन मे डाक विभाग के प्रमुख अधिकारियो तथा प्रथम, द्वितीय व तृतीय श्रेणी के पोस्टमास्टरो को छोड कर सम्पूर्ण ५०,००० डाक कर्मचारियो ने लिपिको (Clerks) अथवा डाक मे जाने वाले हलकारो (Carriers) के रूप मे सेवा मे प्रवेश किया था। आवश्यक योग्यताओ वाले एक लिपिक अथवा

हलकारे को क्रमिक अवस्थाओ (Stages) द्वारा उस समय तक पदोन्नत किया जा सकता है जब तक कि वह किसी बडे नगर का पोस्ट या रेलवे मेल का प्रादेशिक अधीक्षक (Divisional superintendent) न हो जाए अथवा अन्य कोई उत्तर-दायित्व का पद न प्राप्त कर ले । सन् १९४७ मे एक व्यक्ति (Jesse M Donaldson) को पोस्ट मास्टर जनरल नियुक्त किया गया था, उसने सेवा की सबसे नीचे की सीढी से अपना कार्य करना प्रारम्भ किया था ।

इंगलैंड मे पदोन्नति की प्रणाली
(The System of Promotion in England)

इगलैंड मे पर्यवेक्षक अधिकारियो द्वारा रखे जाने वाले वार्षिक विवरणो के आधार पर पदोन्नतियाँ की जाती हैं । प्रत्येक विभाग मे पदोन्नति मण्डल बने होते है । इन मण्डलो मे विभाग (Department) के प्रमुख अधिकारी एव कर्मचारी होते हैं । पदोन्नति मण्डल वार्षिक विवरणो एव अन्य उपलब्ध सूचनाओ पर सावधानी के साथ विचार करता है और उसके आधार पर यह पात्र अधिकारियो (Eligible officers) के गुणो का मूल्याकन करता है । मण्डल पदोन्नति के लिए प्रस्तावित प्रत्याशियो का सदर्शन अथवा साक्षात्कार (Interview) भी कर सकता है । सेवा विवरणो (Service reports) के आधार पर यह विभागाध्यक्ष के सम्मुख प्रत्याशियो के नामो की सिफारिश करता है और फिर विभागाध्यक्ष अन्तिम आदेश जारी करता है । केवल ज्येष्ठता से ही पदोन्नतियो का निर्धारण नही किया जाता । किसी भी असन्तुष्ट अथवा पीडित कर्मचारी को यह अधिकार प्राप्त होता है कि वह पदोन्नति मण्डल (Promotion Board) के निर्णय के विरुद्ध अपील कर सके । इस प्रकार इगलैंड मे पदोन्नति किसी एक व्यक्ति की इच्छा अथवा उसके निर्णय पर नही होती, अपितु एक मण्डल पर निर्भर होती है और यहाँ तक कि मण्डल के निर्णय की भी अपील की जा सकती है ।

सन् १९२१ की पदोन्नति समिति (Committee on promotions) के प्रतिवेदन मे विभागीय पदोन्नतियो (Departmental promotions) की जिन रीतियो की सिफारिश की गई थी वे ज्यो की त्यो नीचे दी जाती है ।

"(१) यदि किसी विभाग का स्टाफ इतना बडा हो कि उसका अध्यक्ष विभाग के प्रत्येक सदस्य के गुणो से परिचित नही हो सकता, तो इस स्थिति मे हमारे विचार से, सामान्यत आवश्यकता इस बात की होगी कि विभागाध्यक्ष द्वारा सिफा-रिश करने वाले एक निकाय (Body) अथवा निकायो के रूप मे एक पदोन्नति मण्डल (Promotion Board) अथवा मण्डलो की स्थापना की जाय । और ऐसी किसी भी स्थिति मे, जबकि विभागाध्यक्ष द्वारा ऐसे पदोन्नति मण्डल (अथवा मण्डलो) की स्थापना करना उस विभाग की परिस्थितियो की दृष्टि से अनुपयुक्त समझा जाय तो उपयुक्त ह्विटले निकाय (Whiteley Body) को उस मामले पर पूर्ण वाद-विवाद करने का अवसर प्रदान किया जाना चाहिए । ९०० पौड वार्षिक से अधिक वेतन

वाले स्थानो की पदोन्नतियाँ उस निकाय के कार्यक्षेत्र की परिधि से वाहर समभी जानी चाहिए जिमकी हमने सिफारिश की है।

(२) एक विभागीय पदोन्नति मण्डल मे साधारणतया मुख्य स्थापना अधिकारी (Principal Establishment Officer) अथवा उसका सहायक, उस उप-विभाग का आधार प्रमुख जिसमे कि स्थान रिक्त हुआ है, तथा विभागाध्यक्ष द्वारा अनुभव व सेवा पर मनोनीत किये गये एक अथवा एक से अधिक विभागीय अधिकारी होने चाहिए।

(३) मण्डल ऐसी किसी भी जानकारी व गवाही की माँग कर सकेगा जिससे कि उसे अपने कार्य मे सहायता मिले।

(४) किसी भी ऐसी सूचना पर, जोकि स्टाफ के अधिकार मे हो, अथवा ऐसे किसी भी आवेदन या प्रतिनिधित्व पर, जिसे कि स्टाफ प्रस्तुत करना चाहे, उचित ध्यान देने की दृष्टि से पदोन्नति मण्डल को एक, अथवा विशेष मामलो मे एक से अधिक ऐसे प्रतिनिधि की गवाही लेनी चाहिये जिसका नाम-निर्देशन (Nomination) इसी कार्य के लिए विभागीय ह्विटले परिषद् के स्टाफ पक्ष की ओर से अथवा जिला या कार्यालय समिति के स्टाफ पक्ष की ओर से, किसी विशिष्ट मामले मे जो भी उपयुक्त रहे किया गया हो। पदोन्नति मण्डल का यह कर्त्तव्य होना चाहिये कि स्टाफ के ऐसे प्रतिनिधि अथवा प्रतिनिधियो को इस बात का पूर्ण अवसर प्रदान किया जाए कि वह ऐसी कोई भी सूचना दे सके जोकि स्टाफ के अधिकार मे हो अथवा पदोन्नति मण्डल के सन्मुख उस मामले से सम्बिन्धित किसी भी प्रकार का आवेदन या प्रतिनिधित्व कर सकें, और पदोन्नति मण्डल द्वारा ऐसी किसी भी सूचना अथवा प्रनिनिधित्व पर पूर्ण ध्यान दिया जाना चादिए। यह आशा की जाती है कि पदोन्नति मण्डल स्टाफ पक्ष के प्रतिनिधि को फिर से भी बुला सकेगा, यदि मण्डल यह समभता है कि अपने निर्णय पर पहुँचने से पूर्व उसे उस पक्ष की ओर गवाही सुनने की आवश्यकता है।

(५) पदोन्नति मण्डल की सिफारिशे लिखित रूप मे ही होनी चाहिये।

(६) भिन्न-भिन्न विभागो की परिस्थितियो के अनुसार पदोन्नति करने की कौन सी पद्धति को अपनाया जाए—यह एक ऐसा मामला है जिसे निपटाने का कार्य विभागो पर ही छोड दिया जाना चाहिये, परन्तु विभाग जिस पद्धति को भी अपनाये उमको विभाग मे सेवा करने वाले मभी व्यक्तियो की जानकारी के लिए स्पष्ट रूप से लिखित सरकारी कागजात के रूप मे रखा जाना चाहिये।

(७) जिस विभाग मे पदोन्नति मण्डल की स्थापना न की जाये उममे स्टाफ को प्रतिनिधित्व (Representation) करने अथवा वह सूचना प्रदान करने के, जोकि उसके अधिकार मे हो, ममान अवसर दिये जाने चाहिये।

(८) हम यह स्वीकार करते हैं कि कुछ अपवादभूत मामलो (Exceptional cases) मे, जिनमे कि लोक-हित की दृष्टि से ऐसा करना आवश्यक हो, विभागाध्यक्ष

को यह शक्ति प्राप्त होनी चाहिये कि वह सामान्य कार्यविधि का पालन किये बिना ही कोई पदोन्नति कर सके।

(९) विभागीय ह्विटले परिषदो (Department Whitcley Councils) के आदर्श सविधान (Constitution) मे व्यवस्था दी गई है कि "यह बात परिषद् की सामर्थ्य के अन्तर्गत होगी कि वह ऐसी किसी भी पदोन्नति के सम्बन्ध मे विचार कर सके जिसके बारे मे कि स्टाफ पक्ष की ओर से यह आवेदन किया गया हो कि इसमे राष्ट्रीय परिषद् (National Council) द्वारा स्वीकृत अथवा अनुमोदित पदोन्नति के सिद्धान्तो का उल्लघन किया गया है।" इसके साथ ही साथ हम यह सिफारिश करते है कि किसी भी अधिकार अथवा अधिकारियो को यह छूट होनी चाहिये कि वे ऐसी किसी भी पदोन्नति के सम्बन्ध मे विभागाध्यक्ष के सन्मुख आवेदन कर सकें जिसका कि उन पर प्रभाव पडता हो। ऐसे आवेदन अथवा प्रतिनिधित्व (Representation) पदोन्नति की घोषणा होने के पश्चात् एक निश्चित अवधि के अन्तर्गत किये जाने चाहियें। ऐसी अवधि का निर्धारण विभागीय आधार पर किया जाना चाहिये। इस प्रकार के आवेदनो अथवा प्रतिनिधित्वो पर विभागाध्यक्ष द्वारा विचार किया जाना चाहिये जो मामले को (क) असेसरो (Assessors) की सहायता से अथवा उनके बिना स्वय ही निपटायेगा, (ख) फिर से सुनवाई के लिये मामले को पदोन्नति मण्डल को सौंप देगा, अथवा (ग) विचार के लिये अन्य किसी परामर्शदात्री निकाय (Advisory Body) के पास भेज देगा।

जहाँ ऐसे आवेदन अथवा प्रतिनिधित्व नये प्रमाण (New evidence) प्रस्तुत करने पर आधारित हो वहाँ सामान्य कार्यविधि यह होगी कि मामला पदोन्नति मण्डल को सौंप दिया जायेगा। भिन्न-भिन्न मामलो मे परिस्थितियो के अनुसार इनमे से एक विकल्प (Alternative) अन्य विकल्पो से अधिक उपयुक्त हो सकता है।

(१०) पदोन्नति मण्डल को ऐसे आवेदन अथवा प्रतिनिधित्व पर विचार करने वाले निकाय (Body) के प्रतिवेदन (Report) पर उस समय विशेष रूप से ध्यान देना चाहिये जबकि वह उस जैसे ही किसी अन्य रिक्त-स्थान (Vacancy) पर पदोन्नति की सिफारिश करे। उन स्थितियो मे जब कि पदोन्नतिया समूहो (Batches) मे की जाए, कुछ रिक्त स्थानो को उस समय तक नही भरा जाना चाहिये जब तक कि आवेदन अथवा प्रतिनिधित्व करने की अवधि वर्तमान रहे।

(११) ऐसे आवेदन करने वाले अधिकारी को इस बात की आज्ञा मिलनी चाहिये कि वह उपयुक्त ह्विटले निकाय का स्टाफ पक्ष (Staff side) के एक प्रतिनिधि को अथवा स्टाफ के अन्य किसी सदस्य को अपने साथ ले सके। उसकी अपनी ही प्रार्थना पर प्रतिनिधित्व करने के लिये उपस्थित होने की स्थिति मे उसे अपने पास से ही व्यय करना चाहिये।

(१२) जो भी नियुक्तियाँ की जाए उन सभी के सम्बन्ध मे सम्बन्धित कर्मचारी-वर्ग को शीघ्र सूचना दी जानी चाहिये ।"[1]

भारत मे पदोन्नति की प्रणाली
(The system of Promotion in India)

(१) भारत मे पदोन्नति के अवसर
(Promotion Opportunities in India)

भारत मे, कुछ अपवादो (Exceptions) को छोड़कर, विभिन्न सेवाओ मे रिक्त होने वाले स्थानो की एक निश्चित सख्या उन व्यक्तियो की पदोन्नति द्वारा भरी जाती है जोकि निम्न पदक्रम (Grade) अथवा निम्न सेवा मे पहले से ही काम कर रहे होते हैं । इस सख्या का अनुपात सेवाओ की विभिन्न श्रेणियो से भिन्न-भिन्न होता है । नीचे हम सिविल-सेवा की विभिन्न श्रेणियो से भरे जाने वाले पदो के अनुपात की मोटी रूपरेखा प्रस्तुत करते हैं ।

प्रथम श्रेणी (Class I) मे लगभग ५५ प्रतिशत पद उन व्यक्तियो द्वारा भरे जाते हैं जिनकी इस श्रेणी मे सीधी भर्ती की जाती है और शेष स्थान पदोन्नति द्वारा भरे जाते हैं । पदोन्नति से भरे जाने वाले पदो का ठीक-ठीक अनुपात सेवा मे भिन्न-भिन्न होता है । भारतीय विदेश सेवा (Indian Foreign Service) की 'ए' शाखा मे यह अनुपात निम्नतम है जहाँ कि उच्च कर्त्तव्यो वाले पदो के केवल १० प्रतिशत स्थान 'बी' शाखा वाले अधिकारियो के लिये खुले हैं , केन्द्रीय सचिवालय (Central secretariat) तथा अन्य एक दो सेवाओ मे यह अनुपात उच्चतम है जहाँ कि प्रथम श्रेणी के स्तर पर सीधी भर्ती (Direct recruitment) होती ही नही । २५ प्रतिशत से लेकर ३३⅓ प्रतिशत तक पदो की अथवा एक वर्ष मे उत्पन्न होने वाले रिक्त स्थानो की पूर्ति पदोन्नति द्वारा होना एक सामान्य बात है ।

द्वितीय श्रेणी की (राजपत्रित) सेवाओ एव पदो मे सीधी भर्ती अपेक्षाकृत कम ही होती है , इस श्रेणी के लगभग ६५ प्रतिशत पदो की भर्ती तृतीय श्रेणी के स्टाफ के लिये सुरक्षित रहती है । इस श्रेणी मे सीधी भर्ती तो साधारणतया वैज्ञानिक (Scientific), चिकित्सा (Medical) तथा कुछ कम मात्रा मे, इजीनियरिंग सेवाओ तक ही सीमित रहती है , द्वितीय श्रेणी की विभिन्न राजपत्रित सचिवालय सेवाओ (Gazetted Secretariat Services) के ५० प्रतिशत रिक्त स्थानो की पूर्ति भी सीधी भर्ती द्वारा ही की जाती है । अन्य सेवाओ मे अधिकतर भर्ती पदोन्नति द्वारा ही की जाती है ।

तथापि, द्वितीय श्रेणी के ७८ प्रतिशत अराजपत्रित (Non-gazetted) पदो के लिये सीधी भर्ती की जाती है । ऐसे पद अधिकाशत केन्द्रीय सचिवालय (Central Secretariat) मे (सहायक तथा आशुलिपिक) और वैज्ञानिक सस्थानो (Scientific establishments) मे हैं ।

---

1 पदोन्नति समिति का प्रतिवेदन, १९०१

द्वितीय श्रेणी की अपेक्षा तृतीय श्रेणी (Class III) के स्टाफ की भर्ती मे श्रेणी के अन्तर्गत ही पदोन्नतियो का सामान्यत अधिक महत्व है। द्वितीय श्रेणी मे केवल जहाँ कुल लगभग २०,००० पद हैं, तृतीय श्रेणी से लगभग ५ ५३ लाख कर्मचारी हैं जोकि अधिकाश सेवाओ मे दो अथवा दो से अधिक पद-क्रमो (Grades) मे विभाजित हैं, इनमे उच्चतर पद-क्रमो के स्थान अधिकाशत पदोन्नति द्वारा भरे जाते हैं। तृतीय श्रेणी मे लगभग ४७,००० पदो (अधिकतर पोस्टमैन तथा लाइनमैन) को छोडकर, जोकि चतुर्थ श्रेणी के आदर्श वेतन-क्रमो (Typical class IV scales) मे हैं, तृतीय श्रेणी की अधिकाश सीधी भर्ती रु० ६०–१३०, रु० ६०–१५०, और रु० ६०–१७० के वेतन-क्रमो मे होती है। इन तीनो वेतनक्रमो मे पदो की कुल सख्या लगभग २ ३७ लाख है। इस स्तर से ऊपर कुल सीधी भर्ती लगभग ७०,००० पदो के लिये की जाती है। इनमे से लगभग २६,००० पद उच्च सभाग लिपिको (Upper Division Clerks) के हैं जिनमे कि सीधी भर्ती नही होती। लगभग १०,००० पद वैज्ञानिक तथा इजीनियरिंग सेवाओ मे है। तृतीय श्रेणी मे उच्च वेतनक्रम के अन्य सभी स्थान पदोन्नति द्वारा भरे जाते हैं।

रेलवे मे तृतीय श्रेणी स्टाफ के पद-क्रम की अपनी एक पृथक् विशेषता है। रेलवे की तृतीय श्रेणी की अधिकाश सेवाओ मे ५ से लेकर ७ तक पद-क्रम (Grades) हैं और प्रत्येक पद-क्रम मे पदो का बटवारा (Allocation) सेवा के पदो की कुल सख्या के एक निर्धारित प्रतिशत के रूप मे किया जाता है। यह वटवारा भिन्न-भिन्न पद-क्रमो मे पदो से सम्बद्ध उत्तरदायित्व की मात्रा को प्रकट करता है परन्तु यह बटवारा इस दृष्टि से भी किया गया है कि जिससे सम्बन्धित स्टाफ को 'पदोन्नति के उपयुक्त एव न्यायपूर्ण अवसर' प्राप्त हो सकें।

चतुर्थ श्रेणी (Class IV) के कर्मचारियो की तृतीय श्रेणी की बहुत कम पदोन्नति की जाती हैं। रेलवे तथा डाक व तार विभागो को छोडकर, अन्य विभागो (Departments) मे, चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियो की अगली श्रेणी मे को नियमित पदोन्नति की सामान्यत कोई व्यवस्था नही है। इन कर्मचारियो मे से उनको, जोकि शैक्षणिक दृष्टि से अथवा अन्य प्रकार से योग्यता प्राप्त होते हैं, आयु सम्बन्धी कुछ छूट दे दी जाती हैं जिससे कि वे बाहर के प्रत्याशियो (Candidates) के साथ प्रतियोगिता मे बैठ सकें। तथापि ऊपर बताये गये दोनो विभागो मे, चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियो के लिये पदोन्नति के नियमित मार्ग है। यह अनुमान लगाया गया है कि डाक व तार विभाग मे तृतीय श्रेणी के लगभग ४० प्रतिशत पद पदोन्नति द्वारा भरे जाते हैं, परन्तु यहाँ यह स्मरण रखना आवश्यक है कि पोस्टमैन तथा लाइनमैन जिनकी कि कुल सख्या लगभग ४५,००० है, तृतीय श्रेणी मे ही है यद्यपि उनका वेतनक्रम केवल रु० ३५ ५० होता है। इसी प्रकार से रेलवे के सभी विभागो मे तृतीय श्रेणी के निम्नतम पद-क्रम के कम से कम १० प्रतिशत पद चतुर्थ श्रेणी के उपयुक्त कर्मचारियो की पदोन्नति के द्वारा भरे जाने आवश्यक होते है, कुछ विभागो

मे यह अनुपात अपेक्षाकृत ऊचा है। रेलवे ने अनेक मामलो मे पदोन्नति के इन निर्धारित अशो (Quotas) मे अभी हाल मे ही वृद्धि की है।

जहाँ तक चतुर्थ श्रेणी के अन्तर्गत पदोन्नति के अवसरो का प्रश्न है, उपलब्ध सर्वोत्तम अनुमानो से यह प्रकट होता है कि रु० ३०—½—३५ के निम्नतम वेतनक्रम के लगभग ५,२४,००० कर्मचारी पदोन्नति के कुल लगभग एक लाख पदो के पाने की आशा कर सकते है। इस अनुमान मे उन परिवर्तनो का ध्यान नही रखा गया है जोकि अभी हाल मे ही किये गये है।

(२) पदोन्नति की रीतियाँ तथा सिद्धान्त
(Methods and Principles of Promotion)

सविधान (Constitution) मे यह व्यवस्था है कि एक सेवा से दूसरी सेवा मे पदोन्नतिया करने तथा ऐसी पदोन्नतियो के लिये प्रत्याशियो की उपयुक्तता (Suitability) के सम्बन्ध मे, अपनाये जाने वाले सिद्धान्तो के विषय मे सघीय लोक सेवा आयोग (U P S C.) मे परामर्श किया जायेगा। तथापि, व्यवहार मे, जब तक कि सम्बन्धित भर्ती-नियमो के विपरीत कोई विशेष उपबन्ध (Special provision) न हो, सविधान के अनुच्छेद ३२० के खण्ड (३) के अन्तर्गत बनाये गये विनियमो के द्वारा तृतीय और चतुर्थ श्रेणी के अन्दर तथा इनमे से ऊपर को की जाने वाली पदोन्नतियो को आयोग के अधिकार क्षेत्र से बाहर कर दिया गया है। विभिन्न विभागो ने पदोन्नति के नियम बना लिए हैं अथवा अपनी अधीनस्थ सेवाओ के लिये आदेश जारी कर दिये हैं। विभिन्न विभागो ने पदोन्नति के जो नियम निर्धारण किये हैं उनमे परस्पर काफी अन्तर पाया जाता है। वे सामान्यत निम्न प्रकार से पदोन्नतियाँ करते हैं —

(क) योग्यता (Merit) के आधार पर पदोन्नति, या (ख) योग्यता व ज्येष्ठता (Merit cum seniority) अथवा ज्येष्ठता व योग्यता (Seniority cum merit) के आधार पर पदोन्नति, (ग) ज्येष्ठता के आधार पर पदोन्नति, बशर्ते कि ज्येष्ठ अधिकारी को अयोग्य घोषित न कर दिया गया हो।

सम्पूर्ण रूप मे सिविल-सेवा के लिए, पदोन्नतिया करने मे अनुसरण किये जाने वाले सिद्धान्तो के सम्बन्ध मे केवल वे ही आज्ञायें (Orders) लागू होती हैं जोकि स्वराष्ट्र मन्त्रालय द्वारा मई १९५७ मे जारी की गई थी। परन्तु वे आज्ञायें केवल चुनाव-पदो[1] (Selection grades) के ही सम्बन्ध मे हैं। उन आज्ञाओ के अनुसार—

(१) चुनाव-पदो तथा चुनाव-पदक्रमो (Selection grades) के लिये नियुक्तिया योग्यता के आधार पर की जानी चाहिए, ऐसा करते समय ज्येष्ठता का ध्यान केवल निम्न सीमा तक ही रखा जाना चाहिए।

---

1 "Selection posts" are those which a Ministry declares to be so This means that the Ministry may classify their posts into "Selection Posts" and others, according to their judgment

(२) विभागीय पदोन्नति समिति (Departmental Promotion Committee) अथवा चुनाव करने वाली सत्ता (Selecting authority) को सर्वप्रथम चयन-क्षेत्र (Field of choice) का निश्चय करना चाहिए, अर्थात् पदोन्नति की प्रतीक्षा करने वाले ऐसे पात्र एकाधिकारियो (Eligible officers) की सख्या जिनको कि "चुनाव-सूची" (Select list) मे सम्मिलित किया जा सके, तथापि शर्त यह है कि असाधारण योग्यता वाला एक अधिकारी यदि सामान्य चयन-क्षेत्र की परिधि मे बाहर भी हो, तो भी उसे पात्र अधिकारियो की सूची मे सम्मिलित कर लिया जाए।

(**टिप्पणी**—जहां भी सम्भव हो सके, चयन-क्षेत्र का विस्तार उन रिक्त स्थानो (Vacancies) की सख्या के पाच या छ गुने तक होना चाहिए जितने स्थान एक वर्ष की अवधि मे रिक्त होने की आशा हो।)

(३) ऐसे अधिकारियो मे उन व्यक्तियो को छोड दिया जाना चाहिए जिन्हें कि पदोन्नति के लिए अनुपयुक्त समझा जाए।

(४) शेष अधिकारियो को उस योग्यता के आधार पर, जोकि उनके अपने-अपने सेवा अभिलेखो (Service records) द्वारा निश्चित की जाए, 'उत्कृष्ट' (Outstanding), 'बहुत श्रेष्ठ' (Very good), 'श्रेष्ठ' (Good) के रूप मे वर्गीकृत कर लिया जाना चाहिए। फिर अधिकारियो के नाम इन तीन वर्गो अथवा श्रेणियो के क्रम मे रख कर "चुनाव सूची" तैयार कर लेनी चाहिए और ऐसा करते समय प्रत्येक श्रेणी के अन्तर्गत जितने भी अधिकारियो के नाम हो उनमे परस्पर ज्येष्ठता का ध्यान रखा जाना चाहिए।

(५) पदोन्नतिया सामान्यतया "चुनाव सूची" मे से उस क्रम के अनुसार की जानी चाहियें जिस क्रम मे अन्तिम रूप से नाम व्यवस्थित किए गये हो।

(६) निश्चित अवधियो के पश्चात् "चुनाव सूची" का पुनरावलोकन किया जाना चाहिए। सूची से उन अधिकारियो के नाम हटा दिए जाने चाहियें जोकि (स्थानीय अथवा अस्थायी आधार को छोडकर अन्य प्रकार से) पहले ही पदोन्नति कर दिये गये हो और उस पद पर अब भी बराबर कार्य कर रहे हो। बाद की अवधि के लिए, इन शेष नामो को तथा उन नामो को, जिन्हे कि अब चयन-क्षेत्र मे सम्मिलित किया जाये, "चुनाव-सूची" (Select list) के लिए विचारार्थ लिया जाना चाहिए।

जहाँ तक कि (चुनाव पदो के अतिरिक्त) अन्य पदो का सम्बन्ध है, इसके विषय मे विभिन्न विभाग अपने-अपने निजी नियमो का अनुसरण करते हैं और जैसा कि कहा जा चुका है वे नियम विभिन्नता रखते है। किन्तु मुख्य रूप से यह कहा जा सकता है कि ये नियम उच्चतर तथा मध्यम स्तर के पदो के लिए तो योग्यता (Merit) पर जोर देते है और निम्न स्तर के पदो के लिए 'ज्येष्ठता व उपयुक्तता (Seniority cum fitness) पर। कुछ स्थितियो मे, उच्चतर तथा मध्यम स्तर के पदो के लिए भी 'योग्यता व ज्येष्ठता' अथवा 'ज्येष्ठता व योग्यता' के सिद्धान्त का

अनुसरण किया जाता है। तथापि, इन सिद्धान्तो के वास्तविक अनुसरण के सम्बन्ध मे विभागो अथवा सेवाओ के बीच एकरूपता (Uniformity) नही पाई जाती। कुछ समय पूर्व स्वराष्ट्र मन्त्रालय (Ministry of Home Affairs) मे एक अध्ययन किया गया था जिससे यह प्रकट हुआ कि वहाँ भी जहाँ कि पदोन्नति के सिद्धान्त एक से थे, उनको समान रूप से क्रियान्वित नही किया गया। कुछ मामलो मे, जहाँ कि निर्धारित सिद्धान्त योग्यता पर ही सम्पूर्ण **जोर** देता था, व्यवहार मे ज्येष्ठता को ही अधिक महत्व प्रदान किया गया। इस तथ्य की पुष्टि सघीय लोक सेवा आयोग के एक भूतपूर्व अध्यक्ष ने भी की थी जिन्होने कि वेतन आयोग (Pay commission) के समक्ष मौखिक गवाही देते हुए कहा कि जबकि काफी समय पूर्व से प्रचलित सिद्धान्त यह था कि पदोन्नति योग्यता के आधार पर की जानी चाहिए, किन्तु "इस ठोस सिद्धान्त का सम्मान इसका अनुसरण करने की अपेक्षा इसको भग करने के रूप मे अधिक किया जाता है।"

पदोन्नतियाँ करने मे साधारणत निम्नलिखित रीतियो मे से किसी एक का उपयोग किया जाता है। अभिलेख (Record) के आधार पर उपयुक्तता (Suitability) का निर्धारण करके, प्रतियोगिता परीक्षा के परिणाम के आधार पर चुनाव करके, और समर्थता परीक्षाओ (Competence tests) का उपयोग करके। अन्तिम रीति का उपयोग मुख्यत औद्योगिक कर्मचारियो के मामलो मे किया जाता है, जिन की कि उच्चतर पद-क्रमो मे उन्नति के लिये उपयुक्तता की जाच समुचित व्यापारिक परीक्षाओ द्वारा की जाती है।

केन्द्रीय सचिवालय सेवा के तृतीय पद-क्रम (Grade III) मे एक निश्चित अनुपात मे पदो के भरने के अतिरिक्त, प्रतियोगिता परीक्षा की रीति का अधिक उपयोग नही किया जाता। इस प्रकार प्रथम रीति (Method) ही ऐसी है जिसका सबसे अधिक व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है। नियमानुसार, कर्मचारी की उपयुक्तता का निश्चय किसी एक व्यक्ति द्वारा नही किया जाता, अपितु **विभागीय पदोन्नति समिति** द्वारा किया जाता है। प्रत्येक विभाग ने, अपनी-अपनी आवश्यकताओ के अनुसार, एक या एक से अधिक ऐसी समितियो की स्थापना कर ली है। जो समितियाँ पदोन्नति के ऐसे मामलो से सम्बन्धित होती हैं जिनमे कि आयोग के परामर्श की आवश्यकता होती है, उनकी बैठको की अध्यक्षता सघीय लोक-सेवा आयोग का एक सदस्य करता है।

विभागीय नियम (Departmental rules) उच्चतर तथा मध्यम स्तर के पदो के लिये तो अधिकाशत योग्यता पर जोर देते हैं और निम्नतर स्तरो के पदो के लिये 'ज्येष्ठता व उपयुक्तता' (Seniority cum fitness) पर। पदोन्नति के सिद्धान्तो के सम्बन्ध मे विभागो अथवा सेवाओ के बीच कोई एकरूपता नही पाई जाती। निर्धारित सिद्धान्त यद्यपि योग्यता (Merit) पर अधिक जोर देता है किन्तु भारत मे ज्येष्ठता को ही अधिक महत्त्व प्रदान किया जाता है। सघीय लोक-सेवा

आयोग के भूतपूर्व अध्यक्ष ने केन्द्रीय वेतन आयोग के समक्ष गवाही देते समय यह कहा कि जबकि काफी समय पूर्व मे प्रचलित सिद्धान्त यह था कि पदोन्नति योग्यता के आधार पर की जानी चाहिए, किन्तु "इस ठोस सिद्धान्त का सम्मान इसका अनुसरण करने की अपेक्षा इसको भग करने के रूप मे अधिक किया जाता है।[1]

पदोन्नतियो के सम्बन्ध में वेतन आयोग की सिफारिशें
(Recommendations of the Pay Commission Concerning Promotions)

भारत मे पदोन्नतियो के सम्बन्ध मे वेतन आयोग ने अत्यन्त महत्वपूर्ण सिफारिशें की। ये सिफारिशे निम्नलिखित हैं

(१) उच्चतर स्तरो (Higher levels) पर पदोन्नतियाँ करने के सिद्धान्त के रूप मे योग्यता को ही आधार बनाए रखना चाहिए और निम्न स्तरो के पदो के लिए 'ज्येष्ठता व उपयुक्तता' का सिद्धान्त ठीक है।[2]

(२) ऐसे पद-क्रमो (Grades) मे, जिसमे कि विशिष्टीकृत ज्ञान (Specialised knowledge) की आवश्यकता होती है, पदोन्नतियाँ करने के लिए ऐसी योग्यता-प्रमापी परीक्षायें (Qualifying examinations) लाभदायक हो सकती हैं जिनमे कि कर्मचारियो की कार्य करने की (शैक्षणिक नही) क्षमता की जाच हो सके। परन्तु इस अपवाद को छोडकर, परीक्षाओ का उपयोग पदोन्नति के लिए चयन करने की एक सामान्य रीति के रूप मे नही किया जाना चाहिए।[3]

(३) पदोन्नति की एक ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए जिसमे कि एक विशिष्ट सीमित प्रतियोगिता परीक्षा के द्वारा द्वितीय श्रेणी (Class II) तथा तृतीय श्रेणी (Class III) की सेवाओ के युवा पदाधिकारियो को प्रथम श्रेणी अथवा श्रेणी की उन सेवाओ मे प्रवेश का एक अतिरिक्त अवसर मिल सके जिनमे कि द्वितीय प्रतियोगिता परीक्षा (Competitive examination) के द्वारा सीधी भर्ती (Direct recruitment) की जाती है।[4]

(४) वह फार्म जिनमे कि गोपनीय विवरण (Confidential reports) रखे जायें, कर्मचारियो के विशिष्ट-वर्ग के कार्य की प्रकृति से सम्बन्धित होना चाहिये परन्तु अन्य प्रकार मे उसमे यथासम्भव एकरूपता होनी चाहिए और उसका प्रतिरूप (Design) इस प्रकार का होना चाहिए कि जिससे अनेक विशिष्ट शीर्षको (Headings) के अन्तर्गत, जिसमे कि ऊचे उत्तरदायित्वो को निबाहने की कर्मचारियो की क्षमता तथा साथ ही साथ उनके सामान्य गुण भी सम्मिलित है, उनकी योग्यता का निर्धारण किया जा सके।[5]

---

1 Commission of Enquiry on Emoluments and conditions of service of Central Government Employees 1957-59, Report, Government of India, p 503
2 *Ibid* Para, 15, Chap XLV
3 *Ibid* Para, 17
4 *Ibid* Para, 19
5 *Ibid* Para, 23

(५) कर्मचारियो का मामान्य कोटिकरण (General grading) प्रथम प्रतिवेदन अधिकारी (First reporting officer) द्वारा नही किया जाना चाहिए, ऐसा कोटिकरण उच्च सतह पर किया जाना चाहिए, और अधिमान्यत (Preferably) ऐसी सतह पर जहाँ पर कि सम्पूर्ण ढाचा पदोन्नति आदि के मामलो से ही व्यवहार करता हो।[1]

(६) गोपनीय विवरण जैसे ही प्राप्त हो, प्रत्येक उच्चतर स्तर पर उसका सूक्ष्म परीक्षण किया जाना चाहिए जिससे कि इस विषय मे निश्चित हुआ जा सके कि वे विवरण सम्बन्धित अनुदेशो (Instructions) के अनुसार ही तैयार किये गये हैं, और जहाँ भी आवश्यक हो उनको सशोधन के लिए वापिस लौटा दिया जाना चाहिए।[2]

(७) किसी उपचार-योग्य तथा उपचार के अयोग्य दोष की ज्यो की त्यों सूचना कर्मचारी को दी जानी चाहिए जब तक कि वह प्रस्ताव ही न किया गया हो कि उस दोष को कर्मचारी की चरित्र-पुस्तिका (Character-roll) मे दर्ज न किया जाए।[3]

(८) तत्काल उच्च अधिकारी (Immediate superior) द्वारा गोपनीय विवरण लिखने की वर्तमान व्यवस्था जारी रखी जाए परन्तु उससे ऊपर के उच्च अधिकारी को प्रतिवेदन अधिकारी (Reporting officer) की टिप्पणियो पर अपना ठोस व स्वतन्त्र निर्णय देना चाहिये और अपनी स्वीकृति अथवा अस्वीकृति की स्पष्ट रूप से व्याख्या करनी चाहिए और विशेष रूप से ऐसी टिप्पणियो के सम्बन्ध से जबकि वे प्रतिकूल हो।[4]

(Efficiency Rating Form (U S A)

सयुक्त राज्य अमेरिका की सिविल-सेवा मे काम आने वाले कार्यकुशालता मापक प्रतिवेदन के फार्म का नमूना एव उसका सम्बन्धित विवरण ज्यो का त्यो आगे दिया जा रहा है।

---

1 *Ibid* Para, 23
2 *Ibid* para, 24
3 *Ibid* para, 24
4 *Ibid* Para, 25

Interpretation of Efficiency Rating :

Your efficiency rating is an official record of the way you are doing the work of your job

Excellent (E) means the performance in every important phase of the work was outstanding and there was no weakness in performance in any respect

Very Good (V G) means that performance in at least half of the important phases of the work was outstanding and there was no weakness in performance in any respect

Good (G) means that performance met requirements from an over-all point of view

Fair (F) means that performance did not equit measure up to requirements from an over-all point of view

Unsatisfactory (U) means that performance in a majority of important phases of the work did not meet job requirements

Inspection .

You are entitled to inspect the final ratings (not the rating forms) of all employees in your office or station

Significance of Efficiency Rating

An efficiency rating of "Good", "Very Good", or "Excellent" is necessary in order to receive a, periodic within-grade salary advancement

An efficiency rating of "Fair" requires a one-step salary reduction if an employee's pay rate is above the middle rate for his grade (the fourth step in six-rate grades) An efficiency rating of "Unsatisfactory" requires that the employee be dismissed or reassigned to other work in which he could be reasonably expected to render satisfactory service

Efficiency ratings are a factor in determining the order in which employees are affected by reduction in force

Appeals

If you believe your rating is wrong, you should first discuss it with your supervisor or personnel officer You have the right, if your position is subject to the Classification Act, to appeal your rating within certain time limits to a board of review established for your agency Appeals or requests for additional information concerning appeals should be addressed to the Chairman, Board of Review, care of Civil Service Commission, *Washington* 25 D C

Appendix A

Standard Form No 51
August 1946

U S CIVIL SERVICE COMMISSION

REPORT OF EFFICIENCY RATING

Administrative-Unoffical Official :

Regular ( ) Special ( )
Probational ( )

As of

Based on Performance during period from to,

(Name of employee)

(Title of position, service, and grade)

(Organisation—Indicate bureau, division, section, unit, field station)

On Line Below Mark Employee √ if adequate − if weak + if outstanding	1 Study the instructions in the Rating Official's Guide, C S C From No 3823 A 2 Underline the elements which are especially important in the position 3 Rate on element pertinent to the position (*a*) Do not rate on element in *italics* except for employees in administrative, supervisory or planning position (*b*) Rate administrative, supervisory, and planning functions on element in *italics*	Check One Administrative, supervisory, or planning All others

1 Maintenance of equipment, tools, instruments
2 Mechanical skill
3 Skill in the application of techniques and procedures
4 Presentability of work (appropriateness of arrangement and appearance of work)
5 Attention to broad phases of assignment
6 Attention to pertinent detail
7 Accuracy of operations
8 Accuracy of final results
9 Accuracy of judgment or decisions

21 *Effectiveness in planning broad programme*
22 *Effectiveness in adapting the work programme to broader or related programmes*
23 *Effectiveness in devising procedures*
24 *Effectiveness in laying out work and establishing standard to performance for subordinates*
25 *Effectiveness in directing, reviewing and checking the work of subordinates*
26 *Effectiveness in instructing, training and developing subordinates in the work*

10 Effectiveness in presenting ideas or facts
11 Industry
12 Rate of progress on or completion of assignments
13 Amount of acceptable work produced (Is mark based on production records? ( ) (Yes or no)
14 Ability to organize his work
15 Effectiveness in meeting and dealing with others
16 Co-operativeness
17 Initiative
18 Resourcefulness
19 Dependability
20 Physical fitness for the work

27 *Effectiveness in promoting high working moral*
28 *Effectiveness in determining space, personnel and equipment needs*
29 *Effectiveness in setting and obtaining adherence to time limits and deadliness*
30 *Ability to make decisions*
31 *Effectiveness in delegating clearly defined authority to act*

STATE ANY OTHER ELEMENTS CONSIDERED

(A)
(B)
(C)

STANDARD

Deviations must be explained on reverse side of this form

	Adjective Rating		*Adjective Rating*
Plus marks on all underlined elements, and check marks or better on all other elements rated	Excellent		
Check marks or better on all elements rated, and plus marks on at least half of the underlined elements	very Good	Rating Official	
Check mark or better on a majority of underlined elements, and all weak performance overcompensated by outstanding performance	Good		
Check marks or better on a majority of underlined elements, and all weak performance not overcompensated by outstanding performance	Fair	Reviewing Official	
Minus marks on at least half of the underlined elements	Unsatisfactory		

Rated by (Signature of rating official) (Title) (Date)

Reviewed by (Signature of reviewing official) (Title) (Date)

Rating approved by efficiency rating committee (Date) Report to employee (Adjective rating)

२१

अनुशासन, पदावनति, पदच्युति और सेवा-निवृत्ति

(Discipline, Demotion, Dismissal And Retirement)

कर्मचारियो के आचरण (Conduct) का निर्धारण करने के लिए प्रत्येक मगठन की अपनी विधिया (Laws), नियम (Rules) तथा विनियम (Regulations) होते है। कर्मचारी अनेक बार इन नियमो का उल्लघन करते हैं। अत उनके विरुद्ध कार्यवाही की जाती है। कर्मचारियो द्वारा जिन परिस्थितियो मे अनुशासन भग किया जाता है वे निम्न प्रकार हैं —

(१) कर्त्तव्यो के प्रति असावधानी—दीर्घसूत्रता (Tardiness) आलस्य, लापरवाही, सम्पत्ति की तोड-फोड अथवा हानि आदि, (२) अदक्षता (Inefficiency), (३) अवज्ञा (Insubordination), नियमो अथवा विनियमो का उल्लंघन, राजद्रोह, (४) मदिरापन, (५) अनैतिकता, (६) निष्ठा का अभाव, जिसमे स्वीकृत नैतिक महिता (Code of ethics) का उल्लघन, ऋण अदा न कर मकना, रिश्वत लेना या देना, अथवा जान बूझकर किसी विधि के प्रवर्तन (Enforcement) की उपेक्षा करना भी सम्मिलित है।[1]

उपरोक्त कारणो की वजह से अनुशामन भग करने की स्थिति मे कर्मचारियो को जो दण्ड दिया जाता है वह भी परिस्थिति के अनुसार ही भिन्न-भिन्न प्रकार का होता है। दण्ड निम्न प्रकार हो सकता है (१) अनौपचारिक सूचना (Informal notice) एव चेतावनी (Warning), (२) अभिलेख मे पूर्ति तथा भर्त्सना (Reprimand) अथवा केवल भर्त्सना, (३) अतिरिक्त समय की अपेक्षा (Requirement of over time), (४) ज्येष्ठता के अधिकारो (Seniority rights) की समाप्ति अथवा वेतन वृद्धि (Increment) मे विलम्ब, (५) निलम्बन (Suspension), (६) पदावनति (Demotion), (७) पद से हटाया जाना या अपसारण (Removal), (८) न्यायिक अभियोग लगाना (Judicial Prosecution)।[2]

अनुशासन भग करने के दण्ड कठोर हो सकते हैं जैसे कि निलम्बन, पदावनति, ज्येष्ठता के अधिकारो की समाप्ति अथवा सेवा से पदच्युति। जो कर्मचारी मामूली

---

1 Also refer to L- D White Introduction to the study of *Public Administration*, P 423 and F, Alexander "*Principles of Disciplining*", Personnel, November 1945, pp 161-170

2 Also refer to L D White, *op cit* P 423

अपराधो के दोषी पाये जाये उनके अभिलेख (Record) मे प्रविष्ट (Entry) करके अथवा उसके विना ही उनकी भर्त्सना की जा सकती है और उस अपराध की पुनरावृत्ति न करने के सम्बन्ध मे उन्हे चेतावनी (Warning) दी जा सकती है। ऐसे मामलो से निवटने के अन्य उपायो मे प्रत्याशित पदोन्नति अथवा वृद्धि को रोक देना, अवकाश सम्बन्धी विशेषाधिकारो का निलम्बन अथवा अवकाश (Leave) की समाप्ति सम्मिलित हैं।

कर्मचारी को उसके कृत्य तथा आचरण के विपय मे पूर्णतया स्पष्टीकरण करने का अवसर प्रदान किये विना दण्ड नही दिया जाना चाहिए। सेवा के सर्वोत्तम हितो की दृष्टि से यह आवश्यक है कि अपराध की पूर्णत छानवीन तथा पुष्टि किये बिना कोई भी दण्ड न दिया जाय। दण्ड ऐसा होना चाहिए जो कि अपराधो की दृष्टि से उपयुक्त हो, और दण्डित कर्मचारी को यह अवसर प्राप्त होना चाहिए कि वह अन्याय अथवा भूल को ठीक करा सके। उसे यह अधिकार प्राप्त होना चाहिए कि वह दण्ड की आज्ञा के विरुद्ध उच्च प्राधिकारी अथवा अपील मण्डल से अपील कर सके। अन्तिम आश्रय के रूप मे, कर्मचारी को यह भी अधिकार प्राप्त होना चाहिए कि वह देश के विधि न्यायालय के समक्ष अपील कर सके। उच्च अधिकारियो की सनक तथा पक्षपात के विरुद्ध निर्दोष कर्मचारियो को सुरक्षा प्रदान करने के लिए ये सब बचाव (Safe guards) अत्यन्त आवश्यक है।

पार्थक्य तथा सेवा-निवृत्ति
(Separation and Retirement)

लोक सेवा की एक अन्य समस्या कर्मचारी के पार्थक्य (Separation) अर्थात् सेवा से पृथक् होने की है। लेकिन लोक सेवा मे कर्मचारियो का पृथक् होना निम्नलिखित कारणो से हो सकता है —

(१) मृत्यु,

(२) त्याग-पत्र (Resignation), ऐच्छिक अथवा अनैच्छिक,

(२) पदच्युति—छटनी के कारण।

(४) सेवा के हित की दृष्टि से अपसारण अथवा हटाया जाना, या तो अकुशलता के कारण अथवा अनुशासन सम्बन्धी कारण से,

(५) अथवा सेवा-निवृत्ति, जो कि एक निश्चित आयु को पूरा होने पर सेवा काल (Length of service) पर अथवा असमर्थता (Disability) के कारण हो सकती है।[1] कर्मचारी या तो स्वेच्छा से त्याग-पत्र देकर लोक-सेवा से मुक्त हो सकते हैं अथवा उनकी छटनी (Retrenchment) की जा सकती है या उनको पदच्युत (Dismiss) किया जा सकता है। किसी भी कर्मचारी को निम्नलिखित दो मुख्य कारणो मे से किसी एक के आधार पर पदच्युत किया जाता है (१) अयोग्यता

1 Also refer to W Brooke Graves, *Public Administration* in a democratic Society, P 225

अथवा असमर्थता और अकुशलता के कारण, (२) अन्य कारण से, जो कि वास्तव मे अनुशासनिक कारणो के आधार पर पदच्युत का ही सूचक है ।

सेवा निवृत्ति योजनाओं के उद्देश्य
(Purposes of Retirement Plans)

सेवा-निवृत्ति की एक सुदृढ प्रणाली कर्मचारियो तथा सरकार दोनो के लिए ही हितकर है। सेवा-निवृत्ति प्रणाली के अन्तर्गत कर्मचारियो को अतिवयस्कता के लाभ (Superannuation benefits) प्रदान किये जाते है जिससे कि वे वृद्धावस्था मे निवृत्ति वेतन या पेन्शन (Pension) अथवा भविष्य निधि (Provident Fund) आदि के रूप मे सरकार की ओर से मिलने वाले जीविकोपार्जन के साधनो के बारे मे निश्चित होकर आराम से अपना जीवन बिता सकें। सेवा निवृत्ति की एक सुदृढ प्रणाली के द्वारा सरकार को कुशल व्यक्तियो की सेवा मे रखने मे समर्थ हो जाती है। सेवा निवृत्ति योजनाओ के उद्देश्य निम्न प्रकार हैं—

(१) उन अतिवयस्क कर्मचारियो के लिए निर्वाह के साधन प्रदान करना जोकि यथोचित कार्य-कुशलता के साथ और अधिक समय तक कार्य नही कर सकते, (२) कार्य करने मे असमर्थ कर्मचारियो की देखभाल करना, चाहे उनकी असमर्थता व्यावसायिक कारणो से हो अथवा गैर-व्यावसायिक कारणो से, (३) कर्मचारियो के आश्रितो (Dependents) के लिए कुछ वित्तीय सहायता की व्यवस्था करना जिनकी मृत्यु व्यावसायिक दुर्घटनाओ अथवा अन्य कारणो से हो गई हो। सम्पूर्ण रूप से लोक-सेवा मे मनोबल (Morale) तथा कार्य-कुशलता (Efficiency) बनाये रखने के लिए निवृत्ति प्रणाली का होना अत्यन्त आवश्यक है। आवश्यकता इस बात की होती है कि वृद्ध कर्मचारियो को, जिनकी कार्य-क्षमता दिन प्रतिदिन क्षीण होती जाती है, आराम दिया जाये तथा वृद्धावस्था मे शान्ति के साथ जीवन निर्वाह करने के लिए उनको धन दिया जाए। पेंशनो अथवा दावो की अदायगी के लिए निधियो (Funds) की व्यवस्था केवल सरकार की ओर से हो सकती है, केवल कर्मचारियो की ओर से हो सकती है अथवा दोनो के ही अंशदानो (Contributions) द्वारा हो सकती है। इसी आधार पर सेवा-निवृत्ति प्रणालियो का वर्गीकरण साधारणत इस प्रकार किया जाता है

(१) **अशदायी** (Non-Contributory)—इस प्रणाली के अन्तर्गत, सेवा-निवृत्ति काल की सम्पूर्ण धनराशि का प्रबन्ध सरकार ही करती है। चूंकि इस प्रणाली के कर्मचारियो को निवृत्ति-निधि (Retirement fund) के लिए अशदान नही करना पडता, अत इस प्रणाली को अशदायी कहा जाता है।

(२) **आंशिक अशदायी** (Partly Contributory)—इस प्रणाली मे, निवृत्ति-निधि का आंशिक भार तो सरकार द्वारा वहन किया जाता है और आंशिक भार कर्मचारियो द्वारा निवृत्ति-निधि के लिए सरकार तो अशदान स्वय देती है और कर्मचारियो का अशदान अनिवार्य रूप से उनके वेतनो मे से काट लिया जाता है।

(३) पूर्ण अंशदायी (Wholly Contributory)—इस प्रणाली मे, निवृत्ति-निधि के लिए सम्पूर्ण अंशदान कर्मचारियो द्वारा ही किया जाता है और सम्पूर्ण अंशदान कर्मचारियो के वेतन मे से काट लिया जाता है।

भारत मे लोक-सेवको के लिए आचार-संहिता और अनुशासन के नियम (Code of Conduct and Discipline Rules for Public Servants in India)

भारत मे लोक कर्मचारियो की आचार-संहिता (Code of conduct) का उद्देश्य—

(१) सेवा के प्रति निष्ठा (Integrity),

(२) सेवा मे रहते हुए राजनीति के प्रति तटस्थता (Neutrality) तथा

(३) सेवा मे अनुशासन बनाए रखना है। किसी भी सुसगठित तथा कुशल सरकारी कार्मिक व्यवस्था के लिए इन तीनो ही बातो का होना अत्यन्त आवश्यक है। भारत मे लोक-कर्मचारियो के लिये आचार-व्यवहार के ये नियम निम्न प्रकार हैं—

I. सरकारी कार्मिक-वर्ग की निष्ठा (Integrity of Public Personnel)

भारत मे सेवा के प्रति सरकारी कर्मचारियो की निष्ठा बनाये रखने के लिये कुछ नियम निर्धारित किये गये हैं। यह व्यवस्था की गई है कि—

(१) सेवा का प्रत्येक सदस्य हर समय अपने कर्त्तव्यो के प्रति पूर्ण निष्ठा तथा भक्ति रखेगा।[1]

(२) सरकारी सरक्षण-प्राप्त फर्मो के निकट सम्बन्धियो की नियुक्तियाँ नही की जा सकेंगी। उपबन्ध यह है कि (क) सरकार की पूर्व अनुमति प्राप्त किये बिना सेवा का कोई भी सदस्य अपने पुत्र, पुत्री अथवा आश्रित को इस बात की आज्ञा नही देगा कि वह ऐसी गैर-सरकारी फर्मों के साथ जिनसे कि उसे सरकारी व्यवहार (Official dealings) करना पडता हो, अथवा ऐसी अन्य फर्मो के साथ, जिनका सरकार के साथ लेन-देन होता हो, व्यापारिक सम्बन्ध रख सके अथवा उनमे नौकरी कर सके।[2] (ख) यदि कोई ऐसा प्रस्ताव सामने आता है जिसमे कि किसी ऐसी फर्म को ठेका देने अथवा सरक्षण प्रदान करने का प्रश्न विचाराधीन हो जिसमे कि सेवा के सदस्य का पुत्र, पुत्री अथवा कोई आश्रित नियुक्त हो, तो उस सम्बन्धित सदस्य को सरकार के समक्ष इस तथ्य को प्रकट करना होगा और तत्पश्चात् उस मामले का निश्चय करके ही समान अथवा उच्च-स्तर के अन्य किसी पदाधिकारी द्वारा किया जायेगा।[3]

(३) सरकारी कर्मचारियो के लिए किसी भी प्रकार का चन्दा या भेंट अथवा उपहार लेना मना है। सरकार की पूर्व अनुमति के बिना सेवा का कोई भी

1 The All India Services (Conduct) Rules, 1958, Rule 3
2 *Ibid* 4—A (1)
3 *Ibid* 4—A (2)

सदस्य किसी भी व्यक्ति से किसी प्रकार की भेंट नही लेगा, अथवा किसी भी प्रकार का चन्दा न तो मागेगा और न स्वीकार करेगा, अथवा न अपनी पत्नी या परिवार के किसी सदस्य को ही ऐसा करने की आज्ञा देगा, अथवा किसी भी उद्देश्य की पूर्ति के लिय धन एकत्रित करने के कार्य से, अन्य किसी रूप मे भी, अपने आपको सम्बद्ध नही रखेगा।[1]

(४) सरकारी कर्मचारियो के लिए कुछ स्थितियो मे निजी व्यापार करना अथवा कोई अन्य नौकरी करना, धन का निवेश (Investment) करना, उधार देना तथा उधार लेना मना है। उपबन्ध यह है कि (क) कोई भी सरकारी कर्मचारी, सरकार की पूर्व अनुमति के बिना, प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से, कोई भी निजी व्यापार अथवा व्यवसाय नही कर सकेगा अथवा कोई दूसरी नौकरी नही कर सकेगा। (ख) कोई भी सरकारी कर्मचारी किसी भी व्यवसाय मे लाभ की आशा से धन नही लगा सकेगा। (ग) सेवा का कोई भी सदस्य अथवा सरकारी कर्मचारी ऐसे काम मे धन का निवेश (Investment) नही कर सकेगा, अथवा न अपनी पत्नी या परिवार के किसी सदस्य को ही ऐसा करने की आज्ञा देगा, जिससे उनके प्रशासकीय कार्यों के निष्पादन मे वाधा पडने की सम्भावना हो। (घ) सेवा का एक सदस्य अपने व्यक्तिगत मामलो की व्यवस्था इस प्रकार करेगा कि जिससे वह ऋणग्रस्तता (Indebtedness) अथवा दिवालियेपन (Insolvency) से बचा रह सके। (ङ) कोई भी सरकारी कर्मचारी, सरकार को पूर्व सूचना दिये विना, किसी भी अचल सम्पत्ति को पट्टे (Lease), गिरवी अथवा वन्धक (Mortage), क्रय-विक्रय भेट (Gift) अथवा अन्य किसी रूप मे, अपने नाम मे अथवा अपने परिवार के किसी सदस्य के नाम मे, ले अथवा दे नही सकेगा। (च) यदि कोई सरकारी कर्मचारी एक हजार रुपये से अधिक मूल्य की किसी चल सम्पत्ति (Movable property) के वारे मे कोई सौदा करता है, चाहे वह सौदा उस सम्पत्ति के क्रय या विक्रय के सम्बन्ध मे हो अथवा अन्य किसी सम्बन्ध मे, उसे उस सौदे की सूचना सरकार को देनी होगी। चल सम्पत्ति मे अन्य वस्तुओ के साथ-साथ निम्न सम्पत्ति भी सम्मिलित हैं (१) जवाहरात, वीमा पालिसी, शेयर, प्रतिभूतियाँ (Securities) तथा ऋण-पत्र (Debentures), (२) ऐसे सरकारी कर्मचारी द्वारा दिये गये कर्ज (Loans), चाहे वे सुरक्षित (Secured) हो या नही, (३) मोटर कारे, मोटर साइकिले, घोडे अथवा वाहन का अन्य कोई साधन, और (४) रेफ्रिजरेटर, रेडियो तथा रेडियोग्राम। (छ) सेवा का प्रत्येक सदस्य सेवा मे प्रथम नियुक्ति के समय तथा उसके पश्चात् प्रत्येक वारह माह के अन्तर पर अपने द्वारा अधिकृत समस्त तथा अचल सम्पति के सम्बन्ध मे सरकार के समक्ष एक विवरण-पत्र प्रस्तुत करेगा।[2]

---

1 *Ibid* 9-10

2 The All India Services (conduct) Rules 1954 Summary of Rules 9-15

II. राजनीति के सम्बन्ध मे तटस्थ रहने के नियम
(Rules for Securing Neutrality in politics)

लोक सेवको को सरकार की सेवा करनी चाहिए, किसी दल विशेष की नही। मिविल-सेवको का भाग्य देश की राजनीति के भाग्य से सम्वन्द्ध नही होना चाहिए। प्रशासन मे सत्यनिष्ठा एव कार्य-कुशलता लाने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि सिविल-सेवक देश की राजनीति के प्रति तटस्थ रहे। इस सम्बन्ध मे भारत मे जो नियम है उनमे से उपबन्ध है कि (क) सेवा का कोई भी सदस्य किसी भी राजनैतिक दल का अथवा किसी भी ऐसे सगठन का, जोकि राजनीति मे भाग लेता हो, न तो सदस्य बनेगा अथवा न अन्य किसी प्रकार से इससे सम्वन्ध रखेगा, और न ही वह किसी राजनैतिक आन्दोलन या राजनैतिक क्रिया मे भाग लेगा या उसकी महायता के लिए चन्दा देगा अथवा न अन्य किसी प्रकार से उसकी महायता करेगा। (ख) प्रत्येक सरकारी कर्मचारी का यह कर्तव्य होगा कि वह इस बात का प्रयास करे कि उसके परिवार का कोई भी सदस्य ऐसे किसी भी आन्दोलन अथवा कार्यवाही मे, जोकि प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से विधि (Law) द्वारा स्थापित सरकार के विरुद्ध हो, न तो भाग ले, न उसकी महायता के लिये चन्दा दे अथवा न अन्य किसी भी प्रकार से उसकी सहायता करे, यदि कोई कर्मचारी अपने परिवार के किसी सदस्य को ऐसे किमी आन्दोलन अथवा कार्यवाही मे भाग लेने से, या उसकी सहायतार्थ चन्दा देने से अथवा अन्य किसी प्रकार से उनकी सहायता करने से रोकने मे असमर्थ हो तो उसे इस स्थिति की सूचना सरकार को देनी होगी। (ग) कोई भी सरकारी कर्मचारी विधान-मण्डल अथवा स्थानीय सत्ता के किसी भी निर्वाचन (Election) मे न तो भाग लेगा, न उसके पक्ष मे प्रचार करेगा न अन्य किसी प्रकार से उसमे हस्तक्षेप करेगा अथवा न उसके सम्बन्ध मे अपने किसी प्रभाव का ही उपयोग करेगा। (घ) यदि किसी सरकारी कर्मचारी को निर्वाचनो मे मत (वोट) देने का अधिकार प्राप्त है तो वह इस अधिकार का प्रयोग कर सकता है, परन्तु ऐसा करते समय वह इम प्रकार का कोई सकेत नही देगा कि वह किसे वोट देना चाहता है अथवा उसने किसे या किस प्रकार वोट दिया है। (ड) कोई भी सरकारी कर्मचारी रेडियो के किसी प्रसारण (ब्रॉडकास्ट) मे, अथवा सुगमता से या अपने नाम से या अन्य किसी व्यक्ति के नाम मे प्रकाशित किसी लेख मे, अथवा समाचार-पत्र या प्रेस को दिये गये किमी वक्तव्य या पत्र मे, अथवा किसी भी सार्वजनिक वक्तव्य अथवा प्रकाशन मे अपना ऐसा कोई विचार या मत अथवा तथ्य प्रकट नही करेगा—

(१) जिससे केन्द्र सरकार अथवा किसी राज्य सरकार की किसी प्रचलित (Current) अथवा अभिनव (Recent) नीति अथवा कार्यवाही की विपरीत आलोचना करने का अवसर मिले, अथवा

(२) जिससे केन्द्र सरकार और किसी भी राज्य सरकार के पारस्परिक सम्वन्धो के विषय मे भ्रम उत्पन्न हो, अथवा

(३) जिससे केन्द्र सरकार और किसी विदेशी सरकार के बीच के सम्बन्धो के विषय मे भ्रम उत्पन्न हो ।[1]

III. भारत मे अनुशासन तथा अपील के नियम
(Discipline and Appeal Rules in India)

सगठन की कुशलता तथा सुचारु सचालन के लिए सेवा मे अनुशासन बने रहना अत्यन्त आवश्यक है ।

दण्ड (Penalties)—उचित तथा पर्याप्त कारणो के आधार पर, और जैसी कि आगे व्यवस्था दी गई है, सेवा के एक सदस्य को निम्नलिखित दण्ड दिये जा सकते हैं

(१) निन्दा अथवा भर्त्सना,

(२) वेतन-वृद्धि (Increment) अथवा पदोन्नति को रोक देना ,

(३) पद स्थिति (Rank) मे कमी, जिसमे कालक्रम (Time-scale) अथवा पद का कम किया जाना (Reduction to a lower post) अथवा एक कालक्रम मे निम्न दर्जा दिया जाना सम्मिलित है ,

(४) सरकारी आदेशो की उपेक्षा अथवा उल्लघन से सरकार को जो आर्थिक हानि हुई हो, उस समस्त हानि अथवा उसके एक भाग की पूर्ति उसके वेतन मे से करना ,

(५) आनुपातिक पेन्शन पर अनिवार्य सेवा-निवृत्ति ,

(६) सेवा से हटाया जाना (Removal), जिसके कारण वह भविष्य मे नौकरी के लिए अयोग्य अथवा अनर्ह Disqualified) नही होगा ;

(७) सेवा से पदच्युति (Dismissal), जिसके कारण वह साधारणतया भविष्य मे नौकरी के लिए अयोग्य हो जायेगा ।

सेवा के किसी भी सदस्य को केन्द्र सरकार की आज्ञा के बिना पदच्युति, पक्तिच्युत करने अथवा अनिवार्य सेवा-निवृत्ति को दण्ड नही दिये जा सकेंगे ।

दंड देने की विधि अथवा प्रक्रिया
(Procedure for Imposing Penalties)

(१) लोक सेवक जाँच अधिनियम, १८५० (Public Servants Inquiry Act, 1850) के उपबन्धो पर कोई भी विपरीत प्रभाव डाले बिना यह व्यवस्था है कि सेवा के किसी भी सदस्य पर नियम ३ मे उल्लिखित कोई भी दण्ड देने का आदेश तब तक जारी नही किया जायेगा जब तक कि उस सदस्य को उन कारणो की लिखित सूचना न दे दी गई हो, जिनके आधार पर कि दण्ड की कार्यवाही का प्रस्ताव किया गया है, और उसे अपना बचाव करने का पर्याप्त अवसर न प्रदान किया गया हो ।

(२) उन कारणो को जिनके आधार पर किसी सरकारी कर्मचारी के विरुद्ध कार्यवाही करने का प्रस्ताव किया जाए, एक निश्चित अभियोग (Charge) अथवा

---

1 *Ibid* Rules 4 (1), (2), (3), (4) i, ii, iii

अभियोगो का रूप दिया जायेगा और उस अभियोग की सूचना सेवा के उस सदस्य को दे दी जायेगी जिसके विरुद्ध कार्यवाही की जा रही है, साथ ही उसको उन सब आरोपो (Allegations) का, जिन पर कि प्रत्येक अभियोग आधारित है, तथा ऐसी अन्य सब बातो एव स्थितियो का, जिन पर कि उस मामले के सम्बन्ध मे आदेश जारी करते समय विचार किया गया हो, एक विवरण-पत्र (Statement) भी दिया जायेगा।

(३) उस सरकारी कर्मचारी से यह अपेक्षा की जायेगी कि वह ऐसी अवधि के अन्तर्गत, जोकि उस मामले की परिस्थितियो को देखते हुए सरकार द्वारा युक्तियुक्त रूप से (Reasonable) पर्याप्त समझी जाए, अपने बचाव के सम्बन्ध मे एक लिखित वक्तव्य देगा और यह स्पष्ट करेगा कि क्या वह स्वय सुनवाई के लिए उपस्थित होना चाहता है।

(४) सम्बन्धित सरकारी कर्मचारी सरकार से यह प्रार्थना कर सकता है कि वह लिखित वक्तव्य अथवा विवरण-पत्र तैयार करने के सम्बन्ध मे उसको आवश्यक सरकारी कागजातो अथवा अभिलेखो (Official records) तक पहुँचने की आज्ञा प्रदान करे। परन्तु यदि सरकार की राय मे ऐसे अभिलेख उस मामले से बिल्कुल भी सम्बद्ध नही है, अथवा यदि लोक-हित की दृष्टि से ऐसी पहुँच की आज्ञा देना वाछनीय नही है तो वह यथेष्ट कारणो के आधार पर, जिन्हे कि लिखित रूप मे रखा जाना चाहिये, उसको ऐसी पहुँच (Access) की आज्ञा देने से इन्कार कर सकती है।

(५) उप-नियम (३) के अनुसार उस कर्मचारी से लिखित वक्तव्य प्राप्त होने के पश्चात्, अथवा यदि निर्धारित अवधि के अन्तर्गत ऐसा कोई लिखित वक्तव्य प्राप्त न हो तब सरकार, यदि आवश्यक समझे तो उस कर्मचारी के विरुद्ध लगाये आरोपो की जाँच के लिए एक जाँच मण्डल (Board of Inquiry) अथवा जाँच अधिकारी (Inquiry officer) की नियुक्ति कर सकती है। इस प्रकार वह उपनियम (६) के उपबन्ध के अनुसार आरोपो की जाँच करा लेगी। यदि सरकार ऐसे जाँच मण्डल अथवा जाँच अधिकारी की नियुक्ति की आवश्यकता नही समझती, तो वह आरोपो अथवा अभियोगो की जाँच ऐसी रीति से करेगी जो उसे उपयुक्त प्रतीत हो।

(६) यदि सम्बद्ध सरकारी कर्मचारी स्वय व्यक्तिश सुनवाई के लिए उपस्थित होना चाहता है तो उसे ऐसा करने दिया जायेगा। यदि वह कहता है कि मामले की मौखिक जाँच (Oral inquiry) की जाए अथवा यदि सरकार ऐसा करने का आदेश दे, तो यथास्थिति (As the case may be) जाँच-मण्डल अथवा जाँच अधिकारी द्वारा मौखिक जाँच की जायेगी। ऐसी जाँच के समय उन आरोपो के सम्बन्ध मे, जिन्हे कि सम्बद्ध कर्मचारी ने स्वीकार नही किया है, गवाहियाँ ली जायेंगी और उस कर्मचारी को यह अधिकार प्राप्त होगा कि ऐसे गवाहो (Witnesses) से जिरह (Cross examination) कर सके, व्यक्तिश स्वय गवाही दे सके तथा इच्छानुसार गवाहो को बुला सकें।

किन्तु यथास्थिति जाँच-मण्डल अथवा जाँच अधिकारी ऐसे गवाह को बुलाने की आज्ञा देने से इन्कार कर सकता है, पर इन्कार के ऐसे कारणों को लेखबद्ध किया जाना चाहिए।

(७) जहाँ जाँच-मण्डल की नियुक्ति की जायेगी तो उसमे दो से कम वरिष्ठ अधिकारी (Senior officers) नही होगे, किन्तु ऐसे मण्डल का कम से कम एक सदस्य उस सेवा का पदाधिकारी होगा जिससे कि वह सरकारी कर्मचारी सम्बन्धित है।

(८) इस नियम के उपबन्धो (Provisions) के अन्तर्गत सेवा के एक सदस्य के विरुद्ध जाच मे जो कार्यवाहिया (Proceedings) सचालित की जायेंगी उनमे गवाही का पर्याप्त विवरण, निर्णयो का एक प्रतिवेदन (Report) तथा वे कारण सम्मिलित होगे जिन पर कि वे निर्णय आधारित हो, परन्तु इन कार्यवाहियो मे कर्मचारी को दिये जाने वाले दण्ड के सम्बन्ध मे तब तक कोई भी सिफारिश नही होगी जब तक कि सरकार ऐसी सिफारिश करने को विशेष रूप से न कहे।

(९) सेवा के सदस्य (सरकारी कर्मचारी) के विरुद्ध जाच पूर्ण हो जाने के पश्चात् और दण्ड देने वाली सत्ता द्वारा दिये जाने वाले दण्ड के सम्बन्ध मे सामयिक अथवा अस्थायी निर्णय करने के पश्चात्, यदि प्रस्तावित दण्ड पदच्युति (Dismissal), पद से हटाये जाने (Removal), अनिवार्य सेवा-निवृत्ति (Compulsory retirement) अथवा पक्तिच्युति करने (Reduction in rank) का है तो, दोषारोपित सरकारी कर्मचारी को जाच के प्रतिवेदन की एक प्रतिलिपि दी जायेगी और उसको कारण बतलाने (To show case) का एक और अवसर प्रदान किया जायेगा कि प्रस्तावित दण्ड उस पर क्यो न लागू कर दिया जाये।

आयोग से परामर्श (Consultation with the Commission)—सरकारी कर्मचारी को नियम ३ मे उल्लिखित कोई भी दण्ड दिये जाने का आदेश सरकार द्वारा आयोग मे परामर्श किये बिना जारी नही किया जायेगा।

किन्तु ऐसे मामलो मे, जिनके बारे मे कि राज्य सरकार तथा आयोग के बीच मतभेद हो, सम्पूर्ण विषय केन्द्र सरकार को सौंप दिया जायेगा और उसके बारे मे उसका निर्णय अन्तिम होगा।

अनुशासनिक कार्यवाहियो के समय निलम्बन (Suspension during Disciplinary Proceedings)—(१) किसी भी मामले मे लगाये गये अभियोगो (Charges) तथा तत्सम्बन्धी परिस्थितियो को देखने हुए यदि वह सरकार, जोकि अनुशासनिक कार्यवाही कर रही है, उस सरकारी कर्मचारी को निलम्बित अथवा मुअत्तल करना आवश्यक अथवा वाछनीय समझती है जिसके विरुद्ध कि ऐसी अनुशासनिक कार्यवाहिया प्रारम्भ की जा रही है तो वह सरकार—

(क) यदि वह सरकारी कर्मचारी उसके अधीन सेवा कर रहा है तो उसको निलम्बित अथवा मुअत्तल (Suspend) करने का आदेश जारी कर सकती है, अथवा

(ख) यदि वह सरकारी कर्मचारी अन्य सरकार के अधीन सेवा कर रहा है तो वह उस सरकार से प्रार्थना कर सकती है कि उस कर्मचारी के मामले की जाच का निर्णय होने तक तथा उस सम्बन्ध मे अन्तिम आदेश जारी होने तक वह उसको निलम्बन के अन्तर्गत रखे।

किन्तु ऐसे मामलो मे, जिनके बारे मे कि दो राज्य सरकारो (State Governments) के बीच मतभेद हो, सम्पूर्ण विषय केन्द्र सरकार को सौंप दिया जायेगा और इस सम्बन्ध मे उसका निर्णय अन्तिम होगा।

(२) एक सरकारी कर्मचारी को, जिसे कि दण्डापराध (Criminal charge) अथवा अन्य किसी अपराध के कारण अडतालीस घण्टे से अधिक की अवधि के लिए सरकारी सरक्षण मे नजरबन्द (Detained) रखा गया हो, सम्बन्धित सरकार द्वारा इस नियम के अन्तर्गत निलम्बित (मुअत्तल) हुआ ही माना जायेगा।

(३) उस सरकारी कर्मचारी को, जिसके विरुद्ध कि दण्डापराध का मामला विचाराधीन हो, उस सरकार की इच्छा पर जिसके अन्तर्गत वह सेवा कर रहा है, अनुशासनिक कार्यवाहियो की अवधि की समाप्ति तक निलम्बित किया जा सकता है, यदि उसका अपराध सरकारी सेवक के रूप मे उसके पद से सम्बन्धित हो अथवा उससे उसके कर्तव्यो के निष्पादन मे परेशानी उत्पन्न होने की अथवा नैतिक पतन की सम्भावना हो।

अपील का अधिकार (Right of Appeal)—(१) प्रत्येक सरकारी कर्मचारी को यह अधिकार प्राप्त होगा कि वह नियम ३ के खण्ड (१), (२) (३) व (४) मे उल्लिखित दण्डो मे से कोई दण्ड उसको दिये जाने के सम्बन्ध मे राज्य सरकार द्वारा पास किये गये आदेश के विरुद्ध, जैसी कि आगे व्यवस्था दी गई है, केन्द्र सरकार से अपील कर सके।

(२) सरकारी कर्मचारी को यह अधिकार प्राप्त होगा कि वह नियम ६ के उप-नियम २ (ख) तथा ३ (ख) के अन्तर्गत राज्य सरकार द्वारा पास किये गए किसी भी आदेश के विरुद्ध केन्द्र सरकार से अपील कर सके, ऐसी अपील राज्य सरकार द्वारा पास किये गए किसी ऐसे आदेश (Order) के विरुद्ध भी की जा सकेगी जोकि—

(अ) उसके पद पर लागू होने वाले नियमो (Rules) के द्वारा सचालित उसकी सेवा की दशाओ, वेतन, भत्तो अथवा पेन्शन मे ऐसा परिवर्तन कर दे जो उसके लिए हानिकर हो, अथवा

(आ) कर्मचारी की सेवा की दशाओ, वेतन, भत्ते अथवा पेन्शन का नियमन करने वाले नियमो मे से किसी भी नियम के उपवन्धो (Provisions) की ऐसी व्याख्या करे जो कि उसके लिए हानिकर हो, या

(इ) अपने प्रभाव से कनिष्ठ वेतन-क्रम से ज्येष्ठ वेतन-क्रम मे उसकी पदोन्नति (Promotion) का उल्लघन करे, अथवा

(ई) अपने प्रभाव से दक्षता अवरोध (Efficiency bar) उसकी वेतन-वृद्धि रोक दे।

वे परिस्थितियां जिनमें अपील करने का अधिकार नहीं होता
(Cases Where There is no Right of Appeal)

(१) किसी भी सरकारी कर्मचारी को केन्द्र सरकार द्वारा पास किये गए आदेश के सम्बन्ध मे अपील करने का अधिकार नही होगा।

(२) नियम १४ के अन्तर्गत अपील पर प्रतिवन्ध लगाने वाले समर्थ प्राधिकारो (Competent authority) के आदेश के विरुद्ध भी अपील नही की जा सकेगी।

(३) यह माना जायेगा कि उपनियम (१) अथवा उप-नियम (२) मे ऐसी कोई बात नही है जो कि नियम २० के उपवन्धो के अन्तर्गत तथा उनके ही अनुसार राष्ट्रपति (President) के समक्ष एक विनति-पत्र (Memorial) प्रस्तुत करने के सरकारी कर्मचारी के अधिकार को प्रभावित करे अथवा उसमे कटौती करे।

अपील सुनने वाली सत्ता द्वारा अपीलो पर विचार
(Consideration of Appeals by Appellate Authority)

(१) नियम ३ के खण्ड (१), (२), (३) व (४) मे उल्लिखित कोई भी दण्ड दिये जाने के आदेश के विरुद्ध अपील किये जाने की स्थिति मे केन्द्र सरकार (Central Government) इस बात पर विचार करेगी कि

(क) क्या वे तथ्य, जिन पर कि आदेश आधारित है, प्रस्थापित किये गये हैं,

(ख) क्या प्रस्थापित तथ्य ((Established facts) अनुशासनिक कार्यवाही करने का पर्याप्त आधार प्रस्तुत करते हैं, तथा

(ग) क्या दिया गया दण्ड अत्यधिक है, पर्याप्त है अथवा अपर्याप्त है और यह विचार करने के पश्चात्, आयोग के परामर्श से, ऐसा आदेश जारी करेगी जोकि वह उचित समझे।

(२) नियम १० के उप-नियम (२) के अन्तर्गत दायर की गई अपील के मुकदमे मे केन्द्र सरकार, उस मामले की सम्पूर्ण परिस्थितियो को दृष्टिगत रखते हुए, ऐसा आदेश जारी करेगी जोकि उसे उचित तथा न्यायसगत प्रतीत हो।

(३) उप-नियम (१) अथवा उप-नियम (२) के अन्तर्गत्त दायर की गई अपील मे केन्द्र सरकार द्वारा दिया गया प्रत्येक आदेश अन्तिम होगा तथा सम्वन्धित राज्य सरकार ऐसे आदेश को तुरन्त ही कार्यान्वित करेगी।

अपील दायर करने की प्रक्रिया व रूप
(Form and Procedure for Submission of Appeals)

(१) अपील दायर करने वाला प्रत्येक सरकारी कर्मचारी पृथक्-पृथक् तथा स्वय अपने नाम से ऐसा कर सकेगा।

(२) इन नियमो के अन्तर्गत दायर की जाने वाली प्रत्येक अपील स्वराष्ट्र मन्त्रालय मे भारत सरकार के सचिव को सम्बोधित की जायेगी और उसके सम्बन्ध मे निम्न बातो का ध्यान रखा जायेगा ।

(क) उस अपील मे ऐसी सम्पूर्ण सामग्री, विवरण-पत्र तथा दलीले सम्मिलित हो जिन पर कि अपील करने वाला कर्मचारी निर्भर हो ,

(ख) उसमे अपमानजनक अथवा अनुचित भाषा का प्रयोग न किया जाये, और (ग) अपील प्रत्येक पहलू से पूर्ण हो ।

(३) ऐसी प्रत्येक अपील उस कार्यालय के द्वारा, जिसके अधीन की अपील करने वाला कर्मचारी उस समय कार्य कर रहा हो, तथा उस सरकार के द्वारा, जिस के आदेश के विरुद्ध अपील दायर की गई हो, प्रस्तुत की जायेगी ।

इन नियमो के निर्माण से पूर्व दायर की गई अपीलें

(Appeals preferred prior to Commencement of these Rules)

इन नियमो मे ऐसी कोई बात नही है जोकि किसी कर्मचारी को अपील करने के किसी ऐसे अधिकार से वञ्चित करे जोकि उसे इन नियमो के बनाने तथा लागू होने से पूर्व जारी किये गये किसी आदेश की स्थिति मे प्राप्त होता । इन नियमो के लागू होने के समय रुकी पडी हुई अथवा उसके बाद दायर की गई किसी भी अपील को इन नियमो के अन्तर्गत दायर की गई अपील के सदृश ही माना जायेगा और उसका निपटारा भी इसी प्रकार किया जायेगा कि मानो यह एक ऐसे आदेश (Order) के विरुद्ध प्रेषित की गई अपील है जिसके विरुद्ध कि इन नियमो के अन्तर्गत अपील दायर की जा सकती थी ।

पुनर्विचार अथवा संशोधन :

इन नियमो मे उल्लिखित किसी बात के होते हुए भी, किन्तु सदा नियम ४ के उप-नियम (१) तथा नियम ६ के उपबन्धो के अधीन, यथास्थित (As the case may be) केन्द्र सरकार अथवा सम्बन्धित राज्य सरकार, नियम १२ के अन्तर्गत जारी किये गए आदेश को छोड कर, अन्य किसी भी ऐसे आदेश के सम्बन्ध मे पुनर्विचार (Review) तथा उसमे पुन संशोधन (Revision) कर सकती है जोकि इन नियमो के द्वारा मिली हुई शक्तियो को क्रियान्वित करने के लिए उनके द्वारा जारी किया गया हो, किन्तु ऐसा संशोधन, अपील दायर होने की स्थिति मे तो आदेश जारी होने की तिथि से ६ माह की अवधि के अन्तर्गत, और यदि ऐसी अपील न की गई हो तो उस स्थिति मे, प्रारम्भिक आदेश जारी होने के बाद एक वर्ष की अवधि के अन्तर्गत ही किया जा सकेगा

किन्तु शर्त यह है कि जहाँ ऐसे किसी आदेश द्वारा किये जाने वाले दण्ड मे वृद्धि करने का प्रस्ताव किया गया हो, तो सम्बन्धित सरकारी कर्मचारी को उस प्रस्तावित वृद्धि के विरुद्ध कारण दिखलाने का अवसर प्रदान किया जायेगा ।

एक और शर्त यह भी है कि जहाँ प्रारम्भिक आदेश, यथास्थिति, केन्द्र सरकार अथवा सम्बन्धित राज्य सरकार द्वारा आयोग से परामर्श करने के पश्चात् जारी किया गया हो, तो आयोग से परामर्श किए बिना उसमे कोई सशोधन नही किया जायेगा ।

विनति-पत्र (Memorials)

(१) सेवा के एक सदस्य (A member of the service) को यह अधिकार होगा कि वह केन्द्र सरकार अथवा राज्य सरकार के ऐसे किसी भी आदेश के विरुद्ध जिसके द्वारा कि वह पीडित हुआ है, राष्ट्रपति के समक्ष एक विनति-पत्र प्रस्तुत कर सके, किन्तु ऐसा विनति-पत्र उक्त आदेश के जारी होने की तिथि से तीन वर्ष की अवधि के अन्तर्गत ही प्रस्तुत किया जायेगा ।

(२) प्रत्येक विनति-पत्र विनतिकर्त्ता (Memorialist) के हस्ताक्षर द्वारा प्रमाणित हो और विनतिकर्त्ता द्वारा ही अपने उत्तरदायित्व पर प्रस्तुत किया जायेगा ।

(३) इन नियमो के अन्तर्गत प्रस्तुत किये गये प्रत्येक विनति-पत्र मे निम्न बातो का ध्यान रखा जायेगा —

(क) उनमे ऐसी सम्पूर्ण सामग्री, विवरण-पत्र तथा दलीलें सम्मिलित हो जिन पर कि विनतिकर्त्ता निर्भर हो ,

(ख) उसमे अपमानजनक अथवा अनुचित भाषा का प्रयोग न हो ,

(ग) विनति-पत्र स्वय मे प्रत्येक पहलू से पूर्ण हो , तथा

(घ) उसके अन्त मे एक विशिष्ट प्रार्थना अथवा प्रतिवेदन किया जाए ।

(४) यदि विनति-पत्र राज्य सरकार के आदेशो के विरुद्ध है, तो उसे सम्बन्धित राज्य सरकार के माध्यम से ही प्रस्तुत किया जाना चाहिए, और यदि विनति-पत्र केन्द्र सरकार के आदेशो के विरुद्ध है, तो वह केन्द्र सरकार से उस मन्त्रालय (Ministry) अथवा उपयुक्त प्राधिकारी के माध्यम से प्रस्तुत किया जायेगा जिसके अन्तर्गत कि वह सरकारी कर्मचारी उस समय कार्य कर रहा हो ।

(५) उप-नियम (४) के अन्तर्गत प्रेषित विनति-पत्र के साथ सम्बन्धित सामग्री एव तथ्यो (Facts) का एक सक्षिप्त विवरण-पत्र सलग्न होगा, और जब तक कि ऐसा न करने के विशिष्ट कारण वर्तमान न हो, विनति-पत्र उस विषय के सम्बन्ध मे, यथास्थिति—

(क) सम्वन्धित राज्य सरकार की, या

(ख) केन्द्र सरकार के उस मन्त्रालय अथवा उपयुक्त प्राधिकारी की, जिसके अन्तर्गत कि वह सरकारी कर्मचारी उस समय काम कर रहा हो, अथवा

(ग) सम्वन्धित राज्य सरकार तथा केन्द्र सरकार, दोनो की ही सम्मति अकित होगी ।

(६) वह सत्ता (Authority), जिसके आदेशो के विरुद्ध इस नियम के अन्तर्गत एक विनति-पत्र प्रस्तुत किया गया है, उस सम्वन्ध मे राष्ट्रपति द्वारा दिए गये किसी भी आदेश को कार्यान्वित करेगी ।

IV. भारत में लोक-सेवको के लिए निवृत्ति लाभ
(Retirement benefits to Public Servants in India)

केन्द्र सरकार के कर्मचारियो के लिए निवृत्ति लाभो की दो मुख्य प्रणालियाँ प्रचलित हैं अर्थात् पेन्शन तथा अशदायी भविष्य निधि (Contributory provident fund) प्रचलित **पेन्शन प्रणाली के अन्तर्गत** कर्मचारी सेवा-निवृत्त होने पर जीवन भर के लिए आवर्ती (Recurring) मासिक धन तथा सेवोपहार (Gratuity) के रूप मे एक मुश्त रकम (A lump sum) प्राप्त करता है, इन दोनो का ही निर्धारण कर्मचारी की सेवा की अवधि को दृष्टिगत रख कर किया जाता है। उसकी मृत्यु होने की दशा मे, कुछ शर्तों के अन्तर्गत, उसके परिवार को एक सीमित अवधि के लिए मासिक धनराशि प्राप्त होती है। **भविष्य निधि प्रणाली के अन्तर्गत** कर्मचारी को एक मुश्त रकम मिलती है जिसमे कि उसका अपना व सरकार का अशदान तथा उस पर मिलने वाल व्याज सम्मिलित होता है।

कर्मचारियो को वैधानिक रूप से पेन्शन का कोई अधिकार प्राप्त नही होना, ऐसी बात नही है कि जिस दिन कोई कर्मचारी सेवा-निवृत्त (Retire) होता है उसी दिन से पेन्शन आप से आप ही देय (वाजिव) हो जाती हो। इसके लिए तो प्रार्थना पत्र देना होता है, और इसकी अनुमति केवल तभी दी जाती है जवकि उपयुक्त प्राधिकारी इस बात से सन्तुष्ट हो जाता है कि कुछ निश्चित दशाए एव शर्तें पूर्ण कर दी गई हैं तथापि, इसका अर्थ यह नही है कि पेन्शन को पेन्शन वाली नौकरी से प्राप्त होने वाले सामान्य लाभो का एक भाग नही माना जाता। यह एक ऐसा तत्व है जिसे कि वेतन की दरो का निर्धारण करते समय दृष्टिगत रखा जाता है, और वास्तव मे इसे कर्मचारी की उस सामान्य आशा का ही एक भाग समझा जाता है जिस पर कि वह यथार्थता एव निश्चितता के साथ भरोसा कर सकता है। वस्तु-स्थिति यह है कि यहाँ तक कि कर्मचारियो की ओर से भी पेन्शनो को वार-बार अथवा अनुचित अस्वीकृति की या पेन्शनो मे कमी करने अथवा उनको जब्त करने की कोई शिकायत नही की गई। इस प्रकार इसका व्यावहारिक रूप विवादास्पद नही है वल्कि सैद्धान्तिक रूप ही विवादास्पद है। यह आरोप लगाया जाता है कि कर्मचारी को मिलने वाली पेन्शन के साथ सन्तोषजनक सेवा तथा इससे भी अधिक भविष्य मे अच्छा आचरण करने की जो शर्त लगाई गई है वह कर्मचारी को हर समय भयभीत रखती है और वहुधा उसको अपने मन की राजनैतिक एव श्रमिक सघ की कार्यवाहियो मे भाग लेने से रोकती है।

सामान्य शर्तें
(General Conditions)

(१) प्रत्येक पेन्शन की स्वीकृति तथा उसके जारी रहने की एक अन्तर्निहित शर्त यह होती है कि पेन्शन प्राप्त करने वाले व्यक्ति का आचरण भविष्य मे अच्छा रहना चाहिए।

(२) यदि केन्द्र सरकार को सम्वन्धित राज्य सरकार से ऐसी सूचना प्राप्त हो कि सेवा-निवृत्त होने के पश्चात् पेन्शन प्राप्त करने वाला कोई व्यक्ति किसी गभीर अपराध (Crime) अथवा दुर्व्यवहार या दुराचरण (Misconduct) का दोषी ठहराया गया है तो केन्द्र सरकार एक निश्चित अवधि के लिए अथवा अनिश्चित काल के लिए, ऐसी किसी भी पेन्शन अथवा उसके अश को रोक सकती है अथवा वापिस ले सकती है।

(३) उप-नियम (२) के अन्तर्गत किसी भी सम्पूर्ण पेन्शन अथवा उसके अश की अदायगी रोकने अथवा उसको वापिस लेने के किसी भी प्रश्न पर केन्द्र सरकार का निर्णय अन्तिम होगा।

सीमा (Limitation)—*कोई भी कर्मचारी एक ही कार्यालय मे एक ही* समय मे अथवा एक ही सतत सेवा से दो पेन्शने नही प्राप्त कर सकता।

सेवा से हटाया जाना, पदच्युति अथवा त्यागपत्र (Remsoval, Dismissal or Resignation from Service)—(१) ऐसे किसी भी व्यक्ति को निवृत्ति लाभो की स्वीकृति नही दी जा सकती जिसको पदच्युत किया गया हो, या सेवा से हटाया गया हो अथवा जिसने सेवा से त्याग-पत्र दिया हो।

किन्तु, यदि किसी विशिष्ट मामले की परिस्थितियो की दृष्टि से ऐसा करना अनावश्यक एव उचित हो तो राज्य सरकार उस व्यक्ति के लिए, जिसे कि पदच्युत किया गया हो अथवा सेवा से हटाया गया हो, अनुकम्पा भत्ते (Compansionate allowances) की स्वीकृति दे सकती है जोकि उस निवृत्ति लाभ के दो तिहाई से अधिक नही होना चाहिए जितना कि उसे उस स्थिति मे प्राप्त होता जब कि वह असमर्थ हो गया होता और पदच्युत न किया गया होता अथवा सेवा से न हटाया गया होता।

(२) जब किसी सरकारी कर्मचारी से, एक वैधानिक अथवा अन्य निकाय (Body) के अन्तर्गत उसकी नियुक्ति की एक शर्त के रूप मे, सेवा-निवृत्त होने अथवा सेवा से त्याग-पत्र (Resignation) देने की माग की जाए, तो उसे उतने निवृत्ति लाभो की स्वीकृति दी जायेगी जितने का कि वह उस समय अधिकारी (हकदार) होता जबकि वह अशक्त अथवा असमर्थ हो गया होता और सेवा से त्याग-पत्र न देता अथवा सेवा-निवृत्त न होता।

पेन्शन से प्रतिलब्धि अथवा वसूली
(Recovery from Pension)

केन्द्र सरकार अपना यह अधिकार सुरक्षित रखती है कि यदि पेन्शन प्राप्त करने वाला कोई व्यक्ति अपने सेवा-काल मे, जिसमे कि सेवा-निवृत्त (Retire) हो जाने के पश्चात् पुन नौकरी पर लगने के समय की सेवा भी सम्मिलित है, विभागीय अथवा न्यायिक कार्यवाहियो से गम्भीर दुर्व्यवहार अथवा दुराचार (Misconduct) का दोषी पाया जाए अथवा उसके दुराचरण अथवा उपेक्षा (Negligence) से केन्द्र

या राज्य सरकार को कोई आर्थिक हानि हुई हो तो वह (केन्द्र सरकार), स्थायी रूप से अथवा एक निश्चित अवधि के लिए, उनकी सम्पूर्ण पेन्शन या उसके अश की अदायगी पर रोक लगा सके अथवा उसको वापिस ले सके तथा केन्द्र अथवा राज्य सरकार को जो आर्थिक हानि हुई हो, वह सम्पूर्ण या उसका भाग उसकी पेन्शन से वसूल करने का आदेश दे सके।

सेवा-निवृत्ति पेन्शन
(Retirement Pension)

(१) सेवा का कोई भी सदस्य, जिसने सेवा के ३० वर्ष पूरे कर लिए हो, राज्य सरकार को लिखित मे कम से कम तीन माह की पूर्व सूचना (Previous notice) देकर सेवा से निवृत्त हो सकता है।

(२) राज्य सरकार, केन्द्र सरकार की अनुमति लेकर तथा सेवा के उस सदस्य को जिसने कि सेवा के ३० वर्ष पूरे कर लिए हो, लिखित मे कम से कम तीन माह की पूर्व सूचना देकर उससे सेवा-निवृत्त होने की माग कर सकती है।

(३) सेवा के उस सदस्य को, जोकि उपनियम (१) अथवा (२) के अन्तर्गत, सेवा-निवृत्त हुआ हो, सेवा-निवृत्ति पेन्शन तथा 'मृत्यु व निवृत्ति सेवोपहार' (Death-Com-retirement gratuity) की स्वीकृति दी जायेगी।

निवृत्ति लाभो की स्वीकृति की शर्तें
(Conditions for grant of Retirement Benefits)

(१) इन नियमो के अन्तर्गत मिलने वाले सम्पूर्ण निवृत्ति-लाभ एक स्वाभाविक घटना-क्रम के रूप मे अथवा उस समय तक नही प्रदान किए जायेंगे जब तक कि उनकी सेवा पूर्णतया सन्तोषजनक न रही हो।

(२) यदि कर्मचारी की सेवा पूर्णतया सन्तोषजनक नही रही है तो केन्द्र सरकार द्वारा राज्य सरकार की सिफारिश पर, उक्त नियमो के अन्तर्गत मिलने वाले निवृत्ति लाभो की राशि मे उस सीमा तक कमी की जा सकती है जितनी कि वह (केन्द्र सरकार) उचित तथा उपयुक्त समझे।

किन्तु यदि एक बार निवृत्ति लाभो की स्वीकृति प्रदान कर दी जाए तो फिर इस आधार पर उनमे कमी नही की जा सकती कि सेवा के पूर्णतया असन्तोषजनक रहने का प्रमाण निवृत्ति-लाभो की स्वीकृति देने के पश्चात् उपलब्ध हुआ।

(३) किसी भी मामले पर, जिसमे कि निवृत्ति-लाभो अथवा अनुकम्पा, भत्ते (Compassionate allowance) की स्वीकृति दी जा चुकी हो, उस समय तक, जब तक कि ऐसा करने के विशिष्ट कारण न वर्तमान हो, इस आधार पर पुनर्विचार नही किया जायेगा कि स्वीकृत धनराशि इन नियमो के अन्तर्गत मिलने वाली अधिकतम राशि से कम है।

परिवार पेन्शन
(Family Pension)

(१) नियमानुकूल सेवा (Qualifying service) के २० वर्ष पूर्ण हो जाने के पश्चात् किसी सरकारी कर्मचारी की मृत्यु हो जाने की स्थिति मे उसके परिवार को परिवार पेन्शन की स्वीकृति दी जा सकती है परन्तु यह पेन्शन उप-नियम (३) मे उल्लिखित धनराशि से अधिक नही होनी चाहिए।

किन्तु अपवाद भूत परिस्थितियो मे, उस सरकारी कर्मचारी के परिवार को भी परिवार पेन्शन की स्वीकृति दी जा सकती है जिसकी मृत्यु नियमानुकूल सेवा मे २० वर्ष से कम अवधि पूर्ण करने के पश्चात् हुई हो, किन्तु १० वर्ष से कम अवधि नही।

ऐसा परिवार-पेन्शन का भुगतान कुल १० वर्ष की अवधि तक किया जा सकेगा।

वेतन आयोग (Pay Commission) ने निम्नलिखित निवृत्ति-लाभो की सिफारिश की थी—

(१) किसी भी सम्पूर्ण पेन्शन अथवा उसके एक भाग को वापिस लेने का अधिकार कुछ अत्यन्त अपवादभूत (Exceptional) तथा विशिष्ट आकस्मिक अवसरो तक ही सीमित रहना चाहिए, और इस पर भी इस अधिकार का प्रयोग तथा जहाँ प्रारम्भिक आदेश अधीनस्थ सत्ता (Subordinate authority) द्वारा किया गया हो वहाँ उसके विरुद्ध अपील का निश्चय केवल सघीय लोक-सेवा आयोग के परामर्श से ही किया जाना चाहिए।[1]

(२) सेवोपहार (Gratuity) की दर मे परिवर्तन किया जाना चाहिए जिससे कि नियमानुकूल सेवा के तीस वर्ष पूर्ण हो जाने पर अधिकतम धनराशि उपलब्ध की जा सके।[2]

(३) यदि अस्थायी सेवा पर कार्य करने वाला कोई कर्मचारी अपने उसी अथवा अन्य किसी पद पर स्थायी हो जाए, तो पेंशन की दृष्टि से उसकी इस अस्थायी सेवा को भी पूर्ण सेवा मे ही गिना जाना चाहिए। प्रतिरक्षा सस्थानो (Defence establishments) मे कुछ कर्मचारियो की असाधारण सेवा (Extraordinary service) की गणना अर्धरूप (Half) मे की जानी चाहिए, एक चौथाई रूप मे नही जैसा कि आजकल होता है।[3]

(४) पेंशन की दृष्टि से भारत से बाहर लिए जाने वाले अवकाश (Leave) को उसी सीमा तक गिना जाना चाहिए जैसे कि भारत मे लिए जाने वाले अवकाश को।[4]

---

1 *Ibid* Paragraph 9
2 *Ibid* Paragraph 12
3 *Ibid* Paragraphs 13-18
4 *Ibid* Paragraph 15

(५) जब नियमानुकूल सेवा की कुल अवधि, उस अवधि से भी छ माह से अधिक हो जाए जितनी कि पेंशन प्राप्त करने के लिए आवश्यक होती है, तो पेंशन की मात्रा का निर्धारण करते समय आधे वर्ष की पेंशन के अतिरिक्त-लाभ की आज्ञा प्रदान कर दी जानी चाहिए ।[1]

(६) उन मामलो मे स्थानापन्न (Officiating), विशिष्ट (Special) तथा वैयक्तिक (Personal) वेतन के पूरे भाग की गणना करते रहना चाहिए जिनमे कि वर्तमान समय मे ऐसा किया जाता है, परन्तु अन्य मामलो मे, विशिष्ट परिस्थितियो के अनुसार, सेवा के गत तीन वर्षों के ऐसे वेतन के पूरे अथवा आधे भाग को विचारार्थ लिया जाना चाहिए ।[2]

(७) पेंशन के लिए डाक्टरो के अनभ्यास भत्ते (Non-practising allowance) की भी गणना की जानी चाहिए ।

(८) जब निर्वाह-खर्च (Cost of living) मे वृद्धि हो जाए तो सरकार उन व्यक्तियो को कुछ सहायता देने के प्रश्न पर विचार कर सकती है जिनकी पेंशन २०० रु० मासिक से अधिक न हो ।[3]

(९) जिस स्थायी कर्मचारी की मृत्यु नियमानुकूल सेवा के पाँच वर्ष पूर्ण होने से पूर्व ही हो जाए, उसके परिवार को दिये जाने वाले न्यूनतम अथवा सेवोपहार (Gratuity) की मात्रा छ माह के परिलाभो (Emoluments) के तुल्य होनी चाहिए, परन्तु यदि कर्मचारी की मृत्यु सेवा के प्रथम वर्ष मे ही हो जाए तो ऐसी परिस्थितियो मे सेवोपहार की न्यूनतम मात्रा दो माह के सेवोपहार के तुल्य होनी चाहिए ।[4]

(१०) जो सरकारी कर्मचारी अशदायी भविष्य निधि (Contributary provident fund) मे अशदान देता हो उसके परिवार को दिये जाने वाले सेवोपहार की मात्रा उस अन्तर (Difference) के तुल्य होनी चाहिए जोकि उस धनराशि के बीच, जोकि उसे उस समय प्राप्त होती जबकि वह पेंशन वाले सस्थान (Establishment) मे सेवा कर रहा होता, तथा उसकी भविष्य निधि मे दिये जाने वाले सरकारी अशदान (उस पर प्रतिशत ब्याज सहित) के बीच पाया जाए । यदि ऐसे कर्मचारी की मृत्यु अशदायी भविष्य निधि मे उसके प्रवेश का पात्र बनने से पूर्व ही हो जाए, तो उसको मिलने वाले सेवोपहार की मात्रा वही होनी चाहिए जो कि शुद्ध रूप से अस्थायी कर्मचारियो के लिए होती है ।[5]

---

1 *Ibid* Paragraph 23
2 *Ibid* Paragraph 24
3 *Ibid* Paragraph 29
4 *Ibid* Paragraph 32
5 *Ibid* Paragraph 34

(११) विधवा तथा बच्चो की पेन्शन लाभ योजना, जो कि अशदान पर आधारित होती है, के स्थान पर वर्तमान परिवार पेंशन योजना का प्रचलन होना चाहिए ।

(१२) जिन अर्ध-सरकारी सस्थाओ का वित्तीय पोषण उपकरो (Cesses) अथवा सरकारी अनुदानो (Grants) के द्वारा किया जाता हो, उनके वैज्ञानिक कर्मचारियो की नियुक्ति जब स्थायी सरकारी सेवा मे हो जाए तो पेंशन की दृष्टि से उन सस्थाओ की उनकी सम्पूर्ण सेवा की गणना नियमानुकूल सेवा (Qualifying service) मे ही की जानी चाहिए, बशर्ते कि उनके पूर्व नियोक्ता (Previous employers) अशदायी भविष्य निधि मे कर्मचारी की अपने यहाँ की अवधि के अपने अशदान के बदले में सरकार को उसी अवधि का पेंशन का अशदान अदा करने को प्रस्तुत हो जायें ।[2]

(१३) सरकार तथा विश्वविद्यालयो के बीच वैज्ञानिको एव शिल्पकलाविदो (Technologists) की पारस्परिक अदला-बदली को सुविधाजनक बनाने के लिए, उस पेंशन-अशदान (Pensionary contribution) को, जोकि विश्वविद्यालयो को उस समय देना पडता है जबकि वे किसी सरकारी सेवक की सेवा प्राप्त करते हैं, उस दर तक सीमित कर दिया जाना चाहिए जिस दर से कि विश्वविद्यालय अपने अन्य कर्मचारियो की भविष्य निधि मे अपना अशदान देते हैं ।[2]

निष्कर्ष
(Conclusion)

कर्मचारियो के उत्साह तथा अनुशासन का महत्व
(Importance of Employee Morale and Discipline)

सेवा की उपरोक्त दशायें कर्मचारियो के अनुशासन तथा उत्साह को बनाये रखने के लिए आवश्यक हैं । कर्मचारियो का उच्चतम उत्साह प्रशासन के सफल सचालन के लिए आवश्यक है । कर्मचारियो से रचनात्मक तथा ठोस कार्य की आशा तभी की जा सकती है जब उनका उत्साह तथा अपने कार्य से लगाव खूब ऊचा हो और वे प्रशासनिक सगठन व सस्थात्मक चिंतन मे एक सच्ची हिस्सेदारी महसूस करते हो । साराश मे "उत्साह एक स्वस्थ रोजगार व्यवस्था का मापदण्ड भी है तथा एक कार्य-कुशल सगठन के निर्माण का उपयोगी साधन भी है । यह एक सामाजिक-मनोवैज्ञानिक, एक ऐसी मानसिक दशा को प्रतिबिम्बित करता है जिसमे पुरुष तथा स्त्रियाँ स्वेच्छा से ही अपनी योग्यता का विकास करने का प्रयास करते हैं और विकसित योग्यता का अपने कार्य मे श्रेष्ठतम प्रयोग करते हैं । इसका कारण वह बौद्धिक या नैतिक सन्तोष है, जो उन्हे आत्मानुभूति (Self-relization), अपने चुने हुए क्षेत्र मे किये गये विशिष्ट

1 *Ibid* Paragraph 40
2 *Ibid* Paragraph 41

कार्यों तथा अपनी सेवा पर गर्व से प्राप्त होता है।"[1] सगठन तथा कर्मचारियो के मध्य एक समरूप दृष्टिकोण का विकास करने के लिए उत्साहवर्द्धक प्रेरणाओ (Incentives) का होना जरूरी है। अपने कार्य को करते समय कर्मचारियो को आत्मानुभूति प्राप्त होनी चाहिए। ऐसी दशायें बनानी चाहियें जिनमे प्रत्येक कर्मचारी अपने को प्रशासनिक सगठन का एक महत्वपूर्ण तथा अभिन्न अग महसूस करे। प्रशासनिक सगठन यदि प्रशासन के मानवीय पहलू पर पर्याप्त तथा उचित ध्यान दे तो वह कर्मचारियो मे एकत्व व समूह भाव को सरलता से पैदा कर सकता है तथा अपने उद्देश्यो की प्राप्ति भी उतनी ही सरलता से कर सकता है। "उच्चतम उत्साह मे बौद्धिक तथा भावात्मक, दोनो गुण होते है। इसका बौद्धिक गुण ज्ञान, सूझ-बूझ तथा पारस्परिक विचार-विमर्श पर बल से उपजता है और ये तीनो विशेषताये सस्थात्मक चिन्तन, नियोजन व मूल्याकन क्रियाओ मे कर्मचारियो के सच्चे दिल से भाग लेने पर निर्भर करती हैं। ये उत्साह को गतिशीलता प्रदान करती है।"[2] सगठन मे अनुशासन का उचित वातावरण बनाये रखना कर्मचारियो के उत्साह को बढाने का एक तरीका है। अनुशासन का केवलमात्र दण्डात्मक कार्य नही है। इसका अर्थ केवल दण्ड या डांट-डपट नही है। अनुशासन का अर्थ कर्मचारीगण को उचित-अनुचित का ज्ञान कराने वाली शिक्षात्मक प्रक्रिया भी है। प्रशासन मे लोकतन्त्रीय नेतृत्व प्रदान करने वाले अधिकारियो को चाहिए कि वे कर्मचारियो को केवल दण्ड ही न दें, अपितु उन्हे शिक्षित भी करें, उन्हे समझायें तथा उनसे तर्क-वितर्क करें।[3] कर्मचारियो का उत्साह निम्नलिखित परिस्थितियो पर निर्भर करता है—

(क) कार्य की प्रकृति। यदि कार्य रोचक है या उसका कोई सामाजिक दृष्टि से उपयोगी उद्येश्य है तो कर्मचारीगण उसमे अधिकतम रुचि लेगे।

(ख) सगठन की नीतियो व कार्यक्रमो की सुस्पष्टता, सचार की उचित व्यवस्था तथा प्रभावशाली नेतृत्व कर्मचारियो के उच्चतम उत्साह के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

(ग) कार्य की अच्छी दशाए, उच्चाधिकारियो का निर्मल तथा न्यायपूर्ण चरित्र, मानवीय व्यवहार तथा उत्पादन पक्षीय नीतियो की अपेक्षा कर्मचारी पक्षीय नीतियां भी कर्मचारियो के उत्साह की वृद्धि मे योगदान देती हैं।[4] काफी सीमा तक

---

1 L D White, 'Public Administration' *Encyclopaedia of the Social Science*, Vol 1, page 446, N Y, Macmillan 1930

2 Morstein Marx (Ed) *Elements of Public Administration*, (U S A, 1949), Chapter 21 Morale and Discipline, page 479

3 For further details refer to Morstein Marx (Ed), *op cit*, Chapter 21 Morale and Discipline, pages 478—497

4 Also refer to Elton Mayo *The Humon Problems of the Industrial Civilization*, (N Y 1933), Dimock, Dimock and Koenig, op cit, (N Y, 1960), Chapter 27, Motivation and Morale pages 467--482, Ordway Tead *The Art*

(११) विधवा तथा बच्चो की पेन्शन लाभ योजना, जो कि अशदान पर आधारित होती है, के स्थान पर वर्तमान परिवार पेंशन योजना का प्रचलन होना चाहिए।

(१२) जिन अर्ध-सरकारी सस्थाओ का वित्तीय पोषण उपकरो (Cesses) अथवा सरकारी अनुदानो (Grants) के द्वारा किया जाता हो, उनके वैज्ञानिक कर्मचारियो की नियुक्ति जब स्थायी सरकारी सेवा मे हो जाए तो पेंशन की दृष्टि से उन सस्थाओ की उनकी सम्पूर्ण सेवा की गणना नियमानुकूल सेवा (Qualifying service) मे ही की जानी चाहिए, बशर्ते कि उनके पूर्व नियोक्ता (Previous employers) अशदायी भविष्य निधि मे कर्मचारी की अपने यहाँ की अवधि के अपने अशदान के वदले मे सरकार को उसी अवधि का पेंशन का अशदान अदा करने को प्रस्तुत हो जायें।[2]

(१३) सरकार तथा विश्वविद्यालयो के बीच वैज्ञानिको एव शिल्पकलाविदो (Technologists) की पारस्परिक अदला-बदली को सुविधाजनक बनाने के लिए, उस पेंशन-अशदान (Pensionary contribution) को, जोकि विश्वविद्यालयो को उस समय देना पडता है जबकि वे किसी सरकारी सेवक की सेवा प्राप्त करते हैं, उस दर तक सीमित कर दिया जाना चाहिए जिस दर से कि विश्वविद्यालय अपने अन्य कर्मचारियो की भविष्य निधि मे अपना अशदान देते हैं।[2]

निष्कर्ष
(Conclusion)

कर्मचारियो के उत्साह तथा अनुशासन का महत्व
(Importance of Employee Morale and Discipline)

सेवा की उपरोक्त दशायें कर्मचारियो के अनुशासन तथा उत्साह को बनाये रखने के लिए आवश्यक हैं। कर्मचारियो का उच्चतम उत्साह प्रशासन के सफल सचालन के लिए आवश्यक है। कर्मचारियो से रचनात्मक तथा ठोस कार्य की आशा तभी की जा सकती है जब उनका उत्साह तथा अपने कार्य से लगाव खूब ऊचा हो और वे प्रशासनिक सगठन व सस्थात्मक चितन मे एक सच्ची हिस्सेदारी महसूस करते हो। साराश मे "उत्साह एक स्वस्थ रोजगार व्यवस्था का मापदण्ड भी है तथा एक कार्य-कुशल सगठन के निर्माण का उपयोगी साधन भी है। यह एक सामाजिक-मनोवैज्ञानिक, एक ऐसी मानसिक दशा को प्रतिविम्बित करता है जिसमे पुरुष तथा स्त्रियाँ स्वेच्छा से ही अपनी योग्यता का विकास करने का प्रयास करते हैं और विकसित योग्यता का अपने कार्य मे श्रेष्ठतम प्रयोग करते है। इसका कारण वह बौद्धिक या नैतिक सन्तोष है, जो उन्हे आत्मानुभूति (Self-relization), अपने चुने हुए क्षेत्र मे किये गये विशिष्ट

1 *Ibid* Paragraph 40
2 *Ibid* Paragraph 41

कार्यों तथा अपनी सेवा पर गर्व से प्राप्त होता है।"[1] सगठन तथा कर्मचारियो के मध्य एक समरूप दृष्टिकोण का विकास करने के लिए उत्साहवर्द्धक प्रेरणाओ (Incentives) का होना जरूरी है। अपने कार्य को करते समय कर्मचारियो को आत्मानुभूति प्राप्त होनी चाहिए। ऐसी दशाये बनानी चाहिये जिनमे प्रत्येक कर्मचारी अपने को प्रशासनिक सगठन का एक महत्वपूर्ण तथा अभिन्न अग महसूस करे। प्रशासनिक सगठन यदि प्रशासन के मानवीय पहलू पर पर्याप्त तथा उचित ध्यान दे तो वह कर्मचारियो मे एकत्व व समूह भाव को सरलता से पैदा कर सकता है तथा अपने उद्देश्यो की प्राप्ति भी उतनी ही सरलता से कर सकता है। "उच्चतम उत्साह मे बौद्धिक तथा भावात्मक, दोनो गुण होते हैं। इसका बौद्धिक गुण ज्ञान, सूझ-बूझ तथा पारस्परिक विचार-विमर्श पर बल से उपजता है और ये तीनो विशेषतायें मस्यात्मक चिन्तन, नियोजन व मूल्याकन क्रियाओ मे कर्मचारियो के सच्चे दिल से भाग लेने पर निर्भर करती हैं। ये उत्साह को गतिशीलता प्रदान करती है।"[2] सगठन मे अनुशासन का उचित वातावरण बनाये रखना कर्मचारियो के उत्साह को बढाने का एक तरीका है। अनुशासन का केवलमात्र दण्डात्मक कार्य नही है। इसका अर्थ केवल दण्ड या डॉट-डपट नही है। अनुशासन का अर्थ कर्मचारीगण को उचित-अनुचित का ज्ञान कराने वाली शिक्षात्मक प्रक्रिया भी है। प्रशासन मे लोकतत्रीय नेतृत्व प्रदान करने वाले अधिकारियो को चाहिए कि वे कर्मचारियो को केवल दण्ड ही न दे, अपितु उन्हे शिक्षित भी करें, उन्हे समझायें तथा उनसे तर्क-वितर्क करें।[3] कर्मचारियो का उत्साह निम्नलिखित परिस्थितियो पर निर्भर करता है—

(क) कार्य की प्रकृति। यदि कार्य रोचक है या उसका कोई सामाजिक दृष्टि से उपयोगी उद्देश्य है तो कर्मचारीगण उसमे अधिकतम रुचि लेंगे।

(ख) सगठन की नीतियो व कार्यक्रमो की सुस्पष्टता, सचार की उचित व्यवस्था तथा प्रभावशाली नेतृत्व कर्मचारियो के उच्चतम उत्साह के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

(ग) कार्य की अच्छी दशाए, उच्चाधिकारियो का निर्मल तथा न्यायपूर्ण चरित्र, मानवीय व्यवहार तथा उत्पादन पक्षीय नीतियो की अपेक्षा कर्मचारी पक्षीय नीतियाँ भी कर्मचारियो के उत्साह की वृद्धि मे योगदान देती हैं।[4] काफी सीमा तक

1 L D White, 'Public Administration' *Encyclopaedia of the Social Science*, Vol 1, page 446, N Y, Macmillan 1930

2 Morstein Marx (Ed) *Elements of Public Administration*, (U S A 1949), Chapter 21 Morale and Discipline, page 479

3 For further details refer to Morstein Marx (Ed), *op cit*, Chapter Morale and Discipline, pages 478—497

4 Also refer to Elton Mayo *The Human Problems of an Industrial Civilization*, (N Y 1933), Dimock, Dimock and Koenig, *op cit* [illegible] Chapter 27, Motivation and Morale pages 467--482, Ordway Tead [illegible]

कर्मचारियो का उत्साह सगठन के उच्च प्रबन्ध अधिकारियो की योग्यताओ पर निर्भर करता है। कर्मचारियो के प्रति उनकी मनोवृत्ति तथा उनका व्यवहार बहुत कुछ सगठन मे उत्साह को प्रभावित करता है।

सगठन के अध्यक्ष तथा अधीनस्थ कर्मचारियो के पारस्परिक सम्बन्ध एक ऐसा अकेला तत्व है जो सगठन मे उत्साह वर्द्धक क्रिया मे सबसे अधिक योगदान देता है। अध्यक्ष को परिश्रम से उन तत्वो को दूर करने के लिए कदम उठाने चाहिए जो उत्साह निर्माण मे बाधक हैं।' एक "वास्तविक अध्यक्ष" उत्साह ला सकता है किन्तु एक "अध्यक्ष" नही ला सकता। अनुशासन तथा उत्साह की दृष्टि से एक "वास्तविक अध्यक्ष" तथा एक "अध्यक्ष" मे निम्न अन्तर महत्वपूर्ण हैं—

एक अध्यक्ष अधीनस्थ कर्मचारियो को आदेश देता है,
एक वास्तविक अध्यक्ष उनका पथ-प्रदर्शन करता है।

एक अध्यक्ष अपने प्राधिकार का आश्रय लेता है,
एक वास्तविक अध्यक्ष सबकी सद्भावना प्राप्त करता है।

एक अध्यक्ष अपने कर्मचारियो को धमकाता तथा परेशान करता है,
एक वास्तविक अध्यक्ष उनमे लगाव तथा जोश पैदा करता है।

एक अध्यक्ष कहता है "मैं,"
एक वास्तविक अध्यक्ष कहता है "हम सब"।

एक अध्यक्ष आदेश देता है: "समय पर आओ",
एक वास्तविक अध्यक्ष अपने कर्मचारियो मे समय से पूर्व पहुँचने की इच्छा जागृत करता है।

एक अध्यक्ष आराम के समय से घृणा करता है,
एक वास्तविक अध्यक्ष ऐसे अवकाश के समय को सयोजित करता है।

एक अध्यक्ष यह जानता है कि काम कैसे किया जाता है,
एक वास्तविक अध्यक्ष केवल सकेत करता है कि काम कैसे किया जा सकता है।

एक अध्यक्ष कार्य को एक भारी बोझ बना देता है,
एक वास्तविक अध्यक्ष कार्य को आनन्द मे परिणित कर देता है।

एक अयध्क्ष कहता है: "जाओ",
एक वास्तविक अध्यक्ष कहता है "आइए चलें"।[1]

---

of Administration, (N Y. 1951), 'Collective Bargaining in the Public Service A Symposium', Public Administration Review, American Society of Public Administration, Winter 1962 Vol XXII, No I

1 Reproduced Public Administration Review (U S A), Winter 1962, Vol XXII, No I, page 29

संगठन के कर्मचारियों में उत्साहवर्द्धन के लिए "वास्तविक अध्यक्ष" वाले गुण चाहिए तथा "अध्यक्ष" वाली मनोवृत्ति का उन्मूलन आवश्यक है। वास्तविक अध्यक्ष समूह-भाव सरलता से जागृत कर सकता है और यह समूह-भाव सेवाओं में उच्च उत्साह का आधार होता है क्योंकि उत्साह (Morale) वास्तव में "एक व्यक्ति समूह की एक समान उद्देश्य की प्राप्ति के लिए परस्पर निरन्तर मिलकर कार्य करने की क्षमता का नाम है।"[3]

---

1 Alexander H Leighten, "Improving Human Relations, Applied Science of Human Relation", Personnel Administration, Vol IX, No 6 (July, 1947), P S Also refer to Felix A Nigro, *op cit*, Chapter 12, *Morale* and Discipline pages 383—411

२२

कर्मचारियो के संगठन अथवा संघ

(Employees Organizations or Associations)

सरकारी कर्मचारियो के अपने निजी सगठन अथवा सघ होते हैं। कर्मचारी-सघवाद (Employee unionism) सरकारी कार्मिक अथवा सेवी-वर्ग प्रशासन (Public personnel administration) का एक महत्वपूर्ण तथ्य वन गया है। वास्तव मे देखा जाए तो कर्मचारियो मे सगठनो का होना अत्यन्त आवश्यक है। यदि कर्मचारी सामूहिक रूप से अपनी एक सगठित आवाज नही बनाते हैं तो यह बात निश्चित है कि उन्हे निम्न वेतन तथा निकृष्ट कार्य-परिस्थितियो (Poor working conditions) के अन्तर्गत ही कार्य करना होगा। सामूहिक सौदाकारी अथवा मोल-तोल (Collective bargaining) के द्वारा, ये सघ (Unions) कर्मचारियो के लिये सेवा की श्रेष्ठतर शर्तों एव दशाओ की प्राप्ति का प्रयत्न करते हैं। उनकी सामान्य मागें होती हैं उच्चतर वेतन, कार्य के अपेक्षाकृत कम घण्टे, रहने की श्रेष्ठ दशायें, छुट्टिया, भविष्य निधि (Provident Fund) तथा बीमारी, वृद्धावस्था अथवा दुर्घटना के विरुद्ध बीमा। कर्मचारियो की स्थिति मे सुधार का अधिकाधिक प्रयत्न करना ही इन सघो का मुख्य उद्देश्य होता है। कर्मचारियो के सगठनो के अन्य महत्वपूर्ण कार्य हैं—कर्मचारियो की व्यवस्थाओ (Grievances) अथवा शिकायतो को, यदि कोई हो तो, उच्च अधिकारियो के सम्मुख रखना। यदि कर्मचारी यह समझते हैं कि कोई बात अनुचित की गई है तो वे सामूहिक रूप से उसके विरोध मे आवाज उठा सकते है। कर्मचारी-सगठन निर्देशन सेवी-वर्ग द्वारा किये जाने वाले अधिकारो के दुरुपयोग की ओर भी ध्यान दिलाते हैं। सरकार के दृष्टिकोण से यह एक ऐसा ठोस लाभ है जिसका उसके लिये अत्यधिक महत्व है। यदि किसी उच्च सरकारी अधिकारी द्वारा कोई अनुचित कार्य किया जाता है तो इन सगठनो के द्वारा वह सरकार की जानकारी मे आ जाता है। कर्मचारियो के सगठन प्रशासकीय अधिकारियो, असैनिक अथवा सिविल-सेवा आयोगो तथा विधान-मण्डल के सम्पर्क मे रहते हैं, और कर्मचारी-वर्ग से सम्बन्धित मामलो एव नीतियो के सम्बन्ध मे वहुधा उनकी राय मागी जाती है। कर्मचारियो के सगठन, प्रशासन के दोषो की ओर ध्यान दिलाकर तथा उनके सुधार के लिये सुझाव देकर, शासन-प्रवन्ध के कार्य-सचालन मे सुधार लाने की दिशा मे सरकार की ठोस सहायता करते हैं। यही कारण है कि जिसकी वजह से लोकतन्त्रीय देशो मे, प्रवन्ध-सम्बन्धी योजनाओ मे कर्मचारियो के भाग लेने को अत्यन्त वाञ्छनीय

समझा जाता है। कार्य–कुशलता की दृष्टि से, यह आवश्यक समझा जाता है कि विभागो (Departments) के कार्य-सचालन मे कर्मचारियो को गहन रूप मे (Intensively), एव विस्तृत रूप मे (Extensively), दोनो ही प्रकार मे भाग लेना चाहिये। इस व्यवस्था का लाभ यह होता है कि सेवा-नियोजक (Employer) कर्मचारियो की समस्यओ, कठिनाइयो तथा उनके दृष्टिकोणो से परिचित हो जाते हैं क्योकि इसके समुचित हल पर ही विभाग की कार्य-कुशलता तथा उनका सुचारु सचालन निर्भर होता है। प्रबन्ध (Management)मे भाग लेने (To participate) की इस व्यवस्था से कर्मचारियो को भी यह अवसर मिलता है कि वे सेवा नियोजन की कठिनाइयो एव समस्याओ को समझ सकें तथा अनुभव कर सकें। इसका परिणाम यह होता है कि कर्मचारियो का दृष्टिकोण उस सगठन के प्रति, जिसमे कि वे सेवा कर रहे होते है, सहानुभूतिपूर्ण तथा अनुकूल हो जाता है।

कर्मचारियो के ये सघ (Unions) अपने प्रयत्नो मे कहाँ तक रचनात्मक (Constructive) होगे—यह बात दो तत्वो पर निर्भर होती है। **पहला तत्व** (Factor) है कर्मचारियो के सगठनो के प्रति उच्च अथवा प्रवर अधिकारियो (Superior officers) का रुख (Attitude)। यदि उच्च पदाधिकारी कर्मचारियो के सघो को अपने विश्वास मे ले लें, धैर्यपूर्वक उनकी बातें सुनें, उनका विश्वास करें तो कर्मचारियो के ये सघ अपने प्रयत्नो मे रचनात्मक बने रहेंगे। यदि उच्च अथवा प्रवर अधिकारी अपने अवर अथवा निम्न सेवको (Inferiors) से बात करने मे अपनी मानहानि समझते हैं, यदि वे उनके साथ अहकारपूर्ण तरीके से व्यवहार करते हैं तो कर्मचारियो के ये सघ अपने प्रयत्नो मे अरचनात्मक अथवा ध्वसात्मक (Destructive), झगडालू तथा लडाकू बन जायेंगे। **दूसरा तत्व** है कर्मचारियो का राष्ट्रीय एव सामाजिक दृष्टिकोण। यदि किसी विशिष्ट विभाग के कर्मचारी, देश के सामान्य सर्वांगीण कल्याण की चिन्ता किये बिना, केवल अपने निजी कल्याण मे ही रुचि रखते है तो इस दिशा मे उनका प्रयत्न स्वार्थपूर्ण अविवेकपूर्ण तथा विनाशात्मक होगा। यदि कर्मचारी व्यापक सामाजिक एव राष्ट्रीय हितो को दृष्टिगत रखते हैं और राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था (National economy) के सन्दर्भ मे ही अपनी मांगें प्रस्तुत करते हैं तो उनके प्रयत्न अधिक युक्तिसगत (Reasonable), समझौतापूर्ण (Accomodating) तथा रचनात्मक होगे।

इस तथ्य को तो सभी स्वीकार करते हैं कि कर्मचारियो के सगठन १९वीं शताब्दी के अन्त से ही कर्मचारियो की कार्य-परिस्थितियो (Working conditions) मे सुधार के लिये उत्तरदायी रहे है। इनका अस्तित्व (Existence) सरकारी पदाधिकारियो को सावधान एव सतर्क बनाये रखता है, इसका परिणाम यह होता है कि वे सरकारी सत्ता का दुरुपयोग नही कर सकते।

कर्मचारियों की मांगें पूरी करने के उपाय
(Methods of getting employees' demands fulfilled) :

एक वात, जिसके मम्वन्ध मे श्राज भी भारी विवाद पाया जाता है, यह है कि क्या सरकारी कर्मचारियो को इम वात की स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए कि अपनी सेवा की शर्तों मे सम्बन्धित मामलो के विषय मे वे प्रदर्शनो (Demonstrations) मे भाग ले सकें अथवा हडताल (Strike) का सहारा ले सकें ? क्या सरकारी कर्मचारियों को, जवकि उनकी कुछ व्यथायें एव शिकायतें हो तव काम वन्द कर देने की श्राज्ञा होनी चाहिए ? अनेक सरकारें अपने कर्मचारियो को हडताल करने का अधिकार नही देती। सयुक्त राज्य अमेरिका मे, सघीय कर्मचारियो (Federal employees) को अपने सघ वनाने का अधिकार प्राप्त है। सयुक्त राज्य की सरकार मिविल-सेवा कर्मचारियो को हडताल करने, अथवा यहाँ तक कि सयुक्त राज्य के विरुद्ध हडतालो का आयोजन करने वाले सगठनो से सम्वन्ध रखने तक का भी अधिकार नही देती। मन् १९५५[1] मे निर्मित एक कानून मे यह उपवन्ध (Provision) है कि ऐमा कोई भी व्यक्ति, सयुक्त राज्य (United States) की सरकार मे अथवा उसके किमी अभिकरण (Agency) मे, जिसमे कि पूर्ण स्वामित्व प्राप्त सरकारी निगमे (Government corporations) भी सम्मिलित हैं, कोई नौकरी या पद स्वीकार अथवा धारण नही कर सकेगा, जोकि किसी भी हडताल मे भाग लेता हो अथवा सयुक्त राज्य की सरकार अथवा उसके किसी अभिकरण के विरुद्ध हडताल करना अपना अधिकार समझता हो, अथवा जो सरकारी कर्मचारियो के ऐसे मगठन का सदस्य हो जोकि हडताल करना अपना अधिकार मानता हो। इस उपवन्ध का उल्लघन एक 'गम्भीर अपराध' माना जाता है जिसका दण्ड जुर्माना (Fine) अथवा कारावास (Imprisonment) है। हडताल मे भाग लेना तो इससे पूर्व भी (सन् १९४७ के Taft Hartley Act के अन्तर्गत) अवैध (Unlawful) था परन्तु उसका दण्ड था केवल सेवोन्मुक्त (Discharge) कर देना, सिविल-सेवा की पदवी को जब्त कर लेना तथा तीन वर्ष के लिए पुन नौकरी के लिए अयात्र (Ineligible) वना देना। आस्ट्रेलिया, जापान तथा स्विटजरलैंड मे भी, मरकारी कर्मचारियो का हडताल मे भाग लेना अवैधानिक है ; आस्ट्रेलिया मे इस नियम के उल्लघन का दण्ड है सरकारी कार्यवाही द्वारा सेवा से पदच्युति (Summary dismissal from service)। इगलैंड मे, हडतालो पर तो रोक नही है परन्तु एक मिविल कर्मचारी यदि हडताल करता है तो इसका अर्थ है कि वह अपने कर्त्तव्यो का पालन करने से इन्कार करता है , फलत इस स्थिति मे उसके विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही की जा मकती है। इस नियमोल्लघन के लिए दिये जाने वाले दण्डो मे भर्त्सना (Reprimand) से लेकर पेंशन की समाप्ति सहित पदच्युति (Dismissal) तक के दण्ड सम्मिलित हैं। भारत मे, सरकारी कर्मचारियो

---

1 Public Law 330, 84th Congress,

द्वारा हडताल करने पर कानून द्वारा कोई रोक तो नही है पर यदि कर्मचारी ऐसा करते है तो अनुसधान भग माना जाता है ।[1]

प्रश्न यह है कि सरकारे जब गैर-सरकारी उद्योगो मे श्रमिको के हडताल करने के अधिकार को स्वीकार करती हैं तो वे स्वय अपने कर्मचारियो को हडताल करने के अधिकार क्यो नही देती ? इस प्रश्न के उत्तर मे जो कारण प्रस्तुत किया जाता है वह यह है कि सरकार अनेक ऐसे कार्य सम्पन्न करती है जोकि सामूहिक रूप मे समाज के अस्तित्व (Existence) एव भलाई के लिए अनिवार्य होते है । यातायात, खाद्य ऐसे ही अन्य उपयोगी उद्यमो मे यदि हडताले होती है तो उससे सम्पूर्ण समाज के जीवन मे ही पक्षाघात (लकवे) जैसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है । फलत सरकारी कर्मचारियो द्वारा की जाने वाली हडताल से सम्पूर्ण समाज अथवा राष्ट्र को हानि पहुँचती है । अत सरकारी कर्मचारियो को हडताल करने का अधिकार नही दिया जाना चाहिए । यही तर्क राष्ट्रपति रूजवैल्ट द्वारा सन् १९३७ मे सघीय कर्मचारियो की 'राष्ट्रीय सस्था' (National Federation of Federal Employees) के अध्यक्ष को लिखे गये एक पत्र मे दिया गया था ।

"मेरा यह विश्वास है और मैं विशेष रूप से उस पर जोर देना चाहता हूँ कि सरकारी कर्मचारियो के किसी भी सगठन के कार्यों मे ध्वसात्मक युक्तियो का कोई स्थान नही है । सघीय सेवा के अन्तर्गत जो कर्मचारी कार्य करते है उन पर सम्पूर्ण जनता की सेवा करने का दायित्व (Obligation) होता है और जनता के हितो एव कल्याण की देख-रेख के लिए यह आवश्यक है कि सरकारी क्रियाओ के सचालन मे व्यवस्था (Orderliness) तथा निरन्तरता (Continuity) बनी रहे । उनका यह दायित्व सर्वोपरि है । चूकि उनकी सेवाये सरकार की कार्य-पद्धति से सम्बन्धित होती हैं अत सरकारी कर्मचारियो द्वारा हडताल करने का स्पष्टत यही अर्थ होता है कि वे सरकार की क्रियाओ को उस समय तक रोकना या उनमे बाधा डालना चाहते हैं जब तक कि उनकी मागें पूरी न हो जाये । ऐसी कार्यवाही, जिसमे कि वे ही व्यक्ति सरकार को शक्तिहीन करने की सोचते है जोकि उसकी सहायता तथा समर्थन करने की शपथ ले चुके है, पूर्णत अविचारणीय एव असहनीय है । अत 'सघीय कर्मचारियो की राष्ट्रीय सस्था' के सविधान मे मैंने इस उपबन्ध (Provision) को बडे सन्तोष के साथ देखा है कि "किन्ही भी परिस्थितियो मे यह सस्था सयुक्त राज्य की सरकार के विरुद्ध हडताल नही करेगी और न उनका समर्थन ही करेगी ।"

यह कहा जा सकता है कि प्रतिबन्ध लगा कर हडतालो को समाप्त नही किया जा सकता । हडताल देश मे प्रचलित सामाजिक एव आर्थिक दशाओ पर निर्भर होती है । हडताल का सहारा यूही अचानक ले लिया जाता हो, ऐसी बात नही है , यह

---

1 अब भारत मे, सरकारी कर्मचारियो का हडताल मे भाग लेना अवैध (Illegal) घोषित कर दिया गया है ।

तो कर्मचारियो की सामाजिक स्थिति तथा आर्थिक दशाओ पर निर्भर होती है। सिविल सेवा मे नौकरी की दशायें जितनी अधिक खराब होगी, इन सगठनो की सख्या भी उतनी ही अधिक होगी तथा उतनी ही अधिक कठोरता उनके व्यवहार मे होगी।

फिर, यदि कर्मचारियो को उनकी व्यवस्थाओ की सुनवाई के लिए अन्य सवैधानिक अवसर प्रदान किये जाये तो हडतालें होगी ही नही। सरकारी कर्मचारियो को यह अधिकार प्राप्त होना चाहिये कि वे उच्च पदाधिकारियो के समक्ष अपनी व्यथायें (Grievances) रख सकें। सरकार के साथ विवाद की स्थिति मे पचनिर्णय (Arbitration) की व्यवस्था होनी चाहिये। यदि कर्मचारियो को इस बात का पूर्ण अवसर प्रदान किया जाये कि वे अपने विचारो का प्रतिनिधित्व कर सकें, और यदि वे इस विषय मे आश्वस्त रहे कि उनकी बातें समुचित रूप से सुनी जायेंगी तो हडतालें लोकप्रिय नही होगी।

प्रो० हरमन फिनर ने हडताल के मसले का सपेक्षीकरण तीन प्रस्तावो के रूप मे किया है। उनका कहना है—

(१) "यदि राज्य अपनी विधियो एव परम्पराओ के द्वारा सिविल सेवको को कुछ लाभ प्रदान करने के कार्य मे स्वय को लगाये रखता है, तो एक न्यायपूर्ण सौदे के रूप मे वह उनसे इस समवर्ती (Corresponding) गारन्टी की भी माग कर सकता है कि उनकी ओर से, कम से कम, हडताल की असुविधा उसके सन्मुख उत्पन्न न की जाए।

(२) अपनी सेवाओ के सतत सचालन मे राज्य (State) जिन हितो (Interests) को अपने सन्मुख रखता है वे अत्यावश्यक तथा जीवन-मरण की प्रकृति के होते हैं और उनके सम्पादन मे कोई अवरोध नही पडना चाहिए अन्यथा उसको भारी विपत्ति का सामना करना पड सकता है।

(३) यदि सिविल-सेवको द्वारा अपनी मागें (Demands) प्रस्तुत करने के लिए ऐसे अनेक सवैधानिक मार्गों की व्यवस्था की जाये कि जिनके द्वारा उनकी मागो पर विचार किया जा सके, और यदि वे न्यायोचित हो तो सन्तुष्ट की जा सकें, तो यह आवश्यक है कि सरकार को झुकने के लिए बाध्य करने वाले एक साधन के रूप मे हडताल का उपयोग निश्चय ही नही किया जाना चाहिए।"[1]

भारत मे कर्मचारियो के संघ
(Employee's Association in India)

भारत मे सरकारी कर्मचारी अपने निजी सघ बना सकते है परन्तु वे सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त होने चाहियें। जहाँ तक हडतालो का सम्बन्ध है, यदि कर्मचारी हडताल का आश्रय लेते हैं तो उन्हे सरकार द्वारा की जाने वाली अनुशासनात्मक कार्यवाही का सामना करना पडता है।

---

1 Herman Finer, *Theory and Practice of Modern Government*, p 897.

अब हम इस बात का अध्ययन करेंगे कि सगठन अथवा सघ बनाने तथा सेवा की शर्तों से सम्बन्धित मामलो के बारे मे प्रदर्शनो व हडतालो का सहारा लेने के कर्मचारियो के अधिकार के सम्बन्ध मे भारत सरकार के नियम (Rules) क्या हैं।

केन्द्र सरकार के कर्मचारी, कुछ छोटे-मोटे अपवादो को छोडकर, तीन मुख्य वर्गों मे बाटे जाते हैं

(i) अनौद्योगिक (Non-industrial) कर्मचारी-वर्ग जिसमे कि डाक व तार तथा नागरिक उड्डयन विभागो (Civil Aviation Departments) मे काम करने वाले कर्मचारी और औद्योगिक सस्थानो (Industrial establishments) मे ५०० रु० या इससे अधिक वेतन पाने वाले राजपत्रित (Gazetted) अथवा अन्य कर्मचारी सम्मिलित हैं।

(ii) औद्योगिक कर्मचारी-वर्ग (Industrial staffs), रेलवे के अन्तर्गत आने वाले कर्मचारियो को छोडकर, और

(iii) औद्योगिक तथा अनौद्योगिक रेलवे कर्मचारी-वर्ग।

(१) प्रथम वर्ग (i) मे जो कर्मचारी-वर्ग सम्मिलित है उस पर केन्द्रीय असैनिक सेवा (आचार) नियम, १९५५ (Central Civil Service Conduct Rules 1955) के निम्नलिखित उपबन्ध (Provisions) लागू होते हैं—

४ (अ) कोई भी सरकारी कर्मचारी अपनी शर्तों से सम्बन्धित किसी भी मामले के बारे मे न तो किसी प्रदर्शन मे भाग लेगा अथवा न किसी भी प्रकार की हडताल का आश्रय लेगा।

४ (ब) कोई भी सरकारी कर्मचारी सरकारी कर्मचारियो के किसी भी ऐसे सघ का सदस्य नही बनेगा अथवा न उसकी सदस्यता जारी रखेगा—

(क) जिसके लिए कि उसके निर्माण से छ माह की अवधि के अन्तर्गत, निर्धारित नियमो के अनुसार सरकार से स्वीकृति अथवा मान्यता न प्राप्त कर ली गई हो, या

(ख) जिसको, निर्धारित नियमो के अनुसार, सरकार द्वारा मान्यता (Recognition) देने से इन्कार कर दिया गया हो अथवा जिसकी मान्यता वापिस ले ली गई हो।

६ कोई भी सरकारी कर्मचारी रेडियो के किसी प्रसारण (ब्राडकास्ट) मे, अथवा गुमनाम से या अपने नाम से या अन्य किसी व्यक्ति के नाम से प्रकाशित किसी लेख मे, अथवा समाचार-पत्र या प्रेस को दिये गए किसी वक्तव्य या पत्र मे, अथवा किसी सार्वजनिक वक्तव्य या प्रकाशन मे अपना ऐसा कोई विचार या मत अथवा तथ्य प्रकट नही कर सकेगा—

(i) जिससे केन्द्र सरकार अथवा किसी राज्य की किसी प्रचलित (Current) अथवा अभिनव (Recent) नीति या कार्यवाही की विपरीत आलोचना करने पर अवसर मिले।

९ कोई भी सरकारी कर्मचारी, सरकार की अथवा अन्य किसी ऐसी सत्ता (Authority) की पूर्व अनुमति लिए विना जिसे कि सरकार ने अपने उत्तरदायित्व पर यह अधिकार प्रदान कर रखा हो, किसी भी प्रकार का चन्दा न तो मागेगा, और न स्वीकार करेगा, अथवा किसी भी उद्देश्य की पूर्ति के लिए धन एकत्रित करने के कार्य से, अन्य किसी रूप मे भी, अपने आपको सम्बद्ध नही रखेगा।

१० कोई भी सरकारी कर्मचारी सरकार के अन्तर्गत अपनी सेवा से सम्वन्धित किसी मामले के बारे मे अपने हितो की पूर्ति के लिए किसी भी उच्च प्राधिकारी पर किसी प्रकार का राजनैतिक अथवा अन्य बाह्य प्रभाव नही डालेगा अथवा डालने का प्रयास नही करेगा।

(२) द्वितीय वर्ग (ii) मे जो कर्मचारी-वर्ग सम्मिलित है (अर्थात् औद्योगिक कर्मचारी-वर्ग) उस पर अभी हाल मे ही की गई व्यवस्था के अनुसार ऊपर उल्लेख किये गए उपवन्ध (Provisions) तथा 'केन्द्रीय असैनिक सेवा (आचार) नियम, १९५५' के कुछ अन्य उपबन्ध लागू नही होते और नियम ६ (1) भी केवल इस प्रतिबन्धात्मक वाक्य खण्ड (Proviso) के साथ लागू होता है कि इस धारा की कोई भी बात कर्मचारी द्वारा, श्रमिक सघ (Trade union) के एक पदाधिकारी के रूप मे, ऐसे विश्वसनीय एव यथार्थ विचारो की अभिव्यक्ति (Expression of views) पर लागू न होगी जोकि उन कर्मचारियो की सेवा की शर्तों मे सुधार करने अथवा उन्हे सुरक्षित वनाने के उद्देश्य से प्रकट किये गए हो जो उस श्रमिक सघ के सदस्य हो।

(३) तृतीय वर्ग (iii) के कर्मचारी-वर्ग (अर्थात् रेलवे कर्मचारी-वर्ग) का नियमन 'रेलवे सेवा (आचार) नियम १९५६' (Railway Service (Conduct) Rules 1956) के द्वारा किया जाता है, जिसमे उपबन्ध ४ (अ) तथा ४ (व) के समवर्ती (Corresponding) उपबन्ध तो नही हैं, परन्तु 'केन्द्रीय असैनिक सेवा (आचार) नियम, १९५५ के नियम ६ (1), तथा १७ के समवर्ती उपबन्ध हैं। इस प्रकार स्थिति यह है कि रेलवे कर्मचारी-वर्ग जहाँ अमान्यता प्राप्त सघो की सदस्यता तथा प्रदर्शनो एव हडतालो का आश्रय लेने के मामलो मे औद्योगिक कर्मचारी-वर्ग (Industrial staffs) जैसी ही स्थिति मे है वहाँ श्रमिक सघो की कार्यवाहियो के सम्वन्ध मे, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से, उस पर अभी भी कुछ प्रतिवन्ध लगे हैं; किन्तु रेलवे मे वाहर के औद्योगिक कर्मचारी-वर्ग पर से ये प्रतिवन्ध हटा लिये गये हैं।

(४) सरकार द्वारा श्रमिक सघो तथा सेवा सघो (Service associations) की मान्यता (Recognition) के सम्वन्ध मे स्थिति निम्न प्रकार है अभी एक वर्ष पूर्व तक औद्योगिक कर्मचारियो को छोडकर, केन्द्र सरकार के कर्मचारियो के सघो की मान्यता का नियमन सन् १९३७ मे जारी किये गए कार्यपालक अनुदेशो (Executive instructions) द्वारा किया जाता था। परन्तु अव इनका स्थान गत वर्ष मार्च मे जारी किए गये 'केन्द्रीय सिविल-सेवा' (सेवा-सघो की मान्यता) के नियम, १९५९,

ने (जिनका निर्माण कि सविधान की धारा ३०९ तथा धारा १४८ के खण्ड ५ के अन्तर्गत किया गया है) ले लिया है। इन नवीन नियमो के उपबन्धो तथा १९३७ के अनुदेशो मे, सारभूत दृष्टि से, कोई अन्तर नही है यथा सघो की मान्यता अब भी निम्नलिखित शर्तों की पूर्ति पर निर्भर होती है

(क) यह कि ऐसे किसी भी व्यक्ति का सम्बन्ध कर्मचारी सघ के कार्यों से नही होगा जोकि सरकारी नही है,

(ख) सघ की कार्यकारिणी समिति की नियुक्ति केवल सदस्यो मे से की जायेगी,

(ग) सघ पृथक्-पृथक् कर्मचारियो के पक्ष का समर्थन नही करेगा, और

(घ) सघ किसी भी राजनैतिक कोष की स्थापना नही करेगा अथवा स्वय किसी भी राजनैतिक दल या राजनीतिज्ञ के विचारो के प्रचारार्थ धन नही देगा।

कर्मचारियो (मुख्यत औद्योगिक कर्मचारी-वर्ग) के सघो की मान्यता का नियमन श्रम मन्त्रालय (Ministry of Labour) द्वारा बनाये गए कुछ नियमो के द्वारा (जिनका निर्माण सविधि के द्वारा नही होता) किया जाता है। इन नियमो मे यह व्यवस्था है कि मान्यता का पात्र (Eligible) बनने के लिए एक सघ (Union) को निम्नलिखित शर्त पूरी करनी ही चाहिये—

(क) इसकी सदस्यता उन कर्मचारियो तक ही सीमित रहनी चाहिए जो एक से ही उद्योग अथवा ऐसे उद्योगो मे काम करते हो जो कि परस्पर घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित अथवा सम्बद्ध हो,

(ख) इसे उस उद्योग अथवा उद्योगो मे काम करने वाले सभी कर्मचारियो का प्रतिनिधित्व करना चाहिए,

(ग) इसके नियमो मे यह व्यवस्था नही होनी चाहिए कि यह भाग (ख) मे उल्लिखित कर्मचारियो के किसी भी वर्ग को सदस्यता से वञ्चित कर सके,

(घ) सघ (Union) के सविधान के नियमो मे हडतालो की घोषणा करने की कार्यविधि से सम्बन्धित समुचित उपबन्ध (Provision) सम्मिलित किया जाना चाहिए,

(ङ) नियमो मे यह भी व्यवस्था होनी चाहिए कि सघ की कार्यकारिणी समिति (Executive committee) की बैठक का आयोजन छ माह मे कम से कम एक बार अवश्य हो, और

(च) भारतीय श्रमिक सघ अधिनियम, १९२६ (Indian Trade Unions Act 1926) के अन्तर्गत इसका पजीकरण (Registration) अवश्य होना चाहिए।

कर्मचारी सघो को मान्यता प्रदान करना या न करना सरकार के विवेक (Discretion) पर निर्भर होता है। वेतन आयोग (Pay Commission) ने

कर्मचारी सघो (Employees Associations) के सम्बन्ध मे निम्नलिखित सिफारिशें की—

(१) अमान्यता प्राप्त सघ की सदस्यता को अनुशासनिक अपराध (Disciplinary offence) नही माना जाना चाहिए। परन्तु यदि वह सघ ऐसी कार्यवाहियो मे भाग लेता है, जिनका आश्रय यदि पृथक् सरकारी कर्मचारियो द्वारा लिया जाता और उसे आचार-नियमो (Conduct Rules) के किसी उपबन्ध का उल्लघन माना जाता, तो अनुशासनात्मक कार्यवाही के आधार पर उन सम्बन्धित सरकारी कर्मचारियो से उसकी सदस्यता छोडने की माग की जा सकती है।[1]

(२) कर्मचारी सघो की मान्यता के नियमो के निर्माण तथा मान्यता प्रदान करने का कार्य उदार भावना से किया जाना चाहिये।[2]

(३) सरकारी कर्मचारियो को हडतालो का आश्रय नही लेना चाहिए अथवा न हडताल करने की धमकी ही देनी चाहिए, परन्तु कानून मे सशोधन किए विना ही यह परिवर्तन अवश्य होना चाहिए कि कर्मचारी स्वय ही हडतालों एव प्रदर्शनो के प्रयोग का परित्याग कर दें, और सरकार को भी यह परिपाटी (Convention) डालनी चाहिए कि कुछ महत्वपूर्ण मामलो से सम्वन्धित ऐसे किसी भी विवाद (Dispute) को, जिसको बातचीत के द्वारा न सुलझाया जा सके, पच-निर्णय (Arbitration) के सुपुर्द कर दिया जाए।[3]

(४) श्रमिक सघो की क्रियाओ के लिए समुचित सुविधाओ की व्यवस्था की जानी चाहिए।[4]

वेतन आयोग इस निष्कर्ष पर भी पहुँचा कि यदि सरकार द्वारा विवादो के निपटारे के लिए अन्य किसी उपयुक्त मशीनरी की व्यवस्था की जाए तो हडतालो की सम्भावना को समाप्त किया जा सकता है। आयोग ने ठीक ही कहा कि "वर्तमान परिस्थितियो मे, यदि इस प्रस्ताव का—कि सरकारी कर्मचारियो को हडताल का परित्याग कर देना चाहिए—न्यायोचित आधार प्राप्त करना है और उस प्रस्ताव पर कर्मचारियो की तर्कपूर्ण स्वीकृति प्राप्त करनी है, तो उनसे सुलह की वातचीत (Negotiation) के लिए, उनकी व्यवस्थाओ को दूर करने के लिए तथा विवादो के निपटारे के लिए एक उपयुक्त मशीनरी की स्थापना की जानी चाहिए, साथ ही, पचनिर्णय की व्यवस्था भी होनी चाहिए, जिससे कि पारिश्रमिक (Remuneration) अथवा सेवा की अन्य किसी ऐसी विशिष्ट महत्वपूर्ण शर्त—जैसे कि अवकाश व काम के घण्टो आदि—के विषय मे यदि कोई मतभेद हो और उसे सुलझाया न जा सका हो तो उसके लिए पचनिर्णय का आश्रय लिया जा सके। और केवल ऐसा होने पर ही

1 *Ibid* Paragraph 31, chapter XLIX,
2 *Ibid* Paragraph, 13
3 *Ibid* Paragraphs, 16-17
4 *Ibid* Paragraph, 18

यह कहा जाएगा कि सरकार अपने कर्मचारियो के प्रति अपने उस दायित्व (Obligation) को पूरा कर रही है जिसकी आशा कर्मचारी तब करते हैं जबकि उनसे काम रोक देने के उनके अधिकार को छोड देने की माग की जाती है। यदि लोक-हित की दृष्टि से सरकारी कर्मचारियो से उस अस्त्र का प्रयोग न करने की माग की जाती है जोकि गैर-सरकारी कर्मचारियो के हाथो मे उचित पारिश्रमिक तथा नौकरी की सतोषजनक शर्तें प्राप्त करने का एक प्रभावशाली साधन सिद्ध होता है, तो उचित तथा न्यायसगत स्थिति केवल यही हो सकती है कि सरकारी कर्मचारियो को न्यायपूर्ण व्यवहार प्राप्त करने की एक वैकल्पिक व्यवस्था की सुविधा प्रदान की जाए। यदि लोक सेवा से हडतालो तथा प्रदर्शनो का उन्मूलन किया जा सके और व्यवस्थित प्रक्रियाओ द्वारा लोक-सेवको को न्यायोचित व्यवहार का आश्वासन दिया जा सके, तो कर्मचारियो की शिकायतें दूर करने के लिए एक यथेष्ट मशीनरी की रचना करना, जिसमे कि अनिवार्य पचनिर्णय भी सम्मिलित हो, अयुक्तिसगत नही होगा।"[1]

सुलह की बातचीत तथा विवादो के निपटारे का साधन

ह्विटले परिषदें
(Whitley Councils)

हमने देखा कि सरकारी कर्मचारियो की सेवा की शर्तों से सम्बन्धित विवादो के निपटारे तथा सुलह की बातचीत के लिए एक मशीनरी अथवा निकाय (Body) की स्थापना का कितना अधिक महत्व है। इस प्रसग मे यहाँ ब्रिटिश ह्विटले परिषदो, जो कि सरकारी कर्मचारियो के विवादो का निपटारा तथा सुलह की बातचीत करती है, की कार्य-प्रणाली का अध्ययन करना उचित ही होगा।

आरम्भ (Origin).

सन् १६१६ मे ब्रिटिश सरकार ने गैर-सरकारी उद्योगो मे श्रमिको तथा मालिको के बीच सम्बन्धो मे एक स्थायी सुधार लाने के हेतु सुझाव देने के लिए, Rt Hen J H Whitley M P (बाद मे लोक-सदन के स्पीकर) की अध्यक्षता मे एक समिति (Committee) की स्थापना की। इस समिति ने ऐसी परिषदो (Councils) के गठन की सिफारिश की कि जिसमे विवादो का निपटारा करने के लिए कर्मचारियो तथा मालिको, दोनो के ही प्रतिनिधि हो। सिविल-सेवा के कर्मचारी-सघो ने, विशेपकर पोस्ट आफिस के, ह्विटले प्रतिवेदन के प्रति बडा उत्साह प्रकट किया और यह माग की कि सयुक्त परामर्श तथा विचार-विमर्श के इस सिद्धान्त को सिविल-सेवको पर भी लागू किया जाए। उन्होने सेवा-सम्बन्धी सभी मामलो के सम्बन्ध मे राजकोष (Treasury) के साथ प्रत्यक्ष रूप से बातचीत करने की इच्छा प्रकट की। सिविल-सेवको ने पूर्णत ह्विटले परिपदो की स्थापना की माग

1 *Ibid*, pp 541-52

की। सरकार ने ८ अप्रैल १९१९ को यह माग स्वीकार कर ली। अर्थ महामात्य (Chancellor of the Exchequer) ने सिविल-सेवा मे ह्विटले परिषदो के लिए एक सशोधित सविधान बनाने के लिए एक समिति की नियुक्ति की। राजकोप के Sir Malcolm Ramsay इस समिति के अध्यक्ष थे और Mr. G H Stuart Bunning उपाध्यक्ष। इस समिति ने सन् १९१९ मे सिविल-सेवा मे ह्विटले परिषदो के सम्बन्ध मे अपना प्रतिवेदन (Report) प्रस्तुत किया। तभी से ब्रिटेन के सरकारी विभागो मे ह्विटले परिषदो की स्थापना चली आ रही है। ह्विटले परिषदो की स्थापना के विषय मे लिखते हुए White ने कहा कि "वर्तमान पीढी मे ब्रिटिश सिविल-सेवा मे जो सबसे अधिक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ है वह सम्भवत ह्विटले परिषदो की स्थापना ही है। इन निकायो (Bodies) मे सरकारी पक्ष तथा कर्मचारी पक्ष के प्रतिनिधि समान सख्या मे होते हैं तथा ये निकाय अनेक विवादास्पद समस्याओ के समाधान तथा सुलह की बातचीत के लिए कर्मचारियो के विचारो तथा उनकी आलोचनाओ को प्रस्तुत करने वाले बडे मूल्यवान अभिकरण (Agency) सिद्ध हुए हैं।"[1]

ह्विटले परिषदो के उद्देश्य तथा कार्य
(Objects and Functions of Whitley Councils)

प्रशासकीय विभागो के लिए सयुक्त ह्विटले समितियो की व्यवस्था की स्थापना के प्रमुख उद्देश्य ये हैं सिविल-सेवा से सम्बन्धित मामलो के विषय मे सेवायोजक (Employer) के रूप मे राज्य तथा सिविल-सेवको के बीच अधिकाधिक सहयोग स्थापित करना ताकि लोक-सेवा मे कुशलता लाई जा सके और कर्मचारियो के हितो की रक्षा भी की जा सके, कर्मचारियो की शिकायतो को निबटाने के लिए एक यन्त्र की व्यवस्था करना तथा सिविल-सेवा के विभिन्न अगो के प्रतिनिधियो के अनुभवो तथा भिन्न-भिन्न विचारो को एक स्थान पर जुटाना।

ह्विटले परिषदो का सम्बन्ध केवल ७०० पौंड वार्षिक तक वेतन पाने वाले अनौद्योगिक (Non-industrial) कर्मचारियो की समस्याओ से है। ह्विटले परिषदो के कार्य निम्न प्रकार हैं —

(१) कर्मचारी-वर्ग के विचारो तथा अनुभवो का उपयोग करने के लिए सर्वोत्तम उपायो की व्यवस्था करना।

(२) ऐसे उपायो की व्यवस्था करना कि जिनके द्वारा कर्मचारी-वर्ग अपनी सेवा की शर्तो के निर्धारण तथा निरीक्षण मे अधिक भाग ले सके तथा उत्तरदायी बनाये जा सकें।

---

1 L D White, *The Civil Service in the Modern State* A collection of Documents, p 23

(३) सेवा की शर्तो, जैसे कि भर्ती, काम के घण्टे, पदोन्नति, अनुशासन पदावधि, पारिश्रमिक तथा अतिवयस्कता की आयु (Age of superannuation) आदि, का नियमन करने वाले सामान्य सिद्धान्तो का निर्धारण।

राष्ट्रीय परिषद (National Council) मे, पदोन्नति के सम्बन्ध मे होने वाला विचार-विमर्श विषय के सामान्य पहलुओ तथा उन सिद्धान्तो तक ही सीमित रहेगा जिन पर कि पदोन्नतियाँ (Promotions) सामान्य रूप मे निर्भर रहनी चाहिए। किसी भी परिस्थिति मे व्यक्तिगत मामलो पर विचार नही किया जायेगा।

इसी प्रकार, राष्ट्रीय परिषद् को यह छूट रहेगी कि वह अनुशासनात्मक कार्यवाही से सम्बन्धित सामान्य सिद्धान्तो पर विचार-विमर्श कर सके, परन्तु वैयक्तिक मामलो के सम्बन्ध मे कोई विचार-विनिमय अथवा वाद-विवाद नही होगा।

(४) सिविल-सेवको की अगामी शिक्षा (Further education) को प्रोत्साहन देना तथा उनको उच्चतर प्रशासन तथा सगठन का प्रशिक्षण (Training) देना।

(५) कार्यालय की यन्त्र-रचना तथा सगठन मे सुधार करना और इस विषय पर कर्मचारी-वर्ग द्वारा दिये जाने वाले सुझावो पर पूर्ण रूप मे विचार करने के अवसरो की व्यवस्था करना।

(६) सिविल-सेवको की नौकरी से सम्बन्धित प्रस्तावित विधि निर्माण पर सुझाव देना।

ह्विटले परिषदो का संगठन
(Organization of Whitley Councils)

ह्विटले परिषदो के सगठन मे—

(१) एक राष्ट्रीय परिषद् (A National Council),

(२) विभागीय परिषदें (Departmental Councils) तथा

(३) जिला या क्षेत्रीय समितियाँ (District or Regional Committees) सम्मिलित होती हैं।

(१) राष्ट्रीय परिषद
(National Council)

राष्ट्रीय परिषद् मे ५४ सदस्य होते हैं। इनमे से आधे सरकारी पक्ष के होते हैं और उनकी नियुक्ति सरकार द्वारा सिविल-सेवको अथवा अन्य उच्च अधिकारियो मे से की जाती है जिसमे राजकोष (Treasury) तथा श्रम मन्त्रालय (Ministry of Labour) का कम से कम एक-एक प्रतिनिधि अवश्य होता है। परिषद् के शेष आधे सदस्य कर्मचारी-पक्ष के होते हैं जिनकी नियुक्ति वितरण की एक निश्चित योजना के अनुसार कर्मचारी-सघो द्वारा की जाती है। ह्विटले परिषदो के सविधान मे कहा गया है कि "राष्ट्रीय परिषद् के क्षेत्र मे ऐसे सभी विषय

सम्मिलित होगे जोकि कर्मचारी-वर्ग की सेवा की शर्तों को प्रभावित करें।" राष्ट्रीय परिषद् स्थायी समितियो (Standing committees), विशिष्ट समितियो (Special committees) तथा पदक्रम समितियो (Grade committees) की नियुक्ति कर सकती है और इस प्रकार नियुक्ति की गई किसी भी समिति को विशिष्ट शक्तियो का हस्तान्तरण अथवा प्रत्यायोजन (Delegation) कर सकती है।

(२) विभागीय परिषद (Departmental Councils) •

राष्ट्रीय परिषद् का सम्बन्ध उन विषयो मे नही होता जो कि शुद्ध रूप से विभागीय (Purely department) होते हैं। विभागीय मामलो के लिए विभागीय ह्विटले परिषदें होती हैं जिनकी नियुक्तिया स्वतन्त्र रूप से की जाती हैं और राष्ट्रीय परिषद् के समान ही इनमे सरकारी पक्ष तथा कर्मचारी पक्ष के आधे-आधे प्रतिनिधि होते हैं। सामान्य नियम के रूप मे, प्रत्येक विभाग मे एक विभागीय परिषद् की स्थापना की जाती है परन्तु बडे विभागो मे एक से अधिक विभागीय परिषदें भी हो सकती हैं। इन परिषदो की सदस्य सख्या कम होती है। विभागीय परिषद् के सरकारी पक्ष के सदस्यो की नियुक्ति मन्त्री या स्थायी विभागाध्यक्ष द्वारा की जाती है। कर्मचारी पक्ष के प्रतिनिधियो का चुनाव उन सघो (Associations) अथवा सघ समूहो द्वारा किया जाता है जिनके सदस्य उस विशिष्ट विभाग मे काम करने वाले कर्मचारी होते है। विभागीय परिषदो के कार्य तथा उद्देश्य, जहां तक कि वे सम्बन्धित विभाग मे ही विशेष रूप से लागू होते हो, लगभग वही होते हैं जोकि राष्ट्रीय परिषद् के होते हैं। विभागीय परिषदें ऐसी किसी पदोन्नति पर भी वादविवाद कर सकती हैं जिसके सम्बन्ध मे कि कर्मचारी-पक्ष की ओर से यह आवेदन किया गया हो कि इसमे पदोन्नति के उन सिद्धान्तो का उल्लघन किया है जोकि राष्ट्रीय परिषद् द्वारा अथवा उसकी अनुमति से स्वीकार किये गये थे। विभागीय परिषदें ऐसे मामलो की रिपोर्ट राष्ट्रीय परिषद को कर सकती हैं जोकि एक से अधिक विभागो की परिधि मे आते हो। इस व्यवस्था के अतिरिक्त, राष्ट्रीय तथा विभागीय परिषदो के बीच अपील का और कोई सूत्र (Line) नही है। राष्ट्रीय तथा विभागीय परिषदो के बीच कोई पद-सोपानीय सम्बन्ध (Hierarchical connection) नही है। तथापि, राष्ट्रीय परिषद् को सभी विभागीय परिषदो के सविधान स्वीकार करने ही पडते हैं और राष्ट्रीय परिषद् को ऐसे विभागीय विकासो से परिचित रखा जाता है जो राष्ट्रीय करारो (National agreements) की दृष्टि मे असगत प्रतीत होते हो।

(३) जिला अथवा क्षेत्रीय समितियां (District or Regional Committees)

ये जिला अथवा क्षेत्रीय समितिया देश भर मे फैले हुए कर्मचारी-वर्ग की शुद्धत स्थानीय समस्याओ को सुलझाती है। इसका निर्माण उसी सिद्धान्त के अनुसार किया जाता है जिस पर कि विभागीय परिषदो का किया जाता है।

ह्विटले परिषदो की सत्ता की सीमायें
(Limitations of the Authority of the Whitley Councils)

प्रश्न यह है कि ह्विटले परिपदो को क्या सत्ता प्राप्त है ? ह्विटले परिपदो के सविधान (Constitution) मे यह दिया हुआ है कि "परिपद् द्वारा जो भी निर्णय किये जायेंगे वे दोनो पक्षो की सहमति मे ही किए जायेंगे, उन पर सभापति (Chairman) और उप-सभापति के हस्ताक्षर होगे, उन निर्णयो की सूचना मन्त्रि-परिपद् (Cabinet) को दी जायेगी और तव उनको कार्यान्वित किया जायेगा ।" विभागीय ह्विटले परिपदो के निर्णयो (Decisions) की सूचना विभागाध्यक्ष (Head of the Department) को दे दी जायेगी और तव वे कार्यान्वित होगे , क्या इसका अर्थ यह है कि मन्त्रि-परिपद् ह्विटले परिपदो के निर्णयो को मानने को वाध्य है ? यह हो सकता है कि ह्विटले परिपदो के निर्णय मन्त्रि-परिषद् की नीति के विरुद्ध हो , यदि ऐसा हुआ तो मन्त्रि-परिषद् के उत्तरदायित्व का क्या होगा ? इस स्थिति का स्पष्टीकरण सन् १६१६ मे किया गया था । दोनो पक्षो के वीच एक समझौता है जिसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है "ह्विटले परिपदो की स्थापना मे सरकार ससद (Parliament) के प्रति अपने किसी भी उत्तरदायित्व से मुक्त नही हो सकती, और मन्त्रियो (Ministers) तथा उनकी सामान्य अथवा विशिष्ट सत्ता के अन्तर्गत कार्य करने वाले विभागाध्यक्षो को प्रत्येक स्थिति मे निश्चय ही ऐसी कार्यवाहियाँ करनी चाहियें जोकि लोक-हित की दृष्टि से आवश्यक हो । यह स्थिति ससदीय सरकार तथा मन्त्रीय उत्तरदायित्व मे सवैधानिक सिद्धान्तो मे अन्तर्निहित है और मन्त्री न तो इसका परित्याग कर सकते है अथवा न इससे वच सकते है ।

इस सवैधानिक सिद्धान्त (Constitutional principle) से यह स्पष्ट है कि जहाँ तक सिविल-सेवा का सम्वन्ध है, सरकार द्वारा ह्विटले प्रणाली की स्वीकृति मे उसकी यह इच्छा अवश्य निहित है कि ह्विटले कार्यविधि (Whitley procedure) का पूर्णतया सम्भव उपयोग न किया जाए, परन्तु लोकहित की दृष्टि से अपने उत्तरदायित्वो का निर्वाह करने मे तथा अपनी सत्ता के क्रियान्वय मे उसने अपनी कार्य करने की स्वाधीनता का परित्याग नही किया है और न वह ऐसा कर ही सकती है ।"

इस प्रकार, सिविल अथवा असैनिक सेवा से सम्वन्धित मामलो पर ससद की सर्वोच्चता तथा सरकार का नियन्त्रण यथापूर्व वर्तमान है । फिर एक वात यह है कि जव तक मन्त्री सरकारी पक्ष को समझौते (Agreement) मे सहमति प्रकट करने का अधिकार न दें तव तक परिपद् किसी भी समझौते अथवा निर्णय पर नही पहुँच सकती है । Mr Douglas Honghton ने समझौतो से सम्वन्धित वर्तमान स्थिति को सक्षेप मे इस प्रकार व्यक्त किया है कि "सरकारी पक्ष अविभाज्य (Indivisible) होता है । सिविल सेवा मे सम्पूर्ण ह्विटले पद्धति की यह एक मूलभूत वात है। इस पद्धति के प्रणेताओ ने इसे अपूर्ण रूप मे ही समझा । समझौते स्वय सम्पन्न नही

होते, बल्कि होने से पूर्व मन्त्रियो द्वारा उनके लिए स्वीकृति प्रदान की जाती है।"[1] बात यह है कि ह्विटले-परिषदें किसी समझौते अथवा निर्णय पर तब तक नही पहुँच सकती जब तक कि सरकारी पक्ष उससे सहमत न हो जाए और सरकारी पक्ष किसी भी मामले पर तब तक सहमत न होगा जब तक कि उसको मन्त्रियो से विशिष्ट सत्ता अथवा अधिकार न प्राप्त हो जाए।

ह्विटले परिषदों के योग का मूल्यांकन
(Evaluation of the Role of Whitley Councils)

यदि ह्विटले परिषदो से सरकार की शक्तियो तथा उसकी प्रशासकीय सत्ता मे कोई कमी नही होती है तो प्रश्न यह पैदा होता है कि कर्मचारी-वर्ग के लिए इन परिषदो की उपयोगिता क्या है ? ह्विटले परिषदो की सबसे पहली उपयोगिता यह है कि ये सेवा-योजक (Employer) तथा कर्मचारियो (Employees) के लिए सामूहिक रूप से मिलने के लिए एक ऐसे स्थल की व्यवस्था करती हैं जहाँ कि दोनो पक्ष एक साथ मिलकर बैठते हैं तथा कर्मचारी-वर्ग को प्रभावित करने वाले मामलो पर वाद-विवाद तथा विचार-विनिमय करते हैं। सरकारी पक्ष (सेवा-योजक) को अपने मत का औचित्य सिद्ध करना पडता है और उसके विषय मे कर्मचारियो को सन्तुष्ट करना पडता है। इस सन्तुष्टि से सेवा-योजक तथा कर्मचारियो के बीच परस्पर एक दूसरे को समझने की अच्छी भावना उत्पन्न होती है। पारस्परिक विचार-विनिमय तथा वार्तालाप की इस रीति से अनेक भ्रान्तियाँ तथा मिथ्या धारणायें दूर हो जाती हैं। जब पारस्परिक सहमति से कार्यवाहियाँ की जाती हैं तो प्रशासन की कार्य-क्षमता तथा मनोबल (Moral) मे वृद्धि होती है।

इस व्यवस्था से सरकार अपनी नीतियो के विषय मे कर्मचारियो के विचार जान सकती है और उनमे सशोधन, परिवर्तन अथवा आवश्यक हेर-फेर कर सकती है। Mr Winnifrith ने, जिनका कि ब्रिटिश सिविल-सेवा मे कार्मिक नीतियो (Personnel policies) के निर्माण से घनिष्ठ सम्बन्ध है, इस तथ्य पर काफी जोर दिया है। उन्होने कहा 'बिल्कुल स्पष्ट रूप से मैं यह स्वीकार करने को प्रस्तुत हूँ कि सेवा-योजक अथवा प्रबन्धक, केवल अपनी अनिपुण अवस्था के कारण ही, सर्वदा यह नही जान पाते कि सर्वोत्तम स्थिति क्या है। अत प्रबन्ध-पक्ष (Management side) के लिए यह बात बडे महत्व की है कि सेवा की शर्तों मे कोई भी परिवर्तन करने से पूर्व वह कर्मचारियो के विचार जानकर उससे लाभ उठाये।"[2]

---

1 Douglas Honghton M P in William A Robson (Ed) *The Civil Service in Britain and France*, p 144

2 Winnifrith, '*Negotiation and Joint Consultation in the Civil Service*,' Whitley Bulletin, Vol XXXIII P 104

ह्विटले परिषदो का मवसे बडा लाभ यह है कि इनके द्वारा कर्मचारी-वर्ग तथा प्रबन्ध-वर्ग के बीच ऐक्य एव सहकारितापूर्ण मम्बन्धो का विकास हुआ है।[1]

कर्मचारी सघ अब काफी उत्तरदायी हो गये हैं। उन्होने प्रतिष्ठा भी प्राप्त की है। उधर सरकारी पक्ष मे अपनी आलोचनायें सुनने की क्षमता का विकास हुआ है। इम प्रकार ह्विटले परिषदो के कारण, सरकारी कर्मचारी इस योग्य हो गये हैं कि वे वेतन, सेवा की शर्तो अथवा पदोन्नतियो आदि से सम्बन्धित अपनी मागो को हडताल अथवा अन्य किसी असवैधानिक उपाय का आश्रय लिये बिना ही पूर्ण करा सकें। ह्विटले परिषदें अतिवयस्कता (Superannuation), काम के घण्टो, छुट्टियो, नौकरी से हटाये जाने, यात्रा-व्यय, पदोन्नति के समय होने वाली वेतन-वृद्धियो, भर्ती (Recruitment) तथा पदोन्नति के सिद्धान्तो से सम्बन्धित विषयो पर वादविवाद करती हैं, वे कर्मचारी-वर्ग से सम्बन्धित सरकारी नीति के विषयो पर वाद-विवाद अथवा विचार-विनिमय नही करती। ह्विटले परिषदो ने "शान्ति बनाये रखने मे तथा कर्मचारियो को अपने कार्य के बारे मे प्रसन्न रखने मे"[2] बडी महायता पहुँचाई है।

यह एक सार्वलौकिक तथ्य है कि ह्विटले परिषदो ने प्रवर तथा अवर अथवा उच्च तथा अधीनस्थ कर्मचारियों (Superiors and subordinates) के बीच सद्भावना एव मधुर सम्बन्ध स्थापित किया है।

यह बात तो निश्चित है कि ह्विटले परिषदो की सफलता सरकारी तथा कर्मचारी पक्ष के महयोगपूर्ण रुख पर निर्भर होगी। भिन्न-भिन्न विभागो मे ह्विटले परिषदो को जो सफलतायें प्राप्त हुई हैं वे भिन्न-भिन्न हैं। यदि उच्च पदाधिकारी यह सोचते हैं कि कर्मचारी-वर्ग के साथ समान आधार पर बातचीत करना अपमानजनक है, अथवा यदि कर्मचारी ही दिये बिना लेने का स्वार्थी रुख अपनाते है, तो ह्विटले पद्धति की असफलता अनिवार्य है। उच्च पदाधिकारियो को ह्विटले परिषदो के प्रति स्वेच्छाचारी नही, बल्कि लोकतन्त्रीय रुख अपनाना चाहिए, और कर्मचारियो को अपनी मागें प्रस्तुत करते समय सदा व्यापक राष्ट्रीय समस्याओ को दृष्टिगत रखना चाहिये। यदि ऐसा हुआ तो ह्विटले प्रणाली की सफलता बिल्कुल निश्चित है। ह्विटलेवाद (Whitleyism) की सफलता इस बात पर निर्भर है कि दोनो ही

1 In the words of Sir Albert Day, "The Staff movement is much more harmonious, thanks to Whitleyism, than it used to be, and is imbued with a sense of common purpose and corporate responsibility once woefully lacking Strong differences are sometimes revealed, of course, and occasionally there may be quite a blow off But I expect that can happen on the official side as well as, though in a House of Lords sort of way"

—Whitley Bulletin (July 1953) Vol HXXIII, No 7 P 301

2 Dogles Honghton, *op cit*, p 150

पक्षो की ओर से "विवाद तथा विरोध की बजाये सहयोग एव समझौते"[1] की नीति अपनाई जाये।

ह्विटले परिषदो ने सिविल-सेवा की सभी समस्याओ के समाधान मे सहायता पहुँचाई है। सन् १९२० से सिविल सेवा का पुनर्वर्गीकरण (Reclassification) हुआ है तथा वेतनो, राजनैतिक अधिकारो, आगामी शिक्षा (Further education) तथा प्रशिक्षण (Training), पदोन्नतियो (Promotions), अनुशासन व सामान्य मनोबल आदि मे वृद्धि हुई है। अभी हाल के वर्षो मे तो राष्ट्रीय ह्विटले परिषद् की बैठक कभी-कभी ही होती है। गत पन्द्रह वर्षो मे, पूर्ण राष्ट्रीय ह्विटले परिषद् की दो बार बैठकें हुई है। इनका अधिकाश कार्य समितियो (Committees) द्वारा तथा दोनो पक्षो के बीच दिन प्रतिदिन सम्पर्क बनाये रखकर सम्पन्न किया जाता है। औपचारिक बैठको (Formal meetings) के स्थान पर अनौपचारिक वाद-विवादो (Informal discussions) का महत्व बढ गया है। ह्विटले परिषदो की महत्ता दिन प्रतिदिन बढती जा रही है और इसके कार्य की मात्रा ने इसको समितियो तथा अनौपचारिक बैठको का उपयोग करने को बाध्य कर दिया है।

सिविल-सेवा पंचनिर्णय अथवा विवाचन न्यायाधिकरण
(The Civil Service Arbitration Tribunal)

प्रश्न यह है कि यदि ह्विटले परिषदो मे दोनो पक्षो के बीच सुलह की बातचीत तथा विचार-विमर्श असफल हो जाए, तो विवादो (Disputes) के निपटारे के लिये क्या किया जाए ? इस कार्य के लिये, ब्रिटेन मे, एक सिविल-सेवा पचनिर्णय अथवा विवाचन न्यायाधिकरण है जिसकी स्थापना सन् १९३६ मे हुई थी। न्यायाधिकरण का एक अध्यक्ष होता है जोकि एक प्रमुख वकील होता है तथा दो अन्य सदस्य होते हैं जिनमे से एक राष्ट्रीय ह्विटले परिषद् के कर्मचारी-पक्ष द्वारा चुनी हुई नाम-सूची (Panel) मे से लिया जाता है, और दूसरा परिषद् के सरकारी पक्ष द्वारा मनोनीत नामसूची मे मे लिया जाता है। मुकदमे ह्विटले परिषदो द्वारा अथवा कर्मचारी-सघो द्वारा न्यायाधिकरण (Tribunal) को सौंपे जा सकते हैं। न्यायाधिकरण द्वारा 'वर्ग' (Class) के ही दावे (Claims) स्वीकार किये जाते हैं, व्यक्ति के नही। केवल ८५० पौण्ड और इससे कम वेतनो से सम्बन्धित दावे ही न्यायाधिकरण के समक्ष प्रस्तुत किये जा सकते हैं। परिलाभो (Emoluments), काय के साप्ताहिक घण्टो तथा छुट्टियो को प्रभावित करने वाले दावे न्यायाधिकरण के सन्मुख लाये जा सकते हैं। जैसा कि हमने देखा, न्यायाधिकरण का कार्य यद्यपि 'न्यायपूर्ण, धैर्ययुक्त तथा पूर्ण' है किन्तु सीमित है। साथ ही, सरकार ने 'नीति के आधार पर' पचनिर्णय को अस्वीकृत करने का अधिकार अपने पास सुरक्षित रखा है

1 Day, *op cit*, p 101, Also refer to B S Khanna Whitleysim—A feature of Democratic Administration The Indian Journal of *Public Administration*, New Delhi April-June, 1959 Vol V No 2, pp 207-222

और पचनिर्णय को कार्यान्वित करने की सरकार की वचनवद्धता ससद की उच्च सत्ता के अधीन है । परन्तु व्यवहार मे, पचनिर्णय को अस्वीकृत अथवा रद्द नही किया गया है ।

भारत मे सुलह की बातचीत तथा विवादो के निपटारे का यन्त्र (Machinery for Negotiations and Settlement of Disputes in India)

ह्विटले परिषदो की आवश्यकता (Need for Whitley Councils)

कर्मचारी-वर्ग परिषद् (Staff Councils)—सन् १९५४ मे, भारत सरकार ने केन्द्रीय मन्त्रालयो मे, कर्मचारी-वर्ग समितियो[1] (Staff Committees) की स्थापना का निश्चय किया । प्रत्येक मन्त्रालय (Ministry) मे अब दो कर्मचारी-वर्ग परिषदें हैं—एक तो वरिष्ठ कर्मचारी-वर्ग परिषद् (Senior Staff Council), जोकि द्वितीय व तृतीय श्रेणी के कर्मचारियो के लिये है, और एक कनिष्ट कर्मचारी-वर्ग परिषद् (Junior Staff Council), जो चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियो के लिये है । वरिष्ठ कर्मचारी-वर्ग परिषद् सरकार द्वारा मनोनीत व्यक्तियो (Government nominees) तथा अनुभाग अधिकारियो (Section Officers), सहायको (Assistants), आशुलिपिको (Stenographers) व लिपिको (Clerks) आदि के प्रतिनिधियो को मिलाकर वनती है । सम्बन्वित मन्त्रालय कुछ अधिकारियो (जिनकी सख्या निर्धारित नही है), जोकि अवर सचिव (Under Secretary) की पदस्थिति (Rank) से नीचे के नही होते, तथा सलग्न कार्यालयो (Attached offices) के प्रधानो अथवा उनके द्वारा निर्दिष्ट व्यक्तियो को मनोनीत करता है जोकि परिषद् मे प्रशासन का प्रतिनिधित्व करते है । कर्मचारी-वर्ग के प्रतिनिधि कर्मचारी सघो द्वारा मनोनीत नही किये जाते, अपितु कर्मचारियो द्वारा प्रत्यक्ष रूप से चुने जाते है । ये दो वर्ष तक अपने पद पर बने रहते है । मन्त्रालय का सचिव अथवा एक सयुक्त सचिव (Joint Secretary) परिषद् का अध्यक्ष होता है । कर्मचारी-वर्ग के प्रतिनिधियो के परामर्श से वह उनमे से एक को परिषद् का सचिव नामजद करता है । यह आवश्यक है कि तीन माह मे कम से कम एक वार परिषद् की बैठक अवश्य हो , परन्तु कर्मचारी-वर्ग के १/५ प्रतिनिधियो की प्रार्थना पर अध्यक्ष को परिषद् की विशेप वैठक (Meeting) बुलानी होती है । परिषद् केवल उसी प्रस्ताव की सिफारिश कर सकती है जोकि प्रत्येक पक्ष के सदस्यो के बहुमत से स्वीकृत हुआ हो , और तव सम्वन्धित मन्त्रालय यह निश्चय करता है कि उस सिफारिश पर यदि कोई कार्यवाही की जाए तो क्या की जाए । परिषद् की कार्यवाहिया (Proceedings) मन्त्री (Minister) के समक्ष प्रस्तुत की जाती है और असहमति के केन्द्रबिन्दुओ की ओर विशेष रूप से उसका ध्यान आकर्षित किया जाता है ।

1 Renamed Staff Councils in August 1957

कर्मचारी-वर्ग परिषद् की बैठकों मे जिन विवादो का समाधान नही हो पाता वे समन्वय समिति (Co-ordination Committee) के सुपुर्द कर दिये जाते है जोकि स्वराष्ट्र, वित्त, कर्म, गृहनिर्माण तथा पूर्ति मन्त्रालयो के तीन वरिष्ठ पदाधिकारियो को मिलाकर बनती हैं।

कर्मचारी-वर्ग परिषदो के उद्देश्य
(Objects of the Staff Councils)

कर्मचारी-वर्ग परिषदो के उद्देश्य ये है (१) कार्य के स्तरो मे सुधार के सुझावो पर विचार करना, (२) कर्मचारियो के लिए एक ऐसे यन्त्र की व्यवस्था करना जिसके द्वारा वे अपनी सेवा की शर्तों को प्रभावित करने वाले मामलो के विषय मे अपने दृष्टिकोण से सरकार को परिचित करा सके, और (३) अधिकारियो के बीच वैयक्तिक सम्पर्क स्थापित करने के उपायो की व्यवस्था करना जिससे कि उनके बीच सौहार्दपूर्ण सम्बन्धो का विकास हो और कर्मचारियो को अपने कार्य मे अधिक रुचि लेने का प्रोत्साहन मिले। ये परिषदे परामर्शदात्री सस्थायें है और (१) कर्मचारियो की कार्य करने की दशाओ एव शर्तों, (२) सेवा की शर्तों का नियमन करने वाले *सामान्य सिद्धान्तो*, (३) कर्मचारी-वर्ग के *कल्याण तथा* (४) *कार्य-क्षमता* एव कार्य के स्तरो मे सुधार से सम्बन्धित कोई भी मामला इनकी बैठको मे वादविवाद के लिए प्रस्तुत किया जा सकता है।

कनिष्ट-कर्मचारी-वर्ग परिषदो की रचना तथा उनके कार्य भी मुख्यत वैसे ही होते है। इसमे सहायको (Assistants) अथवा उनके ऊपर की पदस्थिति के अधिकारी सरकार का प्रतिनिधित्व करते है। सम्बन्धित मन्त्रालय का उप-सचिव (Deputy Secretary) इसका अध्यक्ष होता है। कर्मचारी-वर्ग के प्रतिनिधि प्रत्यक्ष रूप से कर्मचारियो द्वारा ही निर्वाचित किये जाते हैं। इस कार्य के लिए कर्मचारियो को दो वर्गों मे बाटा जाता है (१) दफ्तरी और रिकार्ड छाटने वाले, और (२) जमादार, चपरासी फर्राश, चौकीदार व मेहतर आदि। प्रत्येक वर्ग एक अतिरिक्त प्रतिनिधि का निर्वाचन कर सकता है जोकि उच्च श्रेणी से सम्बन्धित एक सरकारी कर्मचारी होना चाहिये परन्तु वह अनुभाग अधिकारी (Section officer) से ऊची पदस्थिति (Rank) के पद पर आसीन नही होना चाहिए। डाक व तार तथा रेलवे विभागो की अपनी निजी सस्थाये अथवा परिषदें होती हैं जिनके द्वारा वे कर्मचारी-वर्ग की समस्याओ का समाधान करते है।

सरकार के औद्योगिक कर्मचारी 'भारतीय श्रमिक सघ अधिनियम, १९२६' (Indian Trade Unions Act 1926) तथा 'औद्योगिक विवाद अधिनियम १९४७' (Industrial Disputes Act, 1947) के अन्तर्गत आते हैं। ये अधिनियम सरकार तथा गैर-सरकारी कर्मचारियो के बीच कोई भेद नही करते, और यदि ये इनके बीच कोई भेद करते भी है तो वह उस उद्यम अथवा सेवा की प्रकृति पर आधारित होता है जिसमें कि कर्मचारी काम कर रहा होता है, अथवा उसके कार्यो

की प्रकृति तथा उसको प्राप्त होने वाले परिलाभो (Emoluments) की मात्रा पर आधारित होता है। अधिनियम (Act) मे विवादो के निपटारे के लिए, कुछ शर्तों के पूरा होने पर ऐच्छिक पच-निर्णय (Voluntary arbitration) की तथा जनोपयोगी सेवाओ की स्थिति मे अनिवार्य न्यायिक निर्णय (Compulsory adjudication) की व्यवस्था है जब तक कि सरकार हडताल की धमकी को निरर्थक अथवा न्यायिक निर्णय की आवश्यकता को अनुपयुक्त न समझे।[1] इस प्रकार का न्यायिक निर्णय सरकार द्वारा स्वीकृत होने पर दोनो पक्षो पर अनिवार्य रूप मे लागू होता है और तदनुसार उसकी सूचना दे दी जाती है।

भारत मे विवादो के निपटारे तथा सुलह की बातचीत की व्यवस्था की आलोचना

(Criticism of Machinery for Settlement and Negotiations of Disputes)

वेतन आयोग (Pay Commission) (१९५७–५९) के समक्ष गवाही देते हुए कर्मचारियो के सगठनो ने सरकार तथा उसके कर्मचारियो के बीच विवादो के निपटारे तथा सुलह की बातचीत की वर्तमान व्यवस्था की निम्नलिखित आलोचनाए की —

(१) सरकार मे, विवादो के निवारण के एक प्रभावशाली अस्त्र के रूप मे सयुक्त परामर्श के सिद्धान्त को स्वीकार करने की इच्छा का अभाव था,

(२) वहाँ भी जहाँ कि वार्तालाप-यन्त्र सुविचारपूर्ण था, वह कुशलता के साथ कार्य नही कर रहा था,

(३) बैठको (Meetings) का आयोजन नियमित रूप मे नही किया जाता था, अथवा निर्णय (Decisions) करने या उनको क्रियान्वित करने मे शीघ्रता नही की जाती थी,

(४) प्रशासन का प्रतिनिधित्व करने वाले कुछ अधिकारी उस यन्त्र-रचना के प्रति, जिसके अन्तर्गत कि उन्हे कार्य करना था, उचित रुख नही अपनाते थे। कर्मचारी-वर्ग परिषदो (Staff councils) के विषय मे वेतन आयोग के प्रतिवेदन (Report)[2] मे कहा गया कि "कर्मचारी-वर्ग परिषदो तथा ह्विटले यन्त्र मे बहुत कम समानता पाई जाती है, हाँ इनके नामकरण मे अवश्य कुछ समानता है। इन परिषदो के उद्देश्य तो काफी व्यापक हैं, परन्तु उनकी शक्तियां तथा कार्यविधियां उनके सक्रिय कार्य-क्षेत्र को अत्यन्त सीमित कर देती हैं। सेवा की शर्तों से सम्बन्धित अधिकाश मामले आमतौर मे केन्द्रीय स्तर पर निपटाये जाते है, विभागीय स्तर पर नही, परन्तु ऐसे मामलो पर विचार करने के लिये केन्द्रीय कर्मचारी-वर्ग परिषद् जैसी कोई सस्था नही है। परिणाम यह होता है कि कर्मचारी-वर्ग परिषदो की सिफारिशें

1 Section 10 of the Act
2 Pay Commission Report, *op cit*, p 540

सामान्य रीति के अनुसार उपयुक्त मन्त्रालयो को विचारार्थ प्रेषित कर दी जाती हैं और उन पर जो निर्णय किये जाते हैं, एक अवधि के पश्चात्, जोकि कभी-कभी विचारणीय होती हैं, परिषदो को बतला दिए जाते है। सरकारी पक्ष को यह सत्ता प्राप्त नही होती कि वह सरकार के उत्तरदायित्व पर किसी भी वात के लिए वचन-बद्ध हो सके, इसके सदस्य अधिक से अधिक अपने वैयक्तिक सामयिक विचार प्रकट कर सकते हैं परन्तु सरकार किसी भी प्रकार उनको स्वीकार करने के लिए बाध्य नही होती। इन परिस्थितियो मे, इन परिषदो को सुलह की वार्तालाप के यन्त्र की सज्ञा नही दी जा सकती। वस्तुस्थिति यह है कि ये परिषदें कर्मचारियो के प्रतिनिधियो के लिये केवल एक ऐसा मच-मात्र हैं जहाँ से कि वे अपनी व्यथाओ एव शिकायतो को प्रस्तुत कर सकें और सरकार द्वारा मनोनीत व्यक्तियो के सन्मुख अपने विचार रख सके। हम निश्चयपूर्वक यह नही कह सकते कि इन परिषदो का परामर्श एव विचार-विमर्श करने के यन्त्र की व्यवस्था करने का साधन भी माना जा सकता है। हमे जो सूचना उपलब्ध हुई है उससे यह प्रकट नही होता कि सरकार द्वारा इन परिषदो के सम्मुख कोई भी समस्या या प्रस्ताव विचारार्थ प्रस्तुत किया गया हो · · । इन परिषदो को ह्विटले परिषदो से पूर्णत भिन्न माना जाता है।"

भारत मे ह्विटले परिषदो की अत्यधिक आवश्यकता है। वेतन आयोग ने सरकारी कर्मचारियो के विवादो को सुलझाने तथा सुलह की बातचीत के लिये अपने प्रतिवेदन मे निम्न बातो की सिफारिश की

झगडो को सुलझाने तथा सुलह की बातचीत के लिए, एक केन्द्रीय सयुक्त परिषद् (Central joint council) सहित, जिसमे, कि औद्योगिक तथा गैर-औद्योगिक केन्द्रीय सरकारी कर्मचारियो के सम्पूर्ण निकाय (Whole body) का प्रतिनिधित्व हो, ह्विटले-तुल्य यन्त्र की स्थापना होनी चाहिये। केन्द्रीय सयुक्त परिषद् की एक समिति औद्योगिक कर्मचारी-वर्ग से सम्बन्धित मामलो को निबटा सकती है।

इसी प्रकार विभागीय सयुक्त परिषदो की भी स्थापना होनी चाहिए।

सुलह की बातचीत (Negotiation) के सयुक्त यन्त्र के एक-एक आवश्यक पूरक (Complement) के रूप मे ऐसे अनिवार्य पचनिर्णय (Compulsory arbitration) की व्यवस्था होनी चाहिए जोकि केवल मान्यता-प्राप्त सस्थाओ (सघो) के लिए ही खुला हो और ऐसे कर्मचारियो के वेतन व भत्तो, कार्य के साप्ताहिक घण्टो तथा छुट्टियो तक सीमित हो जोकि वर्तमान द्वितीय श्रेणी के स्तर से ऊपर के न हो।

श्रम मन्त्रालय (Ministry of Labour) कर्मचारी सम्बन्धो (Staff relations) मे सम्बद्ध महत्वपूर्ण मामलो से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित होना चाहिए। प्रस्तावित केन्द्रीय सयुक्त परिषद् मे विशेष रूप से इसका सम्बन्ध होना चाहिए और इसको पच-मण्डल (Board of arbitrators) के अध्यक्ष की नियुक्ति करनी

चाहिये, यदि पच-निर्णय आवश्यक हो, तो भारत मे ह्विटले परिषदो की अत्यधिक आवश्यकता है। कर्मचारियो के झगडे जिनके फलस्वरूप हडताले होती है भारत मे आये-दिन की बात हो गई है। ह्विटलेवाद (Whitleyism) की मुख्य महत्ता उन साधनो मे निहित नही है जोकि यह झगडो को सुलझाने के लिए प्रस्तुत करता है (वैसे उन साधनो का अपना निजी महत्व है), अपितु उन अवसरो (Opportunities) मे निहित है जिन्हे यह झगडो तथा हडतालो को रोकने के लिए उपलब्ध कराता है।

टिप्पणी—भारत मे सरकारी सेवाओ मे हडतालो पर रोक लगा दी जायेगी और केन्द्र सरकार के कर्मचारियो के सघो मे किसी भी बाहर के व्यक्ति को पद ग्रहण करने की अनुमति नही होगी। सरकार पचनिर्णय द्वारा विवादो का निबटारा करने के लिए सेवाओ की सभी शाखाओ मे सुलह यन्त्र की स्थापना करेगी।

(हिन्दुस्तान टाइम्स, ९ अगस्त १९६०)

भारत सरकार कुछ सरकारी सेवाओ मे हडतालो पर प्रतिबन्ध लगा रही है। सरकार अपने कर्मचारियो को दो ठोस लाभ प्रदान करने का विचार कर रही है—विभिन्न स्तरो पर एक सयुक्त वार्तालाप यन्त्र (Joint negotiating machinery) और इसके असफल रहने की स्थिति मे पचनिर्णय (Arbitration)।

२३

अमेरिकन सिविल सेवा

(American Civil Service)

प्रशासन की कार्य-क्षमता एक बडी मात्रा मे उस कर्मचारी-वर्ग की कार्यक्षमता पर निर्भर रहती है जोकि प्रशासन की व्यवस्था करता है। किसी भी देश का कुशल प्रशासन सिविल सेवा की क्षमता एव समर्थता पर निर्भर होता है। किसी भी देश की सिविल सेवा के सम्बन्ध मे जो प्रमुख प्रश्न पैदा होते हैं वे ये हैं सिविल अथवा असैनिक सेवको की भर्ती (Recruitment) किस प्रकार की जाती है और उन्हे प्रशिक्षण (Training) किस प्रकार दिया जाता है ? उसका चयन योग्यता (Merit) के आधार पर किया जाता है अथवा केवल वैयक्तिक तथा राजनैतिक आधार पर ? उनका वर्गीकरण किस प्रकार किया जाता है और उनको वेतन किस प्रकार दिया जाता है ? उनके कार्य का मूल्याकन किस प्रकार किया जाता है और किन-किन दशाओ एव शर्तों के अन्तर्गत उन्हे पदोन्नत (Promote) किया जाता है ? वे किस प्रकार अनुशासित (Disciplined) रह सकते हैं ? पदो से उन्हे किस प्रकार तथा क्यो हटाया जाता है ? सरकारी सेवा जीवन-वृत्ति (Career) के लिए किस सीमा तक अवसर प्रस्तुत करती है ? सिविल सेवा की कार्य-क्षमता इन तथा ऐसे ही अन्य सम्बन्धित प्रश्नो के समुचित हल पर निर्भर होती है। गत अध्यायो मे इन समस्याओ मे से अनेक पर विचार किया जा चुका है। यहां तो केवल अमेरिकन सिविल सेवा की कुछ महत्वपूर्ण एव विशिष्ट समस्याओ पर ही विचार किया जाना है।

पहले अमेरिका मे सिविल सेवको का चुनाव योग्यता के आधार पर नही, वल्कि राजनैतिक विचार के आधार पर किया जाता था और इसलिए अमेरिका को 'लूट-खसोट प्रणाली' (Spoils system) की कुख्यात भूमि कहा जाता है। राज्य के पद विजेता राजनैतिक दल द्वारा अपने समर्थको मे लूट के माल के रूप मे बांटे जाते थे। देश के सामाजिक एव राजनैतिक जीवन पर इस लूट-खसोट प्रणाली का बडा दूषित प्रभाव पडता था। अनेक योग्य व्यक्तियो तथा सगठनो ने सिविल सेवा के सुधार के प्रश्न को अपना केन्द्र-बिन्दु बनाया। इसका ही परिणाम यह हुआ कि सन् १८८३ मे काग्रेस ने एक अत्यन्त महत्वपूर्ण सिविल सेवा अधिनियम पारित किया जोकि सामान्यत 'पेन्डलटन अधिनियम' (Pendleton Act) के नाम से विख्यात है और जिसने उसी दिन से राष्ट्रीय सिविल सेवा मे प्रवेश का नियमन

करने वाले एक मूलभूत कानून के रूप मे कार्य किया है, यद्यपि समय-समय पर इसमे अनेक सशोधन होते रहे है। ९५ प्रतिशत सिविल सेवक अब प्रदर्शित योग्यता के आधार पर ही अपने पदो पर आसीन हैं। लूट-खसोट अभी पूर्ण रूप से समाप्त नही हुई है क्योंकि इसका अन्त बडी कठिनाई से होना है। पर इतनी बात अवश्य है कि सयुक्त राज्य अमेरिका की कार्मिक व्यवस्था (Personnel system) मे योग्यता प्रणाली ने अब वह स्थान प्राप्त कर लिया है जिस पर गर्व किया जा सकता है।

सन् १८८३ का पेन्डलटन अधिनियम
(The Pendleton Act of 1883)

इस महत्वपूर्ण अधिनियम के मुख्य लक्षण निम्न प्रकार हैं —

(१) इस अधिनियम मे राष्ट्रपति को यह अधिकार मिल गया कि वह सयुक्त राज्य सिविल सेवा आयोग (United State Civil Service Commission) का निर्माण करने के लिए, सीनेट के द्वारा और उसकी सलाह तथा सहमति से तीन व्यक्तियो को सिविल आयुक्त (Civil Service Commissioners) नियुक्त कर सके, परन्तु उनमे दो से अधिक व्यक्ति किसी एक ही दल (Party) से सम्बद्ध न हो। ये आयुक्त केवल राष्ट्रपति (President) द्वारा ही हटाये जा सकते है।

(२) इनका कार्य यह है कि ये राष्ट्रपति के कथनानुसार ऐसे उपयुक्त नियमो के निर्माण मे राष्ट्रपति की सहायता करे जोकि अधिनियम को कार्यरूप देने के लिए आवश्यक हो। एक बार जब इन नियमो की घोषणा करदी जाय तो सयुक्त राज्य के सभी अधिकारियो का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वे उन्हे कार्यान्वित करने मे सहायता दें।

(३) "अच्छे प्रशासन की दृष्टि से जहाँ तक भी सम्भव होगा" इन नियमो के द्वारा निम्नलिखित व्यवस्थाए की जायेगी (क) वर्तमान मे वर्गीकृत अथवा भविष्य मे वर्गीकृत की जाने वाली लोक सेवाओ मे प्रवेश के इच्छुक प्रार्थियो की उपयुक्तता एव पात्रता की जाँच करने के लिए खुली प्रतियोगिता परीक्षाओ की व्यवस्था, (ख) परीक्षाए व्यावहारिक प्रकृति की होगी और उनके द्वारा यह देखा जायेगा कि प्रार्थी उस सेवा के कर्तव्यो को पूरा करने के लिए उपयुक्त पात्र है या नही जिसमे कि वे अपनी नियुक्ति चाहते है, (ग) प्रत्येक श्रेणी के पद उन व्यक्तियो द्वारा भरे जायेंगे जोकि परीक्षाओ मे सर्वोच्च क्रम से स्थान प्राप्त करेंगे, (घ) वाशिंगटन मे स्थित पद विभिन्न राज्यो एव प्रदेशो मे उनकी जनसख्या के आधार पर बाँट दिये जायेंगे, (ङ) अन्तिम रूप मे पुष्टीकृत (Confirmed) नियुक्ति से पूर्व परिवीक्ष (Probation) की अवधि की व्यवस्था की जायेगी, (च) इन नियमो (Rules) के आवश्यक अपवादो (Necessary exceptions) का उल्लेख नियमो मे ही किया जायेगा और आयोग के वार्षिक प्रतिवेदनो मे उसके कारण (Reasons) दिये जायेंगे, (छ) आयोग परीक्षाओ का सचालन करेगा,

२३

अमेरिकन सिविल सेवा

(American Civil Service)

प्रशासन की कार्य-क्षमता एक बडी मात्रा मे उस कर्मचारी-वर्ग की कार्यक्षमता पर निर्भर रहती है जोकि प्रशासन की व्यवस्था करता है। किसी भी देश का कुशल प्रशासन सिविल सेवा की क्षमता एव समर्थता पर निर्भर होता है। किसी भी देश की सिविल सेवा के सम्बन्ध मे जो प्रमुख प्रश्न पैदा होते हैं वे ये हैं सिविल अथवा असैनिक सेवको की भर्ती (Recruitment) किस प्रकार की जाती है और उन्हे प्रशिक्षण (Training) किस प्रकार दिया जाता है ? उसका चयन योग्यता (Merit) के आधार पर किया जाता है अथवा केवल वैयक्तिक तथा राजनैतिक आधार पर ? उनका वर्गीकरण किस प्रकार किया जाता है और उनको वेतन किस प्रकार दिया जाता है ? उनके कार्य का मूल्याकन किस प्रकार किया जाता है और किन-किन दशाओ एव शर्तों के अन्तर्गत उन्हे पदोन्नत (Promote) किया जाता है ? वे किस प्रकार अनुशासित (Disciplined) रह सकते हैं ? पदो से उन्हे किस प्रकार तथा क्यो हटाया जाता है ? सरकारी सेवा जीवन-वृत्ति (Career) के लिए किस सीमा तक अवसर प्रस्तुत करती है ? सिविल सेवा की कार्य-क्षमता इन तथा ऐसे ही अन्य सम्बन्धित प्रश्नो के समुचित हल पर निर्भर होती है। गत अध्यायो मे इन समस्याओ मे से अनेक पर विचार किया जा चुका है। यहाँ तो केवल अमेरिकन सिविल सेवा की कुछ महत्वपूर्ण एव विशिष्ट समस्याओ पर ही विचार किया जाना है।

पहले अमेरिका मे सिविल सेवको का चुनाव योग्यता के आधार पर नही, वल्कि राजनैतिक विचार के आधार पर किया जाता था और इसलिए अमेरिका को 'लूट-खसोट प्रणाली' (Spoils system) की कुख्यात भूमि कहा जाता है। राज्य के पद विजेता राजनैतिक दल द्वारा अपने समर्थको मे लूट के माल के रूप मे बाँटे जाते थे। देश के सामाजिक एव राजनैतिक जीवन पर इस लूट-खसोट प्रणाली का वडा दूषित प्रभाव पडता था। अनेक योग्य व्यक्तियो तथा सगठनो ने सिविल सेवा के सुधार के प्रश्न को अपना केन्द्र-विन्दु बनाया। इसका ही परिणाम यह हुआ कि सन् १८८३ मे काग्रेस ने एक अत्यन्त महत्वपूर्ण सिविल सेवा अधिनियम पारित किया जोकि सामान्यत 'पेन्डलटन अधिनियम' (Pendleton Act) के नाम से विख्यात है और जिसने उसी दिन मे राष्ट्रीय सिविल सेवा मे प्रवेश का नियमन

करने वाले एक मूलभूत कानून के रूप मे कार्य किया है, यद्यपि समय-समय पर इसमे अनेक सशोधन होते रहे है। ९५ प्रतिशत सिविल सेवक अब प्रदर्शित योग्यता के आधार पर ही अपने पदो पर आसीन है। लूट-खसोट अभी पूर्ण रूप से समाप्त नही हुई है क्योकि इसका अन्त बडी कठिनाई से होना है। पर इतनी बात अवश्य है कि सयुक्त राज्य अमेरिका की कार्मिक व्यवस्था (Personnel system) मे योग्यता प्रणाली ने अब वह स्थान प्राप्त कर लिया है जिस पर गर्व किया जा सकता है।

सन् १८८३ का पेन्डलटन अधिनियम
(The Pendleton Act of 1883)

इस महत्वपूर्ण अधिनियम के मुख्य लक्षण निम्न प्रकार है —

(१) इस अधिनियम मे राष्ट्रपति को यह अधिकार मिल गया कि वह सयुक्त राज्य सिविल सेवा आयोग (United State Civil Service Commission) का निर्माण करने के लिए, सीनेट के द्वारा और उसकी सलाह तथा सहमति से तीन व्यक्तियो को सिविल आयुक्त (Civil Service Commissioners) नियुक्त कर सके, परन्तु उनमे दो से अधिक व्यक्ति किसी एक ही दल (Party) से सम्बद्ध न हो। ये आयुक्त केवल राष्ट्रपति (President) द्वारा ही हटाये जा सकते हैं।

(२) इनका कार्य यह है कि ये राष्ट्रपति के कथनानुसार ऐसे उपयुक्त नियमो के निर्माण मे राष्ट्रपति की सहायता करे जोकि अधिनियम को कार्यरूप देने के लिए आवश्यक हो। एक बार जब इन नियमो की घोषणा करदी जाय तो सयुक्त राज्य के सभी अधिकारियो का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वे उन्हे कार्यान्वित करने मे सहायता दें।

(३) "अच्छे प्रशासन की दृष्टि से जहाँ तक भी सम्भव होगा" इन नियमो के द्वारा निम्नलिखित व्यवस्थाए की जायेंगी (क) वर्तमान मे वर्गीकृत अथवा भविष्य मे वर्गीकृत की जाने वाली लोक सेवाओ मे प्रवेश के इच्छुक प्रार्थियो की उपयुक्तता एव पात्रता की जाँच करने के लिए खुली प्रतियोगिता परीक्षाओ की व्यवस्था, (ख) परीक्षाए व्यावहारिक प्रकृति की होगी और उनके द्वारा यह देखा जायेगा कि प्रार्थी उस सेवा के कर्तव्यो को पूरा करने के लिए उपयुक्त पात्र है या नही जिसमे कि वे अपनी नियुक्ति चाहते है, (ग) प्रत्येक श्रेणी के पद उन व्यक्तियो द्वारा भरे जायेंगे जोकि परीक्षाओ मे सर्वोच्च क्रम से स्थान प्राप्त करेंगे, (घ) वाशिंगटन मे स्थित पद विभिन्न राज्यो एव प्रदेशो मे उनकी जनसख्या के आधार पर बाँट दिये जायेंगे, (ङ) अन्तिम रूप मे पुष्टीकृत (Confirmed) नियुक्ति से पूर्व परिवीक्ष (Probation) की अवधि की व्यवस्था की जायेगी, (च) इन नियमो (Rules) के आवश्यक अपवादो (Necessary exceptions) का उल्लेख नियमो मे ही किया जायेगा और आयोग के वार्षिक प्रतिवेदनो मे उसके कारण (Reasons) दिये जायेंगे, (छ) आयोग परीक्षाओ का सचालन करेगा,

कांग्रेस को प्रेषित करने के लिए वार्षिक प्रतिवेदन राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत करेगा जिसमे अन्य बातो के साथ ही अधिनियम के प्रभावपूर्ण कार्यान्वयन के लिए सुझाव भी दिये जायेंगे।

(४) श्रमिक व कारीगर तथा सीनेट द्वारा पुष्टीकरण (Confirmation) के लिए मनोनीत (Nominated) व्यक्ति अधिनियम के अधिकार-क्षेत्र से बाहर रखे गये हैं। इस प्रकार 'वर्गीकृत' (Classified) पदो पर योग्यता सिद्धान्त (Merit principle) लागू होता है। कर्मचारी अब दलीय कार्यों की दृष्टि से किये जाने वाले मूल्याकन से मुक्त है, और उन्हे यह अधिकार नही है कि वे राजनीति मे सक्रिय रूप से भाग ले सकें। सयुक्त राज्य अमेरिका मे सिविल सेवा सुधार का मुख्य रुझान, जो 'पेन्डलटन अधिनियम' के साथ प्रारम्भ हुआ था, अब इस उद्देश्य की ओर है कि प्रदर्शित योग्यता के आधार पर ही नियुक्तियां की जायें और नियुक्तार्थियो (Appointees) को यह आश्वासन दिया जाये कि कुशल कार्य-सम्पादन तथा श्रेष्ठ व्यवहार की स्थिति मे उन्हे पदावधि की सुरक्षा प्रदान की जाएगी।

सिविल सेवा अथवा असैनिकसेवा आयोग
(Civil Service Commission)

सन् १८८३ के अधिनियम मे राष्ट्रपति तथा सीनेट द्वारा नियुक्त किये जाने वाले तीन सदस्यो के द्विदलीय सिविल सेवा आयोग की स्थापना की व्यवस्था की गई। आयोग परीक्षाओ के लिए नियम बनाता है, उनका सचालन करता है और पात्र प्रत्याशियो (Eligible candidates) की सूचियो को प्रमाणित करता है, सिविल सेवको का वर्गीकरण करता है, उनके लिए नियम तथा विनियम (Rules and regulations) बनाता है, सेवा के लिए प्रशिक्षण (Training) की व्यवस्था करता है, राजनैतिक क्रियाओ के आरोपो की जाँच पडताल करता है, सिविल सेवा निष्ठा कार्यक्रम का मचालन करता है, सन् १९४८ के उस कार्यपालक आदेश को क्रियान्वित करता है जिसके द्वारा कि सम्पूर्ण सेवा (Service) के अन्तर्गत नौकरी के मम्बन्ध मे न्यायपूर्ण कार्यवाहियो एव कार्यविधियो की अपेक्षा की जाती है, प्रस्थापना शाखाओ से सेवा अभिलेख (Service records) प्राप्त करता है, कार्य-कुशलता माप प्रणाली (Efficiency rating system) तथा सेवा-निवृत्ति विधि (Retirement law) की व्यवस्था करता है तथा सिविल सेवा के सुधार एव उन्नति से सम्बन्धित अन्य अनेक कार्य करता है। आयोग इन कार्यो को ग्यारह सभागो (Divisions) तथा अन्य अनेक इकाइयो (Units) के द्वारा सम्पन्न करता है। आयोग के अध्यक्ष के पर्यवेक्षण (Supervision) मे सभागो द्वारा अनेक ऐसे कार्य सम्पन्न किये जाते हैं जैसे कि कार्मिक वर्गीकरण (Personnel classification), परीक्षायें लेना तथा कार्य पर नियुक्त करना, मेवा-निवृत्ति, राज्यनिष्ठा का अवलोकन, सेवा अभिलेख, बजट तथा वित्त (Budget and finance), सूचना (Information), जाँच-पडताल तथा निरीक्षण। सघीय प्रशासनिक अधिकरणो की आवश्यकताओ की

पूर्ति की दृष्टि से देश को चौदह सिविल सेवा क्षेत्रो मे विभाजित किया गया है और मुख्य-मुख्य नगरो मे प्रत्येक क्षेत्र के प्रधान कार्यालय है। अमेरिका मे लगभग १७०० प्रकार की सिविल सेवा परीक्षाये पाई जाती है जिनमे निम्नलिखित महत्वपूर्ण है

(१) "समवेत" तथा "असमवेत" परीक्षायें (Assembled and Unassembled Examinations)।

(२) "प्रतियोगिता" तथा "अप्रतियोगिता" परीक्षायें (Competitive and Non-competitive Examinations)।

(३) व्यावहारिक बनाम सामान्य परीक्षाये (Practical vs General Examinations)।

जब किसी प्रत्याशी (Candidate) से परीक्षा के लिए किसी निर्दिष्ट स्थान (Designated place) पर उपस्थित होने के लिए कहा जाता है तो उसे "समवेत परीक्षा" के नाम से पुकारा जाता है, और यदि प्रत्याशी से परीक्षा के लिये किसी भी स्थान पर उपस्थित होने की माग नही की जाती तो उसे "असमवेत परीक्षा' कहा जाता है। लिपिक अथवा अन्य अधीनस्थ प्रकृति के अधिकाश पदो के प्रत्याशियो के लिये "समवेत परीक्षा" की ही व्यवस्था की जाती है। इन प्रत्याशियो की परोक्षा वर्गों (Groups) मे ली जाती है और वह पूर्णतया लिखित होती है, उदाहरण के लिये आशुलिपिको (Stenographers) तथा मुद्रलेखको (Typists) को राज्यो मे ५०० अथवा उससे भी अधिक निर्दिष्ट स्थानो मे से एक मे जाना पडता है और नियमित परीक्षा मे बैठना होता है। परीक्षा मे श्रेष्ठता एव प्रवीणता के क्रम से प्रतियोगियो को सूचीबद्ध कर लिया जाता है। सिविल-सेवा के उच्चतर श्रेणी के पदो के प्रार्थियो (Applicants) से सामान्यत यह माग नही की जाती कि वे परीक्षा के लिये किसी स्थान पर उपस्थित हो। ऐसी परीक्षाओ को "असमवेत परीक्षाओ" की सज्ञा दी जाती है। उच्चतर श्रेणी के पदो के प्रत्याशियो की औपचारिक परीक्षा, वास्तव मे, बिल्कुल होती ही नही। उनके अनुभव, व्यक्तित्व (Personality), उनकी शिक्षा एव सामान्य योग्यता का मूल्याकन साक्षात्कार (Interview) तथा प्रमाण-पत्रो द्वारा ही कर लिया जाता है, कभी-कभी इसके अनुपूरक के रूप मे, किसी ऐसे निर्धारित कार्य की सम्पन्नता के द्वारा ही मूल्याकन किया जाता है जैसे कि कोई मौलिक विवरण का लेख तैयार कराना।

परीक्षायें अधिकतर "प्रतियोगी" (Competitive) प्रकृति की होती हैं। प्रत्याशियो का चयन (Selection) पद के कार्य की सम्पन्नता (Performance) के आधार पर किया जाता है। कुछ परीक्षाये अप्रतियोगी भी होती हैं और प्रत्याशी को उनमे केवल उत्तीर्ण होना होता है।

अमेरिका मे व्यावहारिक परीक्षाओ (Practical examinations) पर जोर दिया जाता है। पेन्डलटन अधिनियम मे यह कहा गया है कि परीक्षायें "व्यावहारिक प्रकृति की होनी चाहिए" और जहाँ तक भी सम्भव हो, "उन विषयो से सम्बन्धित

होनी चाहिए जिसके द्वारा कि उन सेवाओ के कार्यों को सम्पन्न करने की परीक्षाओ की सापेक्षिक क्षमता एव योग्यता की न्यायपूर्ण जाच की जा सके जिनमे कि वे नियुक्त होना चाहते हैं।" परीक्षा की यह पद्धति दोषपूर्ण है क्योकि इसमे प्रत्याशी की सामान्य योग्यताओ की जाच नही की जाती। ब्रिटेन मे परीक्षाओ की जो पद्धति है उसके द्वारा प्रत्याशी की सामान्य योग्यताओ, गुणो एव क्षमता की जाच की जाती है। "कुछ भी हो 'अमेरिकन परीक्षा प्रणाली मे अभी भी यह कमी पाई जाती है कि उसका उद्देश्य केवल ऐसे प्रत्याशियो की भर्ती करना मात्र है, इससे अधिक नही, जो कि किसी विशिष्ट और सम्भवत नैत्यक (Routine) कार्य को सभाल सकें— इसमे प्रत्याशी की उन बौद्धिक योग्यताओ एव क्षमताओ का ध्यान नही रखा जाता जो कि एक बार नियुक्त होने के पश्चात् उसको और अधिक विशाल उत्तरदायित्वो के वहन करने के योग्य बनायेंगी।" अब अमेरिका मे सामान्य रुझान प्रत्याशियो की सामान्य योग्यता की जाच करने की ब्रिटिश परीक्षा की पद्धति के प्रतिरूप की ओर को ही है। सिविल सेवा आयोग ने अब कालिजो से निकले हुये नये छात्रो के लिये एक 'सामान्य-कार्य परीक्षा' की व्यवस्था की है।

उन सभी प्रत्याशियो को पात्र सूची (Eligible list) मे रखा जाता है जोकि ७० प्रतिशत या इससे अधिक अक प्राप्त करते हैं। जब कभी भी किसी विभाग (Department) मे कोई स्थान रिक्त होता है तो नियुक्ति अधिकारी (Appointing officer) को पात्र प्रत्याशियो की सूची मे के तीन सर्वोच्च नामो मे से एक का चयन करके उस पद को भरना होता है। नियुक्त किये गये प्रत्येक व्यक्ति को परिवीक्षा (Probation) पर रखा जाता है। यदि उसका कार्य सन्तोषजनक होता है तो उसे स्थायी कर दिया जाता है। कर्मचारी-वर्ग मे किसी भी प्रकार की कार्य-क्षमता तथा मनोबल (Morale) तब तक नही लाया जा सकता जब तक कि उन्हे पदस्थिति (Rank) तथा वेतन मे वृद्धि का न्यायपूर्ण एव युक्तिसगत आश्वासन न दिया जाय। अत पदोन्नतियाँ (Promotions), योग्यता (Merit) के आधार पर की जाती हैं। योग्यता की जाँच पदोन्नति-परीक्षाओ (Promotions examinations) तथा प्रत्याशी की कार्य-कुशलता मापो (Efficiency ratings) के आधार पर की जाती है। 'पेन्डलटन अधिनियम' मे पदोन्नति परीक्षाओ की व्यवस्था है। अधिनियम मे यह कहा गया है कि किसी भी वर्गीकृत अधिकारी अथवा कर्मचारी की पदोन्नति उस समय तक नही की जायेगी, "जब तक कि उसने निर्धारित परीक्षा न उत्तीर्ण कर ली हो, अथवा उसने इतनी योग्यता का प्रदर्शन न किया हो कि उसे ऐसी परीक्षा से विशेष रूप से मुक्त कर दिया जाए", और काफी समय पश्चात् राष्ट्रपति द्वारा एक और नियम इसमे सम्मिलित किया गया कि "वर्गीकृत सेवा मे

1 Frederic A Ogg and P Orman Ray, *Essentials of American Government*, New York, Appleton-Century-Crafts, Inc. 7th Edition, 1952, p 330

पदोन्नति की योग्यता की जाच के लिए, जहाँ तक भी व्यावहारिक तथा हितकर होगा, प्रतियोगिता परीक्षाओ की व्यवस्था की जायेगी।" सिविल सेवा आयोग अब ऐसे पदो के लिए, जो कि एक से अधिक विभागो के लिए समान होते हैं, अनेक पदोन्नति परीक्षाओ का सचालन करता है। पृथक्-पृथक् विभाग तथा सम्थान (Establishments) अपने-अपने सम्बन्धित क्षेत्राधिकारी (Jurisdictions) मे पदोन्नतियो के लिए परीक्षाओ का आयोजन करते हैं। अमेरिकन अब पदोन्नतियो के लिये कार्य-कुशलता मापो (Efficiency ratings) की पद्धति को पूर्ण रूप से लागू करने का प्रयास कर रहे हैं।

कोई भी सेवा तब तक कार्य नही कर सकती, जब तक कि वह अनुशासित (Disciplined) न हो। वर्गीकृत सेवाओ के लिए यह व्यवस्था है कि "समान अपराधो के लिए समान दण्ड दिये जायेंगे तथा राजनैतिक अथवा धार्मिक कारणो के आधार पर कोई भेदभाव नही किया जायेगा।" अनुशासन भग की स्थिति मे किसी भी कर्मचारी को निलम्बित (Suspend) किया जा सकता है, उसके पदक्रम तथा वेतन मे कमी की जा सकती है और यहाँ तक कि उसे सेवा से हटाया भी जा सकता है। सन् १६५२ के Lloyd-La-Follette Act मे यह व्यवस्था है कि वर्गीकृत सेवा (Classified service) के किसी भी कर्मचारी को तब तक उसके पद से नही हटाया जायेगा जब तक कि कोई ऐसा कारण उपस्थित न हो जिससे उक्त सेवा की कार्य-कुशलता बढाने मे बाधा पडती हो", यह कि जिस कर्मचारी को पद से हटाया जायेगा उसको हटाये जाने के कारण (Reasons) लिखित मे दिये जायेंगे, यह कि उन कारणो का लिखित मे उत्तर देने के लिए उस कर्मचारी को समय दिया जायेगा, "परन्तु साक्षियो (Witnesses) की जाच पडताल अथवा सुनवाई (Hearing) की तब तक कोई आवश्यकता न होगी जब तक कि पद से हटाने (Removal) वाले अधिकारी की ही ऐसी इच्छा न हो।" सिविल सेवा अधिनियम (Civil Service Act) द्वारा इस बात पर प्रतिबन्ध लगाया गया है कि सयुक्त राज्य का कोई भी पदाधिकारी अथवा कर्मचारी, किसी भी राजनैतिक कार्य के लिए चन्दा अथवा अन्य बहुमूल्य वस्तुयें देने अथवा रोकने अथवा उनको देने मे उपेक्षा करने के कारण अन्य किसी भी अधिकारी या कर्मचारी को सेवोन्मुक्त (Discharge) या पदोन्नत (Promote) न कर सकेगा, अथवा उसकी पदावनति न कर सकेगा, या उसके प्रतिफल (Compensation) या सरकारी पदक्रम मे कोई परिवर्तन न कर सकेगा अथवा न ऐसा करने का वायदा कर सकेगा या धमकी ही दे सकेगा।" इस प्रकार अन्यायपूर्ण तरीके से पदो से हटाये जाने की घटनायें नही हो पाती, और कर्मचारियो को अपने पदो के सम्बन्ध मे न्यायोचित सुरक्षा मिल जाती है।

सिविल सेवक को उस सरकार के प्रति निष्ठावान (Loyal) होना चाहिए जिसकी यह नौकरी करता है। लोकतन्त्र मे उसे राजनीति से, तटस्थ (Neutral) रहना चाहिए। उसे किसी भी राजनैतिक हलचल मे भाग नही लेना चाहिए। सिविल

मेवा विनियमो (Civil Service regulations) के प्रथम नियम मे यह कहा गया है कि सिविल सेवक को मत (Vote) देने तथा सभी राजनैतिक विचारो पर व्यक्तिगत रूप मे अपनी राय प्रकट करने का अधिकार है। परन्तु यह ध्यान रहे कि वह किसी भी राजनैतिक प्रबन्ध अथवा राजनैतिक कार्यवाही मे सक्रिय रूप से भाग नही ले सकेगा। कर्मचारी सस्थाओ अथवा सघो के रूप मे अपने आपको सगठित कर सकते हैं। परन्तु किसी प्रकार भी उन्हे हडताल करने का अधिकार प्राप्त नही है। लोक-सेवको के लिये पूर्व-प्रवेश (Pre-entry) तथा सेवाकालीन प्रशिक्षण (In service training) की भी व्यवस्था है।

अमेरिकन सिविल सेवा प्रणाली के दोष
(Defects in American Civil Service System)

अमेरिकन सिविल सेवा उत्तरदायी प्रशासकीय पदो पर ऊची योग्यता वाले व्यक्तियो को आकर्षित करने तथा रखने मे असफल रही है। अमेरिका मे इस सम्बन्ध मे जोर इस बात पर दिया जाता रहा है कि दुष्टजनो (Rascals) को सिविल सेवा से बाहर रखा जाय। लोक-सेवा के लिए सर्वश्रेष्ठ तथा सर्वाधिकार योग्य एव सक्षम व्यक्तियो को आकर्षित करने का कोई ठोस प्रयत्न नही किया गया है। जैसा कि एक विद्वान् ने कहा है कि "सम्भवत हमारी कार्मिक व्यवस्था का एक प्रमुख दोष उच्च योग्यता एव गुणो वाले व्यक्तियो को आकर्षित करने की असफलता मे निहित है ..। हमे १२,००० से १६,००० डालर तक के वार्षिक वेतनो पर, उच्च पदक्रम तथा उच्च प्रतिष्ठा वाले ऐसे स्थायी उच्च पदाधिकारियो की आवश्यकता है, जो कि विभागो की अध्यक्षता करने वाले अस्थायी एव राजनैतिक अधिकारियो को सलाह दे सकें, परामर्श दे सकें तथा उनकी सेवा कर सकें, और इस प्रकार राजनीति तथा प्रशासन के बीच की खाई को भर सकें। परन्तु हम अब तक चोटी के उन स्थायी प्रशासकीय पदो की पहिचान करने तक मे सफल नही हो सके हैं, और वस्तुस्थिति यह है कि सरकारी सेवा को जीवन-वृत्ति (Career) के रूप मे अपनाने वाले उच्च कोटि के व्यक्ति इस विषय मे अधकार मे हैं कि ऐसे उच्च पदो तक किस प्रकार पहुँचा जाय, तथा इन अनिश्चितताओ के कारण ही अनेक सम्भावित जीवन-वृत्ति वाले व्यक्ति गैर-सरकारी सेवाओ मे रहना पसन्द करते हैं।"[1]

अमेरिका मे लूट-खसोट प्रणाली (Spoils system) के अवशेष अभी तक वर्तमान हैं। सिविल सेवा आयोग सर्वश्रेष्ठ प्रत्याशियो की प्राप्ति के लिये कोई ठोस प्रयत्न नही करता, इसके प्रयत्न सिविल सेवा से केवल दुष्टजनो" (Rascals) को बाहर निकालने तक ही सीमित हैं। लोक-सेवाओ मे पाई जाने वाली इस कमी का उल्लेख हूवर आयोग ने भी किया। उसने कहा कि "कठिन व्यावसायिक, वैज्ञानिक तकनीकी तथा प्रशासनिक पदो पर सर्वोत्तम युवको तथा युवतियो की भरती करने

1 Claudius O Johnson, *American Government*, p 458

के लिए न पर्याप्त-समय ही लगाया जा रहा है और न यथेष्ट प्रयत्न ही किये जा रहे हैं।"[1] &[2]

सयुक्त राज्य अमेरिका मे, गैर-सरकारी व्यवसाय की अपेक्षा सिविल सेवा मे कम वेतन मिलता है। सिविल सेवा मे योग्य एव गुणी व्यक्तियो को आकर्षित नही किया जाता। ऐसे व्यक्ति यदि सिविल सेवा मे आ भी जाते हैं, तो निम्न वेतन तथा उन्नति के अवसरो की कमी के कारण त्याग-पत्र देकर चले जाते हैं। अमेरिका मे १८ वर्ष से ३५ वर्ष तक की आयु का कोई भी व्यक्ति सिविल सेवा मे प्रवेश कर सकता है। आयु की यह बडी सीमा दोषपूर्ण है। होना यह चाहिये कि १८ मे २५ वर्ष तक की आयु के युवा व्यक्ति सिविल सेवा मे भर्ती किये जायें और वे सिविल सेवा को अपनी स्थायी जीवन-वृत्ति (Permanent career) बना ले। यदि लोक-सेवा की भर्ती ३५ अथवा ४० वर्ष की आयु के व्यक्तियो के लिये खुली रहती है, तो ऊँची आयु के ऐसे व्यक्ति भी सरकारी सेवा मे प्रवेश पा जाते हैं जोकि व्यक्तिगत व्यवसायो मे असफल सिद्ध हुये हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि सरकारी सेवा उन व्यक्तियो के लिये एक शरण-स्थल बन गई है जोकि जीवन के अन्य क्षेत्रो मे असफल रह चुके हैं। इससे लोक-सेवा (Public service) मे अकुशलता को प्रोत्साहन मिलता है।

अमेरिकन सिविल सेवा को विशाल अमेरिकन राष्ट्र की आवश्यकताओ के अनुरूप बनाने के लिए उसमे सुधार किये जाने चाहिये। इस सम्बन्ध मे निम्नलिखित सुधारो के सुझाव दिये जाते हैं

(१) सरकारी पदो के लिये भर्ती करते समय इस बात का ठोस प्रयत्न किया जाना चाहिये कि उसमे समाज के सर्वश्रेष्ठ बौद्धिक क्षमता वाले व्यक्ति ही लिये जाए।

(२) सरकारी पदो मे प्रारम्भिक आयु वाले व्यक्तियो की भर्ती की जानी चाहिये जिससे कि लोक-सेवा कर्मचारियो के लिये एक स्थायी जीवन-वृत्ति बन सके

(३) सिविल सेवको के वेतन मे वृद्धि की जानी चाहिये।

(४) सिविल सेवको को उन्नति के प्रचुर अवसर प्रदान किये जाने चाहियें।

---

1 Hoever Commission Report, pp 3-5

2 Professor Herman Finer points out two great defects of American Civil Service They are

"(1) In the first place, no recognition has yet been given to the principle of an Administrative Class or administrative "brain trust" Most of those recruited by examination have not undertaken the general work of administration The function of thought, comprehensive and synoptic, supplied by a widespread career group—Thought Covering grand sections of the whole administrative apparatus, and sweeping its gaze over the whole of the Government from a lofty plane, unencumbered by administrative and clerical triviality—is lacking

(2) The examinations show triviality also—no width, no philosophic wrestling—they are back into the routine of their subjects" *op cit*, 842-43

(५) परीक्षाओ द्वारा प्रत्याशियो की सामान्य बुद्धिमत्ता की जाच की जानी चाहिये ।

(६) इस बात की नितान्त आवश्यकता है कि अमेरिकन सिविल सेवा मे ब्रिटिश नमूने के प्रशासकीय-वर्ग (Administrative class) का निर्माण किया जाय ।

अमेरिका मे, सिविल सेवा के सुधारो का मुख्य उद्देश्य लूट-खसोट (Spoils) को दूर करना तथा योग्यता (Merit) को लोक-सेवा का आधार बनाना था । अब वह समय आ गया है जबकि इन सुधारो का उद्देश्य सिविल सेवा मे कुशलता तथा मनोबल (Morale) बढाना होना चाहिए और यह उद्देश्य उस समय तक पूरा नही हो सकता जब तक कि परीक्षा-पद्धति मे सुधार न किया जाए तथा सिविल सेवा मे प्रगति तथा पदोन्नति के श्रेष्ठतर अवसर न उपलब्ध कराये जायें ।

---

(५) परीक्षाओ द्वारा प्रत्याशियो की सामान्य बुद्धिमत्ता की जाच की जानी चाहिये।

(६) इस बात की नितान्त आवश्यकता है कि अमेरिकन सिविल सेवा मे ब्रिटिश नमूने के प्रशासकीय-वर्ग (Administrative class) का निर्माण किया जाय।

अमेरिका मे, सिविल सेवा के सुधारो का मुख्य उद्देश्य लूट-खसोट (Spoils) को दूर करना तथा योग्यता (Merit) को लोक-सेवा का आधार बनाना था। अब वह समय आ गया है जबकि इन सुधारो का उद्देश्य सिविल सेवा मे कुशलता तथा मनोबल (Morale) वढाना होना चाहिए और यह उद्देश्य उस समय तक पूरा नही हो सकता जब तक कि परीक्षा-पद्धति मे सुधार न किया जाए तथा सिविल सेवा मे प्रगति तथा पदोन्नति के श्रेष्ठतर अवसर न उपलब्ध कराये जायें।

२४

ब्रिटिश सिविल सेवा

(British Civil Service)

ब्रिटिश सिविल सेवा ने ससार के अनेक लोकतन्त्रीय देशो के लिए एक आदर्श का कार्य किया है। ब्रिटेन मे सिविल सेवा की भर्ती मे लूट-खसोट (Spoils) अथवा सरक्षण (Patronage) की व्यवस्था नही है। सिविल सेवको का चयन (Selection) योग्यता (Merit) के आधार पर किया जाता है और योग्यता की जांच खुली तथा न्यायपूर्ण प्रतियोगिता द्वारा की जाती है। प्रत्याशियो की योग्यता की जांच करने के लिए एक स्वतन्त्र सिविल सेवा आयोग की नियुक्ति की गई है। ब्रिटेन मे सिविल सेवा ऐसे योग्य तथा गुण सम्पन्न व्यक्तियो से भरी हुई है जोकि युवावस्था मे सेवा मे प्रवेश करते हैं और उसको अपनी जीवनवृत्ति (Career) भी बना लेते हैं क्योकि वहाँ वेतन तथा पदस्थिति मे वृद्धि के प्रचुर अवसर वर्तमान हैं।

ब्रिटेन मे, गैर-औद्योगिक (Non-industrial) सिविल सेवको का निम्नलिखित श्रेणियो मे वर्गीकरण किया गया है

(१) प्रशासनिक-वर्ग (Administrative class),

(२) कार्यपालक या निष्पादक-वर्ग (Executive class),

(३) लिपिक तथा उप-लिपिक-वर्ग (Clerical and sub-clerical class),

(४) मुद्र-लेखक-वर्ग (Typists class),

(५) व्यावसायिक, वैज्ञानिक तथा तकनीकी-वर्ग (Professional, scientific and technical class),

(६) डाकघर अभिसाधक-वर्ग (Post Office manipulative class) (जिसमे सफाई करने वाले आदि भी सम्मिलित हैं),

(७) सन्देशवाहक तथा सफाई करने वाले आदि (डाकघर को छोडकर),

(८) डाकघर इजीनियरिंग तथा सम्बद्ध सेवा (Post office Engineering and allied service)।

अब हम सिविल सेवको की इन विभिन्न श्रेणियो अथवा वर्गों की कुछ विशिष्टताओ पर विचार प्रकट करते हैं।

प्रशासनिक-वर्ग

(The Administrative Class)

ब्रिटेन मे प्रशासकीय-वर्ग एक ऐसा निर्देशक-वर्ग है जिसे सिविल सेवा की धुरी कहा जा सकता है। इस श्रेणी मे पुरुषो तथा स्त्रियो की भर्ती २२ से २४ वर्ष

तक की आयु मे की जाती है, यह भर्ती कठिन प्रतियोगिता परीक्षा के द्वारा उन प्रत्याशियो (Candidates) मे से की जाती है जो कि अधिकतर ऑक्सफोर्ड तथा केम्ब्रिज विश्वविद्यालयो के उच्च कोटि के स्नातक (Graduates) होते हैं।

कर्त्तव्य (Duties)

प्रशासनिक-वर्ग के कर्त्तव्य मे नीति का निर्माण, सरकारी यन्त्र मे समन्वय (Co-ordination) तथा सुधार और लोक-सेवा के विभागो (Department) का सामान्य प्रशासन तथा नियन्त्रण सम्मिलित है।

सख्या तथा वेतन
(Numbers and Pay)

इस श्रेणी के स्थायी अधिकारी-वर्ग को निम्न पदक्रमो (Grades) मे वाटा जाता है —

	१–७–५३ की सख्या			वेतन (पौंड मे)	
	पुरुष	स्त्रिया	योग	पुरुष	स्त्रिया
राजकोप का स्थायी सचिव (Permanent Secretary to the Treasury)	१	—	१	५,०००	—
स्थायी सचिव	३३	—	३३	४,५००	—
उप-सचिव (Deputy secretary)	६७	१	६८	३,२५०	३,२५०
अवर सचिव (Under Secretary)	२१०	७	२१७	२,५००	२,३२५
महायक सचिव (Asstt. Secretary)	६७६	२७	७०३	१६००-२१००	१४२३-१९५०
प्रधान (Principle)	१,१७१	१०९	१,२८०	११५०-१५७०	१०२५-१३९५
महायक प्रधान	२५७	३५	२९२	४७०-८५५	४७०-७५०
योग (देखिये तीसरी टिप्पणी)	२४१५	१७९	२५९४		—

टिप्पणी—(१) ये वेतन-क्रम वे हैं जोकि जुलाई १९५३ को लन्दन मे स्टाफ से सम्बन्धित थे।

(२) छोटे-छोटे विभागो के कुछ प्रधानो (Heads) को उप-सचिव के रूप मे श्रेणीवद्ध कर लिया गया है।

(३) इन श्रेणी मे २,१२५ पौं० वेतन के तीन प्रधान महायक सचिव तथा विभिन्न वेतन-क्रमो के स्तर अन्य अधिकारी सम्मिलित हैं।

काम के घन्टे और अवकाश (Hours of work and Leave)

वर्तमान समय मे अधिकाश प्रशासनिक अधिकारी कार्यालयो मे सप्ताह मे ४५३/५ घण्टे या ५१/२ दिन कार्य करते हैं।

इस श्रेणी के सदस्यो को साधारणतया ३६ दिन की छुट्टिया दी जाती हैं जो कि १० वर्ष की सेवा के पश्चात् ४८ तक बढ जाती हैं। वर्तमान मे यह छूट ३६ दिन तक ही सीमित कर दी गई है।[1]

कार्यपालक अथवा निष्पादक-वर्ग (Executive Class)

निष्पादक-वर्ग मे १८ से लेकर २५ वर्ष तक के व्यक्तियो की भर्ती की जाती है। माध्यमिक शिक्षा का पूर्ण पाठ्यक्रम इसके लिए अर्हता का स्तर है।

कर्त्तव्य :

निष्पादक-वर्ग के कर्तव्य लिपिक-वर्ग तथा प्रशासनिक-वर्ग के कर्तव्यो के मध्य मे निहित होते हैं। इनके कर्तव्यो को सक्षिप्त रूप मे इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है—निर्धारित नीति के ढाचे के अन्तर्गत दिन-प्रति-दिन के सरकारी कार्य का सचालन। तथापि, इनमे पूर्ति (Supply), वित्त तथा लेखाकन का कार्य (Finance and accounting work) तथा अन्य विशिष्टीकृत कार्य (Specialised work), जैसे कि करो का निर्धारण (Assessment of taxes), जिसके लिये व्यावसायिक योग्यताओ की आवश्यकता नही होती, सम्मिलित है।

सख्या तथा वेतन :

इस श्रेणी के स्थायी अधिकारी-वर्ग (Permanent staff) को निम्नलिखित पदक्रमो (Grades) मे बाटा जाता है —

	१—७—५३ की सख्या			वेतन (पौंड मे)	
	पुरुष	स्त्रिया	योग	पुरुष	स्त्रियाँ
बडे सस्थानो के अध्यक्ष (Head of Major Establishment)	३२	—	३२	२,५००	—
प्रधान निष्पादक अधिकारी (Principal Executive Officer)	१२३	—	१२३	१६००—२०००	—
वरिष्ठ मुख्य निष्पादक अधिकारी (Senior Chief Executive Officer)	२५७	३	२६०	१४०८—१५६२	१२२९—१४०८

1 Source Introductory Factual Memorandum on Civil Service

	पुरुष	स्त्रिया	योग	पुरुष	स्त्रिया
मुख्य निष्पादक अधिकारी	७०२	१८	७२०	१२६०–१५००	१,०६०-१,३३५
वरिष्ठ निष्पादक अधिकारी	२,५८५	१८०	२,७६५	१०३०–१२३०	६००-१,०६०
उच्च निष्पादक अधिकारी	७,६१५	१,३७१	८,६८६	८३०–६६५	७१०–८६०
निष्पादक अधिकारी	१७,५३५	५,७६२	२३,२६७	२६०–८००	२६०–६७५
योग	२८,८४६	७,३३४	३६,१८३	—	—

टिप्पणी—(१) ये वेतन-क्रम (Scales of pay) वे हैं जोकि १ जुलाई १९५३ को लन्दन मे स्टाफ से सम्बन्धित थे।

(२) ऊपर उल्लेख किये गये अधिकारी-वर्ग के साथ ही, लगभग २८,००० प्रस्थापित विभागीय निष्पादक अधिकारी और हैं जोकि मुख्यत अन्तर्देशीय राजस्व (Inland Revenue) तथा श्रम मन्त्रालय (Ministry of Labour) मे है, और जिनका वेतन-क्रम सामान्य श्रेणी के वेतन-क्रम से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है।

काम के घन्टे तथा अवकाश :

सामान्य नियम के अनुसार सप्ताह मे ५½ दिन काम होता है। वर्तमान मे इस श्रेणी के अधिकाश अधिकारी असल मे सप्ताह मे ४५½ घण्टे काम करते हैं।

निष्पादक अधिकारियो को ३६ दिन के अवकाश की अनुमति दी जाती है। उच्च निष्पादक अधिकारी तथा इससे ऊपर के अधिकारी ३६ दिन का अवकाश ले सकते हैं जोकि १५ वर्ष की सेवा के पश्चात् (३६ दिन की छुट्टियो वाले पद-क्रम मे ही) बढकर ४८ दिन का हो जाता है।[1]

लिपिक-वर्ग
(The Clerical Class)

सिविल सेवा की श्रेणियो मे लिपिक-वर्ग की सख्या सबसे अधिक है। इनकी भर्ती १६ से लेकर १७½ वर्ष तक की आयु के बीच की जाती है। इसके लिए आवश्यक शिक्षा की योग्यता सैकन्ड्री पाठ्य-क्रम (Secondary course) के माध्यमिक स्तर (Intermediate standard) की होनी है।

विवरण तथा कर्त्तव्य (Description and Duties) :

लिपिक श्रेणी मे सामान्य लिपिक-वर्ग तथा विभागीय लिपिक पद-क्रमों (Grades) के ३०,००० सदस्य हैं जिनका वेतन, युद्धकाल मे आपसे आप न्यूनाधिक रूप मे लिपिक पद-क्रमो (Clerical grades) जैसा ही हो गया है। अभी तक जो

1 Source Factual Memorandum

मुख्य विभागीय लिपिक पद-क्रम (Departmental clerical grades) वर्तमान हैं वे ये हैं · अन्तर्देशीय राजस्व कर अधिकारी (Inland Revenue Tax Officers), श्रम मन्त्रालय पद-क्रम षष्ठ अधिकारी (Ministry of Labour grade six Officers) और सीमा-शुल्क व उत्पादन कर विभागीय लिपिक अधिकारी (Customs and Excise Departmental Clerical Officers)। सामान्य लिपिक-वर्ग मे दो पद-क्रम होते हैं—उच्च लिपिक अधिकारी तथा लिपिक अधिकारी। इसके अतिरिक्त लगभग १५ ००० अस्थायी लिपिक भी हैं जिनमे से अधिकाश ऐसे कार्य सम्पन्न करते है जो कि लिपिक अधिकारियो के कार्यों से कुछ ही कम कठिन होते है।

उच्च लिपिक अधिकारी कुछ सस्थानो (Establishments) मे लिपिक कर्मचारी-वर्ग (Clerical staff) की देखभाल करते है और यह पर्यवेक्षण (Suppervision) ही सामान्यत उनका पूर्ण कर्त्तव्य अथवा कर्तव्य का मुख्य भाग है, उदाहरण के लिए, रजिस्ट्रियो (Registries) मे। उनका शेष कर्तव्य मुकदमा-सम्बन्धी कार्य (Case work) है। लिपिक अधिकारियो को, जोकि सख्या मे सबसे अधिक है, और अधिक व्यापक कार्य सौंपे जाते है। लिपिक अधिकारी उन सब सरल कार्यो को सम्पन्न करते हैं जोकि लिपिक सहायको (Clerical assistants) को नही सौंपे जाते। ये सुस्पष्ट विनियमो (Regulations), अनुदेशो (Instructions) अथवा सामान्य प्रक्रिया के अनुसार विशिष्ट मामलो को निबटाते हैं, स्पष्ट अनुदेशो के अनुसार सीधे-सादे लेखो (Accounts), दावो तथा विवरण-पत्रो (Returns) आदि का सूक्ष्म-परीक्षण (Scurtinise) करते है तथा उनकी जाच के प्रति जाच (Cross check) करते है, विवरण-पत्रो तथा लेखो के लिए निर्धारित फार्मो मे आवश्यक सामग्री व आकडे तैयार करते है, सरल आलेख (Draft) तथा सार (Precis) तैयार करते है, ऐसी सामग्री एकत्रित करते है जिनके आधार पर निर्णय (Judgments) किये जा सकें, और लिपिक सहायको के कार्य का पर्यवेक्षण करते है। इस पद-क्रम (Grade) के कुछ सदस्यो को लिपिक अधिकारी (सचिव) की पदसज्ञा (Designation) भी दी जाती है। ये सचिव सम्बन्धी कार्य (Secretarial work) करते हैं जिसमे ज्येष्ठ अधिकारियो के लिये किया जाने वाला आशुलिपि (Short hand) तथा मुद्र-लेखन (Typing) कार्य भी सम्मिलित हैं।

संख्या तथा वेतन ·

इस श्रेणी के स्थायी अधिकारी-वर्ग की सख्या तथा वेतन निम्न प्रकार हैं—

	१–८–५३ को सख्या			वेतन (पौंड मे)	
	पुरुष	स्त्रियाँ	योग	पुरुष	स्त्रियाँ
उच्च लिपिक अधिकारी (Higher Clerical Officers)	१,६३३	८४७	३,४८०	६५५-८००	५३०-६७५
लिपिक अधिकारी	५१,१५३	२६,२६०	७७,४१३	१७०-५००	१७०-४६०
लिपिक अधिकारी (सचिव)	१५	१,२८४	१,२९९	१७०-५७०	१७०-४६०
योग	५२ ८०१	२८,३९१	८१,१९२		

	पुरुष	स्त्रिया	योग	पुरुष	स्त्रिया
मुख्य निष्पादक अधिकारी	७०२	१८	७२०	१२६०–१५००	१,०६०-१,३३५
वरिष्ठ निष्पादक अधिकारी	२,५८१	१८०	२,७६५	१०३०–१२३०	६००-१,०६०
उच्च निष्पादक अधिकारी	७,६१५	१,३७१	८,६८६	८३०–६६५	७१०–८६०
निष्पादक अधिकारी	१७,५३५	५,७६२	२३,२६७	२६०–८००	२६०–६७५
योग	२८,८४६	७,३३४	३६,१८३	—	—

टिप्पणी—(१) ये वेतन-क्रम (Scales of pay) वे है जोकि १ जुलाई १६५३ को लन्दन मे स्टाफ से सम्बन्धित थे ।

(२) ऊपर उल्लेख किये गये अधिकारी-वर्ग के साथ ही, लगभग २८,००० प्रस्थापित विभागीय निष्पादक अधिकारी और हैं जोकि मुख्यत अन्तर्देशीय राजस्व (Inland Revenue) तथा श्रम मन्त्रालय (Ministry of Labour) मे हैं, और जिनका वेतन-क्रम सामान्य श्रेणी के वेतन-क्रम से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है ।

काम के घन्टे तथा अवकाश :

सामान्य नियम के अनुसार सप्ताह मे ५½ दिन काम होता है । वर्तमान मे इस श्रेणी के अधिकाश अधिकारी असल मे सप्ताह मे ४५½ घण्टे काम करते हैं ।

निष्पादक अधिकारियो को ३६ दिन के अवकाश की अनुमति दी जाती है । उच्च निष्पादक अधिकारी तथा इससे ऊपर के अधिकारी ३६ दिन का अवकाश ले सकते हैं जोकि १५ वर्ष की सेवा के पश्चात् (३६ दिन की छुट्टियो वाले पद-क्रम मे ही) बढकर ४८ दिन का हो जाता है ।[1]

लिपिक-वर्ग
(The Clerical Class)

सिविल सेवा की श्रेणियो मे लिपिक-वर्ग की सख्या सबसे अधिक है । इनकी भर्ती १६ से लेकर १७½ वर्ष तक की आयु के बीच की जाती है । इसके लिए आवश्यक शिक्षा की योग्यता सैकन्ड्री पाठ्य-क्रम (Secondary course) के माध्यमिक स्तर (Intermediate standard) की होनी है ।

विवरण तथा कर्त्तव्य (Description and Duties)

लिपिक श्रेणी मे सामान्य लिपिक-वर्ग तथा विभागीय लिपिक पद-क्रमो (Grades) के ३०,००० सदस्य है जिनका वेतन, युद्धकाल से आपसे आप न्यूनाधिक रूप मे लिपिक पद-क्रमो (Clerical grades) जैसा ही हो गया है । अभी तक जो

1 Source Factual Memorandum

मुख्य विभागीय लिपिक पद-क्रम (Departmental clerical grades) वर्तमान हैं वे ये हैं : अन्तर्देशीय राजस्व कर अधिकारी (Inland Revenue Tax Officers), श्रम मन्त्रालय पद-क्रम षष्ठ अधिकारी (Ministry of Labour grade six Officers) और सीमा-शुल्क व उत्पादन कर विभागीय लिपिक अधिकारी (Customs and Excise Departmental Clerical Officers)। सामान्य लिपिक-वर्ग मे दो पद-क्रम होते हैं—उच्च लिपिक अधिकारी तथा लिपिक अधिकारी। इसके अतिरिक्त लगभग ६५००० अस्थायी लिपिक भी है जिनमे से अधिकाश ऐसे कार्य सम्पन्न करते है जो कि लिपिक अधिकारियो के कार्यों से कुछ ही कम कठिन होते है।

उच्च लिपिक अधिकारी कुछ सस्थानो (Establishments) मे लिपिक कर्मचारी-वर्ग (Clerical staff) की देखभाल करते हैं और यह पर्यवेक्षण (Suppervision) ही सामान्यत उनका पूर्ण कर्त्तव्य अथवा कर्तव्य का मुख्य भाग है, उदाहरण के लिए, रजिस्ट्रियो (Registries) मे। उनका शेष कर्तव्य मुकदमा-सम्बन्धी कार्य (Case work) है। लिपिक अधिकारियो को, जोकि सख्या मे सबसे अधिक हैं, और अधिक व्यापक कार्य सौपे जाते है। लिपिक अधिकारी उन सब सरल कार्यों को सम्पन्न करते हैं जोकि लिपिक सहायको (Clerical assistants) को नही सौपे जाते। ये सुस्पष्ट विनियमो (Regulations), अनुदेशो (Instructions) अथवा सामान्य प्रक्रिया के अनुसार विशिष्ट मामलो को निबटाते हैं, स्पष्ट अनुदेशो के अनुसार सीधे-सादे लेखो (Accounts), दावो तथा विवरण-पत्रो (Returns) आदि का सूक्ष्म-परीक्षण (Scurtinise) करते है तथा उनकी जाच के प्रति जाच (Cross check) करते है, विवरण-पत्रो तथा लेखो के लिए निर्धारित फार्मो मे आवश्यक सामग्री व आकडे तैयार करते है, सरल आलेख (Draft) तथा सार (Precis) तैयार करते हैं, ऐसी सामग्री एकत्रित करते है जिनके आधार पर निर्णय (Judgments) किये जा सकें, और लिपिक सहायको के कार्य का पर्यवेक्षण करते है। इस पद-क्रम (Grade) के कुछ सदस्यो को लिपिक अधिकारी (सचिव) की पदसज्ञा (Designation) भी दी जाती है। ये सचिव सम्बन्धी कार्य (Secretarial work) करते हैं जिसमे ज्येष्ठ अधिकारियो के लिये किया जाने वाला आशुलिपि (Short hand) तथा मुद्र-लेखन (Typing) कार्य भी सम्मिलित हैं।

सख्या तथा वेतन :

इस श्रेणी के स्थायी अधिकारी-वर्ग की सख्या तथा वेतन निम्न प्रकार हैं—

	१-८-५३ को सख्या			वेतन (पौंड मे)	
	पुरुष	स्त्रियाँ	योग	पुरुष	स्त्रियाँ
उच्च लिपिक अधिकारी (Higher Clerical Officers)	१,६३३	८४७	३,४८०	६५५-८००	५३०-६७५
लिपिक अधिकारी	५१,१५३	२६,२६०	७७,४१३	१७०-५००	१७०-४६०
लिपिक अधिकारी (सचिव)	१५	१,२८४	१,२९९	१७०-५७०	१७०-४६०
योग	५२,८०१	२८,३९१	८१,१९२		

काम के घंटे तथा अवकाश

इस श्रेणी के अधिकाश अधिकारी वर्तमान समय मे सप्ताह मे ५½ दिन या ४५½ घण्टे कार्य करते हैं।

लिपिक अधिकारियो को वर्ष भर मे २४ और उच्च लिपिक अधिकारियो को ३६ दिन के अवकाश की अनुमति दी जाती है।[1]

लिपिक सहायक वर्ग
(Clerical Assistant Class)

कर्त्तव्य :

लिपिक सहायक लिपिक सम्बन्धी ऐसे सरल कार्यों को सम्पन्न करते हैं जोकि साधारणतया युद्धकाल मे सम्पन्न किये जाते हैं और कुछ सीमा तक अस्थायी लिपिको द्वारा अभी भी सम्पन्न किये जाते है। इनको नैत्यक कार्य (Routine duties) कहा जा सकता है जिनमे कि निम्न प्रकार के कार्य सम्मिलित हैं सरल दस्तावेजो (Documents), आँकडो तथा अभिलेखो (Records) आदि का तैयार करना उनको प्रमाणित करना तथा उनका सूक्ष्म-परीक्षण करना, अन्य दस्तावेजो को तैयार करना कार्यालय यन्त्र की सहायता से अथवा उसके बिना ही सरल गणितीय आँकडे तैयार करना, रजिस्ट्री कार्य के साधारण फार्म तैयार करना, सुस्पष्ट सामान्य अनुदेशो के अन्तर्गत सरल पत्र-व्यवहार करना, कार्यालय यन्त्रो का सचालन करना। इस श्रेणी के लिपिको के कर्त्तव्यो का यह एक सामान्य विवरण है, उनके कर्त्तव्यो की कोई कडी परिभाषा नही है, उनको इसी प्रकार के अन्य कार्य भी सौपे जा सकते हैं। उच्चक्रम के लिपिक सहायको के कार्य निम्नक्रम के लिपिक अधिकारियो के कार्यों का अतिव्यापन (Overlapping) करते हैं।

सख्या तथा वेतन :

वह वर्ग पूर्णतया एक प्रस्थापित (Established) वर्ग है। इसके सदस्यो की सख्या तथा वेतन इस प्रकार है —

	सख्या			वेतन (पौड मे)	
	पुरुष	स्त्रियां	योग	पुरुष	स्त्रियां
लिपिक वेतन	११,१३८	१७,३२०	२८,४५८	३ पौंड से ८ पौ ८ शि	३ पौंड से ८ पौ ८ शि

अवकाश :

लिपिक सहायको को १८ दिन की छुट्टियो की अनुमति दी जाती है किन्तु पाच वर्ष की सेवा के पश्चात् ये छुट्टियां बढकर २१ दिन तक हो जाती है।[2]

1 *Source* Factual Memorandum,
2 *Source* Factual Memorandum

ब्रिटेन मे भर्ती की आयु की सीमायें सयुक्त राज्य अमेरिका की अपेक्षा, जहाँ कि कोई भी व्यक्ति ३५ अथवा ४० वर्ष तक भी सिविल-सेवा मे प्रवेश कर सकता है, नीची हैं। भर्ती की पद्धति सामान्य सार्वजनिक शिक्षा पद्धति से मेल खाती है। सिविल-सेवा की परीक्षाओ का स्तर माध्यमिक तथा विश्वविद्यालय-परीक्षाओ के स्तर पर आधारित है।

सिविल सेवा आयोग
(Civil Service Commission)

ब्रिटेन मे सिविल-सेवा की भर्ती एक स्वतन्त्र सिविल-सेवा आयोग द्वारा की जाती है। १८५५ के सपरिषद् आदेश (Order in Council) द्वारा सेवा मे प्रवेश के लिए नियम बनाने तथा उन्हे कार्यान्वित करने के लिए तीन सदस्यो के एक केन्द्रीय परीक्षक मण्डल (Central Board of Examiners) का निर्माण किया गया। सिविल-सेवा आयोग, जिसमे अब ६ सदस्य है, की नियुक्ति सम्राट (Crown) द्वारा मन्त्रियो के परामर्श से की जाती है। आयुक्त (Commissioners) सामान्यत वे व्यक्ति होते हैं जिन्हे कि सेवा मे लम्बी अवधि का अनुभव होता है। वे किसी भी मन्त्री के अधीनस्थ अथवा उसके प्रति उत्तरदायी (Answerable) नहीं होते, वे अपने प्रतिवेदन (Report) महारानी (Queen) को सम्बोधित करके लिखते है। उन्हे एक प्रकार की अर्ध-न्यायिक (Quasi-judicial) स्थिति प्राप्त होती है जोकि उन्हे राजनैतिक दवाव से मुक्त रखती है। आयोग के कार्य से राजकोष का घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। नियम बनाने के कार्य मे राजकोष (Treasury) भी भाग लेता है। भर्ती के मामलो मे आयोग किसी भी प्रकार के बाह्य नियन्त्रण से मुक्त होता है। आयोग की स्वतन्त्रता की गारन्टी के लिए, यह व्यवस्था है कि आयुक्तो को केवल ससद के दोनो सदनो की प्रार्थना पर ही उनके पद से हटाया जा सकता है। सभी उपलब्ध सूचनाओ से इस बात की पुष्टि हो चुकी है कि ब्रिटेन मे सिविल-सेवा आयोग भर्ती के मामलो मे बाह्य राजनैतिक दवावो से मुक्त है। सन् १९२० के सपरिषद् आदेश मे आयोग के कार्यों का उल्लेख किया गया है। सक्षेप मे वे इस प्रकार हैं (१) "उन सभी व्यक्तियो, जो स्थायी अथवा अस्थायी रूप से महामहिम (His Majesty's) के किसी भी सिविल सस्थान मे स्थान अथवा रोजगार के लिए प्रस्तावित किये गये हैं, की योग्यताओ का, उनकी नियुक्ति से पूर्व, आयोग द्वारा अनुमोदन करना, (२) ऐसे विनियम (Regulations) बनाना जिनके द्वारा उस रीति का निर्धारण किया जाये जिसके अनुसार व्यक्तियो को सिविल सस्थानो (Civil establishments) मे प्रवेश किया जा सके और उन शर्तों का निर्धारण किया जाये जिनके आधार पर आयुक्त योग्यता के प्रमाण-पत्र दे सके, और (३) ऐसी सभी नियुक्तियो एव पदोन्नतियो को लन्दन-गजट मे प्रकाशित करना जिनके सम्बन्ध मे योग्यता के प्रमाण-पत्र (Certificates of qualification) जारी किये गये हो।

आयोग सिविल-सेवा परीक्षाओ तथा पदोन्नति (Promotion) के नियमो की व्यवस्था करता है । आयोग सदा ही भर्ती करने के कार्य के भार से अत्यधिक लदा रहता है । १ जून, १६४५ से मार्च, १६५० तक इसने ३,००,००० प्रत्याशियो की परीक्षा ली और लगभग ८४,००० पदो के लिये प्रत्याशियो को सफल प्रमाणित किया । इसने लेखाकारो, (Accountants) व अकशास्त्रियो (Statisticians) आदि जैसे विशिष्ट पदो के ३०,००० अन्य प्रत्याशियो की भी परीक्षा ली , इसके अतिरिक्त भी, इसने वैज्ञानिक सिविल-सेवा के १६,००० प्रार्थियो की परीक्षा ली जिनमे ४,००० प्रत्याशी सफल हुए । सन् १६५३–५४ में खुली प्रतियोगिताओ मे ३८,००० से अधिक प्रत्याशियो की परीक्षा ली और लगभग ६,५०० की नियुक्ति के लिए प्रमाणित किया , इसी प्रकार सीमित प्रतियोगिताओ मे ११,००० की परीक्षा ली और ३,००० को प्रमाणित किया , तथा लगभग ४१,००० साधारण और ४६० विशेष नामनिर्देशनो अथवा नामजदगियो (Nominations) का कार्य निबटाया ।"

ब्रिटेन मे सिविल-सेवा में उन खुली प्रतियोगिताओ द्वारा प्रवेश किया जाता है जोकि राजकोष तथा ससद की सहमति से बनाये गये विनियमो के अन्तर्गत आयोग द्वारा सचालित की जाती हैं। ये जाँच निम्न प्रकार से की जा सकती है : (१) लिखित परीक्षा द्वारा, जिसमे मौखिक तत्व भी पाया जा सकता है, (२) साक्षात्कार (Interview) द्वारा, अथवा (३) सयुक्त पद्धति के द्वारा जिसमे व्यक्तित्व (Personality) की जाँच तो साक्षात्कार द्वारा की जाती है और ज्ञान की जाँच लिखित परीक्षा द्वारा । परीक्षायें सामूहिक रूप से एक साथ ली जाती हैं, अर्थात् प्रतियोगी किसी विशिष्ट सेवा अथवा पद के लिये परीक्षा देने के हेतु एक स्थान पर एक साथ इकट्ठे होते है । अमेरिकन परीक्षाओ तथा ब्रिटेन की सिविल-सेवा परीक्षाओ मे कुछ मूलभूत अन्तर पाये जाते है । अमेरिका से सिविल-सेवा परीक्षाये विशिष्ट (Specific), व्यावहारिक (Practical) तथा अशैक्षणिक (Non-academic) होती हैं । अमेरिका मे प्रत्याशियो की जाँच मुख्यत यह देखने के लिए की जाती है कि उस विशिष्ट पद के कर्तव्यो को सम्पन्न करने के लिए वे कहाँ तक उपयुक्त एव योग्य हैं जिस पर कि वे नियुक्त होना चाहते है । इसके विपरीत, ब्रिटिश परीक्षाओ का उद्देश्य प्रत्याशी की उस समीक्षा का पता लगाना नही है कि यदि कल को उसे किसी विशिष्ट पद पर नियुक्त किया जाय तो वह उस पद के कार्यो को कहाँ तक सम्पन्न कर सकेगा । ब्रिटेन की सिविल-सेवा परीक्षायें तो प्रत्याशी (Candidate) की बौद्धिक साज-सज्जा एव सामान्य योग्यता का माप करती हैं । परीक्षा के विषय अभिन्न रूप से शैक्षणिक होते है, उदाहरणार्थ, इतिहास, गणित, प्राचीन तथा आधुनिक भाषाये, दर्शनशास्त्र (Philosophy), अर्थशास्त्र (Economics), राजनीतिशास्त्र, प्राकृतिक विज्ञान आदि । ये विषय उदार अथवा सामान्य अध्ययनो के क्षेत्र मे से लिए जाते है, तकनीकी (Technical) अध्ययनो के क्षेत्र से नही । परिणाम यह होता है कि

परीक्षायें एक निश्चित शैक्षणिक स्तर के अनुरूप हो जाती है और यह एक स्वीकृत सिद्धान्त है कि शिक्षा पद्धति (Educational system) तथा सिविल-सेवा के ढांचे के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध कायम होना ही चाहिए। इस प्रकार, ब्रिटिश सिविल-सेवा मे उन अधिकारियो की भर्ती की जाती है जिनके पास "उच्चस्तरीय मस्तिष्क, व्यक्तित्व, प्रभावपूर्णता (Effectiveness), निर्णयशीलता तथा सत्यनिष्ठा (Integrity) होती है, और शिक्षा की प्रक्रिया (Process) द्वारा ये सब गुण एक ही व्यक्ति मे सन्तुलित रूप मे पाए जाते है।" आनर्स डिग्री अथवा लिखित परीक्षा को उच्चस्तरीय मस्तिष्क की गारन्टी समझा जाता है, स्वतन्त्र निर्णायक प्रत्याशी की सत्यनिष्ठा की जाच करते हैं, और "व्यक्तित्व प्रभावपूर्णता तथा निर्णयशीलता" की जाँच मौखिक साक्षात्कार के द्वारा वर्गीय वाद-विवाद (Group discussions) के द्वारा तथा कुछ दिन तक प्रत्याशियो को "अतिथियो" के रूप मे "राष्ट्र-गृह" (Country house) आदि मे रख कर निरीक्षण द्वारा की जाती है।

सिविल-सेवा मे भर्ती किए जाने वाले अपरिपक्व एव अप्रशिक्षित (Untrained) व्यक्तियो को सहानुभूतिपूर्ण प्रवेशोत्तर प्रशिक्षण (Post-entry training) दिया जाता है। विभागो (Departments) के अपने प्रशिक्षण अधिकारी होते हैं जोकि नवप्रविष्ट सिविल-सेवको के प्रशिक्षण के लिए उत्तरदायी होते हैं। राजकोष का 'प्रशिक्षण तथा शिक्षा सभाग' (Training and Education Division) भी प्रशिक्षण सम्बन्धी विषयो के बारे मे सूचनाए प्रसारित करता है, शेष सिविल सेवा के लिए एक सामान्य परामर्श देने वाले ब्यूरो के रूप मे कार्य करता है, और काफी मात्रा मे स्वयं भी प्रशिक्षण देने की व्यवस्था करता है। सभी नियुक्तिया प्रारम्भ मे एक या दो वर्ष के परिवीक्षाकाल (Probationary period) के लिए की जाती है। यदि परिवीक्षा की अवधि मे प्रत्याशी उस कार्य के लिए अनुपयुक्त (Unsuitable) सिद्ध होता है तो उसे अन्य कार्य दे दिया जाता है। और यदि वह पूर्णतया अनुपयोगी एव व्यर्थ साबित होता है तो उसको सेवा से पृथक कर दिया जाता है।

ब्रिटेन मे, नवयुवक सिविल-सेवा को एक स्थायी जीवनवृत्ति (Permanent career) के रूप मे अपनाते हैं। सिविल-सेवा मे पदोन्नतियो की एक ऐसी योजना लागू की जाती है जोकि कार्य-कुशलता तथा मनोबल (Morale) की दृष्टि से सर्वोत्तम होती है। पदोन्नति (Promotion) एक श्रेणी से दूसरी श्रेणी को (उदाहरणार्थ, लिपिक श्रेणी से निष्पादक श्रेणी को अथवा निष्पादक श्रेणी से प्रशासनिक श्रेणी को) और एक पदक्रम (Grade) से दूसरे पद-क्रम को (उदाहरण के लिए, कनिष्ठ निष्पादक पदक्रम से उच्च निष्पादक पदक्रम को) योग्यता (Merit) के आधार पर की जाती है, यद्यपि सेवा के निम्न पदक्रमो मे पदोन्नतियो मे ज्येष्टता (Seniority) को अधिक महत्व प्रदान किया जाता है। पदोन्नति विभागीय अध्यक्ष के विवेक (Discretion) पर निर्भर होती है। परन्तु इस विवेक का दुरुपयोग न होने के विषय मे आश्वस्त होने के लिए विभागीय पदोन्नति मण्डलो (Departmental promotion

boards) का निर्माण किया गया है जोकि साक्षात्कार (Interview) तथा वरिष्ठ अधिकारियो द्वारा प्रस्तुत किये गये कर्मचारियो के वार्षिक प्रतिवेदनो के आधार पर प्रत्याशियो को पदोन्नत करते हैं। कर्मचारियों को यह अधिकार होता है कि वे अन्यायपूर्ण पदोन्नतियो के विरूद्ध अपील कर सके।

ब्रिटेन मे सिविल-सेवक राजनीति मे तटस्थ (Neutral) रहते है। उन पर जो भी दल (Party) पदारूढ होता है उसी की सेवा करते हैं। जैसा कि भूतपूर्व उदार-दलीय प्रधान-मन्त्री श्री एटली ने कहा कि "वे ही व्यक्ति जिन्होने कि श्रम परिवहन अधिनियम (Labour's Transport Act) के निर्माण मे महत्वपूर्ण कार्य किया था, अब अनुदार-दलीय सरकार की आज्ञा से उसे छिन्न-भिन्न करने मे लगे हैं।"[1]

प्रो० लास्की ने 'इगलैंड मे ससदीय सरकार' (Parliamentary Government in England) नामक अपनी पुस्तक मे इस बारे मे सदेह प्रकट किया कि सिविल-सेवक समाजवादी सरकार को उचित सहयोग दे भी सकेंगे या नही। परन्तु अनुभव के आगे ऐसे सभी सन्देह निरर्थक सिद्ध हुए और सिविल-सेवको ने उतनी निष्ठा (Loyalty) तथा उतने ही उत्साह के साथ मजदूर दल (Labour party) की सेवा की जैसी कि अनुदार दल (Conservative) की, की थी।

ब्रिटेन मे सिविल-सेवको को अपने पद के सम्बन्ध मे न्यायोचित एव युक्ति-सगत सुरक्षा प्राप्त है। अपने अधिकारो की सुरक्षा के लिए उनके अपने कर्मचारी सगठन हैं। ब्रिटिश कार्मिक व्यवस्था का सबसे बडा योग ह्विटले परिषदें हैं।

सिविल सेवा और आर्थिक आयोजन
(Civil Service and Economic Planning)

विज्ञान तथा शिल्पकला की प्रगति के इस युग मे, नियन्त्रणकारी राज्य का स्थान समाज सेवी राज्य (Social service state) ने ले लिया है। वर्तमान समय मे राज्य अपने नागरिको के लिए भोजन शिक्षा, गृह व स्वास्थ्य सम्बन्धी अनेक सेवाओ की व्यवस्था करता है। उद्योग धन्धो पर तथा बैंकिग, कृषि व वाणिज्य (Commerce) पर अब बडे पैमाने पर राज्य का स्वामित्व तथा नियन्त्रण स्थापित है। 'वर्तमान समाज अधिकाधिक रूप मे एक आयोजनाबद्ध समाज (Planned society) होता जा रहा है, जिसमे कि राज्य क्रेता तथा वितरणकर्त्ता (Distributor) के रूप मे कार्य करता है और जिसका निर्माण ऐसे नागरिको से होता है जिनके समान दावे तथा समान अधिकार होते हैं। स्वामित्व (Ownership) तथा नियन्त्रण (Control) मे सर्वसाधारण द्वारा भाग लेना—इसके प्रमुख केन्द्रीय विचारो मे से एक है।' इस सम्बन्ध मे महत्वपूर्ण प्रश्न ये हैं क्या १९वी शताब्दी की सुधार की हुई सिविल-सेवा बीसवी शताब्दी के मध्य के इस आयोजन के युग के लिए उपयुक्त

1 Lord Attlee, *Civil Servants, Ministers, Parliament and the Public in the Civil Service in Britain and French* Ed W A Robson, p. 16

है ? क्या यह सेवा इतनी कुशल और प्रशिक्षित है कि १९वी शताब्दी के अबन्ध नीति (Laissez faire) वाले अथवा पुलिस राज्य के स्थान पर समाज-सेवी अथवा कल्याणकारी राज्य की सेवा कर सके ?

अब इस बात की आवश्यकता अनुभव की जाती है कि प्रशासन की भावना तथा यन्त्र, दोनो ही ऐसे होने चाहियें जोकि नवीन समाज की आवश्यकताओ की दृष्टि से उपयुक्त हो। आवश्यकता इस बात की है कि केन्द्रीय आयोजन (Central planning) तथा निष्पादकीय क्रियान्वय (Executive application) मे सक्रिय एव प्रभावपूर्ण सम्पर्क कायम किया जाय। जैसा कि Mr Greaves ने कहा कि " यह बात विवाद से परे है कि बीसवी शताब्दी के राज्य की अत्यधिक परिवर्तित तथा बढी हुई आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए बडे पैमाने पर सुधारो की जरूरत है।"[1]

लोकतन्त्रीय समाज मे आयोजन (Planning) प्रोत्साहन (Persuation), शिक्षा तथा विचार-विमर्श पर आधारित होता है। सिविल सेवा को केवल क्रूर व जबरदस्ती के उपायो को ही लागू नही करना होता है। सिविल-सेवको को समाज-सुधारको, शिक्षा-शास्त्रियो तथा प्रशासको का भाग अदा करना पडता है। प्रोत्साहन देने के लिए सतत एव विचारपूर्ण प्रयत्नो की आवश्यकता होती है। सिविल-सेवा मे सुधार के लिए एक महत्वपूर्ण सुझाव यह दिया जाता है कि अनेक लोक-सेवाओ का सिविल, वैज्ञानिक, आर्थिक तथा जनोपयोगी सेवाओ का—एक लोक-सेवा मे एकीकरण कर दिया जाय। सिविल-सेवा को ऐसे एकरूप ढाँचे के अन्तर्गत सगठित करने की अधिकाधिक व्यवस्था होनी चाहिए जिसमे कि विभिन्न सेवाओ के बीच अधिकतम अदला-बदली हो सके। आधुनिक सिविल-सेवा विज्ञान, शिल्पकला, अर्थशास्त्र, आयोजन, समाजशास्त्र तथा मनोविज्ञान (Psychology) के यथेष्ट ज्ञान से पूर्णतया सुसज्जित होनी चाहिए। केवल ऐसा होने पर ही सिविल सेवक समानता, स्वाधीनता तथा भाईचारे के आधार पर नए समाज के पुनर्निमाण की चुनौती का सामना कर सकते हैं। ब्रिटेन तथा अन्य लोकतन्त्रीय देशो की सिविल-सेवाओ से भी आज यही अपेक्षा की जाती है। आर्थिक एव सामाजिक आयोजन के विशाल कार्यों की सम्पन्नता की दृष्टि से "यह आवश्यक है कि सिविल-सेवको को ससार के बारे मे पूर्ण ज्ञान हो, और साथ ही, उन्हे उच्च कोटि का विशिष्ट प्रशिक्षण दिया जाय, क्योकि आयोजन मे वर्तमान से आगे की ओर को बढना होता है जिससे भविष्य तक ठीक स्थिति मे पहुँचा जा सके।"[2] सिविल-सेवको के लिए प्रवेशोत्तर प्रशिक्षण (Post-entry training) की व्यवस्था का होना अत्यन्त आवश्यक है जिससे कि उनको नये-नये

---

1 H R G Greaves, The Civil Service in the Changing State, A Survey of Civil Service Reform and the Implication of a Planned Economy on *Public Administration in England*, p 226

2 Sir Oliver Franks, Central Planning and Control in War and Peace, London 1947

कार्यों एव उत्तरदायित्वो के लिए तैयार किया जा सके। सिविल-सेवको को अपने मे आत्मविश्वास, शक्ति, साहस तथा चित्त की दृढता आदि अनेक गुणो का विकास करने की आवश्यकता होती है। हरमन फिनर के अनुसार ब्रिटेन मे उच्च सिविल सेवा की समस्या स्थायी प्रशासको की खोज की ही है। प्रशासको के गुणो का विषय सदा ही एक स्थायी खोज का विषय बना रहेगा क्योकि इसकी अत्यधिक आवश्यकता है।

२५

भारतीय सिविल अथवा असैनिक सेवा

(Indian Civil Service)

भारतीय सिविल-सेवा 'राजनैतिक सरक्षण' (Political patronage) अथवा 'लूट-खसोट प्रणाली' (Spoils system) के दोषो से मुक्त है। सिविल-सेवा मे भर्ती (Recruitment) योग्यता (Merit) के आधार पर की जाती है। योग्यता की जाँच खुली प्रतियोगिता (Open competition) द्वारा की जाती है जिसकी व्यवस्था एक स्वतन्त्र, निष्पक्ष एव अर्ध-न्यायिक (Quasi-judicial) लोक सेवा आयोग करता है। सघीय लोक-सेवा आयोग (U P. S C.) निम्नलिखित सेवाओ के लिए प्रतियोगिता परीक्षाओ का आयोजन करता है —

(१) भारतीय प्रशासन सेवा (I A S)

(२) भारतीय विदेश सेवा (I F S)

(३) भारतीय पुलिस सेवा (I P S)

(४) भारतीय लेखा परीक्षण तथा लेखा सेवा (Indian Audit and Accounts service)

(५) भारतीय प्रतिरक्षा लेखा सेवा (Indian Defence Accounts service)

(६) भारतीय रेलवे लेखा सेवा, आदि-आदि।

उच्च सिविल सेवा मे २१ से लेकर २४ वर्ष तक के युवा व्यक्तियो की भर्ती की जाती है। आर्ट्स अथवा शुद्ध विज्ञान (Pure science) की डिग्री को उच्च सिविल-सेवा मे भर्ती के लिए एक आवश्यक योग्यता माना जाता है। उच्च सिविल सेवा के लिए विचारो की परिपक्वता, बौद्धिक प्रशिक्षण तथा सुदृढ ज्ञान की आवश्यकता होती है। इन गुणो की जाच लोक-सेवा आयोग द्वारा प्रतिवर्ष आयोजित की जाने वाली एक प्रतियोगिता परीक्षा द्वारा की जाती है। परीक्षाओ की योजना मुख्य रूप से इन विचारो पर आधारित है कि—

(क) एक ऐसी लिखित परीक्षा होनी चाहिये जोकि सभी प्रत्याशियो के लिये हो और जिसका उद्देश्य प्रत्याशियो की विचारशक्ति, निर्णय शक्ति तथा स्पष्ट व्याख्या करने की क्षमता और सामान्य ज्ञान की जाच करना हो। इस उद्देश्य की पूर्ति के हेतु प्रत्याशियो को तीन अनिवार्य प्रश्न-पत्रो (Compulsory papers) मे बैठना होता है

(१) निबन्ध (Essay)	१५० अंक
(२) सामान्य अंग्रेजी (General English)	१५० "
(३) सामान्य ज्ञान (General knowledge)	१५० "

(ख) एक लिखित परीक्षा द्वारा प्रत्याशी की बौद्धिक क्षमता तथा छात्र-कालीन योग्यताओं की जाच होना चाहिये , यह लिखित परीक्षा प्रत्याशी द्वारा स्वय चुने गये ऐसे विषयो (Subjects) मे हो जिनका सिविल-सेवक के कार्य से प्रत्यक्ष सम्बन्ध हो भी सकता है अथवा नही भी । इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रत्याशी को निम्नलिखित वैकल्पिक विषयो मे से कुछ मे परीक्षा देनी होती है

वैकल्पिक विषय—(i) भारतीय पुलिस सेवा के प्रत्याशियो (Candidates) को निम्नलिखित विषयो मे से कोई दो लेने होते हैं

(ii) भारतीय पुलिस सेवा को छोडकर अन्य सभी सेवाओ के प्रत्याशियो को निम्नलिखित विषयो मे से कोई तीन लेने होते हैं :

	अंक
(१) शुद्ध गणित	२००
(२) रसायन-शास्त्र	२००
(३) भौतिक-शास्त्र	२००
(४) प्राणि-शास्त्र	२००
(५) इतिहास	२००
(६) राजनीति-शास्त्र	२००
(७) विधि	२००
(८) भूगोल, 'आदि-आदि	२००

भारतीय प्रशासन सेवा तथा भारतीय विदेश सेवा के लिये प्रतियोगिता करने वाले सभी प्रत्याशियो को अतिरिक्त प्रश्न-पत्रो के रूप मे निम्नलिखित मे से कोई दो विषय छाटने होते हैं

	अंक
(१) उच्च शुद्ध गणित	२००
(२) उच्च भौतिक-शास्त्र	२००
(३) उच्च रसायन-शास्त्र	२००
(४) उच्च प्राणि-शास्त्र	२००
(५) उच्च आर्थिक सिद्धान्त	२००
अथवा	
उच्च भारतीय अर्थशास्त्र	२००
(६) राजनैतिक सगठन तथा लोक-प्रशासन	२००
(७) समाज-शास्त्र	२००
(८) उच्च भूगोल ''आदि-आदि ।	२००

(ग) प्रत्याशी के वैयक्तिक गुणो की जांच करने के लिये साक्षात्कार (Interview) की व्यवस्था होनी चाहिये, उन वैयक्तिक गुणो मे कुछ ऐसे मानसिक गुण भी सम्मिलित हैं जिनकी जाच लिखित परीक्षा मे नही की जा सकती। लिखित परीक्षाये तो प्रत्याशी की बौद्धिक माज-मज्जा एव योग्यता की जाच करती है और साक्षात्कार-परीक्षायें प्रत्याशियो के व्यक्तित्व (Personality) तथा वैक्तिक गुणो की जाच के लिए होती हैं।

भिन्न-भिन्न उच्च सिविल-सेवाओ मे प्रश्न-पत्रो का विभाजन तथा अको का अनुपात निम्न प्रकार है —

सघीय लोक-सेवा आयोग द्वारा सचालित की जाने वाली अखिल भारतीय तथा केन्द्रीय सेवाओ की विभिन्न प्रतियोगिता परीक्षाओ के लिये विषयो की योजना इस प्रकार है

(१) अनिवार्य विषय (सभी सेवाओ के लिए)

	अंक
(i) अग्रेजी निवन्ध	१५०
(ii) सामान्य अग्रेजी	१५०
(iii) सामान्य ज्ञान	१५०
योग	४५०

(२) ऐच्छिक विषय (भारतीय पुलिस सेवा के लिए २ और अन्य सेवाओ के लिए ३ विषय लेने होते हैं)।

कुल ऐच्छिक विषय ७३ हैं जिनमे प्रत्येक के २०० अक है। इन विषयो मे लगभग वे सब विषय आ जाते हैं जोकि कालिजो और विश्वविद्यालयो मे पढाये जाते हैं।

भारतीय पुलिस सेवा के लिये कुल	४०० अक
अन्य सेवाओ के लिये कुल	६०० अक

(३) अतिरिक्त विषय (Additional subjects) (केवल भारतीय प्रशासन सेवा तथा भारतीय विदेश सेवा के लिये दो विषय लेने होते हैं)।

कुल अतिरिक्त विषय १५ हैं जिनमे प्रत्येक के २०० अक हैं। इनमे से अनेक विषय तो ऐच्छिक विषयो जैसे ही हैं परन्तु इनके सम्बन्ध मे प्रत्याशियो से उच्चस्तरीय ज्ञान की आशा की जाती है।

कुल अक (केवल भा० प्र० से तथा भा० वि० सेवा के लिये) ४०० अक

(४) मौखिक परीक्षा (Viva-Voce)

भा० प्र० से तथा भा० वि० सेवा के लिए	४०० अक
अन्य सेवाओ के लिए	३०० अक

भा० प्र० सेवा तथा भा० वि० सेवा के लिखित प्रश्न-पत्रो के लिए अको का कुल योग १४५०

भा० प्र० सेवा तथा भा० वि० सेवा की मौलिक परीक्षा के लिए अको का कुल योग ४००

योग	१,८५०

अन्य सेवाओ के लिखित प्रश्न-पत्रो के अको का योग	१,०५०
अन्य सेवाओ की मौखिक परीक्षा के अको का योग	३००
भारतीय पुलिस सेवा के लिखित प्रश्न-पत्रो का योग	८५०
भारतीय पुलिस सेवा की मौखिक परीक्षा के अको का योग	३००

भारत मे प्रतियोगिता परीक्षा की जो पद्धति अपनाई गई है वह ब्रिटिश पद्धति के नमूने की है। लिखित परीक्षायें प्रत्याशी के उन कार्यों, जिन्हे कि भविष्य मे सम्पन्न करने के लिए उससे कहा जायेगा, से सम्बन्धित विशिष्ट अथवा तकनीकी (Technical) ज्ञान की जाच करने के लिए नही है। उनका उद्देश्य तो प्रत्याशी की सामान्य योग्यताओ एव बौद्धिक क्षमता की जाच करना है। इसीलिए सघीय लोक सेवा आयोग की परीक्षा के विषयो का पाठ्यक्रम विश्व-विद्यालयो के पाठ्यक्रम पर आधारित है। देश मे प्रचलित शिक्षा-पद्धति तथा सिविल-सेवा की प्रतियोगिता परीक्षाओ के बीच निकट सम्बन्ध है। साक्षात्कार (Interview) अथवा मौखिक परीक्षा का महत्व भी अत्यधिक है। प्रत्याशियो की शीघ्र निर्णय करने की क्षमता, तत्परता तथा वैयक्तिक गुणो की जाच मौखिक साक्षात्कार द्वारा ही की जाती है। भारत मे प्रचलित मौखिक साक्षात्कार की पद्धति के प्रति जनसाधारण मे काफी विरोध पाया जाता है। इस सम्बन्ध मे सामान्य शिकायतें ये हैं कि यह पद्धति मनमानी (Arbitrary) है क्योकि मौखिक परीक्षा के ४०० अक पूर्णतया आयोग के सदस्यो की इच्छा पर निर्भर होते हैं। इस पद्धति के द्वारा प्रत्याशी के व्यक्तित्व की वस्तुनिष्ठ अथवा व्यक्ति निरपेक्ष जाच (Objective test) नही की जा सकती। २० अथवा ३० मिनट मे समाप्त हो जाने वाले साक्षात्कार मे वैयक्तिक गुणो की जाच किस प्रकार हो सकती है। इसके अतिरिक्त, एक प्रत्याशी को उच्च सिविल-सेवा के लिए प्रतियोगिता करने के तीन अवसर प्राप्त होते हैं। प्राय ऐसा होता है कि अपने प्रथम वर्ष के साक्षात्कार मे एक प्रत्याशी को ३० अथवा ४० अक प्राप्त होते हैं, किन्तु दूसरे या तीसरे वर्ष मे वही प्रत्याशी २०० या ३०० अक प्राप्त कर लेता है। प्रश्न यह पैदा होता है कि एक या दो वर्ष की सक्षिप्त अवधि मे उस प्रत्याशी के व्यक्तित्व मे किस प्रकार इतनी तीव्रगति से सुधार हो गया ? एक शिकायत यह भी है कि मौखिक साक्षात्कार के समय चुनाव मण्डल (Selection Board) के सदस्यो का व्यवहार कुछ ऐसा होता है कि उसमे प्रत्याशी (Candidate) घबरा जाता है। सदस्य प्रत्याशी को जरा भी प्रोत्साहित नही करते और प्रत्याशियो के व्यक्तित्व (Personality) की जाच आयोग

के सदस्यो की आत्मनिष्ठ अथवा व्यक्तिसापेक्ष भावनाओ (Subjective feelings) के आधार पर की जाती है। भा० प्र० से० (I A S), भा० वि० से० (I F S), भा० पु० से० (IPS) व भा० ले० तथा ले० सेवा (IA and AS) आदि उच्च सिविल सेवाओ मे भर्ती की पद्धति के इस दोष का उल्लेख ए० डी० गोरवाला ने भी किया था। उन्होने कहा कि 'यह अत्यन्त आवश्यक है कि मनोवैज्ञानिक परीक्षाओ (Psychological tests) की महत्ता अनुभव की जाये और शनै शनै वे मौखिक परीक्षाओ का स्थान ले लें। अपरिचित प्रत्याशियो के साथ होने वाली पन्द्रह मिनट की वातचीत यद्यपि लोक-सेवा आयुक्तो (Public Service Commission) के व्यापक अनुभव से सम्बद्ध होती है तथापि यह उस कुशल मनोवैज्ञानिक परीक्षा का स्थान नही ले सकती जिसका उद्देश्य प्रत्याशी के मानसिक गुणो तथा भावनात्मक रूपो पर एक वैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि डालता है ' '। प्राय यह शिकायतें भी की जाती हैं कि ऐच्छिक विषयो के लिए बनाये जाने वाले कुछ प्रश्न-पत्रो का स्तर निम्न होता है जिससे उन विषयो को लेने वाले प्रत्याशियो को अनुचित लाभ प्राप्त हो जाता है। समय-समय पर ऐसा होना अनिवार्य भी है किन्तु यथासम्भव सभी को समान अवसर प्रदान करने के लिए यह आवश्यक है कि परीक्षा के उस भाग को, जोकि सामान्यत सभी प्रत्याशियो के लिए हो, सम्पूर्ण परीक्षा का अपेक्षाकृत अधिक अनुपात प्रदान किया जाये जिससे कि प्रत्याशियो की सापेक्षिक योग्यता की समुचित रूप मे जाच की जा सके।"[1]

यह कहा जा सकता है कि मौखिक साक्षात्कार प्रत्याशी के व्यक्तित्व की जाच करने वाली एक महत्वपूर्ण परीक्षा है और इसमे ही इस प्रकार सुधार किया जाना चाहिए जिससे कि इसे वास्तविक रूप मे लाभदायक बनाया जा सके।[2]

परीक्षाओ के द्वारा सिविल-सेवा के लिए विश्वविद्यालयो के जो स्नातक (Graduates) चुने जाते है उन्हे प्रशिक्षण (Training) के लिए भेज दिया जाता है। भारत ने केन्द्रीय सस्थागत प्रशिक्षण (Centralised institutional training) तथा साथ ही, 'काम पर प्रशिक्षण' (On-the-job training) की पद्धति अपनाई है। भारत मे इस कार्य के लिए एक राष्ट्रीय प्रशासन एकादमी (National Academy of Administration) है जहाँ पर सभी चुने हुए प्रत्याशियो को एक निश्चित अवधि के लिए भेजा जाता है। फिर भिन्न-भिन्न सेवाओ के लिए पृथक्-पृथक् प्रशिक्षण स्कूल होते हैं जिनमे भिन्न-भिन्न सेवाओ के लिए चुने गए प्रत्याशी व्याख्यानो के रूप मे औपचारिक अनुदेश (Formal instructions) प्राप्त करते है। इसके पश्चात् उन्हे कार्यालयो मे भेजा जाता है जहाँ कि वे व्यावहारिक रूप मे कार्य करते हैं और इस प्रकार 'काम पर प्रशिक्षण' प्राप्त करते हैं। प्रशिक्षण मे नवीनीकरण पाठ्यक्रमो

---

1 A D Gorwala, Report on *Public Administration*, 1951 p, 62

२ सुधारो के लिए कृपया भर्ती का अध्ययन देखिये।

(Refresher courses) का उपयोग किया जाना चाहिए। उन अधिकारियो को भी जोकि १५--२० वर्ष तक कार्य कर चुके हैं, नवीनीकरण पाठ्यक्रम पूरा करने के लिए भेजा जाना चाहिए।

सिविल-सेवको को ज्येष्ठता व योग्यता (Seniority-cum-merit) के आधार पर पदोन्नति के न्यायोचित अवसर प्रदान किये जाते हैं। भविष्य निधि (Provident Fund) व पेन्शनो आदि के रूपो मे सेवा निवृत्ति के लाभ (Retirement benefits) भी यथेष्ट मात्रा मे दिये जाते हैं। सामान्य शर्तो के अन्तर्गत सिविल-सेवको को पद की पूर्ण सुरक्षा प्रदान करता है। सिविल-सेवको के लिए एक आचार-सहिता (Code of Conduct) भी बनी हुई है जिसका उल्लघन करने पर अनुशासन की कार्यवाही की जाती है जोकि निलम्बन (Suspension), पदावन्नति (Demotion) और यहाँ तक कि पदच्युति (Dismissal) तक के रूप मे हो सकती है। सिविल-सेवको को राजनैतिक दृष्टि से तटस्थ रहना होता है। उन्हे किसी भी दल (Party) के समर्थन मे सक्रिय राजनीति मे भाग लेने की अनुमति नही दी जाती। उनकी निष्ठा (Loyalty) सरकार के प्रति होती है, किसी भी दल के प्रति नही। भारत मे मन्त्रियो (Ministers) तथा सिविल-सेवको के बीच वैसा ही सम्बन्ध पाया जाता है जैसा कि ब्रिटेन मे पाया जाता है। मन्त्रियो द्वारा (यद्यपि बहुधा सिविल सेवको के परामर्श से मुख्य नीति का निर्माण किया जाता है और उस नीति को कार्यान्वित करना सिविल सेवको का कार्य होता है। Sir Warren Fisher ने मन्त्रियो तथा सिविल-सेवको के बीच के सम्बन्धो का इस प्रकार वर्णन किया है

"मन्त्रियो का कार्य नीति निर्धारित करना है, और जब एक बार नीति का निर्धारण कर दिया जाता है तो सिविल-सेवको का यह निश्चित तथा असदिग्ध कर्तव्य हो जाता है कि वे चाहे उस नीति से सहमत हो या न हो, उसको ईमानदारी के साथ यथार्थ रूप मे एक सी ही शक्ति तथा एक समान इच्छा के साथ क्रियान्वित करने का प्रयत्न करें। यह बात बिल्कुल स्पष्ट तथा स्वत सिद्ध है और इसके बारे मे कभी भी कोई विवाद नही हो सकता। इसके साथ ही साथ, सिविल-सेवको का यह भी परम्परागत कर्त्तव्य है कि जब निर्णय किये जा रहे हो तब वे अपने पास वर्तमान सम्पूर्ण जानकारी तथा अनुभव अपने राजनैतिक प्रधानो को उपलब्ध करायें, और वे ऐसा बिना किसी भी प्रकार के भय या पक्षपात के तथा बिना इस बात की परवाह किए हुए करें कि इस प्रकार दिया गया परामर्श मन्त्री के प्रारम्भिक विचारो से मेल खाता है या नही। ये सम्बेन्वित तथ्य मन्त्रियो के समक्ष प्रस्तुत करने मे, जिनके एकत्रित करने तथा व्यवस्थित करने मे प्राय विभाग के सम्पूर्ण सगठन का सहयोग लेना पड सकता है, सिविल-सेवको को अधिक से अधिक सावधानी बरतनी चाहिए। इन तथ्यो (Facts) मे निष्कर्ष निकालने और उन्हे प्रस्तुत करने मे भी उन्हें पूर्ण बुद्धिमत्ता से काम लेना चाहिए।"[1]

---

1 Quoted by Herman Finer, *op, cit*, pp, 770-71.

इस प्रकार भारत मे पदोन्नति के न्यायोचित अवसरो, नौकरी की सुरक्षा तथा अच्छे वेतन के कारण सिविल-सेवको के मनोबल (Morale) तथा कार्य-क्षमता का स्तर अत्यन्त ऊचा रहता है।

परिवर्तनशील समाज मे सिविल सेवा
(Civil Service in a Changing Society)

भारत मे ब्रिटिश शासन का उद्देश्य देश मे अपना प्रभुत्व कायम रखना था। सरकार करो के सग्रह तथा शान्ति, कानून व व्यवस्था की स्थापना के कार्य से ही विशेष रूप से सम्बन्धित थी, जो थोडी सी जनोपयोगी सेवायें (Public utility services) उस समय चालू की गई थी वे ब्रिटिश शासन के इस मुख्य लक्ष्य को—कि देश पर ब्रिटिश नियन्त्रण बनाये रखा जाय—पूरा करने के लिए ही थी। भारत के लोगो का मुख्य व्यवसाय उस समय कृषि ही बना हुआ था। स्वाधीनता के सघर्ष के साथ ही साथ नये-नये विचार जनता के सामने आये। परिणामस्वरूप जनता, जो कि निर्धनता, अपौष्टिक व अपूर्ण भोजन तथा अनेक कष्टो से पीडित थी, समानता की माग करने लगी। ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत भारत मे नौकरशाही (Bureaucracy) का मुख्य योग निषेधात्मक (Negative) ही था, अर्थात् इसने नियामक कार्य (Regulatary functions) सम्पन्न किये और जनता के स्वतत्रता आन्दोलन को कुचलने के यथासम्भव सभी प्रयत्न किये।

स्वतत्रता प्राप्ति के पश्चात् राष्ट्रीय सरकार ने औद्योगीकरण (Industrialisation) के द्वारा देश को आधुनिकीकरण करने तथा नागरिको को आधुनिक जीवन की सभी सुविधायें प्रदान करने का कार्य अपने हाथो मे ले लिया। राज्य के कार्यों की निषेधात्मक विचारधारा (Negative concept) का स्थान लोकतत्रीय कल्याणकारी विचारधारा ने ले लिया। फलत स्वतत्र जीवन के लोकतत्रीय मूल्यो को दृष्टिगत रखते हुए एक नये समानतावादी समाज की स्थापना करनी थी। बढती हुई जनसख्या के जीवन-स्तर मे सुधार करना था। प्रशासकीय यन्त्र-व्यवस्था मे जोकि ब्रिटिश शासन से उत्तराधिकार मे मिली थी, नये समाजवादी राष्ट्र की आवश्यकताओ के अनुरूप हेर-फेर तथा परिवर्तन करना था। सिविल-सेवको को केवल कानून के रक्षको से बदल कर सामाजिक कल्याण करने वाले अधिकारियो का रूप देना था। चूंकि सरकार का ढाचा लोकतत्रीय था अत सिविल-सेवको से यह कहा गया कि वे जनता के प्रतिनिधियो के नियन्त्रण के अन्तर्गत कार्य करें। मानवीय समायोजन (Human adjustment) की यह एक अद्भुत घटना थी। ब्रिटिश शासन के दिनो मे, नौकरशाही जिन राजनैतिक नेताओ के विरुद्ध लड रही थी तथा उन्हे गिरफ्तार कर रही थी, अब उसे उन्ही नेताओ के अधीन कार्य करने को कहा गया था। नौकरशाही द्वारा जो नेता अपमानित एव तिरस्कृत किये जाते थे, अब उसे उन्ही नेताओ की आज्ञानुसार चलना था एव उनका सम्मान करना था। नौकरशाही द्वारा स्वय को समुचित उत्तरदायित्व तथा लोकप्रिय नियन्त्रणसे युक्त एक लोक-

तन्त्रीय ढाचे के अनुरूप बनाया था। यदि किमी ऐसे उदाहरण की आवश्यकता हो कि भारतीय सिविल सेवा मे अपने आपको यथास्थिति अनुकूल बनाने की कितनी क्षमता तथा शक्ति है तो इसका सर्वोत्तम उदाहरण वे श्रेष्ठ तथा ऐक्यपूर्ण सम्बन्ध हैं जोकि स्वतन्त्रता प्राप्ति के प्रारम्भ से ही मन्त्रियो तथा पुरानी नौकरशाही के बीच पाये जाते हैं। राजद्रोह तथा पारस्परिक सघर्ष की ऐसी कोई घटना नही हुई जिसका उल्लेख किया जा सके। नौकरशाही ने बडी सुगमता के साथ अपने आपको लोकतन्त्र तथा लोकप्रिय नियन्त्रण के अनुरूप बना लिया है।

अब नौकरशाही द्वारा स्वय को इस प्रकार उपयुक्त बनाना है जिससे कि वह भारतीय अर्थ-व्यवस्था (Indian Economy) के पुनर्निर्माण के विशाल उत्तरदायित्व को सम्भाल सके। भारत ने ऐसी महत्वाकाक्षी पचवर्षीय योजनायें प्रारम्भ की है जिनका मुख्य उद्देश्य बढती हुई जनसख्या के रहन-सहन के स्तर मे सुधार करना तथा एक समाजवादी, लोकतन्त्रीय समाज की स्थापना करना है।

स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् से ही भारत मे सरकारी नीति तथा राष्ट्रीय प्रयत्नो का केन्द्रीय लक्ष्य तीव्र गति से सन्तुलित आर्थिक विकास करना रहा है। प्रथम पचवर्षीय योजना का उद्देश्य जहाँ द्वितीय महायुद्ध तथा देश को विभाजन के कारण उत्पन्न कुछ अत्यावश्यक समस्याओ का हल खोजना था, वहाँ देश की अर्थव्यवस्था की जडें मजबूत करना तथा ऐसे सस्थागत परिवर्तन लाना भी था जिनसे कि भविष्य मे तीव्र गति से विकास करने का मार्ग प्रशस्त किया जा सके। प्रथम पचवर्षीय योजना द्वारा इन दोनो ही दिशाओ मे उल्लेखनीय प्रगति हुई। **द्वितीय पचवर्षीय योजना** के द्वारा प्रथम योजनाकाल मे प्रारम्भ की गई प्रक्रियाओ को जारी रखना था। इसका ध्येय उत्पादन (Production), निवेश (Investment) तथा रोजगार (Employment) मे अपेक्षाकृत अधिक वृद्धि करना और सस्थागत परिवर्तनो (Institutional changes) मे इतनी तीव्र वृद्धि करना था जितनी कि अर्थ-व्यवस्था (Economy) को अधिक गतिशील तथा अधिक विकासशील बनाने के लिए आवश्यक हो। इस योजना का एक लक्ष्य भारत मे समाजवादी ढग की समाज (Socialist pattern of Society) की स्थापना करना था।

समाजवादी ढग के समाज का, निश्चय ही, अर्थ यह है कि प्रगति की दिशाओ के निर्धारण का प्राथमिक सिद्धान्त व्यक्तिगत लाभ नही, अपितु सामाजिक लाभ होना चाहिए, और यह भी विकास का स्वरूप तथा सामाजिक व आर्थिक सम्बन्धो का ढाचा इस प्रकार आयोजनाबद्ध (Planned) होना चाहिये कि उनके परिणामस्वरूप केवल राष्ट्रीय आय तथा रोजगार के अवसरो मे ही उल्लेखनीय वृद्धि न हो, बल्कि धन तथा आमदनियो की अधिकाधिक समानता भी उत्पन्न की जा सके। यह आवश्यक है कि आर्थिक विकास (Economic development) के अधिकाधिक लाभ समाज के अपेक्षाकृत कम-सम्पन्न वर्गों को प्राप्त हो और ऐसी दशायें उत्पन्न की जायें जिनमे कि छोटे व्यक्तियो को भी जीवन मे उन्नति के अवसर प्राप्त हो सकें।

ऐसा वातावरण उत्पन्न करने के लिये, राज्य (State) को भारी उत्तर-दायित्व अपने ऊपर लेने है। सरकारी क्षेत्र (Public sector) का तीव्र गति से विकास होना है। राज्य को अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत, सरकारी तथा गैर-सरकारी, दोनो ही प्रकार के निवेश (Investment) के सम्पूर्ण स्वरूप का निर्धारण करने मे महत्वपूर्ण भाग लेना है और ऐसे विकास-कार्यक्रमो को प्रारम्भ करना है जिन्हे गैर-सरकारी क्षेत्र (Private sector) अपने हाथ मे लेने को अनिच्छुक है अथवा असमर्थ है। विकास के कुछ ऐसे नये तथा वडे कार्यक्रमो के सचालन का उत्तरदायित्व मुख्य रूप से राज्य को ही अपने हाथो मे लेना चाहिए जिनमे कि आधुनिक तकनीकी ज्ञान, वडे पैमाने के उत्पादन, एकीकृत नियन्त्रण (Unified control) तथा साधनो के वटवारे (Allocation of resources) की आवश्यकता हो। उन क्षेत्रो के प्रवन्ध मे विशेप रूप से सरकारी स्वामित्व (Public ownership), चाहे वह आशिक हो अथवा पूर्ण, और सरकारी नियन्त्रण या सरकार द्वारा भाग लेने की आवश्यकता है जिनमे आर्थिक शक्ति तथा धन के केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति पाई जाती है। गैर-सरकारी उच्च उद्यम (Private enterprise) को सम्पूर्ण योजना के ढाचे के अन्तर्गत रहते हुए अपना योग देना है। विकासशील अर्थ-व्यवस्था मे सरकारी तथा गैर-सरकारी, दोनो ही क्षेत्रो का एक साथ विस्तार करने की गुजाइश होती है, परन्तु यदि निर्धारित गति के अनुसार विकास करना है और पूर्वनिश्चित महान् सामाजिक लक्ष्यो की पूर्ति मे उसका योग प्राप्त करना है तो यह अत्यन्त आवश्यक है कि सरकारी क्षेत्र पूर्ण रूप से ही आगे न वढे, अपितु आपेक्षिक रूप से गैर-सरकारी क्षेत्र के साथ-साथ भी आगे बढे।

समाजवादी ढग की समाज के स्वरूप को बिल्कुल दृढ अथवा कठोर नही मान लेना चाहिए। प्रत्येक देश अपनी निजी कल्पनाशक्ति तथा परम्पराओ के अनुसार ही इसके स्वरूप का विकास करता है। परन्तु इसमे निहित कुछ आधारभूत मूल्यो तथा सस्थागत व्यवस्थाओ पर जोर देना अत्यन्त आवश्यक एव महत्वपूर्ण है। समाजवादी ढग की समाज की स्थापना का सार निम्न बातो मे निहित है ठोस निर्धारित लक्ष्यो को प्राप्त करना, जनता के जीवन-स्तरो को ऊचा उठाना, सभी लोगो के लिए उन्नति के अधिकाधिक अवसर उपलब्ध करना, कम सुविधा प्राप्त वर्गों मे उद्यमो की उन्नति करना और समाज के सभी वर्गो के बीच साझेदारी की भावना उत्पन्न करना। यह कहा जा सकता है कि समाजवादी स्वरूप (Socialist pattern) सविधान मे उल्लिखित राज्य नीति के निर्देशक सिद्धान्तो का ही एक अधिक आधुनिक एव ज्वलन्त रूप है।

उद्देश्य (Objectives)

लोकतन्त्र और समानता के आधार पर तीव्र गति से प्रगति करना ही हमारा मुख्य उद्देश्य है। इस व्यापक दृष्टिकोण को ध्यान मे रखकर अग्रलिखित मुख्य उद्देश्यो की पूर्ति के लिए द्वितीय पचवर्षीय योजना का निर्माण किया गया है—

(१) राष्ट्रीय आय मे इतनी वृद्धि करना जिससे देश के रहन-सहन का स्तर ऊचा हो ,

(२) मूल और भारी उद्योगो के विकास पर जोर देते हुए देश का तेजी से औद्योगीकरण करना ,

(३) रोजगार के अवसरो का अधिक विस्तार , और

(४) आय व सम्पत्ति की विषमताओ का निराकरण और आर्थिक शक्ति का पहले से अधिक समान वितरण ।

स्वतन्त्र भारत मे सिविल-सेवा पर सरकारी स्वामित्व वाली औद्योगिक तथा वाणिज्यिक प्रायोजनाओ (Projects) के प्रबन्ध का भार आ पडा है । सिविल-सेवको को आयोजन (Planning) की समस्याओ के बारे मे सरकार की सलाह लेनी होती है उन्हे ही आयोजन को क्रियान्वित भी करना होता है। प्रश्न यह है कि सिविल-सेवको पर जिन नये कार्यों एव उत्तरदायित्वो का वहन करने का भार आ पडा है क्या वे उसके लिये उपयुक्त है ? "यह आरोप लगाया जाता है कि सिविल-सेवक पूर्व वातो अथवा पूर्व दृष्टान्तो (Precedents) पर अत्यधिक ध्यान देता है , वह सदा भूत (Past) की ओर देखता है और परम्पराओ अथवा कार्य करने के अभ्यस्त तरीको को जरा भी छोडना नही चाहता । वह आवश्यकता से बहुत अधिक सावधान रहता है । एक गुण, जिसमे कि उसे विशिष्टता प्राप्त होती है, यह है कि वह सदा ऐसे कारणो की खोज-बीन करता रहता है जिनके आधार पर किसी भी परिवर्तन का विरोध किया जा सके तथा निर्धारित क्रियाविधि (Course of action) का परि-पालन जारी रखा जा सके । उसका दृष्टिकोण निषेधात्मक (Negative) होता है जब कि वह रचनात्मक (Constructive) होना चाहिए । इसके अतिरिक्त, उसे गलती होने का इतना अधिक भय रहता है अथवा उसमे आत्मविश्वास की इतनी कमी रहती है कि वह व्यक्तिगत उत्तरदायित्व से बचने का ही प्रयत्न करता है और फल-स्वरूप निर्णय चाहने वाले किसी भी प्रश्न का भार वह यथासभव अन्य किसी भी व्यक्ति पर डाल देता है ।"[1] 'सिविल-सेवको के प्रशिक्षण' पर नियुक्त समिति ने भी इस आरोप की पुष्टि की थी । समिति ने कहा कि "सिविल सेवको मे जो दोष बहुलता के साथ पाये जाते हैं वे ये हैं—पूर्व वातो अथवा पूर्व दृष्टान्तो के प्रति अत्यधिक लगाव पहल करने की क्षमता (Initiative) तथा कल्पनाशक्ति का अभाव, दीर्घसूत्रता अथवा टाल-मटोल, और उत्तरदायित्व लेने अथवा निर्णय देने के प्रति अनिच्छा । हमारा यह विचार है कि सिविल-सेवको मे ये दोष कुछ न कुछ मात्रा मे पाये जाते हैं ।[2]

एक सिविल सेवक, जोकि कल्पनाशक्ति, विचारशक्ति तथा रचनात्मक सुझावो के क्षेत्र मे कमजोर होता है, उन नये कार्यो एव उत्तरदायित्वो का भार वहन करने के

1 H G R Greaves, *The Civil Service in the Changing State*, p 46
2 Report Cmd 6525 of 1944 Para, 13,

लिये अनुपयुक्त होता है जिनके लिये कि पहल करने की क्षमता, उद्यम तथा साहस की आवश्यकता होती है। फूक-फूक कर पैर रखने वाले वे व्यक्ति जोकि हर समय अपने बचाव का ध्यान रखते है, राज्य के निरन्तर बढते हुए आधुनिक कार्यों को सम्पन्न नही कर सकते। नौकरशाही के इन दोषो तथा नये समाज की आवश्यकताओ को दृष्टिगत रखते हुए जरूरत इस बात की है कि सिविल-सेवको के समुचित चयन (Proper selection) तथा उनमे उच्च कार्य-कुशलता एव ऊचा मनोबल बनाये रखने के लिए समुचित प्रेरणाओ की व्यवस्था की जाए। सिविल-सेवको के उचित चुनाव तथा पर्याप्त प्रशिक्षण से ही इस बात का निश्चय होगा कि वे नये समाज की चुनौती का सामना करने मे समर्थ होगे या नही। भारत सिविल-सेवा के बारे मे लिखते हुए पाल एच० एपलिबी ने कहा

"चयन के सिद्धान्त के विषय मे यह कहा जा सकता है कि प्रचलित पद्धति मे लगभग वैसी ही निष्पक्षता बरती जाती है जैसी कि किसी भी सिविल सेवा पद्धति मे पाई जाती है परन्तु परीक्षा की विधियाँ आधुनिक नही हैं तथा वे प्रशासकीय योग्यताओ के विषय मे आधुनिक ज्ञान से पूर्णतया सम्बन्धित नही है। साक्षात्कार-प्रणाली (Interviewing method) की अवश्य प्रशसा की जानी चाहिये । तथापि, परीक्षा विधि शैक्षणिक है, प्रशासकीय नही।"[1]

भारत के लिए आर्थिक सिविल-सेवा
(Economic Civil Service for India)

उत्पादन के मुख्य साधनो के सरकारी नियन्त्रण को भारतीय आर्थिक आयोजन (Indian Economic Planning) के एक आवश्यक अग के रूप मे अपनाया गया है। राष्ट्रीय साधनो के एक बडे क्षेत्र पर समुदाय (Community) का स्वामित्व स्थापित हो गया है। परिवहन सेवाओ (Transport services) के सगठन के लिए, नये-नये नगरो के नियोजन तथा विकास के लिए और सरकारी स्वामित्व वाले उद्योगो के सचालन के लिए सरकारी पदाधिकारी ही उत्तरदायी हैं। भारत मे सरकारी निगम (Public Corporations) जिनकी स्थापना राज्य के स्वामित्व वाले उद्योगो का प्रबन्ध करने के लिये की गई है, सरकारी पदाधिकारियो द्वारा ही सचालित किये जाते है। आर्थिक क्षेत्र की अनेक क्रियाओ को सम्पन्न करने का भार सिविल-सेवा पर आ पडा है। इस स्थिति मे प्रश्न यह पैदा होता है कि क्या वर्तमान सिविल-सेवा नये कार्यों का भार वहन करने के लिए उपयुक्त है अथवा राज्य के आर्थिक कार्यों का प्रबन्ध करने के लिए एक पृथक् 'आर्थिक सिविल-सेवा' का निर्माण किया जाना चाहिए ? ए० डी० गोरवाला ने लोक प्रशासन पर दिये गये अपने प्रतिवेदन मे आर्थिक सिविल-सेवा की समस्या को विवेचना की है। यह कहा जाता है कि कन्ट्रोल के नियमन, औद्योगिक अथवा वाणिज्यिक प्रकृति के सरकारी उद्यमो का

1 Paul H Appleby *Public Administration in India*, Report of a Survey p 29

(१) राष्ट्रीय आय मे इतनी वृद्धि करना जिससे देश के रहन-सहन का स्तर ऊचा हो ,

(२) मूल और भारी उद्योगो के विकास पर जोर देते हुए देश का तेजी से औद्योगीकरण करना ,

(३) रोजगार के अवसरो का अधिक विस्तार , और

(४) आय व सम्पत्ति की विषमताओ का निराकरण और आर्थिक शक्ति का पहले से अधिक समान वितरण ।

स्वतन्त्र भारत मे सिविल-सेवा पर सरकारी स्वामित्व वाली औद्योगिक तथा वाणिज्यिक प्रायोजनाओ (Projects) के प्रबन्ध का भार आ पडा है । सिविल-सेवको को आयोजन (Planning) की समस्याओ के बारे मे सरकार की सलाह लेनी होती है उन्हे ही आयोजन को क्रियान्वित भी करना होता है। प्रश्न यह है कि सिविल-सेवको पर जिन नये कार्यों एव उत्तरदायित्वो का वहन करने का भार आ पडा है क्या वे उसके लिये उपयुक्त हैं ? "यह आरोप लगाया जाता है कि सिविल-सेवक पूर्व वातो अथवा पूर्व दृष्टान्तो (Precedents) पर अत्यधिक ध्यान देता है , वह सदा भूत (Past) की ओर देखता है और परम्पराओ अथवा कार्य करने के अभ्यस्त तरीको को जरा भी छोडना नही चाहता । वह आवश्यकता से वहुत अधिक सावधान रहता है । एक गुण, जिसमे कि उसे विशिष्टता प्राप्त होती है, यह है कि वह सदा ऐसे कारणो की खोज-वीन करता रहता है जिनके आधार पर किसी भी परिवर्तन का विरोध किया जा सके तथा निर्धारित क्रियाविधि (Course of action) का परिपालन जारी रखा जा सके । उसका दृष्टिकोण निषेधात्मक (Negative) होता है जब कि वह रचनात्मक (Constructive) होना चाहिए । इसके अतिरिक्त, उसे गलती होने का इतना अधिक भय रहता है अथवा उसमे आत्मविश्वास की इतनी कमी रहती है कि वह व्यक्तिगत उत्तरदायित्व से वचने का ही प्रयत्न करता है और फलस्वरूप निर्णय चाहने वाले किसी भी प्रश्न का भार वह यथासभव अन्य किसी भी व्यक्ति पर डाल देता है ।"[1] 'सिविल-सेवको के प्रशिक्षण' पर नियुक्त समिति ने भी इस आरोप की पुष्टि की थी । समिति ने कहा कि "सिविल सेवको मे जो दोष बहुलता के साथ पाये जाते हैं वे ये है—पूर्व वातो अथवा पूर्व दृष्टान्तो के प्रति अत्यधिक लगाव पहल करने की क्षमता (Initiative) तथा कल्पनाशक्ति का अभाव, दीर्घसूत्रता अथवा टाल-मटोल, और उत्तरदायित्व लेने अथवा निर्णय देने के प्रति अनिच्छा । हमारा यह विचार है कि सिविल-सेवको मे ये दोष कुछ न कुछ मात्रा मे पाये जाते हैं ।[2]

एक सिविल सेवक, जोकि कल्पनाशक्ति, विचारशक्ति तथा रचनात्मक सुझावो के क्षेत्र मे कमजोर होता है, उन नये कार्यो एव उत्तरदायित्वो का भार वहन करने के

---

1 H G R Greaves, *The Civil Service in the Changing State*, p 46

2 Report Caud 6525 of 1944 Para 13,

लिये अनुपयुक्त होता है जिनके लिये कि पहल करने की क्षमता, उद्यम तथा साहस की आवश्यकता होती है। फूक-फूक कर पैर रखने वाले वे व्यक्ति जोकि हर समय अपने बचाव का ध्यान रखते है, राज्य के निरन्तर बढते हुए आधुनिक कार्यों को सम्पन्न नही कर सकते। नौकरशाही के इन दोषो तथा नये समाज की आवश्यकताओ को दृष्टिगत रखते हुए जरूरत इस बात की है कि सिविल-सेवको के समुचित चयन (Proper selection) तथा उनमे उच्च कार्य-कुशलता एव ऊचा मनोबल बनाये रखने के लिए समुचित प्रेरणाओ की व्यवस्था की जाए। सिविल-सेवको के उचित चुनाव तथा पर्याप्त प्रशिक्षण से ही इस बात का निश्चय होगा कि वे नये समाज की चुनौती का सामना करने मे समर्थ होगे या नही। भारत सिविल-सेवा के बारे मे लिखते हुए पाल एच० एपलिबी ने कहा

"चयन के सिद्धान्त के विषय मे यह कहा जा सकता है कि प्रचलित पद्धति मे लगभग वैसी ही निष्पक्षता बरती जाती है जैसी कि किसी भी सिविल सेवा पद्धति मे पाई जाती है परन्तु परीक्षा की विधियाँ आधुनिक नही हैं तथा वे प्रशासकीय योग्यताओ के विषय मे आधुनिक ज्ञान से पूर्णतया सम्बन्धित नही है। साक्षात्कार-प्रणाली (Interviewing method) की अवश्य प्रशसा की जानी चाहिये । तथापि, परीक्षा विधि शैक्षणिक है, प्रशासकीय नही।"[1]

भारत के लिए आर्थिक सिविल-सेवा
(Economic Civil Service for India)

उत्पादन के मुख्य साधनो के सरकारी नियन्त्रण को भारतीय आर्थिक आयोजन (Indian Economic Planning) के एक आवश्यक अग के रूप मे अपनाया गया है। राष्ट्रीय साधनो के एक बडे क्षेत्र पर समुदाय (Community) का स्वामित्व स्थापित हो गया है। परिवहन सेवाओ (Transport services) के सगठन के लिए, नये-नये नगरो के नियोजन तथा विकास के लिए और सरकारी स्वामित्व वाले उद्योगो के सचालन के लिए सरकारी पदाधिकारी ही उत्तरदायी हैं। भारत मे सरकारी निगम (Public Corporations) जिनकी स्थापना राज्य के स्वामित्व वाले उद्योगो का प्रबन्ध करने के लिये की गई है, सरकारी पदाधिकारियो द्वारा ही सचालित लिये जाते हैं। आर्थिक क्षेत्र की अनेक क्रियाओ को सम्पन्न करने का भार सिविल-सेवा पर आ पडा है। इस स्थिति मे प्रश्न यह पैदा होता है कि क्या वर्तमान सिविल-सेवा नये कार्यों का भार वहन करने के लिए उपयुक्त है अथवा राज्य के आर्थिक कार्यों का प्रबन्ध करने के लिए एक पृथक् 'आर्थिक सिविल-सेवा' का निर्माण किया जाना चाहिए ? ए० डी० गोरवाला ने लोक प्रशासन पर दिये गये अपने प्रतिवेदन मे आर्थिक सिविल-सेवा की समस्या को विवेचना की है। यह कहा जाता है कि कन्ट्रोल के नियमन, औद्योगिक अथवा वाणिज्यिक प्रकृति के सरकारी उद्यमो का

1 Paul H Appleby *Public Administration in India*, Report of a Survey p 29

सचालन, कुछ विभागो जैसे कि उद्योग तथा वाणिज्य व आर्थिक मामलो के विभागों आदि मे भर्ती, तथा कुछ योजनाओ के क्रियान्वय का कार्य आर्थिक सिविल सेवा पर ही छोड दिया जाना चाहिये। आर्थिक सिविल सेवा के अन्तर्गत सामान्यत निम्नलिखित चार विभिन्न प्रकार के अधिकारी एव कर्मचारी एक साथ सम्मिलित किये जाते है —

(१) ऐसे अधिकारी जोकि आर्थिक नीति (Economic policy) की उच्चतम सतह पर सरकार को सलाह देने मे समर्थ एव सक्षम हो।

(२) ऐसे अधिकारी एव कर्मचारी जोकि निम्न सतह पर ऐसी आर्थिक सामग्री एकत्रित करने तथा प्रस्तुत करने मे समर्थ हो जिसको आर्थिक नीति के सम्बन्ध मे दिये जाने वाले परामर्श का आधार बनाया जा सके।

(३) ऐसे अधिकारी जिनका अर्थशास्त्र (Economics) का ज्ञान काफी सुदृढ हो और जिनसे कुछ सचिवालयिक तथा निष्पादक पदो के कार्यों को उन व्यक्तियो के मुकाबले अधिक कुशलता के साथ सम्पन्न करने की आशा की जाए जोकि अर्थशास्त्र के ऐसे ज्ञान से रहित हो।

(४) ऐसे अधिकारी जिनमे कुशलता के साथ कार्य सम्पन्न करने का प्रबन्ध-सम्बन्धी अनुभव तथा योग्यता वर्तमान हो। आर्थिक सिविल सेवा के पक्ष-पोषको द्वारा यह कहा जाता है कि इस सेवा मे की जाने वाली भर्ती को अर्थशास्त्र मे डिग्री प्राप्त करने वाले व्यक्तियो तक ही सीमित कर दिया जाना चाहिये। यह कहा जा सकता है कि अर्थशास्त्र के स्नातको (Graduates) मे प्रशासकीय तथा प्रबन्ध-सम्बन्धी योग्यता—जोकि किसी भी प्रकार की सिविल सेवा के लिए अत्यन्त आवश्यक होती है—अनिवार्य रूप से पाई जाती हो, ऐसी बात तो नही है। ए० डी० गोरवाला ने ठीक ही कहा है "इस श्रेणी के पदाधिकारी किसी भी स्थिति मे अध-कचरे डिग्रीधारको मे से नही लिये जा सकते। जिन विभागो मे बहुधा आर्थिक सामग्री एव आर्थिक प्रवृत्तियो को दृष्टिगत रखते हुए निर्णय देने होते हैं उनमे काम करने वाले पद-धारको के लिए आर्थिक आधार एव ज्ञान, निश्चय ही कुछ उपयोगी हो सकता है परन्तु इन पदो की भर्ती को केवल उन व्यक्तियो तक ही सीमित कर देने से कोई विशेष लाभ नहीं होगा जिन्होने कि अर्थशास्त्र की डिग्री प्राप्त की हो। एक सर्वसामान्य योग्यता एव ज्ञान वाले पदाधिकारी को, उसकी सेवा के प्रारम्भिक वर्षों मे, आवश्यक आर्थिक प्रशिक्षण दिया जा सकता है। सभी दृष्टियो से, फिर, विशिष्ट आर्थिक सिविल-सेवा (Special Econom.c Civil Service) के पक्ष के समर्थन मे कहने को कुछ बाकी नही रहेगा।[1]

एक सुझाव यह दिया जा सकता है कि सरकारी स्वामित्व वाले उद्योगो के सचालन के लिये एक ऐसी औद्योगिक प्रबन्ध सेवा की व्यवस्था होनी चाहिए जिसमें

1 A D Gorwala, Report on *Public Administration*, Government of India Planning Commission, 1951, p 64

ऐसे व्यक्ति हो जिन्होने औद्योगिक प्रबन्ध सेवा का प्रशिक्षण प्राप्त किया हो। भारत सरकार ने ऐसी औद्योगिक प्रबन्ध सेवा की आवश्यकता अनुभव की और एक योजना की घोषणा की जोकि "औद्योगिक प्रबन्ध केन्द्र योजना" के नाम से विख्यात है।

औद्योगिक प्रबन्ध केन्द्र योजना
(The Industrial Management Pool Scheme)

(१) औद्योगिक प्रबन्ध केन्द्र (I M P) की स्थापना आगे दी हुई विधि के अनुसार उन मन्त्रालयो (Ministries) की मागो की पूर्ति के लिए की जायेगी जिनके अधीन औद्योगिक उद्यम (Industrial undertaking) काम कर रहे होगे। वर्तमान मे तो, उत्पादन मन्त्रालय, लोहा व इस्पात मन्त्रालय, परिवहन व सचार मन्त्रालय और वाणिज्य तथा उपभोक्ता उद्योगो के मन्त्रालय इस केन्द्र मे भाग लेंगे। बाद मे इस बात की खुली छूट होगी कि औद्योगिक उद्यमो के सचालन से सम्बन्धित कोई भी अन्य मन्त्रालय केन्द्र की नियन्त्रणकारी सत्ता की सहमति से इस योजना मे सम्मिलित हो सके।

(२) **नियन्त्रणकारी सत्ता** (Controlling Authority)—स्वराष्ट्र मन्त्रालय (Home Ministry) केन्द्र की नियन्त्रणकारी सत्ता के रूप मे कार्य करेगा। स्वराष्ट्र मन्त्रालय को एक मण्डल (Board) द्वारा परामर्श दिया जायेगा जिसकी रचना निम्न प्रकार होगी —

१ मन्त्रि परिषद् सचिव · अध्यक्ष पदेन।

२, ३, ४, ५ व ६ भाग लेने वाले मन्त्रालयो अर्थात् उत्पादन, लोहा व इस्पात परिवहन व सचार, वाणिज्य तथा उपभोक्ता उद्योगो के सदस्य · प्रतिनिधि।

भारत सरकार का स्थापना अधिकारी (Establishment Officer) मण्डल का पदेन सचिव (Ex-officio secretary) होगा।

(३) केन्द्र (Pool) सभी सरकारी उद्यमो (Public enterprizes) मे ज्येष्ठ (अर्थात् उच्च तथा मध्य स्तर के) प्रबन्धकीय पदो (Managerial posts) पर भर्ती की योजना तैयार करेगा, चाहे वे सरकारी उद्यम प्रत्यक्ष रूप से सरकार द्वारा सचालित किये जाते हो अथवा ऐसे निगमो या कम्पनियो द्वारा सचालित किये जाते हो जिनमे कि सरकार नियन्त्रणकारी स्थिति रखती हो। इस क्रम मे गैर-तकनीकी प्रकृति के ऐसे पद सम्मिलित होगे जिनका सम्बन्ध, उदाहरणत, सामान्य प्रबन्ध, वित्त तथा लेखो (Finance and accounts), विक्रय, क्रय, भण्डार (Stores), यातायात, वैयक्तिक प्रबन्ध व कल्याण तथा नगर प्रशासन मे हो।

(४) कोई भी पद केन्द्र के सदस्यो के लिए सुरक्षित नही होगा। तथापि केन्द्र के पदाधिकारी केन्द्र मे भाग लेने वाले मन्त्रालयो के अधीन सचालित किये जाने

वाले सरकारी (सार्वजनिक) उद्यमो मे गैर-तकनीकी पदो की नियुक्ति के लिए उपलब्ध रहेगे । औद्योगिक उद्यमो के वरिष्ठ पद (Senior posts) पदोन्नति (Promotion) की स्थिति मे उन अधिकारियो के लिए भी उपलब्ध होगे, जोकि सम्बन्धित उद्यम से सम्बद्ध होगे । अत केन्द्र के पदाधिकारियो की सख्या का निर्धारण उद्यमो मे वरिष्ठ प्रबन्धकीय पदो की कुल आवश्यकताओ की सतह से नीचे ही होगा ।

(५) **पदक्रम तथा वेतनक्रम** (Grades and Pay scales)—केन्द्र (Pool) निम्नलिखित वेतन-क्रमो पर सात पद-क्रमो मे सगठित किया जायेगा —

	रु०
पदक्रम प्रथम	२,७५० (स्थिर)
पदक्रम द्वितीय	२,५०० (स्थिर)
पदक्रम तृतीय	२,०००-१२५-२,२५०
पदक्रम चतुर्थ	१,६००-१००-२,६००
पदक्रम पचम	१,३००- ६०-१,६००
पदक्रम षष्ठ	१,०००- ५०-१,४००
पदक्रम सप्तम	६००- ४०-१,०००

सेवा के इन सभी पदक्रमो की प्रथम श्रेणी को केन्द्रीय सेवाओ से सदृश माना जायेगा ।

इसके साथ ही साथ, योजना (Scheme) के अनुच्छेद ७ के अन्तर्गत दी गई प्रथम टिप्पणी के अनुसार भर्ती किये गये कनिष्ठ अधिकारी (Junior officers) रु० ३५०-२५-५००-३०-६२० के वेतन-क्रम मे उपयुक्त स्तरो पर नियुक्त किये जा सकते है । एक ही पद-क्रम मे भी वेतन वृद्धि स्वयचालित (Automatic) रूप मे नही प्राप्त होगी । बल्कि इसके विपरीत, इस सम्बन्ध मे एक ठोस निर्णय (Decision) किया जायेगा और तब एक पदाधिकारी को वेतन-वृद्धि (Increment) पाने के लिए उपयुक्त माना जायेगा । यह निर्णय उन निगमो अथवा कम्पनियो के निर्देशक मण्डल (Board of Directors) द्वारा किया जायेगा जिनके अन्तर्गत कि वह सम्बन्धित पदाधिकारी काम कर रहा है परन्तु शर्त यह है कि केन्द्रीय सलाहकार मण्डल (Central Advisory Board) के परामर्श से नियन्त्रणकारी सत्ता ने उसकी पुष्टि कर दी हो । एक ही पदक्रम के अन्दर भी ज्येष्ठता (Seniority) का कोई क्रम नही होगा । इस प्रकार एक पदक्रम (Grade) के सभी पदाधिकारी केवल योग्यता (Merit) के आधार पर पदोन्नति (Promotion) के पात्र होंगे और योग्यता के आधार पर ही चयन (Selection) करके अगले उच्च पदक्रम मे उनको पदोन्नत कर दिया जायेगा ।

(६) **अधिकृत सख्या** (Authorised Strength)—प्रारम्भिक रचना के समय केन्द्र के अधिकारियों की अधिकृत स्थायी सख्या २०० होगी । नियन्त्रणकारी

सत्ता द्वारा इस सख्या का वितरण विभिन्न पद-क्रमो मे कर दिया जायेगा ; परन्तु यह वितरण वित्त मन्त्रालय (Ministry of Finance) के परामर्श से तथा इस बात को ध्यान मे रखकर किया जायेगा कि प्रत्येक पदक्रम की अनुमानित आवश्यकता कितनी है और प्रत्येक पद-क्रम के लिए उपलब्ध व्यक्ति किस कोटि (Quality) के हैं। जब भी आवश्यकता हो इस सख्या पर पुनर्विचार किया जा सकता है परन्तु प्रत्येक स्थिति मे, ऐसा दो वर्षो मे एक बार ही किया जा सकता है।

(७) **भर्ती** (Recruitment)—प्रारम्भ मे केन्द्र की रचना अनुच्छेद ५ मे उल्लिखित पद-क्रमो मे से किसी मे भी भर्ती करके की जायेगी। यह भर्ती उन व्यक्तियो मे से चयन करके की जायेगी—

(क) जिन्होंने मान्यता प्राप्त किसी विश्वविद्यालय की डिग्री अथवा उसके समकक्ष अन्य कोई उपाधि प्राप्त की हो ,

(ख) जिनकी आयु २७ तथा ४५ वर्षो के बीच मे हो ,

(ग) जिनको पाच वर्ष का औद्योगिक अथवा प्रबन्ध-सम्बन्धी अनुभव हो तो अधिक अच्छा है।

टिप्पणी—(१) अपवादभूत परिस्थितियो मे २७ वर्ष से कम आयु के प्रत्याशियो (Candidates) की भर्ती की जा सकती है। ऐसे प्रत्याशियो की, नियुक्ति होने पर रु० ३५०-२५-५००-३०-६२० के क्रम मे वेतन मिलता है।

टिप्पणी—(२) ४५ वर्ष से ऊपर की आयु के व्यक्ति, यदि विशिष्ट रूप मे उपयुक्त हो तो, केन्द्र मे नियुक्त होने के बजाए दीर्घकालीन ठेके पर रखे जा सकते हैं।

भर्ती के क्षेत्र मे निम्नलिखित सम्मिलित होगे —

(क) अखिल भारतीय तथा प्रथम श्रेणी की केन्द्रीय सेवाओ के पदाधिकारी (रेलवे तथा प्रतिरक्षा सेवाओ सहित)।

(ख) इसी पदस्थिति तथा अनुभव के राज्य सरकारो के अधिकारी।

(ग) वर्तमान सरकारी उद्यमो के अनुभवी अधिकारी।

(घ) खुले बाजार से लिये जाने वाले प्रत्याशी।

(८) **भर्ती की रीति** (Method of recruitment)—केन्द्र के लिए भर्ती एक 'विशिष्ट भर्ती मण्डल' (Special Recruitment Board) की सिफारिश पर की जायेगी। इस मण्डल की रचना निम्न प्रकार होगी —

(१) अध्यक्ष अथवा एक सदस्य • सघीय लोक सेवा आयोग का सदस्य।
(२) एक गैर-सरकारी व्यक्ति।
(३ व ४) राज्य उद्यमो के प्रबन्ध निर्देशक तथा सामान्य प्रबन्धक।
} सदस्य

(५ व ६) भाग लेने वाले मन्त्रालयो के प्रतिनिधि, उन मन्त्रालयो को छोडकर जिनका प्रतिनिधित्व ३ व ४ मे प्रबन्ध निर्देशको (Managing Directors) तथा सामान्य प्रबन्धको (General Managers) द्वारा किया गया हो।

सरकार द्वारा नियुक्तियाँ करने से पूर्व मण्डल की सिफारिशे समालोचना अथवा टीका-टिप्पणी के लिए संघीय लोक सेवा आयोग (U P S C) के समक्ष रखी जायेंगी।

यह आवश्यक नही है कि भर्ती को अनिवार्य रूप से उन प्रत्याशियो तक ही सीमित कर दिया जाये जोकि विज्ञापनो के प्रत्युत्तर मे केन्द्र (Pool) मे आने के लिए प्रार्थना-पत्र दें। भर्ती मण्डल (Recruitment Board) उन व्यक्तियो के नामो पर भी विचार कर सकता है जिन्होने प्रार्थना-पत्र न दिया हो परन्तु उनके नामो के सुझाव मन्त्रालयो द्वारा मण्डल के समक्ष रखे गये हो।

वार्षिक प्रविष्ट (Annual intake) अधिकृत संख्या की ५ प्रतिशत निर्धारित कर दी जायेगी और केन्द्र की प्रारम्भिक रचना के २ वर्ष के पश्चात् इस पर पुनर्विचार किया जायेगा। इस वार्षिक प्रविष्टि की, तथा साथ ही साथ, उन न्यूनताओ की भर्ती, जोकि केन्द्र की मूल रचना मे या तो अधिकृत संख्या मे वृद्धि के कारण हुई हो अथवा अन्य किसी कारण से, 'विशिष्ट भर्ती मण्डल' द्वारा ऊपर उल्लिखित रीति से ही की जायेंगी।

(६) **प्रशिक्षण तथा परिवीक्षा** (Training and Probation)—केन्द्र (Pool) मे नियुक्ति के लिए चुने गये व्यक्ति दो वर्षों की अवधि के लिए परिवीक्षा पर रहेगे। यदि उनका सम्बन्ध अखिल भारतीय सेवाओ से है तो इस अवधि के पश्चात् केन्द्र के लिए स्थायी रूप से उनके नामो का अनुमोदन किया जा सकता है। यदि उनका सम्बन्ध केन्द्रीय अथवा राज्य सेवाओ से है तो या तो स्थायी रूप से उनके नामो का अनुमोदन किया जा सकता है अथवा उन्हें स्थायी रूप से केन्द्र मे खपाया जा सकता है। नियन्त्रणकारी सत्ता को यह अधिकार प्राप्त होगा कि वह प्रत्येक मामले मे परिवीक्षा की अवधि (Period of probation) को घटा-बढा सके। नियन्त्रणकारी सत्ता, जब भी आवश्यक समझेगी, सरकारी विभागो मे तथा सरकारी अथवा गैर-सरकारी क्षेत्र मे औद्योगिक एव वाणिज्यिक उद्यमो मे अधिकारियो के प्रशिक्षण की व्यवस्था करेगी।

(१०) **नियुक्ति अथवा तैनाती** (Posting)—नियन्त्रणकारी सत्ता (Controlling authority) अधिकारियों को प्रशिक्षण देने वाले के पश्चात् भाग लेने वाले (Participating) उन उद्यमो मे उनकी तैनाती की व्यवस्था करेगी जहाँ पर कि उनकी सेवाओ का सर्वोत्तम रूप मे उपयोग किया जा सकता हो। इस प्रकार तैनात हो जाने के पश्चात अधिकारी (Officers) उस उद्यम के तात्कालिक नियन्त्रण मे

रहेगे जिसमे कि वे कार्य कर रहे होगे और उसके द्वारा ही उनको वेतन आदि की अदायगी की जायेगी। भाग लेने वाले सभी उद्यम नियन्त्रणकारी सत्ता को ऐसे सभी वर्तमान अथवा भावी रिक्त-स्थानो का विवरण देंगे जिन पर कि सेवा के सदस्य उपयुक्त रीति मे रखे जा सकते हैं। परन्तु उन उद्यमो के लिए यह आवश्यक नही होगा कि वे किसी रिक्त-स्थान (Vacancy) के लिए सेवा के किसी सदस्य को स्वीकार करें ही, और न नियन्त्रणकारी सत्ता ही इस बात के लिए बाध्य होगी कि वह प्रत्येक रिक्त-स्थान के लिए एक केन्द्र-अधिकारी (Pool Officer) की व्यवस्था करे।

केन्द्र के प्रत्येक पदाधिकारी को, चाहे वह किसी भी उद्यम मे कार्य करे, यह अधिकार होगा कि वह इतना वेतन प्राप्त कर सके जोकि केन्द्र मे उसके पदक्रम के वेतन से कम न हो। इस बात का भी आश्वासन रहेगा कि, केवल अपवादभूत परिस्थितियो (Exceptional circumstances) को छोडकर, केन्द्र के पदाधिकारी को किसी भी ऐसे पद पर नही लगाया जायेगा जिसको कि सामान्यत एक निम्न पदक्रम के अधिकारी द्वारा भरा जाना चाहिए था, और अपवादभूत परिस्थितियो मे भी, इस आश्वासन के विरुद्ध कार्यवाही नियन्त्रणकारी सत्ता तथा उद्यम के वित्तीय सलाहकारो की सहमति से ही की जा सकती है। यदि उस उद्यम (Enterprise) के वेतन-ढाँचे मे, जिसमे कि वह कुछ समय के लिए कार्य कर रहा है, उस पद का वेतन, जिस पर कि वह आसीन है, यदि उसके पद-क्रम के वेतन मे अधिक है तो इस बात का निर्णय नियन्त्रणकारी सत्ता करेगी कि उस पदाधिकारी को उन दोनो वेतनो के अन्तर का पूर्ण अथवा कुछ भाग दिये जाने की आज्ञा दी जाए या नही।

(११) **प्रतिनियुक्ति** (Deputation)—केन्द्र के एक पदाधिकारी को अधिक अनुभव प्राप्त करने के उद्देश्य से अथवा अन्य किसी कारण से ऐसे पद पर तैनात किया जा सकता है जोकि सामान्यत केन्द्रीय प्रशासन केन्द्र (Central Administrative Pool) के सदस्य के लिए सुरक्षित होता है। इसी प्रकार, केन्द्रीय प्रशासन केन्द्र के अधिकारियो तथा केन्द्र की सहायक सेवाओ के अधिकारियो को ऐसे पदो (Posts) पर प्रतिनियुक्त करके (On deputation) भेजा जा सकता है, जोकि सामान्यत केन्द्र के सदस्यो के लिए सुरक्षित होते हैं।

(१२) **अवकाश, पेन्शन तथा सेवा की अन्य शर्तें** (Leave, pension and other Conditions of Service)—सेवा की ये शर्तें वही होगी जोकि प्रथम श्रेणी की केन्द्रीय सेवाओ के अधिकारियो पर समय-समय पर लागू होती हैं। जिन व्यक्तियो की भर्ती ४५ वर्ष की आयु के पश्चात् खुले बाजार से की जाती है उनकी नियुक्ति ठेके (Contract) पर की जा सकती है, और इस स्थिति मे, सेवा की शर्तों एव दशाओ में उस ठेके में उल्लिखित मात्रा के अनुसार ही सशोधन कर लिया जायेगा।

निष्कर्ष (Conclusion)

भारत आजकल एक सकट-काल से गुजर रहा है—जिसे परिवर्तनकालीन सकट कहा जा सकता है। भारतीय सिविल-सेवा को लोकतन्त्रीय समाजवादी समाज की नई माँगो के अनुरूप बनना है। १९वी शताब्दी की सिविल-सेवा के प्रयत्न बीसवी शताब्दी की समस्याओ पर लागू नही हो सकते। आज ऐसी सिविल-सेवा की आवश्यकता है जोकि विचारशील हो, बौद्धिक क्षमता से युक्त हो और जनता की माँगो के प्रति उत्तरदायी हो, इसके साथ ही साथ, सिविल सेवा को जनता के राजनैतिक प्रतिनिधियो के नियन्त्रण के अन्तर्गत कार्य करना है। ब्रिटिश शासन के समय नौकरशाही (Bureaucracy) अफसर अपने आपको समाज मे एक पृथक् वर्ग के रूप मे मानते थे। नौकरशाही अफसर सदा ही स्वय को श्रेष्ठ समझते थे और जनता को तिरस्कार की दृष्टि से देखते थे। लोकतन्त्रीय स्वतन्त्र भारत मे, अब सिविल-सेवा का यह रूप केवल असामयिक ही नही है, अपितु खतरनाक भी है। नौकरशाही को जनता के साथ रहकर कार्य करना है। उसे जनता का सहयोग प्राप्त करना है। यदि नौकरशाही को लोकतन्त्रीय समाज की सेवा करनी है तो यह अत्यन्त आवश्यक है कि उसके दृष्टिकोण तथा कार्य के तरीको मे परिवर्तन किया जाए।

जन-साधारण को भी यह बात ध्यान मे रखनी है कि कोई भी प्रशासकीय मशीनरी तब तक सफल नही हो सकती जब तक कि सिविल सेवको का यथेष्ट सम्मान न किया जाये। समाचार-पत्रो मे ससद (Parliament) मे तथा सार्वजनिक मचो पर नौकरशाही की अनुत्तरदायित्वपूर्ण आलोचना तथा अनावश्यक निन्दा करने से सिविल सेवा का मनोबल (Morale) कम हो जायेगा तथा कार्य-क्षमता घट जायेगी, और यदि ऐसा हुआ तो देश के हितो की दृष्टि से यह बडा हानिकारक होगा।

भारत मे शासक दल तथा सिविल-सेवा के बीच अभी ठीक-ठीक सम्बन्धो का विकास होना है। ऐसी अनेक शिकायतें की जाती हैं कि स्थानीय काग्रेसी एम एल ए तथा ससद सदस्य (M Ps) प्रशासन मे आये-दिन अनावश्यक हस्तक्षेप करते हैं। यह आरोप लगाया जाता है कि वे सिविल-सेवको से अनुचित पक्षपात कराना चाहते हैं और यदि सिविल-सेवक उनका कहा नही मानते हैं तो एम० एल० ए० तथा ससद-सदस्य अपने "वड़े भाइयों" (Big Brothers) अर्थात् मन्त्रियो तक पहुँच करते हैं और उसका परिणाम यह होता है कि सिविल-सेवको का स्थानान्तरण (Transfer) कर दिया जाता है अथवा उन्हे परेशान किया जाता है। यदि ये सब आरोप ठीक हैं तो निश्चय ही भारतीय लोकतन्त्र का भविष्य अन्धकारमय है।

———

भाग ३

वित्तीय प्रशासन

(FINANCIAL ADMINISTRATION)

२८

वित्तीय प्रशासन की समस्या
(The Problem of Financial Administration)

वित्त का महत्व
(Importance of Finance)

कोई भी सरकार धन के बिना किसी भी कार्य को सम्पन्न नही कर सकती। वित्त सरकार के जीवन-रक्त (Life-blood) के सदृश होता है। वास्तव मे बात यह है कि वित्त तथा प्रशासन को पृथक् नही किया जा सकता। बिना वित्त के कोई भी सरकार कार्य नही कर सकती, ठीक उसी प्रकार जैसे कि बिना पैट्रोल के मोटरकार नही चल सकती। वित्त प्रशासकीय मशीनरी का इँधन है। बिना धन व्यय किये सरकार की कोई भी क्रिया सम्पन्न नही की जा सकती, उन अधिकारियो अथवा कर्मचारियो को जोकि कार्य करते हैं, वेतन अथवा मजदूरी तो देनी ही पडती है। प्रशासकीय क्रिया की सीमा का निर्धारण उपलब्ध वित्तीय साधनो के द्वारा ही किया जाता है। जितना अधिक वित्त उपलब्ध होता है, उतनी ही अधिक प्रशासकीय क्रियाये सम्पन्न की जाती है। वित्त प्रशासन मे इतने सार्वलौकिक रूप मे व्याप्त हो गया है जिस प्रकार कि वातावरण (Atmosphere) मे आक्सीजन वायु। जब सरकार अपनी योजना के उद्देश्यो एव लक्ष्यो को निर्धारण करती है, उस समय उसके लिये इस योजना की लागत तथा आय के स्रोतो का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक होता है।

एक सगठित राज्य की तुलना उस बडे कारखाने से की जा सकती है जिसमे विभिन्न प्रकार की मशीने अनेक प्रक्रियाओ (Processes) मे कार्यरत रहती है। प्रत्येक कारखाने का अपना एक इजिन-घर होता है जिसमे कि प्रधान चालक, वाष्प अथवा बिजली का इजिन रखा होता है जो अन्य सब मशीनो को शक्ति प्रदान करता है। इसी प्रकार राज्य (State) मे भी एक इजिन-घर (Engine-house) होता है। यह इजिन-घर वित्त-विभाग (Finance Department) या राजकोष (Treasury) होता है, और उसमे मुख्य चालक, वित्तीय इजिन रखा होता है जो सरकार के सब प्रशासकीय यन्त्रो को चालू रखता है, और जिस प्रकार वाष्प-इजिन कोयले को शक्ति (Power) मे बदल देता है उसी प्रकार यह वित्तीय इजिन राजस्व (Revenue) को लोक सेवाओ मे परिवर्तित कर देता है। सरकार की क्रियाओ मे चूंकि दिन-प्रतिदिन वृद्धि हो रही है और सरकार इन क्रियाओ पर भारी धनराशिया व्यय करती है, अतः

वर्तमान समय मे सरकार की अकुशल तथा अपव्ययी वित्तीय कार्यवाहियो को सहन नही किया जा सकता। अत वित्तीय प्रशासन कुशल तथा प्रवीण होना चाहिए और इसे इस प्रकार कार्य करना चाहिये कि जिससे धन का जरा भी अपव्यय न हो।

वित्तीय प्रशासन
(Financial Administration)

'वित्तीय प्रशासन' शब्द का उपयोग व्यापक अर्थ मे किया जाता है। इसमे वे सब प्रक्रियाए सम्मिलित की जाती हैं जोकि निम्न कार्यों को सम्पन्न करने मे उत्पन्न होती हैं "सरकारी धन के सग्रह, बजट-निर्माण, विनियोजन तथा व्यय करने मे, आय तथा व्यय, और प्राप्तियो एव सवितरणो का लेखा-परीक्षण (Audit) करने मे, परिसम्पत्तियो (Assets) तथा देयताओ (Liabilities) और सरकार के वित्तीय सौदो का हिसाब-किताब रखने मे, और आमदनियो व खर्चों, प्राप्तियो व सवितरणो तथा निधियो (Funds) व विनियोजनो (Appropriations) की दशा के सम्बन्ध मे प्रतिवेदन-लेखन (Reporting) मे।"[1]

वित्तीय प्रशासन जनता के आर्थिक एव सामाजिक कल्याण की आधारशिला को स्पर्श (Touch) करता है। सरकार की सभी क्रियाओ का नियन्त्रण इसी से सम्बद्ध होता है।

वित्त के विना सरकार अपने उद्देश्य मे पूर्णत सफल नही हो सकती। प्रशासन के लिए वित्त की इतनी अधिक महत्ता होने के कारण, वित्त के प्रशासन का अध्ययन भी अत्यन्त महत्वपूर्ण हो गया है। जो सरकार वित्तीय प्रशासन की एक सन्तोषजनक व्यवस्था का निर्माण कर लेती है वह अपने कार्यों का प्रवन्ध कुशलता के साथ करने की दिशा मे काफी आगे वढ जाता है। इस प्रकार, "वित्तीय प्रशासन, जोकि ऐसी व्यवस्था तथा रीतियो का निर्माण करता है जिनके द्वारा लोक सेवाओ के सचालन के लिए धन प्राप्त किया जाता है, व्यय किया जाता है और उसका लेखा रखा जाता है, आधुनिक सरकार का हृदय माना जाता है।"[2]

वित्तीय प्रशासन एक सुसचालक एव गतिशील प्रक्रिया (Process) है जोकि निम्नलिखित सक्रियाओ (Operations) की एक सतत शृखला का निर्माण करता है —

(१) आय तथा व्यय की आवश्यकताओ के अनुमान लगाना — अर्थात् "वजट का वनाना।" (Preparation of the budget)।

(२) इन अनुमानों के लिए व्यवस्थापिका (Legislature) की अनुमति प्राप्त

---

1 First chapter of a report made by *Grifienhagen* and Associates in Dec, 1929 to the Missouri State Survey Commission, quoted by *Nigro* p 313

2 Hoover Commission on organisation of the Executive Branch of the Government (task force report), Fiscal, Budgeting and Accounting Activities, Washington Dec 1949

करना— अर्थात् "बजट की विधायी अनुमति" (Legislative approval of the budget)।

(३) आय तथा व्यय की क्रियाओ को कार्यान्वित करना— अर्थात् "बजट को कार्यान्वित करना।" (Execution of the budget)।

(४) वित्तीय व्यवस्थाओ का राजकोषीय प्रवन्ध (Treasury management of the finances)।

(५) इन सक्रियाओ की विधायी उत्तरदायिता (Legislative accountability) अर्थात् समुचित रूप से हिसाव-किताव रखना और उस हिसाव-किताव का परीक्षण कराना।[1]

वित्तीय प्रशासन मे ऊपर बताई गई प्रक्रियायें सम्मिलित है। ये वित्तीय क्रियायें निम्नलिखित अभिकरणो (Agencies) द्वारा सम्पन्न की जाती हैं—

(१) व्यवस्थापिका सभा अथवा विधानमण्डल (The Legislature),
(२) सरकार की कार्यपालिका शाखा,
(३) राजकोष अथवा वित्त विभाग,
(४) लेखा-परीक्षण विभाग (Audit Department)।

वित्तीय-प्रशासन का सचालन तथा नियन्त्रण इन्ही अभिकरणो के द्वारा किया जाता है। अव हम इस वात की विवेचना करेंगे कि वित्तीय प्रशासन के सम्वन्ध मे ये अभिकरण क्या-क्या कार्य सम्पन्न करते हैं?

वित्तीय प्रशासन के अभिकरण
(The Agencies of Financial Administration)

(१) व्यवस्थापिका सभा (The Legislature)

"लोकतन्त्रीय रीति से निर्माण की गई व्यवस्थापिका राजवित्त (Public finance) पर सबसे अधिक महत्वपूर्ण नियन्त्रण लगाती है। सरकार के वित्तीय मामलो के शासन-प्रवन्ध मे एक प्रमुख तथ्य यह है कि व्यवस्थापिका शाखा एक ऐसे भडार के सदृश होती है जिसमे सरकारी धन के प्राप्त करने तथा व्यय करने से सम्वन्वित सम्पूर्ण सत्ता (Authority) केन्द्रित रहती है। यह एक ऐसा निकाय (Body) होता है जोकि इस वात का निश्चय करता है कि कितना धन प्राप्त किया जायेगा और सामान्य शर्तों के अन्तर्गत, कितना व्यय किया जायेगा। प्रधान होने के नाते, यह व्यवस्थापिका का कर्तव्य होता है कि वह यह देखे कि उसके एजेन्ट अपने कार्य सन्तोषजनक रीति से सम्पन्न करते हैं या नही।"[2] **धन प्राप्त करने की तथा धन को व्यय करने की स्वीकृति देने वाली सत्ता के रूप मे, व्यवस्थापिका को यह शक्ति**

[1] Piffner and Presthus *Pbulic Administration*, 1935, pp 262—3, Dimock, *Public Administration*, New York, 1954, p 185, L D White, Introduction to the study of *Public Administration*, New York, 1948 p 247

[2] W F Willoughby, *Principles of Public Administration*, Washington, 1927, p 621

वर्तमान समय मे सरकार की अकुशल तथा अपव्ययी वित्तीय कार्यवाहियो को सहन नहीं किया जा सकता। अत वित्तीय प्रशासन कुशल तथा प्रवीण होना चाहिए और इसे इस प्रकार कार्य करना चाहिये कि जिससे धन का जरा भी अपव्यय न हो।

वित्तीय प्रशासन
(Financial Administration)

'वित्तीय प्रशासन' शब्द का उपयोग व्यापक अर्थ मे किया जाता है। इसमे वे सब प्रक्रियाए सम्मिलित की जाती हैं जोकि निम्न कार्यों को सम्पन्न करने मे उत्पन्न होती हैं "सरकारी धन के सग्रह, बजट-निर्माण, विनियोजन तथा व्यय करने मे, आय तथा व्यय, और प्राप्तियो एव सवितरणो का लेखा-परीक्षण (Audit) करने मे, परिसम्पत्तियो (Assets) तथा देयताओ (Liabilities) और सरकार के वित्तीय सौदो का हिसाब-किताब रखने मे, और आमदनियो व खर्चों, प्राप्तियो व सवितरणो तथा निधियो (Funds) व विनियोजनो (Appropriations) की दशा के सम्बन्ध मे प्रतिवेदन-लेखन (Reporting) मे।"[1]

वित्तीय प्रशासन जनता के आर्थिक एव सामाजिक कल्याण की आधारशिला को स्पर्श (Touch) करता है। सरकार की सभी क्रियाओ का नियन्त्रण इसी से सम्बद्ध होता है।

वित्त के विना सरकार अपने उद्देश्य मे पूर्णत सफल नही हो सकती। प्रशासन के लिए वित्त की इतनी अधिक महत्ता होने के कारण, वित्त के प्रशासन का अध्ययन भी अत्यन्त महत्वपूर्ण हो गया है। जो सरकार वित्तीय प्रशासन की एक सन्तोषजनक व्यवस्था का निर्माण कर लेती है वह अपने कार्यों का प्रवन्ध कुशलता के साथ करने की दिशा मे काफी आगे बढ जाता है। इस प्रकार, "वित्तीय प्रशासन, जोकि ऐसी व्यवस्था तथा रीतियो का निर्माण करता है जिनके द्वारा लोक सेवाओ के सचालन के लिए धन प्राप्त किया जाता है, व्यय किया जाता है और उसका लेखा रखा जाता है, आधुनिक सरकार का हृदय माना जाता है।"[2]

वित्तीय प्रशासन एक सुसचालक एव गतिशील प्रक्रिया (Process) है जोकि निम्नलिखित सक्रियाओ (Operations) की एक सतत शृखला का निर्माण करता है —

(१) आय तथा व्यय की आवश्यकताओ के अनुमान लगाना — अर्थात् "बजट का बनाना।" (Preparation of the budget)।

(२) इन अनुमानो के लिए व्यवस्थापिका (Legislature) की अनुमति प्राप्त

---

1 First chapter of a report made by *Grifienhagen* and Associates in Dec, 1929 to the Missouri State Survey Commission, quoted by *Nigro* p 313

2 Hoover Commission on organisation of the Executive Branch of the Government (task force report), Fiscal, Budgeting and Accounting Activities, Washington Dec 1949

करना— अर्थात् "बजट की विधायी अनुमति" (Legislative approval of the budget)।

(३) आय तथा व्यय की क्रियाओ को कार्यान्वित करना— अर्थात् "बजट को कार्यान्वित करना।" (Execution of the budget)।

(४) वित्तीय व्यवस्थाओ का राजकोषीय प्रवन्ध (Treasury management of the finances)।

(५) इन सक्रियाओ की विधायी उत्तरदायिता (Legislative accountability) अर्थात् समुचित रूप से हिसाव-किताव रखना और उस हिसाव-किताव का परीक्षण कराना।[1]

वित्तीय प्रशासन मे ऊपर वताई गई प्रक्रियाये सम्मिलित है। ये वित्तीय क्रियायें निम्नलिखित अभिकरणो (Agencies) द्वारा सम्पन्न की जाती है—

(१) व्यवस्थापिका सभा अथवा विधानमण्डल (The Legislature),
(२) सरकार की कार्यपालिका शाखा,
(३) राजकोष अथवा वित्त विभाग,
(४) लेखा-परीक्षण विभाग (Audit Department)।

वित्तीय-प्रशासन का सचालन तथा नियन्त्रण इन्ही अभिकरणो के द्वारा किया जाता है। अब हम इस बात की विवेचना करेंगे कि वित्तीय प्रशासन के सम्वन्ध मे ये अभिकरण क्या-क्या कार्य सम्पन्न करते है ?

वित्तीय प्रशासन के अभिकरण
(The Agencies of Financial Administration)

(१) व्यवस्थापिका सभा (The Legislature)

"लोकतन्त्रीय रीति से निर्माण की गई व्यवस्थापिका राजवित्त (Public finance) पर सबसे अधिक महत्वपूर्ण नियन्त्रण लगाती है। सरकार के वित्तीय मामलो के शासन-प्रवन्ध मे एक प्रमुख तथ्य यह है कि व्यवस्थापिका शाखा एक [illegible] भडार के सदृश होती है जिसमे सरकारी धन के प्राप्त करने तथा व्यय करने मे सम्बन्वित सम्पूर्ण सत्ता (Authority) केन्द्रित रहती है। यह एक ऐसा निकाय (Body) होता है जोकि इस वात का निश्चय करता है कि कितना धन प्राप्त किया [illegible] और सामान्य शर्तों के अन्तर्गत, कितना व्यय किया जायेगा। प्रधान होने [illegible] यह व्यवस्थापिका का कर्तव्य होता है कि वह यह देखे कि उसके एजेन्ट अपने [illegible] सन्तोषजनक रीति से सम्पन्न करते हैं या नही।"[2] **धन प्राप्त करने की तथा [illegible] व्यय करने की स्वीकृति देने वाली सत्ता के रूप मे, व्यवस्थापिका को** [illegible]

1 Piffner and Presthus *Pbulic Administration*, 1935, pp 262—[illegible] *Public Administration*, New York, 1954, p 185, L D White, *Intr*[illegible] the study of *Public Administration*, New York, 1948 p 247

2 W F Willoughby, *Principles of Public Administratio*[illegible] 1927, p 621

प्राप्त होती है कि वह किसी भी कर (Tax) को लगा सके, समाप्त कर सके, बढ़ा सके अथवा घटा सके। इसे धन व्यय करने की अनुमति देने की अन्तिम सत्ता प्राप्त होती है। व्यवस्थापिका सभा अथवा विधान-मण्डल की अनुमति के बिना लोकतन्त्रीय सरकार किसी भी कर को न लगा सकती है अथवा न उसका सग्रह कर सकती है और न धन को व्यय ही कर सकती है।

भारत मे, हमने ब्रिटिश पद्धति के ससदीय लोकतन्त्र (British System of Parliamentary Democracy) को अपनाया है। अत वे सामान्य सिद्धान्त जोकि ब्रिटिश ससद की वित्तीय कार्यवाहियो का सचालन करते हैं, भारत पर भी लागू होते हैं। Sir Erskine May ने उन सिद्धान्तो का निम्न शब्दो मे वर्णन किया है "सम्राट को, जोकि अपने उत्तरदायी मन्त्रियो के परामर्श से कार्य करता है और कार्यपालक प्रधान होता है, देश की सम्पूर्ण आय तथा लोक-सेवा के लिए किये जाने वाले सब भुगतानो के प्रवन्ध का उत्तरदायित्व सौंप दिया जाता है। अत सम्राट सर्वप्रथम लोकसभा (House of Commons) को सरकार की आर्थिक आवश्यकताओ से परिचित कराता है और लोक सभा ऐसे अनुदानो तथा सहायताओ की स्वीकृति देती है जो उनकी मागो की पूर्ति के लिए आवश्यक होते हैं, तथा करो के द्वारा और सरकारी आय के अन्य स्रोतो के विनियोजन द्वारा स्वीकृत किये हुए अनुदानो के लिए धन-प्राप्ति के उपायो की व्यवस्था करती है। इस प्रकार, सम्राट धन की माग करता है, लोक-सभा उसकी स्वीकृति देती है और लार्ड सभा (House of Lords) उस स्वीकृति पर अपनी सहमति देती है। परन्तु लोक-सभा उस समय तक धन की स्वीकृति नही देती जब तक कि सम्राट द्वारा उसकी माग न की जाये, और उस समय तक कर नही लगा सकती अथवा उसमे वृद्धि नही कर सकती जब तक कि अपने सवैधानिक परामर्शदाताओ के माध्यम से सम्राट द्वारा यह न घोषित कर दिया जाये कि लोक-सेवा (Public service) के लिए ऐसा कराधान (Taxation) आवश्यक है।"[1]

इसी प्रकार भारत मे कार्यपालिका (Executive) बजट उपस्थित करके व्यवस्थापिका (Legislature) से धन की माग करती है और व्यवस्थापिका अथवा ससद उसको स्वीकार करती है। व्यवस्थापिका कार्यपालिका के नेतृत्व मे कार्य करती है। अनुदानो (Grants) की सभी माँगें और कराधान के सभी प्रस्ताव कार्यपालिका की ओर से रखे जाते हैं और व्यवस्थापिका इन प्रस्तावो एव मागो पर अपनी स्वीकृति प्रदान करती है।

(२) कार्यपालिका (The Executive)

वित्तीय प्रशासन तथा नियन्त्रण से सम्बन्धित दूसरा अभिकरण कार्यपालिका है। वित्त से सम्बन्धित नीति के मामलो का नियन्त्रण सम्पूर्ण रूप से कार्यपालिका

1 Sir Thomas Erskine May, *A Treatise on the Law,* Privileges, Proceedings and Usage of Parliament, 13th Ed., p 493

मे ही निहित होता है। कार्यपालिका अथवा सरकार ही व्यय की नीति (Policy of expenditure) का निर्धारण करती है। सरकारी अधिकारियो के वेतन, पेन्शन तथा भविष्य निधि (Provident Fund) आदि से सम्बन्धित सभी प्रश्नो का निश्चय सरकार द्वारा ही किया जाता है। कार्यपालिका वित्त से सम्बन्ध रखने वाले नीति-निर्माण के कार्यों को सम्पन्न करती है।

(३) राजकोष अथवा वित्त विभाग
(The Treasury or Finance Department)

राजकोष अथवा वित्त विभाग सदा ही देश के सम्पूर्ण वित्तीय प्रशासन के लिए उत्तरदायी होता है। यह विभाग देश की वित्तीय व्यवस्थाओ से सम्बन्धित अनेक प्रकार के कार्य सम्पन्न करता है। यह धन के व्यय पर नियन्त्रण लगाता है। यह सरकार के विभिन्न धन व्यय करने वाले विभागो पर नियन्त्रण रखता है और उनमे परस्पर समन्वय स्थापित करता है। करो के सग्रह के लिये भी यह विभाग ही उत्तरदायी होता है। इस विभाग का यह कर्त्तव्य है कि यह आय तथा व्यय के अनुमानो अर्थात् सरकार के वार्षिक बजट को तैयार करे। इसका मुख्य कार्य देश के वित्तीय कार्यों का समुचित प्रवन्ध करना है। यह सरकार के व्यय का महत्वपूर्ण नियन्त्रण तथा पर्यवेक्षण करता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि प्रशासन के सभी विभागो मे सर्वप्रथम तथा सर्वप्रमुख विभाग 'वित्त विभाग' ही है जिसे कि इगलैण्ड मे 'राजकोष' कहा जाता है।

(४) लेखा-परीक्षण (Audit) :

लेखा-परीक्षण विभाग (Audit Department) वित्तीय नियन्त्रण का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण अभिकरण है। सरकारी व्यय को एक स्वतन्त्र लेखा-परीक्षण के अधीन करके एक सत्यनिष्ठ तथा सुदृढ वित्त-व्यवस्था के विषय मे आश्वस्त हुआ जा सकता है। 'सभी वित्तीय सौदो की सत्यता, वैधता एव कुशलता की जाच करने तथा उसके सम्बन्ध मे प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के कार्य को ही लेखा-परीक्षण कहा जाता है।' सरकारी द्रव्य का लेखा-परीक्षण, व्यवस्थापिका के उत्तरदायित्व पर, एक स्वतन्त्र पदाधिकारी द्वारा किया जाता है। जब व्यवस्थापिका धन के व्यय की स्वीकृति देती है तो उसको यह भी देखना चाहिए कि वह धन मितव्ययता व ईमानदारी के साथ और वैधानिक रूप मे व्यय किया जा रहा है या नही। ससद (Parliament) को यह देखना होता है कि सरकारी अधिकारी अपने निजी लाभ के लिये कही धन का दुरुपयोग या गबन तो नही कर रहे है। ससद अपने ही एक पदाधिकारी के द्वारा सरकारी धन का लेखा-परीक्षण कराती है जिसे भारत मे नियन्त्रक व महालेखा-परीक्षक (Comptroller and Auditor-General) कहा जाता है।

(५) ससदीय समितियाँ
(Parliamentary Committees)

अन्त मे, व्यवस्थापिका अथवा समद की दो समितिया, जिन्हे कि सामान्यतया

अनुमान समिति (Estimates committee) तथा सार्वजनिक लेखा समिति (Public accounts committee) कहा जाता है, व्यवस्थापिका के उत्तरदायित्व पर वित्तीय नियन्त्रण लागू करती हैं। अनुमान समिति सरकार के विभिन्न विभागो के व्यय मे मितव्ययता (Economy) लाने के सुझाव देती है और सार्वजनिक लेखा समिति नियन्त्रक व महालेखा-परीक्षक के लेखा-परीक्षण के प्रतिवेदन को दृष्टिगत रखते हुये विनियोजन लेखो (Appropriation accounts) की जाच करती है और उनमे पाई जाने वाली वित्तीय अनियमितताओ की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित करती है तथा भविष्य मे उनकी रोकथाम करने के सुझाव देती है।

ऊपर उल्लेख किये गये अभिकरण सरकार के अन्तर्गत वित्तीय नियन्त्रण तथा प्रशासन का कार्य करते हैं। इस वित्तीय नियन्त्रण का उद्देश्य व्यय मे ईमानदारी तथा मितव्ययता लाना है। सरकारी धन कर-दाताओ (Tax-payers) द्वारा दिया जाता है। इन अभिकरणो को यह देखना होता है कि कर-दाता के धन का ठीक प्रकार तथा समुचित रीति से उपयोग किया जा रहा है या नही। सरकारी धन तो एक धरोहर अथवा न्याय (Trust) के सदृश होता है अत वित्तीय प्रशासन को यह देखना चाहिए कि उस धरोहर को नष्ट न किया जाय। वित्तीय प्रशासन को यह भी देखना चाहिए कि जिस कार्य के लिए एक पैनी (Penny) पर्याप्त हो, उस पर एक पौंड न खर्च किया जाय, और यह कि वह पैनी भी किसी व्यक्ति के वैयक्तिक लाभ के लिए नही, अपितु सम्पूर्ण समाज के लाभ के लिए खर्च की जाय। इस प्रकार कुशल वित्तीय प्रशासन प्रत्येक देश के लिए आवश्यक होता है।[1]

समस्या का साराश
(Summary of the Problem)

व्यवस्थापिका को विधि (Law) के द्वारा सरकारी आय के स्रोतो का निर्धारण करना होता है। कार्य-पालिका को उस आय के सग्रह के लिए कार्य-विधि (Procedure) का निर्माण तथा मशीनरी की व्यवस्था करनी होती है। इन आमदनियो के समुचित अभिलेख (Records) अथवा लेखे (Accounts) रखने होते हैं जिससे कि एक स्वतन्त्र अधिकारी द्वारा इन लेखो का परीक्षण किया जा सके। स्वतन्त्र अधिकारी को अपने लेखा-परीक्षण का प्रतिवेदन व्यवस्थापिका के सम्मुख प्रस्तुत करना होता है।

वित्त के प्रशासन मे, व्यवस्थापिका केन्द्रीय भाग अदा करती है। वित्तीय प्रशासन के अन्य सभी अभिकरण व्यवस्थापिका के उत्तरदायित्व पर ही कार्य करते

1 "Thus whether or not an executive is figure-minded, he can hardly ignore the pervasive character of financial administration in general administration for it arises at every stage of the process, permeates every aspect of it, and is essential to the performance of every duty"
—Dimock, *Public Administration*, p 185

हैं और अपने कार्यों के लिए व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी होते हैं। देश के वित्त तथा वित्तीय प्रशासन पर व्यवस्थापिका का नियन्त्रण प्रत्यक्ष तथा व्यापक होता है। देश के सुदृढ वित्तीय प्रशासन का उत्तरदायित्व व्यवस्थापिका पर ही रहता है। व्यवस्थापिका ही उन शर्तों का निर्धारण करती है जिनके अनुसार धन व्यय किया जा सकता है और यही अन्तिम रूप मे इस बात की जाच करती है कि कार्यपालिका ने उन शर्तों को पूरा किया या नही।

व्यवस्थापिका
(Legislature)
(धन प्राप्त करने वाली तथा व्यय की स्वीकृति देने वाली सत्ता)
कार्यपालिका (वित्तीय नीति पर नियन्त्रण रखती है)
महालेखा-परीक्षक (धन व्यय होने के पश्चात् लेखो का परीक्षण करता है)
अनुमान समिति (व्यय मे मितव्ययता लाने के सुझाव देती है)
सार्वजनिक-लेखा समिति (विनियोजन लेखो की जाच करती है और वित्तीय अनियमितताओ के सम्बन्ध मे व्यवस्थापिका के समक्ष प्रतिवेदन प्रस्तुत करती है)
राजकोष अथवा वित्त विभाग
बजट तैयार करना
सरकार के वित्तीय कार्यों का प्रबन्ध करना
व्यय पर नियन्त्रण रखना

२७
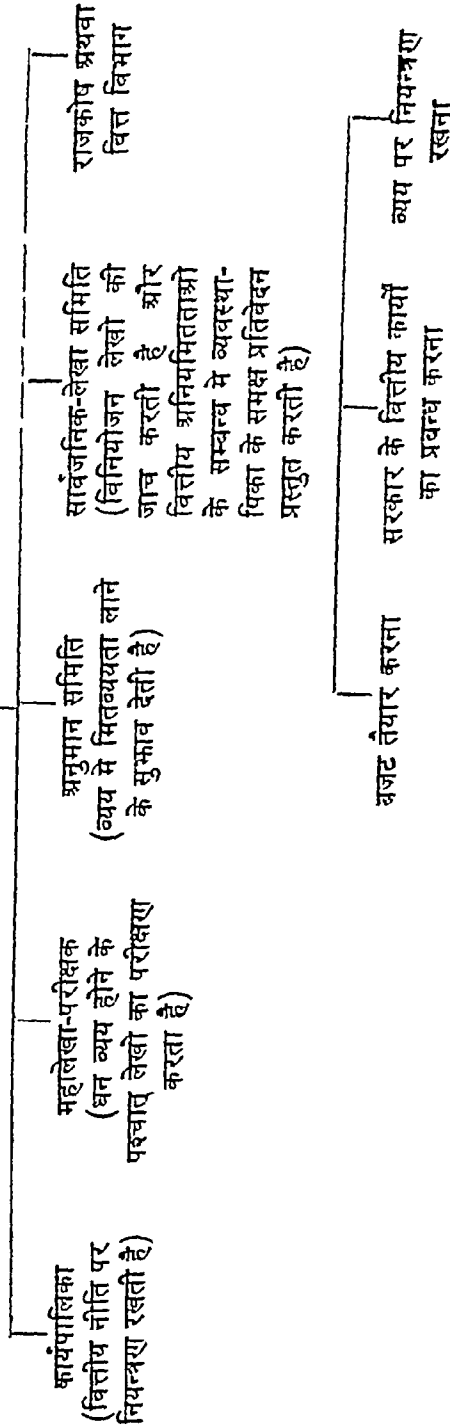
आय-व्ययक अथवा बजट
(The Budget)

"बजट" शब्द फ्रांसीसी भाषा के शब्द "बूजट" (Bougette) से लिया गया है जिसका अर्थ है चमड़े का बैग या थैला। आधुनिक अर्थ मे इस शब्द का प्रयोग सब से पहले इगलैंड मे सन् १७३३ ई० मे किया गया जब कि वित्त-मन्त्री ने अपनी वित्तीय योजना को लोक सभा के सम्मुख प्रस्तुत किया तो पहली बार व्यग के रूप मे यह कहा गया कि वित्त-मन्त्री ने अपना "बजट खोला।" तभी से सरकार की वार्षिक आय तथा व्यय के वित्तीय विवरण (Financial statement) के लिए इस शब्द का प्रयोग होने लगा।

बजट की परिभाषा
(Definition of Budget)

कुछ लेखको ने बजट की परिभाषा अनुमानित आमदनियो तथा खर्चों के केवल एक विवरण के रूप मे की है। अन्य लेखको ने बजट शब्द को राजस्व तथा विनियोजन अधिनियमो (Revenue and Appropriation Acts) का पर्यायवाची कहा है। Leroy Beaulieu ने लिखा है कि "बजट एक निश्चित अवधि के अन्तर्गत होने वाली अनुमानित प्राप्तियो तथा खर्चों का एक विवरण है, यह एक तुलनात्मक तालिका है जिसमे उगाही जाने वाली आमदनियो तथा किये जाने वाले खर्चों की धनराशिया दी हुई होती हैं, इसके भी अतिरिक्त, यह आय का सग्रह करने तथा खर्च करने के लिए उपयुक्त प्राधिकारियो द्वारा दिया गया एक आदेश अथवा अधिकार है।" Rene Stourm ने बजट की परिभाषा इस प्रकार की है कि "यह एक लेख-पत्र है जिसमे सरकारी आय तथा व्यय की एक प्रारम्भिक अनुमोदित योजना दी हुई होती है।" जब कि G Jeze ने बजट का वर्णन इस प्रकार किया है कि "यह सम्पूर्ण सरकारी प्राप्तियो (Receipts) तथा खर्चों का एक पूर्वानुमान (Forecast) तथा अनुमान (Estimate) है, और कुछ प्राप्तियो का सग्रह करने तथा कुछ खर्चों को करने का एक आदेश है।"[1]

उपरोक्त परिभाषायें कम से कम दो प्रकार से दोष-पूर्ण है। सर्वप्रथम, इनमे यह नही कहा गया है कि बजट मे विगत सक्रियाओ (Operations), वर्तमान

1 Quoted by W F Willoughby, *Principles of Public Administration*, pp 436-37

दशाओ तथा साथ ही साथ, भविष्य के प्रस्तावो से सम्बन्धित तथ्यो का उल्लेख होना चाहिए। दूसरे, इन परिभाषाओ मे बजट तथा 'राजस्व व विनियोजन अधिनियमो' के बीच कोई भेद नही किया गया है। इन दोनो मे भेद किया ही जाना चाहिए। बजट तो प्रशासन के कार्य का प्रतिनिधित्व करता है और राजस्व व विनियोजन अधिनियम व्यवस्थापिका अथवा विधान मण्डल के कार्यों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

बजट मे एकीकृत तथा व्यापक रूप मे, उन सभी तथ्यो का समावेश किया जाना चाहिए जो कि सरकार के विगत तथा भावी व्यय और राजकोष (Treasury) की आय तथा वित्तीय स्थिति से सम्बन्ध रखते हो। डब्लू० एफ० विलोबी के अनुसार, "बजट सरकार की आमदनियो तथा खर्चों का केवल अनुमान मात्र ही नही है, बल्कि इससे कुछ अधिक है। यह (बजट) एक ही साथ रिपोर्ट, अनुमान तथा प्रस्ताव है अथवा उसे ऐसा होना चाहिए। यह एक ऐसा लेखपत्र (Document) है, अथवा होना चाहिए जिसके द्वारा मुख्य कार्यपालिका धन प्राप्त करने वाली तथा व्यय की स्वीकृति देने वाली सत्ता के समक्ष इस बात का प्रतिवेदन करती है कि उसने और उसके अधीनस्थ कर्मचारियो ने गत वर्ष प्रशासन का सचालन किस प्रकार किया; लोक-कोषागार की वर्तमान स्थिति क्या है, और इन सूचनाओं के आधार पर वह आगामी वर्ष के लिए अपने कार्यक्रम की घोषणा करती है और यह बतलाती है कि उस कार्यक्रम के निष्पादन के लिए धन की व्यवस्था किस प्रकार की जायेगी।"[1]

बजट क्या है? एक प्राधिकारी के अनुसार, "बजट-निर्माण साधारणतया उस प्रक्रिया की ओर सकेत करता है जिसके द्वारा कि एक सरकारी अभिकरण की वित्तीय नीति का निर्माण किया जाता है, विधानीकरण (Enactment) किया जाता है और उसको कार्यान्वित किया जाता है।"[2] इस प्रकार, बजट-वित्तीय कार्यों की एक योजना है। एक अन्य विद्वान ने बजट पद्धति का वर्णन इस प्रकार किया है कि "बजट पद्धति एक ऐसी व्यवस्थित रीति है जिसके द्वारा भूत (Past) तथा वर्तमान से सूचनाए एकत्र की जाती है, उनके आधार पर भविष्य के लिए वित्तीय योजनाओ

---

1 "The Budget thus, is something much more than a mere estimate of revenues and expenditures It is, or should be, at once a report, on estimate, and a proposal It is, or should be, the document through which the chief executive comes before the fund-raising and fund-granting authority and makes full report regarding the manner in which he and his subordinates have administered affairs during the last completed year, in which he exhibits the present condition of the public treasury, and, on basis of such information, sets forth his programme of work for the year to come and the manner in which he proposes that such work should be financed" Willoughby, *op cit*, p 436

2 Report on Financial Administration in the Michigan State Government (Chicago Public Administration Service 1938) p 67 (This report was prepared by Joseph Pois)

का निर्माण किया जाता है और तदनन्तर यह प्रतिवेदन दिया जाता है कि वे योजनायें किस प्रकार क्रियान्वित की गईं।"[1]

प्रस्तावित वजट का स्वरूप
(Form of the proposed Budget)

प्रथम भाग (Part I)

(१) वजट मे उन सभी विभागो तथा अभिकरणो के प्रशासन, सचालन, तथा परिपालन के लिए किये जाने वाले सभी प्रस्तावित खर्चों का समावेश किया जाना चाहिए जिनके लिए कि व्यवस्थापिका या विधान-मण्डल (Legislature) द्वारा विनियोजन (Appropriations) किये जाने हो।

(२) पूंजीगत प्रायोजनाओ (Capital projects) पर किये जाने वाले सभी खर्चों के अनुमान सम्मिलित किये जाने चाहिए।

द्वितीय भाग (Part II).

आय के स्रोत (Sources of income)—कराधान (Taxation), उधार (Borrowing), घाटे की वित्त-व्यवस्था (Deficit financing) के द्वारा व कागजी मुद्रा जारी करके।

वजट के आर्थिक तथा सामाजिक परिणाम
(Economic and Social Implications of Budget)

आधुनिक वजट राष्ट्र के आर्थिक तथा सामाजिक जीवन मे अत्यन्त महत्वपूर्ण भाग अदा करता है। प्रारम्भिक काल मे, चूंकि वजट सरकार की अनुमानित प्राप्तियो एव खर्चों का एक विवरणमात्र था, अत इसके केवल दो उद्देश्य थे। प्रथम सरकार को यह निश्चित करना होता था कि कार्य-कुशलता के एक उपयुक्त स्तर पर अपनी आवश्यक क्रियाओ का सचालन करने के लिये उसे जो थोडे से धन की आवश्यकता है उस धन को वह किस प्रकार कर-दाताओ की जेब से निकाले। दूसरे, विधान-मण्डल को धन के बारे मे स्वीकृति देनी होती थी, अत सरकार यह जानना चाहती थी कि धन किस प्रकार व्यय किया जाये। इस प्रकार, अबन्ध नीति (Laissez-faire) के दिनो मे वजट आय तथा व्यय का केवल एक वितरण मात्र था। आधुनिक राष्ट्र और विशेषकर एक कल्याणकारी राज्य का एक विशिष्ट लक्षण सरकार की क्रियाओ की मात्रा तथा विविधता मे वृद्धि होना है। सरकार की क्रियाओ मे तेजी से वृद्धि हो रही है और सामाजिक जीवन के लगभग सभी पहलुओ मे उनका विस्तार हो रहा है। सरकार अब एक ऐसे अभिकरण के सदृश है जिसका कार्य ठोस एव निश्चयात्मक क्रियाओ द्वारा नागरिको के सामान्य कल्याण मे वृद्धि करना है। सरकार द्वारा वजट बनाने का कार्य उन बडी प्रक्रियाओ मे से एक है जिनके द्वारा सार्वजनिक साधनो के उपयोग की योजना बनाई जाती है और उनका नियन्त्रण किया जाता है। अत वजट

---

1 The Budget as an Aid to Management New York Policy Holder Service Bureau p 1.

सरकार की नीति का एक महत्वपूर्ण वक्तव्य तथा सरकार के उन कार्यक्रमो के स्पष्टीकरण का एक प्रमुख अस्त्र बन गया है जोकि राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था (National economy) के सरकारी तथा गैर-सरकारी, दोनो ही क्षेत्रो मे फैले होते हैं। बजट विकास तथा उत्पादन (Production) को, आय की मात्रा तथा वितरण को और मानवीय शक्ति एव सामग्री की उपलब्धता को प्रभावित करता है। कल्याणकारी राज्य (Welfare State) की अर्थ-व्यवस्था मे बजट एक महत्वपूर्ण योग देता है। अत प्रत्येक नागरिक इस बात का इच्छुक होता है कि वह बजट से सरकार की विभिन्न क्रियाओ एव कार्यक्रमो की प्रकृति तथा लागत मे सम्बन्धित बातें ज्ञात करे। बजट से नागरिक यह जान सकते है कि सरकार की अनेक योजनाओ तथा कार्य-क्रमो से उन्हे क्या-क्या लाभ प्राप्त होने जा रहे है और उन्हे कितना-कितना कर अदा करना पडेगा। बजट के द्वारा नागरिको की विभिन्न रुचियो (Interests), उद्देश्यो, इच्छाओ तथा आवश्यकताओ का एक कार्य-क्रम के रूप मे एकत्रीकरण किया जाता है जिससे कि नागरिक सुरक्षा, सुख व सुविधा के साथ अपना जीवन व्यतीत कर सकें। बजट मे उल्लिखित सरकार की कराधान नीति (Taxation policy) के द्वारा, यह हो सकता है कि वर्गीय विभिन्नताओ तथा असमानताओ को कम करने का प्रयत्न किया जाये। बजट मे दी हुई सरकार की उत्पादन नीति का उद्देश्य निर्धनता, बेरोजगारी तथा धन के असमान वितरण को दूर करना हो सकता है। इस प्रकार, राष्ट्र के सामाजिक तथा आर्थिक जीवन पर बजट का अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रभाव पडता है।

बजट के महत्वपूर्ण सिद्धान्त
(Important Principles of the Budget)

बजट की परिभाषा और नागरिको के सामाजिक जीवन मे उनके महत्व का विवेचन करने के पश्चात् यह आवश्यक है कि बजट के महत्वपूर्ण सिद्धान्तो का ज्ञान प्राप्त किया जाये। बजट के महत्वपूर्ण सिद्धान्त हैं प्रचार, स्पष्टता, व्यापकता, एकता, नियतकालीनता, परिशुद्धता और सत्यशीलता।[1]

अब हम बजट के इन महत्वपूर्ण सिद्धान्तो की क्रमश विवेचना करते हैं—

(१) **प्रचार** (Publicity)—सरकार के बजट को अनेक चरणो (Stages) मे से गुजरना होता है, उदाहरण के लिये, कार्यपालिका द्वारा व्यवस्थापिका के समक्ष बजट की सिफारिश, व्यवस्थापिका द्वारा उस पर विचार, तथा बजट का प्रशासन व

1 (1) *Public Administratian*, Dimock, Dimock, 1954, p 195-96
(2) *Public Administration* in a Democratic Society, Graves, 1950, p 309
(3) Ideas and issues in *Public Admimstration*, Ed Waldo 1953, p 309-10
(4) *Public Administration*, Review Vol IV Summer 1944 Harold D Smith, Director of the Budget, p 181-88

क्रियान्वय। इन विभिन्न चरणो के द्वारा बजट को सार्वजनिक बना देना चाहिए। बजट पर विचार करने के लिये व्यवस्थापिका (Legislature) के गुप्त अधिवेशन नही होने चाहियें। बजट का प्रचार होना अत्यन्त आवश्यक है जिससे कि देश की जनता तथा समाचार-पत्र विभिन्न करो अथवा व्यय की विभिन्न योजनाओ के सम्बन्ध मे अपने विचार प्रकट कर सकें।

(२) **स्पष्टता** (Clarity)—बजट का ढाँचा इस प्रकार तैयार किया जाना चाहिए कि वह सरलता व सुगमता से समझ मे आ जाए।

(३) **व्यापकता** (Comprehensiveness)—सरकार के सम्पूर्ण राजकोषीय (Fiscal) कार्यक्रम का साराश बजट मे आ जाना चाहिये। बजट द्वारा सरकार की आमदनियो एव खर्चों का पूर्ण चित्र प्रस्तुत किया जाना चाहिये। इसमे यह बात स्पष्ट की जानी चाहिये कि सरकार द्वारा क्या कोई नया ऋण अथवा उधार लिया जाना है। सरकार की प्राप्तियो तथा विनियोजनाओ का ब्यौरेवार स्पष्टीकरण होना चाहिये। बजट ऐसा होना चाहिये जिसके द्वारा कोई भी व्यक्ति सरकार की सम्पूर्ण आर्थिक स्थिति का ज्ञान प्राप्त कर सके।

(४) **एकता** (Unity)—सम्पूर्ण खर्चों की वित्तीय व्यवस्था के लिये सरकार की सभी प्राप्तियो (Receipts) का एक सामान्य निधि (Fund) मे एकत्रीकरण कर लिया जाना चाहिये।

(५) **नियतकालीनता** (Periodicity)—सरकार को विनियोजन तथा खर्च करने का प्राधिकार एक निश्चित अवधि के लिये ही दिया जाना चाहिये। यदि उस अवधि मे धन का उपयोग न किया जाये तो या तो वह प्राधिकार समाप्त हो जाना चाहिये अथवा उसका पुनर्विनियोजन (Re-appropriation) होना चाहिए। सामान्यत बजट अनुदान वार्षिक आधार पर दिये जाते हैं। व्यवस्थापिका को, उस अवधि कि सम्पूर्ण आवश्यकताओ को, जिसमे कि व्यय किये जाने है, दृष्टिगत रख कर उस अवधि से पूर्व ही बजट पारित करना चाहिये। उदाहरण के लिये, यदि वित्तीय वर्ष १ अप्रैल से आरम्भ होता है तो सुविधाजनक यह होगा कि व्यवस्थापिका अथवा विधानमण्डल १ अप्रैल से पूर्व ही खर्चों की अनुमति दे दे।

(६) **परिशुद्धता** (Accuracy)—किसी भी सुदृढ वित्तीय व्यवस्था के लिये बजट अनुमानो की परिशुद्धता तथा विश्वस्तता अत्यन्त आवश्यक है। वे सूचनाए, जिन पर कि बजट अनुमान आधारित हो, यथेष्ट रूप मे ठीक, ब्यौरेवार तथा मूल्याकन करने की दृष्टि से उपयुक्त होनी चाहियें। जानबूझ कर राजस्व का कम-अनुमान लगाने अथवा तथ्यो को छिपाने की बात नही होनी चाहिये।

(७) **सत्यशीलता** (Integrity)—इसका अर्थ है कि राजकोषीय कार्यक्रमो का क्रियान्वय ठीक उसी प्रकार होना चाहिये जिस प्रकार कि बजट मे उसकी व्यवस्था की गई हो। यदि बजट को उस प्रकार क्रियान्वित नही किया जाता है जिस प्रकार कि उसका विधानीकरण किया गया था, और यदि योजनाओ को उस प्रकार लागू

नही किया जाता है जिस प्रकार कि बजट मे उनकी व्यवस्था की गई थी, तो फिर बजट बनाने का कोई अर्थ ही नही रह जाता। अत: सत्यनिष्ठा के साथ बजट का क्रियान्वय करना एक ऐसा महत्वपूर्ण सिद्धान्त है जिसका पालन किया जाना चाहिये।

इस प्रकार स्पष्ट है कि यदि बजट के द्वारा उन उद्देश्यो को प्राप्त करना है जिनके लिये कि उसका निर्माण किया गया था, अर्थात् सत्यनिष्ठ एव कुशल वित्तीय प्रशासन की स्थापना, तो ऊपर उल्लेख किये गये सिद्धान्तो का पालन होना ही चाहिए।

बजट के विभिन्न प्रकार (Various Types of Budget)

सामान्यत तीन प्रकार के बजटो का उल्लेख किया जाता है, अर्थात् (१) व्यवस्थापिका प्रणाली का बजट, (२) कार्यपालिका प्रणाली का बजट और (३) मण्डल अथवा आयोग प्रणाली का बजट। अब हम प्रत्येक प्रकार के बजट की मुख्य विशेषताओ का अध्ययन करते हैं।

(१) व्यवस्थापिका प्रणाली का बजट (Legislative-type Budget) — जब कार्यपालिका (Executive) की प्रार्थना पर, व्यवस्थापिका की एक कमेटी द्वारा बजट तैयार किया जाता है तो वह व्यवस्थापिका प्रणाली का बजट कहलाता है। इस प्रकार के बजट से कार्यपालिका के बजाए व्यवस्थापिका का महत्व बढ जाता है। व्यवस्थापिका बजट तैयार करती है और उस पर अपनी स्वीकृति देती है। परन्तु यह बात बडी सन्देहास्पद है कि व्यवस्थापिका बजट तैयार करने मे पर्याप्त समर्थ भी होती है या नही क्योकि केवल कार्यपालिका ही विभिन्न विभागो की आवश्यकताओ की जानकारी अच्छी तरह प्राप्त कर सकती है।

(२) कार्यपालिका प्रणाली का बजट (Executive-type Budget)—इस प्रणाली मे बजट कार्यपालिका द्वारा तैयार किया जाता है और जब वह बजट व्यवस्थापिका द्वारा अनुमोदित कर दिया जाता है तब उसको कार्यान्वित करने का उत्तरदायित्व भी कार्यपालिका का ही होता है। बजट के निर्माण तथा कार्यान्वय का यह सामान्य रूप से स्वीकृत सिद्धान्त है।

(३) मण्डल अथवा आयोग प्रणाली का बजट (Board or Commission-type Budget)—इस प्रणाली मे, बजट का निर्माण एक मण्डल अथवा आयोग द्वारा किया जाता है जिसमे या तो पूर्णतया प्रशासकीय अधिकारी होते हैं अथवा प्रशासकीय और विधायी अधिकारी (Legislative officers) सयुक्त रूप से होते है। यह प्रणाली अमेरिका के कुछ राज्यो मे तथा कुछ म्युनिसिपल सरकारो मे प्रचलित हैं। इस व्यवस्था का उद्देश्य या तो यह हो सकता है कि बजट के निर्माण के कार्य मे मुख्य कार्यपालिका के साथ कुछ अधिक महत्वपूर्ण स्वतन्त्र प्रशासकीय अधिकारियो को लगा दिया जाए अथवा यह कि इस प्रकार निर्माण किये हुए मण्डल के द्वारा मुख्य

कार्यपालिका की घेराबन्दी सी कर दी जाए जिससे वित्तीय नियोजन पर उसका (कार्यपालिका का) प्रभाव सीमित किया जा सके ।

वर्तमान समय मे कार्यपालिका प्रणाली का बजट ही अधिक प्रचलित है। यह समझना ठीक ही है कि विभिन्न व्यय कारक अभिकरणो की आवश्यकताओ की जाँच कार्यपालिका ही अच्छी प्रकार कर सकती है, अत इसे ही आय तथा व्यय के अनुमान (Estimates) तैयार करने चाहिए और अपनी वित्तीय योजना व्यवस्थापिका के समक्ष रखनी चाहिए। कार्यपालिका प्रणाली का बजट विशेषज्ञो (Experts) द्वारा तैयार किया जाता है और ससार के लगभग सभी देशो मे बजट तैयार करने मे मुख्य कार्यपालिका की सहायता करने के लिए किसी न किसी विशिष्ट अभिकरण की व्यवस्था की जाती है। सयुक्त राज्य अमेरिका मे बजट विभाग (Bureau of Budget), ब्रिटेन मे राजकोष (Treasury) और भारत मे वित्त-विभाग (Finance Department) वे विशिष्ट अभिकरण हैं जोकि कार्यपालिका के उत्तरदायित्व पर बजट तैयार करते है।

बजट तथा बजट-पद्धति
(Budget and A Budget System)

विभिन्न प्रकार के बजटो का विवेचन करने के पश्चात् अब हम इस बात पर विचार करते है कि बजट तथा एक बजट-पद्धति मे क्या अन्तर है ? बजट तो एक प्रलेख अथवा लेखपत्र (Document) होता है, किन्तु बजट-पद्धति एक ऐसी प्रणाली होती है जिसके द्वारा बजट का उपयोग वित्तीय प्रशासन के केन्द्रीय अस्त्र के रूप मे किया जाता है। बजट-पद्धति के तीन चरण होते हैं —

(१) बजट के निर्माण के लिए सत्ता का निर्धारण और बजट का निर्माण।

(२) बजट पर विधायी कार्यवाही।

(३) बजट का कार्यान्वय अर्थात् राजस्व व विनियोजन अधिनियमो (Revenue and Appropriation Acts) के उपबन्धो को क्रियान्वित करना।

बजट-पद्धति के आवश्यक तत्व
(Essentials of the Budget System)

बजट-पद्धति के विभिन्न चरणो का विवेचन करने से पूर्व, इसके आवश्यक तत्वो का अध्ययन करना लाभप्रद होगा। बजट किसी न किसी को तैयार करना होता है और उसे व्यवस्थापिका के सन्मुख प्रस्तुत करना होता है। यह उत्तरदायित्व मुख्य कार्यपालिका पर आता है जोकि एक विशेषज्ञ अभिकरण, जैसे कि बजट-विभाग अथवा राजकोष, की सहायता से बजट तैयार करती है और उसे व्यवस्थापिका के समक्ष रखती है। बजट शुद्ध तथा पूर्ण रूप से तैयार किया जाना चाहिए और इसमे सभी तथ्यो का ब्यौरेवार उल्लेख होना चाहिए। बजट ऐसा होना चाहिए कि जो सरकार की वित्तीय स्थिति का एक पूर्ण चित्र प्रस्तुत करे और इसके ढांचे की रचना

इस प्रकार की जानी चाहिए कि जिससे नागरिक तथा कर-दाता वजट की प्रत्येक वात को स्पष्ट रूप से समझ सके। व्यवस्थापिका द्वारा वजट पर वाद-विवाद तथा विचार के लिए जो कार्यविधि अपनाई जाए उसे गुप्त नही रखना चाहिए। जब बजट व्यवस्थापिका द्वारा पारित हो जाए उसके पश्चात् उसको समुचित रूप से क्रियान्वित करना चाहिए। एक बार जो बजट स्वीकार कर लिया जाये फिर पूरी निर्धारित अवधि तक उसका दृढता से पालन किया जाना चाहिए, जब तक कि कुछ ऐसी असाधारण परिस्थितियाँ ही उत्पन्न न हो जाए जिनके कारण बजट मे परिवर्तन करना अनिवार्य हो जाए और यदि ऐसा नही किया गया, तव तो वजट वनाने का कोई अर्थ ही नही होगा और वजट की योजना एक उपहासमात्र बन जायेगी।[1]

बजट सम्बन्धी कार्यविधियाँ और समस्याये
(Budgetary Procedures and Problems)

बजट पद्धति के आवश्यक तत्वो का विवेचन करने के पश्चात् अब हम बजट पद्धति के विभिन्न चरणो अथवा सतहो का अध्ययन करते हैं जिनमे से कि वजट को गुजरना होता है।

(१) अनुमान तैयार करना
(Preparation of Estimates)

सर्वप्रथम मुख्य कार्यपालिका अपनी वित्तीय नीति निर्धारित करती है जिसके आधार पर अनुमान तैयार किये जाते हैं। बजट की तैयारी का कार्य निम्नतम सतह से प्रारम्भ होता है। मुख्य कार्यपालिका से प्राप्त अनुदेशो (Instructions) के आधार पर अनेक प्रशासकीय अभिकरण अपने-अपने अनुमान तैयार करते है। तब सम्भाग प्रमुखो (Division Chiefs), विभागीय अध्यक्षो (Departmental heads) और बाद मे, राजकोष अथवा वित्त-विभाग के अधिकारियो द्वारा इन अनुमानो की जाँच तथा सूक्ष्म परीक्षण किया जाता है। अनेक बैठको तथा वाद-विवादो के पश्चात् प्रस्तावित व्यय को एक लेख-पत्र (document) के रूप मे एकीकृत कर लिया जाता है जिस पर कि वित्त विभाग तथा मुख्य कार्यपालिका द्वारा पुन वाद-विवाद किया जा सकता है। अनुमानो को तैयार करने की अवधि मे, विभिन्न विभागो के बीच एक प्रतियोगिता सी होती रहती है क्योकि वे अपने-अपने दावे स्वीकृति के लिए प्रस्तुत करते है और इस स्थिति मे "Survival of the fittest" का सिद्धान्त ही लागू होता है। अन्तिम विश्लेषण मे अनुमान (Estimates) कार्यपालिका विभाग, जैसे कि राजकोष अथवा वित्त विभाग के हाथो मे आ जाते हैं।

---

1 The Budget system is discussed in details by A E Buck, *The Annals of the American Academy of Political and Social Science* Vol 113 (May 1924), pp 31-39, quoted by Waldo, *op cit*, pp 299—304

(२) बजट पर व्यवस्थापिका की स्वीकृति
(Legislative Approval of the Budget)

बजट जब तैयार हो जाता है तो वह स्वीकृति देने की प्रार्थना के साथ व्यवस्थापिका अथवा विधान-मण्डल के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। व्यवस्थापिका में इस पर दो भागों में वाद-विवाद किया जाता है। सर्वप्रथम, व्यय-पक्ष (Expenditure side) पर विचार किया जाता है और उसके पश्चात् आय-पक्ष (Revenue side) पर। सभी व्यवस्थापिका सभाएं अनुमानों की जाँच-पड़ताल करने के लिए समितियों का विस्तृत उपयोग करती हैं। धन प्राप्त करने वाली तथा धन के व्यय की स्वीकृति देने वाली एक सत्ता के रूप में, वित्तीय मामलों के सम्बन्ध में, व्यवस्थापिका की आवाज अन्तिम एवं निर्णायक होती है। व्यवस्थापिका जब बजट पर वाद-विवाद कर लेती हैं, तब दो पृथक् विधेयक पारित किये जाते हैं—एक तो विनियोजन विधेयक (Appropriation Bill) होता है जोकि धन व्यय करने का एक वैधानिक अधिकार अथवा आदेश होता है, दूसरा राजस्व विधेयक (Revenue Bill) होता है जोकि करों के लगाने तथा उगाहने का अधिकार देता है। व्यवस्थापिका द्वारा इन दोनों विधेयकों के पारित होने के पश्चात्, मुख्य कार्यपालिका उस पर अपनी सहमति देती है और इस कारण बजट का एक महत्वपूर्ण चरण, अर्थात् व्यवस्थापिका का अनुमोदन, पूरा हो जाता है।

बजट, जोकि व्यवस्थापिका द्वारा स्वीकृत कर लिया जाता है, कार्यपालिका को यह प्राधिकार देता है कि वह व्यवस्थापिका द्वारा उल्लिखितानुसार विशिष्ट मदों पर धन व्यय कर सके। फिफनर के मतानुसार, इस व्यय को कार्य, सगठनात्मक इकाई, प्रकृति तथा उद्देश्य के अनुसार वर्गीकृत किया जा सकता है। 'कार्य' (Function) के अनुसार वर्गीकरण उसे कहते हैं जिसमें एक ही कार्य के लिए किए, जाने वाले सब व्यय एक ही शीर्षक के अन्तर्गत रखे जाते हैं, उदाहरण के लिये जीवन तथा सम्पत्ति की सुरक्षा, सार्वजनिक कार्य (Public works) तथा शिक्षा। विभागों का सगठन सामान्यत 'एक ही कार्य' के अनुसार किया जाता है जिससे कि एक ही कार्य के लिए किये जाने वाले सब व्यय एक ही विभाग में लाये जा सकें। इन परिस्थितियों में, 'कार्य' के अनुसार किया जाने वाला वर्गीकरण 'सगठनात्मक इकाई' के द्वारा किये जाने वाले वर्गीकरण का ही पर्यायवाची होगा। 'प्रकृति' (Character) द्वारा वर्गीकरण खर्चों (Expenditures) में समय-तत्व (Time element) की ओर सकेत करता है। यह विभिन्न मदों को इस आधार पर पृथक् करता है कि क्या वे (मदें) विगत वर्षों के दायित्वों से सम्बन्धित हैं जैसे कि ऋण सेवा (Debt service), या वर्तमान उपभोग के लिए वर्तमान साधनों में से किये जाने वाले खर्चों से सम्बन्धित हैं, अथवा ऐसे कार्यों के लिए किये जाने वाले पूंजीगत व्यय (Capital outlay) से सम्बन्धित हैं जिनका उपयोग भावी वित्तीय वर्षों में किया जायेगा। 'उद्देश्य' (Object) द्वारा वर्गीकरण से आशय है खरीदी जाने वाली चीजों की गणना करना जैसे कार्मिक-वर्ग की सेवायें, पूर्तियाँ तथा ठेके की सेवायें। बजट अनुमानों में वर्गीकरण के इन सभी रूपों का उपयोग किया जाना चाहिये।

———

२८

ब्रिटेन तथा संयुक्त राज्य अमेरिका में वित्तीय प्रशासन

(Financial Administration in Britain and United States of America)

भारत मे वित्तीय प्रशासन की प्रणाली का विवेचन करने से पूर्व, लाभदायक यह होगा कि ब्रिटेन तथा सयुक्त राज्य अमेरिका मे प्रचलित वित्तीय प्रशासन की प्रणालियो का अध्ययन किया जाए ।

ब्रिटेन मे वित्तीय प्रशासन
(Financial Administration in Britain)

ब्रिटिश राजनैतिक व्यवस्था का मूलभूत सिद्धान्त यह है कि वहाँ ससद (Parliament) की स्थिति सर्वोच्च है । चूंकि ससद की स्थिति सर्वोच्च है अत वही देश के वित्तीय मामलो पर पूर्ण नियन्त्रण रखती है । यह कोई भी नया कर लगा सकती है, यह किसी भी प्रचलित कर (Tax) मे वृद्धि या कमी कर सकती है अथवा उसको समाप्त कर सकती है । व्यय करने के लिए धन की अनुमति भी ससद द्वारा ही दी जाती है ।

प्रारम्भ मे ही इस बात का उल्लेख कर देना उचित होगा कि ससद कार्यपालिका (Executive) के नेतृत्व मे ही इन वित्तीय अधिकारो का उपयोग करती है । ससद धन के व्यय के किसी भी प्रस्ताव पर सम्राट की सिफारिश के बिना विचार नही कर सकती । ससद केवल उतनी ही धनराशि की स्वीकृति देगी जितनी की विभागो (Departments) द्वारा अभियाचना अथवा माग की जाए । वह 'अभियाचित' धनराशि मे वृद्धि नही कर सकती, यद्यपि उसे उस धनराशि मे कमी करने की शक्ति प्राप्त होती है । अभियाचित धनराशि मे कमी का प्रस्ताव विभाग मे विश्वास की कमी का द्योतक माना जाता है, और कठोर दलीय अनुशासन के कारण विरोधी-पक्ष के अभियाचित धनराशि मे कमी करने के प्रयत्न सफल नही हो सकते । ससद बजट को बिना किसी परिवर्तन के मूलरूप मे उसी प्रकार स्वीकार कर लेती है जिस रूप मे कि वह प्रारम्भ मे प्रस्तावित किया जाता है, जब तक कि स्वय मन्त्रि-परिषद् के सदन-कक्ष मे बजट मे कोई परिवर्तन करने को सहमत न हो जाए, और ऐसा बहुत कम होता है ।

लोक सभा (House of Commons) वित्त के सम्बन्ध मे निम्नलिखित कार्य सम्पन्न करती है।[1] यह सरकारी विभागो द्वारा तैयार किये गए 'अनुमानो' (Estimates) की जाच करती है और प्रत्येक पृथक् माँग पर अनुदान (Grant) की स्वीकृति देती है। सरकार यह अभियाचित धन देने की व्यवस्था करती है और विभिन्न विभागो मे उसका विनियोजन करती है। यह उक्त कार्य के लिए आवश्यक धन देने की व्यवस्था के उपायो का निश्चय करती है और इस बात का निर्धारण करती है कि कौन-कौन से नये कर लगाये जायें तथा किन-किन पुराने करो मे कमी की जाए अथवा किन-किन करो को समाप्त किया जाए। यह उन रीतियो की भी जाच तथा सूक्ष्म परीक्षण करती है जिनके द्वारा स्वीकृत धनराशिया व्यय की जाती हैं। यह व्यय करने वाले विभागो स्वतत्र लेखा परीक्षण (Audit) करने की भी व्यवस्था करती है। लेखो (Accounts) का परीक्षण केवल नियन्त्रण तथा महालेखा-परीक्षक द्वारा ही नही किया जाता, अपितु ससद की एक पूर्णशक्ति प्राप्त, निर्दलीय सार्वजनिक लेखा समिति (Public Accounts Committee) द्वारा भी किया जाता है।

ससद सरकार के विभिन्न विभागो को व्यय के लिए धन की स्वीकृति देती है, अत विभिन्न विभागो से सम्बन्धित व्यय के अनुमान अनुमोदन (Approval) के लिए ससद के समक्ष प्रस्तुत किये जाते हैं। अनुमोदन के लिए ससद के समक्ष प्रस्तुत किये जाने से पहले ये अनुमान कार्यपालिका द्वारा तैयार किये जाते हैं। अब हम यह देखते हैं कि ये अनुमान किस प्रकार तैयार किये जाते हैं।

अनुमानो की तैयारी
(Preparation of Estimates)

'अनुमानो' अथवा 'प्राक्कलनो' (Estimates) मे, वह अनुमानित धनराशि दिखाई जाती है जोकि किसी निर्देशित कार्य के लिए आवश्यक होती है और यह प्रार्थना की जाती है कि उक्त कार्य के लिए धनराशि की स्वीकृति दे दी जाए। प्रत्येक वर्ष १ अक्टूबर से हर एक विभाग मे अनुमानो को तैयार करने का कार्य शुरू हो जाता है। यह कार्य राजकोष (Treasury) के निकट परामर्श से किया जाता है। ब्रिटेन के वित्तीय प्रशासन मे राजकोष अत्यन्त महत्वपूर्ण योग प्रदान करता है। अनुमानो को तैयार करते समय विभाग तथा राजकोष के मार्ग-दर्शन एव पर्यवेक्षण (Supervision) मे काम करते है। **विलोबी** ने ठीक ही कहा है कि अनुमान जब विभागो द्वारा अन्तिम रूप से प्रस्तुत किये जाते हैं तो "वे उन प्रस्तावो के विवरण-पत्र (Statement) के ही द्योतक होते हैं जिनके सम्बन्ध मे कि प्रस्तुत करने वाले विभिन्न विभागो तथा राजकोष के बीच पहले से ही सहमति होती है।"[2] ये अनुमान

---

1 Standing Order 63 of the House of Commons

2 W F Willoughby *Financial Administration of Great Britain*

'पूर्ति सेवाओ' (Supply service) के लिए होते है मुख्यत थल सेना, नौसेना (Navy), वायु सेना तथा सिविल सेवाओ के लिए—जिनके लिए कि धनराशि की व्यवस्था वार्षिक आधार पर की जाती है। सचित निधि की सेवाओ (Consolidated Fund service) अथवा प्रभारो (Charges), जैसे कि न्यायाधीशो के वेतन तथा पेन्शने, शाही सस्थाओ (Royal establishments) के व्यय आदि के लिए वार्षिक अनुमोदन की आवश्यकता नही होती।

सदन मे अनुमान अथवा प्राक्कलन
(Estimates in the House)

जब व्यय के अनुमान तैयार हो जाते है, तब फरवरी के मध्य मे सरकार उनको लोकसभा मे रखती है। प्राक्कलन किये जाने के पश्चात् अनुमान सम्पूर्ण सदन की समिति को सौप दिये जाते हैं जिसे कि 'पूर्ति समिति' (Committee of supply) कहा जाता है। व्यय के सम्बन्ध मे लोकसभा के कार्य मुख्यत इस समिति के द्वारा ही सम्पन्न किये जाते हैं।

सदन तथा सम्पूर्ण सदन की समिति मे अन्तर
(Distinction between the House and the Committee of the Whole House)

ब्रिटेन मे, वित्त से सम्बन्धित कार्य अधिकतर 'सम्पूर्ण सदन की समिति' मे ही सम्पन्न किया जाता है। अब हम इस बात पर विचार करते हैं कि सदन और सम्पूर्ण सदन की समिति मे क्या अन्तर है। दोनो के बीच अन्तर की मुख्य बातें निम्नलिखित हैं—

(१) सम्पूर्ण सदन की समिति (Committee of the whole House) की अध्यक्षता समितियो के चेयरमैन द्वारा की जाती है जबकि सदन (House) की अध्यक्षता अध्यक्ष (Speaker) द्वारा की जाती है। समिति का चेयरमैन अध्यक्ष की (Speaker's) कुर्सी पर नही बैठता, बल्कि मेज पर लिपिक की (Clerk's) कुर्सी पर बैठता है।

(२) जब सदन अपने आपको सम्पूर्ण सदन की समिति मे परिवर्तित कर लेता है तो मेज से अध्यक्ष की सत्ता (Speaker's authority) की प्रतीक गदा (Mace) हटा दी जाती है और कुछ समय के लिए मेज के नीचे रख दी जाती है।

(३) सम्पूर्ण सदन की समिति की कार्यविधि (Procedure) सदन की कार्यविधि के मुकाबले कम औपचारिक (Less formal) होती है सम्पूर्ण सदन की समिति मे प्रस्ताव के अनुमोदन की आवश्यकता नही होती। सदस्यो को भी, जितनी बार वे चाहे, उतनी ही बार बोलने की अनुमति होती है।

"पूर्ति समिति"
(Committee of Supply)

पूर्ति समिति उन धनराशियो के अनुदानो (Grants) पर विचार करके सरकारी व्यय (Public Expenditure) का नियन्त्रण करती है जिनकी कि थल सेना, नौ सेना, वायु सेना तथा सिविल-सेवको (राजस्व विभागो सहित) के लिए चालू वर्ष मे आवश्यकता होती है। यह इन अनुदानो पर उस व्यय के आधार पर विचार करती है जोकि स्थायी आदेश स० १६ के अन्तर्गत सम्राट के मन्त्रियो द्वारा तैयार किये जाते है और प्रत्येक सत्र (Session) मे पूर्ति के कार्य के लिए २६ दिन दिये जाते हैं। पूर्ति समिति द्वारा पास किये गए प्रस्ताव सदन को वापिस भेज दिये जाते हैं और ये प्रस्ताव विनियोजन अधिनियम (Appropriation act) के आधार पर तैयार किये जाते है। इस अधिनियम मे विस्तार से इस बात की व्याख्या की जाती है कि वित्तीय वर्ष मे विभिन्न कार्यों के लिए प्रत्येक विभाग द्वारा कितनी धन-राशि व्यय की जा सकती है।

पूर्ति प्रस्तावो का स्वरूप
(Form of Supply Resolution)

पूर्ति समिति के समक्ष प्रत्येक अनुदान की माग एक प्रस्ताव (Motion) द्वारा रखी जाती है जिसमे स्वीकृत की जाने वाली धनराशि तथा उस विशिष्ट सेवा का उल्लेख किया जाता है जिसके लिए कि उस धनराशि की माग की जाती है। प्रस्ताव का रूप इस प्रकार होता है "कि एक धनराशि, जोकि पौंड क' 'से अधिक न हो, उल्लिखित उद्देश्य की पूर्ति के हेतु, उस व्यय-भाग की अदायगी के लिए जिसका भुगतान ३१ मार्च सन् १६—तक के वर्ष की अवधि मे किया जायेगा, महामहिम के लिये स्वीकृत की जानी चाहिए।"[1]

पूर्ति समिति की कार्यविधि
(Procedure in the Committee of Supply)

समिति मे, ऐसा कोई भी सशोधन नही रखा जा सकता है जोकि विचाराधीन अनुदान से सम्बन्धित नही है, और न कोई ऐसा प्रस्ताव स्वीकार किया जा सकता है जोकि विचाराधीन प्रस्ताव को स्थगित करने के सम्बन्ध मे हो। 'समिति अनुदान के पक्ष मे मत दे सकती है या उसको अस्वीकृत कर सकती है अथवा उसकी धनराशि मे कमी कर सकती हैं। ऐसा करने के लिए वह या तो सम्पूर्ण अनुदान मे कमी कर सकती है अथवा व्यय की उन मदो मे कमी कर सकती है जिनमे कि अनुदान की रचना की गई हो परन्तु समिति और कोई कार्य नही करती।' सवैधानिक सिद्धान्त

1 "That a sum, not exceeding £ X, be granted to His Majesty, to detray the charge which will come in course of payment during the year ending on the 31st Day of March, 19—for the object therein specified"

द्वारा राष्ट्रीय व्यय का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व सम्राट् मे निहित कर दिया गया है और यह सिद्धान्त लोकसभा को उस धनराशि मे वृद्धि करने मे रोकता है जिसकी कि राज्य की सेवा के लिए सम्राट् द्वारा माग की जाती है। यह सिद्धान्त पूर्ति समिति मे भी दृढता से लागू किया जाता है। ऐसे किसी भी सशोधन का प्रस्ताव नही किया ज' सकता जिसमे कि अनुदान की धनराशि मे अनुमानो मे उल्लिखित धनराशि से अधिक की 'वृद्धि की बात कही गई हो। जब वर्ष भर की सेवा के लिए सभी मागो की स्वीकृति दे दी जाती है तो पूर्ति समिति की बैठकें बन्द कर दी जाती है।

"उपाय और साधन समिति"
(The Committee of Ways and Means)

पूर्ति समिति केवल विशिष्ट कार्यों के लिए विशिष्ट धनराशियो का विनियोजन करती है। परन्तु व्यय करने का यह प्राधिकार *(Authority)* सचित निधि (Consolidated Fund) से धन प्राप्त करने का वास्तविक प्राधिकार नही है। सचित निधि मे से धन निकालने का यह प्राधिकार सम्पूर्ण सदन की एक अन्य समिति, जिसे कि 'उपाय और साधन समिति' कहा जाता है, मे पारित प्रस्तावो के द्वारा प्राप्त होता है। "उपाय और साधन समिति का कार्य सरकारी राजस्व के उस भाग पर विचार करना, जो कि चालू वित्तीय वर्ष की अवधि मे सम्राट की सेवा के लिए अपेक्षित व्यय की पूर्ति के लिए आवश्यक होता है, और उन प्रस्तावो का अनुमोदन करना है जोकि सचित निधि से उन धनराशियो के निकालने का प्राधिकार देते हैं जो पूर्ति समिति द्वारा स्वीकृत अनुदानो की पूर्ति के लिए आवश्यक होती है।" इस प्रकार यह समिति दो कार्य सम्पन्न करती है (१) सचित निधि से धन प्राप्त करने का प्राधिकार देना, और (२) करो द्वारा अथवा ऋण द्वारा धन उगाहने के प्रस्तावो पर विचार करना। समिति 'उपायो व साधनो की स्वीकृति देने वाले' प्रस्तावो के द्वारा सदन (House) के सन्मुख अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करती है। इस समिति के प्रस्तावो का रूप इस प्रकार होता है "कि ३१ मार्च सन् १६ 'तक के वर्ष की अवधि की सेवाओ के हेतु, महामहिम के लिए स्वीकृत अनुदान की पूर्ति के लिए, ब्रिटेन के सचित कोप मे से क पौण्ड धन राशि के निकालने की स्वीकृति दी जानी चाहिए।" इसके पश्चात् समद द्वारा विनियोजन विधेयक (Appropriation Bill) पारित किया जाता है जो कि व्यय के सचित निधि से धन निकालने का अधिकार प्रदान करता है।

व्यय की अनुमति प्राप्त होने के पश्चात्, कराधान (Taxation) पर विचार किया जाता है। वर्ष भर की सेवाओ के लिए करो (Taxes) पर विचार करना 'उपाय और साधन समिति' का कर्त्तव्य है। उपाय और साधन समिति द्वारा स्वीकृत और तत्पश्चात् लोक सभा के समक्ष प्रेपित प्रस्ताव वे आधार होते हैं जिन पर कि वित्त विधेयक (Finance Bill) तैयार किया जाता है। यह विधेयक आने वाले

वित्तीय वर्ष मे लगाये जाने वाले प्रत्यक्ष तथा परोक्ष करो तथा उन दरो का निर्धारण करता है जिन पर कि उन करो का सग्रह किया जाता है। इसमे राजस्व के नये अथवा अतिरिक्त स्रोतो का भी उल्लेख किया जाता है। कराधान (Taxation) अथवा राजस्व (Revenue) के सुझावो पर क्रमिक रूप मे 'सम्पूर्ण सदन की समिति' (अर्थात् उपाय व साधन समिति) मे वाद-विवाद किया जाता है और फिर प्रस्तावो के रूप मे स्वीकार करने के पश्चात् वे सदन को प्रेषित कर दिये जाते हैं तथा विधेयको (Bill) के रूप मे पारित कर दिये जाते हैं।

विनियोजन विधेयक तथा वित्त विधेयक, जब लोक सभा (House of Commons) द्वारा पारित कर दिये जाते हैं तो फिर वे लार्ड सभा (House of Lords मे भेज दिये जाते हैं। तदनन्तर दोनो विधेयक सम्राट् (King) के पास भेजे जाते हैं जो कि उन पर हस्ताक्षर करते है और तब वे विधेयक राज्य के कानून (Laws) बन जाते हैं। सन् १६११ के ससद अधिनियम (Parliament Act) के पश्चात्, लार्ड सभा का व्यवहारत धन विधेयको पर कोई प्राधिकार नही रहा है। इस प्रकार, विनियोजन अधिनियम तथा वित्त अधिनियम लोक सभा तथा उसकी दो समितियो, अर्थात् पूर्ति समिति तथा उपाय व साधन समिति, की लम्बी क्रियाओ के फलस्वरूप ही बनते हैं। विनियोजन अधिनियम (Appropriation Act) सचित निधि से सभी स्वीकृत अनुदानो की अदायगी का प्राधिकार (Authority) प्रदान करता है और वित्त अधिनियम व्यय के लिए आवश्यक आय की व्यवस्था करता है। कराधान की प्राप्तिया तथा सम्राट के उत्तरदायित्व पर राजकोष द्वारा प्राप्त की गई अन्य सभी धनराशिया सचित निधि मे ले जाई जाती है "जिसमे कि प्रत्येक प्रकार की सरकारी आय जमा की जाती है और जिसमे से प्रत्येक प्रकार की सरकारी सेवा के लिए धन दिया जाता है" और सरकारी खर्च की अदायगी के लिए आवश्यक धनराशियाँ इस निधि मे से ही निकाली जाती है।

ब्रिटिश राजकोष
(British Treasury)

ब्रिटिश ससद की धन प्राप्त करने तथा व्यय की स्वीकृति देने की शक्तियो पर हम विचार कर ही चुके। परन्तु ब्रिटिश राजकोष के अध्ययन के बिना, जोकि ब्रिटेन मे वित्तीय प्रशासन की सबसे अधिक महत्वपूर्ण सस्था है, ब्रिटिश वित्तीय प्रशासन का अध्ययन अधूरा ही है। "राजकोष का सक्षिप्त वर्णन इस प्रकार किया जा सकता है कि यह एक विभाग (Department) है जोकि, कार्यपालिका के नियन्त्रण तथा ससद की सत्ता के अधीन, देश के राज वित्त (Public finance) के प्रशासन के लिए उत्तरदायी होता है सार रूप मे, यह एक स्थायी सस्था है जो कि देश तथा राष्ट्रीय दिवालियेपन (National bankruptcy) के बीच मे खडी होती है"।[1] ब्रिटेन

[1] The Treasury, T L Health, 1927 p 1

मे राजकोष ने अन्य सभी विभागो पर अपनी प्रधानता स्थापित कर ली है। यह सरकार के अन्य सभी विभागो का नियन्त्रण करता है और उनमे परस्पर समन्वय स्थापित करता है। ब्रिटेन मे, प्रत्येक विभाग को धन व्यय करने के लिए राजकोष की अनुमति लेनी होती है। राजकोष की प्रधानता अथवा प्रभुत्व की स्थापना के लिए यह शक्ति पर्याप्त है।

अब हम राजकोष के प्रमुख वित्तीय कार्यों पर विचार करते है। ये कार्य निम्न प्रकार हैं —

राजकोष के कार्य
(Functions of the Treasury)

(१) "ससद के अधीन रहते हुए, यह करो के आरोपण (Imposition) एव नियमन (Regulation) तथा राजस्व के सग्रह के लिए उत्तरदायी होता है।

(२) यह विभिन्न मात्राओ मे तथा अनेक प्रकार से सरकारी व्यय का नियन्त्रण करता है, मुख्यत ससद के अनुमानो की तैयारी अथवा उनके पर्यवेक्षण (Supervision) द्वारा।

(३) यह लोक सेवाओ की दिन-प्रतिदिन की आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए आवश्यक धन की व्यवस्था करता है। इस कार्य के लिए इसे उधार लेने की विस्तृत शक्तिया प्राप्त होती हैं।

(४) यह लोक ऋण (Public debt), मुद्रा तथा बैंकिंग को प्रभावित करने वाली कार्यवाइयाँ करता है और उनका सचालन करता है।

(५) यह उस रीति का निर्धारण करता है जिसके अनुसार कि सरकारी लेख (Public accounts) रखे जाएँगे।"[1]

इस प्रकार, विभागो के व्यय तथा वित्तीय व्यवस्थाओ पर राजकोष का नियन्त्रण अत्यन्त व्यापक तथा विस्तृत होता है। इसके अतिरिक्त, चूँकि ब्रिटेन मे राज्य के आर्थिक तथा समाज-कल्याण के कार्य निरन्तर बढते जा रहे हैं, अत देश के वित्तीय मामलो मे राजकोष का महत्व भी बढता जा रहा है। राजकोष सिविल-सेवा पर भी विस्तृत नियन्त्रण रखता है। चूँकि राजकोष प्रस्थापना कार्यो (Establishment purposes) के लिए विभिन्न विभागो को धन देता हैं, अत स्वभावत ही, यह सिविल सेवको के वेतन, पेन्शन, भर्ती तथा सेवा की अन्य शर्तो से सम्बन्धित नियमो के निर्माण मे एक महत्वपूर्ण योग प्रदान करता है।

राजकोष अन्य सभी विभागो पर घना वित्तीय नियन्त्रण रखता है और सभी सिविल-सेवको के कार्य की दशाओ तथा स्तरो का भी पर्यवेक्षण करता है। किसी भी मन्त्रालय (Ministry) के लिए व्यय की किसी भी योजना को मन्त्रिपरिषद् (Cabinet) से अनुमोदित करना उस समय तक बडा कठिन है जब तक कि राजकोष उसका

1 Report of the Machinery of Government Committee, 1918, p 16

अनुमोदन न कर दे। यहाँ तक कि ससद द्वारा 'अनुमानो' अथवा 'प्राक्कलनो' (Estimates) की स्वीकृति के पश्चात् भी, मन्त्रालय अपने विनियोजनो को अपनी इच्छानुसार व्यय नही कर सकते। वे केवल राजकोष से एक 'अभियाचन' (Requisition) के द्वारा ही, जिस पर कि महानियन्त्रक व लेखा-परीक्षक (Comptroller and Auditor General) के प्रति-हस्ताक्षर हो, सचित निधि (Consolidated Fund) से धन निकाल सकते हैं।

किसी भी मन्त्रालय मे अधिकारियो की सख्या अथवा उनके वेतनो मे की जाने वाली किसी भी वृद्धि के लिये, उस स्थिति मे भी जब कि मन्त्रालय के पास उक्त कार्य के लिए पर्याप्त धन हो, राजकोष की अनुमति लेनी पडती है। कर्मचारी-वर्ग तथा उसके वेतन के स्वाभाविक सम्बन्ध ने सिविल-सेवा के विषय मे राजकोष को एक आदेशात्मक स्थिति प्रदान की है। राजकोष के स्थायी सचिव को "सिविल-सेवा के प्रधान" (Head of the Civil Service) की सज्ञा दी जाती है और ऐसे सभी महत्वपूर्ण प्रश्नो के बारे मे, जैसे कि वेतनक्रमो (किन्तु राजकोष तथा स्टाफ के बीच विवाद की स्थिति मे पचनिर्णय के अधीन), पुनर्गठन योजनाओ तथा अतिवयस्कता भत्तो (Superannuation allowances) के बारे मे, सत्ता प्राप्त होती है।

राजकोष का सगठन : अर्थ महामात्य
(Organization of Treasury : Chancellor of the Exchequer)

प्रधान मन्त्री (Prime Minister) यद्यपि राजकोष का प्रथम लार्ड होता है, परन्तु राजकोष के वास्तविक प्रशासन से उसका थोडा ही सम्बन्ध होता है। अर्थ-महामात्य (Chancellor of the Exchequer) राजकोष का प्रभावशाली मन्त्रीय प्रमुख होता है। वह राजकोष की सत्ता की नीव का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण पत्थर होता है। वह ब्रिटेन का वित्त-मन्त्री (Finance Minister) होता है और जहा तक उसके कार्यों का सम्बन्ध है "वह निम्न बातो के सम्बन्ध मे ससद के प्रति उत्तरदायी होता है। सरकारी आय का उचित सग्रह, वे साधन जिनके द्वारा यह आय प्राप्त की जायेगी, वे ऋण जिनके द्वारा इसकी न्यूनतापूर्ति की जायेगी, लगाये जाने वाले कर (Taxes), करो के सम्बन्ध मे दी जाने वाली माफिया और छूटे, सरकारी बाकियो (Public balances) की अभिरक्षा, सरकारी व्यय की मोटी रूप रेखायें और व्यय तथा आय के बीच सन्तुलन बनाये रखना। वह सरकार की उन सब कार्यवाहियो के लिए भी उत्तरदायी होता है जोकि मुद्रा (Currency) व बैंकिंग, स्थानीय ऋण तथा सामान्यत वित्तीय मामलो को प्रभावित करे।"[1] प्रधान-मन्त्री के पश्चात् अर्थ महामात्य ही मन्त्रिपरिषद् का सबसे महत्वपूर्ण मन्त्री होता है। इसमे कोई सन्देह नही कि वित्त से सम्बन्धित नीति का निर्धारण पूरी मन्त्रि-परिषद् द्वारा ही किया जाता है परन्तु सभी वित्तीय मामलो के सम्बन्ध मे उसकी आवाज सबसे अधिक महत्वपूर्ण होती है। उसे चूकि राष्ट्रीय बजट (National Budget) के आय तथा

1 Health, op cit p 66

व्यय के पक्ष को सन्तुलित रखना होता है, अत वह ऐसी किसी भी योजना अथवा प्रायोजना को अस्वीकार कर सकता है जिसमे नये खर्चों की मांग की गई हो। जब विभिन्न विभागो द्वारा प्रतियोगितापूर्ण मागे इसके सन्मुख प्रस्तुत की जाती हैं, तो वह उन प्रतियोगिता पूर्ण मागो के सापेक्षिक महत्व का अकन करता है और मामलो का निपटारा करना है। जैसा कि हैल्डेने समिति (Haldane Committee) ने ठीक ही कहा कि "यदि उसे (अर्थ महामात्य को) जलाशय (Reservoir) के भरने तथा उसमे एक निश्चित गहराई तक पानी बनाये रखने के लिये उत्तरदायी बनाना है, तो वह इस स्थिति मे होनी चाहिये कि उस जलाशय से बाहर जाने वाले पानी का वह नियमन कर सके।" यद्यपि मन्त्रि-परिषद् (Cabinet) वित्तीय नीति का निर्धारण करती है परन्तु इससे किसी भी प्रकार वित्तीय प्रशासन के क्षेत्र मे अर्थ महामात्य की महत्ता तथा सत्ता कम नही होती।

जहा तक राजकोष के सगठन का प्रश्न है यह तीन अनुभागो (Sections) मे बटा हुआ है, पूर्ति (Supply) स्थापना (Establishment) or (Personnel), और वित्त अनुभाग (Finance section)। ये अनुभाग इसके तीनो कार्यों के ही समवर्ती है, अर्थात् व्यय करने वाले अन्य विभागो की क्रियाओ की देखभाल करना, सिविल-सेवको की नियुक्तियो तथा वेतनो का पर्यवेक्षण, और वित्तीय नीति का विस्तृत विवरण तैयार करना। राजकोष की पूर्ति शाखा व्यय की जाच करती है। यह शाखा अनेक उप-अनुभागो (Sub-section) मे बटी होती है। प्रत्येक उप-अनुभाग मन्त्रालयो के एक वर्ग के अधीन होता है जिनकी वित्तीय क्रियाओ का यह पर्यवेक्षण करता है। वे अनुमानो अथवा प्राक्कलनो के तैयार करने मे तथा राजस्व के ढाचे का निर्माण करने मे इन अनेक विभागो की भी सहायता करते है।

स्थापना शाखा भी अनेक उप-अनुभागो मे बटी होती है और ये उप-अनुभाग सिविल-सेवको की नियुक्ति, पदोन्नति तथा पारिश्रमिक के सम्बन्ध मे मन्त्रालयो के वैसे ही वर्गों के लिये समानान्तर सेवाए सम्पन्न करते हैं।

वित्तीय अनुभाग तीन शाखाओ मे विभाजित होता है। एक के नियन्त्रण मे तो देशीय मामलो से सम्बन्धित वित्तीय विभाग होते हैं, जैसे कि अन्तर्देशीय राजस्व (Inland Revenue) तथा सीमा शुल्क व आबकारी विभाग (Department of Customs and Excise), दूसरी शाखा अधिराज्यो (Dominions), औप-निवेशिक कार्यालयो (Colonial offices) तथा राजनयिक सेवाओ (Diplomatic services) का नियन्त्रण करती है, तीसरी शाखा "वित्तीय अनुसधान" के अनुभाग के नाम से प्रसिद्ध है। इस अनुभाग मे वित्तीय नीति का विस्तृत विवरण तैयार किया जाता है, बजट सम्बन्धी गणनाए की जाती हैं और इसमे सरकारी लेखो (Public Accounts) के वार्षिक सस्करण तैयार किये जाते हैं। केन्द्रीय सांख्यिकीय कार्यालय (Central statistical office) द्वारा की जाने वाली अर्थ-व्यवस्था (Economy) की सम्पूर्ण

ाय तथा व्यय की वार्षिक गणनाओ को 'वजट श्वेत पत्र' (Budget White Paper) के नाम से पुकारा जाता है ।

राजकोप द्वारा प्रदान किये जाने वाले योग की आलोचना
(Criticism of the Role of the Treasury)

चूंकि राजकोष सरकार के प्रत्येक विभाग पर अपना नियन्त्रण रखता है अत वे सभी विभाग इसको मित्रतापूर्ण दृष्टि से नही देखते जिनके व्यय की योजनाओ को यह अस्वीकृत कर सकता है अथवा उनमे कटौती कर सकता है । इसके अतिरिक्त, राजकोप मितव्ययी दृष्टिकोण से भी कार्य करता है जैसा कि राजकोष के एक स्थायी सचिव की इस प्रसिद्ध टिप्पणी से प्रकट है कि "ब्रिटिश कर-दाता की असुरक्षित दशा को दृष्टिगत रखते हुये वह सो नही सकता।" चूंकि राजकोप देश की वित्तीय व्यवस्थाओ का अभिरक्षक (Custodian) होता है अत वह इस वात को देखने का पूर्ण प्रयत्न करता है कि धन समुचित रीति से व्यय किया जा रहा है या नही, और इसी कारण "प्राय इस पर यह आरोप लगाया जाता है कि यह सकुचित दृष्टिकोण वाला, परम्परावादी तरीके अपनाने वाला और स्वय को परिवर्तित दशाओ के अनुकूल वनाने के प्रति अनिच्छा रखने वाला है।" इस आलोचना के समर्थन मे जो महत्वपूर्ण उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है वह यह कि द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् ब्रिटेन की वित्तीय पत्रिकाओ ने यह आरोप लगाया कि स्थिति की माग यह है कि मुद्रा-स्फीति (Inflation) को रोकने के लिये अवस्फीति सम्वन्वी (Deflationary) उपाय अपनाये जान चाहियें, जवकि इसके विपरीत, राजकोप व्याज की अत्यन्त नीची दरे कायम रख रहा था । इसका परिणाम यह हुआ कि सरकार की वित्तीय (Financial) तथा आर्थिक (Economic) नीतियो के बीच निकट सम्पर्क नही रहा । नवम्वर सन् १९४७ मे सर स्टेफोर्ड क्रिप्स राजकोप के महामात्य (Chancellor) नियुक्त हुये और उन्होने सरकार के आर्थिक कार्यक्रमो तथा सभी सम्वन्धित मन्त्रालयो के वीच समुचित समन्वय कायम करके इस समस्या के समाधान का प्रयत्न किया ।

प्लौडेन रिपोर्ट
(Plowden Report)

ब्रिटिश ट्रेजरी (British Treasury)—जुलाई १९५८ मे अनुमानो (Estimates) की प्रवर समिति (Select Committee) ने "व्यय पर ट्रेजरी नियत्रण" नामक एक रिपोर्ट प्रकाशित की । इस रिपोर्ट मे समिति ने कहा "वास्तव मे ट्रेजरी नियत्रण की किसी "व्यवस्था" (System) का उल्लेख करना भाषा का अपमान करना है, यदि "व्यवस्था" शब्द का अर्थ यह लिया जाए कि कुछ ऐसी कार्य-विधिया तथा परम्पराए है जो किसी न किसी समय पर विचारशीलता के साथ नियोजित तथा सस्थापित की गई थी जिसे "ट्रेजरी नियन्त्रण" कहा जाता है उसे

प्रशासनिक व्यवहार का ऐसा ढाचा रखना अधिक उपयुक्त होगा जो शताब्दियो मे एक वृक्ष की भाँति विकसित हुआ है, नियोजित की अपेक्षा प्राकृतिक, सैद्धान्तिक की अपेक्षा व्यवहारवद्ध ।"[1]

अनुमानो की प्रवर समिति के इन शब्दो से प्रेरित होकर ३० जुलाई १९५९ को लार्ड प्लोडेन की अध्यक्षता मे एक समिति नियुक्त की गई । इस समिति ने दो वर्ष वाद सन् १९६१ मे "सार्वजनिक व्यय के नियन्त्रण" पर एक प्रतिवेदन प्रस्तुत किया ।

इस समिति के सम्मुख "केन्द्रीय समस्या" यह थी कि वढते हुए सार्वजनिक व्यय पर श्रेष्ठतम नियन्त्रण किस प्रकार स्थापित किया जाए तथा इसे सरकारी इच्छानुसार वाछनीय सीमाओ मे कैसे वाधा जाए । समिति इस निर्णय पर पहुची कि सार्वजनिक व्यय मे दूरदर्शिता तथा भविष्य की आवश्यकताओ को दृष्टिगत रख-कर नियोजन आवश्यक है । समिति ने कहा कि "ऐसे निर्णय जिनमे भारी भावी व्यय निहित हो सदा सम्पूर्ण सार्वजनिक व्यय के कई वर्षो के सर्वेक्षणो तथा भावी वित्तीय स्रोतो को दृष्टिगत रखकर लिए जाने चाहिये ।"[2] ट्रेजरी के नियन्त्रण को प्रभावशाली वनाने के लिए समिति इस निष्कर्ष पर पहुची कि "वित्तीय मामलो पर मन्त्रियो द्वारा सामूहिक निर्णय लेने तथा उत्तरदायित्व सम्भालने के लिए और अधिक प्रभावशाली यन्त्र की आवश्यकता है ।"[3] प्रभावशाली नियन्त्रण के लिए समिति ने यह भी सुझाव दिया कि "व्यय सम्वन्धी भावी समस्याओ के मापन तथा निराकरण के लिए साधनो मे सुधार होना चाहिए, विशेषकर अनुमानो के स्वरूप का भारी सरलीकरण तथा मात्रात्मक साधनो का अधिक व्यापक प्रयोग ।"[4]

ब्रिटिश ट्रेजरी को मुख्यत दो महत्वपूर्ण कार्य करने पडते हैं व्यय पर नियत्रण तथा राष्ट्रीय आर्थिक नीतियो का निर्धारण । आधुनिक ट्रेजरी का एक प्रमुख दायित्व सम्पूर्ण राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था का प्रवन्ध करना है । साथ ही उसको वित्त के सरक्षक का परम्परागत दायित्व भी सम्भालना पडता है । अत ट्रेजरी को व्यापक दृष्टि से राष्ट्र की सम्पूर्ण आर्थिक नीति के सामान्य उद्देश्यो का निर्धारण करना पडता है तथा विभिन्न विभागो की नीतियो मे समान उद्देश्यो की प्राप्ति हेतु समायोजन स्थापित करना पडता है । इसलिए ट्रेजरी मे यह योग्यता होनी चाहिए कि वह :

(अ) प्रत्येक विभाग की गति-विधियो तथा आवश्यकताओ को राष्ट्रीय आर्थिक नीति के सामान्य उद्देश्यो, भावी आर्थिक स्रोतो की स्थिति एव उनके प्रयोग के लिए प्रस्तुत की जाने वाली मागो से सम्वन्धित करे , तथा

---

1 Quoted by D N Chester The Plowden Report I Nature and Significance, Public Administration (London) Spring 1963, Vol 41, p 3

2 The Plowden Report (Para 7).

3 *Ibid* Para 12 D

4 *Ibid* Para 12 C

(ब) विभागो को एक सयुक्त उद्यम के हिस्सेदार समझकर राष्ट्रीय आर्थिक तथा वित्तीय नीति के सब पहलुओ पर परामर्श दे तथा उन्हे अपने दायित्वो को कार्य-कुशलता एव मितव्ययता से निभाने मे सहायता दे ।[1]

ट्रेजरी राष्ट्रीय आर्थिक नीति के निर्धारण तथा वित्त पर नियन्त्रण के दोनो कार्यों को तभी सम्पन्न कर सकती है जब वह सिविल-सेवा का प्रभावशाली प्रबन्ध करने तथा सरकार के अन्य विभागो के साथ प्रभावशाली सम्पर्क स्थापित करने मे सफल हो। प्लौडेन रिपोर्ट अन्य विभागो तथा ट्रेजरी के सामान्य कार्यों के साथ सिविल-सेवा के सदस्यो सम्बन्धी प्रबन्ध कार्यों का भी विवेचन करती है ।

ट्रेजरी तथा अन्य विभागो के कार्यों पर प्लौडेन रिपोर्ट मे निम्नलिखित बाते कही गई है —

"३५ प्रत्येक विभाग का प्राथमिक दायित्व सरकार द्वारा निश्चित की गई सीमाओ की परिधि मे अपनी नीति को सचालित करना है। विभाग अपने कार्य को कुशलता से करने के लिए स्वय ही उत्तरदायी है यह महत्वपूर्ण है कि विभाग अपने दायित्वो को ठीक-ठीक समझे, स्वीकार करें तथा वे दायित्व विभागो और ट्रेजरी के पारस्परिक सम्बन्धो मे प्रतिबिम्बित हो ।

"३६ ट्रेजरी वह विभाग है जिसका केन्द्रीय दायित्व राष्ट्रीय आर्थिक तथा वित्तीय नीति सचालित करना है, वह वित्त की सरक्षक है तथा सिविल-सेवा एव प्रशासनिक यन्त्र की स्वामिनी है । इसका उत्तरदायित्व निम्न विषयो पर है —

(अ) सरकारी सेवा की कार्य-कुशलता बनाये रखना तथा यह देखना कि सभी विभागो मे, विशेष कर उच्च स्तरो पर, सम्पूर्ण सेवा के सर्वोत्तम अधिकारी हो, तथा

(ब) सम्पूर्ण सरकारी सेवा मे प्रबन्ध सेवाओ (Management Services) का विकास करना, नवीन प्रबन्ध विधियो को प्रारम्भ करने मे पहल करना तथा विभागो की प्रबन्ध विधियो पर दृष्टि रखना ।"[2]

सिविल-सेवा के सदस्यो सम्बन्धी ट्रेजरी के प्रबन्ध कार्य विभिन्न प्रकार के है। प्रथम तो ट्रेजरी भर्ती सम्बन्धी पहलुओ मे सिविल-सेवा आयोग से सम्बद्ध है। दूसरे, ट्रेजरी का ही कार्य सिविल-सेवा के वेतन-क्रम तथा अन्य दशायें तय करना है। तीसरे, ट्रेजरी की ही उचित स्टाफ सम्बन्ध, जिसे 'ह्विटलेवाद' (Whitleyism) कहते है, बनाये रखने की भी जिम्मेदारी है । चौथे, इसका सम्बन्ध लोक-सेवा के कर्मचारियो के अनुशासन, पदोन्नति, पदावनति, सेवा-निवृत्ति इत्यादि मे भी है। पाँचवे, ट्रेजरी का प्रशिक्षण सम्भाग (Treasury Training Division) लोक-सेवा के सभी भागो

1 Refer to R W D Clark The Plowden Report II The Formulation of Economic Policy, Public Administration, (London) Spring 1963, volume 41, pp 20-21

2 Refer to W W Morton The Plowden Report III The Management Functions of the Treasury Public Administration, London, Spring 1963 Vol 41, p 27

के वरिष्ठ अधिकारियो के लिए विशिष्ट प्रशिक्षण कार्यक्रम तथा सम्मेलन सञ्चालित करती है और ये कार्यक्रम तथा सम्मेलन सम्पन्न लाभप्रद सिद्ध हुए है।

इस प्रकार प्लोडेन रिपोर्ट ब्रिटिश ट्रेजरी के कार्यों तथा उसकी समस्याओं पर काफी प्रकाश डालती है। रिपोर्ट मे ट्रेजरी के तीन प्रमुख कार्यों पर ठीक बल दिया गया है तथा उनमे सुधार के लिए सुझाव भी दिये गये है। ट्रेजरी के तीन प्रमुख दायित्व है

(अ) सम्पूर्ण राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था का प्रबन्ध, (ब) वित्त का सरक्षण, तथा (स) सिविल-सेवा का कार्य-कुशल प्रबन्ध। ट्रेजरी को इन तीनो कार्यों को एकसा महत्व प्रदान करना पडता है।[1]

लेखा-परीक्षण (Audit)

वित्तीय प्रशासन का अन्तिम अभिकरण लेखा-परीक्षण है। ससद विशिष्ट कार्य के लिए धन की स्वीकृति देती है। अत. वह इस विषय मे आश्वस्त होना चाहती है कि विभागो द्वारा धन उसी विशिष्ट कार्य के लिए व्यय किया जा रहा है या नही जिसके लिये कि उसने उसकी अनुमति दी थी। इस कार्य की व्यवस्था के लिए एक उच्च स्थायी अधिकारी का व्यवधान (Interposition) किया जाता है जिसके पद का पूर्ण नाम "महामहिम के राजकोष की प्राप्ति और निर्गम का महानियन्त्रक तथा लोक लेखो का महालेखा-परीक्षक" (Comptroller General of the receipt and issue of His Majesty's Exchequer And Auditor-General of Public Accounts) है। इस अधिकारी की आज्ञा के बिना सचित निधि अथवा कोषागार से धन नही निकाला जा सकता, यह अधिकारी जब इस बात से पूर्णत सन्तुष्ट हो जाता है कि यह मांग उस सेवा के लिए ही है जिसके लिए कि ससद द्वारा स्वीकृति दी जा चुकी है, तब राजकोष से अभियाचन (Requisition) प्राप्त होने पर, उनको कोषागार खाते तथा बैंक ऑफ इगलैंड से अथवा बैंक ऑफ आयरलैंड से उधार दे देता है। धन के व्यय होने के पश्चात्, वह नियन्त्रक तथा महालेखा-परीक्षक के कार्यों का दूसरा भाग, अर्थात् लेखा-परीक्षक के रूप मे अपने कार्य, सम्पन्न करता है। कोषागार तथा लेखा परीक्षण विभाग अधिनियम, १८६६, (The Exchequer and Audit Departments Act, 1866) मे यह व्यवस्था है कि सरकारी धन से सम्बन्धित प्रत्येक व्यक्ति उक्त धन के उपयोग के लेखे नियन्त्रक व महालेखा-

---

1 Public Administration (Journal of the Royal Institute of Public Administration, London), Spring 1963, Volume 41, devotes its study to the Plowden Committee Report There are four lectures on Plowden Committee Report (1) The Plowden Report—Introduction Lord Plowden, pp 1-2, (2) The Plowden Report I Nature and Significance D N Chester, pp 3-15 (3) The Formulation of Economic Policy II R W B Clarke, pp 17-24, (4) The Management Functions of the Treasury III W W Morton, pp 25-35 (5) Management Services in Industry IV J E Wall, pp 37-50

परीक्षक के समक्ष उपस्थित करेगा। लेखो (Accounts) की जाँच-पड़ताल करने के पश्चात्, वह व्यय की अनियमितताओ के सम्बन्ध मे ससद को अपना प्रतिवेदन (Report) प्रस्तुत करता है। फिर, लोक सभा अपनी सार्वजनिक लेखा समिति से इन विवरणो तथा प्रतिवेदनो की जाच तथा सूक्ष्म निरीक्षण कराती है। यह समिति अपने निर्णय सदन (House) के सामने रखती है। इस प्रकार वित्तीय प्रशासन का चक्र पूरा हो जाता है।

निष्कर्ष (Conclusion) :

ब्रिटेन के वित्तीय प्रशासन मे राजकोष (Treasury), मन्त्रि-परिषद् (Cabinet) तथा ससद (Parliament) महत्वपूर्ण भाग अदा करते हैं। "वित्तीय प्रशासन मे इन तीनो का सहयोग अत्यन्त आवश्यक है, सर्वप्रथम तो यह देखने के लिए कि योजना जिस रूप मे ससद के समक्ष प्रस्तुत की गई है वह सन्तोषजनक है या नही,...... दूसरे, इसलिए कि योजना जिस रूप मे लोक सभा से बाहर आती है क्या वह रूप वास्तव मे सदन की इच्छाओ को व्यक्त करता है, और तीसरे, इसलिए कि योजना ससद के निर्णयो के अनुसार कार्यान्वित की जा रही है या नही।"[1]

परन्तु इस बात की काफी आलोचना की जाती है कि ब्रिटिश ससद देश के वित्तीय व्यवस्थाओ पर से अपना प्रभुत्व खोती जा रही है। बजट जिस रूप मे मन्त्रि-परिषद् द्वारा ससद मे प्रस्तुत किया जाता है, बिना किसी परिवर्तन के वैसा का वैसा ही ससद द्वारा अनुमोदित कर दिया जाता है। यदि ससद किसी भी माँग की धन-राशि मे १०० पौंड भी कम करना चाहती है तो इसे 'विश्वास' (Confidence) का प्रश्न बना लिया जाता है और ससद मे मन्त्रि-परिषद् का बहुमत होने के कारण ऐसी कटौती करना सम्भव नही हो पाता। अत पूर्ति के दिनो (Supply days) का उपयोग विरोधी पक्ष द्वारा सरकार के विरुद्ध अपनी शिकायतो को व्यक्त करने मे किया जाता है। ससद व्यय की किसी भी मद (Item) को न बढा सकती है अथवा न घटा ही सकती है। कटौती प्रस्ताव (Cut motions) यदि रखे भी जाते हैं तो सदा ही वे मतो से पराजित कर दिये जाते हैं। Sir Erskine May का कहना है कि यहाँ उस प्रक्रिया (Process) का (जोकि काफी लम्बी अवधि से प्रचलित है) वर्णन करना अनावश्यक होगा जिसमे कि पूर्ति समिति मे मत-विभाजन के विचार का साहित्यिक अर्थ के बजाए लाक्षणिक अर्थ (Symbolic meaning) ही रह गया है। अन्य शब्दो मे, इस अवसर पर मागो के वित्तीय पहलुओ पर विचार नही किया जाता बल्कि केवल सरकार की प्रशासकीय नीति की आलोचना की जाती है। इस प्रक्रिया की सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि किसी भी माग मे १०० पौण्ड की कटौती को भी सरकार अपनी बडी पराजय मानती है और त्याग-पत्र देने तक को तैयार हो जाती है। अत चूँकि सम्पूर्ण सदन अनुमानो की धनराशियो का निर्धारण करने मे

---

1 Hicks *Public Finance*, 1948, p 52

के वरिष्ठ अधिकारियों के लिए विशिष्ट प्रशिक्षण कार्यक्रम तथा सम्मेलन सचालित करती है और ये कार्यक्रम तथा सम्मेलन अत्यन्त लाभप्रद सिद्ध हुए हैं।

इस प्रकार प्लोडेन रिपोर्ट ब्रिटिश ट्रेजरी के कार्यों तथा उनकी समस्याओ पर काफी प्रकाश डालती है। रिपोर्ट मे ट्रेजरी के तीन प्रमुख कार्यों पर ठीक बल दिया गया है तथा उनमे सुधार के लिए सुझाव भी दिये गये हैं। ट्रेजरी के तीन प्रमुख दायित्व है

(अ) सम्पूर्ण राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था का प्रबन्ध, (ब) वित्त का सरक्षण, तथा (स) सिविल-सेवा का कार्य-कुशल प्रबन्ध। ट्रेजरी को इन तीनो कार्यों को एकसा महत्व प्रदान करना पडता है।[1]

लेखा-परीक्षण (Audit)

वित्तीय प्रशासन का अन्तिम अभिकरण लेखा-परीक्षण है। ससद विशिष्ट कार्य के लिए धन की स्वीकृति देती है। अत वह उस विषय मे आश्वस्त होना चाहती है कि विभागो द्वारा धन उसी विशिष्ट कार्य के लिए व्यय किया जा रहा है या नही जिसके लिये कि उसने उसकी अनुमति दी थी। इस कार्य की व्यवस्था के लिए एक उच्च स्थायी अधिकारी का व्यवधान (Interposition) किया जाता है जिसके पद का पूर्ण नाम "महामहिम के राजकोप की प्राप्ति और निर्गम का महानियन्त्रक तथा लोक लेखो का महालेखा-परीक्षक" (Comptroller General of the receipt and issue of His Majesty's Exchequer And Auditor-General of Public Accounts) है। इस अधिकारी की आज्ञा के बिना सचित निधि अथवा कोषागार से धन नही निकाला जा सकता, यह अधिकारी जब इस बात से पूर्णत सन्तुष्ट हो जाता है कि यह माँग उस सेवा के लिए ही है जिसके लिए कि ससद द्वारा स्वीकृति दी जा चुकी है, तब राजकोष से अभियाचन (Requisition) प्राप्त होने पर, उनको कोषागार खाते तथा बैंक ऑफ इगलैंड से अथवा बैंक ऑफ आयरलैंड से उधार दे देता है। धन के व्यय होने के पश्चात्, वह नियन्त्रक तथा महालेखा-परीक्षक के कार्यों का दूसरा भाग, अर्थात् लेखा-परीक्षक के रूप मे अपने कार्य, सम्पन्न करता है। कोषागार तथा लेखा परीक्षण विभाग अधिनियम, १८६६, (The Exchequer and Audit Departments Act, 1866) मे यह व्यवस्था है कि सरकारी धन से सम्बन्धित प्रत्येक व्यक्ति उक्त धन के उपयोग के लेखे नियन्त्रक व महालेखा-

---

1 Public Administration (Journal of the Royal Institute of Public Administration, London), Spring 1963, Volume 41, devotes its study to the Plowden Committee Report There are four lectures on Plowden Committee Report (1) The Plowden Report—Introduction Lord Plowden, pp 1-2, (2) The Plowden Report I Nature and Significance D N Chester, pp 3-15 (3) The Formulation of Economic Policy II R W B Clarke, pp 17-24, (4) The Management Functions of the Treasury III W W Morton, pp 25-35 (5) Management Services in Industry IV J E Wall, pp 37-50

परीक्षक के समक्ष उपस्थित करेगा। लेखो (Accounts) की जाँच-पडताल करने के पश्चात्, वह व्यय की अनियमितताओ के सम्बन्ध मे ससद को अपना प्रतिवेदन (Report) प्रस्तुत करता है। फिर, लोक सभा अपनी सार्वजनिक लेखा समिति से इन विवरणो तथा प्रतिवेदनो की जाच तथा सूक्ष्म निरीक्षण कराती है। यह समिति अपने निर्णय सदन (House) के सामने रखती है। इस प्रकार वित्तीय प्रशासन का चक्र पूरा हो जाता है।

निष्कर्ष (Conclusion) :

ब्रिटेन के वित्तीय प्रशासन मे राजकोप (Treasury), मन्त्रि-परिषद् (Cabinet) तथा ससद (Parliament) महत्वपूर्ण भाग अदा करते हैं। "वित्तीय प्रशासन मे इन तीनो का सहयोग अत्यन्त आवश्यक है, सर्वप्रथम तो यह देखने के लिए कि योजना जिस रूप मे ससद के समक्ष प्रस्तुत की गई है वह सन्तोषजनक है या नही,.... दूसरे, इसलिए कि योजना जिस रूप मे लोक सभा से बाहर आती है क्या वह रूप वास्तव मे सदन की इच्छाओ को व्यक्त करता है, और तीसरे, इसलिए कि योजना ससद के निर्णयो के अनुसार कार्यान्वित की जा रही है या नही।"[1]

परन्तु इस बात की काफी आलोचना की जाती है कि ब्रिटिश ससद देश के वित्तीय व्यवस्थाओ पर से अपना प्रभुत्व खोती जा रही है। बजट जिस रूप मे मन्त्रि-परिषद् द्वारा ससद मे प्रस्तुत किया जाता है, बिना किसी परिवर्तन के वैसा का वैसा ही ससद द्वारा अनुमोदित कर दिया जाता है। यदि ससद किसी भी माँग की धन-राशि मे १०० पौंड भी कम करना चाहती है तो इसे 'विश्वास' (Confidence) का प्रश्न बना लिया जाता है और ससद मे मन्त्रि-परिषद् का बहुमत होने के कारण ऐसी कटौती करना सम्भव नही हो पाता। अत पूर्ति के दिनो (Supply days) का उपयोग विरोधी पक्ष द्वारा सरकार के विरुद्ध अपनी शिकायतो को व्यक्त करने मे किया जाता है। ससद व्यय की किसी भी मद (Item) को न बढा सकती है अथवा न घटा ही सकती है। कटौती प्रस्ताव (Cut motions) यदि रखे भी जाते हैं तो सदा ही वे मतो से पराजित कर दिये जाते हैं। Sir Erskine May का कहना है कि यहाँ उस प्रक्रिया (Process) का (जोकि काफी लम्बी अवधि से प्रचलित है) वर्णन करना अनावश्यक होगा जिसमे कि पूर्ति समिति मे मत-विभाजन के विचार का साहित्यिक अर्थ के बजाए लाक्षणिक अर्थ (Symbolic meaning) ही रह गया है। अन्य शब्दो मे, इस अवसर पर मागो के वित्तीय पहलुओ पर विचार नही किया जाता बल्कि केवल सरकार की प्रशासकीय नीति की आलोचना की जाती है। इस प्रक्रिया की सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि किसी भी माग मे १०० पौण्ड की कटौती को भी सरकार अपनी बडी पराजय मानती है और त्याग-पत्र देने तक को तैयार हो जाती है। अत चूंकि सम्पूर्ण सदन अनुमानो की धनराशियो का निर्धारण करने मे

1 Hicks *Public Finance*, 1948, p 52

एकमत नही हो पाता, अत सदन उनके वित्तीय पहलुओ पर विचार नही कर पाता और उन मन्त्रियो तथा अधिकारियो की नीति तथा क्रियाओ तक ही अपने को केन्द्रित रखता है जिनके वेतनो की व्यवस्था उन माँगो मे निहित होती है।[1] इसी प्रकार एक अन्य लेखक ने कहा है कि जब बजट की मुख्य-मुख्य व्यवस्थायें पूर्व निर्धारित होती हैं तो बजट पर वाद-विवाद का कोई वास्तविक अर्थ ही नही रह जाता, और चूकि वाद-विवाद वित्तीय मामलो से हटकर विनियोजनो की माँग करने वाले विभागो की नीति पर केन्द्रित हो जाता है, अत साधारण सदस्य सरकार की सामान्य वित्तीय नीति को स्पष्ट रूप से समझने के एक अवसर से वचित हो जाता है।[2]

इन सभी प्रगतियो का परिणाम यह हुआ है कि वित्त पर ससद की सत्ता कम होती जा रही है।

सयुक्त राज्य अमेरिका मे वित्तीय प्रशासन (Financial Administration in the United State of America)

ब्रिटेन की वित्तीय प्रणाली का अध्ययन करने के पश्चात्, सयुक्त राज्य अमेरिका मे प्रचलित वित्तीय प्रणाली अध्ययन भी लाभदायक रहेगा। सयुक्त राज्य अमेरिका मे सरकारी व्यय की पूर्ति के लिए साधनो की खोज का उत्तरदायित्व सविधान (Constitution), द्वारा काँग्रेस को सौंप दिया गया है। सविधान मे कहा गया है कि, "काँग्रेस को करो, शुल्कों, महसूलो व उत्पादन करो के लगाने व उनका सग्रह करने, ऋणो को अदा करने, और सयुक्त राज्य की सामूहिक प्रतिरक्षा व सामान्य कल्याण की व्यवस्था करने की शक्ति प्राप्त होगी।"[3] इस प्रकार काग्रेस (Congress) को कोई भी कर लगाने, उसमे कमी करने अथवा उसको समाप्त करने का अधिकार है और काग्रेस ही सरकार के विभिन्न विभागो को व्यय की अनुमति देती है।

अनुमानो अथवा प्राक्कलनो की तैयारी (Prepration of Estimates)

सन् १९२१ के बजट तथा लेखाकन अधिनियम (Budget and Accounting Act) के अन्तर्गत, राष्ट्रपति (President) का यह कर्तव्य है कि वह प्रत्येक नियमित सत्र (Session) के प्रारम्भ मे निम्नलिखित सामग्री काग्रेस को प्रेषित करे—

(१) आगामी वित्तीय वर्ष के लिये सरकार की सहायता के हेतु आवश्यक खर्चों तथा विनियोजनो (Appropriations) के अनुमान (Estimates)।

(२) प्रचलित राजस्व विधियो (Revenue laws) तथा ऐसे राजस्व प्रस्तावो के अन्तर्गत, जिन्हे कि वह प्रस्तावित करे, आगामी वित्तीय वर्ष के हेतु सरकार के लिये प्राप्तियो (Receipts) के अनुमान।

---

1 Sir Erskine May, *op cit* 15th Edition, 1950, pp 292—3
2 Major *Foreign Powers, Carter, Ranney and Herz*, 1952 p 98
3 Constitution of the United States Art I, Sec 8

(३) चालू वित्तीय वर्ष की अवधि के लिए सरकार की प्राप्तियो तथा खर्चों के अनुमान।

(४) विगत वित्तीय वर्ष की अवधि को सरकार की प्राप्तियो तथा खर्चों की एक सूची।

(५) ऐसे विवरण-पत्र (Statements), इनमे विगत वित्तीय वर्ष के अन्त की राजकोष की दशा तथा चालू वर्ष और आगामी वर्ष के लिए उस दशा से सम्बन्धित अनुमान दिखाये गये हो।

(६) सयुक्त राज्य अमेरिका की ऋणग्रस्तता (Indebtedness) से सम्बन्धित तथ्य (Facts)।

(७) ऐसे अन्य वित्तीय विवरण-पत्र, जिसके विषय मे कि वह यह आवश्यक समझे कि उनसे सरकार की वित्तीय स्थिति का पूर्ण ज्ञान प्राप्त होगा।

बजट-विभाग या ब्यूरो (Bureau of the Budget)

राष्ट्रपति का यह कर्त्तव्य है कि वह सरकार की आय तथा व्यय का एक पूर्ण अनुमान तैयार करे और उसे अनुमोदन के लिये काग्रेस के समक्ष प्रस्तुत करे। इन अनुमानो को तैयार करने मे बजट विभाग अथवा बजट-ब्यूरो (Bureau of the Budget) राष्ट्रपति की सहायता करता है। इस ब्यूरो का निर्माण सन् १९२१ के 'बजट व लेखाङ्कन अधिनियम' द्वारा किया गया था। प्रारम्भ मे इस ब्यूरो की स्थापना राजकोष विभाग (Treasury Department) मे की गई थी परन्तु वास्तव मे यह केवल राष्ट्रपति के प्रति ही उत्तरदायी था। सन् १९३९ की पुनर्गठन योजना के अन्तर्गत, यह ब्यूरो राष्ट्रपति के निष्पादक कार्यालय मे स्थानान्तरित कर दिया गया। ब्यूरो के मुख्य अधिकारी ये हैं निर्देशक (Director), छ सहायक निर्देशक और सामान्य परिषद् (General Council)। ८ सितम्बर सन् १९३९ के निष्पादक आदेश (Executive order) ८२४८ के अन्तर्गत, ब्यूरो के कार्य निम्न प्रकार है —

(१) सरकार के राजकोषीय (Fiscal) व वित्तीय कार्यक्रम मे राष्ट्रपति की सहायता करना।

(२) बजट के प्रशासन का पर्यवेक्षण व नियन्त्रण करना।

(३) प्रशासकीय प्रबन्ध की योजनाओ के विकास के सम्बन्ध मे अनुसधान (Research) करना और विकसित प्रशासकीय सगठन एव कार्य-प्रणाली के विषय मे सरकार के निष्पादक विभागो व अभिकरणो को परामर्श देना।

(४) सरकारी सेवा का सचालन अधिक कुशलता तथा मितव्ययता के साथ करने मे राष्ट्रपति की सहायता करना।

(५) प्रस्तावित विधान पर विभागीय परामर्श को स्पष्ट करके तथा उसमे समन्वय करके राष्ट्रपति की सहायता करना।

(६) प्रस्तावित निष्पादक आदेशो तथा घोषणाओ पर विचार तथा स्पष्टीकरण मे, और जहां आवश्यक हो, उनकी तैयारी मे सहायता करना।

(७) सांख्यिकीय सेवाओ (Statistical services)...के सुधार, विकास तथा समन्वय की योजना बनाना और उनकी उन्नति करना।

(८) प्रस्तावित कार्य, वास्तव मे प्रारम्भ किये गये कार्य तथा पूर्ण किये गये कार्य (उस सापेक्षिक समय सहित जोकि सरकार के विभिन्न अभिकरणो ने कार्य को पूरा करने मे लगाया) के सम्बन्ध मे सरकार के अभिकरणो द्वारा सम्पन्न की जाने वाली क्रियाओ की प्रगति से राष्ट्रपति को सूचित रखना, यह सब इसलिए कि विभिन्न अभिकरणो की कार्य की योजनाओ के बीच समन्वय स्थापित किया जा सके और इसलिए कि कांग्रेस द्वारा विनियोजित धन को अधिकतम सम्भव मितव्ययी तरीके से खर्च किया जा सके, जिसमे कि प्रयत्नो का अतिव्यापन (Overlapping) तथा दोहराव (Duplication) कम से कम हो। इस प्रकार ब्यूरो केवल बजट के निर्माण मे राष्ट्रपति की सहायता करने वाला अभिकरण ही नही है, बल्कि इसे इस बात का भी ध्यान रखना पडता है कि सरकार के व्यय को न्यूनतम रखा जा सके।

बजट अनुमानो की तैयारी
(Preparation of Budget Estimates)

सयुक्त राज्य अमेरिका मे बजट के निर्माण का कार्य इसके लागू होने के लगभग एक वर्ष पूर्व प्रारम्भ हो जाता है। सयुक्त राज्य मे वित्तीय वर्ष १ जुलाई से प्रारम्भ होता है और ३० जून को समाप्त होता है, अत ग्रीष्मकाल मे बजट विभाग अपना बजट-ब्यूरो विभिन्न व्ययकारक अभिकरणो से यह प्रार्थना करता है कि वे वर्ष भर के लिये आवश्यक विनियोजको (Appropriation) के अपने-अपने अनुमान प्रस्तुत करें। ब्यूरो को लगभग सितम्बर के मध्य मे ये विभागीय अनुमान प्राप्त हो जाते हैं। अनुमान प्रपत्रो (Estimate forms) मे, जोकि विभागो को भरने होते हैं, तीन प्रकार की सूचनाए मांगी जाती हैं —(१) कार्मिक सेवाओ के व्यय, (२) पूर्तियो अथवा सामग्रियो (Supply) मे व्यय, और (३) पूजीगत व्यय (Capital expenditures)। पहली सूचना मे ऊपर से नीचे तक नियुक्त कर्मचारियो के वेतन व मजदूरिया सम्मिलित होती हैं। दूसरी मे, कार्यालय की वह सामग्री तथा अन्य साज-सज्जा सम्मिलित होती है जोकि विभाग के सचालन के लिये खरीदी जाती है। तीसरी सूचना मे, भवनो (Buildings), भूमि की खरीद तथा स्थायी साज-सज्जा (Equipment) के व्यय सम्मिलित होते हैं।

विभिन्न विभागो द्वारा इस प्रकार एकत्रित किये गये अनुमानो की सूचनाओ का, ब्यूरो के बजट परीक्षको द्वारा, आलोचनात्मक अध्ययन तथा सूक्ष्म परीक्षण किया जाता है। ब्यूरो द्वारा अनुमानो के अध्ययन का यह कार्य कई माह तक चलता रहता है। विभागीय अध्यक्षो, निर्देशक (Director) तथा राष्ट्रपति के बीच अध्ययन, सुनवाई तथा विचार-विमर्श के कार्य मे कई माह लग जाते हैं। विभागों,

ब्यूरो तथा राष्ट्रपति द्वारा अनुमानो का पूर्ण पर्यालोचन (Discussion) होने के पश्चात्, राष्ट्रपति दिसम्बर के अन्त मे अथवा जनवरी के प्रथम सप्ताह मे उन्हे काग्रेस के समक्ष प्रस्तुत करता है।

इस प्रकार निम्नलिखित चरणो मे बजट का निर्माण किया जाता है। सर्व-प्रथम, राष्ट्रपति अपनी वित्तीय नीति का निर्धारण करता है। दूसरे चरण मे, बजट-ब्यूरो आय तथा व्यय के अनुमान तैयार करता है। तीसरे चरण मे, विभिन्न व्यय-कारक विभाग अपने-अपने प्रारम्भिक अनुमान प्रस्तुत करते हैं। चौथे चरण मे, इन प्रारम्भिक अनुमानो पर बजट-ब्यूरो द्वारा विचार किया जाता है। पाचवे मे, व्यय-कारक सेवाए अपने सशोधित अनुमान प्रस्तुत करती हैं। छटवें मे, इन सशोधित अनुमानो पर बजट-ब्यूरो द्वारा पुनः विचार किया जाता है, और अन्तिम चरण मे, बजट-प्रलेख तैयार किया जाता है और काग्रेस के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है।

कॉग्रेस मे बजट
(Budget in the Congress)

जब प्रतिनिधि सभा (House of Representatives) को राष्ट्रपति से बजट प्राप्त हो जाता है तो यह विनियोजन समिति (Committee on Appropriations) के सुपुर्द कर दिया जाता है, जोकि सरकार की अनेक क्रियाओ के विनियोजनो पर विचार करने के लिये स्वय को उप-समितियो (Sub-committees) मे बाँट लेती है। समितिया गवाही के लिए सम्बन्धित विभागो के अधिकारियो को बुला सकती हैं। समितिया अनुमानो मे कोई भी परिवर्तन कर सकती हैं। विभिन्न उप-समितियाँ विनियोजन विधेयको (Appropriation Bills) के रूप मे सभा के समक्ष अपने-अपने प्रतिवेदन प्रस्तुत करती हैं। प्रतिनिधि सभा इन विधेयको पर वाद-विवाद करती है और अनुमानो मे कोई भी परिवर्तन कर सकती है। जब प्रतिनिधि सभा इन अनुमानो (Estimates) को अनुमोदित कर देती है, तब वे सीनेट (Senate) को भेज दिये जाते है। सीनेट तथा इनकी विनियोजन समितियाँ इन अनुमानो मे कोई भी परिवर्तन कर सकती हैं। बहुधा ऐसा होता है कि दोनो सदनो (Houses) द्वारा पास किये गये विवरणो के बीच समझौता कराने के लिये एक 'सम्मेलन समिति' (Conference Committee) की आवश्यकता होती है। दोनो सदनो मे पास होने के पश्चात् विनियोजन विधेयक राष्ट्रपति के पास भेज दिया जाता है जोकि, कभी-कभी को छोडकर, उस पर हस्ताक्षर कर देता है।

"Pork Barrel" and "Logrolling"

सयुक्त राज्य अमेरिका की काग्रेस जब वित्तीय मामलो पर विचार करती है तो उसे बडे बाहरी दबावो के अन्तर्गत कार्य करना पडता है जोकि "Pork Barrel" तथा "Logrolling" के नाम से प्रसिद्ध हैं। वस्तु-स्थिति यह थी कि सघीय राजकोष के धन को "सुअर के मास का बडा पीपा" (Barrel of pork) समझा जाता था और काग्रेस का प्रत्येक सदस्य अपने-अपने चुनाव-क्षेत्र के लिए उसका

अधिक से अधिक भाग प्राप्त करने का प्रयत्न करता था, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कि दासता के दिनो मे प्रत्येक परिवार का मुखिया उस समय सुअर के मास का अपना हिस्सा प्राप्त करने का प्रयत्न करता था जबकि मालिक के घर मास का वर्तन खोला जाता था। काग्रेस के सदस्य, स्थानीय दबावो के कारण, स्थानीय कार्यो के लिये अधिकतम धन प्राप्त करने का प्रयत्न करते थे। चूंकि काग्रेस का प्रत्येक सदस्य अपने जिले के लिए अधिकतम धन प्राप्त करना चाहता था अत वे परस्पर सहयोग करते थे और एक दूसरे का समर्थन करते थे। इस पारस्परिक समर्थन को "लट्ठा लुढकाना" (Log-rolling) कहा जाता था। Prok-barrel तथा Log-rolling के द्वारा सर्वोत्तम रीति से तैयार किये गये अनुमान भी लूट का सा माल बन जाते थे।[1]

राजस्व के उपाय
(Revenue Measures)

खर्च के लिये धन की अनुमति देने के पश्चात् काग्रेस राजस्व के उपायो के सम्बन्ध मे विधि (Law) का निर्माण करती है। काग्रेस वर्ष भर के लिये ही राजस्व के उपायो से सम्बन्धित विधि का निर्माण नही करती, बल्कि लगभग प्रत्येक अधिवेशन मे यह राजस्व विधियो मे सशोधन भी करती है। प्रतिनिधि सभा मे 'उपाय व साधन समिति' (Ways and Means Committee) और सीनेट मे वित्त समिति (Finance Committee) पर सभी राजस्व विधेयको (Revenue Bills) को तैयार करने का कार्यभार होता है। सदन समिति (House Committee) सभी क्षेत्रो से, जैसे कि राजकोष के सचिव, राष्ट्रपति, अध्यक्ष (Speaker) और प्रेस से, राजस्व के मामलो के सम्बन्ध मे परामर्श तथा सुझाव प्राप्त करती है 'उपाय व साधन समिति' बैठको का आयोजन करती है, वाद-विवाद करती है और राष्ट्रपति, अथवा अध्यक्ष अथवा सीनेट की वित्तसमिलि से सुझाव प्राप्त करती है और तत्पश्चान् सदन के समक्ष विधेयक प्रस्तुत करती है। सदन मे विधेयक पर वाद-विवाद किया जाता है, उसमे सशोधन किया जाता है और तब उसे स्वीकृत किया जाता है। तत्पश्चात् विधेयक सीनेट को सौंप दिया जाता है, जहाँ पहले वह सीनेट की वित्त समिति मे जाता है और फिर सीनेट मे। दोनो सदनो मे यदि कोई मतभेद होता है तो उसे "सम्मेलन" (Conference) द्वारा दूर कर लिया जाता है। दोनो सदनो मे स्वीकृत होने के पश्चात्, राजस्व विधेयक राष्ट्रपति के पास भेज दिया जाता है जोकि बिना किसी हेर-फेर के उस पर हस्ताक्षर कर देता है। इस प्रकार व्यय की अनुमति देकर और

---

1 "If the odour of pork does not fill the halls of Congress to the extent it did forty years ago, it must nevertheless be sadly recorded that pork still holds a place as a congressional diet Even most of the economy-minded Congresssmen either partake there of or allow their *colleagues to indulge* "
—Jhonson, *op cit*, p 485

राजस्व की व्यवस्था करके, काग्रेस आय तथा व्यय के अनुमानो के वार्षिक बजट को पास करने का अपना पहला कार्य पूर्ण कर लेती है।

बजट का प्रबन्ध
(Administering the Budget)

काग्रेस द्वारा बजट पास कर देने के पश्चात् देखना यह होता है कि व्ययकारक अभिकरणो (Spending agencies) के हिस्से मे जो धन आया है उसे वे काग्रेस द्वारा निर्धारित उद्देश्यो के अनुसार ही व्यय करे। अत बजट के प्रबन्ध तथा कार्यान्वय के लिए, सन् १९२१ के 'बजट तथा लेखाकन अधिनियम' (Budget and Accounting Act) के द्वारा एक स्वतन्त्र सस्थान (Establishment) की स्थापना की गई जोकि 'सामान्य लेखाकन कार्यालय' (General Accounting Office) के नाम से प्रसिद्ध है। महानियन्त्रक (Comptroller General) इस कार्यालय का अध्यक्ष होता है जिसकी नियुक्ति राष्ट्रपति तथा सीनेट द्वारा पन्द्रह वर्ष के लिए की जाती है। यह कार्यालय कार्यपालिका के नियन्त्रण से बहुत कुछ मुक्त रहता है। सामान्य लेखाकन कार्यालय तथा बजट-ब्यूरो बजट का प्रबन्ध व प्रशासन करते हैं। कार्यपालिका द्वारा बजट-ब्यूरो को बजट के पर्यवेक्षण (Supervision), नियन्त्रण तथा कार्यान्वय का कार्य सौपा जाता है। बजट के निर्देशक (Director) के माध्यम से, राष्ट्रपति सरकार के व्ययकारक अभिकरणो से यह माग करता है कि व्यय करने से पहले वे धनराशियो के मासिक विवरण-पत्र (Monthly statements) प्रस्तुत करे, निर्देशक की स्वीकृति के पश्चात् ऐसी मासिक धनराशियो से अधिक व्यय नही किया जा सकता। इस प्रकार, काग्रेस द्वारा विनियोजन (Appropriation) का अर्थ व्यय का आदेश (Order) नही है, बल्कि कार्यपालिका के अनुमोदन (Approval) की स्थिति मे, वह तो केवल व्यय करने की अनुमति (Permission) मात्र है। ब्यूरो का निर्देशक सरकार के अत्यधिक तथा निरर्थक खर्चों को रोकने के लिए अपने अधिकार का प्रयोग कर सकता है।

महानियन्त्रक विभागो तथा सस्थानो के लिए हिसाब-किताब रखने की एक पद्धति निर्धारित करता है और सयुक्त राज्य के द्वारा अथवा उसके विरुद्ध किये जाने वाले दावो (Claims) का निबटारा करता है। परन्तु उसके मुख्य कार्य लेखाकन (Accounting) तथा लेखा-परीक्षण (Auditing) के ही हैं। अपनी लेखाकन सत्ता (Accounting authority) के द्वारा यह प्रस्तावित खर्चों तथा धन की उपलब्धता के बारे मे निर्णय करता है। अपनी लेखा-निरीक्षण सत्ता (Auditing authority) के द्वारा यह सौदो (Transactions) के हो चुकने के पश्चात् हिसाब-किताब की जांच व परीक्षण करता है जिससे कि व्यय मे पाई जाने वाली किसी भी अवैधानिकता अथवा अनियमितता का पता लगाया जा सके। इस प्रकार प्रत्येक पग पर जाच व परीक्षण की व्यवस्था की जाती है जिससे कि धन के दुरुपयोग अथवा अपव्यय को रोका जा सके।

सयुक्त राज्य अमेरिका मे वित्त पर काग्रेस की सत्ता वास्तविक है और प्रभावशाली है। काग्रेस किसी भी कर मे कटौती कर सकती है और किसी भी विशिष्ट खर्च मे वृद्धि कर सकती है। काग्रेस व्यय की किसी भी मद को बढा अथवा घटा सकती है। काग्रेस मे स्वीकृत होने के पश्चात् बजट जिस रूप मे बाहर आता है उसके विषय मे कार्यपालिका सदा ही निश्चित नही होती। सयुक्त राज्य अमेरिका मे काग्रेस को बजट सम्बन्धी प्रस्तावो मे सशोधन करने की पूर्ण शक्ति प्राप्त है, एक ऐसी शक्ति जोकि ब्रिटेन मे ससद को प्राप्त नही है।

ब्रिटिश तथा अमरीकी पद्धतियो की तुलना
(British and American Systems Compared)

समानतायें
(Similarities)

(१) दोनो ही देशो मे अनुमान (Estimates) कार्यपालिक (Executive) द्वारा तैयार किये जाते हैं।

(२) दोनो देशो मे, बजट मे वर्ष भर के व्यय के अनुमान दिये जाते हैं और उस व्यय के लिए जितनी आय की आवश्यकता होती है उसके पूर्वानुमानित आकडे दिए जाते हैं।

(३) सयुक्त राज्य की काग्रेस की विनियोजन समिति की बैठकें ब्रिटेन की पूर्ति समिति के वाद-विवाद के सदृश होती हैं।

(४) दोनो देशो मे, विस्तृत राजस्व अनुमानो पर 'उपाय व साधन समिति' मे वाद-विवाद किया जाता है।

विभिन्नतायें
(Differences) :

(१) आय तथा व्यय के अनुमानो की स्वीकृति की कार्य-पद्धति ब्रिटेन के मुकाबले सयुक्त राज्य अमेरिका मे कम एकीकृत तथा कम केन्द्रित है। केवल एक विनियोजन विधेयक तथा एक वित्त विधेयक की बजाय, सयुक्त राज्य अमेरिका की काग्रेस मे व्यय तथा कराधान (Taxation) का निर्धारण क्रमश पृथक्-पृथक् उपायो की एक शृ खला के रूप मे किया जाता है। पृथक्-पृथक् विनियोजन विधेयको के कारण, वर्ष भर के कार्यक्रम पर सम्पूर्णरूप मे विचार करने का कार्य कांग्रेस के लिए कम आसान बन जाता है।

(२) काग्रेस मे प्रत्येक सदस्य को इस बात की छूट होती है, कि वह व्यय मे वृद्धि तथा करो मे कमी करने का प्रस्ताव कर सके। ब्रिटेन की ससद मे यह सम्भव नही है। इसी कारण यह आलोचना की जाती है कि ब्रिटिश ससद की वित्तीय शक्तिया कम कर दी गई हैं। सन् १९१७ मे ब्रिटेन मे राष्ट्रीय व्यय पर एक प्रवर समिति (Select committee) की नियुक्ति की गई थी जिसका कार्य वित्त पर

ससदीय नियन्त्रण के सम्पूर्ण प्रश्न पर विचार करना था। इस समिति द्वारा सन् १६१८ मे प्रस्तुत किये गए प्रतिवेदन मे यह कहा गया कि निस्सन्देह स्थिति यह थी कि वह पद्धति पूर्णतया असन्तोषजनक थी जिसके अन्तर्गत कि मन्त्रालय के बजट प्रस्तावो मे परिवर्तन न किये जा सकने की व्यवस्था मन्त्रालय को अस्वीकार्य थी। प्रतिवेदन मे समिति ने कहा कि —[1]

"कुछ अपवादो को छोडकर, (जाँच के प्रश्नो के) उत्तरो से यही एक राय प्रकट होती है कि व्यय पर ससदीय नियन्त्रण की वर्तमान पद्धति अपर्याप्त है। उस दृष्टि से हम सहमत हैं वर्तमान कार्यविधि (Procedure) से सदन (House) सन्तुष्ट नही है।"

"इसमे कोई सन्देह नही कि ससद के समक्ष अनुमानो का प्रस्तुतीकरण बडा लाभप्रद है। इससे अनुमानो की धनराशियो का प्रचार हो जाता है तथा उनके व्यय के लिए उत्तरदायित्व का निर्धारण हो जाता है। मन्त्रियो तथा विभागो पर भी इसका परोक्ष प्रभाव पडता है क्योकि यह सम्भावना सदा बनी रहती है कि अनुमानो की किसी भी मद को चुनौती दी जा सकती है। नीति तथा प्रशासन के पर्यालोचन के लिये पूर्ति समिति मे किये जाने वाले वाद-विवाद अत्यावश्यक होते है। परन्तु जहाँ तक व्यय के प्रस्तावो के प्रत्यक्ष सक्रिय नियन्त्रण का सम्बन्ध है, यह कहना ठीक ही होगा कि यदि अनुमान ससद मे प्रस्तुत न किये गये होते और पूर्ति समिति की स्थापना ही न हुई होती, तब भी कोई विशेप अन्तर नही पडता। वस्तु-स्थिति यह है कि अधिकतर अनुमान प्रतिवर्ष प्रत्येक सत्र (Session) के अन्त मे विवादान्तक प्रस्ताव (Closure) के अन्तर्गत बिना जरा भी वाद-विवाद के औपचारिक रूप से (Formally) पास कर दिये जाते है। यद्यपि प्रत्येक अनुमान, चाहे उस पर विवादान्तक प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया हो अथवा नही, ससदीय प्रक्रिया (Parliamentary process) मे से ठीक वैसा का वैसा ही निकल जाता है जैसा कि वह आया था, तथापि यह नही कहा जा सकता कि किसी भी वर्ष मे अथवा किसी भी मद के अन्तर्गत ऐसा अवसर कभी आता ही नही कि जिसमे व्यय के प्रस्तावो पर लाभप्रद रीति से पुनर्विचार अथवा सशोधन किया जाता हो।"

"अनुमानो के प्रस्तुत किये जाने से पूर्व राजकोष द्वारा सामान्यत उनका सूक्ष्म परीक्षण किया जाता है। परन्तु राजकोष (Treasury) स्वय कार्यपालिका (Executive) का ही एक अग होता है। जब कोई भी विभागीय मन्त्री ऐसे किसी भी प्रस्ताव के बारे मे, जिसे कि वह प्रस्तुत करना चाहता है अथवा अपने अनुमानो मे रखना चाहता है, अर्थ महामात्य (Chancellor of the Exchequer) की व्यक्तिगत सहमति प्राप्त कर लेता है, तो अनिवार्यत ही राजकोष उस प्रस्ताव के बारे मे मौन धारण कर लेता है। राजकोष का नियन्त्रण, एक निश्चित सीमा तक बहुमूल्य अवश्य है, परन्तु वह ससदीय नियन्त्रण का स्थानापन्न (Substitute) नही है।"

1 Reports from the Select Committee on National Expenditure, p 115

जहाँ तक अमेरिकन पद्धति का सम्बन्ध है, यह आरोप लगाया जाता है कि कांग्रेस को अत्यधिक शक्ति देने से कार्यपालिका शक्तिहीन हो गई है। इस बात का सर्वश्रेष्ठ ज्ञान कार्यपालिका को ही हो सकता है कि व्यय के लिए कितने धन की आवश्यकता है। व्यवस्थापिका को धन की स्वीकृति देनी चाहिए और तब कार्यपालिका को उसके लिए उत्तरदायी बना देना चाहिए। परन्तु सयुक्त राज्य अमेरिका मे अध्यक्षात्मक पद्धति की सरकार (Presidential system of government) के कारण ऐसा होना सम्भव नही है। इस प्रकार विभिन्न देशो की वित्तीय प्रणालियां उनमे प्रचलित राजनैतिक पद्धतियो पर निर्भर होती हैं। ब्रिटेन की राजनैतिक पद्धति मे मन्त्रि-परिषद् (Cabinet) नीति-निर्धारक अभिकरण है और व्यवस्थापिका (Legislature) उस नीति को कार्यान्वित करने के उपायो की व्यवस्था करती है तथा कार्यपालिका को किसी भी त्रुटि अथवा भूल के लिए, यदि कोई हो तो, उत्तरदायी बनाती है। सयुक्त राज्य अमेरिका मे 'निर्धारक' कार्य कांग्रेस मे निहित है अत उनकी वित्तीय व्यवस्थाओ के सम्बन्ध मे भी कांग्रेस ही पूर्ण सत्ता का प्रयोग करती है।

२९

भारतीय बजट अथवा आय-व्ययक
(Indian Budget)

भारतीय बजट की तैयारी
(Preparation of the Indian Budget)

बजट अनुमानो की तैयारी किसी भी देश के वित्तीय प्रशासन का प्रथम पग है। बजट अनुमानो की तैयारी का उत्तरदायित्व कार्यपालिका (Executive) के कधो पर होता है। कार्यपालिका को विभिन्न विभागो की आवश्यकताओ का ज्ञान होता है अत वही इस स्थिति मे होती है कि आय तथा व्यय के अनुमानो को सर्वश्रेष्ठ रीति से तैयार कर सके। भारत मे वित्त मन्त्रालय (Finance Ministry), प्रशासकीय मन्त्रालय और अधीनस्थ कार्यालय, योजना आयोग (Planning Commission) तथा नियन्त्रक व महालेखा-परीक्षक (Comptroller and Auditor General), सभी बजट की तैयारी मे लगे रहते हैं।

भारतीय वित्तीय वर्ष (Indian Financial Year) १ अप्रैल से प्रारम्भ होता है, अत उससे पहले वर्ष के जुलाई अथवा अगस्त मास से ही अनुमानो (Estimates) की तैयारी का कार्य प्रारम्भ हो जाता है। बजट की तैयारी का कार्य स्थानीय कार्यालयो से प्रारम्भ होता है। जुलाई अथवा अगस्त मे वित्त मन्त्रालय प्रशासकीय मन्त्रालयो तथा विभागाध्यक्षो को उनके व्यय की आवश्यकताओ के अनुमान तैयार करने के लिए प्रपत्र (फार्म) भेजता है। विभागो द्वारा ये निर्धारित प्रपत्र स्थानीय कार्यालयो को भेज दिये जाते है जोकि उन पर अनुमान तैयार करते हैं। प्रत्येक प्रपत्र (फार्म) मे निम्नलिखित खाने होते हैं—

(१) गत वर्ष की वास्तविक आय तथा व्यय, (२) वर्तमान वर्ष के स्वीकृत अनुमान, (३) वर्तमान वर्ष के सशोधित अनुमान, और आगामी वर्ष के लिए बजट अनुमान। अनुमानो मे प्रस्तावित वृद्धि अथवा कमी के विस्तार के लिए भी प्रपत्र (फार्म) मे एक खाना (Column) होता है।

अनुमान प्रपत्र की प्रतिलिपि अग्राकित सारिणी के अनुसार है—

Budget Estimate for the year 19—

Minor head & sub heads of appropriation	Actuals for the last year	Budget estimates as sanctioned for the current year	Revised estimates for the current year		Revised estimates for the next year		Expansion of increase or decrease
			Disbursing officer	Head of the Deptt	Disbursing officer	Head of the Deptt	

स्थानीय कार्यालय के प्रपत्र प्रशासकीय मन्त्रालयो के सम्बन्धित विभागो को भेजते हैं। विभागाध्यक्षो द्वारा इन अनुमानो का सूक्ष्म निरीक्षण तथा पुनर्विलोकन किये जाने के पश्चात् प्रशासकीय मन्त्रालय (Administrative Ministers) अपने-अपने विभागो के सभी अनुमानो को एकीकृत करते हैं और नवम्बर के मध्य के लगभग वित्त मन्त्रालय को प्रेषित कर देते हैं। हर एक विभाग के अनुमानो की एक

प्रतिलिपि भारत के महालेखापाल (Accountant General) को प्रेषित कर दी जाती है। वह विभिन्न मदो (Items) की जाच करता है और यह देखता कि अनुमानो मे सभी स्वीकृत प्रभार (Charges) ही वर्तमान हैं और अस्वीकृत प्रभार उनमे सम्मिलित नही किये गये हैं। वह प्रशासकीय मन्त्रालयो के अनुमानो के बारे मे अपनी टिप्पणिया वित्त-मन्त्रालय के समक्ष प्रस्तुत करता है।

वित्त-मन्त्रालय द्वारा अनुमानो का सूक्ष्म परीक्षण
(Scruting of Estimates by the Finance Ministry)

प्रशासकीय मन्त्रालयो द्वारा तैयार किये गये बजट अनुमानो की जब महालेखापाल द्वारा जाच कर ली जाती हैं, तत्पश्चात् वित्त-मन्त्रालय द्वारा उनका सूक्ष्म परीक्षण किया जाता है। प्रशासकीय मन्त्रालयो द्वारा तैयार किये गये बजट अनुमानो को मोटे रूप मे तीन भाग मे बाटा जाता है —

(१) स्थायी प्रभार (Standing Charges), (२) प्रचलित योजनायें (Continuing schemes) और (३) नवीन योजनायें (New Schemes)।

(१) **स्थायी प्रभार अथवा स्थायी व्यय**—स्थायी व्यय मे स्थायी सस्थाओ (Permanent establishment) के वेतन भत्ते (Allowances) और व्यय तथा कार्यालय के प्रासगिक व्यय (Office contingencies) सम्मिलित हैं। इस प्रकार के व्यय मे सम्बन्धित विभागीय अनुमान प्रशासकीय मन्त्रालय द्वारा सूक्ष्म परीक्षण के लिए, सीधे वित्त-मन्त्रालय के आर्थिक मामलो के विभाग (Departmenr of Economic Affairs) के बजट सभाग (Budget Division) को भेजे जाते हैं।

(२) **प्रचलित योजनायें अथवा कार्यक्रम** प्रशासकीय मन्त्रालयो द्वारा तैयार की गई प्रचलित योजनाओ के अनुमानो का सूक्ष्म परीक्षण व्यय विभाग (Department of Expenditure) मे किया जाता है। यह सूक्ष्म परीक्षण पहले से ही किये गए कार्य की प्रगति, उस बारे मे की गई वचन-वद्धताओ (Commitments) तथा अन्तिम वर्ष के लिए कार्य के सम्पादन की योजनाओ एव प्रवृत्तियो (Trends) के सम्बन्ध मे किया जाता है। यह सूक्ष्म परीक्षण गत वर्ष के कार्य सम्पादन के सम्बन्ध मे तथा सतत प्रकृति (Continuous type) का होता है।

(३) **नवीन योजनायें अथवा कार्यक्रम**—वित्त-मन्त्रालय द्वारा अनुमानो का वास्तविक सूक्ष्म परीक्षण नये कार्यक्रमो मे प्रस्तावित खर्चो के सम्बन्ध मे होता है। बजट के आवश्यक व्यवस्था करने से पहले, व्यय की गई मदो की जाच विभिन्न प्रशासकीय मन्त्रालयो मे सम्बन्धित वित्तीय सलाहकारो द्वारा की जाती है। पूंजीगत व्यय (Capital expediture) के अनुमानो की जाच भी वित्तीय सलाहकारो द्वारा की जाती है और फिर इन अनुमानों पर योजना आयोग (Planning Commission) के परामर्श से आर्थिक मामलो के विभाग द्वारा यह विचार किया जाता है। वित्तीय साधनो (Resources) की उपलब्धता के आधार पर तथा बजट म सम्मिलित करने के लिए प्रतियोगी मागो की प्रत्येक मद की प्राथमिकता (Priority) के सम्बन्ध

मे किया जाता है। वित्त-मन्त्रालय द्वारा बजट मे व्यय की नई मदो की पूर्ण जाच की जाती है। नई योजनाओ पर व्यय के सम्बन्ध मे वित्त-मन्त्रालय द्वारा जिस प्रकार के प्रश्न पूछे जाते हैं वे ये हैं नये व्यय की आवश्यकता क्या है ? भूतकाल (Past) मे कार्य किस प्रकार चल रहा था ? आदि-आदि। परन्तु इस पूर्व-बजट सूक्ष्म परीक्षण (Pre-budget scrutiny) के सम्बन्ध मे एक आलोचना यह की जाती है कि ऐसी नई योजनाओ के सम्बन्ध मे, जिनमे कि भारी व्यय की आवश्यकता होती है, यह सूक्ष्म परीक्षण सदा ही पूर्ण नही होता है। इसका परिणाम यह होता है कि योजना की वास्तविक आवश्यकताओ के स्पष्ट ज्ञान के अभाव मे, बजट मे उसके लिए एक-मुश्त धनराशि की व्यवस्था कर दी जाती है। इस असन्तोषजनक सूक्ष्म परीक्षण का कारण यह है कि प्रशासकीय मन्त्रालय बहुधा ऐसी योजनायें बजट मे सम्मिलित करने के लिए, ले आते हैं जोकि केवल सैद्धान्तिक अथवा विचार मात्र ही होती हैं और इसके अतिरिक्त अधिकाश योजनाये भी मन्त्रालय को ठीक बजट की तैयारी के समय प्राप्त होती हैं। ऐसी योजनाओ को बजट मे सम्मिलित करने पर बजटोत्तर (Post-budget) सूक्ष्म परीक्षण आवश्यक हो जाता है, जिसका परिणाम यह होता है कि व्यय की स्वीकृतिया प्रदान करने मे देरियाँ होती हैं। यह सम्पूर्ण स्थिति बडी असन्तोषजनक है। "यह अत्यन्त आवश्यक है कि प्रशासकीय मन्त्रलाय बजट मे सम्मिलित करने के लिए अपनी सम्बन्धित योजनाये वित्त-मन्त्रलाय के सम्मुख केवल तभी रखें जबकि किसी विशिष्ट योजना से सम्बन्धित वह समस्त विवरण तैयार हो जाए जोकि उस योजना का स्पष्ट ज्ञान प्राप्त करने के लिए आवश्यक तथा पर्याप्त हो। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए दूरदर्शितापूर्ण योजनाओ के निर्माण का कार्य वर्ष भर चलता रहना चाहिए जिससे कि बजट की तैयारी के समय हो जाने वाली भीड-भाड कम की जा सके।"[1] इसी प्रकार अन्य अनुमान समिति (Estimates Committee) के प्रतिवेदन मे कहा गया कि "समिति इस स्थिति को बडी असन्तोषजनक समझती है कि वित्त-मन्त्रालय बजट मे सम्मिलित करने के लिए अपूर्ण तथा अविचार-पूर्ण योजनाओ को स्वीकार करने मे इस प्रकार जल्दबाजी करता है। स्पष्टत ही, इस कार्यविधि का परिणाम यह होता है कि ससद मे ऐसे अपूर्ण अनुमान उपस्थित कर दिये जाते है जो गलत सिद्ध हो सकते हैं और जिनके कारण योजनाओ के वित्तीय पहलुओ के नियन्त्रण मे शिथिल हो सकती है। तथा योजनाओ के कार्यान्वय मे देरी हो सकती है। समिति का यह मत है कि वित्त-मन्त्रालय का यह कर्त्तव्य तथा उत्तरदायित्व है कि वह यह देखे कि ऐसी भी योजना बजट मे सम्मिलित न की जाए जिसका सूक्ष्म परीक्षण न हुआ हो। किन्तु यदि ऐसी योजनाये एक वर्ष मे पूर्ण तथा परिपक्व हो जायें और यदि उनका शीघ्र क्रियान्वय आवश्यक हो, तो उस स्थिति

1 Estimates Committee 1957-1958 Twentieth Report (*Second Lok Sabha*) Budgetary Reform, p 22

मे अनुपूरक माँगें प्रस्तुत की जानी चाहिए।"[1] इस प्रकार नई योजनाओ तथा व्यय की नई मदो का सूक्ष्म परीक्षण (Scrutiny) विस्तृत तथा पूर्ण रहना चाहिए। यदि किसी अत्यन्त महत्वपूर्ण मामले के बारे मे प्रशासकीय मन्त्रालय तथा वित्त-मन्त्रालय के बीच कोई मतभेद हो तो उस स्थिति मे मामला मन्त्री-परिषद् (Cabinet) को सौंप दिया जाता है, और मन्त्रि-परिषद् मे भी यदि कोई मतभेद हो तो वित्तीय मामलो के बारे मे वित्त-मन्त्रालय की आवाज सबसे महत्वपूर्ण मानी जाती है।

अनुमानो का पुनर्वर्गीकरण (Reclassification of Estimates)

मन्त्रालय के विभागो आदि के द्वारा जो अनुमान तैयार किये जाते हैं वे स्थायी व्ययो, प्रचलित योजनाओ तथा नई योजनाओ के रूप मे होते है। वित्त-मन्त्रालय द्वारा जब वे अन्तिम रूप से स्वीकृत कर दिये जाते हैं तो निम्न प्रकार उनका पुनर्वर्गीकरण कर दिया जाता है

अधिकारियो का वेतन	Pay of officers
सस्थान का वेतन	Pay of Establishment
भत्ते तथा व्यवसायिक व्यय	Allowances and Honoraria
अन्य प्रभार	Other Charges

यह वर्गीकरण ब्रिटिश सरकार के लिए उपयुक्त था क्योकि उस सरकार का मुख्य उद्देश्य कानून व व्यवस्था की स्थापना करना था अत उस समय केवल न्यूनतम परिपालन सेवाओ (Maintenance services) की ही आवश्यकता होती थी। वर्तमान कल्याणकारी राज्य (Welfare state) मे पुराना वर्गीकरण बिल्कुल व्यर्थ है। अत अनुमान समिति ने यह सिफारिश की है कि अनुमानो का वर्गीकरण निम्न प्रकार होना चाहिए

स्थायी प्रभार अथवा स्थायी व्यय
(Standing Charges)

अधिकारियो व कर्मचारी-वर्ग का वेतन
अधिकारियो व कर्मचारी-वर्ग के भत्ते (Allowances)।
कार्यालय के प्रासगिक व्यय (Contingencies)।
अन्य मदें (उन बडी मदो का उल्लेख किया जाय जिनमे प्रत्येक की लागत १०,००० रु० से अधिक हो

प्रचलित योजनायें
(Continuing Schemes)

योजना न० १ (योजना का नाम) (Name of the scheme)।
अधिकारियो व कर्मचारी-वर्ग का वेतन।

---

1 Estimates Committee, 1958-59 Fifty-fifth Report (Second Lok Sabha) Ministry of Finance (Department of Expenditure) pp 6-7

अधिकारियों व कर्मचारी-वर्ग के भत्ते ।
कार्यालय के प्रासगिक व्यय
अन्य मदें (उन बडी मदो का उल्लेख किया जाय जिनमे प्रत्येक की लागत १०,००० रु० से अधिक हो ।)
योजना स० २ (योजना का नाम)
योजना स० ३ (योजना का नाम)

नवीन योजनायें
(New Schemes).

योजना स० १ (योजना का नाम)
अधिकारियो व कर्मचारी-वर्ग के वेतन
अधिकारी व कर्मचारी-वर्ग के भत्ते
कार्यालय के प्रासगिक व्यय
अन्य मदें (उन बडी मदो का उल्लेख किया जाय जिनमे प्रत्येक की लागत १०,००० रु० से अधिक हो ।)
योजना स० २ (योजना का नाम)
योजना स० ३ (योजना का नाम)

अनुमानो के इस वर्गीकरण से व्यय की सम्पूर्ण योजना बिल्कुल स्पष्ट हो जायेगी।

सरकारी आय के अनुमान
(Estimates of Revenue)

व्यय के अनुमान पूर्ण हो जाने के पश्चात्, सरकारी आय अथवा राजस्व (Revenue) के अनुमान तैयार किये जाते है। सरकारी आय का अनुमान लगाना भी वित्त-मन्त्रालय का कार्य है। आय-कर विभाग (Income Tax Department), केन्द्रीय उत्पादन-कर विभाग (Central Excise Department) तथा सीमा-शुल्क (Customs) विभाग, जो कि सरकारी आय का सग्रह करने वाले महत्वपूर्ण विभाग हैं, विगत वर्ष मे सग्रह की गई सरकारी आय के आकडो के आधार पर आगामी वित्तीय वर्ष के लिए सम्भावित सरकारी आय का अनुमान लगाते है। इसके पश्चात् वित्त-मन्त्रालय व्यय की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए करो (Taxes) की दरो मे हेर-फेर करता है। इस स्थिति मे यह हो सकता है कि नये कर लगाये जायें, पुराने समाप्त कर दिये जायें या बढा दिये जायें अथवा घटा दिये जायें।

जब वित्त-मन्त्रालय द्वारा आय तथा व्यय के अनुमान तैयार कर लिए जाते हैं तो ससद् मे प्रस्तुत करने के लिए दो विवरण-पत्र (Statements) तैयार किए जाते हैं। वे हैं "वार्षिक वित्तीय विवरण-पत्र" (Annual Financial Statement) और "अनुदानो की मागें" (Demands of Grants) प्रथम विवरण-पत्र मे

सार्वजनिक लेखे (Public Accounts) तथा सचित निधि Consolidated Fund), दोनो के ही अन्तर्गत सरकार की कुल प्राप्तियाँ (Gross receipts) तथा व्यय दिखाये जाते हैं। दूसरे विवरण-पत्र (अर्थात् अनुदानो की मांगो) मे वे व्यय दिखाये जाते हैं जिनकी पूर्ति सचित निधि मे से की जाती है। पृथक् प्रशासकीय इकाई की आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए पृथक् मागे प्रस्तुत की जाती हैं।

व्यवस्थापिका के लिए बजट
(Budget for the Legislature)

इस प्रकार सरकारी धन के व्यय से सम्बन्धित विभागो तथा अभिकरणो (Agencies) के लम्बे प्रयत्नो के फलस्वरूप दो महत्वपूर्ण प्रलेखपत्र (Documents) तैयार किये जाते हैं, अर्थात् "वार्षिक वित्तीय विवरण-पत्र" तथा "अनुदानो के लिए मागें" ये प्रलेखपत्र व्यवस्थापिका (Legislature) मे प्रस्तुत किये जाते हैं। सविधान (Constitution) के अनुच्छेद ११२ मे यह व्यवस्था है कि

" (१) प्रत्येक वित्तीय वर्ष के बारे मे ससद् के दोनो सदनो के समक्ष राष्ट्रपति भारत सरकार की उस वर्ष के लिए अनुमानित प्राप्तियो और व्यय का विवरण रखवायेगा जिसे सविधान के इस भाग मे "वार्षिक वित्त-विवरण" के नाम से निर्दिष्ट किया गया है।

(२) वार्षिक वित्त-विवरण मे दिये हुए व्यय के अनुमानो मे—

(क) जो व्यय इस सविधान मे भारत की सचित निधि पर भारत व्यय के रूप मे वर्णित है उसकी पूर्ति के लिए अपेक्षित धनराशियाँ, तथा

(ख) भारत की सचित निधि से किये जाने वाले अन्य प्रस्ताविक व्यय की पूर्ति के लिए अपेक्षित राशिया, पृथक्-पृथक् दिखाई जायेंगी तथा राजस्व लेखे पर होने वाले व्यय का अन्य व्यय से भेद किया जायेगा।

इस रीति के द्वारा कार्यपालिका द्वारा बजट तैयार किया जाता है और विचार तथा अनुमोदन के लिए विधान-मण्डल मे प्रस्तुत किया जाता है।

———

३०

व्यवस्थापिका में भारतीय बजट
(Indian Budget in the Legislature)

बजट अनुमान कार्यपालिका (Executive) द्वारा तैयार किये जाते हैं और तत्पचात् स्वीकृति के लिए व्यवस्थापिका के समक्ष प्रस्तुत किये जाते हैं। व्यवस्थापिका कुछ सिद्धान्तो के आधार पर विनियोजन (Appropriations) का प्रबन्ध करती है अथवा धन की व्यवस्था करती है। ये सिद्धान्त निम्न प्रकार हैं :—

(१) केवल कानून द्वारा पहले से प्राधिकार प्राप्त कार्यों की पूर्ति के लिए ही प्रशासकीय निकायो (Bodies) के लिए विनियोजन किये जाते हैं।

(२) "सरकारी आय की प्राप्ति के लिए विधेयको" (Bills for raising revenue) का निर्माण निम्न सदन (Lower House) मे किया जाता है।

(३) विनियोजन सामान्यत एक सीमित अवधि के लिए, जैसे कि एक वर्ष अथवा ऐसी ही अवधि के लिए किये जाते हैं।

(४) प्रशासकीय अभिकरणो से यह आशा की जाती है कि वे अपना कार्य पूर्णतया विनियोजन विधि (Appropriation law) के अनुसार ही सम्पन्न करेंगे। इसका अर्थ यह है कि धन केवल विनियोजित कार्यों की पूर्ति के लिए ही व्यय किया जावेगा।

(५) विनियोजन प्रक्रिया (Process) व्यवस्थापिका को निरन्तर एक ऐसा अवसर प्रदान करती है कि जिससे वह सरकार की प्रशासकीय नीति पर पुर्नविचार कर सके। इस प्रकार व्यवस्थापिका धन प्राप्त करने वाली तथा धन के व्यय की स्वीकृति देने वाली सत्ता है, अत व्यवस्थापिका की स्वीकृति के बिना कार्यपालिका न तो धन उगाह ही सकती है और न उसे व्यय ही कर सकती है। अब हम देखेंगे कि भारतीय ससद् किस प्रकार बजट को स्वीकार करती है।

वित्त पर ससद् की शक्ति के सवैधानिक उपलब्ध
(Constitutional Provisions Concerning Parliament's Power Over Finance)

भारतीय सविधान मे यह व्यवस्था की गई है कि "प्रत्येक वित्तीय वर्ष के बारे मे ससद के दोनो सदनों के समक्ष राष्ट्रपति भारत सरकार की उस वर्ष के लिए अनुमानित प्राप्तियो और व्यय का विवरण रखवायेगा जिसे 'वार्षिक वित्तीय विवरण-

(छ) इस सविधान द्वारा, अथवा ससद् मे विधि (Law) द्वारा, इस प्रकार भारित घोषित किया गया कोई अन्य व्यय ।[1]

भारत की सचित निधि पर भारित व्यय से सम्बद्ध अनुमान ससद् मे मतदान के लिए न रक्खे जायेंगे, परन्तु इस बात का यह अर्थ न किया जायगा कि वह ससद् के किसी सदन मे उन अनुमानो मे से किसी पर चर्चा को रोकती है ।

उक्त अनुमानो मे से जितने अन्य व्यय से सम्बद्ध हैं वे लोक सभा के समक्ष अनुदानो की मागो के रूप मे रक्खे जायेंगे, और लोक सभा को यह शक्ति प्राप्त होगी कि वह किसी माग को स्वीकार या अस्वीकार करे अथवा किसी माग को, उसमे उल्लिखित राशि को कम करके, स्वीकार करे ।[2]

लोक सभा द्वारा अनुदान किये जाने के पश्चात् भारत की सचित निधि मे से—

(क) लोक सभा द्वारा इस प्रकार किये गये अनुदानो (Grants) की , तथा

(ख) भारत की सचित निधि पर भारित, किन्तु ससद् के समक्ष पहले रखे गये विवरण मे दी हुई राशि से किसी भी अवस्था मे अनधिक (Not exceeding) व्यय की,

पूर्ति के लिए अपेक्षित सब धनो के विनियोजन के लिए विधेयक (Bill) प्रस्तुत किया जायगा ।

इस प्रकार किये गये किसी अनुदान की धनराशि मे हेर-फेर करने, या अनुदान के लक्ष्य को बदलने अथवा भारत की सचित निधि पर भारित व्यय की राशि मे हेर-फेर करने का प्रभाव रखने वाला कोई सशोधन, ऐसे किसी विधेयक पर, ससद् के किसी सदन मे प्रस्तावित नही किया जायगा ,

भारत मे सचित निधि मे से ससद् मे पारित विधि (Law) द्वारा किये गये विनियोजन के अधीन निकालने के अतिरिक्त और कोई धन न निकाला जायेगा ।[3]

अनुपूरक, अतिरिक्त अथवा अधिक अनुदानो के लिए भी यही कार्यविधि (Procedure) अपनाई जायेगी ।

अनुपूरक अतिरिक्त अथवा अधिक अनुदान
(Supplementary, Additional or Excess Grants)

(१) यदि—

(क) अनुच्छेदन ११४ के उपबन्धो (Provisions) के अनुसार निर्मित किसी विधि द्वारा किसी विशेप सेवा पर चालू वित्तीय वर्ष के लिए व्यय किए जाने के लिए प्राधिकृत (Authorised) कोई धनराशि उस वर्ष के प्रयोजनो के लिए अपर्याप्त पाई

1 अनुच्छेद (Art) ११२

2 अनुच्छेद ११३

3 अनुच्छेद ११४

जाती है या जब उस वर्ष के वार्षिक वित्तीय विवरण-पत्र मे अपेक्षित न की गई किसी नई सेवा पर अनुपूरक अथवा अतिरिक्त व्यय की चालू वित्तीय वर्ष मे आवश्यकता पैदा हो गई हो , अथवा

(ख) किसी वित्तीय वर्ष मे किसी सेवा पर, उस सेवा और उस वर्ष के लिए अनुदान की गई धनराशि से अधिक कोई धन व्यय हो गया है, तो राष्ट्रपति यथा-स्थिति (As the case may bc) समद के दोनो मदनो के समक्ष उस व्यय की अनुमानित राशि को दिखाने वाला दूमरा विवरण-पत्र रखवायेगा गथवा लोकसभा मे ऐसी अधिक राशि के लिए माग उपस्थित करायेगा ।[1]

लेखानुदान, प्रत्ययानुदान और अपवादानुदान (Votes on Account, Votes on Credit and Exceptional Grants)

वित्तीय मामलो मे सामान्य प्रक्रिया की पूर्ति के लम्बित (Pending) रहने तक, लोकसभा को यह शक्ति प्राप्त है कि वह अनिश्चित आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए लेखानुदान, प्रत्ययानुदान तथा अपवादानुदान पारित कर सके। भारत मे वित्तीय वर्ष के प्रारम्भ होने से पूर्व बजट सम्बन्धी वाद-विवाद को पूर्ण करने मे समर्थ न हो सके। इस स्थिति मे सदन एक लेखानुदान (Vote on account) पारित कर देता है जोकि सरकार को दो माह की अवधि के लिए धन निकालने का प्राधिकार देता है।

"लोक सभा को—

(क) किसी वित्तीय वर्ष के भाग के लिए अनुमानित व्यय के बारे मे किसी अनुदान को, ऐसे अनुदान के लिए मतदान करने के लिए अनुच्छेद ११३ मे निर्धारित क्रिया की पूर्ति के लम्बित रहने तक, तथा उस व्यय के सम्बन्ध मे अनुच्छेद ११४ के उपबन्धो के अनुसार विधि के पारित होने (Passing) के लम्बित होने तक, पेशगी देने की ,

(ख) जब किसी सेवा की महत्ता या अनिश्चित रूप के कारण माग वैसे ब्यौरे के साथ वर्णित नही की जा सकती जैसा कि वार्षिक वित्तीय विवरण-पत्र मे साधारणतया दिया जाता है तब भारत के सम्पत्ति स्रोतो पर अप्रत्याशित माग की पूर्ति के लिए अनुदान करने की ,

(ग) किसी वित्तीय वर्ष की चालू सेवा का जो अनुदान भाग न हो, ऐसा कोई अपवादानुदान (Exceptional grant) करने की ,

शक्ति होगी तथा उक्त अनुदान जिन प्रयोजनो के लिए किये गये हैं उनके लिए भारत की सचित निधि मे से धन निकालना विधि द्वारा प्राधिकृत करने की

1 अनु० ११५

शक्ति ससद को होगी।"[1]

इसके अतिरिक्त, इस सम्बन्ध मे वित्त विधेयक या सशोधन राष्ट्रपति की सिफारिश के बिना प्रस्तुत या प्रस्तावित न किया जायेगा तथा ऐसे उपबन्ध करने वाला विधेयक राज्य-सभा मे प्रस्तुत न किया जायेगा।[2]

राज्य-सभा की वित्तीय शक्तियाँ
(Financial Powers of the Council of State)

वित्तीय मामलो मे लोकसभा को राज्य-सभा पर सर्वोच्च शक्ति प्राप्त है।

सविधान मे यह व्यवस्था है कि

(१) राज्य-सभा मे धन-विधेयक (Money Bill) प्रस्तुत नही किया जायेगा।

(२) लोकसभा से पारित हो जाने के पश्चात्, धन विधेयक, राज्य-सभा को उसकी सिफारिशो के लिए पहुचाया जायेगा तथा राज्य-सभा, विधेयक प्राप्त होने के चौदह दिन की कालावधि के भीतर, विधेयक को अपनी सिफारिशो सहित लोकसभा को लौटा देगी तथा ऐसा होने पर लोकसभा राज्य-सभा की सिफारिशो मे सबको या किसी को स्वीकार या अस्वीकार कर सकेगी।

(३) यदि राज्य-सभा की सिफारिशो मे से किसी को लोकसभा स्वीकार कर लेती है तो धन-विधेयक राज्य-सभा द्वारा सिफारिश किये गये तथा लोकसभा द्वारा स्वीकृत सशोधनो सहित दोनो सदनो द्वारा पारित समझा जायेगा।

(४) यदि राज्य-सभा की सिफारिशो मे से किसी को भी लोकसभा स्वीकार नही करती है तो धन-विधेयक, राज्य-सभा द्वारा सिफारिश किये गये सशोधनो मे से किसी के बिना, उस रूप मे दोनो सदनो द्वारा पारित समझा जायेगा जिसमे कि वह लोकसभा द्वारा पारित किया गया था।

(५) यदि लोकसभा द्वारा पारित तथा राज्य-सभा को उसकी सिफारिशो के लिए पहुचाया गया धन-विधेयक उक्त चौदह दिन की कालावधि के भीतर लोक-सभा को लौटाया नही जाता तो उक्त कालावधि की समाप्ति पर यह दोनो सदनो द्वारा उस रूप मे पारित समझा जायेगा जिसमे लोकसभा ने उसको पारित किया था।[3]

इस प्रयोजन के लिए कोई भी विधेयक धन-विधेयक समझा जायेगा यदि उसमे केवल निम्नलिखित विषयो मे से सब अथवा किसी से सम्बन्ध रखने वाले उपबन्ध (Provisions) अन्तर्विष्ट हैं, अर्थात्—

1 अनु० ११६
2 अनु० ११७
3 अनु० १०९

(क) किसी कर का आरोपण (Imposition), समाप्ति, परिहार Remission), वदलना या विनियमन ,

(ख) भारत सरकार द्वारा धन उधार लेने का, या कोई प्रत्याभूति (Guarantee) देने का, अथवा भारत सरकार द्वारा लिए गये अथवा लिए जाने वाले किन्ही वित्तीय दायित्वो के सम्बन्ध मे विधि को सशोधित करने का विनियमन ;

(ग) भारत की सचित निधि (Consolidated Fund) अथवा आकस्मिकता निधि (Contingency Fund) की अभिरक्षा, ऐसी किसी निधि मे धन डालना अथवा उसमे से धन निकालना ,

(घ) भारत की सचित निधि मे से धन का विनियोजन (Appropriation) ,

(ड) किसी व्यय को भारत की सचित निधि पर भारित व्यय घोषित करना अथवा ऐसे किसी व्यय की राशि को वढाना ,

(च) भारत की सचित निधि के या भारत के लोक-लेखे (Public Account of India) के मध्य धन प्राप्त करना अथवा ऐसे धन की अभिरक्षा या निकासी करना अथवा सघ या राज्य के लेखो का लेखा-परीक्षण , अथवा

(छ) उप-खण्ड (Sub-clauses) (क) से (च) तक मे उल्लिखित विषयो मे से किसी का आनुषगिक (Incidental) कोई व्यय ।

यदि यह प्रश्न उठता है कि कोई विधेयक धन-विधेयक है या नही तो उस पर लोकसभा के अध्यक्ष (Speaker) का निर्णय व प्रमाण-पत्र अन्तिम होगा ।[1]

सदन में बजट
(Budget in the House)

ससद की वित्तीय शक्तियो से सम्बन्धित सवैधानिक उपबन्धो का विवेचन करने के पश्चात्, अब हम उस कार्य-विधि (Procedure) पर विचार करते हैं जोकि वजट के विवाद, पुनरावलोकन तथा अनुमोदन (Approval) के सम्बन्ध मे सदन मे अपनाई जाती है । निम्नलिखित प्रलेख-पत्र (Documents) वार्षिक वित्तीय विवरण-पत्र के साथ ही सदन मे प्रस्तुत किये जाते है । इनके द्वारा विभिन्न कार्यक्रमो तथा नीतियो की विषय-सूचियो की व्याख्या की जाती है जोकि वजट का ही अग वनती है —

(१) केन्द्र सरकार का वजट ।

(२) तीन खण्डो मे असैनिक अनुमानो (Civil Estimates) के अनुदानो की मागें (Demands) ,

(३) डाक व तार अनुमानो के अनुदानो (Grants) की मागें ।

(४) प्रतिरक्षा सेवाओ के अनुमान ।

---

1 अनु० ११०

(५) बजट पर व्याख्यात्मक स्मृतिपत्र (Explanatory Memorandum on the Budget),

(६) वित्त विधेयक तथा व्याख्यात्मक स्मृतिपत्र,

(७) बजट प्रस्तुत करते समय का वित्त मन्त्री का भाषरण,

(८) विगत वर्ष का आर्थिक सर्वेक्षरण (Economic Survey),

(९) बजट का आर्थिक वर्गीकरण (लगभग एक सप्ताह पश्चात् प्रस्तुत किया जाता है),

(१०) सक्षेप मे वजट (लगभग दो माह पश्चात् किया जाता है)।

एक पृथक् रेलवे बजट भी उपस्थित किया जाता है जिसमे रेलो की आय-व्यय, रेलो के लिए अनुदानो की मागें, बजट प्रस्तुत करने का रेल-मन्त्री का भाषरण तथा रेलवे बजट पर व्याख्यात्मक स्मृति-पत्र सम्मिलित होते हैं। इसके अतिरिक्त, जब भिन्न-भिन्न मन्त्रालयो की मागो पर विवाद तथा मतदान किया जाता है तभी विभिन्न मन्त्रालयो के प्रशासकीय प्रतिवेदन (Reports) भी ससद मे प्रस्तुत किये जाते हैं। जहाँ तक देश की आर्थिक स्थिति तथा नीति सम्बन्धी मामलो का प्रश्न है, वित्त-मत्री का भाषरण तथा आर्थिक सर्वेक्षरण ही सबसे अधिक महत्वपूर्ण प्रलेख-पत्र है। जहाँ तक बजट की कार्य-क्रम सम्बन्धी सूची का सम्बन्ध है, इसके बारे मे अनुदानो की मागें (Demands for grants) तथा व्याख्यात्मक स्मृतिपत्र ही सबसे अधिक महत्वपूर्ण प्रलेखपत्र हैं। अनुदानो की मागें उन मन्त्रालयों तथा विभागो के अनुसार क्रमबद्ध कर ली जाती हैं जिनसे कि मतदान की हुई धनराशियो के लिए सवितरण सत्ताओ (Disbursing authorities) का निर्माण होता है। मागो मे राजस्व तथा पूजीगत व्यय भी पृथक्-पृथक् दिखाये जाते हैं और आगामी वर्ष के लिए वजट अनुमान, चालू वर्ष के लिए सशोधित अनुमान तथा विगत वर्ष के वास्तविक आकडे दिये होते हैं। विनियोजनो सहित इस प्रकार की कुल १४२ मागें होती हैं जिनमे प्रत्येक चार भागो मे बटी होती है प्रथम भागो मे मागो के अधीन कुल अपेक्षित धनराशि दी हुई होती है, द्वितीय भाग मे वडे शीर्षको (Major heads) तथा उप-शीर्षको (Sub-heads) के अन्तर्गत उपलब्ध दिये होते हैं जिससे कि मुख्य रूप से व्यय की ऐसी मदो को प्रकट किया जा सके, जैसे कि अधिकारियो का वेतन, सस्थान का वेतन (Pay of establishment), भत्ते तथा व्यावसायिक व्यय, अन्य प्रभार (Charges) व इगलैड मे प्रभार आदि। तृतीय भाग विभिन्न उपशीर्षको के अन्तर्गत और अधिक व्यौरा प्रस्तुत करता है जिसमे कि अनेक ऐसी मदो (Items) का उल्लेख किया जा सके, जैसे उन अधिकारियो तथा सस्थाओ की सख्या जोकि किसी विशिष्ट मन्त्रालय अथवा विभाग द्वारा उन कार्यक्रमो के सचालन के लिए आवश्यक हो जिनके लिए कि वह उत्तरदायी है, और चतुर्थ भाग मे उन प्रतिलब्धियो (Recoveries) का विस्तृत विवरण दिया होता है जोकि व्यय मे कमी करने के कारण लेखो (Accounts) मे समायोजित (Adjust) की जाती है। व्याख्यात्मक स्मृतिपत्र

राजस्व के अनुमानो, राजस्व (Revenue) मे से किये जाने वाले व्यय, और पूजी तथा ऋण-शीर्षको के सौदो के महत्वपूर्ण पहलुओ के बारे मे जानकारी प्रदान करता है। इसके साथ ही साथ, इन स्मृतिपत्रो (Memoranda) मे कई प्रकार के विवरण-पत्र (Statements) भी दिये जाते है जोकि बजट प्रलेख-पत्र की बहुसख्यक मागो मे बिखरी हुई व्यय की मदो को एक स्थान पर इकट्ठा करते है। व्याख्यात्मक स्मृतिपत्रो (Explanatory Memoranda) मे सरकारी आय तथा व्यय के बारे मे व्यापक जानकारी दी हुई होती है। विस्तृत जानकारी से परिपूर्ण ये सब प्रलेख-पत्र (Documents) सदन के समक्ष रखे जाते हैं जिससे कि सदस्य बजट के सभी वित्तीय पहलुओ को समझने मे समर्थ हो सके।

बजट का प्रस्तुतीकरण
(Presentation of the Budget)

बजट वित्त-मन्त्री द्वारा फरवरी के अन्तिम दिन सामान्यतया शाम के ५ बजे लोक सभा मे प्रस्तुत किया जाता है। इसके साथ ही, वित्त-मन्त्री अपना बजट भाषण देते हैं। बजट जिस दिन लोक-सभा मे प्रस्तुत किया जाता है उस दिन इस पर कोई वाद-विवाद नही होता।[1]

बजट पर सामान्य वाद-विवाद
(General Discussion of the Budget)

सदन मे बजट प्रस्तुत होने के कुछ दिन पश्चात्, बजट पर सामान्य वाद-विवाद होता है। सामान्य वाद-विवाद के समय, "सदन को इस बात की छूट होगी कि वह सम्पूर्ण बजट अथवा उसमे उत्पन्न सिद्धान्त के किसी प्रश्न के बारे मे वाद-विवाद कर सके, परन्तु इस समय कोई भी प्रस्ताव प्रस्तुत न किया जा सकेगा, न सदन मे बजट पर मतदान ही लिया जा सकेगा।" वाद-विवाद के अन्त मे वित्त-मन्त्री विवाद का एक सामान्य उत्तर देते है।[2] बजट पर सामान्य वाद-विवाद के लिए आमतौर पर दो या तीन दिन दिये जाते है।

मॉगो पर मतदान
(The Voting of Demands)

जब बजट पर सामान्य वाद-विवाद समाप्त हो जाता है तब लोक सभा मे अनुदानो की मागो पर अर्थात् बजट के व्यय भाग पर मतदान लेने का कार्य प्रारम्भ होता है। अनुदान की माग एक प्रस्ताव के रूप मे की जाती है, "कि (अमुक-अमुक) मागो के सम्बन्ध मे ३१ मार्च १६— को समाप्त होने वाले वर्ष की अवधि मे व्ययो की अदायगी के लिए, एक धनराशि जोकि रु० क से अधिक न हो, राष्ट्रपति के लिए

1 Rules of Procedure and Conduct of Business in Lok Sabha, Rule 205
2 Rule 207 (1) (2)

स्वीकृति की जानी चाहिये।" विधिवत् मतदान होने के पश्चात् माग (Demand) अनुदान (Grant) बन जाती है।

कटौती प्रस्ताव
(Cut Motions)

इन मागो पर सदस्यो द्वारा तीन प्रकार की कटौती प्रस्ताव प्रस्तुत किये जा सकते हैं। माग की धनराशि मे कमी करने का प्रस्ताव निम्नलिखित रीतियो मे से किसी भी एक रीति द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है —

नीति सम्बन्धी कटौती प्रस्ताव
(Policy Cut Motion)

(क) "यह कि माग की धनराशि घटाकर १ रु० कर दी जानी चाहिये।" यह प्रस्ताव माग मे अन्तर्निहित नीति के प्रति अस्वीकृति का सूचक होता है। ऐसे प्रस्ताव को 'नीति की अस्वीकृति का कटौती प्रस्ताव' कहा जायेगा। ऐसे प्रस्ताव की सूचना देने वाला सदस्य नीति की उन बातो का यथार्थ रूप मे उल्लेख करेगा जिन पर कि वह विवाद का प्रस्ताव कर रहा है। विवाद सूचना मे उल्लेख की गई विशिष्ट बात अथवा बातो तक ही सीमित रहेगा और सदस्यो को इस बात की खुली छूट होगी कि वे वैकल्पिक नीति का पक्ष-समर्थन कर सकें।

मितव्ययता कटौती
(Economy Cut)

(ख) "यह कि माग के धन मे से विशिष्ट धनराशि कम कर दी जानी चाहिये।" यह प्रस्ताव उस मितव्ययता का सूचक होता है जो कि लाई जा सकती है। ऐसी विशिष्ट धनराशि या तो माग मे एक मुश्त रकम कम करने के रूप मे हो सकती है अथवा माग की किसी एक मद मे कमी या उसकी समाप्ति के रूप में हो सकती है। ऐसे प्रस्ताव को "मितव्ययता कटौती प्रस्ताव" कहा जायेगा। प्रस्ताव की सूचना मे सक्षिप्त तथा यथार्थ रूप मे उस विशिष्ट विषय का उल्लेख होगा जिस पर कि विवाद किया जाना है और इस सम्बन्ध मे जो भाषण होगे वे इस विवाद तक ही सीमित होगे कि मितव्ययता किस प्रकार लाई जा सकती है।

प्रतीक कटौती (Token cut)

(ग) "यह कि माग की धनराशि मे १०० रु० की कमी की जानी चाहिए।" यह प्रस्ताव उस विशिष्ट शिकायत को प्रकट करने के लिये प्रस्तुत किया जाता है जो कि भारत सरकार के उत्तरदायित्व की परिधि के अन्तर्गत आती है। ऐसे प्रस्ताव को "प्रतीक कटौती" कहा जायेगा और इसके सम्बन्ध मे होने वाला वाद-विवाद प्रस्ताव (Motion) मे उल्लिखित विशिष्ट शिकायत तक ही सीमित रहेगा।[1]

सदन के सदस्य बजट मे प्रस्तावित व्यय की किसी मद को बढा नही सकते अथवा किसी मद मे वृद्धि नही कर सकते। वे किसी भी मद के व्यय की धनराशि

1 Rule 209

को केवल या तो अस्वीकार कर मकते है अथवा उसमे कमी कर सकते है। और वस्तु-स्थिति यह है कि व्यवहार मे ऐसा भी सभव नही होता। मन्त्रि-मण्डल अपने बहुमत के बल पर किसी भी कटौती प्रस्ताव को गिरा मकता है। इस प्रकार बजट का वाद-विवाद कुछ विशिष्ट विभागो के प्रशासन के विरुद्ध व्यवस्थाओ अथवा शिकायतो का सामान्य प्रदर्शन-मात्र होता है। बजट का प्रस्तुतीकरण तथा वाद-विवाद (Discussion) ये ऐसे महत्वपूर्ण अवसर है जब कि मागो पर मतदान लिये जाने मे पूर्व शिकायतें व्यक्त की जा सकती हैं। मसद, जिसके प्रति कि मन्त्रिमण्डल उत्तरदायी होता है, का यह उत्तरदायित्व है कि वह इस बारे मे आश्वस्त हो मके कि राष्ट्रीय हितो का पूरा ध्यान रखते हुए ही बजट का निर्माण किया गया है और यह कि बजट ससद द्वारा निर्धारित मुख्य नीतियो के अनुसार ही बनाया गया है। ससदीय पद्धति के जनतन्त्र मे, ससद द्वारा बजट मे कोई बडा सशोधन तो नही किया जाता, परन्तु सरकार की वित्तीय नीतियो तथा बजट की मदो की स्वस्थ आलोचना करने का उपयुक्त क्षेत्र अवश्य वर्तमान रहता है। इस आलोचना से कार्यपालिका को लोकमत के अनुसार नीतियो तथा कार्य-क्रमो मे हेर-फेर करने मे सहायता मिल सकती है।

कटौती प्रस्तावो (Cut Motions) के आधार पर, समद मे माँगो पर वाद-विवाद आरम्भ होता है। भारतीय ससद मे केवल 'प्रतीक कटौती प्रस्ताव' ही लाये जाते हैं, अर्थात् यह कि 'माँग की राशि मे १०० रु० की कमी कर दी जानी चाहिए।' इस प्रस्ताव के द्वारा किसी भी शिकायत या जानकारी पाने की प्रार्थना अथवा सुधार के सुझावो पर सम्बन्धित मन्त्री का ध्यान आकर्षित किया जा सकता है। अध्यक्ष (Speaker) किसी भी मन्त्रालय की माँगो को तथा उस पर आये हुए कटौती प्रस्तावो को विवाद के लिए एक साथ ही सदस्य के सम्मुख रखता है। वाद-विवाद के अन्त मे, सम्बन्धित विभाग का मन्त्री उस विवाद का उत्तर देता है जिसमे वह सभी आलोचनाओ का जवाब देता है और सदस्यो द्वारा उठाई गई शिकायतो को दूर करने का आश्वासन भी देता है। मन्त्री के उत्तर के अन्त मे, या तो कटौती प्रस्ताव वापिस ले लिए जाते हैं अथवा फिर उन पर मतदान लिया जाता है। मतदान मे कटौती प्रस्ताव अस्वीकार हो जाते हैं क्योकि सदन मे मन्त्रि-मण्डल का बहुमत होता है।

विनियोग अथवा विनियोजन विधेयक
(Appropriation Bill)

माँगो पर मतदान होने के पश्चात्, पूर्तियो के मतदान का अन्तिम चरण विनियोजन विधेयक का अनुमोदन (Approval) है। विनियोजन विधेयक सदन द्वारा मतदान की हुई माँगो को कानूनी रूप देता है और उन कार्यों के लिए भारत की सचित निधि से धन निकालने का अधिकार प्रदान करता है। लोकसभा मे इसके पारित होने की प्रक्रिया वही है जो किसी दूसरे विधेयक की होती है, उसमे केवल एक अन्तर है और वह यह है कि इस विधेयक को पारित करते समय सदन द्वारा पूर्व पारित अनुदानो मे अथवा सचित निधि के प्रभावो मे कोई सशोधन नही किया

जा सकता। "विनियोजन विधेयक पर वाद-विवाद विधेयक के अनुदानो मे अन्तर्निहित प्रशासकीय नीति अथवा सार्वजनिक महत्व के ऐसे मामलो तक ही सीमित रहेगा जोकि उस समय नही उठाये गये हो जबकि अनुदानो की सम्बन्धित माँगें विचाराधीन थी।"[1] लोक-सभा मे विनियोजन विधेयक पर तीन या चार घण्टे तक वाद-विवाद किया जाता है, फिर अध्यक्ष द्वारा इसके धन विधेयक (Money Bill) होने का प्रमाण-पत्र दिया जाता है और तदनन्तर इसे राज्य सभा मे भेजा जाता है। राज्य सभा को इस विधेयक मे सशोधन करने अथवा इसको अस्वीकार करने का अधिकार नही होता। यह विधेयक पर केवल विवाद कर सकती है और १४ दिन की अवधि के अन्दर-अन्दर अपनी सिफारिशें लोकसभा को भेज सकती है। लोकसभा उन सिफारिशो को स्वीकार अथवा अस्वीकार कर सकती है। राज्य सभा हर हालत मे विधेयक को १४ दिन के भीतर लोकसभा को वापिस करने के लिए बाध्य है। यदि राज्य सभा १४ दिन के अन्दर विधेयक को वापिस न करे, तो भी प्रत्येक स्थिति मे लोकसभा का अध्यक्ष इसके बिना भी उसे राष्ट्रपति के पास स्वीकृति के लिए भेज देता है। राष्ट्रपति धन विधेयक को पुनर्विचार के लिए वापिस नही लौटा सकता। अत यह कहा जा सकता है कि विनियोजन विधेयक पर राष्ट्रपति की स्वीकृति केवल औपचारिक है।[2]

करों पर मतदान वित्त विधेयक
(The Voting of Taxes : The Finance Bill)

अनुदानो की माँगो पर मतदान होने के पश्चात्, सदन को सरकार के व्यय की पूर्ति के लिए उपायो व साधनो (Ways and Means) की भी व्यवस्था करनी होती है। अत इसे बजट के दूसरे पहलू अर्थात् आय-पक्ष पर विचार करना होता है। भारत सरकार के एक वित्तीय वर्ष के सभी कर सम्बन्धी प्रस्ताव वित्त विधेयक मे सम्मिलित कर लिये जाते हैं। फिर, प्रतिवर्ष सभी करो पर मतदान नही लिया जाता और न प्रत्येक वर्ष इस सम्बन्ध मे अधिकार ही दिया जाता है। कुछ कर स्थायी होते हैं और ऐसे करो का नियमन करने वाले कानून के उपबन्धो के अन्तर्गत कार्यपालिका उनकी दरो मे समय-समय पर परिवर्तन करती है। आय-कर व सीमाशुल्क आदि, जैसे अन्य करो की दरो का निर्धारण प्रतिवर्ष व्यवस्थापिका अथवा विधान-मण्डल (Legislature) द्वारा किया जाता है। वित्त विधेयक पर वाद-विवाद का प्रारम्भ वित्त-मन्त्री द्वारा रखे गये इस प्रस्ताव से होता है कि विधेयक को विचारार्थ लिया जाना चाहिए। इस प्रस्ताव के आधार पर सरकार की कराधान नीति (Taxation Policy) पर सामान्य वाद-विवाद किया जाता है। तदनन्तर विधेयक सदन (House) की एक प्रवर समिति (Select Committee) को सौंप दिया जाता है। प्रवर समिति

1 नियम (Rule) २१८ (४)

2 अनु० १११

अपनी आलोचनाओ तथा प्रस्तावो के साथ विधेयक को वापिस लौटा देती है और तब सदन मे विधेयक की प्रत्येक धारा पर वाद-विवाद होता है। सशोधनो के प्रस्ताव रखे जाते हैं परन्तु किसी भी कर मे वृद्धि करने तथा सशोधनो पर वाद-विवाद होने के पश्चात् यह प्रस्ताव (Motion) रखा जाता है कि सदन द्वारा विधेयक पारित कर दिया जाये। यदि बहुमत उसके पक्ष मे होता है तो सदन द्वारा विधेयक पारित कर दिया जाता है। तत्पश्चात् विधेयक राज्य सभा को सौंप दिया जाता है। जब दोनो सदन सहमत हो जाते है तो वह विधेयक राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए भेजा जाता है, और उनकी स्वीकृति के पश्चात् वह देश का कानून बन जाता है।

भारत तथा ब्रिटेन की वित्तीय कार्यविधि की तुलना
(Financial Procedure in India and Britain Compared)

इसमे कोई सदेह नही कि भारतीय वित्तीय कार्यविधि ब्रिटिश ससदीय पद्धति पर आधारित है, परन्तु फिर भी दोनो मे कुछ विभिन्नताए पाई जाती है:—

(१) ब्रिटेन मे केवल एक ही बजट तैयार किया जाता है और ससद मे प्रस्तुत किया जाता है। भारत मे दो बजट तैयार किये जाते हैं और ससद मे पृथक्-पृथक् रखे जाते हैं। रेलवे का अपना निजी बजट होता है और सरकार के अन्य विभागो के आय-व्यय सामान्य बजट (General Budget) मे सम्मिलित किये जाते है।

(२) ब्रिटेन मे, वित्तीय मामलो मे, सम्पूर्ण सदन की समिति (Committee of the Whole House) का उपयोग किया जाता है। मागो तथा करो पर मतदान सम्पूर्ण सदन की समिति द्वारा ही लिया जाता है जिसे कि क्रमश पूर्ति-समिति (Committee of Supply) तथा उपाय व साधन समिति (Committee of Ways and Means) कहा जाता है। भारत मे बजट पर वाद-विवाद स्वय सदन मे ही होता है। ब्रिटिश प्रक्रिया का लाभ यह है कि सम्पूर्ण सदन की समिति मे जो वाद-विवाद होते हैं वे अनौपचारिक (Informal) होते है और उनमे कार्य-विधि के नियमो का कठोरता से पालन नही किया जाता।

(३) ब्रिटेन मे अर्थ महामात्य (Chancellor of the Exchequer) मागो के अनुमानो (Estimates) को प्रस्तुत करते समय बजट भाषण नही देता। वह अपना भाषण बाद मे उस समय देता है जबकि 'उपाय व साधन समिति' मे बजट का राजस्व-भाग (Revenue part) प्रस्तुत किया जाता है। भारत मे, बजट वित्त मन्त्री के बजट-भाषण के साथ सदन मे प्रस्तुत किया जाता है। उसके भाषण के साथ ही बजट का उद्घाटन होता है।

———

परिशिष्ट
(Appendix)
भारत की सचित निधि व लोक लेखे तथा आकस्मिकता निधि
(Consolidated Fund, Public Accounts of India and Contingency Fund)

भारत सरकार द्वारा प्राप्त सब राजस्व (Revenues), राजकोष-पत्रो (Treasury bills) को जारी करके, ऋणो द्वारा अथवा अर्थोपाय पेशगियों (Ways and means advances) द्वारा लिये गये सब उधार तथा उधारो की अदायगी मे उस सरकार को प्राप्त सब धनो की एक सचित निधि बनेगी जिसे कि **"भारत की संचित निधि"** कहा जायेगा। भारत सरकार द्वारा, या उसकी ओर से, प्राप्त अन्य सब सार्वजनिक धन भारत के लोक लेखे (Public Account of India) मे जमा किये जायेंगे। भारत की सचित निधि मे से कोई धन विधि (Law) की अनुकूलता से, तथा सविधान मे उपबन्धित प्रयोजनो के लिए या उपबन्धित रीति से, अन्यथा विनियोजित नही किये जायेंगे।[1]

आकस्मिकता निधि (Contingency Fund)

आधुनिक राज्य को अपने राजकोष से अप्रत्याशित (Unexpected) मागो को पूरा करना होता है और ऐसे व्यय भी करने पडते हैं जिनके बारे मे, हो सकता है कि विधान-मण्डल अथवा ससद मे वाद-विवाद न हुआ हो। चूंकि व्यवस्था यह है कि भारत सरकार द्वारा किये जाने वाले व्यय की प्रत्येक मद के लिये ससद की पूर्व अनुमति की आवश्यकता होती है, अत ऐसे आकस्मिक व्यय के लिए उपबन्ध (Provision) किया जाता है जिससे कि बिना ऐसी पूर्व अनुमति (Previous sanction) के ही ऐसे आकस्मिक व्यय किये जा सकें। ससद विधि द्वारा, अग्रदाय (Imprest) के रूप मे, "भारत की आकस्मिकता-निधि" के नाम से ज्ञात आकस्मिकता निधि की स्थापना कर सकेगी जिसमे ऐसी विधि द्वारा निर्धारित राशिया समय-समय पर डाली जायेंगी, तथा अनवेक्षित (Unforeseen) व्यय का अनुच्छेद ११५ या ११६ अनुच्छेद के अधीन ससद से, विधि द्वारा, प्राधिकृत होना लम्बित रहने तक (Pending), ऐसी निधि मे से ऐसे व्यय की पूर्ति के लिए अग्रिम धन देने के लिए राष्ट्रपति को योग्य बनाने के हेतु उक्त निधि राष्ट्रपति के हाथ मे रखी जायेगी।[2] सन् १९५० के आकस्मिकता निधि अधिनियम (Contingency Fund Act) के द्वारा १५ करोड रु० की ऐसी एक निधि का निर्माण भी किया गया है।

---

1 अनु० २६६

2 अनु० २६७

३१

भारत में बजट की क्रियान्विति

(Execution of the Budget in India)

(१)

वित्त-मन्त्रालय
(Ministry of Finance)

सरकार का वित्त-विभाग (Finance Department) उन अनुमानो (Estimates) से सम्बन्धित व्यय की मदो पर व्यापक नियन्त्रण रखता है जो ससद द्वारा स्वीकृत कर दी जाती हैं और जिनके लिए साधनो (Resources) का उपयुक्त विनियोजन कर दिया जाता है। अब हम यह देखते हैं कि वित्त-विभाग व्यय पर किस प्रकार नियन्त्रण रखता है अथवा अन्य शब्दो मे, भारत मे वित्त मन्त्रालय के कार्य क्या हैं और उसका सगठनात्मक ढाँचा किस प्रकार का है ?

वित्त-विभाग विभिन्न व्ययकारक विभागो (Spending Department) पर नियन्त्रण रखता है और उसमे समन्वय (Coordination) स्थापित करता है। सरकार की सामान्य आर्थिक व वित्तीय नीतियो तथा कार्यक्रमो के निर्धारण का उत्तरदायित्व वित्त विभाग पर होता है। वित्त-विभाग सरकार के आय तथा व्यय के अनुमान तैयार करता है और स्वीकृति के लिए उनको ससद मे प्रस्तुत करता है। ससद द्वारा बजट की स्वीकृति के पश्चात्, वित्त-विभाग बजट की कार्यान्विति मे अत्यन्त महत्वपूर्ण योग प्रदान करता है। इस प्रकार वित्त-विभाग नियन्त्रण तथा पर्यवेक्षण (Supervision) करने वाला विभाग है जिसका मुख्य कार्य सरकार के वित्तीय कार्यों का प्रबन्ध करना है।

वित्त-विभाग के मुख्य कर्त्तव्य इस प्रकार हैं —

(१) "केन्द्र सरकार के वित्तीय कार्यों का प्रशासन करना और सम्पूर्ण रूप मे देश को प्रभावित करने वाले वित्तीय मामलो का निबटारा करना।

(२) प्रशासन कार्य का सचालन करने के लिए आवश्यक आय व करो की उगाही करना और कराधान (Taxation) तथा सरकार की उधार नीतियो का नियमन करना।

(३) बैंकिंग तथा मुद्रा (Currency) से सम्बन्धित समस्याओ के समाधान का प्रबन्ध करना और सम्बन्धित मन्त्रालयो के परामर्श से देश के विदेशी विनिमय के साधनो (Foreign exchange resources) के समुचित उपयोग की व्यवस्था करना।

(४) सम्बन्धित विभागो एव प्रशासकीय मन्त्रालयो के सहयोग से सरकार के सम्पूर्ण व्यय का नियन्त्रण करना ।"[1]

विभाग का सगठन
(Organisation of the Department)

वित्तमन्त्री (Finance Minister), वित्त-मन्त्रालय के एक राज्य-मन्त्री (Minister of state) तथा दो उपवित्त-मन्त्रियो की सहायता से, भारत सरकार के इस सबसे अधिक महत्वपूर्ण विभाग का प्रबन्ध करता है। यह मन्त्रालय इस समय आर्थिक मामलो के विभाग, राजस्व विभाग (Revenue Department) तथा व्यय विभाग (Expenditure Department) मे बटा हुआ है। प्रत्येक विभाग एक स्वतन्त्र सचिव (Secretary) के अधीन होता है और सभी विभागो मे समन्वय स्थापित करने के लिए एक प्रधान वित्त सचिव (Principal Finance Secretary) होता है। आर्थिक मामलो का विभाग (Department of Economic Affairs) निम्नलिखित छ सभागो (Divisions) मे बटा हुआ है —(१) बजट, (२) आयोजन (Planning), (३) आन्तरिक वित्त, (४) बाह्य वित्त, (५) आर्थिक तथा (६) बीमा (Insurance)। एक अन्य सभाग भी है जोकि पूजीगत निर्गमन (Capital issues) शेयर बाजारो तथा वित्त निगमो (Finance Corporations) के नियन्त्रण का कार्य करता है। आर्थिक मामलो के विभाग के विभिन्न सभागो का सम्बन्ध निम्न कार्यों से होता है केन्द्रीय बजटो का निर्माण व एकीकरण तथा राज्य के बजटो, बैंकिंग, मुद्रा लोक ऋण (Public debt), पूजीगत निर्गमनो, विदेशी विनिमय, अदायगी शेष (Balance of payments), तकनीकी सहायता कार्यक्रमो, व राष्ट्रीयकरण जीवन बीमे आदि का पुनरावलोकन (Review)। विभाग का मुख्य आर्थिक सलाहकार (Chief Economic Adviser), अनेक आर्थिक विशेषज्ञो (Economic experts) की सहायता से, निम्नलिखित कार्य सम्पन्न करता है —

(क) महत्वपूर्ण आर्थिक, वित्तीय तथा मौद्रिक (Monetary) समस्याओ का अध्ययन एव अनुसधान (Research)।

(ख) अदायगी शेष, व्यापार शेष (Balance of trade), मुद्रा तथा सिक्का-ढलाई (Coinage) से सम्बन्धित आकडे तैयार करना व उनको रखना।

(ग) विदेशी आर्थिक व वित्तीय प्रतिवेदनो (Reports) का अध्ययन तथा विश्लेषण (Analysis)।

राजस्व विभाग (Department of Revenue), जोकि केन्द्रीय राजस्व मण्डल (Central of Revenue) के रूप मे भी कार्य करता है, अग्राकित विषयो से व्यवहार करता है

---

1 The organisation of the Government of India, The Institute of Public Administration, New Delhi, 1959 p, 61,

आय-कर (Income-Tax), व्यय कर (Expenditure tax), धन-कर तथा आस्ति-कर (Wealth tax and estate duty), सीमा-शुल्क (Customs), केन्द्रीय उत्पादन शुल्क (Central excise), अफीम तथा मादक पदार्थ और भारतीय मुद्राक अधिनियम (Indian stamp act) के अन्तर्गत केन्द्रीय कार्य (Central functions)।

व्यय विभाग (Department of expenditure) चार सभागो (Divisions) मे बँटा होता है—

(१) सयुक्त सचिव (Joint secretary) के अधीन प्रस्थापना सभाग (Establishment division)।

(२) एक अतिरिक्त सचिव (Additional secretary) तथा छ सयुक्त सचिवो के अधीन ७ असैनिक (Civil) व्यय सभाग।

(३) सयुक्त सचिव के अधीन एक विशिष्ट पुनर्गठन इकाई (Special Reorganisation Unit) अथवा मितव्ययता सभाग (Economy division)।

(४) एक अतिरिक्त सचिव के अधीन, जिसकी दो सयुक्त सचिव सहायता करते हैं, प्रतिरक्षा व्यय सभाग (Defence expenditure division)।

व्यय विभाग (Department of expenditure), रेलवे मन्त्रालय को छोडकर, मुख्यत व्यय नियन्त्रण के प्रशासन से सम्बन्धित होता है।

व्यय विभाग का प्रस्थापना-सभाग निम्न कार्यों के लिए उत्तरदायी होता है वित्तीय नियमो व विनियमो का निर्धारण, मन्त्रालयो व विभागो आदि को वित्तीय अधिकारो का सौपा जाना तथा सरकारी कर्मचारियो की सेवा की ऐसी दशाओ मे सम्बन्धित प्रस्तावो की वित्तीय छान-बीन, जैसे कि वेतन, पेन्शन, अवकाश, प्रतिनियुक्ति (Deputation) आदि। प्रस्थापना सभाग के अन्तर्गत जिन वित्तीय नियमो से सम्बन्ध होता है वे मुख्यत ये है मौलिक तथा अनुपूरक नियम (Fundamental and supplementary rules), सिविल सेवा के नियम व विनियम, सामान्य, वित्तीय नियम, वित्तीय कार्य, सामान्य भविष्य निधि नियम, उच्चतर सिविल सेवा नियम आदि। व्यय विभाग के व्यय सभागो पर भारत सरकार के विभिन्न मन्त्रालयो को वित्तीय परामर्श देने का उत्तरदायित्व होता है। किसी भी प्रशासकीय मन्त्रालय से सम्बन्धित व्यय के किसी प्रस्ताव को वजट मे सम्मिलित करने से पहले, उस पर सम्बन्धित व्यय सभाग (Expenditure division) की सहमति लेनी आवश्यक होती है। ५० लाख रु० से अधिक लागत की योजनाओ पर व्यय करने के लिये तथा ससद् द्वारा वजट की स्वीकृति के पश्चात् ५० लाख रु० से कम लागत की योजनाओ मे ठोस रद्दोबदल करने के लिए भी इसकी सहमति की आवश्यकता होती है। व्यय सभाग द्वारा प्रशासकीय मन्त्रालयो के व्यय-प्रस्तावो का सूक्ष्म-परीक्षण (Scrutiny) व्यय मे मितव्ययता (Economy) लाने के उद्देश्य मे किया जाता है और यह मितव्ययता दो प्रकार की होती है—

(१) "ऐसी सेवाओ को सम्मिलित न किया जाय जिनकी आवश्यकता न हो—अर्थात् नीति के मामलो मे मितव्ययता, और

(२) आवश्यक सेवाओ की व्यवस्था मे अपव्यय (फजूलखर्ची) न हो—अर्थात् हिसाब-किताब के मामलो मे मितव्ययता ।"

व्यय विभाग के मितव्ययता सभाग (Economy division), जिसे कि विशिष्ट पुनर्गठन इकाई (Special Reorganisation Unit) भी कहा जाता है, की स्थापना सर्वप्रथम सन् १९५२ मे की गई थी । इसका कार्य, कार्य-कुशलता के अनुरूप ही मितव्ययता के सुझाव देने के उद्देश्य से, ब्यौरेवार जाँच करके तथा कार्य के उपयुक्त स्तरो का विकास करके, विभिन्न मन्त्रालयो (Ministries) और उनके सलग्न तथा अधीनस्थ कार्यालयो की सगठन तथा कर्मचारी-वर्ग की आवश्यकताओ की एक व्यक्तिनिरपेक्ष (Objective) तथा सूक्ष्म जाच पडताल करना था ।

वित्त-मन्त्रालय के योग का आलोचनात्मक मूल्याङ्कन (Critical Assessment of the Role of the Ministry of Finance)

ससद की अनुमति के परिणामस्वरूप, वित्त विभाग द्वारा मामान्य नीति स्वीकार किये जाने के पश्चात् भी, उसे व्यय की प्रत्येक मद पर अपना नियन्त्रण रखना होता है । अन्य विभागो पर वित्त विभाग का यह नियन्त्रण इस सिद्धान्त पर आधारित होता है कि "तुम पैन्स की परवाह करो तो पौण्ड स्वय तुम्हारी परवाह करेंगे ।" देश के वित्तीय कार्यों पर वित्त विभाग के इस नियन्त्रण का परिणाम यह हुआ है कि भारत सरकार के केवल एक ही विभाग मे सत्ता का केन्द्रीयकरण हो गया है । और सत्ता के इस केन्द्रीयकरण के फलस्वरूप विभिन्न प्रशासकीय मन्त्रालयो के उच्च पद के उत्तरदायी अधिकारियो तक को भी वित्तीय प्राधिकार नही सौंपे जाते । वित्त मन्त्रालय के हास्यास्पद प्रकृति के इस योग का एक उदाहरण यह है कि एक बार एक राजदूतावास (Embassy) मे 'भोज देने की मेज की टाग' टूट गई, तो राजदूत (Ambassador) को उस मेज की मरम्मत कराने के लिए परराष्ट्र मन्त्रालय तथा वित्त मन्त्रालय की अनुमति लेनी पडी और तब उसने सरकारी स्वागत सत्कार के अपने कर्तव्यो को पूरा किया । यदि ऐसी छोटी-छोटी बातो के लिए कार्यपालक अधिकारियो (Executive officials) को वित्त मन्त्रालय की अनुमति लेनी पडती है तो यह निश्चित है कि सरकारी कार्यों मे बडी अकुशलता उत्पन्न हो जायेगी। फिर, जबकि हम बडी-बडी विशाल प्रायोजनाओ (Projects) को प्रारम्भ कर रहे हैं, वित्त-मन्त्रालय की इन देरी की कार्य-विधियो के, निश्चय ही, बडे हानिकारक परिणाम होगे । वित्त-मन्त्रालय विकास योजनाओ तथा उद्यमो के कार्यक्रमो की तकनीकी बारीकियो (Technical details) की भी जाच करता है । यह एक ऐसा कार्य है जिसके लिये यह सबसे अधिक अनुपयुक्त है ।[1]

---

1 "The not only acts as an irritant but is also time-consuming Ultimately these objections mostly come to be waived, but often only after interminable discussions , and control becomes effective only over establishment proposals, the expenditure on which forms but an insignificant fraction of the total cost The Finance Ministry, therefore, whilst straining at the grant, has often to swallow the camel " —Asoka Chanda , *Indian Administration*, p 283

संसद द्वारा बजट का अनुमोदन कर देने के पश्चात्, वित्त-मन्त्रालय द्वारा व्यय की सूक्ष्म छानबीन इस कारण की जाती है कि बहुधा प्रशासकीय मन्त्रालय अनुमानो की तैयारी के अन्तिम क्षणो मे ही वित्त-मन्त्रालय के सम्मुख अपनी योजनाए प्रस्तुत करते हैं। अत अनेक योजनाओ पर उस समय पूर्णत विचार नही हो पाता। ये योजनाए बिना किसी कार्यक्रम अथवा आयोजना के ही प्रस्तुत कर दी जाती हैं जब संसद द्वारा इन योजनाओ के लिए एकमुश्त धनराशि की अनुमति दे दी जाती है, तब वित्त-मन्त्रालय इन योजनाओ की छानबीन आरम्भ करता है। परिणाम यह होता है, कि वित्त-मन्त्रालय द्वारा धन की स्वीकृति देने मे देरी होती है। अनेक योजनाओ के सम्बन्ध मे व्यापक जानकारी प्राप्त करने के उद्देश्य से जो पूर्व बजट (Pre-Budget) छानबीन होती है वह सामान्यत अपर्याप्त होती है। चूँकि अनेक योजनाए पूर्व छानबीन किये बिना ही बजट मे सम्मिलित करली जाती हैं, अत वित्त-मन्त्रालय के लिये यह आवश्यक हो जाता है कि बजट के अनुमोदन (Approval) के पश्चात् तथा उसके वास्तविक कार्यान्वय से पहले वह उनकी जाँच पडताल करे, जिससे कि उस समय तक कोई भी व्यय न किया जा सके जब तक कि वित्त-मन्त्रालय की सहमति से व्यय की अनुमतियो के आदेश न जारी हो जाए। ऐसी कार्यविधि (Procedure) मे बहुधा काफी समय लगता है, और जब तक व्यय की अनुमति (Expenditure sanction) का आदेश जारी होता है तब तक काफी देर हो चुकी होती है। इस देरी को समाप्त करने के लिए, प्रशासकीय मन्त्रालयो तथा वित्त-मन्त्रालय बजट द्वारा अनुमोदन से पूर्व ही, उसकी योजनाओ की पूर्ण तथा विस्तृत छानबीन की जानी चाहिए। यह तो बजट-निर्माण का बडा गलत तरीका है कि योजनाओ तथा कार्यक्रमो के बारे मे पूर्ण जानकारी प्राप्त किए बिना ही उन्हे बजट मे सम्मिलित कर लिया जाता है। **पाल एच० एपिलबी** के अनुसार, "आवश्यकता इस बात की है कि वित्त-मत्रालय बजाय इसके कि बजट बनाने के पश्चात् खर्चों पर व्यापक नियन्त्रण लगाए, उसको अपना अधिक ध्यान श्रेष्ठतर बजट-निर्माण पर ही केन्द्रित करना चाहिए। वस्तुत व्यय का गूढ एव लाभप्रद नियन्त्रण तो केवल कार्यक्रम व योजनाए बनाने वाले अभिकरणो (Agencies) मे ही किया जा सकता है। ये अभिकरण उपयुक्त ढग के बजट-कार्यक्रम प्रस्तुत करना केवल तभी प्रारम्भ कर सकेंगे जबकि इस श्रेष्ठतर किस्म के वित्तीय प्रबन्ध के बारे मे उन्हे अनुभव होगा। इस प्रकार, वित्त-मन्त्रालय अपने उत्तरदायित्व की दृष्टि से उपयुक्त किस्म का बजट केवल तभी प्रस्तुत कर सकता है जबकि अन्य मन्त्रालय बजट-निर्माण का कार्य उन्नत व विकसित ढग से करें।"[1] इसी प्रकार ए० डी० गोरवाला ने कहा कि "वित्तीय मामलो के सम्बन्ध मे, वास्तविक रूप मे, आवश्यकता नियन्त्रण की है, हस्तक्षेप की नही। आज जो कुछ हो रहा है वह यह कि छोटे-छोटे मामलो मे

1 Paul H Appleby *Re-examination of India's Administrative system*, p 34-35

उत्तेजनात्मक हस्तक्षेप किया जा रहा है जिसके परिणामस्वरूप प्रशासकीय विभागो, अर्थात् सरकार के एक बडे भाग की शक्ति तथा समय का भारी अपव्यय होता है और उनमें निराशा पैदा होती है। यह स्थिति समाप्त की जानी ही चाहिए।"[1] अनुमान समिति (Estimates Committee) ने प्रशासकीय, वित्तीय तथा अन्य सुधारो से सम्बन्धित अपने नवें प्रतिवेदन मे इस समस्या पर व्यापक रूप से विचार प्रकट किया। इसने यह भी कहा कि वित्त-मन्त्रालय तथा प्रशासकीय मन्त्रालयो के बीच समन्वय (Coordination) कायम रहना चाहिए और प्रशासकीय मन्त्रालयो को अधिक वित्तीय प्राधिकार (Financial authority) सौंपे जाने चाहिए।

समिति ने कहा कि "प्रशासकीय मन्त्रालयो तथा वित्त-मन्त्रालयो के बीच पूर्ण सौहार्द (Cordiality) की स्थापना करने के लिए तथा इस दिशा मे सक्रिय पग उठाये जाने चाहिए कि एक दूसरे का पूरक (Complementary) बना रहे और अन्तिम उद्देश्य की प्राप्ति मे एक दूसरे का सहायक हो।

इसके साथ ही साथ समिति ने निम्न सिफारिशें की —

(१) किसी भी योजना (Scheme) का प्रारम्भ करने से पहले, उनकी समुचित रूपरेखा बनाई जानी चाहिए और इस बात की भी जाँच-पडताल की जानी चाहिए कि उस योजना के लिए आवश्यक धन उपलब्ध है या नही, अथवा उपयुक्त समय पर वह उपलब्ध किया जा सकता है या नही। उसके कार्यक्रमो तथा अनुमानो का व्यापक रूप से हिसाब लगाया जाना चाहिए जिससे कि वित्त-मन्त्रालय उस योजना को वित्तीय नीति के अनुरूप बनाने मे समर्थ हो सके।

(२) वित्त-मन्त्रालय द्वारा वित्तीय दृष्टिकोण से योजना से सहमति प्रकट किये जाने के पश्चात्, योजना के व्यापक कार्यान्विय तथा उस पर धन व्यय करने का उत्तरदायित्व सम्बन्धित प्रशासकीय मन्त्रालय का होना चाहिए जिसको यह अधिकार भी प्रदान किया जाना चाहिए कि वह योजना के उपशीर्षको की धनराशियो मे उस सीमा तक हेर-फेर कर सके जहाँ तक कि योजना की कुल लागत पर उसका प्रभाव न पडे।

व्यवहार मे कार्यविधि निम्न प्रकार होगी—

प्रत्येक मन्त्रालय को अपना बजट यथासम्भव व्यापक रूप मे तैयार करना चाहिए और आगामी वित्तीय वर्ष मे कार्यान्वित की जाने वाली सभी योजनाओ के पूर्ण ब्यौरे का हिसाब-किताब लगाना चाहिए। वर्तमान समय मे पद्धति यह है कि आगामी वित्तीय वर्ष के बजट अनुमान चालू वित्तीय वर्ष के मध्य मे तैयार किये जाते हैं। वित्त-मन्त्रालय के बजट सभाग (Budget Division) को मन्त्रालयो से बजट के विभिन्न प्रस्ताव चालू वित्तीय वर्ष की समाप्ति के अन्तिम एक या दो माह के मध्य मे थोक रूप मे प्राप्त होते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि बजट-सभाग को इतना पर्याप्त समय नहीं मिल पाता कि वह उन प्रस्तावो की विस्तारपूर्वक

1 A D Gorwala Report on *Public Administration*, 1951, p. 42.

जाच कर सके और प्रत्येक मद की सावधानी के साथ छानबीन कर सके। अत पद्धति यह रही है कि बजट-सभाग केवल स्थूल रूप मे जाँच करता है और विभिन्न योजनाओ के लिए कुछ सकल धनराशियो (Gross amounts) का निर्धारण कर देता है तथा आगामी वित्तीय वर्ष मे उनके व्यय के लिए स्वय को अथवा वित्त मन्त्रालय को वचनवद्ध नही करता। रीति यह है कि अनुमानो मे जो धनराशिया सम्मिलित की जाती हैं वे केवल ससद का मत प्राप्त करने के लिए ही होती हैं, उससे प्रशासकीय मन्त्रालय को व्यय करने का अधिकार प्राप्त नही होता, यह अधिकार तो उस वित्त-मन्त्रालय द्वारा सविस्तृत व्यय की अनुमति प्रदान किये जाने के पश्चात् प्राप्त होता है। इसका अर्थ यह हुआ कि ससद द्वारा वजट का मतदान होने तथा वित्तीय वर्ष के प्रारम्भ होने के पश्चात्, सम्बन्धित मन्त्रालय बजट के कार्यान्वय के लिए प्रस्तावो पर विचार करना तथा विस्तृत अनुमान तैयार करना आरम्भ करता है। इस प्रक्रिया मे वित्त-मन्त्रालय का काफी समय लग जाता है और प्रशासकीय मन्त्रालय योजना (Scheme) के अनुसार चलने को सहमत हो जाता है। प्रशासकीय मन्त्रालय जब वित्त-मन्त्रालय की सहमति प्राप्त कर लेता है, तब उसके पश्चात् वह मानवीय शक्ति, स्थान, भवन तथा अन्य साज-सज्जा प्राप्त करने की व्यवस्था करता है और सरकारी शासन-यन्त्र के जटिल नियमो के कारण ऐसी व्यवस्था करने मे समय लगता है। परिणाम यह होता है कि जब तक मन्त्रालय योजना को कार्यान्वित करने के लिए तैयार होता है तब तक वर्ष का काफी भाग समाप्त हो चुकता है और वर्ष के अन्त मे वित्त-मन्त्रालय को अचानक ही पता लगता है कि उसे तो धन शीघ्रता के साथ व्यय करना चाहिये, अन्यथा या तो बिना प्रयोग किया गया धन सरकार वापिस ले लेगी अथवा उसे उन धनराशियो को बजट मे सम्मिलित कराने के लिए वित्त-मन्त्रालय तक फिर पहुँच करनी पडेगी और तदनुसार नये सिरे से व्यय करने की अनुमति लेनी पडेगी। समिति यह समझती है कि यह कार्यविधि बडी कष्टप्रद तथा समय व धन का अपव्यय कराने वाली है और पहल करने की क्षमता (Initiative) को नष्ट करती है। होना यह चाहिए कि व्ययकारक मन्त्रालय (Spending ministry) को, वित्त-मन्त्रालय से अनुमति की प्रार्थना करने से पहले ही यथासम्भव विस्तृत रूप मे अपनी योजना तैयार कर लेनी चाहिये और योजना की कुल अपेक्षित लागत सहित उनके कार्यान्वय का स्पष्ट कार्यक्रम बना लेना चाहिए, उन चरणो का निर्धारण कर लेना चाहिए जिनमे वह धनराशि व्यय की जायेगी और सक्षेप मे, उस योजना के सम्बन्ध मे पूर्ण सरकारी विवरण तैयार कर लेना चाहिए। वित्त-मन्त्रालय को सम्पूर्ण रूप मे योजनाओ की जाच करनी चाहिए और उनके सम्बन्ध मे निषेधात्मक नही, बल्कि ठोस निश्चयात्मक परामर्श देना चाहिए तथा यथासम्भव ऐसे वैकल्पिक उपाय बतलाने चाहियें जिनके द्वारा कि योजना कम लागत तथा अधिक कुशलता के साथ कार्यान्वित की जा सके। प्रशासकीय मन्त्रालय तथा वित्त-मन्त्रालय द्वारा योजना (Scheme) के अनुमोदन के पश्चात् उसको सम्बन्धित मन्त्रालय के बजट

अनुमानो मे सम्मिलित कर लेना चाहिए और उसके बाद अतिरिक्त व्यय की अनुमति दी जानी चाहिए अथवा योजनाओ के विभिन्न उपशीर्षको के अन्तर्गत पुनर्विनियोजनो (Reappropriations) पर कोई रुकावट नही होनी चाहिए, बशर्ते कि योजना की कुल धनराशि मे वृद्धि न हो। उस स्थिति मे, जबकि योजना पर पुनर्विचार करना पडे और उसके लिए और अतिरिक्त धन की आवश्यकता हो, योजना के लिए आवश्यक अतिरिक्त को बजट अथवा अनुपूरक अनुमानो (Supplementary Estimates) मे सम्मिलित करने मे पूर्व वित्त-मन्त्रालय की सहमति प्राप्त कर ली जानी चाहिए।

व्ययकारक मन्त्रालय को, बनाई गई योजना के अनुसार ही चलना चाहिए और मन्त्रालय के अन्तर्गत ही ऐसे प्रशासकीय तथा वित्तीय परामर्श लेते रहना चाहिये जोकि समय-समय पर आवश्यक समझे जायें। इससे वे सब प्रकार की देरिया समाप्त हो जायेंगी जो अब योजनाओ के तैयार करने मे तथा उनके कार्यान्वय (Execution) मे होती हैं, या जो छोटी-छोटी मदो पर व्यय की अनुमति प्राप्त करने के लिए योजना को रोक लेने के कारण होती हैं, अथवा जो कागजातो को इधर से उधर और उधर से इधर भेजने के कारण होती है। प्रशासकीय मन्त्रालयो को अपने कार्यक्रमो की योजना अच्छी प्रकार बनानी चाहिये जिससे कि किसी भी प्रकार धन का अपव्यय न हो।"[1]

इस प्रकार, अनुमान समिति की सिफारिशो के आधार पर कार्यविधि तथा रीतियो मे इस प्रकार सुधार किया जाना चाहिए जिससे कि कार्य मे देरी न हो और वित्तीय नियन्त्रण मे कार्य-कुशलता लाई जा सके। आवश्यकता इस बात की है कि प्रशासकीय मन्त्रालयो को वित्तीय उत्तरदायित्व सौंपे जाए। इस सिद्धान्त का अनुसरण किया जाना चाहिए कि "हर एक मद की सूक्ष्म जाच करने की अपेक्षा स्थूल नियन्त्रण अधिक मितव्ययी होता है।" इसमे कोई सदेह नही कि यह ऊपरी अथवा स्थूल नियन्त्रण वित्त-मन्त्रालय द्वारा लगाया जाना चाहिए, परन्तु प्रशासकीय मन्त्रालयो को विभिन्न कार्यक्रमो एव योजनाओ पर व्यय करने के लिए अधिक शक्तिया दी जानी चाहियें। इस प्रकार, सभी प्रशासकीय विभागो को वित्तीय उत्तरदायित्व सौंपे जाने चाहियें, उनमे मितव्ययता की भावना पैदा करनी चाहिए। केवल इस रीति के द्वारा ही, प्रशासकीय मशीनरी आर्थिक नियोजन तथा सामाजिक पुनर्निर्माण का विशाल उत्तरदायित्व अपने कन्धो पर उठा सकेगी। स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व के दिनो मे जो कार्य-विधिया प्रचलित थी वे नवीन भारत के लोकतन्त्रीय समाजवादी ढग के समाज के लिए अनुपयुक्त हैं। वित्तीय जाच तथा नियन्त्रण के द्वारा सरकारी अधिकारियो की पहल करने की क्षमता नष्ट नही होनी चाहिए।

---

1 Estimates Committee 1953-54 pp 4-5

३२

भारत में बजट की क्रियान्विति

(Execution of the Budget in India)

(२)

राजकोषीय नियन्त्रण
(Exchequer Control)

ससद द्वारा कार्यपालिका (Executive) के लिए अनुदान (Grants) स्वीकार किये जाते हैं और विनियोजन (Appropriations) किये जाते हैं। कार्यपालिका का यह कर्त्तव्य है कि वह धन को उसी प्रकार व्यय करे जिस प्रकार कि ससद ने उसकी स्वीकृति प्रदान की है। कार्यपालिका के पदाधिकारी जब सार्वजनिक धन को व्यय करें तो उनके कार्य-सचालन का मार्गदर्शन ईमानदारी, कुशलता तथा मितव्ययता के सिद्धान्तो के द्वारा होना चाहिए। सविधान के अन्तर्गत कार्यपालिका को सभी खर्चों के लिए स्वीकृति प्रदान करने की शक्ति ससद को ही प्राप्त है। इस बात के विषय मे आश्वस्त होना ससद का कर्त्तव्य है कि यह देखने के लिए पर्याप्त मशीनरी वर्तमान है या नही कि कार्यपालिका सचित निधि से धन लेकर उन विनियोजनो से बाहर तो व्यय नही कर रही है जिनकी ससद् ने विधि (Law) द्वारा व्यवस्था की थी। अब हम इस बात पर विचार करेंगे कि बजट किस प्रकार क्रियान्वित किया जाता है, और भारत मे व्यय पर राजकोषीय नियन्त्रण किस प्रकार लगाया जाता है ?

बजट की क्रियान्विति का अर्थ है —

(१) धन का समुचित सग्रह,

(२) सग्रह किये गये धन की समुचित अभिरक्षा (Custody),

(३) धन का समुचित सवितरण (Disbursement)।

(१) धन का संग्रह (Collection of Funds)

व्यवस्थापिका (Legislature) कर लगाती है और कार्यपालिका (Executive) उन करो का प्रवन्ध करने के लिए उपयुक्त प्रशासन-यन्त्र तथा कार्यविधि के नियमो की व्यवस्था करती है। प्रशासन-यन्त्र के निर्माण हो जाने तथा करो के प्रशासन के सम्बन्ध मे कार्यविधि के नियमो की रूपरेखा बन जाने के पश्चात्, करो के निर्धारण (Assessment) का कार्य प्रारम्भ होता है। करो के निर्धारण का अर्थ है—

इस निर्णय पर पहुँचना कि कौन-कौन व्यक्ति तथा निकाय (Bodies) कर अदा करेंगे, और करो की उस धनराशि का निर्धारण जो कि उन्हे अदा करनी होगी। जब करो का निर्धारण हो जाता है तब उनका सग्रह किया जाता है अर्थात् विभिन्न कर-निर्धारितियो (Assessees) से प्राप्तव्य धन वसूल किया जाता है। वित्त-मन्त्रालय का राजस्व विभाग (Department of Revenue) देश के प्रत्यक्ष तथा परोक्ष करो (Direct and indirect taxes) के प्रशासन का नियन्त्रण तथा पर्यवेक्षण करता है परन्तु यह कार्य इसके द्वारा एक अन्य पदनाम (Designation) से, अर्थात् केन्द्रीय राजस्व मण्डल (Central Board of Revenue) के नाम से, किया जाता है। अतिरिक्त सचिव (Additional Secretary) केन्द्रीय राजस्व मण्डल का पदेन सभापति (Ex-officio chairman) होता है और मण्डल के सदस्यो को सचिवालय (Secretariat) मे सयुक्त सचिवो के रूप मे पदेन स्थिति (Ex-officio status) प्राप्त होती है *तथा वे दोहरी क्षमता के अन्तर्गत कार्य करते हैं अर्थात् जब वे नीति-सम्बन्धी* मामलो पर सरकार को परामर्श देते हैं तथा सरकार के आदेशो (Orders) के सम्बन्ध मे पत्र-व्यवहार करते हैं तो **राजस्व विभाग** के रूप मे कार्य करते हैं और जब सरकार की राजस्व नीति को क्रियान्वित करते हैं तो वे **राजस्व मण्डल** के रूप मे कार्य करते हैं। इस निकाय द्वारा इन दोहरे कार्यों को सम्पन्न करने का कारण यह है कि केन्द्रीय राजस्व मण्डल सविधि (Statute) द्वारा निर्मित निकाय है और इसके कार्यों का निर्धारण विधान-मण्डल के अधिनियम (Act) द्वारा किया जाता है। यह सरकार के आदेश जारी नही कर सकता। अत यह आवश्यक समझा गया कि मण्डल के सदस्यो को सचिवालयिक पदवी प्रदान की जाय और एक राजस्व विभाग बनाया जाये।

इस प्रकार, केन्द्रीय राजस्व मण्डल के मुख्य कार्य का सम्बन्ध राजस्व के सग्रह मे ही है। मण्डल द्वारा जिन राजस्व विधियो (Revenue laws) का प्रबन्ध किया जाता है वे ये हैं :—

(१) समुद्री सीमाशुल्क अधिनियम, १८७८ (Sea customs Act),
(२) भूमि सीमाशुल्क अधिनियम, १९२४ (Land customs Act),
(३) केन्द्रीय उत्पादन कर तथा नमक अधिनियम, १९४४ (Central Excise and Salt tax Act),
(४) आय-कर अधिनियम, १९२२ (Income-Tax Act,)
(५) अतिरिक्त लाभ कर अधिनियम, १९४० (Excess Profits Tax Act),
(६) व्यावसायिक लाभकर अधिनियम, १९४७ (Business Profits Tax Act),
(७) आस्ति कर अधिनियम, १९५३ (Estate Duty Act),
(८) धन कर अधिनियम, १९५७ (Wealth Tax Act),
(९) व्यय-कर अधिनियम, १९५७ (Expenditure Tax Act),

(१०) उपहार कर अधिनियम, १९५८ (Gift Tax Act),
(११) अफीम अधिनियम, १८५७ व १८७८ (Opium Act),
(१२) हानिकारक भेषज अधिनियम, १९३० (Dangerous Drugs Act),
(१३) रेलयात्री भाडा अधिनियम, १९५७ (Railway passenger Fares Act)।
(१४) मुद्राक अधिनियम, १८९९ (Stamp Act)।

राजस्व मण्डल उन अनेक प्रशासकीय तथा अधीनस्थ प्राधिकारियो (Subordinate authorities) का पर्यवेक्षण तथा नियन्त्रण करता है जोकि विभिन्न अधिनियमो के अन्तर्गत अपने मे निहित शक्तियो को क्रियान्वित करती है। इसके अतिरिक्त, यह विभागीय व्यवहार मे एकरूपता लाने तथा विभिन्न राजस्व विधियो के प्रशासन की कार्यविधि का निर्माण करने के उद्देश्य से विभिन्न अधीनस्थ प्राधिकारियो को सामान्य किस्म के आदेश, अनुदेश (Instructions) तथा निर्देश (Directions) जारी करता है। यह अधीनस्थ प्राधिकारियो के आदेशो के विरुद्ध की गई अपीलें भी स्वीकार करता है।

धन की अभिरक्षा तथा सवितरण
(Custody and Disbursement of Funds)

राजस्व का सग्रह करने के पश्चात्, उसका सवितरण करना होता है। अब हम इस सम्बन्ध मे भारत मे प्रचलित पद्धति की विवेचना करेंगे।

राजकोष (Treasuries)— भारतवर्ष मे प्रत्येक जिले मे एक राजकोष है और इस प्रकार लगभग ३०० राजकोष हैं। ये राजकोष देश की राजकोषीय व्यवस्था (Fiscal system) की इकाइया हैं और वे आधार हैं जिन पर कि लोक लेखो (Public accounts) का आरम्भ होता है। प्रत्येक राजकोष के अधीन एक या एक से अधिक उप-राजकोष (Sub-treasuries) होते हैं जोकि जिले के प्रत्येक तहसील मे स्थित होते हैं। राजकोषो तथा उप-राजकोषो मे, उस राज्य की सरकार, जिसमे कि वे राजकोष तथा उप-राजकोष स्थित होते हैं तथा सघ सरकार, दोनो के ही सौदो अथवा लेन-देनो के सम्बन्ध मे प्रतिदिन धन की प्राप्तियो तथा उसके सवितरण का कार्य किया जाता है और उस कार्य से सम्बन्धित सघ तथा राज्य सरकारो के प्रारम्भिक लेखे पृथक्-पृथक् रखे जाते हैं। उप-राजकोष राजकोषो के समक्ष दैनिक लेखे (Daily accounts) प्रस्तुत करते हैं, जहाँ कि उन्हे वर्गीकृत तथा सूचीवद्ध किया जाता है और तत्पश्चात् वे, प्रधान राजकोष के लेखो सहित, माह मे दो वार राज्य के महालेखापाल (Accountant General) को प्रेषित कर दिये जाते हैं। लेखो के साथ ही इनके प्रमाणक (Vouchers) भी भेजे जाते है यह राजकोष पद्धति (Treasury system), जोकि भारतीय प्रशासन प्रणाली का एक मुख्य लक्षण है, दो कारणो से प्रचलित है— प्रथम तो देश की विशालता के कारण और द्वितीय देश

मे प्रचलित अपर्याप्त बैंकिग सुविधाओ के कारण। रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया की स्थापना होने के पश्चात् से, राजकोप की वाकियो (Balances) का एक बडा भाग रिजर्व बैंक मे जमा किया जाता है। रिजर्व बैंक उन स्थानो पर स्टेट बैंक का उपयोग अपने अभिकर्त्ता (Agent) के रूप मे करता है जहाँ कि स्टेट बैंक की शाखायें होती है। महालेखापालो द्वारा, मासिक अथवा वार्षिक आधार पर, विभिन्न राजकोषो तथा अन्य विभागीय कार्यालयो से प्राप्त लेखो का सकलन (Compilation) का एकीकरण किया जाता है। जब कभी अन्य किसी राज्य सरकार या भारत सरकार के उत्तरदायित्व पर राजकोषो मे धन की प्राप्तियो (Receipts) तथा उसके सवितरण का कार्य किया जाता है तो आतिथि लेखे (Upto-date accounts) तैयारकिये जाने से पहले, सम्बन्धित सरकारो के बीच लेखो अथवा खातो मे आवश्यक समायोजन (Adjustments) करने होते हैं। एक ही सरकार के विभागो के बीच भी समायोजन किये जाते हैं, विशेषकर तब, जबकि उनमे कोई विभाग वाणिज्य विभाग (Commercial Department) होता है। इन समायोजनो को पूरा करने मे तथा विभिन्न अनुदानो (Grants) तथा विनियोजनो से सम्बद्ध वित्तीय सौदो का ठीक-ठीक लेखा तैयार करने मे काफी समय लग जाता है। पृथक्-पृथक् ऐसे वित्तीय नियम तथा आदेश होते हैं जोकि सवितरण तथा नियन्त्रण अधिकारियो (Disbursing and controlling officers) को, अनुपूरक अनुदान व विनियोजन प्राप्त करने अथवा बचतें सौंपने के हेतु, समय पर कार्यवाही करने के लिए तथा व्यय की प्रगति की देखभाल के लिए, उत्तरदायी बनाते है। इन प्राधिकारियो (Authorities) से यह आशा की जाती है कि वे इस कार्य के लिए कुछ विभागीय लेखे रखें और फिर लेखा-अधिकारियो (Accounts officers) के लेखो से उनका मिलान कर लें।

व्यय के नियन्त्रण का प्रारम्भिक उत्तरदायित्व उन अनेक विभागीय नियन्त्रणकारी सत्ताओ पर होता है जिनके अधिकार मे अनुदान तथा विनियोजन रखे जाते है। धन के सवितरण की सामान्य प्रक्रिया यह है कि विपत्र अथवा बिल केवल "सवितरण अधिकारियो" (Disbursing officers) द्वारा लिखे जा सकते हैं जो कि अदायगियो की शुद्धता के लिए मुख्यत उत्तरदायी होते है। उन विपत्रो पर "नियत्रण अधिकारियो" (Controlling officers) द्वारा प्रतिहस्ताक्षर (Countersign) किये जाते हैं जोकि दण्डनीय उपेक्षा के कारण होने वाली किसी भी हानि के लिए वैयक्तिक रूप से उत्तरदायी ठहराये जाते हैं। 'राजकोष अधिकारी' (Treasury officer) को, चैंको की अदायगियो को अधिकृत करने से पूर्व योगो (Totals) की गणितीय शुद्धता को भी देखना होता है। उसे सवितरण अधिकारी के हस्ताक्षरो को भी प्रमाणित करना होता है और, यदि आवश्यक हो तो, यह भी देखना होता है कि महालेखापाल मे इस सम्बन्ध मे प्राधिकार (Authority) प्राप्त है या नही। इस प्रकार धन की अदायगिया उम समय तक नही की जा सकती जब तक कि उसके लिए किसी को उत्तरदायी न बना दिया जाय, और जैसा कि हमने ऊपर देखा कि ठीक-ठीक भुगतान

का उत्तरदायी तीन व्यक्तियो मे बटा रहता है अर्थात्, मवितरण अविकारी, नियन्त्रण, अधिकारी और राजकोप अधिकारी।

पुर्नवियोजन
(Re-appropriation)

प्राय ऐसा होता है कि विधान-मण्डल (Legislature) द्वारा विभिन्न कार्यो के लिए उपलब्ध किया हुआ धन अप्रयुक्त (Unutilized) रह जाता है। ऐसा भी होता है कि विशिष्ट 'अनुदान' (Grant) के अन्तर्गत, विनियोजन की एक इकाई (Unit) मे तो धन की बचत हो जाती है और दूसरी मे धन की और अधिक आवश्यकता होती है। "यदि एक इकाई से दूसरी इकाई मे जो धन का स्थानान्तरण किया जाता है तो धन के इन विचलनो (Deviations) को व्यवस्थित कर लिया जाता है वशर्ते कि कुल उपलब्ध धनराशि मे वृद्धि न की जाये। स्थानान्तरण की इस प्रक्रिया को पुर्नविनियोजन कहा जाता है।" पुर्नविनियोजन एक अनुदान से दूसरे अनुदान मे को नही किया जा सकता क्योकि प्रत्येक अनुदान का निर्धारण विधान-मण्डल द्वारा किया जाता है और कार्यपालिका को उसमे किसी भी प्रकार का परिवर्तन करने का अविकार नही होता। एक ही अनुदान की भिन्न-भिन्न इकाइयो के अन्तर्गत विभिन्न धनराशियो मे हेर-फेर करने को ही पुर्नविनियोजन कहा जाता है। अधीनस्थ अधिकारी वित्त-मन्त्रालय की अनुमति के बिना धन का पुर्नविनियोजन नही कर सकता। पुर्नविनियोजन भिन्न-भिन्न अनुदानो के बीच नही किया जा सकता। यह तो केवल एक ही अनुदान की विभिन्न इकाइयो के बीच किया जा सकता है। ३१ मार्च के पश्चात् धन का कोई भी स्थानान्तरण नही किया जा सकता क्योकि इस अवधि के पश्चात् विना व्यय की हुई सभी धनराशियाँ ममाप्त हो जाती है। अन्य नियम, जो कि पुर्नविनियोजन को सीमित करते हैं, बजट तथा लेखे सम्वन्धी शुद्धता एव यथार्थता से सम्वन्ध रखते हैं। विधान-मण्डल अथवा व्यवस्थापिका द्वारा किसी अनुदान मे की गई कटौती को फिर से पूरा करने के लिए पुर्नविनियोजन नही किया जा सकता। प्रभूत मदो (Charged items) के लिए निर्धारित धन की वचतें मतदेय मदो (Voted items) में अथवा मतदेय मदो की वचतें प्रभूत मदो में स्थानान्तरित नही की जा सकती। अनुदान के राजस्व और पूजीगत भागो के बीच भी विनियोजन नही किया जा सकता।

ब्रिटेन मे व्यय पर राजकोषीय नियन्त्रण
(Exchequer Control over Expenditure in Britain)

ब्रिटेन में, व्यय पर राजकोष के नियन्त्रण की जो पद्धति प्रचलित है उसका सक्षेप में अध्ययन करना लाभप्रद होगा। मसद द्वारा विनियोजन अधिनियम के पास होने के पश्चात् से, ब्रिटेन में व्यय पर राजकोष का नियन्त्रण प्रारम्भ हुआ है। ब्रिटेन में, लोक-धन के निर्गमन का केवल एक ही स्रोत, अर्थात् बैंक ऑफ इगलैंड है और

सभी अदायगियाँ वहीं पर केन्द्रित रहती हैं। प्रत्येक विभाग अथवा मन्त्रालय का अपना निजी लेखाकन अधिकारी (Accounting officer) होता है। लेखांकन अधिकारी मन्त्रालय द्वारा अदा किये जाने वाले सभी बिल पास करता है और महा-वेतनाधिकारी (Paymaster-General) पर "भुगतान के आदेश" जारी करता है। महावेतनाधिकारी सहायक महावेतनाधिकारी के माध्यम से, जोकि एक स्थायी सिविल सेवक होता है, कार्य करता है। "अनुमोदित" धन से अधिक व्यय न होने देने का उत्तरदायित्व लेखाकन अधिकारी का होता है। वह इस बात का ध्यान रखने के लिए अभिलेख (Records) भी रखता है कि उसके द्वारा जारी किये गये "भुगतान के आदेशो" की धनराशि "अनुमोदित" राशि से अधिक न हो जाये। महावेतनाधिकारी बैंक ऑफ इगलैंड में द्रव्य जमा करता है और उसमे एक खाता रखता है जिसमे से "भुगतान के आदेशो" के द्वारा उसके समक्ष उपस्थित की जाने वाली सभी विभागीय मागो की अदायगिया की जाती हैं। इगलैंड मे अनुमोदित धन महावेतनाधिकारी के नाम पर जमा होता है और उसकी प्रार्थना पर ही राजकोष खाते से, अर्थात् बैंक ऑफ इगलैंड मे ब्रिटिश सरकार के खाते से, धन निकाला जाता है। प्राप्त की हुई सभी धनराशिया भी महावेतनाधिकारी को ही दे दी जाती हैं।[1]

बैंक राजकोषीय आदेश को कार्यान्वित करता है और राजकोष के दैनिक लेखे के समर्थन मे उसे नियन्त्रक व महालेखा-परीक्षक को प्रेषित कर देता है। ये दैनिक लेखे नियन्त्रक व महालेखा-परीक्षक को इस योग्य बनाते है कि वह ससद द्वारा किये गये विभिन्न मतदानो के अनुसार व्यय की प्रगति पर दृष्टि रख सके। इस प्रकार, ऐसी पद्धति के अन्तर्गत कोई भी व्यय अधिक नही किया जा सकता, क्योंकि लेखाकन अधिकारी धन की प्रत्येक निकासी के लिए उत्तरदायी होते हैं, अत यदि कोई व्यय अधिक मात्रा में किया जाता है तो लेखाकन अधिकारी को उसके लिए उत्तरदायी ठहराया जा सकता है। इस प्रकार भारत में भी, ब्रिटेन जैसी, प्रत्येक मन्त्रालय के लिए पृथक्-पृथक् लेखाकन अधिकारियो की, पद्धति को लागू किया जाना चाहिए,

---

1 Funds which are issued to the Paymaster-General from the Bank are arranged as below after the passage of the Appropriation Act

(1) A Royal Order under the Sign Manual authorises the Treasury with the concurrence of the Comptroller and Auditor-General to issue from the Exchequer the amounts authorised by the Appropriation Act

(2) The Treasury requires the Comptroller and Auditor-General to grant "credits on the Account of His Majesty's Exchequer for amounts within the voted limits The Comptroller and Auditor-General writes to the Bank of England and 'grants a credit to the Treasury on the account of His Majesty's Exchequer to the amount of £ " The Treasury, there upon requests the Bank of England to transfer the sums (as granted by the Comptroller and Auditor-General) "from the Exchequer to the Supply Account of His Majesty's Paymaster-General in the books of the Bank, specifying the services in respect of which the issues are to be made"

जिसमे कि सम्बन्धित मन्त्रालय अथवा विभाग में की जाने वाली सभी अदायगियाँ लेखाकन अधिकारी पर ही केन्द्रित रहती हैं।

इसका अर्थ यह हुआ कि भारत मे प्रचलित पद्धति, जिसमे कि लेखे (Accounts) रखने के लिए तथा स्वय सकलित किये गए लेखो का परीक्षण (Audit) करने के लिए एक ही अभिकरण (Agency) को उत्तरदायी बनाया जाता है, अनुचित तथा दोषपूर्ण है। अत इस स्थिति में जितनी भी जल्दी सुधार किया जायगा, देश के कुशल वित्तीय प्रशासन की दृष्टि से ऐसा करना उतना ही अधिक अच्छा होगा।

३३

लेखांकन तथा लेखा-परीक्षण

(Accounting and Audit)

लोक-धन के समुचित लेखे रखना तथा एक ऐसे अभिकरण (Agency) द्वारा जोकि कार्यपालिका (Executive) के नियन्त्रण से मुक्त हो, उनका लेखा-परीक्षण कराना राजवित्त (Public finance) के किसी भी कुशल प्रशासन के लिए अत्यन्त आवश्यक है। प्रोफेसर टैनेरी ने ठीक ही कहा है कि "लेखाङ्कन रचनात्मक (Constructive) होता है और लेखा-परीक्षण विश्लेषणात्मक (Analytical)। लेखाङ्कन की परिभाषा इस प्रकार की गई है कि पूर्णतया अथवा आंशिक रूप से वित्तीय प्रकृति के लेन-देनो अथवा सौदो (Transactions) का, द्रव्य के आधार पर, विवरण रखना वर्गीकरण करना और सक्षेपीकरण करना तथा उनके परिणामो की व्याख्या करना ही लेखाङ्कन है।" "किसी सगठन की वित्तीय स्थिति तथा वित्तीय सक्रियाओ से सम्बन्धित तथ्यो को निश्चित तथा प्रमाणित अथवा सत्यापित (Verify) करने के लिए सगठन के बहीखातो, अभिलेखो तथा कार्यविधियो की सुव्यवस्थित परीक्षा को लेखा परीक्षण कहते हैं।"[1]

लेखे (Accounts)

लेखाङ्कन क्या है ? "उस वित्तीय स्थिति तथा उन सक्रियाओ से सम्बन्धित तथ्यो को शीघ्रता से निर्मित करने तथा स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करने की विद्या को ही लेखाङ्कन कहते है, जोकि प्रवन्ध के एक आधार के रूप मे आवश्यक होती हैं।"[2] लेखाङ्कन का अर्थ है— सगठन के वित्तीय कार्यों का समुचित अभिलेख रखना। अत

---

1 Accounting has been defined as the "art of recording, classifying, and summarizing transactions, wholly or in part of a financial nature, in terms of money and interpreting the results thereof"

"Auditing is an examination of the books, records and procedures of an organisation to ascertain or to verify the facts with respect to the organisation's financial opposition and financial operations"

(Puerto Rioo and its Public Administration Programme (San Juan, 1945) pp 244-45)

2 "Accounting is the science of producing promptly and presenting clearly the facts relating to financial condition and operations that are required as a basis of management"

Francis Oakev Principles of Government Accounting and Reporting 1921, p I.

लेखो अथवा हिसाब-किताब का रखना व्यय करने वाली सत्ताओ अथवा कार्यपालिका का कर्तव्य है। समुचित लेखे यह भी प्रकट करते है कि धन का प्रयोग वैधानिक रूप से किया गया है, और लेखा-प्रतिवेदन (Account report) के आधार पर व्यय करने वाले अधिकारी अपने उच्च अधिकारियो के सम्मुख अपने खर्चों का औचित्य (Justification) सिद्ध करते है। लेखाङ्कन की एक समुचित पद्धति के द्वारा धन के अनुचित प्रयोग को रोका जा सकता है। लेखाङ्कन मे इस बात की भी निश्चिन्तता हो जाती है कि धन का प्रयोग उस कार्य के लिए वैधानिक रूप मे किया गया है या नही जिसके लिए कि ससद ने उसकी स्वीकृति दी थी। लेखे इस प्रकार रखे जाने चाहिये कि वे वित्तीय सक्रियाओ से सम्बन्धित सामग्री प्रस्तुत करें तथा उनसे व्यय करने वाले प्राधिकारियो की ईमानदारी प्रकट हो। व्यय करने वाले प्राधिकारियो को अपने द्वारा खर्च किये जाने वाले एक-एक पैसे के सम्बन्ध मे रसीदें (Receipts) अथवा प्रमाणक (Vouchers) प्रस्तुत करने चाहिए।

लोक-लेखाङ्कन के आवश्यक तत्व (Essentials for Public Accounting)

अब हम लोक-लेखाङ्कन के कुछ आवश्यक तत्वो पर विचार प्रकट करते हैं। ये निम्न प्रकार हैं —

(१) **लेखो का केन्द्रीकरण** (Centralization of accounts)—सभी प्रकार के वित्तीय अभिलेख रखने अथवा उनके रखने की विधि का पर्यवेक्षण करने तथा सभी प्रकार के वित्तीय प्रतिवेदनो को तैयार करने के लिए एक ही अधिकारी को उत्तरदायी बनाया जाना चाहिये। इसका लाभ यह होगा कि सरकारी विभागो के सभी लेखो का समन्वय तथा एकीकरण किया जा सकेगा।

(२) **लेखाङ्कन-पद्धति की प्रकृति** (Character of the Accounting system)—हिसाब-किताब दोहरे लेखे के आधार (Double entry basis) पर रखा जाना चाहिए। साथ ही निम्नलिखित सिद्धान्तो के आधार पर एक साधारण खाता-बही (General ledger) रखी जानी चाहिए —

(क) लेखो का वर्गीकरण सतुलित निधि-वर्गों (Balanced fund groups) मे किया जाना चाहिए।

(ख) स्थायी सम्पत्ति (Permanent property) के वे परिसम्पत्ति खाते (Asset accounts) जोकि खर्चों अथवा ऋणो की पूर्ति के लिए उपलब्ध न हो, निधि परिसम्पत्तियो (Fund assets) से पृथक् रखे जाने चाहिए।

(३) **निधियो अथवा कोषो का वर्गीकरण** (Classification of funds)—परिसम्पत्तियो, देयताओ (Liabilities) तथा प्रत्येक निधि अथवा निधियो के प्रत्येक वर्ग को लेखो के एक पृथक् सन्तुलित वर्ग के रूप मे रखा जाना चाहिए। प्रत्येक निधि

३३

लेखांकन तथा लेखा-परीक्षण

(Accounting and Audit)

लोक-धन के समुचित लेखे रखना तथा एक ऐसे अभिकरण (Agency) द्वारा जोकि कार्यपालिका (Executive) के नियन्त्रण से मुक्त हो, उनका लेखा-परीक्षण कराना राजवित्त (Public finance) के किसी भी कुशल प्रशासन के लिए अत्यन्त आवश्यक है। प्रोफेसर टेनेरी ने ठीक ही कहा है कि "लेखाङ्कन रचनात्मक (Constructive) होता है और लेखा-परीक्षण विश्लेषणात्मक (Analytical)। लेखाङ्कन की परिभाषा इस प्रकार की गई है कि पूर्णतया अथवा आंशिक रूप से वित्तीय प्रकृति के लेन-देनो अथवा सौदो (Transactions) का, द्रव्य के आधार पर, विवरण रखना वर्गीकरण करना और सक्षेपीकरण करना तथा उनके परिणामो की व्याख्या करना ही लेखाङ्कन है।" "किसी सगठन की वित्तीय स्थिति तथा वित्तीय सक्रियाओ से सम्बन्धित तथ्यो को निश्चित तथा प्रमाणित अथवा सत्यापित (Verify) करने के लिए सगठन के बहीखातो, अभिलेखो तथा कार्यविधियो की सुव्यवस्थित परीक्षा को लेखा परीक्षण कहते हैं।"[1]

लेखे (Accounts)

लेखाङ्कन क्या है? "उस वित्तीय स्थिति तथा उन सक्रियाओ से सम्बन्धित तथ्यो को शीघ्रता से निर्मित करने तथा स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करने की विद्या को ही लेखाङ्कन कहते हैं, जोकि प्रबन्ध के एक आधार के रूप मे आवश्यक होती हैं।"[2] लेखाङ्कन का अर्थ है— सगठन के वित्तीय कार्यों का समुचित अभिलेख रखना। अत

---

1 Accounting has been defined as the "art of recording, classifying and summarizing transactions, wholly or in part of a financial nature, in terms of money and interpreting the results thereof"

"Auditing is an examination of the books, records and procedures of an organisation to ascertain or to verify the facts with respect to the organisation's financial opposition and financial operations"

(Puerto Rioo and its Public Administration Programme (San Juan, 1945) pp 244-45)

2 "Accounting is the science of producing promptly and presenting clearly the facts relating to financial condition and operations that are required as a basis of management"

Francis Oakey Principles of Government Accounting and Reporting 1921, p 1

लेखो अथवा हिसाब-किताब का रखना व्यय करने वाली सत्ताओं अथवा कार्यपालिका का कर्तव्य है। समुचित लेखे यह भी प्रकट करते हैं कि धन का प्रयोग वैधानिक रूप से किया गया है, और लेखा-प्रतिवेदन (Account report) के आधार पर व्यय करने वाले अधिकारी अपने उच्च अधिकारियो के सम्मुख अपने खर्चों का औचित्य (Justification) सिद्ध करते हैं। लेखाङ्कन की एक समुचित पद्धति के द्वारा धन के अनुचित प्रयोग को रोका जा सकता है। लेखाङ्कन से इस बात की भी निश्चितता हो जाती है कि धन का प्रयोग उस कार्य के लिए वैधानिक रूप से किया गया है या नही जिसके लिए कि ससद ने उसकी स्वीकृति दी थी। लेखे इस प्रकार रखे जाने चाहियें कि वे वित्तीय सक्रियाओ से सम्बन्धित सामग्री प्रस्तुत करें तथा उनसे व्यय करने वाले प्राधिकारियो की ईमानदारी प्रकट हो। व्यय करने वाले प्राधिकारियों को अपने द्वारा खर्च किये जाने वाले एक-एक पैसे के सम्बन्ध मे रसीदें (Receipts) अथवा प्रमाणक (Vouchers) प्रस्तुत करने चाहिए।

लोक-लेखाङ्कन के आवश्यक तत्व
(Essentials for Public Accounting)

अब हम लोक-लेखाङ्कन के कुछ आवश्यक तत्वो पर विचार प्रकट करते हैं। ये निम्न प्रकार है —

(१) **लेखो का केन्द्रीकरण** (Centralization of accounts)—सभी प्रकार के वित्तीय अभिलेख रखने अथवा उनके रखने की विधि का पर्यवेक्षण करने तथा सभी प्रकार के वित्तीय प्रतिवेदनो को तैयार करने के लिए एक ही अधिकारी को उत्तरदायी बनाया जाना चाहिये। इसका लाभ यह होगा कि सरकारी विभागों के सभी लेखो का समन्वय तथा एकीकरण किया जा सकेगा।

(२) **लेखाङ्कन-पद्धति की प्रकृति** (Character of the Accounting system)—हिसाब-किताब दोहरे लेखे के आधार (Double entry basis) पर रखा जाना चाहिए। साथ ही निम्नलिखित सिद्धान्तो के आधार पर एक साधारण खाता वही (General ledger) रखी जानी चाहिए —

(क) लेखो का वर्गीकरण सतुलित निधि-वर्गों (Balanced fund gro- ...) मे किया जाना चाहिए।

(ख) स्थायी सम्पत्ति (Permanent property) के वे परिसम्पत्ति ... (Asset accounts) जोकि खर्चों अथवा ऋणो की पूर्ति के लिए उपलब्ध न ... निधि परिसम्पत्तियो (Fund assets) से पृथक् रखे जाने चाहिए।

(३) **निधियों अथवा कोषो का वर्गीकरण** (Classification of ...)— परिसम्पत्तियो, देयताओ (Liabilities) तथा प्रत्येक निधि अथवा निधियों ... वर्ग को लेखो के एक पृथक् सन्तुलित वर्ग के रूप मे रखा जाना चाहिए। ...

के लिये एक पूर्ण तुलन-पत्र अथवा चिट्ठे (Balance sheet) का सकलन किया जाना चाहिए।

(४) **बजट सम्बन्धी नियन्त्रण के लेखे** (Budgetary Control Accounts)—लोक-लेखाङ्कन पद्धति मे बजट सम्बन्धी नियन्त्रण के लेखो, सरकारी आमदनियो, खर्चों, विनियोजनो (Appropriations) तथा ऋण-भारो का समावेश होना चाहिए।

(५) **राजस्व लेखाङ्कन** (Revenue Accounting)—लेखा-प्रतिवेदनो मे, गैर-राजस्व प्रकृति की सभी मदें राजस्व के प्रतिवेदनो (Reports of revenue) से पृथक् कर दी जानी चाहिए। प्रामाणिक वर्गीकरण के अनुसार, राजस्वो को निधि द्वारा प्राप्त आमदनियो मे तथा स्रोत (Source) द्वारा प्राप्त आमदनियो मे वर्गीकृत किया जाना चाहिए।

(६) **व्यय लेखाङ्कन** (Expenditure Accounting)—प्रामाणिक वर्गीकरण के अनुसार, खर्चों की निधि विभाग, क्रियाओ (Activities) (और यदि वाञ्छनीय हो तो उद्देश्य) के आधार पर वर्गीकृत किया जाना चाहिए।[1]

इस प्रकार, सरकारी लेखे तैयार करते समय उपरोक्त सिद्धान्तो का पालन किया जाना चाहिए और ऐसे वार्षिक लेखा-प्रतिवेदनो (Annual accounts reports) का प्रकाशन किया जाना चाहिए जिनमे कि सरकार के सभी विभागो की ठीक-ठीक वित्तीय स्थिति दिखाई गई हो।

लोक लेखे—इसकी विभिन्न किस्मे
(Public Accounts—Its Various Kinds)

अब हम लोक-लेखो की विभिन्न किस्मो पर विचार करते है —

(१) **लेखो की रोकड-प्रणाली तथा सभूत प्रणाली** (Cash System and Accrual System of Accounts)—लेखो की रोकड पद्धति मे सौदो का विवरण केवल तब रखा जाता है जबकि रोकड वास्तव मे ली या दी जाती है किन्तु सभूत प्रणाली मे सौदो की बातचीत के समय ही उनका लेखा दर्ज कर लिया जाता है। सभूत प्रणाली के आधार पर राजस्व का अर्थ है कि लेखो की प्रत्येक मद उस समय दर्ज की जाती है जबकि वह वाजिब होती है अथवा उसके लिए बिल अथवा विपत्र जारी किया जाता है। इस प्रकार, रोकड-प्रणाली से कभी भी ठीक-ठीक वित्तीय स्थिति प्रकट नही होती, क्योकि यह सदा विगत स्थिति की द्योतक होती है और

1 The above principles have been summarized from *Public Administration in a Democratic Society* pp 432-36 by W Brooke Graves who condensed these principles from an outline of Principles of Municipal Accounting recommended by the National Committee on Municipal Accounting January 6, 1936, and Morey, Lloyd ' Fundamentals of Municipal Accounting," an address before the Municipal Finance Officers Association

सभूत प्रणाली सदा वर्तमान स्थिति को प्रकट करती है। चूकि कुछ ठको (Contracts) को पूरा होने मे महीनो लग जाते हैं अत स्वभावत ही दोनो प्रणालियो के वीच का अन्तर काफी महत्वपूर्ण है। सभूत प्रणाली प्रवन्धकर्त्ताओ के लिए यह सभव बना देती है कि वे अपनी वास्तविक स्थिति का ठीक-ठीक ज्ञान प्राप्त कर मकें, किन्तु रोकड-प्रणाली मे ऐसा होना सभव नही है। सभूत प्रणाली के अन्तर्गत, आय का लेखा तव किया जाता है जव कि वह अर्जित (Earned) की जाती है, और खर्चो का लेखा तव किया जाता है जव कि वे किये जाते हैं। सभूत प्रणाली मे, राजस्व तथा करो का लेखा तव किया जाता है और तभी उन पर नियन्त्रण रखा जाता है जव कि उनका निर्धारण (Assessment) किया जाता है, और व्ययो का लेखा तव किया जाता है जव कि वे किए जाते हैं। सभूत प्रणाली राजस्व अनुमानो की वसूलयावी और व्यय तथा विनियोजनो की उपलव्धता के सम्वन्ध मे पूर्णतया आधुनिक सूचनाए तथा जानकारी प्रदान करती हैं।

(२) **लागत-मूल्य लेखाङ्कन-प्रणाली** (Cost Accounting System) — इसका अर्थ है कि लेखाङ्कन की ऐसी प्रणाली जिसमे क्रमिक विभागो मे विभिन्न क्रियाओ की लागत (Costs) नियत कर दी जाती है। लेखाङ्कन की लागत-मूल्य पद्धति मे अनेक लागतें प्रकट की जाती हैं जैसे कि सरकार की विभिन्न सेवाओ की स्थापना एव उनके सचालन की लागत, उससे सम्वन्वित पृथक्-पृथक् कार्यों अथवा क्रियाओ के सम्पन्न करने की लागत, व्यय के विभिन्न कार्यों अथवा कार्यों के वर्गों की लागत आदि। यदि विभिन्न क्रियाओ की लागत से सम्वन्धित ऐसी जानकारी की आवश्यकता होती है तो एक विशिष्ट लागत-मूल्य लेखाङ्कन-प्रणाली की व्यवस्था की जाती है।

भारत मे लेखाङ्कन
(Accounting in India)

भारत सरकार के ठीक-ठीक लेखे रखने का उत्तरदायित्व नियन्त्रक व महालेखा-परीक्षक (Comptroller and Auditor General) पर होता है। "सघ और राज्यो के लेखो को ऐसे रूप मे रखा जायेगा जैसा कि भारत का नियन्त्रक व महालेखा-परीक्षक, राष्ट्रपति के अनुमोदन से, निर्धारित करें।"[1] नियन्त्रक व महालेखा-परीक्षक के अधीन, प्रत्येक राज्य मे एक महालेखापाल (Accountant General) होता है जिसके कार्यालय मे (सघ तथा राज्य के) उन सौदो (Transactions) के लेखे रखे जाते हैं जोकि राज्य की क्षेत्रीय सीमाओ के अन्तर्गत सम्पन्न होते है। रेलो के लेखे (Railway Accounts) रेलो के वित्तीय आयुक्त (Financial Commissioner) द्वारा, और प्रतिरक्षा लेखे (Defence Accounts) वित्त-मन्त्रालय द्वारा, वित्तीय सलाहकार (प्रतिरक्षा) और सैनिक महालेखापाल के माध्यम मे रखे जाते

1 Art 150

हैं। जहाँ तक भारत सरकार के लेखो को रखने का प्रश्न है, इस सम्बन्ध मे महालेखा-परीक्षक के निम्नलिखित कर्तव्य तथा शक्तिया हैं[1] —

(१) महालेखा-परीक्षक (Auditor-General) भारत के वित्त तथा राजस्व लेखो का सकलन ऐसे रूप मे करेगा जोकि राष्ट्रपति द्वारा निर्धारित किया जायेगा और उन्हे राष्ट्रपति के पास भेजेगा। वह किसी भी सरकारी अधिकारी से कोई भी सूचना ऐसे रूप मे माग सकता है जोकि उन लेखो के पूर्तिकरण की दृष्टि से आवश्यक हो।

(२) महालेखा-परीक्षक को यह अधिकार होगा कि वह उस रूप का निर्धारण कर सके जिसके अनुसार लेखा-परीक्षण कार्यालयो मे लेखे रखे जायेगे, बशर्ते कि राष्ट्रपति की पूर्वानुमति के बिना ऐसा कोई भी परिवर्तन न किया जाय जो कि वित्त के स्वरूप को तथा राजस्व लेखो (Revenue Accounts) को प्रभावित करे।

(३) यदि कोई ऐसा सन्देह अथवा विवाद उत्पन्न होता है कि किसी बडे शीर्षक (Major head) मे कोई विशिष्ट छोटा शीर्षक, अथवा किसी छोटे शीर्षक (Minor head) मे कोई विशिष्ट ब्यौरेवार (Detailed) शीर्षक सम्मिलित किया जाना चाहिए या नही तो उसका निर्णय महालेखा-परीक्षक द्वारा किया जायेगा।

(४) महालेखा-परीक्षक प्रतिवर्ष लेखा-परीक्षण विभागो (Audit Departments) द्वारा रखे गये बहीखातो की बाकियो का सारलेख तैयार करेगा और उसे राष्ट्रपति के पास भेजेगा।

(५) महालेखा-परीक्षक को यह शक्ति प्राप्त होगी कि वह उस रूप (Form) का निर्धारण कर सके जिसमे कि भारतीय लेखा-परीक्षण विभाग के सन्मुख लेखे प्रस्तुत करने वाले अधिकारी ऐसे लेखे प्रस्तुत करेंगे, अथवा जिस (रूप) मे वे प्रारम्भिक लेखे रखे जायेंगे जिनसे कि इस प्रकार प्रस्तुत किये जाने वाले लेखो का सकलन किया जाता है अथवा जिन पर वे आधारित होते हैं।

(६) महालेखा-परीक्षक इस बात की व्यवस्था करेगा कि उसके अधीनस्थ अधिकारी राष्ट्रपति अथवा स्थानीय शासन द्वारा माँगी गई ऐसी कोई भी सूचना प्रदान करें अथवा वह स्वय प्रदान करे जो कि उसके नियन्त्रण के अधीन कार्यालयो मे रखे गये लेखो से प्राप्त की जा सकती है।

(७) महालेखा-परीक्षक इस बात की व्यवस्था करेगा कि राष्ट्रपति, स्थानीय शासन तथा प्राधिकारियो को अपने वार्षिक बजट अनुमान तैयार करने मे जिस सहायता की भी आवश्यकता हो, भारतीय लेखा-परीक्षण विभाग के अधिकारियो द्वारा वह प्रदान की जाय।[2]

---

1 His Powers are governed by the Audit and Accounts Order 1936 as adapted under the Indian (Provisional Constitution) Order 1947

2 Extract from Auditor General's Rules framed by the Secretary of State in Council under Section 96 D (1) of the Government of India Act, 1935, reproduced by Dr Gyan Chand, *The Financial System of India*, 1926, pp 410-414

भारत की स्वतन्त्रता के कारण होने वाले कुछ परिवर्तनो के फलस्वरूप, उपरोक्त नियमो मे कुछ आवश्यक हेर-फेर किये गए है, यद्यपि उनका महत्वपूर्ण ढाचा पूर्ववत् ही है, उदाहरण के लिए, सन् १९३५ के अधिनियम के अन्तर्गत परिषद् (Council) मे गवर्नर जनरल तथा राजमन्त्री (Secretary of State) थे। अब देश मे ससदीय पद्धति है जिसमे कि देश पर शासन करने की वास्तविक सत्ता ससद तथा उसकी समिति, अर्थात् मन्त्रि-परिषद् (Council of the ministers) मे निहित है और राष्ट्र के प्रधान को राष्ट्रपति (President) कहा जाता है।

भारत मे लेखाकन की कार्यविधि
(Accounting Procedure in India)

राजकोष (Treasuries), जो कि भारत मे राजस्व-विषयक प्रशासन की पहली इकाई (Unit) है, अपने प्रमाणक (Vouchers) (अथवा रुपया निकालने वाले अधिकारियो द्वारा राजकोषो के सन्मुख प्रस्तुत किये जाने वाले विपत्र), माह मे दो बार उनसे व्यवहार करने वाले भिन्न-भिन्न महालेखापालो (Accountants General) के समक्ष प्रस्तुत करते है जो कि इन प्रमाणको से लेखो (Accounts) का सकलन करते हैं। राजकोषो द्वारा भेजे गए ये प्रमाणक महालेखापालो के कार्यालयो मे लेखो के उन वडे तथा मुख्य शीर्षको मे सकलित किये जाते है जो कि नियन्त्रक व महालेखा परीक्षक द्वारा निर्धारित होते हैं। तव उनमे वे अन्तर्विभागीय सौदे भी जोड दिये जाते हैं जिनके लिए सम्बन्धित विभागो के वहीखातो के शेषो मे समायोजन (Adjustments) किए जाते है। इसके पश्चात् नियन्त्रक व महालेखा-परीक्षक महालेखापालो के अभिलेखो (Records) से दो प्रकार के लेखो का सकलन करता है। वित्त लेखो (Finance Accounts) मे सभी प्राप्तिया तथा व्यय एक साथ दिखाये जाते है जवकि विनियोजन लेखो (Appropriation Accounts) मे ससद द्वारा अनुमोदित अनुदानो (Grants) के अनुसार किया गया वास्तविक व्यय दिखाया जाता है। नियन्त्रक व महालेखा-परीक्षक अन्य अधीनस्थ महालेखापालो द्वारा प्रस्तुत किये गए लेखो के विवरण-पत्रो (Statements) से एक सामान्य वित्तीय विवरण-पत्र भी तैयार करता है जिसमे कि प्राप्तियो एव सवितरणो (Receipts and disbursements) के अलावा सरकार की अशोधित देयताए तथा परिसम्पत्तिया (Outstanding liablities and assets) दिखाई जाती है। यह सब कार्य प्रधान केन्द्रीय कार्यालय मे किया जाता है। नियन्त्रक व महालेखा-परीक्षक द्वारा तैयार किये गए लेखे राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत किए जाते हैं जो कि उन्हे सदन (House) के सन्मुख रखता है।

लेखो तथा लेखा-परीक्षण की पृथक्ता
(Separation of Accounts and Audit)

वर्तमान व्यवस्था, जिसके अन्तर्गत कि व्ययकारक प्राधिकारी (Spending authorities) उन सौदो अथवा लेन-देनो (Transactions) के सम्बन्ध मे, जिनके

लिए कि वे जिम्मेदार होते हैं, एक पूर्ण तथा आधुनिक हिसाब-किताब रखने के लिए उत्तरदायी नही होते और पूर्णलेखो के सकलन तथा परिपालन का कार्य एक वाह्य सत्ता अर्थात् भारतीय लेखा-परीक्षण विभाग मे निहित रहता है, —व्ययकारक विभागो के अनेक ऐसे उत्तरदायित्वो की दृष्टि से पूर्णतया असगत (Inconsistant) है जैसे कि अपने वित्तीय सौदो पर प्रभावपूर्ण नियन्त्रण तथा बजट अनुदानो व विनियोजनो की परिधि मे रहने के ससद के प्रति अपने दायित्वो को पूरा करने का उत्तरदायित्व वास्तव मे, प्रचलित व्यवस्थायें उक्त उत्तरदायित्वो को कलकित करती हैं तथा अत्यन्त दोषपूर्ण हैं। लेखाङ्कन तथा लेखा-परीक्षण की व्यवस्था पृथक्-पृथक् कार्यों के रूप मे की जानी चाहिए, क्योकि प्रबन्ध (Management) के एक आवश्यक अस्त्र के रूप मे, लेखाङ्कन का कार्य प्रबन्धको के नियन्त्रण के अन्तर्गत रहना चाहिए और प्रबन्ध पर वाह्य निरीक्षण एव जाच के रूप मे भी, लेखा-परीक्षण तथा लेखाङ्कन के कार्य को एक ही अभिकरण मे सयुक्त नही किया जाना चाहिए।

लेखा-परीक्षण से लेखाङ्कन को पृथक् रखने के पक्ष मे जो तर्क दिये जाते हैं वे ये हैं :—

(१) लेखो अथवा हिसाब-किताब का रखना व्यय-कारक प्राधिकारियो का निष्पादक कार्य (Executive function) है।

(२) जब लेखो का विभागीकरण किया जाता है तो प्रशासकीय अधिकारियो को वास्तविक व्यय के आँकडे उपलब्ध हो जाते हैं। यदि प्रशासन अपने निजी लेखे (Accounts) रखता है तो विभिन्न विभागो की स्थिति का स्पष्ट वित्तीय चित्र सदा उसके सामने रह सकता है। अक्तूबर सन् १९५१ मे ब्रिटेन मे राष्ट्रमण्डल (Common wealth) के देशो मे महालेखा-परीक्षको (Auditor-General) का सम्मेलन सर्वसम्मति से इस निष्कर्ष पर पहुचा कि महालेखा परीक्षक को भुगतान नही करने चाहिए अथवा लेख नही रखने चाहिए। नियन्त्रक व महालेखा-परीक्षक ने ससदीय समिति के सामने दिये गये अपने वक्तव्य मे यह कहा कि, "यदि भारत मे राजकोषीय नियन्त्रण की एक सन्तोषजनक व्यवस्था लागू करनी है, तो मेरे विचार से, हमे इस दिशा मे उठाये जाने वाले पहले पग के रूप मे, ब्रिटेन मे प्रचलित पद्धति का आश्रय लेना होगा, जिस मे कि प्रत्येक मन्त्रालय (Ministry) तथा बडे व्ययकारक विभाग मे पृथक्-पृथक् लेखाधिकारी (Accounts officers) रखे जाते हैं और उस मन्त्रालय अथवा विभाग से सम्बन्धित सभी अदायगियाँ उस अधिकारी पर ही केन्द्रित रहती हैं। इसका ही एक अन्य रूप यही हो सकता है कि राज्य सरकार को हिसाब-किताब अथवा लेखो को रखने का कार्य स्वय अपने ऊपर लेना होगा जोकि सविधान के सक्रमणकालीन उपबन्धो (Transitorial provisions) के अन्तर्गत, वर्तमान समय मे, नियन्त्रक व महालेखा-परीक्षक का उत्तरदायित्व माना जाता है। वर्तमान स्थिति जिसमें कि लेखे रखने तथा उनका परीक्षण करने के लिए एक ही अभिकरण को उत्तरदायी बनाया जाता है, केवल नियम विरुद्ध ही नहीं है, अपितु अत्यन्त अनुचित

तथा दोषपूर्ण भी है।"[1] प्रचलित व्यवस्था की अनुपयुक्तता को साइमन आयोग (Simon Commission) ने भी स्वीकार किया था जिसने कि प्रचलित व्यवस्था मे पाये जाने वाले दोषो का एक स्पष्ट विश्लेपरग किया।

साइमन आयोग ने कहा कि "भारतीय वित्तीय व्यवस्था का एक विचित्र लक्षरग यह है कि यह उसको (महालेखा-परीक्षरग को) एक तीसरा कार्य सौंपती है। लेखो के सकलन (Compilation of accounts) तथा उनके परीक्षरग (Audit) का कार्य, उन प्रान्तो (Provinces) को छोडकर जिनमे कि परिषदीय राजमन्त्री (Secretary of State in Council) ने अन्य कोई घोपरगा की हो, एक ही अभिकरग अर्थात् भारतीय लेखा-परीक्षरग विभाग (Indian Audit Department) को सौपा गया है। अत महालेखा-परीक्षरग केवल लेखा-परीक्षरग के लिए ही उत्तरदायी नही होता, वल्कि उन लेखो अथवा हिसाव-किताव को तैयार करने का उत्तरदायित्व भी उस पर ही होता है जिनका कि वह लेखा-परीक्षरग करता है। वह, वास्तव मे, वह अधिकारी होता है जोकि उन लेखो के सकलन के लिए वैधानिक रूप से उत्तरदायी होता है जोकि राजमन्त्री को प्रतिवर्ष ससद के दोनो सदनो के समक्ष रखने होते है। कर्त्तव्यो के इस नियम-विरुद्ध (Anomalous) सयोग (जोकि भारत मे सन् १९२० से पूर्व प्रचलित प्रशासन की अत्यन्त केन्द्रीकृत पद्धति का अवशेष-मात्र है) का स्पष्टीकरग भारत की सवैधानिक तथा प्रशासकीय व्यवस्थाओ की सक्रमरगकालीन प्रकृति मे निहित है। भारत सरकार के अनेक विभागो मे तथा सयुक्त प्रान्त (United Provinces) मे लेखा-परीक्षरग तथा लेखे पहले ही पृथक् कर दिये गये है, और अन्य प्रान्तो मे इस वित्तीय सुधार का विस्तार करने के कार्यक्रम मे, जिसकी कि सन् १९२४ की Muddiman Committee ने तीव्र सिफारिश की थी, केवल इसमे व्यय होने वाली लागत का विचार ही वाधक हो रहा है।"[2]

इस प्रकार, इन गम्भीर दोषो को दूर करने तथा प्रभावशाली राजकोषीय नियन्त्रण लागू करने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक तथा अनिवार्य है कि लेखा-परीक्षरग के कार्य को लेखाकन के कार्य से पृथक् किया जाये और प्रशासकीय विभागो के अन्तर्गत आवश्यक लेखाकन-यन्त्र का सगठन किया जाए। लोक-व्यय (Public expenditure) पर राजकोषीय नियन्त्रण के वारे मे प्रस्तुत किये गये अपने तृतीय प्रतिवेदन (Report) मे सार्वजनिक लेखा समिति (Public Accounts Committee) ने भी लेखाकन तथा लेखा-परीक्षरग के कार्य को पृथक् करने की सिफारिश की।

निष्कर्ष (Conclusion)

यदि लेखे प्रशासनिक अधिकारियो के पास को स्थानान्तरित कर दिये जायें तो अनेक समस्याओ का समाधान करना होगा। "लेखो (Accounts) का विभागीकरग करने मे यह आवश्यकता उत्पन्न होगी कि इन लेखो का एकीकरग किया जाए

1 Simon Commission Report V I, p 377
2 Simon Commission Report V I, p 377

तथा सम्पूर्ण रूप मे सघ व राज्य सरकारो के सम्मिलित वित्त तथा राजस्व लेखो मे उनका सकलन किया जाए। इस बात के विषय मे निश्चित होने की भी आवश्यकता होगी कि मन्त्रालयो की बिखरी हुई इकाइयो के अन्तर्गत लेखाकन के सिद्धान्तो एव उसकी कार्यविधि मे एकरूपता (Uniformity) कायम रखी जाए। सघ तथा राज्यो के बीच ताल-मेल बनाए रखने की भी व्यवस्था करनी होगी। इस विचार के ही सदर्भ मे यह प्रश्न भी बडा महत्वपूर्ण हो जाता है कि क्या एक ऐसे अभिकरण के द्वारा जो कि लेखो के तथा विशेष रूप से लागू किए जाने वाले नियमो व विनियमो के विभागीय ढाचे से अपरिचित होता है, पर्याप्त एव कुशल लेखा-परीक्षण की व्यवस्था की जा सकती है। भाषाई राज्यो के बनने से, जहाँ कि सरकारी काम-काज प्रादेशिक भाषाओ मे ही किया जायेगा, और ही समस्या के उठ खडी होने की सम्भावना है। सार रूप मे यह कहा जा सकता है कि उचित यही है कि इन परिवर्तनो का आरम्भ उस समय तक नही किया जाना चाहिए जब तक कि भविष्य बिल्कुल निश्चित तथा स्पष्ट न हो जाये।"[1]

"भारत सरकार के लेखे तथा लेखा-परीक्षण की भूमिका" (An Introduction to Indian Government Accounts and Audit) नामक पुस्तक मे इस समस्या का निम्न प्रकार उल्लेख किया गया है —

"सन् १९२४ मे, सयुक्त प्रान्त (अब उत्तर प्रदेश) मे तथा भारत सरकार के कुछ विभागो मे सिविल क्षेत्र मे लेखा-परीक्षण से लेखो को पृथक् करने की एक योजना प्रयोग के रूप मे लागू की गई थी। परन्तु सन् १९३१ मे पूर्णतया वित्तीय कारणो से यह प्रयोग (Experiment) छोड दिया गया क्योकि यह देखा गया है कि लेखो के पृथक्करण की यह पद्धति अधिक खर्चीली थी। कुछ भी हो, लेखो तथा लेखा-परीक्षण के सयुक्तीकरण की पद्धति सैद्धान्तिक रूप मे बडी अवास्तविक है और यह लेखा-परीक्षण (Audit) को लेखे (Accounts) के उन कार्यों से सयुक्त करके, जोकि पूर्णतया निष्पादक अधिकारियो के कार्य हैं, लेखा-परीक्षण की स्वतन्त्रता को नष्ट करने लगती है। वर्तमान मे इस अत्यन्त आवश्यक सुधार के मार्ग मे मानवीय शक्ति की समस्याये बाधक है, परन्तु भविष्य मे जब भी मानवीय शक्ति की स्थिति सुधरेगी तभी इस सुधार (Reform) को गम्भीरता के साथ लागू करना होगा।"[2] इस समस्या को दृष्टिगत रखते हुए, यह आवश्यक है कि लेखो तथा लेखा-परीक्षण को पृथक् किया जाए और अधिक लागत के कारण अथवा मानवीय शक्ति की तथा-कथित कमी के कारण इस सुधार को लागू करने मे देरी न की जाए।

लेखा-परीक्षण (Audit)

लेखा-परीक्षण देश के वित्तीय कार्यों पर ससदीय नियन्त्रण लगाने के सबसे अधिक महत्वपूर्ण अस्त्रो मे से एक है। स्वतन्त्र लेखा-परीक्षण लोक-धन की सुरक्षा का

---

1 Asoka Chanda *Indian Administration* p 250

2 An Introduction to the Government Accounts and Audit p 531

एक अत्यन्त महत्वपूर्ण साधन है। "वित्तीय सक्रियाओ तथा परिणामो से सम्बन्धित तथ्यो को निश्चित, सत्यापित तथा सूचित करने के लिए किसी व्यवसाय अथवा सगठन के बहीखातो तथा अभिलेखो की सुव्यवस्थित परीक्षा को लेखा-परीक्षण कहते हैं।"[1] लोकतन्त्रीय देश मे सरकारी धन का लेखा-परीक्षण एक स्वतन्त्र अधिकारी द्वारा किया जाता है जोकि विधान-मण्डल (Legislature) के उत्तरदायित्व पर इस कार्य को सम्पन्न करता है। उसका यह कर्त्तव्य है कि वह यह देखे कि धन मितव्ययता एव ईमानदारी के साथ व्यय किया गया है या नही।

लेखा-परीक्षण के प्रकार पूर्व-लेखा-परीक्षण और उत्तर-लेखा परीक्षण
(Types of Audit : Pre-Audit and Post-Audit)

पूर्व-लेखा-परीक्षण का सम्बन्ध, किसी सौदे अथवा लेन-देन के पूर्ण होने तथा लेखाकन की अन्तिम पुस्तको मे उसका अभिलेख किए जाने से पूर्व उनके महत्वपूर्ण तत्वो की परीक्षा से होता है। यह प्रबन्ध-कर्त्ताओ का एक अस्त्र है तथा विभाग अथवा अभिकरण के अन्तर्गत उन सौदो की परिशुद्धता (Accuracy) तथा वैधता (Legality) की एक प्रशासकीय जाच है जोकि अभी चालू है। पूर्व-लेखा-परीक्षण धन की उपलब्धता तथा व्यय की वैधता की जानकारी प्राप्त करने के लिए किया जाता है। यदि इसकी समुचित व्यवस्था की जाए तो यह बजट के साधनो से अधिक व्यय को रोक सकता है।

उत्तर-लेखा-परीक्षण का सम्बन्ध, सौदो के पूर्ण हो जाने तथा लेखाकन की पुस्तको मे उसका लेखा किये जाने के पश्चात् उनके अभिलेखो (Records) की जाँच से होता है। उत्तर-लेखा-परीक्षण तब किया जाता है जबकि धन वास्तव मे खर्च कर दिया जाता है।

लेखा-परीक्षक के कार्य
(Functions of an Auditor)

वार्षिक लेखा-परीक्षण एक ऐसे व्यक्ति अथवा अभिकरण द्वारा किया जाना चाहिए जोकि कार्यपालिका के नियन्त्रण से स्वतन्त्र हो। स्वतन्त्र लेखा-परीक्षण के कार्य को सम्पन्न करने वाला अभिकरण विधान-मण्डल के प्रति उत्तरदायी होना चाहिए।

लेखा-परीक्षक के मुख्य रूप से तीन कर्त्तव्य होने चाहिए। **सर्वप्रथम** उसे भूतकाल के सौदो की जाँच करनी चाहिए। सरकारी धन की प्राप्ति अभिरक्षा

1 "Auditing is a systematic examination of the books and records of a business or other organisation, in order to ascertain or verify, and to report upon, the facts regarding its financial operations and the results thereof"
—Robert H Montgomery, Auditing *Theory and Practice*, 6th Ed 1960

(Custody) तथा संवितरण (Disbursement) करने वाले सभी व्यक्तियो अथवा अभिकरणो के लेखो तथा विवरणो की जाच करनी चाहिए जिससे कि उनकी ईमानदारी तथा समुचित उत्तरदायिता के बारे मे आश्वस्त हुआ जा सके। दूसरे, जो सरकारी निधियां (Funds) व्यय की गई हो जो प्राप्त की गई हो अथवा जो प्राप्त की जानी हो, उनके सौदो की वैधता के प्रश्न की जाच करनी चाहिए। तीसरे, लेखा परीक्षक को ऐसे परीक्षणो अथवा जाचो के परिणामो की सूचना विधान-सभा (Legislative Assembly) को, जोकि सरकार की कार्यपालिका तथा प्रशासकीय शाखाओ की जाच का कार्य करने वाली एक शाखा (Branch) है, देनी चाहिए। दूसरी ओर नियन्त्रक व महालेखा-परीक्षक के कार्य ये है राज्य द्वारा अथवा उसके विरुद्ध किये गए दावो का निपटारा, और इसी के प्रसग मे, राज्य के केन्द्रीय लेखो को रखना तथा क्षेत्रीय कार्यालयो तथा संस्थाओ मे सहायक लेखांकन पद्धतियो का निर्धारण करना। इनमे शुद्ध रूप से प्रशासकीय कर्तव्य ही सम्मिलित हैं। नियन्त्रक व महालेखा-परीक्षक प्रशासकीय नियन्त्रण तथा अभिलेख के उपायो के रूप में, सभी दावो (Claims) की उपयुक्तता, यथार्थता तथा वर्गीकरण के निर्धारण के उद्देश्य से उनका प्रशासकीय पूर्व-परीक्षण करेगा।[1]

इगलैंड मे व्यय-नियन्त्रण लेखा-परीक्षण
(Expenditure Control in England : Audit)

इगलैंड मे सन् १८६६ के 'राजकोष तथा लेखा-परीक्षण विभाग अधिनियम द्वारा स्वतत्र लेखा-परीक्षण की व्यवस्था की गई। नियन्त्रक व महालेखा-परीक्षक वार्षिक रूप से राजकोष तथा अन्य विभागो के लेखो की जाच करता है। वह इतनी गहराई से जाच करता है जितनी कि आन्तरिक प्रशासकीय जाचो को दृष्टिगत रखते हुए वह आवश्यक समझता है। वह इस बात का निश्चय करता है कि व्यय ससदीय विनियोजनो की सीमा के अन्तर्गत किये गए है या नही, और राजकोषीय निर्देशों का पालन किया गया है या नही। "नियन्त्रक व महालेखा-परीक्षक अपने निर्णयो का विवरण लोकसभा की सार्वजनिक लेखा समिति के सामने रखता है जिसका सभापति विधान मण्डल के विरोधी पक्ष का एक सदस्य होता है।" यह समिति सरकारी अधिकारियों तथा राजकोष के प्रतिनिधियो की सुनवाई करने के पश्चात् अपने निर्णयो की सूचना लोकसभा (House of Commons) को देती है। विधायी आलोचना (Legislative criticism) की स्थिति मे, या तो राजकोष को अपना अभ्यास-क्रम ही बदलना होता है अथवा सार्वजनिक रूप से अपना पक्ष-पोषण करना होता है। यदि कही किसी विभाग द्वारा विनियोजनो से अधिक व्यय किये जाते हैं तो राजकोष को उसकी अनुमति देनी आवश्यक होती है और जहाँ तक भी अनुज्ञेय (Permissible) हो, उसे धन के स्थानान्तरण का प्राधिकार देना होता है, यदि ऐसा नही होता

---

1 Report on a survey of the organisation of the State Governments of North Corolinga Brookings Institution, Washington, *D C*, *1930* p *320*

है तो राजकोष को अनुपूरक विनियोजन (Supplementary appropriation) के रूप मे लोकसभा से सत्यापन (Ratification) प्राप्त करना आवश्यक होता है। यदि इन दोनो मे से कोई भी रीति नही अपनाई जाती है तो विभागीय लेखाकन अधिकारी वैयक्तिक रूप से इसके लिए उत्तरदायी होता है।[1]

सयुक्त राज्य अमेरिका मे व्यय नियन्त्रण लेखा परीक्षण (Expenditure Control in the United States : Audit)

सयुक्त राज्य अमेरिका मे सन् १६२१ के बजट तथा लेखाकन अधिनियम (Budget and Accounting Act) के द्वारा एक स्वतन्त्र लेखा-परीक्षण कार्यालय की स्थापना की गई। इस कार्यालय को निम्नलिखित शक्तिया सौंपी गई, अमेरिका की सरकार के द्वारा अथवा उसके विरोध मे किये गये सभी दावो तथा मागो का निवटारा तथा समायोजन करना, लेखाकन की प्रक्रिया तथा रूप का निर्धारण करना लोक-धन की प्राप्ति, सवितरण तथा उपयोग सम्बन्धी सभी मामलो की जाच पडताल करना, और कानून का उल्लघन करके किये गए प्रत्येक व्यय अथवा ठेके की सूचना काग्रेस को देना। इस प्रकार इन शक्तियो मे ये प्राधिकार सम्मिलित हैं, लोक-धन की प्राप्ति, उसके व्यय अथवा उपयोग सम्बन्धी सभी सविधियो (Statutes) की व्याख्या करना, ठेको का अनुमोदन करना और भुगतानो की वैधता के लिए आवश्यक मूल प्रलेखो को अपनी अभिरक्षा (Custody) मे रखता है। ये शक्तिया यह प्रदर्शित करती है कि सयुक्त राज्य अमेरिका मे सामान्य लेखाकन कार्यालय (General Accounting office) को केन्द्रीय स्थिति प्राप्त है।

भारत का नियन्त्रक व महालेखा-परीक्षक (Comptroller and Auditor General of India)

भारतीय सविधान के निर्माताओ ने एक स्वतन्त्र नियन्त्रक व महालेखा परीक्षक की भी व्यवस्था की है जोकि भारत की सचित निधि (Consolidated Fund of India) मे से व्यय किये जाने वाली सभी लोक-धनराशियो का लेखा परीक्षण करता है। उसके स्थायित्व तथा पदावधि की सुरक्षा की भी व्यवस्था की गई है बशर्ते कि उसका व्यवहार अच्छा हो। इस बात का पूर्ण प्रयत्न किया गया है कि उसके पद को किसी भी प्रकार के बाह्य प्रभाव तथा दबावो से मुक्त रखा जाए। सेवा-निवृत्ति (Retirement) के पश्चात् उसकी पुनर्नियुक्ति नही की जा सकती। इस स्वतन्त्रता की गारन्टी इसलिए की गई है जिससे कि, वह बिना किसी भय के कार्य कर सके।

---

1 "Under this system there is public assurance that financial policies and procedures will stand disinterested scrutiny, without calling in question the major substantive decisions for which the Government assumes political responsibility"

—F M Marx (Ed) *Elements of Public Administration* 1946 New York, p 607

अपने कर्तव्यो के निष्पादन मे, उमका, यहाँ तक कि राष्ट्र की सर्वोच्च सत्ता तक से भी मतभेद अथवा विरोध हो सकता है। वह विभिन्न कार्यपालक प्राधिकारियो (Executive authorities) द्वारा किये जाने वाले खर्चों के विश्लेषण तथा आलोचनात्मक जाच के अपने कर्तव्यो को केवल तभी सम्पन्न कर सकता है जबकि वह कार्यपालक के नियन्त्रण अथवा दबावो से मुक्त रहे।

सविधान (Constitution) के अनुच्छेद १४८–१५१ मे उसकी शक्तियो की व्यवस्था तथा उसके पद की व्याख्या निम्न प्रकार की गई है—

नियुक्ति तथा सेवा की शर्तें
(Appointment and Conditions of Service)

"अनुच्छेद १४८ (१) भारत का एक नियन्त्रक-महालेखा परीक्षक होगा जिसको राष्ट्रपति अपने हस्ताक्षर और मुद्रा सहित अधिपत्र (Warrant) द्वारा नियुक्त करेगा तथा वह अपने पद से केवल उसी रीति और केवल उन्ही कारणो से हटाया जायेगा जिस रीति और जिन कारणो से उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश हटाया जाता है।

(२) प्रत्येक व्यक्ति, जो भारत का नियन्त्रक-महालेखा परीक्षक नियुक्त किया जाता है, अपने पद-ग्रहण के पूर्व राष्ट्रपति अथवा उसके द्वारा उस कार्य के लिए नियुक्त व्यक्ति के समक्ष तृतीय अनुसूचि मे इस प्रयोजन के लिए दिये हुए प्रपत्र के अनुसार शपथ या प्रतिज्ञान करेगा और उस पर हस्ताक्षर करेगा।

(३) नियन्त्रक-महालेखा परीक्षक का वेतन तथा सेवा की शर्तें ऐसी होगी जैसी कि ससद विधि द्वारा निर्धारित करे, और जब तक ससद इस प्रकार निर्धारित न करे तब तक ऐसी होगी जैसी कि द्वितीय अनुसूची मे उल्लिखित हैं

परन्तु न तो नियन्त्रक-महालेखा परीक्षक के वेतन मे और न उसकी अनुपस्थिति का छुट्टि, पेन्शन या सेवा निवृत्ति की आयु सम्बन्धी अधिकारो मे उसकी नियुक्ति के पश्चात् उसको अलाभकारी कोई परिवर्तन किया जायेगा।

(४) अपने पद पर न रहने के पश्चात् नियन्त्रक-महालेखा परीक्षक भारत सरकार के अथवा किसी राज्य की सरकार के अधीन और पद का पात्र न होगा।

(५) इस सविधान के तथा ससद द्वारा निर्मित किसी विधि के उपबन्धो के अधीन रहते हुए भी भारतीय लेखा-परीक्षा व लेखा-विभाग मे सेवा करने वाले व्यक्तियो की सेवा की शर्तें तथा नियन्त्रक-महालेखा परीक्षक की प्रशासकीय शक्तिया ऐसी होगी जैसी कि नियन्त्रक महालेखा-परीक्षक से परामर्श करने के पश्चात् राष्ट्रपति नियमो द्वारा विहित करे।

(६) नियन्त्रक-महालेखा परीक्षक के कार्यालय के प्रशासन-व्यय जिसके अन्तर्गत उस कार्यालय मे सेवा करने वाले व्यक्तियो को या उनके बारे मे, देय सब वेतन, भत्ते तथा निवृत्ति-वेतन अथवा पेन्शन भी हैं, भारत की सचित निधि पर भारित होंगे।

कर्तव्य
(Function)

अनु० (१४९) नियन्त्रक-महालेखा परीक्षक सघ के और राज्यो के तथा अन्य प्राधिकारी या निकाय (Body) के लेखो (Accounts) के सम्वन्ध मे ऐसे कर्तव्यो का पालन और ऐसी शक्तियो का प्रयोग करेगा जैसा कि ससद निर्मित विधि के द्वारा या उसके आधीन निर्धारित किये जायें तथा, जब तक उस वारे मे इस प्रकार उपवन्ध नही किया जाता तब तक, सघ के और राज्यो के लेखो के सम्वन्ध मे ऐसे कर्तव्यो का पालन और ऐसी शक्तियो का प्रयोग करेगा जैसा कि इस सविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले क्रमश भारत अधिराज्य (Indian Dominion) के और प्रान्तो के लेखो के सम्वन्ध मे भारत के महालेखा-परीक्षक को प्रदत्त थी या उसके द्वारा प्रयोक्तव्य थी।

अनु० (१५०) सघ के और राज्यो के लेखो को ऐसे रूप मे रखा जायेगा जैसा कि भारत का नियन्त्रक-महालेखा परीक्षक, राष्ट्रपति के अनुमोदन से, निर्धारित करे।

अनु० (१५१) (१) भारत के नियन्त्रक-महालेखा परीक्षक सघ-लेखा सम्वन्धी प्रतिवेदनो को राष्ट्रपति के समक्ष उपस्थित किया जायेगा जो उनको ससद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखवायेगा।

(२) भारत के नियन्त्रक महालेखा परीक्षक के राज्य के लेखा सम्वन्धी प्रतिवेदनो को राज्यपाल के समक्ष उपस्थित किया जायेगा जो उनको उस राज्य के विधान-मण्डल के समक्ष रखवायेगा।

उसे "सघ अथवा राज्यो के राजस्वो मे से, भारत मे तथा भारत से वाहर किये गए सभी खर्चों का लेखा-परीक्षण करना होता है और इस वात का निश्चय करना होता है कि लेखो मे धनराशियो के जो सवितरण दिखाये गए हैं क्या वे धन-राशिया उस सेवा अथवा कार्य के लिए वैधानिक रूप से उपलब्ध थी अथवा उस पर लागू होती थी जिस पर कि वे लागू अथवा भारित की गई थी और क्या व्यय उस प्राधिकार के अनुरूप है जिससे कि उन व्ययो का प्रशासन होता है।" इस प्रकार लेखा-परीक्षण प्रतिवेदन (Audit Report) के व्ययो के सम्वन्ध मे होने वाली अनियमितताओ का उल्लेख करना होता है। प्रतिवेदन मे यह भी उल्लेख करना होता है कि क्या बजट अनुदानो से अधिक धनराशि व्यय की गई है, अथवा व्यय के लिए कोई उचित अनुमति प्राप्त थी या नही, अथवा लोक धनराशियो के दुर्विनियोजन (Misappropriation) अथवा अपव्यय (Waste) का तो कोई मामला नही था। तत्पश्चात् ये प्रतिवेदन विधान-मण्डल के समक्ष उपस्थित किये जाते हैं।

भारत मे लेखा-परीक्षण विभाग का सगठन
(Organisation of the Audit Department in India) :

नियन्त्रक-महालेखा परीक्षक सगठन का प्रधान होता है और उसके कर्तव्यो के निष्पादन मे चार उप-नियन्त्रक-महालेखा परीक्षक उसकी सहायता करते हैं।

प्रधान कार्यालय का अधिकारी-वर्ग निम्न प्रकार होता है—

नियन्त्रक-महालेखा परीक्षक (Comptroller and Auditor General) =१

उप-नियन्त्रक-महालेखा परीक्षक (Deputy Comptroller and Auditor General) =४

वाणिज्यिक लेखा-परीक्षा नियन्त्रक (Controller of Commercial Audit) =१

लेखा-परीक्षक तथा लेखा-निर्देशक (Director of Audit and Accounts) =१

निरीक्षण-निर्देशक (Director of Inspection) =१

समन्वय-निर्देशक (Director of Coordination) =१

सहायक नियन्त्रक-महालेखा परीक्षक (Assistant Comptroller and Auditor General) =३

सहायक लेखाधिकारी (Assistant Accounts Officers) =१०

लेखक वर्गीय (Ministerial) गैर-लेखक वर्गीय सेवाओ के अनेक अन्य सदस्य होते हैं। प्रधान कार्यालय के सगठन के अतिरिक्त, भारतीय लेखा-परीक्षण तथा लेखा विभाग क्षेत्रीय कार्यालयो के निम्नलिखित चार वर्गो मे वटा हुआ है, अर्थात्—

(१) असैनिक लेखा-परीक्षक तथा लेखा कार्यालय।

(२) डाक व तार लेखा-परीक्षा तथा लेखा कार्यालय।

(३) रेलवे लेखा-परीक्षा कार्यालय, और

(४) प्रतिरक्षा सेवा लेखा-परीक्षा कार्यालय।

पहले दोनो प्रकार के क्षेत्रीय कार्यालय सम्मिलित रूप से लेखा तथा लेखा-परीक्षा कार्यालय हैं किन्तु अन्तिम दोनो प्रकार के क्षेत्रीय कार्यालय केवल लेखा-परीक्षण का ही कार्य करते हैं। ब्रिटेन मे भारतीय लेखो के लेखा-परीक्षक (Auditor) के कार्यालय तथा सयुक्तराज्य अमेरिका मे लेखा-परीक्षक के कार्यालय भी नियन्त्रक महालेखा-परीक्षक के ही आधीन हैं।

लेखा-परीक्षण के सम्बन्ध मे विवाद
(Controversy about Audit)

लोक-प्रशासन के विशेषज्ञ पाल एच० एपिलबी ने, भारतीय प्रशासन पर लिखे गये अपने दो प्रतिवेदनो मे, जोकि उन्होने भारत सरकार के समक्ष प्रस्तुत किये, नियन्त्रक व महालेखा-परीक्षक के कार्य के महत्व की आलोचना की। उन्होने कहा कि "भारत मे नियन्त्रक व महालेखा-परीक्षक का कार्य एक बडी मात्रा मे औपनिवेशिक शासन (Colonial rule) का अवशेषमात्र है। यह कार्य ब्रिटिश शासन के मार्ग मे बाधक नही था, बल्कि यह उस शासन का सहायक था तथा उसका एक अभिन्न अग

था। यह ब्रिटिश काल मे सरकारी सेवाओ मे काम करने वाले भारतीयो पर कडे प्रतिबन्ध लगाता था। ये प्रतिबन्ध सरकार द्वारा ऐसे प्रशासन की स्थिति मे लगाये जाते थे जोकि मुख्यत पुलिस तथा कराधान (Taxation) के कार्यों से सम्बन्धित थे और जिसका कल्याणकारी राज्य के उद्देश्यो से कोई सम्बन्ध नही था।

स्वतत्रता के पहले ही दौर मे, भारतीय मत्रालय नियन्त्रक व महालेखा-परीक्षक की उपेक्षा करने लगे और यह दुर्व्यवहार अधिक स्पष्ट हो गया। बाद मे इस स्थिति मे पूर्ण सुधार किया गया, परन्तु इसी प्रक्रिया मे पुराने प्रतिबन्धात्मक प्रभाव उस समय फिर उभर आये जबकि नई नीतियो के क्रियान्वय के लिए अधिक लोचशीलता की तथा उत्तरदायित्वपूर्ण विवेक के अधिक प्रयोग की आवश्यकता थी। इस न सुधरी हुई स्थिति का निचोड यह है कि आज नियन्त्रक व महालेखा-परीक्षक लोक-कर्मचारियो मे निर्णय करने तथा कार्य करने के प्रति पाई जाने वाली व्यापक अनिच्छा का एक मुख्य कारण बना हुआ है।"

यह निरोधात्मक तथा निषेधात्मक प्रभाव नौकरशाही पर ससद के माध्यम से पडता है क्योकि ससद द्वारा छोटे-छोटे अपवादो तथा लेखा-परीक्षक के कार्य की ओर अत्यधिक ध्यान केन्द्रित किया जाता है··· ।

इस सम्बन्ध मे निश्चय ही दोष ससद का है। इसने ससदीय उत्तरदायित्व के नाम पर लेखा-परीक्षण के महत्व को अत्यधिक रूप मे बढा चढा कर व्यक्त किया है और इसी कारण यह नियन्त्रक व महालेखा-परीक्षक के कार्यों की वैसी परिभाषा करने मे असफल रही है जैसी कि सविधान के अनुसार करनी चाहिए थी। इस प्रकार जो स्थान रिक्त रहा, उसमे लेखा-परीक्षक ने अपनी स्थिति बदल ली।

"नियन्त्रक व महालेखा-परीक्षक का कार्य वास्तव मे एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य नही है। लेखा-परीक्षक (Auditors) अच्छे प्रशासन के बारे मे अधिक नही जानते, और न अधिक जानने की उनसे आशा ही की जा सकती है, उनकी प्रतिष्ठा भी उन अन्य लोगो के साथ ही सर्वोच्च होती है जोकि प्रशासन के बारे मे अधिक नही जानते। लेखा-परीक्षक जो कुछ जानते है वह है लेखा-परीक्षण (Auditing)—और इसे प्रशासन (Administration) नही कहा जा सकता, यह एक आवश्यक किन्तु अत्यन्त उत्साहहीन कार्य है जिनका स्वरूप सकुचित तथा उपयोगिता अत्यन्त सीमित है।"[1]

जहाँ तक एपिलबी के विचारो का सम्बन्ध है, उनके अपने देश मे भी उनको महत्व नही दिया जाता। उनके ये विचार ठीक नही हैं। सरकारी धन तो एक सार्वजनिक धरोहर अथवा न्यास (Trust) है। इस धरोहर का दुरुपयोग नही किया

1 Public Administration in India, Report of a survey 28-29 Paul H Appleby consultant in *Public Administration* Re-examination of India's Administrative System with special reference to Government's Industrial and Commercial Enterprises, 1953, pp 27-28 42-43

जाना चाहिए। अत इसकी सुरक्षा का एकमात्र साधन लेखा-परीक्षण ही है। लेखा-परीक्षण का उद्देश्य यह नही होना चाहिए कि वह छिद्रान्वेपण की निषेधात्मक दृष्टि से प्रशासन को देखे बल्कि उसे तो प्रशासन को ठीक प्रकार समझने की निश्चयात्मक रीति से व्यवहार करना चाहिए और तब अपने निर्णय देने चाहियें। "सभी मान्य जनतन्त्रो मे, लेखा-परीक्षण आवश्यक दोष (Necessary evil) समझ कर ही सहन नही होता अपितु वह मूल्यवान मित्र समझा जाता है जो प्रक्रिया सम्बन्धी तथा तकनीकी अथवा प्रावैधिक अनियमितताओ व भूलो की ओर, जो व्यक्तियो द्वारा निर्णय के दोषो, असावधानी और बेईमानी के कार्य व आशय के रूप मे होती हैं, ध्यान आकृष्ट करता है। लेखा-परीक्षण तथा प्रशासन के पूरक योगो (Complementary roles) को स्वत सिद्ध प्रमाण के रूप मे स्वीकार किया जाता है क्योकि सरकारी यन्त्र के सुचारु सचालन के लिए ये अनिवार्य है।"[1]

लेखा-परीक्षण के दृष्टिकोण से भी पुनर्नवीकरण की आवश्यकता है। भूतकाल मे, लेखा-परीक्षण तथा प्रशासन ने एक दूसरे से बिल्कुल पृथक् रहकर कार्य किया है। दोनो मे एक साथ मिलने की, एक दूसरे का दृष्टिकोण समझने की, और सबसे अधिक महत्वपूर्ण, विवादास्पद विषयो को स्पष्ट करने तथा सुधारात्मक कार्यवाइयां करने की ओर कम ही झुकाव रहा है। इस स्थिति मे, लेखा परीक्षण को अपने प्रतिवेदनो मे अनेक ऐसे मामले सम्मिलित करने की प्रेरणा मिली जिनके बारे मे सतोषजनक स्पष्टीकरण तथा समायोजन की आवश्यकता हो। इस प्रकार इस सम्बन्ध मे यह धारणा बनने लगी कि लेखा-परीक्षण का उद्देश्य प्रशासन की कमियो को प्रदर्शित करना है। ऐसी योजनाओ तथा प्रायोजनाओ के सम्बन्ध मे भी तकनीकी प्रकृति की आपत्तियां उठाई जाती हैं जिनका कार्यान्वय योग्यता, क्षमता तथा साहस एव शीघ्रता के साथ किया गया है।[2]

निष्कर्ष के रूप मे यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक देश मे महालेखा-परीक्षक की नियुक्ति सबसे अधिक महत्वपूर्ण नियुक्तियो मे से एक होती है। प्रत्येक उत्तरदायी सरकार को इस पद के लिए उचित व्यक्ति का चयन करने मे विशेष ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। किसी भी प्रकार के दबाव से मुक्ति तथा उसका प्रतिकार करने की योग्यता का होना, इस उच्च पद के लिए अत्यन्त आवश्यक है। लेखा-परीक्षण मे चाहे कुछ भी कमिया क्यो न हो, पर **एपिलबी** के प्रतिवेदन मे महालेखा-परीक्षक पर जिस प्रकार का दोषारोपण किया गया है, लोकतन्त्र के सभी हितैषियो द्वारा उस पर दु ख प्रकट किया जायेगा।

---

1 Asoka Chanda *Indian Administration*, p 151
2 *Ibid*, pp 252-53

३४

संसदीय वित्त समितियां
(Parliamentary Financial Committees)

ससद अपनी सार्वजनिक लेखा-समिति तथा अनुमान समिति के द्वारा देश के वित्त पर अत्यन्त प्रभावशाली नियन्त्रण लागू करती है। अब हम वित्तीय नियन्त्रण के सम्बन्ध मे इन दोनो समितियो द्वारा सम्पन्न किये जाने वाले कार्यों का अध्ययन करेंगे।

सार्वजनिक लेखा-समिति
(Public Accounts Committee)

उत्तरदायी सरकारो वाले सभी देशो की वित्तीय व्यवस्थाओ मे यह एक मान्य उपबन्ध (Provision) होता है कि वजट के क्रियान्वय के पश्चात् सौदो अथवा व्यवहारो का पुनरवलोकन किया जाता है। यह तो स्पष्ट है कि विधान-मण्डल (Legislature) को विशिष्ट कार्यों के लिए नियत धनराशियो पर मतदान की शक्ति देना उस समय तक बिल्कुल व्यर्थ है जब तक कि उसे इस बात की देखभाल करने का अधिकार न प्रदान किया जाये कि धन कार्यपालिका (Executive) द्वारा उन उद्देश्यो एव कार्यों की पूर्ति के लिए व्यय किया गया है या नही जिनके लिए कि उस पर मत-दान हुआ था। ऐसी अनुरूपता लाने के लिए सामान्यत यह योजना अपनाई जाती है कि लोक-सेवको के एक ऐसे वर्ग द्वारा, जोकि व्ययकारक प्राधिकारियो से पृथक् व स्वतन्त्र होता है, लोक लेखो का एक पूर्ण एव सतत लेखा-परीक्षण किया जाता है। तत्पश्चात् ऐसे लेखा-परीक्षक का प्रतिवेदन, विधान-मण्डल की एक समिति सार्व-जनिक लेखा समिति के पास भेज दिया जाता है जोकि उसकी जाँच करती है और अपने निर्णयो की सूचना विधान-मण्डल को भेजती है।

भारत मे, सार्वजनिक लेखा समिति का निर्माण प्रत्येक वित्तीय वर्ष के लिए ससद के दोनो सदनो द्वारा सयुक्त रूप से किया जाता है। इसमे २२ सदस्य होते हैं जिनमे १५ लोकसभा से लिए जाते हैं और ७ राज्य-सभा से।

'Rules of Procedure and Conduct of Business' के अनुसार समिति का कार्य इस विषय मे अपने आपको सन्तुष्ट करना है कि—

(क) लेखो मे धनराशियो के जो सवितरण दिखाये गये हैं क्या वे धनराशियां उस सेवा अथवा कार्य के लिये वैधानिक रूप मे उपलब्ध थी अथवा उस पर लागू होती थी जिस पर कि वे लागू अथवा भारित की गई थी,

(ख) क्या व्यय उस प्राधिकार के अनुरूप हैं जिससे कि उन व्ययो का प्रशासन होता है, और

(ग) क्या प्रत्येक पुनर्विनियोजन (Re-appropriation) समर्थ प्राधिकारी द्वारा बनाये गये नियमो के अन्तर्गत इस सम्बन्ध मे किये गये उपबन्ध (Provision) के अनुसार किया गया है।

सार्वजनिक लेखा-समिति के निम्नलिखित कर्तव्य भी होगे —

(क) नियन्त्रक व महालेखा-परीक्षक के प्रतिवेदन को दृष्टिगत रखते हुए उन लेखा-विवरणो (Statement of accounts) की, जिसमे कि राज्य निगमो (State Corporations) (जैसे कि वायु निगम व दामोदर घाटी निगम आदि) और व्यापार तथा विनिर्माण योजनाओ एव प्रायोजनाओ (जैसे कि हिन्दुस्तान स्टील व सिंद्री फर्टिलाइजर्स आदि-आदि) की आय तथा व्यय दिखाये जाते हैं, तथा साथ ही साथ उन चिट्ठो अथवा तुलन-पत्रो (Balance sheets) एव हानि-लाभ खातो के विवरणो की जाँच करना जिन्हे कि किसी विशिष्ट निगम, व्यापारिक सस्था अथवा प्रायोजना (Project) की वित्तीय व्यवस्था का नियमन करने वाले वैधानिक नियमो के उपबन्धो के अनुसार तैयार किया जाता हो अथवा राष्ट्रपति जिन्हे तैयार कराना आवश्यक समझें।

(ख) स्वायत्त सस्थाओ की आय तथा व्यय प्रदर्शित करने वाले उन लेखा-विवरणो की जाँच करना जिनका लेखा-परीक्षण भारत के नियन्त्रक व महालेखा-परीक्षक द्वारा, या तो राष्ट्रपति के निर्देशो के अनुसार अथवा ससद की सविधि (Statute) द्वारा किया जाए।

(ग) उन मामलो के सम्बन्ध मे नियन्त्रक व महालेखा-परीक्षक के प्रतिवेदन पर विचार करना जिनके विषय मे राष्ट्रपति उससे किसी भी आय अथवा प्राप्ति का लेखा-परीक्षण करने अथवा भण्डारो (Stores) तथा शेष मालो (Stocks) के खातो की जाँच करने की माँग करें।

अपने कार्यों का निष्पादन करने के लिए समिति को यह अधिकार प्राप्त होता है कि वह व्यक्तियो को बुलवा सके तथा कागजातो व अभिलेखो की माँग कर सके। यह अपने विचाराधीन लेखो मे अभिलिखित व्यय के सम्बन्ध मे विभागीय अधिकारियो से प्रश्न पूछ सकती है। जब मन्त्रालयो (Ministries) अथवा विभागो (Departments) के लेखो की जाँच की जाती है तब उस सम्बन्धित मन्त्रालय के सचिव (Secretaries) समिति के समक्ष उपस्थित होते है। समिति की जाँच उस सामग्री पर आधारित होती है जोकि नियन्त्रक व महालेखा-परीक्षक द्वारा प्रदान की जाती है। नियन्त्रक व महालेखा-परीक्षक समिति के प्रयत्नो मे सहायता पहुँचाने के लिए उसकी बैठको मे स्वय उपस्थित होता है। वह समिति का मुख्य कार्याधिकारी व्यक्ति, मार्गदर्शक तथा मित्र होता है। वह सभापति (Chairman) का, जोकि

1 Rules of Procedure, Rule 308 (3)

निपटाये जाने वाले मामलो की वारीकियो मे नामान्यत अनभिज्ञ होता है, दायाँ हाथ होता है। वह ऐसे उपयोगी प्रश्नो का भी सुझाव देता है जोकि समिति के सदस्यो द्वारा साक्षियो (Witnesses) मे पूछे जा सकते है। इम प्रकार सार्वजनिक लेखा-समिति तथा नियन्त्रक व महालेखा-परीक्षक पूरक (Complementary) योग प्रदान करते है।

समिति का मुख्य कार्य नियन्त्रक व महालेखा-परीक्षक के प्रतिवेदन (Report) की जाँच करना है जिमसे कि इम वात का निश्चय हो मके कि ससद द्वारा स्वीकृत घन सरकार द्वारा "मागो की परिधि के अन्तर्गत" व्यय किया गया है या नही। साक्षियो व प्रमाणो की जॉच के पश्चात्, समिति अपना प्रतिवेदन तैयार करती है जो कि ससद के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। समिति की मिफारिशे मरकार द्वारा विना किसी हेर-फेर के स्वीकार तथा कार्यान्वित की जाती है। जव कभी सरकार के पास समिति द्वारा की गई सिफारिशो से मतभेद के कारण होते हैं तो ऐसे कारण समिति के सामने रखे जाते हैं। समिति सरकार के विचारो को दृष्टिगत रखकर मामले पर पुर्नविचार करती है और फिर या तो अपनी सिफारिशो मे मशोधन कर देती है अथवा उन पर दृढ रहती है। मतभेद सामान्यत इसी रीति से दूर कर लिए जाते है और जहाँ तक भी सम्भव होता है इस सम्बन्ध मे समझौता कर लिया जाता है। यदि कार्यपालिका तथा समिति इस विषय मे किसी समझौते पर नही पहुँचते तो अन्त मे मामला ससद के सामने रखा जाता है, यद्यपि वास्तव मे ऐसा अवसर आज तक कभी आया नही है।

इस समिति की सामान्य आलोचना यह की जाती है कि इसका कार्य शव-परीक्षा (Post-mortem) करना है। इस परीक्षण से कोई मतलव हल नही होता क्योकि एक वार धन जव गलत तरीके से व्यय कर दिया जाता है तव उसके पश्चात् उसे वापिस नही लौटाया जा सकता। परन्तु इस सम्बन्ध मे यह तर्क दिया जा सकता है कि शव-परीक्षा की भी अपनी निजी उपयोगिता होती है। "यह तथ्य अथवा ज्ञान ही, कि एक ऐसी समिति भी है जोकि किये गये कार्य का सूक्ष्म-परीक्षण करेगी, कार्यपालिका की शिथिलता अथवा उपेक्षा पर एक वडी रोक लगाता है। यह परीक्षा यदि समुचित रीति से की जाती है तो इससे प्रशासन की सामान्य कार्यक्षमता मे वृद्धि होती है। समिति द्वारा की जाने वाली परीक्षा भावी अनुमानो तथा भावी नीतियो (Future policies), दोनो के लिए ही एक मार्ग-दर्शक के रूप मे भी लाभप्रद हो मकती है।"[1] सार्वजनिक लेखा-ममिति की उपयोगिता केवल इस कारण ही समाप्त नही की जा सकती चूंकि इसका कार्य शव-परीक्षा करना है। यह तथ्य ही कि धन के व्यय होने के पश्चात् कोई लेखो अथवा खातो (Accounts) की जाँच करेगा, सरकारी अधिकारियो को सावधान रखता है इन प्रतिवेदनो के सम्बन्ध मे

1 Speeches and writings G V Mavalenkar Speech to P A C April, 10, 1950, p 79

ससद के प्रति कार्यपालिका की उत्तरदायिता (Responsibility) का प्रभाव यह होता है कि वित्तीय प्रशासन की कार्य-कुशलता बढती है।

निष्कर्ष के रूप मे कहा जा सकता है कि समिति के कार्य इस प्रकार हैं। प्रथम तो, इस विषय मे आश्वस्त होना कि धन ससद की इच्छानुसार व्यय किया गया है ; दूसरे, इस विषय मे आश्वस्त होना कि व्यय करते समय पर्याप्त मितव्ययता का ध्यान रखा गया हैं , और तीसरे, सभी वित्तीय मामलो मे लोक-नैतिकता (Public morality) के ऊचे स्तरो को कायम रखना। समिति का नियन्त्रण एक विशेषज्ञ का नियन्त्रण है क्योकि यह एक ऐसे दक्ष एव विशेषज्ञ-लेखापरीक्षण का पूर्ण उपयोग करती है जिसके उद्देश्य इसके अपने उद्देश्यो से ताल-मेल खाते हैं। इसके अतिरिक्त, समिति का नियन्त्रण मुख्यत एक वित्तीय नियन्त्रण है। इसका मुख्य कार्य लेखा-परीक्षण (Audit) की जाच करना है। चालू व्यय की जाँच-पडताल से इसका कोई सम्बन्ध नही होता। इसका नियन्त्रण तो न्यायिक (Judicial) होता है। कानून विल्कुल स्पष्ट होता है, विभागो के विगत कार्य स्पष्ट होते हैं और सदस्यो को यह निश्चय करना होता है कि कानून तथा विभागो के विगत कार्य (Past actions) एक दूसरे से मेल खाते हैं या नही। यह एक निर्दलीय नियन्त्रण होता है। आस्टिन चेम्बरलेन ने इस समिति का वर्णन इन शब्दो से किया है "यह न्यायाधीशो की एक समिति है जोकि अपने कार्य के समय सभी दलीय विचारधाराओ को एक ओर रख देती है।"[1] "अपने इन्ही गुणो के कारण सार्वजनिक लेखा समिति ने सफलता प्राप्त की है। लेखा-समिति को विशेषज्ञ एव दक्ष होना ही चाहिए क्योकि इसको अनेक जटिल एव तकनीकी प्रश्नो से निवटना होता है तथा विशेषज्ञो के साथ उन पर वाद-विवाद करना होता है। यदि इसे लेखा-परीक्षण के निष्कर्षों का सर्वोत्तम रीति से लाभ उठाना है तो इसका नियन्त्रण मुख्यत वित्तीय नियन्त्रण ही होना चाहिए। इसके न्यायिक तथा निर्दलीय होने की ख्याति प्राप्त करने की सामर्थ्य का अर्थ यह है कि यह एक ऐसे विश्वास, निश्चितता तथा प्रभाव के साथ कार्य कर सकती है जिन्हे कि राजनीति से सम्बद्ध निकायो (Bodies) से प्राप्त करने की आशा नही की जा सकती .....।"[2] भारतीय लोक लेखा समिति ने भी निर्दलीय होने की ख्याति प्राप्त की है और इससे विना किसी भय अथवा पक्षपात के, भारत सरकार के विभिन्न विभागो से सम्वन्वित व्यय की अनेक अनियमितताओ का उल्लेख किया है।

---

1 House of Commons Debates 28-6-1921 Col 2985

2 Basil Chubb *The Control of the Public Expenditure* 1952, Oxford pp 196 97

समिति की महत्वपूर्ण सिफारिशें
(Important Recommendations of the Committee)

लेखो (Accounts) तथा लेख-परीक्षण (Audit) की पृथकता के सम्बन्ध मे सार्वजनिक लेखा समिति ने यह विचार व्यक्त किया "राजकोपीय नियन्त्रण के इस प्रश्न पर विचार करते समय, समिति कुछ ऐसे स्थानो की प्रचलित व्यवस्था का भी उल्लेख करना चाहेगी जहाँ कि भारतीय लेखा-परीक्षण विभाग के कार्यालयो पर पूर्व-लेखापरीक्षण (Pre-audit) का सचालन करने तथा अदायगियां अथवा भुगतान (Payments) करने के उत्तरदायित्वो का भार भी डाल दिया गया है। धन के भुगतान करने तथा प्रारम्भिक लेखे रखने का कार्य कार्यपालिका के प्राधिकारियो (Executive authorities) का है, और यह बात सर्वविदित है तथा सार्वलौकिक रूप से स्वीकार की जाती है कि भुगतानो अथवा अदायगियो का लेखा-परीक्षण करने वाला अभिकरण (Agency) उस अभिकरण से पृथक् तथा स्वतन्त्र होना चाहिए जिसे कि सवितरण तथा भुगतान करने होते हैं क्योकि इन कार्यों को सयुक्त करने से सम्भावना यह है कि जालसाजी तथा गवन करना सुविधाजनक हो जायेगा और उनका प्रकाश मे आना भी कठिन हो जायेगा। इससे महालेखा-परीक्षक की स्थिति वडी उलझनपूर्ण तथा नियम-विरुद्ध हो जाती है। अत भारतीय लेखा-परीक्षण विभाग को भुगतान करने के लिए उत्तरदायी वनाना मौलिक तथा सैद्धान्तिक दृष्टि से गलत है। नियन्त्रक व महालेखा-परीक्षक ने समिति को सूचित कर दिया है कि वह तथा उसके पूर्ववर्ती अधिकारी (Predecessors) समय-समय पर सरकार से इस बात का विरोध करते रहे हैं कि उसके विभाग को पूर्व-लेखा परीक्षण तथा राजकोषीय भुगतान के लिए उत्तरदायी वनाना अनुचित तथा अनुपयुक्त है, और इस बात का दवाव डालते रहे हैं कि उसको पूर्व-लेखा परीक्षण तथा भुगतान करने के कार्य से मुक्त कर दिया जाए। सवैधानिक दृष्टि से यह कार्य उसके विभाग के कर्तव्यो की परिधि से पूर्णतया वाहर है। परन्तु दुर्भाग्यवश विभिन्न सरकारो ने न तो इस कार्य की अनुपयुक्तता को ही अनुभव किया है और न इस व्यवस्था के जोखिम को ही समझा है, अतः इस माह नई दिल्ली राजकोष की स्थापना के अभिनव उदाहरण को छोडकर, सरकारो ने नियन्त्रक व महालेखा-परीक्षक के सुझाव को कार्यान्वित नही किया है। समिति नियन्त्रक व महालेखा-परीक्षक के इन विचारो का पूर्ण समर्थन करती है कि उनके विभाग को विना जरा भी देरी किये इस कार्य से मुक्त कर दिया जाना चाहिए, और यह सिफारिश करती है कि सम्वन्धित सरकारो द्वारा इस उद्देश्य की पूर्ति की दिशा मे शीघ्र पग उठाये जाने चाहियें।"[1]

व्यय पर समुचित राजकोषीय नियन्त्रण रखने के लिए समिति ने अन्य महत्व पूर्ण सिफारिशें भी की समिति ने यह कहा कि "इस वात के विषय मे आश्वस्त होने

---

1 Public Accounts Committee, Third Report, 1952—53 *Exchequer Control over Public Expenditure*, pp 18—19

के लिए, कि अनुमोदित अनुदानो (Grants) तथा ससद द्वारा किये गये विनियोजनो (Appropriations) से अधिक व्यय नही किये गये है, राजकोषीय नियन्त्रण की एक सन्तोषजनक व्यवस्था के अत्यन्त शीघ्र लागू किये जाने की आवश्यकता है। यह बडी अनुचित बात है कि नियन्त्रक व महालेखा-परीक्षक को सघ तथा राज्य सरकारो के लेखो के सकलन का तथा उनके ही लेखा-परीक्षण का भी उत्तरदायित्व सौंपा जाये।" समिति ने यह सिफारिश की कि "केन्द्र सरकार को चाहिए कि वह जब राज्यो को वार्षिक अनुदान दे तब उन दशाओ एव शर्तो का भी स्पष्ट रूप से उल्लेख कर दे जिनके अन्तर्गत तथा जिनकी पूर्ति के लिए उन अनुदानो का उपयोग किया जाना चाहिए, जिससे कि अन्य अनचाहे कार्यों मे अनुदानो के अन्तरित किये जाने का भय न रहे, तथा लेखा-परीक्षण करने वाले प्राधिकारियो को इस बात की जाच करने मे कोई कठिनाई न हो कि व्यय अनुदान की शर्तों तथा उद्देश्यो के अनुरूप किया गया है या नही।" "नियन्त्रक व महालेखा-परीक्षक को यह भी अधिकार प्राप्त होना चाहिये कि वह राज्य द्वारा सरक्षण प्राप्त व्यापारिक सस्थाओ के व्यय का भी लेखा-परीक्षण कर सके, चाहे उनका नाम कुछ भी क्यो न हो, क्योकि न उनका वित्तीय-पोषण सचित निधि (Consolidated Fund) से ही किया जाता है।"

"सरकारी औद्योगिक व्यवसायो के प्रबन्ध के लिए निगमो (Corporations) की स्थापना ससद द्वारा पारित किये गये अधिनियमो (Acts) की सत्ता के अन्तर्गत की जानी चाहिये।"

"लेखा-परीक्षण विभाग (Audit Department) को पूर्व-लेखापरीक्षण तथा भुगतान के कार्य से मुक्त करने के लिए सम्बन्धित सरकारो द्वारा शीघ्रगामी पग उठाये जाने चाहियें।" सार्वजनकि लेखा समिति की ये अमूल्य सिफारिशें जब लागू की जायेंगी तब लोक-व्यय (Public Expenditure) पर समुचित राजकोषीय स्थापित हो जायेगा।

अनुमान समिति
(Estimates Committee)

एक अन्य समिति जोकि ससद के उत्तरदायित्व पर वित्तीय नियन्त्रण लागू करती है, अनुमान समिति है।

अनुमान समिति सदन (House) के तीस सदस्यो को मिलाकर बनती है जिनका निर्वाचन प्रतिवर्ष किया जाता है। इसका मुख्य कार्य व्यय मे मितव्ययता (Economy) लाने के सुझाव देना है अत इसे "सतत मितव्ययता समिति" (Continuous Economy Committee) कहा जाता है। इस समिति का सरकार की नीति मे कोई सम्बन्ध नहीं होता। इसका काम इस विषय में आश्वस्त होना है कि सरकार द्वारा निर्धारित नीति के ढाचे के अन्तर्गत, सरकार के उद्देश्यो की पूर्ति के लिए न्यूनतम व्यय ही किए जाए। समिति का वास्तविक कार्य, सरकार की नीति

तथा उद्देश्यो को स्वीकार करते हुए जिनसे कि उसका कोई सम्बन्ध नही है, इस सम्बन्ध मे सुझाव देना है कि उस नीति तथा उसके उद्देश्यो को सरकारी साधनो का न्यूनतम व्यय करके किस प्रकार क्रियान्वित तथा पूर्ण किया जा सकता है।

अनुमान समिति के कार्य इस प्रकार है—

(१) इस सम्बन्ध मे रिपोर्ट देना कि अनुमानो में निहित नीतियो के अनुरूप क्या-क्या मितव्ययताए सठगनात्मक सुधार, कार्य-कुशलता अथवा प्रशासनिक सुधार लाए जा सकते हैं।

(२) प्रशासन मे कार्य-कुशलता तथा मितव्ययता लाने के लिए प्रचलित नीति के स्थान पर किसी अन्य नीति का सुझाव देना।

(३) इस बात की जाच करना कि प्रशासकीय क्रियाओ के सम्पादन मे जो धन लगा हुआ है वह अनुमानो मे निहित नीति की सीमाओ के अन्तर्गत है या नही।

(४) अनुमानो को ससद् के समक्ष प्रस्तुत करने की विधि के सम्बन्ध मे सुझाव देना।[1]

यह एक या एक से अधिक उप-समितियो (Sub-Committees) की भी नियुक्ति कर सकती है। प्रत्येक उपसमिति को अविभाजित समिति की शक्तिया प्राप्त होती हैं। ये उप-समितिया ऐसे किसी भी मामले की जाँच करती हैं जोकि उनको सौंपा जाता है, और इन उप-समितियो के प्रतिवेदनो (Reports) को सम्पूर्ण समिति (Whole Committee) के प्रतिवेदनो के सदृश ही माना जाता है, बशर्ते कि वे सम्पूर्ण समिति की किसी बैठक मे अनुमोदित कर दिये जायें। इस शक्ति का प्रयोग अनेक अवसरो पर किया जा चुका है, उदाहरण के लिए, जब अनुमान समिति को उत्पादन-मन्त्रालय (Ministry of Production) के अन्तर्गत विभिन्न राष्ट्रीय उद्योगो के अनुमानो की जाच करनी थी तब अनेक उप-समितियो की नियुक्ति की गई थी और एक-एक विशिष्ट उद्यम एक-एक उप-समिति को सौंप दिया गया था। उप-समितियो की पद्धति कार्य-कुशलता बढाने वाली है। और इसके अच्छे रचनात्मक परिणाम निकलते हैं।

समिति सरकारी अधिकारियो से सुनवाई करती है और परीक्षणाधीन अनुमानो से सम्बन्धित अन्य गवाहियाँ लेती हैं। यह एक प्रश्नावली तैयार कर सकती है जिसके प्रश्नों का उत्तर विभागीय अध्यक्षो को देना होता है। यह विभागीय अधिकारियो से कोई भी चार्ट व आँकड़े आदि माँग सकती है।

इसके प्रतिवेदन सरकार के सम्मुख प्रस्तुत की जाने वाली सिफारिशो के रूप मे होते हैं। सरकार इन सिफारिशो को स्वीकार कर सकती है अथवा उनको न स्वीकार करने के कारण दे सकती है। ऐसी स्थिति मे, यदि समिति अपनी पहली सिफारिशो की ही पुन पुष्टि कर देती है तो उस सम्बन्ध मे अन्तिम निर्णय संसद् पर छोड दिया जाता है। तथापि, व्यवहार मे ऐसी स्थिति उत्पन्न होने नही दी जाती

1 Ibid, Rule 310

और पारस्परिक विचार-विमर्श द्वारा ही मतभेद दूर कर लिए जाते हैं। जैसी कि लोक-सदन (Iousc of Commons) मे भी पद्धति है, अनुमान समिति के प्रतिवेदनो पर औपचारिक वाद-विवाद (Fomal debate) नहीं किया जाता। सदस्य प्रतिवेदन पर या तो बजट पर सामान्य वाद-विवाद के समय विचार करते हैं अथवा उस समय जबकि सम्वन्वित अनुमान विचाराधीन होते हैं। अनुमान समिति ने लोक-निधियो का कुशल तथा मितव्ययी उपयोग करने के सम्बन्ध मे कुछ अत्यन्त महत्वपूर्ण सिफारिशें की हैं। अनुमान समिति ने प्रशासकीय, वित्तीय तथा अन्य सुधारो पर अपने नये प्रतिवेदन (१९५३–५४) मे निम्नलिखित सिफारिशें कीं —

"किसी भी योजना को प्रारम्भ करने से पहले, उसका समुचित रीति से निर्माण किया जाना चाहिए और इस बात का भी निश्चय किया जाना चाहिए कि योजना के लिए जितनी धनराशि की आवश्यकता है क्या यह उपलब्ध है अथवा उपयुक्त समय पर उपलब्ध की जा सकती है। योजनाओ तथा अनुमानो का ब्यौरेवार पूर्ण हिसाब लगाया जाना चाहिए जिससे कि वित्त-मन्त्रालय (Ministry of Finance) उस योजना का अनुमोदन करने तथा वित्तीय सहमति प्रदान करने मे समर्थ हो सके।"

"जब वित्त-मन्त्रालय द्वारा वित्तीय दृष्टिकोण से योजना (Scheme) पर सहमति प्रदान कर दी जाय, तो उसके पश्चात् उस योजना के ब्यौरेवार कार्यान्वय तथा उस सम्बन्ध मे धन व्यय करने का उत्तरदायित्व सम्बन्धित प्रशासकीय मन्त्रालय का होना चाहिए तथा उसे यह अधिकार भी प्रदान किया जाना चाहिए कि वह योजना के उप-शीर्षको के अन्तर्गत धनराशियो मे उस सीमा तक हेर-फेर अथवा रद्दोबदल कर सके जहा तक कि कुल लागत-व्यय पर इसका कोई प्रभाव न पडे।"

प्रशासकीय मन्त्रालय तथा वित्त मन्त्रालय द्वारा योजना का अनुमोदन किए जाने के पश्चात् उसको सम्बद्ध मन्त्रालय के बजट-अनुमानो मे सम्मिलित कर लिया जाना चाहिए; और उसके बाद फिर जब तक कि योजना की कुल धनराशि मे ही वृद्धि न हो तब तक योजना के विभिन्न उप-शीर्षको के अन्तर्गत पुनर्विनियोजनो पर कोई अतिरिक्त अनुमति अथवा प्रतिलब्ध नही होना चाहिये। यदि योजना का पुन अवलोकन करना पड जाये और उसके लिये और अतिरिक्त धनराशि की आवश्यकता हो, तो उस स्थिति मे योजना की उस आवश्यक अतिरिक्त धनराशि को बजट अथवा अनुपूरक अनुदानो मे सम्मिलित किए जाने से पहले वित्त-मन्त्रालय की सहमति प्राप्त कर लेनी चाहिये।

अधिकाश योजनाए (Schemes) ऐसी होती हैं कि प्रारम्भ में अर्थात् निर्माण के समय उनके सभी पहलुओं पर विचार नही किया जाता और फिर योजनाओं के प्रारम्भ होने के पश्चात् प्रशासकीय मन्त्रालय अपने विचारो मे वृद्धि, परिवर्तन अथवा उनका पुनर्निर्माण करते हैं। सीकिति के मत मे, यह एक ऐसा तत्व है जिससे अत्यधिक

देरी तथा अपव्यय को प्रोत्साहन मिलता है और इसके कारण ही वित्त-मन्त्रालय द्वारा समय-समय पर सूक्ष्म-परीक्षण किया जाना आवश्यक हो जाता है।

"वित्त-मन्त्रालय मे काम के जमाव को समाप्त करने के उद्देश्य से तथा उसको प्रस्तावो पर प्रभावशाली नियन्त्रण लागू करने के योग्य बनाने के उद्देश्य से भी, अत्यन्त आवश्यक है कि सम्बन्धित प्रशासकीय मन्त्रालय कम से कम एक वर्ष पूर्व योजनाएं तैयार करे, हाँ कुछ अपवादभूत परिस्थितियो की बात दूसरी है जहाँ की योजना के तत्काल प्रारम्भ किये जाने की आवश्यकता हो और उस पर पहले विचार कर सकना अथवा हिसाब लगाना सभव न हो।"

इसी प्रकार द्वितीय लोक-सभा की अनुमान-समिति ने बजट-सम्बन्धी सुधारो के विषय मे प्रस्तुत किये गये अपने बीसवें प्रतिवेदन (१९५८) मे ये सिफारिशें की :—

"वित्तीय वर्ष का प्रारम्भ पहली अक्तूबर से किया जा सकता है। यह व्यवस्था हो सकती है कि बजट अगस्त मास के अन्तिम पक्ष मे ससद् मे उपस्थित किया जाय और सितम्बर के अन्त तक उस पर मतदान हो जाए। वाञ्छनीय यह होगा कि वित्तीय वर्ष के पहली अक्तूबर से प्रारम्भ करने के सम्बन्ध मे कोई भी कार्यवाही सभी राज्यसरकारो के परामर्श से की जाये।"

"यह अत्यन्त आवश्यक है कि प्रशासकीय मन्त्रालय अपनी-अपनी योजनाओ को बजट मे सम्मिलित करने के लिए वित्त-मन्त्रालय के समक्ष केवल तभी प्रस्तुत करें जब कि उन सभी सम्बन्धित ब्यौरो (Details) का हिसाब लगा लिया जाए जोकि एक विशिष्ट योजना को स्पष्ट रूप से समझने के लिए आवश्यक हो। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए दूरदर्शी योजनाओ को तैयार करने की प्रक्रिया पूरे वर्ष भर जारी रहनी चाहिए जिसमे कि बजट की तैयारी के समय होने वाली काम की भीड को कम किया जा सके।"

"यह आवश्यक है कि एक ऐसी कार्य-विधि (Procedure) अपनाई जानी चाहिये जिसमे कि बजट के पश्चात् अतिरिक्त अनुमति की आवश्यकता को समाप्त किया जाए और जिसमे राज्य-सरकारो सहित विभिन्न सत्ताओ को यह आश्वासन दिया जाए कि अनुमोदित उद्देश्यो के लिए उपबन्धित धनराशियो के सम्बन्ध मे, बिना व्यय की हुई धनराशि आगामी वित्तीय वर्ष के लिए उपलब्ध रहेगी।"

"यह वाञ्छनीय है कि सरकार जब भी उधार ले तभी प्रत्येक समय ससद् को उसकी सूचना दे। इसके अतिरिक्त वैयक्तिक उधार (Individual borrowing) के विवरण की सूचना भी ससद् को, बाजार जाने के पहले तथा बाद मे, दोनो समय दी जानी चाहिए।"

"यह भी आवश्यक है कि सरकार बजट सम्बन्धी कार्यविधियो तथा कार्यवाहियो का सतत रूप से पुनरावलोकन करती रहे जिससे कि जहाँ एक ओर वे अन्य देशो मे की गई प्रगति से पीछे न रहें, वहा दूसरी ओर वे इस देश के आर्थिक तथा अन्य विशिष्ट लक्षणो को भी दृष्टिगत रखें।"

इस प्रकार इन दो समितियो के माध्यम से ससद् द्वारा प्रभावशाली वित्तीय नियन्त्रण लागू किया जाता है।

भाग ४

नागरिक तथा प्रशासन

(CITIZEN AND ADMINISTRATION)

३५

प्रशासन पर विधायी नियन्त्रण
(Legislative Control over Administration)

प्रशासन के सम्बन्ध मे विधान-मन्डल के योग का अध्ययन किये बिना लोक-प्रशासन का अध्ययन अपूर्ण ही है। लोक-प्रशासन के सम्बन्ध मे विधान-मण्डल (Legislature) के महत्वपूर्ण कर्त्तव्य निम्न प्रकार हैं —

(१) विधान-मन्डल ही इस बात का निश्चय करते है कि राज्य को क्या-क्या कार्य करने होगे और वे कार्य किन-किन अभिकरणो को सौंपे जायेंगे। विधान-मन्डल सविधियो (Statutes) के द्वारा मूल नीतियो की मुख्य रूपरेखाए निर्धारित करते हैं और सगठन, अधिकारो, कर्त्तव्यो तथा प्रशासकीय प्राधिकारियो द्वारा अपनायी जाने वाली कार्यविधि (Procedure) की रीतियो की व्याख्या करते है। विधान-मण्डल कानून बनाता है और प्रशासकीय प्राधिकारियो की सीमाओ तथा उनके कार्यो का निर्धारण करता है।

(२) विधान-मण्डल ऐसी शर्तों के अन्तर्गत जिन्हे कि वे उपयुक्त समझते है, वित्त की व्यवस्था करते हैं। विधान-मन्डल धन प्राप्त करने वाली तथा व्यय की स्वीकृति देने वाली सत्ता (Fund-raising and fund-granting authority) है। यह विभिन्न प्रशासकीय कार्यों के लिए धन की व्यवस्था करता है और भिन्न-भिन्न प्रशासकीय विभागो द्वारा किये जाने वाले व्यय की वैधता (Legality) तथा उपयुक्तता का आश्वासन देता है।

(३) विधान-मण्डल स्वतन्त्र लेखा-परीक्षण (Audit) के माध्यम द्वारा व्यय पर नियन्त्रण लगाते है। विधान-मण्डल प्रत्येक प्रशासकीय कार्य-क्रम के लिए धन का विनियोजन करते हैं और लेखा-परीक्षण के द्वारा वे इस बात का आश्वासन देते हैं कि प्रशासकीय प्राधिकारियो द्वारा धन का समुचित उपयोग किया गया है।

(४) विधान-मण्डल कभी-कभी कार्यविधियो अथवा प्रक्रियाओ का भी निर्धारण करते हैं, विशेषकर तब, जबकि उनसे महत्वपूर्ण वैयक्तिक हित प्रभावित होते हो।

(५) विधान-मण्डल प्रशासकीय प्राधिकारियो को शक्तिया प्रदान करते हैं और उन शक्तियों के प्रयोग पर ऐसे प्रतिबन्ध लगाते है जिन्हे कि वे ठीक समझते है। विधान मण्डल के अधिनियम (Acts) उन शक्तियो की सीमाओ का निर्धारण

करते हैं जोकि प्रशासकीय अभिकरणों द्वारा प्रयोग की जा सकती हैं, ये प्राय उन शक्तियों के प्रयोग की रीति का भी निर्धारण करते हैं।

(३) विधान-मण्डल अपनी समितियों के द्वारा किसी भी प्रशासकीय अभिकरण (Agency) की कार्य-प्रणाली की जाँच-पडताल कर सकता है।

(७) विधान-मण्डल मे विवादों तथा पर्यालोचनों के द्वारा सदस्यों को एक अन्य अत्यन्त महत्वपूर्ण अवसर प्रदान किया जाता है जिससे कि वे प्रशासन को उत्तरदायी ठहरा सकें।

विधान-मण्डल एक नियन्त्रकारी सत्ता है जिसके प्रति मुख्य कार्यपालिका (Chief Executive) तथा प्रशासकीय अभिकरण उत्तरदायी होते हैं। इसे अनेक ऐसे अवसर प्राप्त होते हैं जिनके द्वारा यह जान सकता है कि लोक-प्रशासक अपने कर्त्तव्यो का तथा इसकी आज्ञाओं का कहा तक पालन कर रहे है।

वार्षिक बजट-विवाद, प्रश्नोत्तर (Interpellations) तथा कार्य-पालिका से प्रश्न व लेखा-परीक्षण (Audit) आदि—ये सब विधान-मण्डल को प्राप्त होने वाले ऐसे अवसर हैं जिनके द्वारा वह प्रशासन पर नियन्त्रण लागू करता है।

भारत मे प्रशासन पर संसदीय नियन्त्रण
(Parliamentary Control Over Administration in India)

अन्य किसी भी विधान-मण्डल से समान, भारतीय संसद् (Indian Parliament) के तीन मुख्य कार्य हैं: कानून बनाना, वित्त की व्यवस्था करना तथा प्रशासन का पर्यवेक्षण (Supervision) करना। भारत मे संसद् मन्त्रियो (Ministers) के माध्यम से प्रशासकीय अधिकारियो पर नियन्त्रण लगाती है। मन्त्री अपने-अपने विभागो (Departments) के कार्य-संचालन के लिए संसद् के प्रति उत्तरदायी होते हैं।

प्रशासन पर नियन्त्रण लगाने के लिए संसद् निम्नलिखित उपाय काम मे लाती है —

(१) संसद के सदस्य मन्त्रियो से उनके विभागो के कार्य-संचालन के बारे मे प्रश्न पूछ सकते हैं।

(२) संसत्सदस्य किसी भी विभाग की कार्य-प्रणाली पर वाद-विवाद तथा तर्क-वितर्क कर सकते हैं।

(३) सार्वजनिक महत्व के किसी भी मामले पर स्थगन-प्रस्ताव (Motion for Adjournment) सदस्यों को एक ऐसा अवसर प्रदान करता है जिसके द्वारा वे किसी भी विभाग के कार्य-संचालन पर विवाद कर सकते हैं।[1]

(४) सार्वजनिक हित (Public interest) के किसी भी मामले पर वाद-विवाद किया जा सकता है।[2]

---

1 Rule 56
2 Rule 50 (1)

(५) अत्यावश्यक सार्वजनिक महत्व के मामलो पर अल्पकालीन वाद-विवाद किया जा सकता है ।[1]

(६) सदस्य अत्यावश्यक सार्वजनिक महत्व के मामलो की ओर मन्त्रियो का ध्यान आकर्षित कर सकते हैं ।[2]

(७) असन्तुष्ट सदस्य किसी मन्त्री अथवा पूरे मन्त्रि-मण्डल के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव (Motion of non-confidence) रख सकते हैं ।

(८) राष्ट्रपति के अभिभाषण पर वाद-विवाद किया जा सकता है ।

(९) विधेयको (Bills) पर वाद-विवाद होता है ।

(१०) बजट सम्बन्धी वाद-विवाद ।

(११) ससद अपनी समितियो के द्वारा नियन्त्रण लगाती है ।

(१२) ससद नियन्त्रक व महालेखा-परीक्षक (Comptroller and Auditor-General) के लेखा-परीक्षण (Audit) के द्वारा धन के व्यय पर नियन्त्रण लगाती है ।

अब हम इस बात पर विचार करेंगे कि प्रशासन पर नियन्त्रण रखने मे ये उपाय किस प्रकार सहायक होते हैं ।

(१) ससदीय प्रश्न
(Parliamentary Questions)

प्रश्न पूछना ससदीय नियन्त्रण की एक अत्यन्त प्रभावशाली रीति है । ससत्सदस्य उचित समय की सूचना देने के पश्चात् मन्त्रियो से प्रश्न पूछ सकते हैं । इस सम्बन्ध मे अनुपूरक प्रश्नो (Supplementary questions) का भी एक उपलब्ध (Provision) है ।[3] मन्त्रियो पर उनके विभागो के दिन-प्रतिदिन के कार्य-सचालन के सम्बन्ध मे प्रश्नो की झडी लगा दी जाती है । प्रश्नो के द्वारा शिकायतें व्यक्त की जा सकती हैं तथा जानकारी प्राप्त की जा सकती है । प्रश्न सिविल-सेवको को सावधान तथा सतर्क रखते है । अनेक प्रश्न नौकरशाही (Bureaucracy) को जवाबदेह बनाने के लिए पूछे जाते है । प्रश्न एक ऐसा अवसर प्रदान करते हैं जिसके द्वारा प्रशासकीय नीति अथवा क्रिया के किसी भी भाग की ओर जनता का तत्काल ध्यान आकर्षित किया जा सकता है । Hugh Gaitshell का कहना है कि "प्रत्येक व्यक्ति, जिसने कि कभी भी सिविल-सेवको के विभाग मे कार्य किया होगा, मेरे इस विचार से सहमत होगा कि यदि कोई ऐसी मुख्य चीज है जोकि सिविल-सेवको को अत्यधिक सतर्क, सावधान तथा भयभीत रखती है तथा जो ऐसे अभिलेख (Records) रखने को प्रोत्साहन देती है जोकि सिविल-सेवा से बाहर अनावश्यक समझे जाते,

1 Rule 197

2 Rule 193-94-95

3 (Rules of Procedure and Conduct of Business in Lok Sabha, Lok Sabha Secretariate, New Delhi 1957—Rule 32—53)

तो वह ससद मे पूछे जाने वाले प्रश्नो का डर ही है।"[1] प्रत्येक कार्यवाही प्रश्न पूछने को उत्तेजित कर सकती है, प्रत्येक प्रश्न स्थगनविवाद का रूप ले सकता है और प्रत्येक स्थगन-प्रस्ताव पूर्ण वाद-विवाद का रूप धारण कर सकता है। ससदीय प्रश्न नौकरशाही की बुराइयो के विरुद्ध व्यक्तिगत स्वाधीनता की रक्षा के लिये जूरियो के परीक्षण तथा वन्दी प्रत्यक्षीकरण आदेश (Writ of Habeaus Corpus) के रूप मे श्रेणीबद्ध किये जा सकते हैं। W B Munro ने ठीक ही कहा है कि "यद्यपि ये प्रश्न कभी-कभी उस मन्त्री को जिससे कि ये पूछे जाते है, अथवा उस सरकार को, जिससे ये सम्बन्ध रखते हैं, गिराने के लिए तारपीडो का काम करते हैं तथापि लोक-प्रशासन पर नियन्त्रण लगाने की यन्त्र-रचना मे से एक महत्वपूर्ण भाग अदा करते हैं।"[2]

(२) वाद-विवाद तथा पर्यालोचन
(Debate and Discussions)

वाद-विवाद तथा पर्यालोचन अथवा तर्क-वितर्कों के द्वारा, ससद अनेक सरकारी अभिकरणो की प्रशासकीय क्रियाओ का सूक्ष्म-परीक्षण करती है। वाद-विवाद तब होता है जब किसी नई विधि अथवा कानून का निर्माण किया जाता है अथवा पुराने कानून मे सशोधन अथवा उसका खण्डन किया जाता है। प्रशासन पर ससदीय नियन्त्रण की दृष्टि से बजट-विवाद (Budget debates) सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। विनियोजन-प्रक्रिया एक ऐसा सबसे अधिक व्यापक तथा व्यवस्थित साधन है जिसके द्वारा विधान-मण्डल प्रशासकीय क्रियाओ का पुनरावलोकन करता है। बजट-विवादो को एक महान् वार्षिक राष्ट्रीय जाँच समझा जाता है। विभिन्न विभागो से सम्बन्धित अनुदानो (Grants) की माँगो पर विचार के समय, ससद सम्पूर्ण विभाग की कार्य-प्रणाली की जाँच, सूक्ष्म-परीक्षण तथा पुनरावलोकन करती है। "सक्षेप मे, प्रश्न तथा वाद-विवाद के द्वारा, प्रशासन का स्थायी रूप से सनत पुनरावलोकन किया जाता है। छोटे से छोटा विवरण अथवा ब्यौरा बडे परिणामो के रूप मे सामने आ सकता है, क्योकि विरोधी दल अपना पूरा समय कार्यपालिका की त्रुटियो को ढूंढने मे ही लगाता है, और एक वार जब वह ऐसी त्रुटियो का पता लगा लेता है तो उसे उनकी निरन्तर आलोचना करने के असीमित अवसर प्राप्त हो जाते हैं।"[3]

(३) समितियो द्वारा ससदीय नियन्त्रण
(Parliamentary Control through Committees)

ससदीय समितियां प्रशासन पर व्यापक नियन्त्रण लगाती हैं। वे प्रशासन के कार्य-सचालन की जाँच-पडताल तथा सूक्ष्म-निरीक्षण करती हैं। भारत मे सार्वजनिक

1 (Hugh Gaitshell Hansard 21, Oct 1947, Col 74)

2 W B Munro, *Modern Governments of Europe*

3 N V Gadgil, Accountability of Administration, the Indian Journal of *Public Administrations*, New Delhi, Vol I No 3, p 199

लेखा-समिति (Public Accounts Committee) तथा अनुमान समिति (Estimates Committee), ससद की दो अत्यन्त महत्वपूर्ण वित्त समितिया हैं। ये समितिया प्रशासन पर बडा नियन्त्रण करती हैं। "सार्वजनिक लेखा समिति को भारत सरकार के विनियोजन लेखो (Appropriation Accounts) का तथा उन पर नियन्त्रक व महालेखा-परीक्षक के प्रतिवेदन का सूक्ष्म-परीक्षण करना होता है, और इसे यह स्पष्ट करना होता है कि धन वैधानिक रूप से तथा ईमानदारी के साथ व्यय किया गया है या नही।" अनुमान समिति सम्पूर्ण विभाग के सगठन का पुनर्वालोकन करने के पश्चात् व्यय मे मितव्ययता लाने के सुझाव देती है। आश्वासन समिति (Committee on Assurances) सदन-कक्ष मे मन्त्रियो द्वारा समय-समय पर दिये गये आश्वासनो, वायदो व कार्यो आदि की छानबीन करती है और समिति को इस सम्बन्ध मे अपना प्रतिवेदन देना होता है कि (क) ये आश्वासन, वायदे तथा कार्य आदि किस सीमा तक पूरे किये गये हैं, और (ख) जहा ये पूरे किये गये वहा उनकी पूर्ति आवश्यक न्यूनतम समय मे की गई या नही।[1]

इस समिति ने 'केवल प्रशासकीय कार्य-कुशलता की देखभाल रखने मे ही सहायता नही की है, अपितु पुरानी पद्धति मे निहित अनेक दोषो को दूर करने मे भी सहायता पहुचाई है। मन्त्रीगण अब वायदे करते समय सावधान रहते हैं और प्रशासन किये हुए वायदो के सम्बन्ध मे कार्यवाही करने के बारे मे काफी सक्रिय रहते हैं '। सरकार के विभिन्न मन्त्रालय अब ससद के प्रति अपने कर्त्तव्यो के बारे मे जागरूक रहते हैं।"[2]

(४) लेखा-परीक्षण द्वारा नियन्त्रण
(Control through Audit)

विधान-मण्डल धन प्राप्त करने वाली तथा व्यय की स्वीकृति देने वाली सत्ता है। जब यह धन को व्यय करने की अनुमति देता है, तो इस बात के बारे मे भी आश्वस्त रहता है कि धन वैधानिक रूप से तथा ईमानदारी के साथ व्यय किया जाय। ससद द्वारा व्यय पर यह नियन्त्रण अपने सरकारी नियन्त्रक व महालेखा-परीक्षक के माध्यम से किया जाता है। वह विधान-मण्डल के उत्तरदायित्व पर व्यय का लेखा-परीक्षण करता है और अपना लेखा-परीक्षण प्रतिवेदन विधान-मण्डल के समक्ष रखता है। लेखा-परीक्षण 'सरकारी अधिकारियो को जवाबदेह बनाने वाले मुख्य ऐतिहासिक उपायो मे से एक उपाय माना गया है।'

---

1 Rule 323

2 M N Kaul, "*Parliamentary Procedure since Independence*" Article in Civic Affairs, March 1951, p 14

प्रशासन पर विधायी नियन्त्रण की सीमाये
(The Limits of Legislative Control over Administration)

विधान-मण्डल को प्रशासन के दिन प्रतिदिन के कार्य पर व्यापक नियन्त्रण नही लगाना चाहिए। विधान-मण्डल को चाहिए कि वह प्रशासकीय अधिकारियो को शक्तियो का हस्तान्तरण (Delegation) करे, साथ ही इसे उन शक्तियो के प्रयोग के सम्बन्ध मे सदा सावधान रहना चाहिए। जहा सरकारी अधिकारी अपनी शक्ति का दुरुपयोग करें वहा इसे उन पर रोक लगानी चाहिए। परन्तु विस्तृत मात्रा मे विधायी नियन्त्रण लगाने से प्रशासन मे पक्षाघात की सी स्थिति उत्पन्न होने का खतरा बना रहता है। विधान-मण्डल को सिविल-सेवको पर विश्वास होना चाहिए। जॉन स्टुअर्ट मिल ने भी प्रशासन पर विधायी नियन्त्रण की सीमाओ का उल्लेख किया है।

जान स्टुअर्ट मिल ने "Proper Function of Representative Bodies" के अपने अध्याय मे लिखा है कि प्रतिनिधि सभा के समुचित कार्य शासन-प्रवन्ध करने की बजाय जिसके लिए कि वह पूर्णत अनुपयुक्त है, ये हैं 'सरकार की देखभाल करना तथा उस पर नियन्त्रण रखना, उसके कार्यों के प्रचार पर प्रकाश डालना,' यदि उनके बारे मे कोई प्रश्न उठाये तो उनका औचित्य सिद्ध करने तथा उनकी पूर्ण व्याख्या करने को बाध्य करना, यदि वे कार्य निन्दा योग्य हो तो उनकी निन्दा करना व रोक लगाना, और यदि सरकारी अधिकारी अपनी शक्तियो का दुरुपयोग करें अथवा उनका ऐसी रीति से उपयोग करें जोकि राष्ट्रीय भावना के विरुद्ध हो तो उनको पद-विमुक्त करना, और उनके उत्तराधिकारी नियुक्त करना··· । किसी भी राष्ट्र की स्वाधीनता की रक्षा के लिए यह शक्ति बहुत है । इन सीमाओ के अन्तर्गत प्रतिनिधि-सभा के कार्यों द्वारा लगाया जाने वाला प्रतिवन्ध ऐसे लोकप्रिय नियन्त्रण के लाभो को प्राप्त कराने मे समर्थ होगा जोकि कुशल विधान तथा प्रशासन की आवश्यकताओ से कम नही होगा।

आवश्यकता इस बात की है कि विधायकगण (Legislators) अपने सोचने-विचारने का तरीका बदलें, क्योकि वे सिविल-सेवको की प्रत्येक क्रिया को सन्देह भरी दृष्टि से देखते है चूकि भारतीय ससद सिविल-सेवको का विश्वास नही करती, अत उसने सत्ता के हस्तातरण की आवश्यकता तथा उसके लाभो को नही समझा है।

"अन्तत. ससद शक्तियो के हस्तान्तरण के विरोध का मुख्य गढ है। शक्ति के हस्तान्तरण का अभाव भारतीय प्रशासन का सबसे बडा दोष है। शक्तियो के व्यापक हस्तान्तरण के प्रति ससद की अनिच्छा, जवकि ससदीय शक्तियो को महत्वपूर्ण तथा ठोस बनाने के लिए ऐसा हस्तान्तरण अत्यन्त आवश्यक है, मन्त्रियो को अपनी शक्तियो के हस्तान्तरण के प्रति हतोत्साहित करती है और सचिवो (Secretaries) को अपनी शक्तियो के हस्तान्तरण के प्रति हतोत्साहित करती है।

भारत को आज अन्य सब बातो से अधिक जिस चीज की आवश्यकता है, और ससद को सबसे अधिक जिस चीज की आवश्यकता है, वह है सयुक्त सचिवो (Joint Secretaries) द्वारा अधिक शासन, उप-सचिवो (Deputy secretaries) द्वारा अधिक शासन, अवर-सचिवो (Under secretaries) द्वारा अधिक शासन, और प्रबन्ध निर्देशको (Managing directors) तथा उनके अधीनस्थ अधिकारियो द्वारा अधिक शासन। यही एक ऐसी रीति है जिसके द्वारा अधिक शासन किया जा सकता है तथा ससद सामान्य मार्गदर्शन की दिशा मे अधिक सफलता प्राप्त कर सकती है।

ससद के सदस्य अपेक्षाकृत स्वायत्तता-प्राप्त उद्यमो की स्थापना के प्रति अपनी अभिरुचि प्रकट करते है। इस लेखक ने कभी ऐसा कोई उदाहरण नही सुना जिसमे लोकतन्त्रीय सरकार ऐसे किसी भी उद्यम पर किसी भी ऐसी रीति से, जोकि वास्तव मे सरकार के लिए महत्वपूर्ण हो, नियन्त्रण न लगा सकी हो या उसने नियन्त्रण न लगाया हो। जब तक कि ससद स्वय को बडी कार्यवाही के उपयुक्त नही बनाती और सामान्य निर्देशन के उच्च-स्तर के कार्यों के लिए स्वय प्रयत्न नही करती, तब तक भारत का भविष्य सदिग्ध ही रहेगा। आवश्यकता इस बात की है कि ससद उच्च-स्तर (High-level) पर कार्य करने की आवश्यकता को समझे। जहाँ तक प्रशासन का सम्बन्ध है, यह अधिकतर निम्न स्तर पर कार्य करती है। यह बात आश्चर्यजनक नही है, विधान-मण्डल सभी जगह अपने कार्यों को शनै शनै बढाने लगते हैं और जब वे प्रशासन मे विशिष्ट मामलो से व्यवहार करने की चेष्टा करते हैं तो प्रत्येक स्थान पर कम से कम योग्य (Least competent) साबित होते है। लेखक ने भारतीय प्रशासन मे अन्य बडी आवश्यकताओ की अपेक्षा इनके प्रति कम जागरण पाया है।

"शक्ति के हस्तान्तरण से उत्तरदायित्व के क्षेत्र मे वृद्धि होती है।" ससद को इस सम्बन्ध मे काफी विचार करने की आवश्यकता है।

"मैं यह सुझाव देना चाहता हू कि सबसे सरल तरीका, जिसके द्वारा कि ससद प्रशासन पर अपने निषेधात्मक (Negative) प्रभाव को निश्चयात्मक (Positive) प्रभाव मे बदल सकती है, यह होगा कि वह कार्यों की आलोचना करने की दृष्टि से देखना बन्द करे और उनको प्रशसा करने की दृष्टि से देखना आरम्भ करे। ऐसा होने पर यह शीघ्र ही स्पष्ट हो जायेगा कि जो कुछ प्रशसनीय है वह कम नही है और यह कि कार्य करने के नये-नये साहसपूर्ण तरीके अपनाये जा रहे है। साहस, पहले करने की क्षमता (Initiative) तथा योग्य कार्यो की प्रशसा की जानी चाहिए। तथापि, यह भय हो सकता है कि ससद के हाथो मे इस प्रयत्न का भी रूप बिगड ही जायेगा, जैसा कि एकपक्षीय नए विचारो को पुरस्कार देने की अमेरिकन पद्धति मे हुआ। ऐसी पद्धति मे कम ही लाभ होता है ।" मेरे विचार से यहा आवश्यकता इस बात की है कि अपने कार्यों की वास्तविक सफलता के लिए ससद को प्रशासन पर निर्भर रहने की स्थिति को उच्च मान्यता देनी चाहिए। ब्रिटिश

पद्धति मे ब्रिटिश सिविल-सेवको को उच्च सम्मान प्रदान करना बडा मूल्यवान सिद्ध हुआ है । परन्तु स्थिति यह है कि ब्रिटेन मे, ससद तथा जनता की दृष्टि मे लोक सेवा की प्रतिष्ठा बडी ऊँची है । यहाँ जनता की दृष्टि मे तो इसकी प्रतिष्ठा ऊँची है, परन्तु ससद इस मामले मे छिद्रान्वेषी, प्रशसा न करने वाली यथा कृपण रही है ।

स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व सिविल कर्मचारियो का दृष्टिकोण निषेधात्मक तथा शासन-विरोधी रहा करता था । स्वतन्त्रता के अभियान के लिये तो ऐसा दृष्टिकोण आवश्यक था । परन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् से भारतीय नेताओ के सामने एक बडी समस्या यह रही है कि स्वतन्त्र तथा क्रान्तिकारी भारत द्वारा आयोजित कार्यक्रमो की सफलता के लिए इस दृष्टिकोण को एक ठोस, कार्यकारी तथा सस्थागत उत्तर-दायित्व के रूप मे किस प्रकार परिवर्तित किया जाए । औपनिवेशिक शासन से भारत के अपने निजी शासन मे भाग लेने का यह परिवर्तन ससद-सदस्यो तथा नेताओ के लिए जितना कठिन रहा है उसका २०वा भाग भी सिविल-सेवको के लिए कठिन नही रहा, और यह परिवर्तन काफी समय पहले ही कर लिया गया । सिविल-सेवको पर ससदीय अविश्वास का एक आश्चर्यजनक एव अवश्यम्भावी परिणाम यह हुआ है कि सिविल-सेवको ने औपनिवेशिक शासन की कठोर कार्यविधियो एव प्रक्रियाओ तक ही स्वय को सीमित रखा है और इससे नवीन भारत के नीति सम्बन्धी महान् उद्देश्यो को पूरा करने की उनकी क्षमता मे भारी कमी हुई है । सिविल-सेवा एक ऐसा आवश्यक यन्त्र है जिसके द्वारा कोई भी कार्यवाही आगे बढाई जा सकती है, और यदि उसका ही उपयोग अविश्वास के साथ किया गया तो उसके कार्य भी कम ही प्रभावशाली होगे ।

"भारत अपने महान् प्रयत्नो मे सफल होगा या नही"— यदि इस प्रश्न के उत्तर के निचोड को कुछ थोडे से आवश्यक तत्वो मे रख सकना सभव हो, तो मैं दो आवश्यक तत्वो पर जोर दूगा जोकि निम्न दो प्रश्नो के रूप मे है

"क्या भारत, अपने भाषावार विभाजन का सामना करते हुए तथा अपने प्रशासन के एक बडे भाग के लिये असाधारण रूप से राज्यो पर निर्भर रहते हुए, अपनी राष्ट्रीय एकता तथा शक्ति को कायम रखने मे तथा उसका विकास करने मे समर्थ हो सकेगा ?"

"क्या जनता तथा ससद इस बात की ओर पर्याप्त ध्यान देने तथा सत्ता के हस्तान्तरण द्वारा ऐसी कोटि की लोक-सेवा की व्यवस्था करने के लिए यथेष्ट रूप मे इच्छुक हैं जोकि प्रशासकीय प्रभावपूर्णता के लिए आवश्यक हो ?"

अन्त मे भारत को प्रशासन मे केवल उतना ही लाभ प्राप्त होगा जितना कि वह उसका मूल्य अदा करेगा और जितना वह उसे अवसर प्रदान करेगा । यदि भारत ने स्वय को मर्यादिय क्षेत्र की नौकरशाही तक ही सीमित रखा, तो राष्ट्रीय सफलताए भी उसी हद तक सीमित हो जायेगी ।[1]

---

1 Appleby, *op cit*

नौकरशाही (Bureaucracy) की अनियन्त्रित बुराइयो पर रोक लगाने के लिए प्रशासन पर ससदीय नियन्त्रण का होना अत्यन्त आवश्यक है, परन्तु विधान-मण्डल द्वारा प्रशासन मे छोटी-छोटी बातो के आधार पर अधिक हस्तक्षेप नही होना चाहिए। प्रशासको को शासन-कार्य चलाने के लिए शक्ति तथा सत्ता प्राप्त होनी ही चाहिए। विधान-मण्डल तथा सरकार की कार्यपालिका शाखाओ के कर्त्तव्यो तथा उत्तरदायित्वो की स्पष्ट रूप से व्याख्या तथा सीमाकन होना चाहिए। विधान-मण्डल को चाहिए कि वह प्रशासन मे आने वाली बुराइयो को दूर करे परन्तु उसे देश का शासन-कार्य स्वय ही चलाने का प्रयत्न नही करना चाहिए। विधान-मण्डल को सगठन के आन्तरिक प्रशासन के लिए विस्तृत नियमो का निर्धारण नही करना चाहिए क्योकि इस स्थिति मे प्रशासको के लिए कोई भी पहल करना कठिन हो जाता है। प्रशासको को भी चाहिए कि वे विधान-मण्डल का विश्वास तथा सद्भाव प्राप्त करने का प्रयत्न करें। ऐसा तभी किया जा सकता है जबकि प्रशासक विधायकगण को राष्ट्र के मामलो से परिचित रखने का अधिक प्रयत्न करे, और बदले मे स्वय भी विधायको (Legislators) के विचारो से परिचित रहे।[1]

हस्तान्तरित अथवा अधीनस्थ विधान
(Delegated or Subordinate Legislation)

१ अर्थ :

जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है कि विधान-मण्डल (Legislature) का कार्य विधान बनाना है परन्तु ससार के विभिन्न देशो के विधान-मण्डल प्रशासकीय प्राधिकारियो को बडी-बडी विधायी शक्तियो का हस्तातरण करते रहे हैं। इस व्यवस्था को 'हस्तान्तरित अथवा अधीनस्थ विधान' के नाम से पुकारा जाता है 'The Committee on Minister's Powers' ने इसकी व्याख्या इस प्रकार की है, "अधीनस्थ प्राधिकारियो तथा निकायो (Bodies) द्वारा, स्वय ससद द्वारा प्रदत्त वैधानिक सत्ता के अनुसार, छोटी-छोटी विधायी शक्तियो के क्रियान्वय को ही हस्तान्तरित विधान कहा जाता है।"[2] हस्तान्तरित विधान का अर्थ या तो (क) अधीनस्थ प्राधिकारी, जैसे कि मन्त्री (Minister) द्वारा ससद मे हस्तान्तरित हुई विधायी शक्ति (Legislative power) का क्रियान्वय है, अथवा (ख) ऐसे अधीनस्थ प्राधिकारी द्वारा बनाई जाने वाली सहायक विधि (Subsidiary law) से है। विधान-

1 "The legislature should also realize that the details of the business of Government have escaped the competence of legislative committees and Chairmen, the possibility of deciding policy by settling details, once perhaps feasible, has disappeared, and in the future legislatures perforce must deal with administration on the basis of Principle and generality if they are to deal with it effectively and in the public interest "

(L D White, *New Horizons in Public Administration*, pp, 5-6)

2 Report of the Committee on the Minister's powers, London

मण्डल अधिनियम (Act) पास करता है और उस अधिनियम के अन्तर्गत नियम (Rule) बनाने की शक्ति सम्बन्धित मन्त्री को सौंप देता है। कभी-कभी विधान-मण्डल किसी कानून की केवल मोटी रूपरेखा ही बनाता है और उस कानून की विस्तृत बातें पूरी करने का प्राधिकार सम्बन्धित मन्त्री को सौंप देता है। **इसे ही हस्तान्तरित विधान कहा जाता है क्योंकि इसमे स्वय ससद उन प्राधिकारियो (Authorities) को, जोकि विधान-मण्डल के अधीनस्थ अथवा उसके प्रति उत्तर-दायी होते हैं, कुछ विधायी शक्तियां सौंप देती है।**

२ हस्तान्तरित विधान की आवश्यकता :

महत्वपूर्ण सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक परिवर्तनो के कारण, विधायी शक्तियो के विस्तृत हस्तान्तरण की आवश्यकता उत्पन्न हुई है। विस्तृत विधायी शक्तियो का हस्तान्तरण करने वाले अधिनियम एक के बाद एक सविधि-पुस्तिका (Statute Book) मे स्थान पा रहे हैं।

हस्तान्तरित विधान की वृद्धि के मुख्य कारण निम्नलिखित हैं—

(१) विज्ञान तथा शिल्पकला की प्रगति के कारण राज्य के कार्यों मे तीव्र गति से वृद्धि हो रही है। ससद ऐसे विधान बनाने के कार्य मे ही अधिकाधिक व्यस्त रहती है जिनका कि उद्देश्य समाज के दिन प्रतिदिन के कार्यों का नियमन करना होता है। अब तो राज्य ऐसे अनेक कार्यों को भी सम्पन्न करता है जिन्हे कि पहले इसके क्षेत्र से पूर्णत बाहर समझा जाता था। राज्य के कार्यो मे अत्यधिक वृद्धि होने के कारण हस्तान्तरित विधान एक आवश्यकता बन गया है। विधान-मण्डल आजकल अत्यधिक कार्य-भार से लदे रहते हैं। यदि वे अपना कार्य कुशलता के साथ करना चाहते हैं तो उनके लिए केवल एक ही मार्ग है, और वह है सत्ता सौंपने का। ऐसा होता है कि ससद एक कानून को केवल मोटी रूपरेखा मे पास करती है, और उस कानून की बारीकियो (Details) को पूरा करने का प्राधिकार सम्बन्धित विभाग को सौंप देती है। इस प्रकार ससद अपने आपको मुख्य नीति सम्बन्धी मामलो तक ही सीमित रखती है और बारीकियो से सम्बन्धित छोटे-छोटे मामले सम्बद्ध विभागो पर छोड दिये जाते हैं।

(२) शिल्पकला की प्रगति से वर्तमान युग मे हस्तान्तरित विधान एक आवश्यकता बन गया है। ससद यथेष्ट रूप मे इतनी सुसज्जित नही होती कि अनेक प्राविधिक अथवा तकनीकी (Technical) मामलो की बारीकियो पर विचार कर सके, जोकि मुख्यत अधीनस्थ विधान का विषय होता है और जिसके निर्माण को राजनैतिक विचार प्रभावित नही करते। तकनीकी मामलो के सम्बन्ध मे ससद कानून की एक मोटी रूपरेखा पास करती है और उसकी बारीकियो को पूरा करने का प्राधिकार उस अधिकरण (Agency) को सौंप देती है जोकि उस कार्य के लिए तकनीकी दृष्टि मे पूर्ण सुसज्जित होता है।

(३) ससद के पास सदा ही समय का अभाव रहता है, अतः इसके सामने केवल एक ही रास्ता होता है और वह यह कि यह अपनी कुछ सत्ता अन्य अभिकरण को हस्तान्तरित करे।

(४) समय परिवर्तन के साथ ही साथ कानूनो मे भी हेर-फेर करने की आवश्यकता होती है। ससद ऐसे हेर-फेर अथवा परिवर्तन शीघ्रता के साथ नही कर सकती क्योकि इसकी बैठकें लगातार नही होती। अत कानून की बारीकियो मे परिवर्तन करने का प्राधिकार सम्बन्धित विभाग को सौप दिया जाता है।

हस्तान्तरित विधान से ससद का समय बचता है। यह लोचहीनता (Inelasticity) को कम करता है क्योकि लोचहीनता के कारण बहुधा अधिनियम (Act) अकार्यशील हो जाता है। ससद द्वारा पास किये गये अधिनियम के सम्बन्ध मे बनाये गये नियम (Rules) स्थानीय तथा विशिष्ट परिस्थितियो के लिए अधिक उपयुक्त रह सकते हैं बशर्ते कि इन नियमो को बनाने का अधिकार सम्बद्ध विभागो को दे दिया जाये। राज्य के निरन्तर बढते हुए कार्यों के कारण ससद का ध्यान केवल कानून के प्रमुख उपबन्धो (Provisions) तक ही सीमित रखने की तथा उसकी बारीकियो के निर्माण का कार्य विभागो पर छोडने की पद्धति का अनुकरण ही सम्भवत एक ऐसा उपाय है जिसके द्वारा कि ससदीय शासन अपने विधायी कार्यों को सतोषजनक रूप से सम्पन्न कर सकता है। "यह (हस्तान्तरित विधान) प्रत्यक्ष रूप से ससद के अधिनियमो से सम्बन्धित होता है, ठीक उसी प्रकार जैसे कि एक बालक अपने माता-पिता से सम्बन्धित होता है और बालक जब कुछ बडा हो जाता है तो उससे वह माग की जाती है कि वह अपने माता-पिता का कुछ कार्य-भार अपने ऊपर ले, अत छोटे-छोटे मामलो एव कार्यों को वह निपटा लेता है जबकि माता-पिता मुख्य कार्य की देखभाल व प्रबन्ध करते है।"[1] ऐसा होने पर ससद को छोटी-छोटी बारीकियो की परवाह किए बिना विधान के अधिक गम्भीर प्रश्नो पर विचार करने के लिए अधिक समय मिल जायेगा। 'Committee on Minister's powers' के प्रतिवेदन मे यह कहा गया कि "सत्य तो यह है कि यदि ससद विधि-निर्माण की शक्ति के हस्तान्तरण के प्रति अनिच्छुक रही तो वह ऐसी किस्म तथा कोटि का विधान पास करने मे असमर्थ रहेगी जैसा कि आज का जनमत चाहता है।"[2]

प्रोफेसर हर्ट ने इन लाभो का सक्षेपीकरण निम्न प्रकार किया है —

(१) कानून की बारीकियो (Details) के निर्माण के कार्य से मुक्त होकर, विधान-मण्डल अपना तथा जनता का ध्यान नीति के मौलिक तत्वो के विधानीकरण पर केन्द्रित कर सकता है और इस प्रकार शासन के प्रतिनिधि के रूप मे अपनी स्थिति दृढ कर सकता है।

---

1 Cecil T Carr, *Delegated Legislation*, p 2
2 Report p 32

(२) ऐसा होने से विधान-मण्डल को अतिरिक्त समय भी मिल जाता है जिसमे कि वह ऐसी रीति की खोज कर सकता है जिसके द्वारा प्रशासकीय अधिकारी उसकी नीतियो को कार्यान्वित करें तथा आधुनिक रूप दें।

(३) चूंकि सविधियो (Statutes) की अपेक्षा इन नियमो (Rules) मे अधिक आसानी के साथ सशोधन किया जा सकता है अत गलतियो को सुधारने तथा परिवर्तित परिस्थितियो का सामना करने का कार्य भी सरल हो जाता है, बशर्ते कि कठिनाई कानून की बारीकियो के सम्बन्ध मे हो, मूल नीति के सम्बन्ध मे नही।

(४) प्रशासक उस दुविधा से बच जाता है जिसका कि उसे बहुधा उस समय सामना करना होता है जबकि विधायी बारीकियो (Legislative details) की लालफीताशाही से उसके हाथ बधे होते हैं।

(५) प्रशासक वह शक्ति होता है जोकि निरन्तर विशिष्ट समस्याओ से ही जूझता रहता है अत वह अनुभव के द्वारा ऐसे विशिष्ट नियमो का निर्माण कर सकता है जोकि विधान के उद्देश्य की पूर्ति की दृष्टि से सर्वोत्तम हो।

(६) व्याख्यात्मक विनियम (Interpretative regulations) कानून की निश्चितता को बढाने का एक उपाय है, विशेषकर तब, जबकि सविधि (Statute) मे वह व्यवस्था की गई हो कि ऐसे विश्लेषणो अथवा अर्थों के अनुरूप ईमानदारी के साथ किये गए अथवा न किये गए किसी भी कार्य पर सिविल अथवा आपराधिक उत्तरदायिता लागू न होगी, चाहे ऐसे कार्य के किये जाने अथवा न किये जाने के पश्चात् उन विश्लेषणो अथवा व्याख्याओ को न्यायालयो द्वारा अवैध ही क्यो न ठहरा दिया गया हो।

(७) प्रासगिक विधान (Contingent legislation) एक ऐसा उपाय है जिसके द्वारा विधान-मण्डल किसी भी नीति को अवरुद्ध रख सकता है और उसका क्रियान्वित होना ऐसी अज्ञात भावी घटनाओ पर निर्भर रखा जा सकता है, जैसे कि किसी विदेशी सरकार की कोई कार्यवाही।

हस्तान्तरित विधान मे बचाव अथवा सुरक्षाएं (Safeguards in Delegated Legislation)

हस्तान्तरित विधान कितना ही अनिवार्य क्यो न हो, "स्वेच्छाचारी प्रशासन के कीटाणुओ" का सामना करने के लिए कुछ सुरक्षाओ की व्यवस्था होनी चाहिए। हस्तान्तरित विधान की वृद्धि के कारण ही, एक भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश लार्ड **हीवर्ट** को यह कहना पडा कि एक नई निरकुशता (New Despotism) जन्म ले रही है। हस्तातरित विधान के कारण नौकरशाही के अधिनायकवाद की सभावना को समाप्त करने के लिए निम्नलिखित सुरक्षाओ की व्यवस्था की जाती है —

(१) हस्तान्तरण सदा ही एक उत्तरदायी प्राधिकारी, अर्थात् मन्त्री (Minister) को किया जाता है जोकि ससद के प्रति उत्तरदायी होता है। ससद केवल ऐसे

अभिकरण अथवा विभाग को ही अपनी सत्ता का हस्तातरण करती है जोकि उसके नियन्त्रण मे होता है।

(२) ससद हस्तातरित की गई विधायी शक्ति की सीमाओ की स्पष्ट रूप से व्याख्या करती है और यदि उन सीमाओ का उल्लघन किया जाता है तो नागरिको के अधिकारो की रक्षा के लिए न्यायालयो का आश्रय दिया जाता है।

(३) न्यायाधिकारी वर्ग आदेशो (Orders) की छानवीन कर सकता है और उनको अधिकार क्षेत्र से बाहर घोषित कर सकता है।[1]

अत ससद ऐसी व्यवस्था करती है कि हस्तातरित शक्ति के कार्यान्वय का खण्डन किया जा सके। नियमो (Rules) को सदन-कक्ष मे चुनौती दी जा सकती है। ससदीय नियन्त्रण की दृष्टि से, इगलैंड मे दो प्रकार के वैधानिक लेख पत्र हैं —

(१) एक तो वे, जिनके लिए ससद से स्वीकारात्मक प्रस्ताव (Affirmative resolution) प्राप्त करना ही होता है। लेख पत्र (Instrument) का मसौदा (Draft) ससद के सामने रखा जाता है और यह व्यवस्था की जाती है कि "यदि वह एक सपरिषद् आदेश (Order-in-council) है तो यह महामहिम (His Majesty) के समक्ष नही प्रस्तुत किया जायेगा, अथवा यदि वह कोई अन्य लेख पत्र है तो उसका निर्माण नही किया जायेगा, जब तक कि सपरिषद् आदेश की स्थिति मे, प्रत्येक सदन (House) महामहिम से यह प्रार्थना न करे कि आदेश किया जाना चाहिए, अथवा अन्य किसी स्थिति मे प्रत्येक सदन यह न निश्चय कर ले कि लेख पत्र का निर्माण किया जायेगा।" नियम एक स्वीकारात्मक प्रस्ताव के द्वारा ससद से अनुमोदित किए जाने होते हैं।

(२) दूसरे वे, जोकि अस्वीकृत की प्रक्रिया (Annulment procedure) के अधीन होते हैं। ससद को यह शक्ति प्राप्त होती है कि वह अस्वीकृति प्रस्ताव (Annulment resolution) पास कर सके अथवा स्वीकारात्मक प्रस्ताव को अस्वीकार कर सके।

नियम चालीस दिन की अवधि के लिए सदन की मेज पर रखने होते हैं।

सूक्ष्म-परीक्षण समिति की व्यवस्था
(Provision of a Scrutiny Committee)

इगलैंड मे Donoughmore Committee (१९३२) ने यह सिफारिश की कि प्रत्येक सदन मे एक-एक स्थायी समिति (Standing Committee) की स्थापना

1 In a case in England in 1917, Lord Shaw of Dunfermline in Rex V, Halliday observed "The Increasing crust of legislative efforts and the Convenience to the executive of a refuge to the device of orders in Council would increase that danger (i e. transitions to arbitrary government) ten fold were the Judiciary to approach any action of the Government in a spirit of Compliance rather than that of independent scrutiny"

होनी चाहिए, जोकि ऐसे प्रत्येक विधेयक (Bill) पर विचार करे तथा अपने प्रतिवेदन दे जिसमे विधि-निर्माण की शक्तिया मन्त्री को सौंपने का प्रस्ताव हो, तथा हस्तातरित विधायी शक्ति के कार्यान्वय के लिए बनाये गए ऐसे प्रत्येक विनियम (Regulation) तथा नियम पर विचार करे एव अपना प्रतिवेदन दे, जिसको सदन के समक्ष रखने की आवश्यकता हो। यह सिफारिश स्वीकार नही की गई थी। युद्धकाल मे, हस्तातरित विधान का पर्यवेक्षण करने के लिए लोकसभा (House of Commons) मे वैधानिक नियमो तथा आदेशो (Statutory Rules and orders) पर एक प्रवर समिति (Select Committee) की स्थापना की गई थी और लार्डसभा (House of Lords) मे एक विशिष्ट आदेश समिति (Special Orders Committee) की स्थापना की गई थी।

आजकल वैधानिक लेख पत्रो (Statutory Instruments) पर एक प्रवर समिति बनी हुई है, जिसे कि सूक्ष्म-परीक्षण कहा जाता है। यह ऐसे सारे ही लेख पत्रो की जाच करती है जिनके लिए चाहे स्वीकारात्मक प्रस्ताव की कार्य-विधि (Affirmative resolution procedure) निर्धारित की गई हो अथवा नकारात्मक (Negative) प्रस्ताव की कार्य-विधि।

भारत मे अधीनस्थ विधान पर समिति
(Committee on Subordinate Legislation in India)

भारत मे अधीनस्थ विधान पर विचार करने के लिए एक समिति बनी हुई है जोकि इस बात की छानबीन करती है कि विनियम (Regulations), नियम (Rules) उप-नियम (Sub-rules) व उप-विधिया (Bye laws) आदि बनाने की सविधान द्वारा प्रदत्त अथवा ससद द्वारा हस्तातरित शक्तियो का कार्यान्वय, ऐसे विधान की परिधि के अन्तर्गत, समुचित रूप से किया जा रहा है या नही और सदन को उसकी सूचना देती है। समिति मे पन्द्रह व्यक्ति होते है जोकि अध्यक्ष (Speaker) द्वारा एक वर्ष के लिए मनोनीत किये जाते हैं। ससद द्वारा अधीनस्थ प्राधिकारी को हस्तातरित किये गए विधायी कार्यों (Legislative functions) के अनुसरण के लिए बनाया गया कोई भी विनियम, नियम, उप-नियम व उप-विधि आदि सदन के सामने रखा जायेगा और घोषणा के तुरन्त पश्चात् ही राज्य पत्र (गजट) मे प्रकाशित किया जायेगा। समिति के कर्तव्य निम्न है—

नियम ३१९ मे उल्लिखित ऐसा प्रत्येक आदेश सदन के सामने रखा जाने के पश्चात् समिति, विशेष रूप से, इस बात पर विचार करेगी कि—

(१) क्या यह आदेश सविधान के अथवा उस अधिनियम (Act) के सामान्य-उद्देश्यो के अनुरूप है जिसके अनुसरण मे कि उसका निर्माण किया गया है,

(२) क्या उसमे कोई ऐसा विषय है जिस पर कि, समिति की राय मे, ससद के एक अधिनियम के रूप मे अधिक उपयुक्त रूप से विचार तथा व्यवहार किया जाना चाहिए,

(३) क्या उसमे किसी भी कर (Tax) के आरोपण (Imposition) का प्रस्ताव है,

(४) क्या यह प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से न्यायालयो के अधिकार क्षेत्र (Jurisdiction) पर रोक लगाता है,

(५) क्या इसका ऐसे किसी भी उपबन्ध (Provision) पर पश्चाद्दर्शी प्रभाव (Retrospective effect) पडता है जिसके सम्बन्ध मे कि सविधान (Constitution) अथवा अधिनियम स्पष्टत ऐसी कोई शक्ति प्रदान नही करता,

(६) क्या यह भारत की सचित निधि (Consolidated Fund of India) अथवा लोक-राजस्वो (Public revenues) मे से व्यय की व्यवस्था करता है,

(७) क्या यह सविधान द्वारा अथवा उसे अधिनियम द्वारा, जिसके अनुसरण मे कि इसका निर्माण किया गया है, प्रदत्त शक्तियो का कुछ असाधारण अथवा अप्रत्याशित सा उपयोग करता प्रतीत होता है,

(८) क्या इसके प्रकाशन मे अथवा इसको ससद के सामने रखने मे अनुचित रूप से देरी की गई है,

(९) क्या किसी भी कारण से इसके रूप (Form) अथवा आशय के स्पष्टीकरण की आवश्यकता है।

समिति अपना प्रतिवेदन ससद के समक्ष प्रस्तुत करेगी। यह अपना यह मत प्रकट कर सकती है किसी भी आदेश को पूर्णत अथवा आंशिक रूप से रद्द कर दिया जाए अथवा किसी भी पहलू की दृष्टि से उसमे सुधार कर दिया जाए।[1]

निष्कर्ष (Conclusion)

निष्कर्ष के रूप मे यह कहा जा सकता है कि 'हस्तान्तरित विधान' की प्रक्रिया के विरुद्ध की जाने वाली आलोचनाए निराधार तथा निर्मूल है। हस्तान्तरित विधान नौकरशाही को स्वेच्छाचारी शक्तियाँ प्रदान नही करते। ससद को यह अधिकार होता है कि वह उन पर नियन्त्रण रख सके, न्यायपालिका (Judiciary) को उनका पुनर्वालोकन करने का अधिकार होता है तथा उनको क्षेत्राधिकार से बाहर (Ultra vires) तथा निष्प्रभाव एव निरर्थक (Null and void) घोषित करने का अधिकार होता है।

प्रोफेसर लास्की के शब्दो मे, "हस्तान्तरित विधान की प्रक्रिया के पक्ष मे कहने को बहुत कुछ है और इसके विरोध मे कहने को बहुत कम है। कोई भी व्यक्ति जोकि हस्तान्तरित विधान की विषय-सामग्री की जांच करेगा, यही पायेगा कि इस

1 (Rule 317-322)

"Thus, given the present control of the House by the Cabinet and the present party system, control means, in practice, discussion, interrogation, the airing of grievances and the very occasional wringing from a Minister of some small concession"

—Ernest H Beet, *Parliament and Delegated Legislation*, (1945-53), p 328

प्रक्रिया के द्वारा ससद के बहुमूल्य समय मे काफी बचत होती है, जिसका उपयोग अन्य महत्वपूर्ण मामलो मे अच्छी प्रकार किया जा सकता है। विष अथवा हानिकारक पदार्थों की सूची के विस्तार तथा लन्दन मे टैक्सियो के भाडे की तालिका मे परिवर्तन आदि के ये कार्य, जोकि नियामक शक्तियो के प्रयोग के लाक्षणिक उदाहरण हैं, स्वय सदन की अपेक्षा, यदि उपयुक्त सुरक्षाओ के अन्तर्गत, मन्त्रियो के एक समूह द्वारा किये जाए तो वास्तव मे वे हमारी स्वाधीनता के लिए चुनौती या धमकी नहीं हैं। मुख्य बात यह है कि ससद इस स्थिति मे होनी चाहिए कि जब भी वह उपयुक्त समझे, शक्ति के किसी भी प्रयोग पर आपत्ति उठा सके, और यह इस योग्य होनी चाहिए कि जो कुछ उसके नाम से किया गया है उसकी जाँच कर सके, जिससे कि यह निश्चय हो जाए कि ऐसी कोई बात जिसके विरुद्ध यह आपत्ति उठा सकती है, उसकी दृष्टि अथवा क्षेत्राधिकार से बाहर न रह जाए। इस प्रकार, हस्तान्तरित विधान की पद्धति, जोकि वास्तव मे उससे भी अधिक प्राचीन है जितना कि इसके आलोचक समझते हैं, निश्चयात्मक राज्य (Positive state) के लिए सुविधाजनक तथा आवश्यक है।"[1]

---

1 Prof Harold J Laski, *Parliamentary Government in England* pp. 351-52.

३६

प्रशासन पर न्यायिक नियन्त्रण
(Judicial Control Over Administration)

प्रशासन पर न्यायिक नियन्त्रण की समस्या उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी कि प्रशासन पर विधायी नियन्त्रण (Legislative control) की समस्या। हम यह बतला चुके हैं कि विधान-मण्डल कार्यपालिका (Executive) की नीति तथा उसके व्यय पर नियन्त्रण लगाता है। न्यायिक नियन्त्रण का उद्देश्य यह होता है कि प्रशासकीय कार्यों की वैधता (Legality) के बारे मे निश्चिन्त हुआ जा सके और इस प्रकार सत्ता (Authority) के किसी भी अवैधानिक (Unlawful) उपयोग से नागरिको के अधिकारो की रक्षा की जा सके। राज्य की निरन्तर बढती हुई क्रियाओ के कारण प्रशासन की शक्तियो (Powers) मे भी वृद्धि हो रही है। समस्या यह है कि प्रशासकीय सत्ता के दुरुपयोग से नागरिको की रक्षा किस प्रकार की जाय। जब प्रशासन की सामान्य प्रक्रियाए असफल हो जाती हैं तो इस सम्बन्ध मे उपायो की व्यवस्था न्यायालय (Courts) करते हैं। एक जनतन्त्रीय राज्य मे सत्ता के दुरुपयोग, भेदभाव तथा सरकारी पक्षपात से जनता के अधिकारो की रक्षा करनी होती है। विधि के शासन (Rule of law) का सिद्धान्त, जो कि लोकतन्त्र का एक आवश्यक अग है, प्रशासकीय कार्यों पर न्यायिक-नियन्त्रण का आधार प्रस्तुत करता है। A. V Dicey ने इस सिद्धान्त का वर्णन इस प्रकार किया था —

" ··किसी भी व्यक्ति को दण्ड नही दिया जा सकता तथा शारीरिक अथवा आर्थिक रूप मे कानूनी रूप से हानि नही पहुँचाई जा सकती, हा सामान्य वैधानिक रीति से प्रस्थापित विधि (Law) के स्पष्ट रूप से भग करने पर देश के सामान्य न्यायालयो द्वारा ऐसा अवश्य किया जा सकता है · ·। कोई भी व्यक्ति विधि अथवा कानून से ऊपर नही है, बल्कि प्रत्येक व्यक्ति, चाहे उसकी पदस्थिति (Rank) तथा दशा कुछ भी क्यो न हो, देश के सामान्य कानून के अधीन होता है और सामान्य न्यायालयो के क्षेत्राधिकार के प्रति उत्तरदायी होता है··· प्रधानमन्त्री से लेकर एक पुलिस कान्सटेबिल अथवा कर सग्रह करने वाले कर्मचारी तक, प्रत्येक सरकारी अधिकारी व कर्मचारी वैधानिक अधिकार-क्षेत्र (Lagal jurisdiction) से बाहर किये गये किसी भी कार्य के लिए उतना ही उत्तरदायी है जितना कि अन्य कोई नागरिक । सविधान के सामान्य सिद्धान्त जिन्हे कि हमने अपनाया है, उन न्यायिक निर्णयो के परिणाम है जोकि न्यायालयो के सामने लाये गये

विशिष्ट मुकदमो मे प्राइवेट व्यक्तियो के अधिकारो का निर्धारण करने के लिए दिये गये ।"[1]

यदि नागरिक यह समझते हैं कि प्रशासकीय सत्ता का दुरुपयोग करके उनके अधिकारो का अपहरण कर लिया गया है तो अपनी व्यथाओ को व्यक्त करने के लिए तथा अपने अधिकारो की रक्षा के लिए वे न्यायालयो की शरण ले सकते हैं।

प्रशासकीय कार्यवाही के विरुद्ध उत्पन्न होने वाले मामलो पर न्यायालयो द्वारा पुनर्विचार किया जा सकता है। ये मामले निम्न कारणो से उत्पन्न हो सकते हैं —

(१) विवेक का अनुचित उपयोग (Abuse of discretion),
(२) अधिकार-क्षेत्र का अभाव (Lack of jurisdiction),
(३) विधि की त्रुटि (Error of law),
(४) तथ्य-प्राप्ति मे त्रुटि (Error in the finding of fact), और
(५) कार्य-विधि की त्रुटि (Error of procedure)।

यदि कोई सरकारी अधिकारी अपनी सत्ता का दुरुपयोग करता है, पक्षपात करता है अथवा बदला लेता है, तो पीडित पक्ष ऐसे अधिकारी के विरुद्ध सुरक्षा प्राप्त करने के लिये न्यायालय मे जा सकता है। यदि कोई व्यक्ति यह समझता है कि किसी सरकारी अधिकारी ने अपने अधिकार-क्षेत्र से बाहर कार्य किया है तो उस पर पुनर्विचार के लिए वह न्यायालय की शरण ले सकता है। कोई भी व्यक्ति यदि यह समझता है कि विधि सम्बन्धी कोई त्रुटि की गई है अथवा तथ्य या कार्य-विधि सम्बन्धी भूल की गई है तो उसे यह अधिकार प्राप्त है कि वह उन सरकारी अधिकारियो के विरुद्ध न्यायालय मे पहुँच कर सके।

क्या कोई नागरिक सरकार पर मुकद्दमा चला सकता है ?
(Can a Citizen sue the Government ?)

न्यायिक उपायो पर विचार करने से पूर्व एक अत्यन्त महत्वपूर्ण समस्या यह है कि यदि किसी सरकारी कार्यवाही के परिणामस्वरूप किसी नागरिक के साथ अन्याय हुआ हो तो अपनी सरकार तथा सरकारी अधिकारियो पर मुकदमा दायर करने के उसके अधिकार की मात्रा तथा प्रकृति क्या हो। इगलैड मे परम्परा यह रही है कि सम्राट् को किसी भी कार्यवाही की वैधानिक उत्तरदायिता से उन्मुक्त रखा गया है। 'सम्राट् कोई गलती नही कर सकता', अत किसी भी न्यायालय मे उस पर मुकदमा नही चलाया जा सकता। वह कानून से भी ऊपर है। राष्ट्राध्यक्ष को कानूनी उत्तरदायित्व से मुक्त करने की यह पद्धति सयुक्त राज्य अमेरिका व भारत आदि कुछ अन्य देशो द्वारा भी अपनाई गई थी। भारत मे, राष्ट्रपति तथा राज्यो के राज्यपालो (Governors) को सविधान मे उल्लिखित अपनी शक्तियो के प्रयोग और कर्त्तव्यो के पालन मे अपने द्वारा किये गये किसी कार्य के लिए कानूनी दायित्व से

1 A V Dicey, *Introduction to the study of the law of the Constitution* (8th Ed, 1915), pp 183—4, 189—191

उन्मुक्त रखा गया है।[1] राष्ट्रपति पर ससद द्वारा दोषारोपण किया जा सकता है। अपनी पदावधि मे वे किसी भी प्रकार की दण्ड्य-कार्यवाही (Criminal proceedings) गिरफ्तारी अथवा कारावास से उन्मुक्त (Immune) है।[2] परन्तु दो माह की सूचना देने के पश्चात्, राष्ट्रपति अथवा राज्यपाल के रूप मे अपना पद ग्रहण करने से पूर्व या पश्चात्, अपने वैयक्तिक रूप मे किये गये अथवा कर्तुमभिप्रेत (Purporting to be done) किसी कार्य के बारे मे राष्ट्रपति या ऐसे राज्य के राज्यपाल के विरुद्ध अनुतोष (Relief) की माँग करने वाली कोई व्यवहार-कार्यवाहियाँ (Civil proceedings) उसकी पदावधि मे किसी भी न्यायालय मे सस्थित की जा सकती है।[3]

मन्त्रियो (Ministers) को उन्मुक्ति अथवा विशेषाधिकार प्राप्त नही हैं परन्तु राष्ट्राध्यक्ष (Head of the state) द्वारा किये गये कार्यों के लिए उन पर कोई कानूनी उत्तरदायित्व नही है।[4] महाद्वीपीय देशो मे यह विचारधारा, कि सरकार सर्वोच्च सत्ता है और उस पर मुकदमा नही चलाया जा सकता, पुरानी समझी जाती है, और असैनिक मामलो मे प्रशासन के प्रत्येक कार्य को, यदि उससे व्यक्ति के अधिकारो का हनन होता है, प्रशासकीय अथवा व्यवहार-न्यायालयो मे चुनौती दी जा सकती है।

इगलैड, भारत तथा अमेरिका मे न्यायिक पदाधिकारी (Judicial officers) न्यायिक क्षमता के अन्तर्गत किये गये अपने कार्यो के बारे मे किसी भी उत्तरदायित्व मे उन्मुक्त हैं।

अधिकारियो का वैयक्तिक उत्तरदायित्व
(Personal Liability of Officers)

अधिकारियो के वे कार्य, जिनके लिए वे उत्तरदायी अथवा जिम्मेदार ठहराये जा सकते हैं, ये हैं किसी कार्य को करने मे असफल रहना जबकि उस कार्य को करना स्पष्ट रूप से उनका कर्त्तव्य है (Nonfeasance), असावधानी तथा उपेक्षापूर्ण कार्य करना, किन्तु किसी द्रोह अथवा बुरी भावना से नही (Misfeasance), और जान-बूझ कर हानि पहुँचाने के लिए किया गया कोई अवैध कार्य।[5]

न्यायेतर अधिकारियो को उनके कार्यों के सम्बन्ध मे अधिक उन्मुक्ति (Immunity) प्राप्त नही है। भारत मे, सरकारी ठेको अथवा सविदाओ (Official

1 अनुच्छेद ३६१ (१)

2 अनु० ३६१ (२) (३)

3 अनु० ३६१ (४)

4 अनु० ७४ (२) तथा १६३ (३)

5 (L T David, *The Tort Liability of Public Officers*, *Public Administration Service*, Chicago, 1940, p 28)

contracts) की स्थिति को छोडकर, सरकारी अधिकारियो की उत्तरदायिता वैसी ही है जैसी कि सामान्य व्यक्तियो की है। सरकारी अधिकारी (कार्यपालिका के अध्यक्ष सहित) सविधान के प्रयोजनो के हेतु किये गये ठेको के सम्बन्ध मे वैयक्तिक उत्तर-दायित्व से मुक्त हैं।[1] किसी भी सरकारी अधिकारी द्वारा शासकीय क्षमता के अन्तर्गत किये गये कार्य के सम्बन्ध मे, दो माह की सूचना देने के पश्चात् उसके विरुद्ध व्यवहार कार्यवाहियाँ (Civil proceedings) सस्थित की जा सकती हैं। जहाँ तक दण्ड्य उत्तरदायित्वो का सम्बन्ध है, सरकार की पूर्वानुमति लेकर सरकारी अधिकारी के विरुद्ध कार्यवाहियाँ प्रारम्भ की जा सकती है। ऐसे अधिकारी के विरुद्ध कोई भी दण्ड्य कार्यवाही (Criminal proceeding) सस्थित नही की जा सकती जिसने कि तथ्य सम्बन्धी कोई गलती की हो और सत्यनिष्ठा के साथ उसका यह विश्वास हो कि उसने वैध (Lawful) कार्य ही किया है। ऊपर उल्लेख किये गये मामलो तथा स्थितियो मे, यदि सरकारी अधिकारी अपनी शक्तियो का दुरुपयोग करें, अथवा नागरिको के अधिकारो को क्षति पहुँचाने का प्रयत्न करें, तो उनके विरुद्ध मुकदमा दायर किया जा सकता है।

न्यायिक समीक्षा की रीतियाँ
(Methods of Judicial Review)

न्यायिक पुनर्वालोकन अथवा न्यायिक समीक्षा की असाधारण रीतियाँ पाच हैं बन्दी प्रत्यक्षीकरण आदेश (Writ of Habeas Corpus) परमादेश (Mandamus), प्रतिषेध (Prohibition), अधिकार-पृच्छा (Quo-Warranto), तथा उत्प्रेषण आदेश (Certiorari)। 'Writ' लेटिन भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है, व्यापारिक प्रकृति का एक औपचारिक पत्र (Formal letter)। 'Writ' एक औपचारिक लेख है जोकि विधि सत्ता द्वारा जारी किया जाता है और जो किसी व्यक्ति अथवा उसकी सम्पत्ति के अधिकार क्षेत्र (Jurisdiction) की प्राप्ति के प्रयोजन के लिए, अथवा उसको विधि-न्यायालय मे उपस्थित होने को बाध्य करने के लिए काम मे लाया जाता है।

(१) **वन्दी प्रत्यक्षीकरण आदेश** (The Writ of Habeas Corpus)—(Literally (that) you have the body)। वन्दी प्रत्यक्षीकरण का शाब्दिक अर्थ है 'शरीर रूप मे उपस्थित करना'। वन्दी प्रत्यक्षीकरण से अभिप्राय एक ऐसे आदेश से है जो उस व्यक्ति को दिया जाता है। जिसने किसी दूसरे व्यक्ति को नजरवन्द कर रखा है कि वह उसे न्यायालय के समक्ष उपस्थित करे। इस प्रकार न्यायालय किसी भी नजरवन्द व्यक्ति को अपने सामने उपस्थित कराने का आदेश दे सकता है जिससे कि वह इस बात की जाच कर सके कि उस व्यक्ति की नजरवन्दी वैधानिक है या नही और उसके उपरान्त वह उसके साथ विधि के अनुकूल व्यवहार

---

1 *Art* 299 (2)

कर सके। इस आदेश का प्रयोग व्यक्ति की नजरबन्दी की वैधता की जाच के लिये किया जाता है। कोई भी व्यक्ति जिसको प्रशासकीय अधिकारियो द्वारा नजरबन्द किया गया हो, अपनी नजरबन्दी का मामला न्यायालय के सामने ला सकता है जहाँ उसकी नजरबन्दी की वैधता (Legality) पर विचार किया जाता है।

(२) **उत्प्रेषण-आदेश** (The Writ Certiorari)—(Literally to be certified)। यह उच्च न्यायालय द्वारा किसी नीचे के न्यायालय को जारी किया गया एक आदेश है जिसमे वह नीचे के न्यायालय को यह आज्ञा देता है कि वह किसी विशिष्ट मुकदमे के सम्बन्धित कागजात उच्च न्यायालय को भेज दे। इस उपाय को अवर अधिकारियो (Inferior officers), मण्डलो तथा न्यायाधिकरणो (Tribunals) की कार्यविधि (Procedure) की समीक्षा करने के लिए, अनेक अधिकार क्षेत्रो मे भी काम मे लाया जाता है, इस स्थिति मे प्रशासकीय अभिकरण को न्यायिक कार्यों को सम्पन्न करने वाला एक निम्न न्यायाधिकरण समझा जाता है। इस आदेश के द्वारा उच्चतर न्यायालय एक निम्न न्यायालय के अभिलेखो (Records) की समीक्षा करता है। परन्तु 'आदेश' (Writ) जारी होने से पहले तीन बातो का होना आवश्यक है (१) प्रशासकीय न्यायाधिकरण ने ऐसी रीति से काय किया हो जाकि उसकी निर्धारित शक्ति एव सत्ता के अन्तर्गत न हो, (२) शिकायत करने वाले पक्ष को किसी उच्चतर प्रशासकीय न्यायाधिकरण अथवा न्यायालय मे अपील करने का अधिकार न हो, और (३) इसका और कोई सामान्य उपचार (Ordinary remedy) न हो।

(३) **प्रतिषेध आदेश** (The Writ of Prohibition)—(Literally to forbid)। प्रतिषेध आदेश भी उच्चतर न्यायालय द्वारा जारी किया जाता है। इस आदेश के द्वारा नीचे के न्यायालयो, न्यायाधिकरणो, अधिकारियो अथवा व्यक्तियो को उस अधिकार क्षेत्र का उपयोग करने से रोका जाता है जो कि उन्हे विधि द्वारा प्रदत्त नही हैं। यह अवैध अधिकार क्षेत्रो के प्रयोग को रोकने के लिए जारी किया जाता है।

(४) **अधिकार पृच्छा आदेश** (The Writ of Quo-warranto)—(Literally by what warrant)। यह आदेश किसी लोक-पद (Public office) की अवैध मान्यता को अथवा किसी व्यक्ति द्वारा किसी लोक-पद के जबरदस्ती अधिकार को रोकता है। इस आदेश के द्वारा किसी व्यक्ति के किसी पद के ऊपर दावे के कानूनी औचित्य की जाच की जा सकती है।

(५) **परमादेश** (The Writ of Mandamus)—(Literally, we command)। यह एक आदेश होता है जोकि किसी व्यक्ति या निकाय (Body) के उन प्रशासकीय कर्त्तव्यो को पूरा करने के लिए दिया जाता है जिनको नियमानुसार उसे करना चाहिए किन्तु जिन्हे उसने पूरा नही किया है। यह आदेश उच्चतर

न्यायालय द्वारा राज्य (State) के नाम से नीचे के न्यायाधिकरण, निगम (Corporation) मण्डल (Board) अथवा व्यक्ति को जारी किया जाता है जिसमे उनको उन कार्यों को सम्पन्न करने की आज्ञा दी जाती है जोकि विधि द्वारा विशेष रूप मे उनके पद के कर्त्तव्यो से सम्बद्ध दिए गए हैं।

भारत का सविधान उच्चतम न्यायालय (Supreme Court) को यह शक्ति प्रदान करता है कि वह मौलिक अधिकारो (Fundamental rights) को प्रवर्तित कराने के लिए ऐसे निर्देश, आदेश अथवा लेख, जिनके अन्तर्गत बन्दी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश प्रतिषेध, अधिकार पृच्छा और उत्प्रेषण के प्रकार के लेख अथवा आदेश भी हैं, जो भी समुचित हो निकाल सकें।[1] उच्च न्यायालयो (High Courts) को भी यह शक्ति प्राप्त है कि वे मौलिक अधिकारो को प्रवर्तित कराने के लिए अथवा अन्य किसी प्रयोजन के लिए इन आदेशो, निर्देशो अथवा लेखो को जारी कर सके।[2]

फ्रासीसी प्रशासकीय अधिकार
(French Droit Administratif)

इगलैंड, भारत तथा अमेरिका मे कानून किसी सरकारी अधिकारी तथा एक सामान्य नागरिक के बीच कोई भेद नही करता। 'विधि अथवा कानून के शासन' (Rule of law) का मुख्य सिद्धान्त यह है कि कानून के सामने हर एक व्यक्ति समान है। इन देशो मे यदि लोक-सेवक सत्ता का गलत अथवा अनधिकृत उपयोग करते हैं तो उन्हे विधि-न्यायालय के सामने लाया जाता है। इसके विपरीत, फ्रास मे न्यायालयो की दो ऐसी पद्धतियो का विकास किया गया है जोकि परस्पर एक दूसरे पर निर्भर है, अर्थात् एक तो सामान्य न्यायपालिका (Ordinary judiciary) और दूसरी प्रशासकीय न्यायपालिका (Administrative judiciary)। प्रशासकीय न्यायालय ऐसे सभी मुकदमो की सुनवाई करते हैं जो कि प्राइवेट नागरिको द्वारा सरकारी अधिकारियो के विरुद्ध इसलिये दायर किये जाते हैं क्योकि उन्होने (सरकारी अधिकारियो ने) असावधानता, अकुशलता अथवा अपने कर्त्तव्यो के उपेक्षा-पूर्ण सम्पादन के कारण उनको क्षति अथवा हानि पहुचाई है। सिविल-सेवको के पदक्रम (Rank), वेतन तथा पेन्शनो के कारण फ्रासीसी प्रशासकीय न्यायालयो के क्षेत्राधिकार का प्रश्न विवादग्रस्त बना हुआ है। ऐसे मामले जिनमे कि नागरिक क्षति की उत्तरदायिता (Tort liability) तथा प्रशासकीय ठेको व अर्ध-ठेको की अस्वीकृति सम्मिलित हैं, प्रशासकीय न्यायालयो के समक्ष लाये जा सकते हैं। Droit Administratif) के अन्तर्गत लोक-सेवको को विशिष्ट दर्जा दिया जाता है और अपने सरकारी कार्यों के लिए वे सामान्य विधि-न्यायालयो के नियन्त्रण के अधीन

1 अनु० ३२ (२)
2 अनु० २२६ (१)

नही होते। वे एक विशिष्ट प्रकार के न्यायालयो के नियन्त्रण मे रहते है जिन्हे कि प्रशासकीय न्यायालय कहा जाता है। यदि लोक-सेवको (Public servants) की असावधानता तथा कर्त्तव्य पालन की उपेक्षा के कारण किसी व्यक्ति की कोई हानि हुई हो अथवा उसको कोई क्षति पहुँची हो, तो वह उसकी क्षतिपूर्ति के लिए एक टिकिट लगे प्रपत्र (form) पर प्रशासकीय न्यायालय के समक्ष अभ्यर्थना-पत्र (petition letter) प्रस्तुत कर सकता है। न्यायालय उस शिकायत की छानबीन कराता है और यदि वह शिकायत ठीक पाई जाती है तो पीडित व्यक्ति को सरकारी राजकोष से क्षतिपूर्ति का भुगतान किया जाता है। राज्य अपने अधिकारियो व कर्मचारियो अथवा अभिकर्त्ताओ (Agents) के कार्यो के लिये उत्तरदायी होता है और यदि उनकी उपेक्षा अथवा असावधानी के कारण नागरिको को कोई हानि पहुचती है तो वह उसकी क्षतिपूर्ति करता है।

फ्रासीसी प्रशासकीय न्यायालयो मे सबसे नीचे तो क्षेत्रीय परिषदें (Regional Councils) होती है और सबसे ऊपर राज्य परिषद् (Council of State) होती है। सामान्य न्यायालयो तथा प्रशासकीय न्यायालयो के बीच क्षेत्राधिकार (jurisdiction) सम्बन्धी मतभेदो के सभी मामलो का निपटारा विवादो के एक स्वतन्त्र न्यायाधिकरण (Independent Tribunal of Conflicts) द्वारा किया जाता है।

Dicey का यह मत था कि फ्रासीसी प्रशासकीय न्यायालयो का अधिशासन सरकार द्वारा किया जाता है और यह कि droit administratif एक ऐसा प्रयत्न है जो सरकारी अधिकारियो पर चलाये जाने वाले मुकदमो की सुनवाई अपने निजी न्यायालयो मे करके उनको (सरकारी अधिकारियो को) एक विशेषाधिकार की स्थिति प्रदान करता है। इसके विपरीत फ्रासीसी जनता ने नागरिको की स्वाधीनता की रक्षक के रूप मे इस पद्धति का समर्थन किया है। Berthelemy का कहना है कि फ्रासीसी पद्धति के आलोचको को "गलत जानकारी मिली हुई है तथा वे अत्यधिक अन्यायपूर्ण है।" प्रशासकीय न्यायालयो के जो अन्य लाभ गिनाये जाते है वे इस प्रकार है —

(१) इनमे न्याय सस्ता है तथा नागरिक इन न्यायालयो तक आसानी से पहुच कर सकते हैं। प्रशासकीय न्यायालय नागरिको को शीघ्रता के साथ तथा उचित व्यय पर न्यायिक सहायता प्रदान करते हैं।

(२) ऐसे न्यायालयो मे न्यायाधीश तथा प्रशासक, दोनो की ही चतुरता एव प्रवीणता विद्यमान रहती है जो ठोस रूप मे नागरिको की स्वाधीनता की रक्षा करती है। आंग्ल-अमरीका देशो मे भी अब फ्रासीसी नमूने के प्रशासकीय न्यायालयो के पक्ष मे व्यापक भावना पाई जाती है।

निष्कर्ष (Conclusion) .

सरकारी अधिकारियो द्वारा किए जाने वाले सत्ता के दुरुपयोग को रोकने तथा उसके उपचार के लिये प्रशासन पर न्यायिक नियन्त्रण लगाना अत्यन्त आव-

श्यक है। परन्तु यदि न्यायालयो द्वारा प्रशासन के प्रत्येक कार्य पर पुनर्विचार कर सकने की सुविधा दी गई तो इससे प्रशासन का कार्य ही ठप्प हो जायेगा। प्रशासकीय यन्त्र कार्य करना वन्द कर देगा क्योकि इस स्थिति मे उसके निर्णयो को कोई पूर्णता अथवा अन्तिमता (Finality) प्राप्त नही होगी। प्रशासकीय कार्य-कुशलता के दावो (Claims) के बीच एक समझौता अथवा समाधान होना चाहिए, जोकि सामाजिक कल्याण के लिए तथा लोक-सेवको द्वारा सत्ता के दुरुपयोग के विरुद्ध नागरिको के वैयक्तिक अधिकारियो की न्यायिक सुरक्षा के लिए अत्यन्त आवश्यक है। न्यायिक समीक्षा (Judicial review) की सीमाओ का वर्णन, सन् १९४१ मे केलीफोर्निया विश्वविद्यालय मे तैयार किये गये, प्रशासकीय निर्णयो तथा न्यायिक समीक्षा के एक अध्ययन मे, Harris तथा Ward द्वारा स्पष्ट रूप से किया गया है। उनका कहना है कि .—

"एक ओर तो यह कहा जाता है कि नागरिक के सवैधानिक, वैधानिक अथवा सामान्य कानूनी अधिकारो से सम्वद्ध प्रशासकीय कार्य की जाँच न्यायालय मे की जानी चाहिए। इसका अर्थ यह है कि न्यायालय किसी विशिष्ट प्रशासकीय कार्य से सम्वन्धित तथ्यो (Facts) की तथा विधि के क्रियान्वय (Application of law) की पूर्णरूप से समीक्षा करें तथा उसे पास करे।

दूसरी ओर, यह कहा जाता है कि न्यायालयो को प्रशासकीय निर्णयो के तथ्यो की समीक्षा नही करनी चाहिए बल्कि केवल इस बात पर विचार करना चाहिए कि स्वरूप (Form) तथा कार्यविधि (Procedure) की दृष्टि से प्रशासकीय कार्यवाही ठीक है या नही, और प्रशासकीय निर्णय करने का आधार युक्तियुक्त अथवा न्यायोचित है या नही। इस विषय मे काफी विभिन्नता पाई जाती है कि न्यायिक समीक्षा किस सीमा तक की जानी चाहिए। न्यायालयो द्वारा की जाने वाली तथ्य एव विधि की समीक्षा, प्रशासकीय निर्णय की विषय-सामग्री की, अपील करने की कार्यविधियो के लिए किये जाने वाले विधायी उपवन्धो (Legislative provisions) की तथा समीक्षा करने वाली सत्ता की प्रकृति की, भिन्नता के अनुसार ही भिन्न-भिन्न होती है। इस प्रकार, ऐसे नियमो का निर्धारण करना वडा कठिन है जोकि प्रशासकीय निर्णयो की न्यायिक समीक्षा के विस्तार की सभी कसौटियो पर खरे उतरे। प्रशासकीय अभिकरणो के निर्णयो पर न्यायिक नियन्त्रण की पूर्ण स्थिति पर विचार करने से प्रत्येक पृथक् अभिकरण के साथ पृथक् व्यवहार किये जाने की आवश्यकता स्पष्ट हो जायेगी।"

पूर्ण प्रशासकीय नियन्त्रण तथा पूर्ण न्यायिक नियन्त्रण की इन दोनो चरम सीमाओ के वीच के किसी मार्ग की खोज होनी चाहिए क्योकि पूर्ण प्रशासकीय नियन्त्रण का परिणाम तो नौकरशाही शासन के रूप मे सामने आ सकता है और पूर्ण न्यायिक नियन्त्रण मे सरकार के नियामक तथा सेवा-कार्यो के कुशल सचालन मे वाधा पड सकती है। "न्यायालयो मे एक वढती हुई प्रवृत्ति यह पाई

कि वे प्रशासकीय न्यायाधिकरणो द्वारा किये गये तथ्य-सम्बन्धी निर्णयो पर पुनर्विचार करने से इन्कार कर देते है, यद्यपि वे परिनियत कानून तथा न्यायालयो के निर्णयो मे वर्णित इस मौलिक सिद्धान्त पर दृढ रहते है कि सामान्य न्यायालय प्रशासकीय न्यायाधिकरणो के विधि (Law) के प्रश्नो से सम्बद्ध निर्णयो की समीक्षा अथवा पुनर्वालोकन करेंगे।"[1]

न्यायालयो को चाहिए कि वे प्रशासकीय अभिकरण (Agency) के तथ्य-सम्बन्धी निर्णयो को प्रथम दृष्टि मे ही अथवा निष्कर्ष रूप मे स्वीकार कर ले, और इस प्रकार अपने नियन्त्रण को क्षेत्राधिकार (Jurisdiction), कार्यविधि (Procedure) तथा शक्ति के दुरुपयोग के प्रश्नो के लिए सुरक्षित रखें। न्यायालयो को न्यायिक समीक्षा (Judicial review) की शक्ति तो प्राप्त होती ही है परन्तु उन्हे उसका प्रयोग "साधारण चातुर्य तथा आत्मसयम" के साथ करना चाहिए। सरकारी विवेक के दावे 'जनता की भलाई' की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। Frank J Goodnow ने ठीक ही कहा है कि "जिस चीज पर जोर दने की जरूरत है वह व्यक्ति के अन्तर्निहित स्वाभाविक अधिकार नही हैं, अपितु प्रशासकीय कार्य-कुशलता की महत्ता, और वस्तुत उसकी आवश्यकता (Necessity) है। क्योकि प्रशासकीय कार्य-कुशलता पर ही उस सामाजिक नियन्त्रण की प्रभावपूर्णता निर्भर है जिसके बिना कि वर्तमान परिस्थितियो मे ठोस विकास होना सम्भव है।" अन्त मे यह ही कहा जा सकता है कि लोक-सेवको का चयन (Selection) तथा प्रशिक्षण (Training) इस प्रकार किया जाना चाहिए कि न्यायिक पर्यवेक्षण तथा नियन्त्रण की आवश्यकता ही कम महत्वपूर्ण हो जाये।

---

1 Quoted by Graves, *op cit*, pp 690-91

३७

प्रशासकीय कानून तथा न्यायिक निर्णय
(Administrative Law and Adjudication)

प्रशासकीय कानून अथवा विधि
(Administrative Law)

प्रशासकीय अधिकारियो को अपनी शक्तियो के कार्यान्वय मे सदा ही विवेकाधीन सत्ता (Discretionary authority) प्राप्त होती है। प्रशासकीय विवेक (Administrative discretion) का अर्थ है कि अधिकारी को दो विकल्पो (Alternatives) मे से एक का चुनाव करना है। 'प्रशासकीय विवेक प्रशासकीय अधिकारी को कानून द्वारा प्रदान की गई वह शक्ति अथवा अधिकार है जिसके द्वारा वह अपने निजी निर्णय तथा सद्विवेक के अनुसार, क्रियाविधि (Course of action) का निश्चय करने मे, नियम (Rule) या विनियम (Regulation) (अर्ध-विधान) जारी करने मे, अथवा आदेश (अर्ध-न्यायिक निर्णय) जारी करने मे, विकल्पो के बीच चुनाव कर सके।' प्रशासकीय अधिकारी को प्रत्येक पग पर विवेक का उपयोग करना होता है, उदाहरण के लिए किसी पद के लिए प्रार्थियो मे से चुनाव करने मे तथा किसी कम्पनी की उपज को क्रय करने का निश्चय करने आदि मे विवेक का उपयोग करना होता है।

प्रशासकीय विवेक का उपयोग मनमाने ढग से नही किया जाना चाहिए। प्रशासकीय विवेक की सीमाए कानून द्वारा निर्धारित की जाती है जिसे कि प्रशासकीय कानून या विधि कहा जाता है। प्रशासकीय कानून प्रशासकीय अधिकारियो तथा अभिकरणो द्वारा उपयोग किये जाने वाले विवेक का निर्धारण करता है। प्रशासकीय कानून सार्वदेशिक रूप मे लोक-प्रशासन से सम्बन्धित होता है। प्रशासकीय कानून का सम्बन्ध प्रशासकीय अभिकरणो तथा अधिकारियो द्वारा प्रयोग किये जाने वाले विवेक (Discretion) के कानूनी पहलुओ से होता है। **फिफनर** के अनुसार, प्रशासकीय कानून मे निम्नलिखित चीजें सम्मिलित की जाती हैं

(१) प्रशासकीय अभिकरणो (Administrative agencies) की शक्तियां तथा कर्तव्यो की व्याख्या करने वाले सविधान, सविधियां (Statutes), चार्टर, अध्यादेश (Ordinances) तथा प्रस्ताव (Resolutions),

(२) प्रशासकीय अधिकारियो तथा अभिकरणो द्वारा बनाये जाने वाले नियम तथा विनियम,

(३) प्रशासकीय अधिकारियो तथा अभिकरणो द्वारा जारी किये जाने वाले आदेश व निर्णय ।

(४) न० १, २ व ३ से सम्बन्धित न्यायिक निर्णय (Judicial decisions) ।[1]

एक समिति द्वारा प्रशासकीय कानून के क्षेत्र (Scope) के सम्बन्ध मे सुझाव दिये गये थे । इसके क्षेत्र मे निम्नलिखित बातें सम्मिलित की जाती हैं—

(१) लोक-सेविवर्ग (Public Personnel) की समस्यायें ,

(२) राजकोषीय प्रशासन (Fiscal administration) की समस्याए ,

(३) प्रशासकीय विवेक के सम्बन्ध मे कानूनी स्थितियो के अध्ययन (Studies) ,

(४) प्रशासकीय न्यायालयो तथा प्रशासकीय कानून की समस्याये ,

(५) प्रशासकीय विनियमो का कानून ,

(६) प्रशासकीय जाँच की समस्यायें ,

(७) सरकारी ठेको (Contracts) के सम्बन्ध मे किये जाने वाले अध्ययन ,

(८) सरकार के विरुद्ध किये जाने वाले दावे (Claims) ,

(९) प्रशासकीय कार्यवाही के विरुद्ध किये जाने वाले उपचारो (Remedies) के सम्बन्ध मे किये गये अध्ययन ,

(१०) लोक-प्रशासन मे व्यावसायिक सघ (Professional association) की मान्यता तथा दर्जा ,

(११) बहुल-अध्यक्षीय प्रशासकीय निकायो (Plural-headed administrative bodies) की कार्यवाहियो का नियमन करने वाले कानूनी नियम ।[2]

नागरिको के दृष्टिकोण से प्रशासकीय विवेक का नियन्त्रण अत्यन्त महत्वपूर्ण है । प्रशासकीय विवेक व्यक्ति की स्वाधीनता तथा हितो को अत्यधिक प्रभावित कर सकता है । उस विवेक का नियमन करने के लिए प्रशासकीय कानून का होना अत्यन्त आवश्यक है । विकल्पो (Alternatives) का चुनाव करते समय, अधिकारियो को मनमाने ढग से कार्य नही करना चाहिए । स्वविवेक का अर्थ यह नही है कि सत्ता प्राप्त करके सरकारी अधिकारी द्रोही (Malicious), पक्षपाती अथवा स्वेच्छाचारी (Arbitrary) बन जायें । प्रशासकीय कानून प्रशासकीय विवेक की प्रकृति का निर्धारण करता है तथा उसका नियमन करता है । कानून यह देखता है कि प्रशासकीय विवेक का दुरुपयोग न किया जाये । प्रशासकीय कानून सर्वसामान्य की भलाई की दृष्टि से अधिकारियो की वैयक्तिक स्वाधीनता तथा सम्पत्ति पर प्रति-

---

1 Pfiffner, *op cit*, p 443

2 William A Robson, *Justice and Administrative Law*, pp 548-50, 554-57

वन्ध लगाता है। प्रशासकीय कानून का उद्देश्य सार्वजनिक कल्याण की वृद्धि करना है।[1]

प्रशासकीय न्यायिक निर्णय
(Administrative Adjudication)

प्रशासकीय न्यायिक निर्णय का अर्थ है प्रशासकीय विभाग अथवा अभिकरण के द्वारा न्यायिक (Judicial) अथवा अर्ध-न्यायिक (Quasi-judicial) प्रकृति के प्रश्नो का निर्धारण करना। न्यायालय के समान, प्रशासकीय अभिकरण ऐसे मामलो मे विभिन्न पक्षो की सुनाई करते हैं, प्रमाणो व साक्षियो की सूक्ष्म जाच करते हैं तथा निर्णय देते है, जिनका सम्बन्ध कानूनी अधिकारो तथा कर्त्तव्यो से होता है। प्रोफेसर ह्वाइट के अनुसार, " प्रशासकीय न्यायिक निर्णय का अर्थ है, प्रशासकीय अभिकरण के द्वारा कानून और तथ्य के आधार पर गैर-सरकारी पक्ष मे सम्बद्ध विवाद (Dispute) की जाँच-पडताल तथा निबटारा करना।"[2] न्यायिक निर्णय के कार्य मे लगे हुए प्रशासकीय अभिकरण सरकार के नियमित ब्यूरो तथा विभाग हो सकते हैं, अथवा महालेखा-परीक्षक (Auditor-General) के सदृश न्यायिकनिर्णय की कुछ शक्तियो से युक्त तथ्यान्वेपक निकाय (Fact finding bodies), या स्वतन्त्र नियामकीय आयोग (Independent Regulatory Commissions) अथवा विशेष किस्म के प्रशासकीय न्यायालय या न्यायाधिकरण हो सकते हैं। जव कभी भी किसी प्रशासकीय अभिकरण के द्वारा किसी विवाद अथवा मतभेद का निपटारा किया जाता है तो उसे प्रशासकीय न्यायिक निर्णय कहा जाता है। प्रशासकीय न्यायिक निर्णय निम्न प्रकार का हो सकता है —

(१) परामर्शदात्री प्रशासकीय न्यायिक निर्णय, जोकि विभागाध्यक्ष (Head of a department) अथवा अन्य प्राधिकारी मे निहित अन्तिम निर्णय की शक्ति से युक्त होता है।

(२) कभी-कभी प्रशासकीय न्यायिक निर्णय को किसी प्रशासकीय कार्य के सम्पादन की पूर्व शर्त वना दिया जाता है।

(३) प्रशासकीय न्यायिक निर्णय (Administrative adjudication) वहुधा किसी प्रशासकीय अधिकारी के नियमित कार्यों ही का एक अग वना दिया जाता है।

(४) प्रशासकीय न्यायिक निर्णय किसी विधायी प्रशासकीय प्रक्रिया (Legislative administrative process) के साथ सयुक्त हो सकता है।

---

1 Oliver P. Field, *Research in Administrative Law*, p 48

2 " Administrative adjudication means the investigation and settling of a dispute involving a private party on the basis of law and fact by an administrative agency " (L D. White, *op cit* pp 553

(५) प्रशासकीय निर्णयो (Administrative decisions) के विरुद्ध नियमित मुकदमे दायर किये जा सकते हैं।

(६) कभी प्रशासकीय न्यायिक निर्णय को अनुज्ञापत्र-दायक क्रियाओ (Licensing activities) के सम्बन्ध मे क्रियान्वित किया जाता है।

(७) प्रशासकीय न्यायिक निर्णय दावो के निपटारे (Settlement of Claims) के सम्बन्ध मे भी किया जा सकता है।[1]

प्रत्येक देश ने प्रशासकीय न्यायाधिकरणो को अर्ध-न्यायिक शक्तियां (Quasi-judicial powers) प्रदान की हैं भारत मे विभागाध्यक्षो अथवा विशिष्ट अधिकारियो को प्रशासकीय न्याय-निर्णय की यह शक्ति प्रदान की गई है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए कुछ प्रशासकीय न्यायाधिकरणो की स्थापना की गई है, जैसे कि आय-कर अपील न्यायाधिकरण (Income-tax Appellate Tribunals) राजस्व मण्डल (Boards of Revenue), श्रम तथा औद्योगिक न्यायालय (Labour and Industrial Courts), श्रम अपील न्यायाधिकरण (Labour Appellate Tribunals) आदि। ये प्रशासकीय न्यायाधिकरण शिकायतो व अपीलो की सुनवाई करते हैं, प्रमाणो व साक्षियो की सूक्ष्म जाच करते हैं, तथ्यो की खोज करते हैं तथा अपने निर्णयो की घोषणा करते है।

इस पद्धति के गुण व दोष
(Merits and Defects of the System)

प्रशासकीय अभिकरणो द्वारा किए जाने वाले प्रशासकीय न्याय-निर्णय अब स्थायी रूप धारण करने लगे हैं। अत इसके गुण व दोषो का अध्ययन करना अत्यन्त आवश्यक है जिससे कि इसके दोषो को दूर करके इस पद्धति को सुदृढ बनाया जा सके।

इसके लाभ निम्न प्रकार हैं —

(१) जब मामले नियमित न्यायालयो की बजाए प्रशासकीय न्यायाधिकरणो के समक्ष लाए जाते हैं तो उनका निर्णय केवल मामले की यथार्थ बातो (Merits of the case) के आधार पर ही नही किया जाता, अपितु सर्वसामान्य के कल्याण के लिए आवश्यक किसी सरकारी नीति को आगे बढाने के उद्देश्य से भी किया जाता है।

(२) इन न्यायाधिकरणो के द्वारा अपनाई जाने वाली कार्यविधि (Procedure), सामान्य न्यायालयो की कार्यविधि की अपेक्षा अधिक शीघ्रगामी होती है। सकटकाल के समय न्यायायिक निर्णय की प्रक्रिया के द्वारा शीघ्र कार्यवाही की जाती है।

---

1 Blachly and Oatman, *Administrative Legislation and Adjudication*, Chap 6

(३) प्रशासकीय न्यायाधिकरण प्रशासकीय अधिकारियो को विस्तृत विवेक (Discretion) तथा स्वाधीनता प्रदान करते हैं जो कि प्रशासकीय कार्य-कुशलता के लिए अत्यन्त आवश्यक होती है।

(४) नई समस्याओ से व्यवहार करते समय, इन न्यायाधिकरणो द्वारा अपनाई जाने वाली कार्यविधि, सामान्य न्यायालयो की कठोर रूप से औपचारिक कार्यविधि के मुकाबले अधिक लोचदार (Elastic) होती है।

(५) न्यायाधीश (Judges) अधिकतर रूढिवादी होते है। वे अधिकाशत प्रशासन की नई सामाजिक एव आर्थिक नीतियो के विरोधी होते हैं। ऐसे व्यक्ति जब प्रशासकीय मामलो के सम्बन्ध मे निर्णय देते हैं तो उन पर उनकी व्यक्तिनिष्ठ भावनाओ (Subjective feelings) का प्रभाव पडता है और वे सामाजिक प्रगति को रोकते हैं। प्रशासकीय अधिकारी चूंकि इन नई सामाजिक एव आर्थिक नीतियो का निर्माण करते है अत उन्हे उनसे सहानुभूति होती है और जब वे ऐसे विवादो के सम्बन्ध मे न्यायिक निर्णय देते हैं तब समाज के व्यापक हित उनके सामने रहते हैं।

प्रशासकीय न्यायिक निर्णय का मुख्य दोष यह है कि विभिन्न प्रशासकीय न्यायाधिकरणो द्वारा अपनाई जाने वाली कार्यविधि मे एकरूपता (Uniformity) नही पाई जाती। इस पद्धति का दूसरा दोष स्वतन्त्र पुनर्वालोकन अथवा स्वतन्त्र समीक्षा (Independent review) की व्यवस्था का अभाव है। पुनर्वालोकन करने वाले अधिकारियो मे निष्पक्षता की गारन्टी के लिए स्वतन्त्र पुनर्विलोकन की व्यवस्था अत्यन्त आवश्यक है। प्रशासकीय न्यायाधिकरणो के निर्णयो की न्यायिक समीक्षा की व्यवस्था के द्वारा नागरिको के अधिकार पूर्णतया सुरक्षित किये जा सकते है।

भारत मे प्रशासकीय न्यायाधिकरण
(Administrative Tribunals in India)

एक लोक कल्याणकारी राज्य मे प्रशासनिक अधिकारियो तथा साधारण नागरिक के पारस्परिक सम्बन्धो का प्रश्न बडी जटिलतायें पैदा करता है। व्यक्तिगत अधिकार तथा जनहित मे सघर्ष की घटनाऐ अक्सर घटित होती रहती हैं। प्रशासनिक निर्णयो से उत्पन्न होने वाले विवादो या शिकायतो की न्यायपूर्ण जाच करने तथा उन पर न्यायपूर्ण निर्णय देने के लिए आजकल विशेष अभिकरण या न्यायाधिकरण स्थापित किए जाते हैं।

भारत मे न्यायिकनिर्णय के एक स्थायी यन्त्र के रूप मे प्रशासकीय न्यायाधिकरणो की स्थापना की व्यवस्था हाल ही मे हुई है। भारत मे इस प्रकार की सस्थायें निम्नलिखित हैं (क) रेलवे रेट्स ट्रिब्यूनल (Railway Rates Tribunal), (ख) इन्कमटैक्स एपीलेट ट्रिब्यूनल, (ग) लेबर कोर्ट्स, इन्डस्ट्रियल ट्रिब्यूनल्स, नेशनल ट्रिब्यूनल्स तथा वेजबोर्ड्स, और (घ) इलेक्शन ट्रिब्यूनल्स।[1]

---

1 "Tribunals are the appendages of the Government departments They should be properly regarded as machinery provided by Parliament for adjudication rather than as part of the administration These special bodies are

इन्कमटैक्स एपीलेट ट्रिब्युनल आयकर के सहायक अपील आयुक्तो (A A C's), जो आयकर अधिकारियो (I T O's) के आदेशो के विरुद्ध अपीले सुनने वाले प्रथम अधिकारी होते है, के आदेशों के विरुद्ध अपीलें सुनता है। इस न्यायाधिकरण की क्रिया प्रणाली पूर्णतया न्यायिक (Judicial) होती है। सुनवाई खुली होती है, वकील पैरवी कर सकते हैं तथा असहमति के कारणो के वक्तव्य प्रस्तुत किये जा सकते हैं। सिविल क्रिया प्रणाली की सहिता (Code of Civil Procedure) के अन्तर्गत अन्य सिविल न्यायालयो की भाँति यह न्यायाधिकरण भी गवाहो को उपस्थित होने का आदेश दे सकता है, शपथ दिलवा कर कथनो की जाच कर सकता है तथा लेखा-जोखा विषयक प्रपत्र एव स्थानीय जाच के प्रपत्र मगवा सकता है। इसके निर्णय सरकार पर बाध्य होते हैं। आयकरदाता तथा सरकार दोनो ही इस न्यायाधिकरण के निर्णयो के विरुद्ध पहले उच्च न्यायालय मे तथा बाद मे सर्वोच्च न्यायालय मे अपील कर सकते है। किन्तु ऐसी अपील कानून के ही किसी प्रश्न (On a point of law) पर हो सकती है। विधि मन्त्रालय सघीय लोक सेवा आयोग के परामर्श से इस न्यायाधिकरण के सदस्यो व अध्यक्ष की नियुक्ति करता है। यह न्यायाधिकरण वित्त के केन्द्रीय बोर्ड (Central Board of Revenue) के नियन्त्रण से स्वतन्त्र है। न्यायाधिकरण न्यायपूर्ण तरीको से अपना कार्य सम्पन्न करता है। इस पर भी यदि कोई पक्ष इसके निर्णय से असन्तुष्ट है तो वह साधारण (उच्च तथा सर्वोच्च) न्यायालयो मे अपील कर सकता है।

एक साधारण व्यक्ति को यह शका रहती है कि वह सभवत इस प्रकार के निकायो से न्याय प्राप्त नही कर सकेगा। उसका साधारण न्यायालयो पर ज्यादा विश्वास होता है। उपरोक्त प्रकार के न्यायाधिकरण तभी सफल हो सकते हैं जब वे फ्रेंक्स समिति के शब्दो मे, "खुलापन, न्यायपूर्णता तथा निष्पक्षता" बनाये रखें। इसके अतिरिक्त इन न्यायाधिकरणो के निर्णयो के विरुद्ध साधारण न्यायालयो मे अपील करने का अधिकार जनता पर अच्छा, स्वस्थ प्रभाव डालता है। इन पर न्यायिक नियन्त्रण (Judicial Control) की व्यवस्था भारत के सविधान की धाराओ ३२, १३६, २२४ तथा २२७ मे की गई है। धारा ३२ मौलिक अधिकारो के अतिक्रमण की दशा मे नागरिको को सावधानिक उपचार प्राप्त करने के लिए सर्वोच्च न्यायालय का आश्रय लेने का अधिकार प्रदान करती है। सर्वोच्च न्यायालय तरह-तरह के आदेश पत्र जैसे उत्प्रेक्षण आदेश (Writ of Certiorari), प्रतिषेध आदेश (Writ of Prohibition), अधिकार पृच्छा आदेश (Writ of Quo Warranto)

---

meant to examine and determine specific issues or adjudicate in a judicial spirit on certain grievance against or disputes arising from administrative decisions They are intended to assure fair decisions on matters affecting the rights of citizens and sometimes function as appellate bodies when challenged" (Journal of the National Academy of Administration, Mussoorie Vol VI, No 1 1961, Syndicate Study Administrative Reorganisation in India, p 189,

इत्यादि जारी कर सकता है। धारा १३६ मे सर्वोच्च न्यायालय को अपील करने की विशेष आज्ञा प्रदान करने का अधिकार दिया गया है। अनेक वार सर्वोच्च न्यायालय ने न्यायाधिकरणो की रचना मे अवैधता का प्रश्न लेकर, प्राकृतिक न्याय के सिद्धातो की अवहेलना का प्रश्न लेकर, कानूनो की व्याख्या मे त्रुटि का प्रश्न लेकर तथा गवाही रहित, तथ्यहीन या काल्पनिक जाच के आधार पर जारी किये गए आदेशो का प्रश्न लेकर नागरिको के पक्ष मे हस्तक्षेप किया है।

यदि इस प्रकार के न्यायिक पुर्निरीक्षण की व्यवस्था हो तो प्रशासकीय न्याय निर्णय से भयभीत होने की आवश्यकता नही, वल्कि तव ऐसी न्याय प्रणाली सस्ती, शीघ्रता से उपलब्ध होने वाली, तकनीकी पेचीदगियो से रहित, द्रुतगति वाली तथा विशिष्ट ज्ञान के गुणो से परिपूर्ण होती है। लोक-कल्याणकारी राज्य मे प्रशासनिक न्याय निर्णय की व्यवस्था प्रशासनिक यन्त्र के एक महत्वपूर्ण अग के रूप मे दृढता से स्थापित हो चुकी है तथा साधारण न्याय व्यवस्था की अपेक्षा इसमे वहुत से अतिरिक्त लाभ भी हैं।

———

३८

लोक सम्पर्क

(Public Relations)

लोक प्रशासन समाज की आवश्यकताओ को पूरा करता है। यह ऐसे कार्य अपने हाथ मे लेता है जिनका उद्देश्य सार्वजनिक कल्याण मे वृद्धि करना होता है। लोक-प्रशासन का यह कर्तव्य है कि वह प्रशासन के कार्य-सचालन के सम्बन्ध मे जनता की राय ज्ञात करे। इसे केवल यह ही नही जानना चाहिए कि लोक प्रशासन के बारे मे क्या सोचते हैं, बल्कि उनको इस बात से भी परिचित रखना चाहिए कि प्रशासन उनके लिए क्या कर रहा है। प्रशासन का यह कर्तव्य है कि जनता के मन मे प्रशासन के बारे मे यदि कोई गलतफहमी हो तो वह उसे दूर करे। कोई भी प्रशासन तब तक सफल नही हो सकता जब तक कि जनमत (Public opinion) उसके विरोध मे है। अनेक बार ऐसा होता है कि जनता का विरोध प्रशासन की नीतियो की बारे मे उत्पन्न भ्रांतियों अथवा गलतफहमियो पर आधारित होता है। लोक प्रशासन को चाहिए कि वह जनता की गलतफहमियो को दूर करे और प्रशासन के कार्य मे उनका सहयोग (Co-operation) प्राप्त करे। भारत मे, सामान्य जनता पुलिस प्रशासन के विरुद्ध है। जनता मे व्यापक रूप से यह भावना पाई जाती है कि पुलिस भ्रष्टाचारी, बेईमान तथा समाज के शत्रुओ की मित्र है। कोई भी पुलिस के साथ सहयोग करना नही चाहता क्योकि लोगो के मन मे इस भावना ने व्यापक रूप से अपनी जडें जमा ली हैं कि पुलिस अधिकारी अच्छे नागरिको को परेशान करने मे विश्वास करते है। इस दृष्टिकोण का परिणाम यह हुआ है कि जनता पुलिस से घृणा करती है, उसे जनता का बहुत कम सहयोग प्राप्त होता है, और पुलिस कठिन मामलो की छानबीन व जाच-पडताल करने मे कम ही सफल होती है। यह निर्दोष लोगो को पकड लेती है और बनावटी मामले घड लेती है। जब तक नागरिको तथा उस पुलिस के बीच, जोकि नगरो मे कानून व व्यवस्था (Law and order) की सरक्षक समझी जाती है, सहयोग की भावना न हो, तब तक समाज मे कानून व व्यवस्था की स्थापना कैसे की जा सकती है ?

नागरिको तथा प्रशासको के बीच मेल-जोल व जानकारी बढाने के लिए लोक-सम्पर्कों (Public relations) का विकास किया जाना चाहिए। लोक-सम्पर्कों का उद्देश्य यह होता है कि प्रशासन के कार्य-क्रमो के बारे मे अनुकूल जनमत उत्पन्न किया जाए। उपलब्ध सेवाओ की प्रकृति तथा क्षेत्र के सम्बन्ध मे जनता को परिचित

रखना चाहिए। लोक-सम्पर्कों द्वारा सरकारी अधिकारियो की योग्यता, क्षमता, न्यायपूर्णता, निष्पक्षता तथा ईमानदारी के बारे मे जनता के मन मे विश्वास उत्पन्न किया जाना चाहिए। जनता को यह महसूस कराया जाना चाहिए कि सरकारी अधिकारी अपने कर्तव्यो के प्रति ईमानदार हैं और उनका दृष्टिकोण सहानुभूतिपूर्ण है, केवल ऐसा होने पर ही लोग प्रशासन के कार्य-क्रमो का समर्थन तथा उनसे सहयोग करेंगे। प्रशासन के कार्य-सचालन के लिए लोक-सम्पर्कों की स्थापना अत्यन्त आवश्यक है, क्योकि प्रशासन की प्रभावोत्पादकता मे तभी वृद्धि होती है जब कि उसके प्रति नागरिको का रुख मित्रतापूर्ण होता है। लोग प्रशासन का सम्मान करेंगे या उससे घृणा, यह बात लोक-सम्पर्कों पर ही निर्भर होती है। जनता का सहयोग तथा समर्थन, जोकि प्रभावशाली प्रशासन के लिए अत्यन्त आवश्यक होता है अच्छे लोक-सम्पर्कों के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है।

जे० एल० मैकेनी (J L Mc Cany) द्वारा 'लोक-सम्पर्क' शब्द की परिभाषा इस प्रकार की गई है "प्रशासन मे लोक-सम्पर्क, अधिकारी-वर्ग तथा नागरिको के बीच पाये जाने वाले प्रधान एव गौण सम्बन्धो तथा इन सम्बन्धो द्वारा स्थापित प्रभावो एव् दृष्टिकोणो की परस्पर-क्रियाओ का मिश्रण है।"[1]

"लोक-प्रशासन के क्षेत्र, जैसी कि हमारी धारणा है, का सम्बन्ध केवल सूचना अथवा जानकारी प्रदान करने मात्र से ही नही है बल्कि उससे कुछ अधिक से है। इस शब्द का प्रयोग यहा अत्यधिक शाब्दिक अर्थ मे किया गया है जिसमे कि जनता के साथ स्थापित होने वाले सभी सम्बन्ध आ जाते हैं। सेवा के कार्य, चाहे वे कुछ भी क्यो न हो, साथ ही उनके परिणाम तथा उन सेवाओ को सम्पन्न करने वाले व्यक्तियो के व्यवहार जनता के प्रति सन्तोषजनक होने चाहिए। सन्तोष अथवा तुष्टि (Satisfaction) एक भावनात्मक अथवा व्यक्तिनिष्ठ (Subjective) स्थिति है। इस बात का निश्चय करने के लिए, कि सन्तोष है या नही, उन व्यक्तियो के विचार जानने की आवश्यकता होती है जिनकी सेवा की जाती है। अत लोक-सम्पर्क की एक विकसित नीति, सुझावो तथा शिकायतो को व्यक्त करने की सुविधा प्रदान करके, जनता के रुख तथा मत की छानबीन करके, तथा उपभोक्ता की प्रति-क्रियाओ मे रुचि रखने वाली अधिक उन्नत वाणिज्यिक सस्थाओ द्वारा विकसित अन्य उपायो के द्वारा, सम्बन्धित जनता की मनस्थिति का पता लगाने का प्रयत्न करती है। लोक-अधिकारियो द्वारा लोक-सम्पर्क के इस पहलू की आमतौर पर उपेक्षा कर दी गई है।"[2]

लोक-सेवको को अपने कार्य तथा सगठन के बारे मे जनता की भावनाओ का पता लगाना होता है। उन्हे संगठन के उद्देश्यो तथा कार्यों के बारे मे लोगो को

1 *James L Mc Cany*, Government Publicity (1939)

2 *William E Mosher*, "Public Relations" Public Relation of Public Personnel Agencies Report of Committee on Public Relations of Public personnel Agencies, Civil Service Assembly of the United States and, Chanaa 1941, p 4

जानकारी प्रदान करनी होती है। उन्हे जनता के साथ मित्रतापूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने होते हैं जिससे कि लोग प्रशासन के कार्यक्रमो मे अपना सक्रिय सहयोग तथा समर्थन प्रदान कर सके। यही लोक सम्पर्क का कार्य है। Rex Harlow का कहना है कि लोक सम्पर्क "एक विज्ञान है जिसके द्वारा एक सगठन यथार्थ-रूप मे अपने सामाजिक उत्तरदायित्वो को पूरा करने का, तथा सफलता के लिए आवश्यक जन-स्वीकृति तथा अनुमोदन प्राप्त करने का प्रयत्न कर सकता है", और एक अन्य स्थान पर उन्होने कहा है कि "लोक सम्पर्क एक प्रक्रिया (Process) है जिसके द्वारा एक सगठन सभी सम्बन्धित पक्षो की आवश्यकताओ तथा इच्छाओ का विश्लेपण करता है जिससे कि वह उनके प्रति अधिक उत्तरदायित्व के साथ व्यवहार कर सके।"[1] लोक सम्पर्कों का उद्देश्य सगठन की प्रतिष्ठा मे वृद्धि करना तथा दोषारोपण और भ्रान्तियो अथवा गलतफहमियो से उसकी रक्षा करना है।

परन्तु लोक-सम्पर्क के कार्यक्रम का सम्बन्ध जनता के केवल किसी एक सामान्य-वर्ग से ही नही होना चाहिए। इसका सम्बन्ध तो जनता के अनेको वर्गों से होना चाहिये। समाज के विभिन्न वर्ग भिन्न-भिन्न प्रशासकीय कार्यवाहियो से प्रभावित होते हैं। व्यवसायी (Businessmen) वाणिज्य-विभाग (Department of Commerce) से सम्बन्धित होते हैं और उद्योगपति (Industrialists) उद्योग विभाग (Department of Industries) से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध होते हैं, इसी प्रकार और भी। लोक सम्पर्क के कार्यक्रम को जनता के अनेक वर्गों की आवश्यकताओ को पूरा करना होता है। लोक सम्पर्क कार्यक्रम (Public Relations Programme) को विधान-मण्डल (Legislature), प्रेस, श्रमिक सघो (Labour unions), व्यावसायिक वर्गों, दबाव डालने वाले वर्गों आदि से सम्बन्ध कायम रखना पडता है। निष्कर्ष के रूप मे यह कहा जा सकता है कि "लोक सम्पर्क प्रशासक के उस कार्य का एक भाग है जिसके अन्तर्गत वह इस बात का पता लगाता है कि लोग उसके सगठन तथा कार्यक्रम के बारे मे क्या सोचते है। लोक-सम्पर्क का उद्देश्य सगठन को अनिधिकृत आलोचनाओ से बचाकर उसकी प्रतिष्ठा तथा ख्याति मे वृद्धि करना और उसके जीवन की रक्षा करना है। इस प्रकार लोक सम्पर्क का प्रत्येक कार्यक्रम निश्चयात्मक (Positive) तथा प्रतिरक्षात्मक (Defensive) होता है। ऐसे कार्यक्रम की सफलता इस बात का ठीक-ठीक निर्णय करने पर निर्भर होती है कि सगठन के उद्देश्यो को पूरा करने के लिये तथा उसकी ख्याति (Goodwill) मे वृद्धि करने के लिए वर्तमान मे तथा भविष्य मे क्या करना चाहिए।"[2]

लोक सम्पर्क के द्वारा प्रत्येक सरकारी अभिकरण को विधान-मण्डल, प्रेस तथा जनता पर अपना ध्यान केन्द्रित करना होता है तथा उनके साथ सम्बन्ध कायम

---

1 Rex F Harlow, *Public Relations in War and Peace* (New York, 1942) pp X, 130

2 Dimock, *Dimock op cit* p 414

करने होते है। प्रत्येक अभिकरण (Agency) को विधान-मण्डल के साथ अच्छे लोक सम्बन्ध बनाये रखने चाहिये, और केवल ऐसा होने पर ही वह विधान-मण्डल से अपनी आवश्यकताओ को पूरा करने के लिये पर्याप्त विनियोजन (Appropriation) प्राप्त कर सकता है। लोक-सम्पर्कों के द्वारा अभिकरण की आवश्यकतायें प्रभावशाली ढग से विधान-मण्डल के समक्ष रखी जानी चाहिये। लोक सम्बन्धो के द्वारा विधान-मण्डल को अभिकरण की कार्य-प्रणाली से परिचित रखना चाहिये जिससे कि विधान-मण्डल अभिकरण के विरुद्ध कोई गलत शिकायतें न कर सके।

लोक-सम्पर्क के द्वारा दैनिक समाचार-पत्रो से उचित सम्बन्ध बनाये रखे जाने चाहियें। समाचार-पत्रो के द्वारा आसानी से जनता तक पहुचा जा सकता है। अभिकरण के कार्य-सचालन के बारे मे समाचार-पत्रो द्वारा की जाने वाली स्वस्थ समालोचनायें जनता की दृष्टि मे अभिकरण की नैतिक स्थिति ऊची उठाने के लिए अत्यन्त आवश्यक होती है। अत लोक सम्पर्क स्थापित करके यह देखना चाहिये कि समाचार-पत्र अथवा प्रेस अभिकरण के कार्य-सचालन के बारे मे अनुकूल समालोचनाये करें और यह कि प्रेस के द्वारा अभिकरण के विरुद्ध व्यर्थ की टीका-टिप्पणी न की जाये।

जैसा कि बतलाया जा चुका है, लोक सम्बन्धो के द्वारा अभिकरण के कार्यों के बारे मे जनता को जानकारी प्रदान करनी होती है। इसके द्वारा प्रशासन की सत्यनिष्ठा के बारे मे जनता के मन मे विश्वास उत्पन्न करना होना है। अभिकरणो को अपनी नीतियो एव कार्यक्रमो को क्रियान्वित करने मे जनता का सहयोग प्राप्त करना होता है। साथ ही इसके द्वारा अभिकरण के कार्य-सचालन के बारे मे लोगो के मन मे उत्पन्न गलतफहमियो को भी दूर करना होता है।

लोक सम्पर्क स्थापित करने के माध्यम
(Media of Public Relations)

लोक सम्पर्क स्थापित करने के माध्यम एक तो स्वय सरकारी कर्मचारी ही हैं, साथ ही अभिकरण (Agency) के ग्राहक, उपयुक्त हित-सम्बद्ध वर्ग, प्रचार (Publicity), विज्ञापन (Advertising) तथा कुछ अन्य विशिष्ट उपाय जैसे कि प्रेस, रेडियो, टेलीविजन, शिकायतें सुनने की व्यवस्था और प्रबन्धकर्त्ताओ द्वारा वार्षिक अथवा नियतकालीन रिपोर्टें प्रकाशित करना है।

लोक सम्पर्क स्थापित करने का सबसे महत्वपूर्ण माध्यम स्वय कर्मचारी है। सरकारी कर्मचारी विनीत, शिष्ट तथा अभिकरण के कार्य-सचालन की पद्धति से सुपरिचित होने चाहियें। प्राय ऐसा होता है कि टेलीफोन सचालको तथा स्वागत-कर्त्ताओ के पदो पर लडकियो को नियुक्त किया जाता है क्योकि यह समझा जाता है कि पुरुषो की अपेक्षा वे अधिक विनीत, शिष्ट तथा मिष्टभाषी होती है। प्रचार के सभी साधनो का उपयोग लोक-सम्बन्धो की स्थापना के लिये किया जाना

चाहिए। इस कार्य के लिए रेडियो, टेलीविजन व समाचारपत्रो आदि का भी समुचित उपयोग किया जाना चाहिए। सरकारी अभिकरणो को अपने ऐसे विशिष्ट लेख प्रकाशित करने चाहिए जिनमे कि उनके उद्देश्यो, लक्ष्यो व कार्यो आदि का वर्णन हो। अभिकरण के कार्यक्रमो की प्रकृति तथा उनके क्षेत्र (Scope) के सम्बन्ध मे जनता को जानकारी प्रदान करनी चाहिए और उनके लिए जनता का समर्थन प्राप्त करना चाहिए। लोक-प्रतिवेदन (Public reporting) के साधनो का भी समुचित विकास किया जाना चाहिए। ऐसे नियतकालीन, प्रगति विवरण (Periodic progress reports) प्रकाशित किये जाने चाहियें जिनमे कि इन अभिकरणो की सफलताओ एव प्राप्तियो का सक्षिप्त वर्णन हो। ये विवरण आकर्षक होने चाहियें जिससे कि लोग उन्हे पढें। लोक-सम्बन्धो की स्थापना के ये माध्यम इतने पूर्ण होने चाहिए जिससे कि इनके द्वारा लोक सम्पर्क के सभी उद्देश्य पूरे हो जाए। लोक सम्बन्धो की स्थापना करने वाले अधिकारी अपने कार्य के विशेषज्ञ होने चाहिये।

भारत मे लोक सम्पर्क के यन्त्र
(Public Relations Machinery in India)

भारत मे प्रचार का कार्य भारत सरकार के एक कार्यपालिका विभाग, अर्थात् सूचना तथा प्रसारण मन्त्रालय (Ministry of Information and Broadcasting) को सौंपा गया है। इस मन्त्रालय के कार्य निम्नलिखित हैं —

(१) सरकारी प्रचार, जिसमे कि प्रकाशन व विज्ञापन सम्मिलित हैं,

(२) प्रसारण (Broadcasting),

(३) प्रदर्शिनी के लिये फिल्मो की स्वीकृति प्रदान करना,

(४) समाचार चल-चित्रो (News reels) तथा वास्तविक जीवन के चल-चित्रो (Documentary films) का उत्पादन तथा वितरण,

(५) समाचार-पत्रो का पूजीकरण (Registration) तथा परिगणन,

यह मन्त्रालय निम्नलिखित कार्यालयो के द्वारा अपने प्रचार के कार्यो को सम्पन्न करता है —

(१) महानिर्देशक आकाशवाणी, नई दिल्ली का कार्यालय (Directorate General, All India Radio, New Delhi),

(२) प्रेस सूचना ब्यूरो (Press Information Bureau),

(३) विज्ञापन तथा द्राष्टिक प्रचार का निर्देशालय (Directorate of Advertising and Visual Publicity),

(४) प्रकाशन सम्भाग (Publications Division),

(५) फिल्म सम्भाग, बम्बई,

(६) फिल्मो के गुण-दोष विवेचको का केन्द्रीय मण्डल (Central Board of film Censors),

(७) अनुसधान तथा अभ्युद्देश सम्भाग (Research and Reference Division),

(८) भारतीय समाचार-पत्रो के रजिस्ट्रार (Registrar of Newspapers for India),

(९) पचवर्षीय योजना प्रचार कार्गालय।

अब हम इन कार्यालयो के कार्यों की क्रमश विवेचना करते हैं —

(१) **अखिल भारतीय आकाशवाणी**— वर्तमान युग मे आकाशवाणी प्रचार का सबसे अधिक महत्वपूर्ण साधन है। अ० भा० आकाशवाणी ग्रामीण जनता, स्कूल के बच्चो, औद्योगिक श्रमिको तथा सशस्त्र सेनाओ के लिए विशेष कार्यक्रमो की व्यवस्था करती है। इन कार्यक्रमो के द्वारा सरकार की योजनाओ के सम्बन्ध मे जनता को काफी जानकारी प्रदान की जाती है।

(२) **प्रेस सूचना ब्यूरो**— इसका मुख्य कार्य है, सरकारी क्रियाओ एव नीतियो के बारे मे प्रेस के द्वारा जनता को सूचनाए प्रदान करना और उन क्रियाओ एव नीतियो के सम्बन्ध मे प्रेस के द्वारा ही प्रतिध्वनित होने वाले जनमत की मुख्य प्रवृत्तियो से सरकार को परिचित रखना। यह पहले ही कहा जा चुका है कि लोक-सम्पर्क एक '*द्विमार्गीय यातायात*' (Two way traffic) है। इसके द्वारा, एक ओर तो, सरकार को जनता की भावनाओ (Feelings) का ज्ञान होना चाहिए और दूसरी ओर जनता को सरकार की समस्याओ के सम्बन्ध मे जानकारी प्राप्त होनी चाहिए। प्रेस सूचना ब्यूरो जनता को सरकार के सम्बन्ध मे जानकारी प्रदान करता है और सरकार को जनता के बारे मे।

(३) **विज्ञापन तथा द्राष्टिक प्रचार का निर्देशालय**— इसके कार्यो मे, इश्तहारी विज्ञापन देना, वर्गीकृत विज्ञापन देना, तथा विज्ञापको (Posters), बडे-बडे इश्तहारो, पुस्तिकाओ आदि का निर्माण तथा वितरण करना सम्मिलित है।

(४) **प्रकाशन सभाग**— यह सभाग लोकप्रिय पुस्तिकाओ, पुस्तको पत्रिकाओ व एल्बमो आदि के निर्माण, वितरण तथा विक्रय के लिए उत्तरदायी होता है, जिन के द्वारा कि सरकार की क्रियाओ, देश के दर्शनीय स्थानो, तथा विभिन्न विकास कार्यक्रमो की प्रगति के बारे मे जनता को जानकारी प्रदान की जाती है।

(५) **फिल्म सभाग, बम्बई**— भारतीय जनता मे प्रचार करने का एक महत्वपूर्ण साधन सिनेमा मे दिखाई जाने वाली फिल्मे हैं। जनता के लिए उनका भारी शैक्षणिक महत्व है। इनके द्वारा देश तथा विदेश मे घटित होने वाली घटनाओ से लोगों को परिचित रखा जाता है। चल-चित्रो अथवा फिल्मो के द्वारा ही सरकारी प्रचार भी किया जाता है। यह सभाग छोटे-छोटे वास्तविक जीवन के चल-चित्रो, व्यग चल-चित्रो, अनुदेशात्मक चल-चित्रो तथा समाचार चल-चित्रो का निर्माण करता है।

(६) **फिल्मो के गुणदोष विवेचको का केन्द्रीय मण्डल**— यह फिल्मो की जाच करता है और जनता मे प्रदर्शन के लिए उनको प्रमाणित करता है।

(७) **अनुसधान तथा अभ्युद्देश सभाग**— इसके मुख्य कार्य ये हैं (क) प्रचार के विषयो के सम्बन्ध मे मूलभूत अनुसधान कार्य करना, (ख) प्रचलित तथा अन्य विषयो पर आधारभूत टीकाओ तथा मार्ग-दर्शन की व्यवस्था करना, (ग) महत्वपूर्ण विषयो पर ज्ञान का सग्रह करना, और (घ) प्रचार करने वाली विभिन्न इकाइयो के प्रयोग के लिए प्रचार सामग्री तैयार करना।

(८) **भारतीय समाचार-पत्रो के रजिस्ट्रार का कार्यालय**— यह कार्यालय भारत मे समाचार-पत्रो के प्रकाशन, मूल्य तथा स्वामित्व आदि के बारे मे आँकडे रखता है।

(९) **पचवर्षीय योजना प्रचार**— जनता के सहयोग के बिना कोई भी योजना सफल नही हो सकती। योजनाओ के प्रचार का कार्य सूचना तथा प्रसारण मन्त्रालय के उत्तरदायित्व पर प्रचार के सभी साधनो के माध्यम से किया जाता है।

निष्कर्ष

(Conclusion) •

लोक सम्पर्क का जनता पर क्या प्रभाव पडता है ? यह प्रभाव अच्छा पडता है या बुरा ? Rex Harlow के मतानुसार, इस प्रश्न का उत्तर इस बात पर निर्भर करता है कि लोक सम्पर्क व्यवसाय के नीतिशास्त्र का किस सीमा तक पालन किया जाता है कोई भी सस्था अपनी वास्तविक प्रकृति (Nature) को छिपा नही सकती और जब लोक-सम्पर्क के कार्यक्रमो द्वारा छिपाने का उक्त कार्य सम्पन्न किया जाता है तो प्रबन्ध-व्यवस्था पर उनका उलटा ही असर पडता है। सगठन का हित इसी मे है कि "लोक-सम्पर्क की क्रियायें ईमानदारी से पूर्ण, सत्य, स्पष्ट, अधिकृत तथा उत्तरदायी होनी चाहिए , वे उचित तथा वास्तविक होनी चाहिए , और उनका सचालन लोक-हित की दृष्टि से ही किया जाना चाहिए।"[1]

इस प्रकार, लोकसम्पर्क के द्वारा प्रोपैगेण्डा नही किया जाना चाहिए। इसके द्वारा तो केवल प्रचार का कार्य ही किया जाना चाहिए। प्रशासन की सफलताओ को शासनारूढ विशिष्टदल (Party) की सफलताओ के रूप मे नही प्रस्तुत किया जाना चाहिए। Wright तथा Christian ने 'प्रबन्ध मे लोक सम्पर्क' (Public Relations in Management) नामक अपनी पुस्तक मे नीतिशास्त्र (Ethics) की इस प्रस्तावित सहिता (Code) का समर्थन किया परन्तु यह निष्कर्ष निकाला कि जब तक कि लोक सम्पर्क को एक व्यवसाय (Profession) के रूप मे पूर्ण मान्यता नही प्रदान की जाती, तब तक इस सम्बन्ध मे दृढ व स्थायी नियमो की घोषणा का प्रयत्न करना अबुद्धिमत्तापूर्ण है। अन्त मे यह कहा जा सकता है कि लोक सम्पर्क का उपयोग प्रोपैगेण्डे के लिए नही, बल्कि शिक्षा एव जानकारी के लिए किया जाना चाहिए। इसके द्वारा जन-सहयोग तथा जनता की उत्तरदायित्वता प्राप्त करने का

---

1. Rex Harlow, *Public Relations in War and Peace*, New York, 1942, p 73

प्रयत्न करना चाहिए। इसके द्वारा प्रशासन तथा इसकी नीतियो के बारे मे जनता की गलतफहमियो को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए। लोकतन्त्रीय देश मे, लोक-सम्पर्क का कार्य, एक ऐसे अधिक विकसित लोकतन्त्र के लिए पथ प्रशस्त करना है जिसमे कि जनमत को अच्छी प्रकार से परिचित रखा जाता है।

अनेक वर्ष पूर्व सिविल सेवा असेम्बली ने अपनी लोक-सम्पर्क समिति की एक महत्वपूर्ण रिपोर्ट प्रकाशित की, जिसमे कि जनता के दृष्टिकोण से विषय का विवेचन किया गया था। हम उसको यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं —

सरकारी लोक सम्पर्क मे सामान्य विचारणीय बाते
(General Considerations in Government Public Relations)

मूलभूत मान्यताएं
(Basic Assumptions)

जनता के केवल एक वर्ग से लोक सम्पर्क स्थापित करना उचित नही है, बल्कि यह तो व्यापक हितो का प्रतिनिधित्व करने वाले तथा अनेक मार्ग प्रस्तुत करने वाले जनता के अनेक व विविध वर्गों से स्थापित किया जाना चाहिए।

जनता के अनेक वर्गों के कारण, लोक सम्पर्क के कार्यक्रम को अनेक तत्वो मे विभाजित कर लेना चाहिए। इसके लिए कोई एक विवरण अथवा क्रिया पर्याप्त नही हो सकती, बल्कि इनके लिये तो एक ऐसी व्यापक पद्धति अपनाई जानी चाहिए जिसमे जनता का प्रत्येक वर्ग आ जाये।

यह कार्यक्रम अभिकरण के अभिलेखो (Records) से प्रभावित होने वाली जानकारी के प्रस्तुतीकरण पर आधारित होना चाहिये।

चूकि जनता के सामने काफी प्रतियोगिता विद्यमान रहती है, अत सरकारी अभिकरण को सूचनाओ के प्रस्तुतीकरण के ऐसे तरीको का प्रयोग करना चाहिए जोकि कम से कम उतने ही प्रभावशाली हो जितने कि उनके प्रतिद्वन्द्वियो के हो।

लोक-सम्पर्क के कार्यक्रम का सम्बन्ध केवल न्यूनाधिक रूप मे औपचारिक किस्म के प्रचार-मात्र से ही नही है बल्कि सरकारी अधिकारी-वर्ग तथा जनता के व्यक्तियो के बीच प्रत्येक प्रकार के वैयक्तिक सम्बन्धो से भी है। आश्चर्य तो यह है कि लोक सम्पर्क के इस पहलू पर कम ही ध्यान दिया गया है।

लोक सम्पर्क मे न केवल अभिकरण (Agency) से जनता की ओर को सूचना तथा सद्भावना का प्रवाह ही सम्मिलित है, अपितु इनका जनता से अभिकरण की ओर को प्रवाह भी सम्मिलित है। मार्ग दोनो दिशा को (Two ways-street) होना चाहिए।

बाधाए
(Obstacles)

आधुनिक सरकार की जटिलता। सामान्य जनता का सामान्यत उदासीन रूप।

लोक सम्बन्धो के मामलो मे अनेक सरकारी अधिकारियो द्वारा अपने उत्तर-दायित्वो के महत्व को मान्यता देने का अभाव।

प्रयोग की जाने वाली रीतियो की प्रभावपूर्णता को मापने के व्यक्तिनिरपेक्ष (Objective) तरीको का अभाव।

लोक सम्पर्क की क्रियाओ के लिए सीमित धन की उपलब्धता तथा व्यावसायिक एव तकनीकी सहायताओ की आवश्यकता।

निष्पक्षता बरतने मे कठिनाई।

जनता को यह समझाने मे कठिनाई, कि लोक सम्पर्क के ये प्रयत्न अनिवार्यत प्रोपैगेण्डा-मात्र ही नही हैं। फिर एक विश्वास यह किया जाता है कि अधिकाश सरकारी सूचनाए केवल प्रचार-मात्र ही होती है।

———

परिशिष्ट १

प्रशासनिक 'क्रियाप्रणाली' पर प्रधान मन्त्री द्वारा १० अगस्त, १९६१ को ससद के सम्मुख प्रस्तुत किया गया वक्तव्य ।

(१) प्रशासन मे सुधार के लिए निरन्तर विचार होता रहता है । हाल ही मे वर्तमान स्थिति पर पुर्नविचार किया गया था, विशेष कर तृतीय योजना के निर्धारण को दृष्टिगत रख कर ।

योजना का समयानुसार तथा प्रभावशाली क्रियान्वन आज की प्रशासनिक गतिविधियो का केन्द्र बिन्दु है ।

सरकारी प्रशासनिक यन्त्र पर पुर्नविचार करते समय द्वितीय योजना काल मे अनुभव की गई कठिनाइयो तथा तृतीय योजना की आवश्यकताओ का ध्यान रखा गया है ।

(२) प्रशासनिक सुधार के लिए आवश्यक कदमो पर निर्णय लेते समय निम्नलिखित मुख्य उद्देश्यो को दृष्टिगत रखा गया है

(i) व्यक्तियो और सगठनो का मूल्याकन केवल परिणामो (Results) के आधार पर होना चाहिए । इस उद्देश्य से उन्हे उनके कार्यो, दायित्वो, साधनो, उपक्रमो के समय क्रम, तथा उनकी आधारभूत मान्यताओ से स्पष्ट रूप से परिचित करा देना चाहिए । प्रत्येक कार्य मे समुचित चुनौती तथा प्रोत्साहन की व्यवस्था की जानी चाहिए और व्यक्तियो तथा सगठनो को अपेक्षित परिणामो को प्राप्त करने के लिए आवश्यक जिम्मेदारी, विश्वास तथा शक्तियाँ दी जानी चाहिए ।

(ii) वित्तीय नियन्त्रण की वर्तमान व्यवस्था का पुनर्गठन किया जाना चाहिए। वित्तीय प्रस्तावो मे निहित प्रत्येक मद का निरीक्षण केवल महत्वपूर्ण मामलो तक ही सीमित होना चाहिए । उदारता के साथ वित्तीय जिम्मेदारी प्रशासनिक विभागो तथा विभागो द्वारा क्रियान्वन अधिकारियो को प्रदान की जानी चाहिए । वित्त मन्त्रालय को उन पर नियन्त्रण बजट-पूर्व जाच (Pre-budget scrutiny) तथा समुचित प्रतिवेदन व्यवस्था (Reporting system), आवश्यक क्षेत्रो मे कार्य-अध्ययन तथा अकस्मात् निरीक्षणो के जरिए रखना चाहिए ।

(iii) विभागाध्यक्षो तथा नीतियो व कार्यक्रमो को क्रियान्वित करने वाले कार्यपालिका अधिकारियो की जिम्मेदारी काफी बढाई जायेगी । यह अधिक शक्तिया प्रदान करके तथा इस बात की आवश्यकता पर बल देकर किया जायेगा कि भ्रष्टाचार तथा लोक सम्पर्क की समस्याओ का पहले से अधिक नियोजित आधार पर सामना किया जाये । व्यक्तिगत शिकायतो की सुनवाई की वर्तमान व्यवस्था के अतिरिक्त

प्रनि वर्ष प्रत्येक विभागाध्यक्ष एक कार्यक्रम निर्धारित करेगा। इन कार्यक्रमो की जाच-परख मन्त्रालयो के सचिव करेंगे तथा वे ही इनकी क्रियान्वन-प्रगति की देख रेख करेंगे।

(iv) प्रशिक्षण तथा परामर्श का प्रयोग करके कार्यपालिका विकास के एक सतत् कार्यक्रम के जरिए लोक सेवाअधिकारियो की प्रबन्ध योग्यता मे वृद्धि की जायेगी। सरकार उन अधिकारियो को निकाल बाहर करने के लिए भी शक्तिया प्राप्त करेगी जिनके विरुद्ध अनैतिक आचरण का सन्देह हो तथा जो अपने कार्य मे प्रभावहीन हो।

(v) कार्य तथा क्रियाप्रणालियो के सरलीकरण का काम तीव्रता से जारी रखा जायेगा। ऐसा कार्य-अध्ययनो (Work studies) तथा प्रशासन के सब क्षेत्रो मे समुचित रूप से प्रशिक्षित अधिकारीगण नियुक्त करके किया जायेगा।

(vi) जनसम्पर्क के प्रश्न पर विशेष ध्यान दिया जायेगा (नम्रता, सहानुभूति इत्यादि गुणो को जागृत करने तथा विभिन्न कार्यों के लिए लोक-कार्यालयो मे आने वाले व्यक्तियो के प्रति अधिकारियो की उच्चतापूर्ण मनोवृत्ति बदलने के लिए कार्य-क्रमो की एक शृ खला प्रारम्भ की जायेगी। जनता मे सरकारी सूचनाए प्रसारित करने के लिए उत्तमतर प्रबन्ध किया जायेगा। जनता द्वारा सरकार को दिये गये प्रार्थना-पत्रो इत्यादि पर निर्णय लेने के लिए समय-सीमाए निर्धारित करने तथा जनता को उनसे अवगत कराने के विषय मे भी निश्चय किया गया है

(३) उपरोक्त व्यापक उद्देश्यो को मूर्त रूप देने के लिए कुछ ठोस प्रस्तावो की रचना की गई है। उनमे से कुछ मुख्य प्रस्ताव निम्नलिखित हैं —

(i) मन्त्रालयो को सगठन की किसी कठोर प्रणाली के अनुसार अपना सगठन करने की आवश्यकता नही। उन्हे सगठन की प्रणाली को कुछ व्यापक सीमाओ की परिधि मे परिवर्तित करने की स्वतन्त्रता होगी जिससे वे अपनी निजी परिस्थितियो के अनुकूल कार्य की गति तथा स्वरूप को ढाल सकें।

(ii) मन्त्रालयो को नीति, सामान्य देख-रेख तथा स्तरो (Standards) को लागू करने के कार्यों से ही सम्बन्ध रखना चाहिए। परिणाम स्वरूप क्रियान्वन से सम्बन्ध रखने वाले अभिकरणो को अधिक मजबूत बनाना चाहिए तथा उन्हे अधिक दायित्व सौपे जाने चाहिए।

(iii) वित्तीय प्रबन्ध की जिम्मेदारी पहले से अधिक मात्रा मे मन्त्रालयो तथा क्रियान्वन करने वाले अभिकरणो को प्रदान करनी चाहिए। अब एक स्वीकृत कार्य-क्रम जो वाणिज्य तथा उद्योग, सूचना व प्रसार, सामुदायिक विकास व सहकारिता मन्त्रालयो एव खाद्य विभाग मे शुरू किया जायेगा, मे निम्न विशेपताए सम्मिलित हैं
(अ) वित्त मन्त्रालय तथा प्रशासनिक मन्त्रालयो के मध्य बजट-पूर्व जाँच-परख (Pre-budget scrutiny) के एक तीव्र कार्यक्रम का निर्धारण जिससे उन विषयो, जिनमे

पिछले वर्ष की वास्तविक आय-व्यय की मदें महत्वपूर्ण नही समझी जाती, मे बजट-अनुमान पहले की अपेक्षा शीघ्र बन सके, (ब) मन्त्रालयो को वित्तीय शक्तियाँ प्रदान करने मे और अधिक उदारता का प्रयोग करना जिससे कुछ अत्यधिक महत्वपूर्ण विषयो को छोडकर प्रशासनिक मन्त्रालय बजटोत्तर काल मे वित्त मन्त्रालय से बार-बार पूछ-ताछ न करे, तथा (स) वित्त-मन्त्रालय द्वारा एक समुचित प्रतिवेदन व्यवस्था (Reporting system) तथा परीक्षण जाँचो (Test checks) द्वारा प्रमुख वित्तीय पहलुओ पर नियन्त्रण। वित्त-मन्त्रालय भी साथ-साथ प्रमुख उपक्रमो के अनुमानो की जाँच-परख तथा उन पर वित्तीय पुनर्विचार की अपनी व्यवस्था को मजबूत बनाने के लिए कदम उठा रहा है। इस कार्यक्रम की विशेषताओ पर विस्तार से विचार हो रहा है। यदि यह उपरोक्त चार मन्त्रालयो मे सफल हुआ तो इसे वित्तीय प्रबन्ध की एक सामान्य व्यवस्था के रूप मे सब मन्त्रालयो मे लागू किया जायेगा।

(iv) सेक्शन आफिसर तक के पदो तक के कर्मचारियो पर गृह मन्त्रालय का नियन्त्रण सम्बन्धित विभागो को हस्तातरित कर दिया जाना चाहिए। इसके परिणाम स्वरूप ये कर्मचारीगण अपने-अपने विभाग की आवश्यकताओ के अनुकूल प्रशिक्षण प्राप्त कर सकेंगे और कर्मचारीगण का प्रबन्ध भी उत्तमतर होगा।

(v) महत्वपूर्ण पदाधिकारी कम से कम पाँच वर्ष तक एक पद पर रहेगे। जिससे वे (उनसे) अपेक्षित (Expected) परिणाम दिखा सकें। यदि उनके एक ही पद पर जनहित के उद्देश्य से रखे जाने के कारण उनकी प्रगति का मार्ग अवरुद्ध हो तो इस हानि से उनकी समुचित सुरक्षा की जाये।

(vi) समिति, समूह तथा सम्मेलन इत्यादि का प्रयोग काफी कम किया जाना चाहिए। व्यक्तियो तथा अभिकरणो को पूर्ण दायित्व सौंपा जाये तथा इसके साथ ही आवश्यक समर्थन एव विश्वास भी दिया जाए।

(vii) उपक्रमो की तकनीकी तैयारी तथा उनके क्रियान्वन के समय-क्रम को सुदृढ किया जाना चाहिए। विशेषकर इसलिए कि तृतीय योजना मे शामिल किए गये बहुत से उपक्रमो के विषय मे अभी तक प्राप्त जानकारी असन्तोषजनक है। ठोस सुझाव यह है कि चतुर्थ योजना के लिए तैयारी तुरन्त की जानी चाहिए तथा अगले तीन वर्षो मे चतुर्थ योजना के उपक्रमो का अध्ययन पूर्ण करने के लिए एक व्यापक समय-तालिका बना लेनी चाहिए।

(viii) गृह मन्त्रालय वैज्ञानिक तथा तकनीकी पदो के लिए चुनाव की प्रक्रिया का अध्ययन करेगा। जिससे इस प्रकार के पदो पर नियुक्तियाँ पहले से अधिक गति के साथ की जा सके।

(ix) सगठन तथा विधि सम्भाग (O and M Division) तथा मन्त्रालयो के कार्य अध्ययन कोषक (Work study Cells) मन्त्रालयो के सचिवो द्वारा इगित उन क्रिया प्रणालियो का सरलीकरण एव सुधार करने के लिए निरन्तर अध्ययन करेंगे जिनके कारण निर्णय लेने तथा क्रियान्वन मे विलम्ब होता है।

(x) प्रगति की जिम्मेदारी देख-रेख करने वाली सामान्य शृंखला पर होगी किन्तु 'योजना उपक्रमो की समिति' (Committee on Plan Projects) तथा 'कार्यक्रम मूल्याकन सगठन' (Programme Evaluation Organization) जैसे अभिकरण प्रशासनिक अनुमधान एव मूल्यांकन का कार्य जारी रखेगे।

(xi) प्रत्येक मन्त्रालय मे एक छोटी समिति नियुक्त की जायेगी जिसका कार्य अकार्यकुशल तथा उन व्यक्तियो का पता लगाना होगा। जिनकी निष्ठा तथा ईमानदारी पर सन्देह हो और जिनपर नैतिक आधार पर अभियोग लगाया जा सकता हो। प्रभावहीन व्यक्तियो का सुधार तथा विकास करने के लिए प्रशिक्षण तथा परामर्श द्वारा प्रयास किया जायगा।

जो व्यक्ति सुधर नही सकते तथा जिनकी आयु ४५ से ५० वर्ष के वीच है उन्हे या तो ५० वर्ष की आयु पर या २५ वर्ष की सेवा पूर्ण कर लेने पर, जो भी पहले हो, सेवा निवृत्त कर दिया जाएगा। सेवा निवृत्ति के नियमो मे आवश्यक सशोधन न किये जायेंगे। निष्ठा- हीन व्यक्तियो की समस्या का निराकरण पृथक् रूप से किया जायेगा।

(xii) सभी सस्थापित सेवाओ के प्रारम्भिक प्रशिक्षण के पाठ्यक्रम मे कार्य-अध्ययन (Work study) को एक अनिवार्य विषय के रूप मे शामिल किया जायेगा। सेवारत कर्मचारियो (In-service personnel) के लिए कार्य-अध्ययन के कोर्स विस्तृत किए जायेंगे।

(xiii) सेवा के हर प्रकार के सदस्यो के लिए (Supervision) की विधियो सम्वन्वी प्रशिक्षण मे वृद्धि की जायेगी।

(xiv) सुव्यवस्थित रूप से वनाये गये स्तरो (standards) पर आधारित प्रोत्साहन की एक योजना का प्रयोग किया जायेगा। समुचित पारितोपिक देकर कुछ निश्चित उद्देश्यो जैसे उपक्रमो की लागत मे कमी करना उपक्रमो की विदेशी मुद्रा सम्बन्वी आवश्यकताओ मे कमी करना उपक्रमो के क्रियान्वन मे गतिशीलता लाना, इत्यादि की प्राप्ति के लिए प्रोत्साहन दिया जायेगा।

(xv) उपक्रमो का प्रवन्ध प्रशासनिक व्यवहार का एक नया तथा महत्वपूर्ण अग है। इमकी विशेषतायें हैं, निश्चित लक्ष्य तथा समयक्रम (Schedules), लागत व्यवस्था, क्रियान्वन मे पहल की आवश्यकता तथा तकनीकी कार्यकुशलता एव नवीनता पर वल। इनके लिए समुचित पूर्व नियोजन तथा सही-सही अनुमानन आवश्यक है। उपक्रमो की तकनीकी तैयारी तथा कार्य का समय-क्रम सुदृढ किया जायेगा। उप-क्रमो पर प्रतिवेदन प्रस्तुत करने की क्रिया को अविक सरल तथा उपयोगी वनाया जायेगा।

(xvi) व्यक्तिगत तथा सामूहिक उत्तरदायित्व के विकास के लिए प्रशिक्षण का प्रवन्ध किया जायेगा। निम्नलिखित व्यापक शीर्षको के अन्तर्गत कई प्रकार के कदम उठाये जा रहे हैं

(अ) पहल, कार्यक्रम निर्वारण की योग्यता तथा अधिकारियो के व्यक्तिगत उत्तरदायित्व का विकाम करने के लिए विधियो का निर्माण। (उदाहरणार्थ अधि-

कारियो को अपने कार्य को स्वय नियोजित करने तथा अपने कार्य का मूल्याकन करने हेतु मापदण्ड सम्बन्धी सुझाव देने के लिए प्रोत्साहित किया जाएगा)।

(ब) कार्य मे सुधार के लिए योग्यता की वृद्धि की जायेगी। (उदाहरणार्थ केस अध्ययनो एव निर्णय लेने की प्रक्रियाओ मे प्रशिक्षण द्वारा तथा विभिन्न प्रकार के उपक्रमो के लिए समय-वितरण मे सुधार हेतु गतिविधियो का चुनाव करके ऐसा किया जायेगा)।

(xvii) विभागाध्यक्षो को जनता के साथ सम्पर्क बनाये रखने तथा उनमे सुधार करने के लिए जिम्मेदार ठहराया जाएगा। वे कर्मचारियो की कठिनाइयो तथा मामलो की प्रकृति को ध्यान मे रखकर पत्रो, प्रार्थनापत्रो तथा पिटीशनो का निपटारा करने के लिए जहाँ तक व्यावहारिक होगा समय-सीमाये लगाएगे तथा इन समय-सीमाओ को जनता मे प्रसारित करेंगे। इस बात का प्रयास किया जायेगा कि इन समय-सीमाओ का पूर्णतया पालन किया जाए, केवल उन मामलो को छोडकर जिनकी जाच-परख सामान्य परिस्थितियो की अपेक्षा अधिक विस्तार से करनी आवश्यक हो।

(xviii) प्रत्येक विभागाध्यक्ष आने वाले वर्ष के लिए पहले से ही एक गोपनीय कार्यक्रम बनायेगा जिसमे प्रचलित भ्रष्टाचार के स्वरूप भ्रष्ट कर्मचारी वर्ग के स्वरूप तथा स्थिति के सुधार के लिए उठाये जाने वाले कदमो का सकेत होगा। यह कार्यक्रम सम्बन्धित मन्त्रालय के सचिव के पास भेजा जायेगा। साथ ही विशेष पुलिस प्रतिष्ठान (Special police Establishment) भी प्रत्येक मन्त्रालय सचिव को प्रत्येक विभागाध्यक्ष के कार्यक्षेत्र मे प्रचलित भ्रष्टाचार पर अपने विचार भेजेगा। सचिव दोनो प्रपत्रो का अध्ययन करने के पश्चात् अन्तिम कार्यक्रम अनुमोदित करेगा तथा उसे विभागाध्यक्ष के पास भेजेगा। वह कार्यक्रम के क्रियान्वन की प्रगति का भी समय-समय पर ध्यान रखेगा।

(xix) इसी प्रकार प्रत्येक विभागाध्यक्ष द्वारा प्रति वर्ष एक ऐसा कार्यक्रम निर्धारित किया जायेगा जिसमे जन सम्पर्क सम्बन्धी बडी-बडी समस्याओ का उल्लेख होगा तथा उनके निराकरण के लिए उठाये जाने वाले कदमो का सकेत दिया जाएगा। सम्बन्धित मन्त्रालय का सचिव इस कार्यक्रम के क्रियान्वन की प्रगति की भी समय-समय पर देखरेख करेगा।

(xx) जहाँ आवश्यक हो वहाँ सूचना प्रसारण के लिए उत्तरदायी अधिकारियो के आधीन विशेष शाखाए होनी चाहिए। इन्हे जनता की आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए विशेष प्रशिक्षण प्रदान किया जाना चाहिए।

(xxi) शिष्टता की अभिव्यक्ति के लिए राष्ट्रीय तरीके बनाये जाने चाहिएँ तथा प्रमुख राष्ट्रीय समारोहो का लाभ उठाकर लोक प्रशासन के सेवा पक्ष पर बल देना चाहिए।

(४) लोक उद्यमों का प्रशासन एक पेचीदा विषय है। उनके सचालन के सगठनात्मक तथा प्रबन्धात्मक पहलुओ को प्रभावित करने वाली कृष्णमेनन समिति की रिपोर्ट पर पृथक् रूप से विचार हो रहा है। उनके सचालन के उन विशेष प्रश्नो

पर जो उनके आन्तरिक सगठन तथा सम्बन्धो से सम्बन्धित थे, प्रशासन को सुदृढ करने की सामान्य समस्या के ही एक अग के रूप मे विचार हुआ। उपरोक्त निर्णय उन पर भी लागू किए जाएगे , प्रत्येक सगठन की निजी परिस्थितियो के अनुकूल उन निर्णयो का विस्तृत क्रियान्वन किया जाएगा । सरकारी उद्यमो के प्रशासनिक सचालनो को सुधारने के लिए निम्न अतिरिक्त निर्णय भी लिए गए है —

(अ) सम्बन्धित मन्त्रालयो मे सुदृढ तकनीकी नियोजन के लिए पृथक् कोषक (Cells) होने चाहिए जिनका कार्य उपक्रमो के व्यापक तकनीकी तथा आर्थिक पहलुओ एव क्रियान्वन के निश्चित चरणो का अध्ययन करना हो तथा सब सम्बद्ध कदमो मे समायोजन स्थापित करना हो ।

(ब) बडे-बडे राजकीय उद्यमो मे डिजाइन तथा शोध (Research) सम्बन्धी इकाइयाँ भी होनी चाहिए । नये उपक्रमो की तैयारी की जिम्मेदारी उन पर होनी चाहिए ।

(स) सब बडे उपक्रमो मे मूल्याकन, प्रगति पर पुनर्विचार लागतो मे कमी, उत्पादन मे वृद्धि तथा कार्य-स्तर की जाच करने के लिए इकाइयाँ होनी चाहिए । इन इकाइयो को प्रबन्ध के उच्चाधिकारियो के आधीन काम करना चाहिए किन्तु इन्हे देख-रेख की प्रत्यक्ष शृखला मे हस्तक्षेप न करके स्वतन्त्र रूप से कार्य करना चाहिए ।

(द) वित्त-मन्त्रालय को अपना 'उपक्रम समायोजन कोषक' (Project coordination cell) सुदृढ करना चाहिए जिससे वह (१) लागत के अनुमानो तथा उपक्रमो के व्यापक आर्थिक पहलुओ की गहराई से जाच कर सके, तथा (२) केन्द्रीय सरकार की औद्योगिक गतिविधि के वित्तीय तथा आर्थिक पहलुओ पर एक वार्षिक रिपोर्ट प्रस्तुत करने की जिम्मेदारी सम्पन्न कर सके ।

(ड) योजनाओ, विशेषकर औद्योगिक उपक्रमो सम्बन्धी योजनाओ के निर्माण के लिए प्राप्त अल्प समय को दृष्टिगत रखते हुए सम्बन्धित मन्त्रालयो को यह आदेश दिया जा रहा है कि वे चौथी योजना मे शामिल किए जाने वाले उपक्रमो का अध्ययन अगले तीन वर्षों मे पूरा कर लें ।

(५) योजना आयोग ने, केन्द्रीय मन्त्रालयो तथा राज्य सरकारो द्वारा प्रस्तुत सुझावो के अध्ययन के बाद परामर्श करने की प्रक्रियाओ को सरल करने का निश्चय किया है । लागत के अनुमानो मे १०% या एक करोड रुपये (जो भी कम हो) तक के परिवर्तनो के लिए अब योजना आयोग की स्वीकृति आवश्यक नही होगी । वार्षिक योजनाओ पर बातचीत अधिक महत्वपूर्ण उपक्रमो तथा कार्यक्रमो तक ही सीमित होगी । केन्द्रीय सहायता की प्रक्रियाओ मे पहले ही सरलीकरण किया जा चुका है । केन्द्र सचालित कार्यक्रमो की सख्या मे भारी कमी कर दी गई है तथा राज्यो की योजनाओ मे निहित कार्यक्रमो की उस सूची मे भी कमी कर दी गई है जिनके लिए कुछ निर्धारित नियमो के अनुसार सहायता देनी पडती है । सहायता के ये नियम भी

सरल किये जा रहे हैं। जहाँ तक राज्यो के कार्यक्रमो तथा उपक्रमो की प्रगति की रिपोर्टों का प्रश्न है यह प्रस्तावित किया गया है कि इन्हें केन्द्रीय सरकार के किसी एक ही अभिकरण को समर्पित किया जाए, अर्थात् सम्बन्धित मन्त्रालय को समर्पित किया जाए, किन्तु रिपोर्टों की रूप-रेखा योजना आयोग से सलाह मशविरा करके वनायी जाए। आवश्यक सशोधनो के साथ ये सिद्धान्त केन्द्रीय मन्त्रालयो द्वारा क्रियान्वित किये जाने वाले कार्यक्रमो पर भी लागू होगे।

(६) प्रशासनिक सुधार के लिये किये गये निर्णयो को यथासम्भव व्यापक तथा विस्तृत रूप देने का प्रयास करने के बावजूद उपरोक्त वक्तव्य कुछ सामान्य सिद्धान्तो का ही परिचय देता है। उन्हें मूर्त रूप देने के लिये बहुत सा कार्य करना बाकी है। यह एक अविरल कार्य है तथा स्पष्ट है कि एक समय मे इस प्रकार के किसी वक्तव्य मे उसका विस्तृत उल्लेख करना कठिन है। केन्द्र मे केबिनेट सचिव की अध्यक्षता मे प्रशासन पर एक समिति की स्थापना की गई है। इसका विशेष कार्य उपरोक्त निर्णयो के क्रियान्वन की प्रगति की जाच करना तथा मन्त्रि-परिषद को समय-समय पर इस सम्बन्ध मे रिपोर्ट प्रस्तुत करना होगा।

उपरोक्त निर्णयो की सूचना राज्य सरकारो को भी दी जा रही है। उनके क्रियान्वन के विषय मे केन्द्रीय सरकार राज्य सरकारो को प्रसन्नता से आवश्यक सहायता देगी।

परिशिष्ट २

वे विषय जिनके लिये वित्त मन्त्रालय उत्तरदायी है—

अ—आर्थिक मामलो का विभाग
(Department of Economic Affairs)

(१) विनिमय नियन्त्रण
(Exchange Control)

(१) विदेशी मुद्रा नियन्त्रण कानून का प्रशासन,

(२) विदेशी मुद्रा सम्बन्धी बजट निर्माण,

(३) विदेशी मुद्रा के स्रोतो का नियन्त्रण जिसमे विदेशी मुद्रा की दृष्टि से आयात के प्रस्तावो की जाच करना भी सम्मिलित है,

(४) विदेशी विनियोजन (Investment),

(५) सोने तथा चादी का आयात-निर्यात।

(२) आर्थिक विकास के लिए विदेशी सहायता
(Foregin Aid for Economic Development)

(६) निम्नलिखित शीर्षको के अन्तगत भारत को प्राप्त होने वाली तकनीकी तथा आर्थिक सहायता —

(अ) कोलम्बो योजना की तकनीकी सहयोग की स्कीम,

(ब) अमरीकी चार सूत्री कार्यक्रम (Point Four Programme),

(स) सयुक्त-राष्ट्र सघीय तकनीकी सहायता प्रशासन (U N Technical Assistance Administration) का कार्यक्रम,

(द) विभिन्न विदेशी सरकारो द्वारा प्रदान की जाने वाली अस्थायी तकनीकी सहायता।

(७) भारत द्वारा दी जाने वाली सहायता —

(अ) कोलम्बो योजना के अन्तर्गत सहयोगिक आर्थिक विकास के लिए नैपाल सकार को दी जाने वाली आर्थिक तथा तकनीकी सहायता,

(ब) कोलम्बो योजना के सदस्य राष्ट्रो को इस योजना की तकनीकी सहायता स्कीम के अन्तर्गत दी जाने वाली सहायता,

(८) कोलम्बो योजना की परिषद तथा योजना की परामर्शदात्री समिति की बैठको से सम्बन्धित सब मामले एव निम्नलिखित विषय—

(१) अमरीकी तकनीकी सहायता मिशन,

(२) अमरीकी विकास ऋण कोष,

(३) कोलम्बो योजना,

(४) नार्वे द्वारा सहायता,

(५) फोर्ड प्रतिष्ठान तथा रॉकफेलर प्रतिष्ठान,

(६) विदेशो से प्राप्त होने वाले ऋण तथा अनुदान,

(७) अन्तर्राष्ट्रीय बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, आयात-निर्यात बैंक इत्यादि से प्राप्त होने वाले ऋण तथा अनुदान।

(३) आन्तरिक वित्त
(Internal Finance)

(९) मुद्रा तथा बैंकिग, अर्थात् निम्न विषयो से सम्बद्ध प्रश्न—

(अ) ऐस्से (Assay) डिपार्टमेण्ट, सिलवर रिफाइनरी प्रोजेक्टो सहित सिक्युरिटी प्रेस तथा टकसालें,

(ब) सिक्के,

(स) नोट जारी करना,

(द) रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया, स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया तथा दूसरे बैंक,

(ड) स्वदेशी बैंकिग,

(ढ) पूंजी ऋण पर देना तथा पूंजी देने वाले व्यक्ति,

(क) निगोशिऐबिल इन्स्ट्रुमेन्ट्स ऐक्ट, १८८१ के अन्तर्गत छुट्टियाँ.

(ख) भारत-पाक बैंकिग समझौते का प्रशासन,

(ग) भारत के चैरिटेबिल एन्डोमेण्ट्स के कोषाध्यक्ष के कार्य।

(४) आर्थिक परामर्श
(Economic Advice)

(१०) सयुक्त राष्ट्र सघ तथा इससे सम्बद्ध सगठनो (जैसे आर्थिक तथा सामाजिक परिषद् एशिया तथा सुदूरपूर्व के लिए आर्थिक आयोग इत्यादि) मे भारत के भाग लेने से सम्वन्धित आर्थिक तथा वित्तीय प्रश्नो पर आवश्यक सामग्री प्रस्तुत करना तथा सक्षिप्त निर्देश तैयार करना।

(५) बजट (Budget) :

(११) साधन तथा स्रोत (Ways and means)।

(१२) रेलवे बजट को छोडकर अनुपूरक तथा अधिक अनुदानो सहित केन्द्रीय बजट का निर्माण करना।

(१३) केन्द्रीय तथा राज्य सरकारो द्वारा ऋण लिए जाने तथा बाजारी ऋणो की व्यवस्था करना।

(१४) लोक ऋण अधिनियम का प्रशासन।

(१५) केन्द्रीय ट्रेजरी नियमो का प्रशासन।

(१६) व्याज की दरो, ऋण की दरो, प्रोडक्टिविटी टेस्ट रेट्स इत्यादि को निर्धारित करना।

(१७) लेखाकन तथा लेखा-परीक्षण की प्रक्रियाग्रो का निर्धारण एव वर्गीकरण।

(१८) राज्यो के पुनर्गठन, देश-विभाजन तथा सघीय वित्तीय एकीकरण से सम्वद्ध वित्तीय मामले।

(१९) भारत की ग्राकस्मिकता निधि सम्वन्धी नियमो का प्रशासन।

(२०) केन्द्रीय वित्त स्थिति को सुदृढ करने के लिए ट्रेजरी विल्स इत्यादि।

(२१) स्टर्लिंग पेन्शनें— इगलैंड सरकार को उत्तरदायित्व का हस्तातरण तथा वास्तविक दायित्व का निश्चित ग्रनुमान।

(२२) केन्द्रीय तथा राज्यो के वजटो की सामान्य रूप रेखा।

(२३) वित्त ग्रायोग।

(२४) छोटी वचतें जिसमे राष्ट्रीय वचत सगठन का प्रशासन भी सम्मिलित है।

(६) नियोजन (Planning) :

(२५) राज्यो को सविधान मे निहित कानूनी ग्रनुदान तथा उनके विकास, कार्यक्रमो ग्रौर ग्रन्य स्वीकृत उद्देश्यो के लिए ग्रस्थायी वित्तीय ग्रनुदान एव ऋण।

(२६) स्थानीय करारोपण।

(२७) राज्यो का वित्त।

(२८) सार्वजनिक सस्थाग्रो जैसे निगमो, नगरपालिकाग्रो इत्यादि द्वारा ऋण लेना।

(२९) केपिटल वजट।

(३०) महत्वपूर्ण ग्रार्थिक प्रश्नो से सम्वद्ध सहकारिता।

(३१) नियोजन तथा विकास।

(३२) करारोपण जाँच ग्रायोग।

(३३) भारतीय लोक प्रशासन सस्थान को ग्रनुदान।

(३४) सामान्य तथा राज्यो के व्यवस्थापन (Legislation) के ग्रार्थिक एव वित्तीय पहलुग्रो की जाँच।

(७) विक्री कर (Sales Tax)

(३५) १९५६ के भारतीय विक्री कर ग्रधिनियम का प्रशासन।

(३६) १९५६ के विक्री-कर कानून विषयक वैलीडेशन ऐक्ट का प्रशासन।

(३७) विक्री-कर के स्थान पर ग्रतिरिक्त ग्रावकारी कर का रोपण।

(३८) राज्यो के विक्री-कर से सम्वन्धित वे मामले जो राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए ग्रायें।

(८) बीमा (Insurance)

(३९) सामान्य बीमा से सम्बन्धित नीति, १९३८ के बीमा अधिनियम का प्रशासन, बीमा कम्पनियो के सघ का सग्रह (Pool), जीवन बीमा निगम की अधीनस्थ कम्पनियाँ।

(४०) जीवन बीमा से सम्बन्धित नीति, जीवन बीमा व्यवसाय का राष्ट्रीयकरण, १९५६ के जीवन बीमा अधिनियम का प्रशासन, जीवन बीमा न्यायाधिकरण।

(९) निगम (Corporations)

(४१) औद्योगिक वित्त निगम (I F C) अधिनियम, १९४८ तथा पुनर्वास वित्त प्रशासन (R F A) अधिनियम, १९४८ का प्रशासन।

(४२) राज्य वित्तीय निगम अधिनियम, १९५१ के अन्तर्गत राज्यो के वित्तीय निगम।

(४३) भारत औद्योगिक ऋण तथा विनियोजन निगम लिमिटेड (I C I C I Ltd)।

(४४) रिफाइनेन्स कारपोरेशन फॉर इन्डस्ट्री।

(१०) स्टाक एक्सचेंज
(Stock Exchanges)

(४५) सिक्युरिटीज कान्ट्रेक्ट्स (रेगुलेशन) ऐक्ट, १९५६ का प्रशासन।

(४६) स्टॉक एक्सचेंजो का नियन्त्रण।

(११) केपिटल ईशूज
(Capital Issues)

(४७) ज्वाइन्ट स्टॉक कम्पनियो द्वारा जारी किये जाने वाली पूंजी पर नियन्त्रण।

(१२) विभिन्न
(Miscellaneous)

(४८) बीमा विभाग का प्रशासन।

ब—व्यय विभाग
(Department of Expenditure)

(१) वित्तीय नियम तथा प्रतिबन्ध और वित्तीय शक्तियो का प्रत्यायोजन (Delegation)

(२) भारत सरकार के उन सब मन्त्रालयो व कार्यालयो से सम्बन्धित वित्तीय अनुमति जिन्हे किन्ही नियमो के आधीन वित्तीय शक्तियो का प्रत्यायोजन नही किया गया है या जिन्हें कोई सामान्य अथवा विशेष आदेश नही प्राप्त है।

(३) मितव्ययता लाने के लिए सरकारी मस्थानो की भर्ती पर पुनर्विचार ।

(४) लागत-लेखा (Cost accounts) सम्वन्धी प्रश्नो पर मन्त्रालयो तथा मरकारी उद्यमो को परामर्श देना तथा उनकी ओर से लागत की जाँच का कार्य सम्भालना ।

(५) दिल्ली प्रशासन से सम्वन्धित व्यय के प्रस्ताव ।

(६) भारतीय लेखा परीक्षण विभाग (I A A D)

(७) प्रतिरक्षा लेखा विभाग (D A D)

(८) हीराकुड बाँध योजना के मुख्य लेखा-अधिकारी वित्तीय परामर्श दाता के कार्यालय ।

(९) केन्द्रीय वेतन आयोग ।

स—राजस्व विभाग
(Department of Revenue)

(१) केन्द्रीय राजस्व मण्डल (C B R) से सम्बद्ध सभी मामले ।

(२) एक्स्चेंज विलो, चैंको, प्रामिसरी नोटो, लेडिंग विलो, क्रेडिट-पत्रो, वीमा पालिसियो, शेयरो के हस्तांतरण, डिवेन्चरो, प्रोक्सियो तथा रसीदो पर स्टैम्प ड्यूटी ।

(३) हर तरह के स्टैम्पो की सप्लाई तथा वितरण ।

(४) आयकर (इन्कमटैक्स एपीलेट ट्रिब्यूनल से सम्वन्धित मामलो को छोड कर), कारपोरेशन कर, केपिटल गेन्स कर, एक्सेंज प्रोफिट्स कर, विजनेस प्रोफिट्स कर, एस्टेट ड्यूटी, सम्पत्ति कर, व्यय कर, उपहार कर, तथा रेलवे यात्री भाडा अधिनियम से सम्वन्धित सभी मामले ।

(५) केन्द्र-शासित प्रदेशो मे आवकारी का प्रशासन जैसे निम्नलिखित विषयो से सम्वन्धित प्रश्न —

(अ) मानव उपभोग के लिए मादक पेय पदार्थ,

(व) अफीम, भारतीय गाँजा तथा अन्य मादक वस्तुए ।

(६) वे औषधिया या सौन्दर्य प्रसाधन जिनमे ५ (व) मे उल्लिखित वस्तुओ का प्रयोग किया गया हो ।

(७) अफीम की कृषि, निर्माण तथा विक्री ।

(८) खतरनाक मादक वस्तुओ से सम्वन्धित अन्तर्राष्ट्रीय समझौते तथा उनका क्रियान्वन ।

(९) सीमाकर नीति (जैसे भारतीय सीमाकर अधिनियम, सीमाकर वोर्ड, सीमाकर मूल्याकन, उद्योगो की सीमाकर की दृष्टि से सुरक्षा, भूमि सीमा कर नीति, अन्तर्राष्ट्रीय-मन्डलीय प्राथमिकताओ इत्यादि) को छोडकर सीमा कर से सम्वन्धित सभी मामले जिनमे, समुद्र, वायु या स्थल मार्गों द्वारा माल के आयात-निर्यात पर लगे कर, राजस्व के हित मे आयात-निर्यात पर लगे प्रतिवन्ध तथा निषेध और सीमा करो की व्याख्या करना भी सम्मिलित है ।

(१०) केन्द्रीय आबकारी से सम्बन्धित सभी मामले ।

(११) नमक पर भारत-विभाजन से पूर्व दी गई ड्यूटी की वापसी के लिए सभी दावे ।

(१२) अधीनस्थ सगठन —

(अ) आयकर विभाग ,

(ब) सीमाकर (Customs) विभाग,

(स) केन्द्रीय आबकारी विभाग, तथा

(द) मादक वस्तुओं का विभाग

(१८ जनवरी १९६१ के भारत के असाधारण गजट मे प्रकाशित ।)

परिशिष्ट ३

केन्द्रीय अनुमान समिति की वित्तीय वर्ष मे परिवर्तन पर प्रस्तुत की गई २०वी रिपोर्ट के कुछ अ श ।

(अ) वित्तीय वर्ष

(३६) वर्तमान वित्तीय वर्ष १ अप्रैल को प्रारम्भ होता है और ३१ मार्च को समाप्त होता है । १८६६–६७ तक वित्तीय वर्ष १ मई को प्रारम्भ होकर ३० अप्रैल को समाप्त होता था । १८६७ मे इसमे ब्रिटिश परम्परा के अनुकूल परिवर्तन कर दिया गया ।

(३७) विभिन्न देशो के विभिन्न वित्तीय वर्ष हैं । ब्रिटेन, न्यूजीलैन्ड, जर्मनी, ग्रीस तथा जापान मे वित्तीय वर्ष १ अप्रैल को शुरू होता है और कनाडा मे इसका प्रारम्भ १ जनवरी से होता है । एक बार मे इसको बदलकर १ जुलाई कर दिया गया था किन्तु बाद मे फिर १ अप्रैल कर दिया गया । फ्रास, आस्ट्रिया, बेल्जियम, चैकोस्लोवाकिया, तथा पोलेण्ड मे यह प्रथम जनवरी को शुरू होता है और आस्ट्रेलिया, हगरी, इटली, स्वीडेन तथा अमेरिका मे इसका प्रारम्भ प्रथम जुलाई को होता है । बर्मा मे इसका प्रारम्भ १ अक्तूबर को होता है ।

(३८) भारतीय दशाओ को देखते हुए वित्तीय वर्ष की अनुकूलता पर कई बार विचार हुआ है । इसका निश्चय अवश्य ही प्रशासनिक सुविधा, राजकीय आय के विषय मे अधिक अच्छी पूर्व-घोषणा तथा बजट के कुशल क्रियान्वन जैसे तत्वो के आधार पर होगा । इस सम्बन्ध मे भारतीय वित्त तथा मुद्रा पर १९१५ मे प्रस्तुत की गई चैम्बरलेन कमीशन की रिपोर्ट से उद्धृत करना उपयुक्त होगा —

"भारतीय राजस्व, चाहे वे रेलवेज, सीमा करो या मालगुजारी के अन्तर्गत हो, असाधारण रूप से प्रत्येक वर्ष की कृषि सम्बन्धी गतिविधियो की सफलता असफलता के अनुसार गिरता-चढता रहता है और कृषि सम्बन्धी गतिविधिया स्थायी रूप से दक्षिणी-पश्चिमी मानसून पर निर्भर हैं जो जून से अक्तूबर तक भारतीय उप-महाद्वीप तथा बर्मा पर छायी रहती हैं । वर्तमान व्यवस्था के अन्तर्गत भारतीय बजट मार्च के अन्त से पूर्व प्रस्तुत किया जाता है तथा वित्त मन्त्री को उस सर्वाधिक महत्व पूर्ण तत्व के अज्ञान मे ही अपने अनुमान तैयार करने पडते हैं जिस पर पूरे वर्ष के परिणाम निर्भर होगे ।"

आयोग ने यह मत व्यक्त किया कि, "वित्तीय दृष्टि से बजट के लिए वर्तमान तिथि अत्यधिक असुविधाजनक है ।"

आयोग ने सुझाव दिया कि वित्तीय वर्ष के प्रारम्भ की तिथि बदल कर १ अप्रैल से १ जून या एक नवम्बर कर दी जानी चाहिए। क्योकि प्रान्तीय सरकारें इस परिवर्तन के पक्ष मे नही थी इसलिए भारत सरकार ने १९२३ मे इसे न बदलने का निश्चय किया। उसके बाद बताया जाता है कि सरकार व राष्ट्रीय विकास परिषद दोनो ने इस प्रश्न पर विचार किया है और यह निष्कर्ष निकाला है कि वित्तीय वर्ष को परिवर्तित करने की कोई आवश्यकता नही है।

(३९) राजस्व की पूर्व-घोषणा तथा इसके मानसून से सम्बन्ध का प्रश्न केन्द्रीय सरकार को शायद महत्वपूर्ण न लगे क्योकि उसकी मुख्य आमदनी आयकर आबकारी करो तथा सीमा करो से होती है। किन्तु जहां तक राज्य सरकारो का सम्बन्ध है मालगुजारी का प्रश्न महत्वपूर्ण भिन्नता पैदा कर सकता है। इस प्रश्न के अतिरिक्त दो अन्य तत्व भी हैं जिन पर विचार करना आवश्यक है। प्रतिवर्ष बजट अप्रैल के अन्त तक पास किया जाता है और इसके बाद मन्त्रालयो तथा विभागाध्यक्षो को उनके बजट अनुदानो के विषय मे सूचित कर दिया जाता है। वे फिर अपने अधीनस्थ अधिकारियो को इसी प्रकार की सूचनाए भेजते हैं। सामान्यत कार्यक्रमो के क्रियान्वन से प्रत्यक्ष रूप से सम्बद्ध अधिकारियो के पास ऐसी सूचनाओ के पहुचने मे एक मास का समय लग जाता है। तब तक देश के अधिकाश भागो मे मानसून वर्षा प्रारम्भ हो जाती है और बहुत से क्षेत्रो मे विकास कार्य रुक जाता है। वास्तविक कार्य मानसून के बाद ही अर्थात् अक्तूबर के आस-पास शुरू होता है और वित्तीय वर्ष के अन्त तक चलता रहता है। किन्तु अभी दो-तीन महीने समाप्त हुए नही होते कि विभागो को निर्देश दे दिए जाते हैं कि वे आगामी फरवरी के अन्त मे ससद मे प्रस्तुत होने वाले बजट मे शामिल करने के लिए अपने-अपने कार्यक्रम तथा मागे भेजे इसका परिणाम यह होता है कि बहुत से कार्य न केवल उस वर्ष मे अधूरे रह जाते हैं जिसमे उन्हे प्रारम्भ किया जाता है बल्कि वित्तीय वर्ष के अन्तिम दिनो मे या तो अनावश्यक रूप मे भारी खर्चा कर दिया जाता है या फिर विभिन्न कार्यों के लिए निश्चित धन-राशि का एक बडा भाग बिना खर्च किए हुए पडा रह जाता है इसके साथ-साथ वर्तमान व्यवस्था के परिणाम स्वरूप राष्ट्रीय जन शक्ति (Man power) का भी अपव्यय होता है। यह व्यवस्था राष्ट्र के प्रतिनिधियो जिनकी सख्या अकेले केन्द्र ही मे ७५० के लगभग है— को ६ मास तक के लिए व्यर्थ बाध कर रख देती है, पहले तीन महीनो मे तो वे बजट पर वाद-विवाद मे हिस्सा लेने तथा उस पर मतदान करने के लिए एक स्थान पर जमे रहते हैं तथा अगले तीन महीनो मे वे मानसून वर्षा के कारण बधे रहते हैं क्योकि इस मौसम मे उनके लिए अपने-अपने चुनाव क्षेत्रो का दौरा करके वहां के लोगो से भेंट करना कठिन हो जाता है।

(४०) यह महसूस किया जाता है कि उपरोक्त कठिनाइयो को वित्तीय वर्ष के प्रारम्भ की तिथि बदल कर १ अक्तूबर करके दूर किया जा सकता है। जून से अगस्त तक के मानसून महीनो का प्रयोग तब बजट की तैयारी के पूर्व अन्तिम तथा अन्तिम चरणो

के लिए किया जा सकता है। क्योकि बजट की तैयारी शुरू होने तक सब कार्यों का महत्वपूर्ण भाग समाप्त हो चुकेगा इसलिए नये अनुमानो का निर्माण पहले से अधिक सुनिश्चित व ठीक तरीके से किया जा सकेगा। बजट ससद मे अगस्त के उत्तरार्द्ध मे प्रस्तुत किया जाकर सितम्बर के अन्त मे पास किया जा सकता है। यह भी व्यवस्था की जा सकती है कि इस काल मे वित्त, करारोपण तथा अनुदान सम्बन्धी विधेयको के अलावा किसी अन्य विधेयक पर विचार न हो जब तक कि वह अत्यधिक महत्वपूर्ण ही न हो। क्योकि प्रस्तावित व्यवस्था मे कार्यों का काल (Works season) एक ही वित्तीय वर्ष मे पडेगा (वर्तमान व्यवस्था मे वह आधा-आधा दो वर्षो मे पडता है) इसलिए कार्यों का क्रियान्वन तथा उनके लिए प्रदत्त धनराशि को खर्च करना अधिक सरल हो सकेगा। राज्य सरकारो के साथ परामर्श करके उपरोक्त सुझाव को शीघ्र मूर्त रूप देना वाछनीय है।

परिशिष्ट ४

कार्य-स्तर विषयक बजट निर्माण
(Performance Budgeting)

कुछ व्यक्तियो ने यह सुझाव दिया है कि ससद के पास कोई ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए जिससे वह बजट मे विभिन्न विभागो को प्रदान किये गये खर्चे का मूल्यांकन कर सके। यह मूल्यांकन यह जानने के उद्देश्य से किया जाना चाहिए कि जिन ध्येयो के लिये धन स्वीकृत किया गया था उनकी प्राप्ति हुई है कि नही। बजट निर्माण को कार्यस्तर से सम्बन्धित करने का यह सुझाव रेलवे विभाग तथा अन्य सरकारी व्यावसायिक एव औद्योगिक उद्यमो के लिए दिया गया है। बजट मे निहित अनुदानो को उन उद्देश्यो के लिए खर्च किया जाता है जिन्हे ससद ने स्वीकृत कर दिया हो। यह देखने के लिए खर्चे का पुनर्निरीक्षण किया जाना जरूरी है कि क्या निर्धारित समय-सीमा, न्यूनतम लागत तथा खर्चे मे अधिकतम मितव्ययता बरत कर परिणाम प्राप्त किये गये हैं कि नही।

वित्त के उपमन्त्री को इस विचार की उपयोगिता के विषय मे सन्देह था और उन्होने बजट निर्माण को कार्यस्तर से सम्बन्धित करने के सुझाव को सफलतापूर्वक अपनाने के लिए पाच शर्तें आवश्यक बताईं। उन्होने कहा

(१) इसके लिए दीर्घावधि के आधार पर सरकारी गतिविधियो के विषय मे पहले से कार्यक्रम निर्धारित करने की व्यवस्था करना आवश्यक होगा,

(२) कार्यक्रम के "अन्तिम परिणाम" मापन योग्य होने चाहिए,

(३) बजट मे दिखायी गई धनराशि मे सम्पूर्ण लागत शामिल होनी चाहिए,

(४) कार्यक्रम को बजट निर्माण करने वाले अभिकरण द्वारा क्रियान्वित किया जाना चाहिए, तथा

(५) बजट मे निर्धारित धनराशि इतनी होनी चाहिए कि निश्चित तथा परिवर्तनशील लागत के अनुसार उसका प्रयोग किया जा सके।

उन्होने अन्त मे कहा "ये शर्तें एक सीमा तक ही पूरी की जा सकती हैं और इसमे सन्देह है कि यह सब मूल्याकन बजट प्रपत्रो की तैयारी के साथ सम्बद्ध किया जा सकता है।"

फिर भी इस प्रकार के बजट निर्माण के किसी न किसी रूप का प्रयोग किया जा सकता है। योजना उपक्रमो की समिति (Committee on Plan Projects) योजना उपक्रमो मे मितव्ययता तथा कार्यकुशलता लाने के लिए अध्ययन सचालित कर सकती हैं।

BIBLIOGRAPHY

PART I

BROUGHT UP-TO-DATE . JULY, 1963

1	Appleby, Paul H.	Morality and Administration in Democratic Government Louisiana State University Press, Baton Rouge —1952
2	Appleby, Paul H	Policy and Administration, University of Albama Press, 1949
3.	Appleby, Paul H	Big Democracy, New York, 1945
4.	Arnold, Thurman W	The Symbols of Government, New Haven Yale University Press, 1935
5	Bruce, Maurice	The Coming of the Welfare State—Bastford 1961
6	Cushman , Robert E	The Independent Regulatory Commission, Oxford University Press, 1941
7	Dey, S K	Panchayati Raj, Asia Publishing House Bombay, 1961
8	Dimock Marshall E	A Philosophy of Administration, Towards Creative Growth, New York, 1958
9	Dimock, Marshall Edward & Dimock, Gladys Ogden	Public Administration, Rinchart and Company, Inc New York, Second Printing, 1954
10	Dorey, H O	.Handbook of Organisation & Methods Teachniques Brussels, 1951
11.	Dunsire, A	The Making of an Admin stration, Manchester University Press, 1956
12	Fayol, Henri	Industrial and General Administration, 1916
13	Fesler, James W	Area and Administration, University Ala , 1949

14. Findaly, Ranald M — The Art of Administration, Edinburgh, 1952

15 Finer, S E — A Primer of Public Administration, Frederic Muller Ltd , London, 1950

16 Follett, Mary Parker — "How must Business Management Develop in order to posses the Essentials of a profession ?" In Henry C Metcalf and L Urwick (Eds) Dynamic Administratian, New York, 1241

17 Gaus, Jonn M , Leonard D White and Marshall E Dimock — The Frontiers of Public Administration, Chicago, 1936

18 Gladden, E N — An Introduction to Public Administration, London, 1949.

19 Gladden, E N — The Essentials of Public Administration, London, 1953

20 Graves, W Brooke — Public Administration in a Democratic Society, Boston, 1950

21 Gullick, Luther — "Notes on the Theory of Organisation," Paper on the Science of Administration, Institute of Public Administration, 1937

22 Krishnamachari, V T — Report on Indian and State Administration Government of India Planning Commission, New Delhi, 1962

23 Lepawsky, Albert — Administration, The Art and Science of Organisation and Management, New York, 1955

24 Maddick, Henry — Democration Decentralisation And Development, Asia Publishing House, Bombay, 1963

25 March, James G and Simon, Herbert A — Organisations, U S A , 1958

26 Martin, Roscoe C (Ed) — New Horizons in Public Administration, University of Albama, 1946

27 Marx, Fritz Morstein (Ed) — Elements of Public Administration, New York 1946.

28	Meyer, Paul	Administrative Organisation, A Comparative Study of the Organisation of Public Administration, London, 1927
29	Millett, John D	The Process and Organisation of Government Planning, Columbia University Press, 1947
30	Moonay, James D	The Principles of Organisation, Harper Brothers, New York
31	Mooney, James D. & Reiley, Alen C	Ownward Industry, 1931
32	Nigro, Felik (Ed)	Public Administration, Readings and Documents, New York, 1957.
33	Pfiffner, John M	Public Administration, New York, 1946
34	Prakash, Om	The Theory and Working of State Corporations, George Allen & Union Ltd , London
35	Romani, John H	Changing Dimensions in Public Administration, Digest of the 1962, ASPA National Conference in Detroit, University of Michigan, 1962
36	Saloman, Leon I , (Ed)	The Indpendent Federal Regulatory Agencies, The H W Wilson Co , New York, 1959
37	Simon, Herbert A Donald S Smithburg, & Victor A Thompson	Public Administration, New York, 1950
38	Taylor, Frederik	The Principles of Scientific Management, New York, 1947
39	Tead, Ordway	Administration · Its Purposes and Performance, Harper & Brothers, New York, 1959.
40	Tead, Ordway	Democratic Administration, Association Bess 1945
41	Truman, David B	Administrative Decentralisation, University of Chicago Press, 1940
42	United Nations	A Handbook of Public Administration, Current Concepts and Practice

14. Findaly, Ranald M — The Art of Administration, Edinburgh, 1952.

15 Finer, S E. — ..A Primer of Public Administration, Frederic Muller Ltd , London, 1950

16 Follett, Mary Parker — "How must Business Management Develop in order to posses the Essentials of a profession ?" In Henry C Metcalf and L Urwick (Eds) Dynamic Administratian, New York, 1241

17 Gaus, Jonn M , Leonard D White and Marshall E Dimock — The Frontiers of Public Administration, Chicago, 1936

18 Gladden, E N — An Introduction to Public Administration, London, 1949

19 Gladden, E N — The Essentials of Public Administration, London, 1953

20 Graves, W Brooke — Public Administration in a Democratic Society, Boston, 1950

21 Gullick, Luther — "Notes on the Theory of Organisation," Paper on the Science of Administration, Institute of Public Administration, 1937

22 Krishnamachari, V T — Report on Indian and State Administration Government of India Planning Commission, New Delhi, 1962

23 Lepawsky, Albert — Administration, The Art and Science of Organisation and Management, New York, 1955

24 Maddick, Henry — Democration Decentralisation And Development, Asia Publishing House, Bombay, 1963

25 March, James G and Simon, Herbert A — Organisations, U S A , 1958

26 Martin, Roscoe C (Ed) — New Horizons in Public Administration, University of Albama, 1946

27 Marx, Fritz Morstein (Ed) — .Elements of Public Administration, New York 1946

67	Dunnill, Frank	The Civil Service, Some Human Aspects, George Allen & Unwin, Landon, 1956
68	Fdwin, B Flipps.	Principles of Personnel Management, New York, 1961.
69	Finer, Herman	The British Civil Service, George Allen & Unwin Ltd for the Fabian Society, 1937.
70.	Finer, Human.	Theory and Practice of Modern Governments, London, 1949
71	Gladden, E N	Civil Service or Bureaucracy ? (London, Staples, 1956)
72	Gladden, E. N	The Civil Service Its Problems and Future, London, 1941
73	Greaves, H. R G	The Civil Service in the Changing State, George G Harrap & Co Ltd , 1947
74	Hewart Lord	New Despotism (1929)
75	Hyneman, C S	Bureaucracy in a Democracy, New York, 1950
76	Kingsley, J Donald	Representative Bureaucracy (Yellow-springs, Ohio Antiock Press, 1944)
77	Meckenzie, W J M,, and Grove, J W	Central Administration in Britain (Longmans, 1957)
78	Merton, Robert K (Ed)	Reader in Bureaucracy, (Glencoe, 911 The Free Press, 1952)
79	Mills, C Wright	White Collar, New York, 1956
80	Parkinston A Northcote	Parkinson's Law, Boston, 1957
81	Roboson, W. A (Ed)	The British Civil Service, London, 1937
82	Robson, W A (Ed)	The Civil Service in Britain and France, The Hogarth Press, London, 1956
83		Report of the Machinery of Government, (Haldan Committee) 1918
84.		Report of the Royal (Tomlin) Commission on the Civil Service, 1957.

85	Santoy, Peter du	The Civil Service, London, 1957
86.	Siffin, William J	Towards the Comparative study of Public Administration, Indian University Press, Bloomington, Indiana, 1959
87	Sisson, C H	The Spirit of British Administration and some European Comparisns, Faber & Faber Ltd , London, 1959
88	Strauss, E	The Ruling Servants Bureaucracy in Russia, France and Britain, George Allen & Unwin Ltd , London, 1961
87	Tead, Ordway	The Art of Leadership, (McGraw Hill Book Company, Inc 1935)
90.	Truman, D B	Governmetal Process Political Interests and Public Opinion, New York, 1957
91	Walker, Harvey	Training Public Employees in Great Britain, 1935
92	Weber, Max.	Essays in Socilogy (Ed Gerth and Mils) 1947, Chapter on Bureauracy
93.	Wheare, K C	The Machinery of Government, Oxford, 1945
94.	White, Leonard D	The Civil Service in the Modern State A Collection of Documents, The University of Chicago Press Chicaga, Illonois, U S A , 1930
55	Whyte, William H	'The Organisation Man,' New York 1956

From the Civil Service Assembly of the United States and Canada

96	Digest of the State Civil Service Laws, (Chicago, 1943)
97	Public Relations in Public Personnel Agencies, Chicago, 1947
98	Readings in Public Personnel Administration Chicago, 1942
99	Training in the Public Service Chicago 1941

PART III

FINANCIAL ADMINISTRATION

100	Aggarwal, P. P	The System of Grants-in-Aid in India Bombay, Asia, 1959
101	Anstey, Verma	The Economic Development of India, (Fourth Ed) London, Longmans,
102.	Banerjea, P	...Provincial Finance in India. London, Macmillan, 1929
103	Bator Francis M	. The Question of Government Spending, New York, Harper, 1960
104	Beer, Samuel.	...Treasury Control, Oxford, 1956
105	Bridges, Sir Edward	Treasury Control, London, Stamp Memorial Lecture, 1950
106.	Brittain, H	*The British Budgetary System*, London, Allen & Unwin, 1959
107.	Buck, A E.	Financing Canadian Government Chicago, Public Administration Service, 1959
108	Burkhead, Jesse	Government Budgeting, New York, John Wiley & Sons, 1956
109	Chanda, A.K	Aspects of Audit Control, Bombay, Asia, 1959.
110	Chubb, Basil	The Control of Public Adminisration Financial Committees of the House of Commons, Oxford, 1952
111	Durell, A. J V.	The Principles and Practice of the System of Control over Parliamentary Grants, London, Gieves Publishing House, 1917
112.	Dutt, R. C	The Economic History of India, 2 Vols Delhi Publications Division, 1960

113. Einzig Paul — The Control of the Purse, London, Secker of warburg, 1959

114 Gadgil, D. R. — Indian Planning and the Planning Commission, Ahmedabad, Harold Laski Institute of Political Science, 1959

115. Galloway, Frederick B. — Reform of the Federal Budget, Washington, Library of the Congress, 1953

116 Ghosh, O K. — The Indian Financial System Allahabad, 1958

117 Gopal, M H — Financial Policy of the Indian Union, 1947-53 Delhi, Delhi School of Economics, 1954

118 Gorwala, A. D. — Report on Efficient Conduct of State Enterprises

119. Gwyer, Maurice & Appadorai, A (Eds) — Speeches and Documents on the Indian Constitution 1921-47, New Delhi, Oxford, 1957

120 Gyan Chand — Financial System of India London, 1926

121 Hanson, A H — Public Enterprise and Economic Development, London, 1958

122 Heath, T L — The Treasury, 1927

123. Hicks, Mrs U. K. — Public Finance Survey—India, New York, U N O 1951

124 Indian Institute of Public Administration — The Organisation of Government of India, Bombay, Asia, 1957
Budgeting in India, New Delhi, 1960

125 Jennings, Sir Ivar. — Parliament (Seconded)

126 Jennings, Sir Ivar — Cabinet Government (Second Ed) Cambridge, 1960

127 Johnson, Eldred A — Acounting Systems in Modern Business, 1956 MC GRAW-Hill

128 Jones, W H Morris — Parliament in India, London, Longmans, 1957

129 Karve, G. D . Public Administration in Democracy.

130	Kaul, M N	Conversations on Parliamentary Practice and Procedure, New Delhi, 1951
131	Krishnamachari, T T	Speeches, New Delhi, Govt of India, 1958.
132	May, Sir Thamas Erskine	A Treatise on the Law, Privileges, Proceedings and usage of Parliament, 13th Edition, London
133	Millet, John D	Government and Public Administration, The Quest for Responsible Performance, Chapters 8-9 pp 141-192, Mc Graw Hill Book Company, 1959
134	Millikhan, Max (Ed.)	Income Stabilisation for Developing Democracy, New Haven, Yale University Press, 1953
135	Misra, B R	Economic Aspects of the Indian Constitution, Orient Longman, 1952
136	Montgomery, Robert H	Auditing Theory and Practice, 6th Ed 1940
137.	More, S S	Practice and Procedure of Indian Parliament, Bombay, Thacker & Co , 1960
138	Morrison, Herbert	Government and Parliament, A Survey from the Inside, London, 1954
139	Mukherjee, A R	Parliamentary Procedure in India, Oxford University Press
140.	Musgrave, R A	The Theory of Public Finance, New York, 1959
141	Myrdal Gunnar	Indian Economic Planning, New Delhi, Congress Party in Parliament, 1958
142	Oakey, Francis	Principles of Government Accounting and Reporting, 1921
143	Pigou, A C	A Study in Public Finance, London, Macmilian, 1956
144	Pinto, P J J	Financial Administration in India, Bombay, New Book Depot 1943.
145.	Reserve Bank of India	Banking and Monetary Statistics of India, Bombay, 1954

146	Royal Institute of Public Administration	Budgeting in Public Authorities, London, Allen & Unwin, 1959
147	Santhanam, K	Union and State Relations in India, Bombay, Asia, 1960
148	Shah, K. T	Government of India, Bombay Tripathin & Co , 1924
149	Shakdher, S L	Budgetery Systems in various countries, New Delhi, 1957.
150	Smithies, Arthur	The Budgetary Process in U S A New York, McGraw Hill, 1955
151	Sovami, N U	Post-War Planning in India, Bombay, 1948
152	Strachey, Sir John	India—Its Administration and Progress, London, Macmillan, 1903
153	Thomas P J	The Growth of Federal Finance in India, Oxford, 1639.
154	U N O	Budgetary Structure And Classification of Accounts, 1957
155	U N O	Government Accounting and Budgetary Execution 1951
156.	U N O	National and International Measures for Full Employment, 1951.
157	U. N O	Standard & Technique of Public Administration, 197
158	Wattal, P K	The System of Financial Administration in British India, Bombay, 1924
159		ABC of Government Finances, New Delhi, Government of India, 1943
160		Parliamentary Financial Control in India, Simla, Minerva Book Depot, 1953
161	Willoughby, Willoughby and Lindsay	Financial Administration of Great Britain, Washington, The Brookings Institution, 1929
162	Whearl, K C	Government by Committee, Oxford, 1955
163	Young, Sir, Hilton	The National System of Finance (Second Ed) London, John Murray, 1924

REPORTS

164. Report of the Advisory Planning Board, New Delhi, Government of India, 1946
165, Report of N. Gopalaswami Aiyyangar, New Delhi, Government of India, 1949
166 Annual Reports of the Ministry of Finance, New Delhi, Ministry of Finance
167 Annual Reports of the O & M Directorate, New Delhi, Cabinet Sectt
168 Audit Reports (Central), New Delhi, Office of the Comptroller & Auditor General
169 Report of the Advisory Planning Board, New Delhi, Government of India, 1949
170 Report of the Economy Committee of the Congress Party in Parliament,,New Delhi, A, I, C C, 1959
171 Reports of the Estimates Committee, New Delhi, Lok Sabha
172 Reports of the Estimates Committee, London, H M S O
173 Report on the Form of Accounts (Crick Committee) London, H M S O, 1950
174 Reports of the Hoover Commission .
 (i) Report to the Congress on Budgeting and Accounting, Washington, 1949
 (ii) Report to the Congress on Budgeting and Accounting, Washington, 1955
175 Report of the Muddiman Committee on the working of Reforms, Government of India, 1924
176 Reports of the Public Accounts Committee (Epitone) (U K) H. M S O, 1937
177 Report of the Public Accounts Committee (India), New Delhi, (2 Vols) Government of India, 1960
178 Report of the Plowden Committee on the Control of Public Expenditure, London, H M S. O, 1961
179, Report of the Royal Commission on Expenditure, London, 1926
180 Report of the Taxatian Enquiry Commission (3 Vols), New Delhi, Government of India, 1953
181 Report of Sir Richard Tottenham on the Reorganisation of the Machinery of Government of India, New Delhi, 1945-46

PART IV

CITIZEN AND ADMINISTRATION

182. Dıcey — The Development of Admınıstratıve Law ın England, Aprıl 1915

183 Dıckınson, John — Admınıstratıve Justıce and the Supremacy of Law (Harward Unıversıty Press, 1927)

184 Harlow, Rex , F — Publıc Relatıons ın War and Peace, (New York, 1942)

185 James, Hart — An Introductıon to Admınıstratıve Law, wıth Selected Cases (New York, 1950)

186 Robson, Wıllıam A — Justıce and Admınıstratıve Law A Study of the Btıtısh Constıtutıon, Stevens London, 1951

187 Wade, H W R. — Admınıstratıve Law, Oxford, 1961

188 Wrıght, J H., and B A Ghristıan — Publıc Relatıons ın Management (New York, 1949)

189 — Cıvıl Servıce Assembly , the Unıted States and Canada, Publıc Relatıons ın Publıc Personnel Agencıes, (Chıcago, 1941)

— o —

REPORTS

164. Report of the Advisory Planning Board, New Delhi, Government of India, 1946
165, Report of N. Gopalaswami Aiyyangar, New Delhi, Government of India, 1949
166 Annual Reports of the Ministry of Finance, New Delhi, Ministry of Finance
167 Annual Reports of the O & M Directorate, New Delhi, Cabinet Sectt
168 Audit Reports (Central), New Delhi, Office of the Comptroller & Auditor General
169 Report of the Advisory Planning Board, New Delhi, Government of India, 1949
170. Report of the Economy Committee of the Congress Party in Parliament,,New Delhi, A, I, C C, 1959
171 Reports of the Estimates Committee, New Delhi, Lok Sabha
172. Reports of the Estimates Committee, London, H M S. O
173 Report on the Form of Accounts (Crick Committee) London, H M S O , 1950
174 Reports of the Hoover Commission
 (i) Report to the Congress on Budgeting and Accounting, Washington, 1949
 (ii) Report to the Congress on Budgeting and Accounting, Washington, 1955.
175 Report of the Muddiman Committee on the working of Reforms, Government of India, 1924
176 Reports of the Public Accounts Committee (Epitone) (U K) H. M S O , 1937
177 Report of the Public Accounts Committee (India), New Delhi, (2 Vols) Government of India, 1960
178 Report of the Plowden Committee on the Control of Public Expenditure, London, H M S. O , 1961
179, Report of the Royal Commission on Expenditure, London, 1926
180 Report of the Taxatian Enquiry Commission (3 Vols), New Delhi, Government of India, 1953
181 Report of Sir Richard Tottenham on the Reorganisation of the Machinery of Government of India, New Delhi, 1945-46.

---

200 Annual Reports of Ministries of the Government of India
201 Annual Reports of the Union Public Service Commission of India
202 Annual Reports of the Organisation and Methods Division in India
203 Descriptive Memoirs of various Ministries of the Government of India
204 Estimates Committee Reports of the Indian Parliament
205 First, Second and Third Five Year Plans, Government of India, Planning Commission
206 Government of India, Reorganization of Machinery of Government Report, 1949
207 Hand-book of Rules and Regulations for the All India Services (As on 1st October, 1958) Volume I and II issued by the Government of India, Ministry of Home Affair, Government of India Press, Delhi, 1958
208 Public Accounts Committee Reports of the Indian Parliament
209 Reports of the Committee on Delegated Legislation of the Indian Parliament

JOURNALS

210 Administrative Science Quarterly Graduate School of Business and Public Administration, Cornell University, Ithaca, New York
211 Journal of the National Academy of Administration, Mussoorie
212 International Review of Administrative Sciences, Brussels
213 Public Administration Review, U S. A
214 Public Administration, London
215 Public Administration, Australia
216 The Newzealand Journal of Public Administration
217 The Indian Journal of Public Administration, New Delhi

PART—V

CONCERNING INDIAN ADMINISTRATION

190 Appleby, Paul H — Re-examination of India's Administrative System with special reference to Administration of Government's Industrial and Commercial Enterprises, Government of India Cabinet Secretariat, Delhi

191 Appleby, Paul H — Public Administration in India, Report of Survey, Government of India, Cabinet Secretariat, New Delhi, 1953

192. Bhambhri, C P — Parliamentary Control Over Finance in India, Jai Prakash Nath & Co , Meerut, 1959

193 Bhambhri, C P — Parliamentary Control Over State Enterprise in India, Metropolitan, Faiz Bazar, Dec 1960

194. Chanda, A K — Indian Administration, London Allen & Unwin 1958

195 Dwarka Das — Role of Higher Civil Service in India, Popular Book Depot, 1958

196 Gorwala, A D — The Role of Administration—Past, Present and Future

197 Gorwala, A D — Report on Public Administration, Government of India, Planning Commission, 1951.

198. Gorwala, A D — Of Matters Administrative, Bombay, 1958

199 — Commission of Enquiry on Emoluments and Conditions of Service of Central Govornment Employees 1957-59 Report, Ministry of Finance, Government of India

200 Annual Reports of Ministries of the Government of India
201 Annual Reports of the Union Public Service Commission of India
202 Annual Reports of the Organisation and Methods Division in India
203 Descriptive Memoirs of various Ministries of the Government of India
204 Estimates Committee Reports of the Indian Parliament
205 First, Second and Third Five Year Plans, Government of India, Planning Commission
206 Government of India, Reorganization of Machinery of Government Report, 1949
207 Hand-book of Rules and Regulations for the All India Services (As on 1st October, 1958) Volume I and II issued by the Government of India, Ministry of Home Affair, Government of India Press, Delhi, 1958
208 Public Accounts Committee Reports of the Indian Parliament
209 Reports of the Committee on Delegated Legislation of the Indian Parliament

JOURNALS

210 Administrative Science Quarterly Graduate School of Business and Public Administration, Cornell University, Ithaca, New York
211 Journal of the National Academy of Administration, Mussoorie
212 International Review of Administrative Sciences, Brussels
213 Public Administration Review, U S. A
214 Public Administration, London
215 Public Administration, Australia
216 The Newzealand Journal of Public Administration
217 The Indian Journal of Public Administration, New Delhi